महाभाव-दिनमणि
श्रीराधाबाबा

षष्ठम खण्ड (द्वितीय भाग)

प्रियतम काव्य



टीकाकार : साधु कृष्णप्रेम

प्राप्ति स्थल

मुकुन्द गोस्वामी
गोस्वामी चौक,
बीकानेर
फोन : 524353

गोकुल गोस्वामी
आकाशवाणी, पावटा सी रोड़,
जोधपुर
फोन : 544073

श्री षोड़ष गीत मन्दिर
अनाथालय के पीछे,
बीकानेर

गुलाबचन्द बोथरा
गीता वाटिका
गोरखपुर

श्री गोकुल गोस्वामी

महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा

षष्ठम खण्ड (द्वितीय भाग)

प्रियतम काव्य

(सप्तम शतकसे एकादश शतकतक सम्पूर्ण)

छन्दार्थ एवं विस्तृत व्याख्या सहित



साधु कृष्णप्रेम



प्रियतम काव्य (द्वितीय खण्ड)

१. सप्तम शतकः मूल छन्द, भावार्थ एवं विस्तृत टीका सहित

नन्दसदनसे रंधनकार्यकर लौटते समय श्रीराधाकिशोरीका मार्गमें कदम्बतरुके तले विश्राम तथा स्वप्न देखने लगना। स्वप्नमें परकीया-महाभावरसकी अनुभूति– स्वप्नमें अचानक भीषण झंझावात उठ आनेसे नन्दरायजीका बालक श्रीकृष्णको श्रीराधाको सौंपना तथा भाण्डीर वनमें ब्रह्माजी द्वारा उन दोनोंका विवाह सम्पन्न करानेकी घटनाकी स्मृति, पुनः स्वप्नमें दुर्मदके साथ विवाहोपरान्त मंजुश्यामा सहित श्रीराधाका अपनी ससुराल जाना, मूर्च्छित होना, भगवती पौर्णमासी द्वारा द्वादशवर्षीय सूर्यपूजनका विधान, उद्यानमें पुष्पचयन करते हुए कृष्णनाम सुनकर, फिर वंशीध्वनि सुनकर तथा तीसरी बार श्रीकृष्णका चित्रपट देखकर राधामें आत्मसमर्पण–भावोंका उद्रेक, फिर परितापके फलस्वरूप यमुनामें देहविसर्जन करनेके लिये प्रवेश करना, अचानक नन्दनन्दनका वहाँ आकर श्रीराधासे मिलन होना।

२. अष्टम शतकः मूल छन्द, भावार्थ एवं विस्तृत टीका सहित

श्रीप्रिया–प्रियतमकी जागरणसे शयनपर्यंत निकुंज एवं गोष्ठलीलाओंका सांगोपांग विवरण।

३. नवम शतकः मूल छन्द एवं भावार्थ

साँवरके मथुरा–प्रस्थानसे सखियों सहित श्रीराधारानीका चरम विरहावेश। वनके खगमृगोंसहित सखियोंका प्राणोत्सर्ग एवं श्रीराधाका यमुनाकी ओर प्रस्थान, श्रीराधाका भावावेशमें यमुनानदीको संबोधन, यमुनासे विनय एवं अनुरोध, किशोरीका सहचरी सहित यमुनामें आत्मविसर्जन, भगवती पौर्णमासी द्वारा उन्हें जीवनदान तथा शतवर्षीय वियोगनिशाका प्रारम्भ।

४. दशम शतकः मूल छन्द एवं भावार्थ

उद्धवका ब्रजमें आकर श्रीकृष्णके वियोगमें व्याकुल श्रीराधासहित सखियोंके दर्शन एवं सखियोंसे उनका संवाद। सखियों द्वारा साँवरकी दिनचर्या सुना–सुनाकर रोने लग जाना, उद्धवका ज्ञानोपदेशके उपरान्त साँवरका सन्देश उन्हें सुनाने लगना, श्रीराधाकिशोरीकी मौन अवस्थिति तथा सखियोंका एक–एककर मानवती होकर साँवरकी स्मृतियाँ बखान करने लगना, उद्धवके ज्ञानाभिमानका विगलन, एक बार श्रीराधाकी वाणी श्रवणगोचर हो– उद्धवकी मन ही मन अभिलाषा, मंजुश्यामाके अनुरोधसे श्रीराधाका कुछ कहनेको प्रस्तुत होना।

५. एकादश शतकः मूल छन्द एवं भावार्थ

उद्धवकी प्रार्थनासे द्रवित श्रीराधाका सन्देश देने लगना, कलिन्दनन्दिनीके तटकी सर्प सम्बन्धी एक लीलाका उल्लेख, यमुनातटकी रेणुकाका प्रसंग, प्रियाका भ्रमरको अपने चरणोंको छूनेके लिये मना करना, भृंगकी दिव्य चिन्मयी परिणिति सम्बन्धी श्रीराधाकिशोरीका वरदान, श्रीराधाकी मूर्च्छा, श्रीललिता द्वारा उद्धवके लिये इस वरदानका होना प्रकट करना तथा मूर्च्छित हो जाना, उद्धवका दोनोंकी चरणरजमें लोटनेके पश्चात् उन्मत्तावस्थामें मथुरा लौटना। अश्वत्थ पादपके नीचे सोयी बालाका स्वप्नसे जागरण तथा पुनः बालाका प्रियतमके साथ पीपलके तले बैठे–बैठे स्वप्न देखने लगना।

संकलन एवं सम्पादन
साधु कृष्णप्रेम

अनुक्रमणिका

अष्टम शतक

(७६९) नियत संकेतस्थलपर सखियों सहित प्रियाका नन्दनन्दनकी बाट जोहना, लवंगलताका प्रियाको उसके प्रियतमके साथ हुए मिलनकी गाथा सुनाना, लवंगमंजरीकी कथा, ललिता तथा अन्य सखियों सहित प्रियतमका आ पहुँचना। (२४३-२४८)

(७७०-७७१) शुभ्र वस्त्रालंकार धारण किये सखियों एवं प्रियाका पूर्ण चन्द्रकी निर्मल ज्योत्स्नामें अदर्शन हो जाना, प्रियतमके 'प्रियतमे' सम्बोधन तथा प्रियाके 'मैं आई' उत्तरके नादसे ही परस्पर दोनोंका अनुसंधान हो पाना। (२४९-२५२)

(७७२) मयूर-मयूरियोंकी टोलीका नृत्य करना, साँवरका वेणुनादसे उसमें सहयोग करना, प्रियाका मयूरोंपर रीझकर पुष्प बरसाना, उन्हें मेवा खिलाकर जल पिलाना, यमुनापार जानेके लिये तटपर जलका वेग तथा गहराई कम करनेके लिये प्रियाका एक अंजलि जल प्रार्थनामंत्र पढ़कर यमुनामें छींट देना, यमुनाजल शान्त एवं गुल्फ-परिमित गहरा हो जाना। (२५२-२५४)

(७७३) यमुना पार करते ही सैकततटपर रासवेदी दृष्टिगोचर होना, रासवेदीकी शोभा, वृन्दासखीका सामने आकर प्रिया-प्रियतमको वेदीपर निर्मित सिंहासनपर बैठाना। (२५५-२५६)

(७७४) प्रिया-प्रियतमको शीतल जल पिलानेके उपरान्त ताम्बूल-समर्पण करना, प्रियतमके अर्धचर्वित ताम्बूलखण्डका वृन्दाकी सभी सखियोंको वितरण, रासनृत्यका आरंभ, प्रियतम द्वारा वेणुवादन तथा प्रियाका सखियों सहित अनेक अद्भुत मंडलोंकी रचनाकर परम रसमय नृत्य करना। (२५६-२६२)

(७७५-७७९) रासनृत्यमें श्रान्त सखियों एवं प्रियाजीकी अपूर्व शोभा। (२६३-२६४)

(७८०) महारासमें स्वतः ही उत्तर एवं दक्षिण विभागोंका निर्माण। दक्षिणभागमें महारासनिशाकी अवधि छः मासकी हो जाना। उत्तर विभागमें निशान्तमें प्रियाका आनन्दमूर्च्छित होकर गिरने लगना, प्रियतमका मुरलीवादन स्थगितकर उन्हें हृदयसे लगाकर सम्हालना, सखियोंका भी वाद्य बजाना स्थगितकर रासनृत्यको विराम देना, तदनन्तर नौकानिर्मित सेतुसे चलकर सबका यमुना पारकर निकुंजभवनमें पहुँचना, विश्रामकक्षमें प्रिया-प्रियतमको शयन कराकर सखियोंका चला जाना, अवरुद्ध द्वारके बाहर चार-चार सखियोंका बारी-बारीसे सेवार्थ जागते रहना। (२६५-२६६)

(७८१) प्रिया-प्रियतम एवं सखियोंकी निद्राका तात्विक विवेचन। (२६७)

(७८२) निभृतनिकुंजमें प्रियाका प्रियतमसे सरस विनोदके लिये पहेलियाँ बूझना। पहली पहेली स्वाधीनभर्तृकाभावकी प्रधान सखी विशाखा एवं उसकी प्रमुख छः सखियोंके सम्बंधमें होना, प्रियतमका उसे जान लेनेका संकेत देना। (२६९-२७०)

(७८३) दूसरी पहेली खण्डिताभावकी प्रधान सखी ललिता एवं उसकी प्रमुख छः सखियोंके सम्बन्धमें होना, प्रियतमका उसे पहचान लेनेका संकेत देना। (२७१-२७२)

(७८४) तीसरी पहेली प्रोषितभर्तृकाभावकी प्रधान सखी इन्दुलेखा एवं उसकी प्रमुख छः सखियोंके सम्बंधमें होना, प्रियतमका उसे जान लेनेकी स्वीकारोक्ति करना। (२७३-२७४)

(७८५) चौथी पहेलीका प्रियतमके लिये गूढ सिद्ध होना, कई रसमयी लीलाओंकी स्मृति हो आनेपर उन्हें ज्ञात हो जाना कि यह पहेली वासकसज्जाभावकी प्रधान सखी चम्पकलता एवं उसकी प्रमुख छः सखियोंके सम्बंधमें है, प्रियतमका उसे पहचान लेनेका संकेत देना। (२७५-२७८)

(७८६) पाँचवीं पहेलीका उत्कण्ठिताभावकी प्रधान सखी रंगदेवी एवं उसकी प्रमुख छः सखियोंके सम्बंधमें होना तथा प्रियतमका उसे जान लेनेका संकेत देना। (२७८)

(७८७) छठी पहेली वासकसज्जाभावकी प्रधान सखी तुंगविद्या एवं उसकी प्रमुख छः सखियोंके सम्बंधकी होना तथा प्रियतमका उसे भी पहचान लेनेका संकेत देना। (२७९)

(७८८) सातवीं पहेलीका कलहान्तरिताभावकी प्रधान सखी सुदेवी एवं उसकी प्रमुख छः सखियोंके सम्बंधमें होना तथा प्रियतमका उसे भी जान लेनेका संकेत देना। (२८०)

(७८९) आठवीं पहेली का हल ढूँढना प्रियतमके लिये इसलिये भी सुगम हो जाना क्योंकि अब सखी चित्रा ही शेष रहती है। आठवीं पहेलीका समाधान दिवाभिसारिकाभावकी मूर्त्तिमान् सखी चित्रा एवं उसकी सहयोगिनी छः सखियोंके रूपमें जानकर प्रियतम द्वारा प्रियाको जाननेकी स्वीकारोक्ति प्रदान कर

देना। (२८१)

(७९०) प्रियाकी अन्तिम प्रश्नपहेली कि 'अब अन्तिम कौन ?' के उत्तरमें प्रियतमका मुखर होकर कहना कि उसे तो मैं छूकर ही बतलाऊँगा तथा प्रियाको आलिंगनबद्ध कर लेना, तदनन्तर जो प्रेम लहरोंका आलोड़न हुआ उसका अवर्णनीय होना। (२८१)

(७९१) महासिन्धुकी उत्ताल तरंगें ही तट भी बन जाती हैं - इसका विवेचन (२८२)

(७९२) प्रियतमका प्रियाको कहानी सुनानेका आग्रह करना, कुछ झिझकके उपरान्त प्रियाका कहानी सुनाना प्रारंभ करना। (२८२)

(७९३-८०३) प्रियाका प्रियतमको श्रीमद्भागवतोक्त रासपंचाध्यायीकी कथा सुनाना। (२८३-२९९)

(८०४-८०८) प्रियतमको निद्रालु देखकर प्रियाका इस कथाके उपरान्त विरमित हो जाना। इस भाँति प्रियाके (इस शतकमें वर्णित) स्वप्नका भी विराम हो चलना। (२९९-३००)

नवम शतक

(८०९) नन्दभवनमें राजा कंस द्वारा भेजेगये दूत– अक्रूरका मथुरामें होनेवाले यज्ञोत्सवपर नन्दनन्दनको बुलाने आना (३०१)

(८१०-८१९) सन्ध्या समय राधाकिशोरीको अपशकुन होना, सखियोंका भी अतिशय उदास दिखाई देना, अन्ततः सखियोंका यह संवाद राधाको सुनाना। (३०१-३०३)

(८२०-८२५) कुंजस्थलमें साँवरका राधाकिशोरीसे मिलना, दोनोंका अश्रुधारा बरसाना। (३०३-३०५)

(८२६-८३७) किशोरीका भाव–परिवर्त्तन, 'साँवरको जानेमें सुख है तो मैं उनके सुखमें विघातिका क्यों होऊँ। किशोरीका पूछना– ' क्या सच जारहे हो, नाथ!' साँवरका उत्तर देना– ' इस तनके कुछ काम वहाँ अवशेष हैं, मेरा मन तो इन चरणोंमें ही रहेगा।' सुनकर राधाकिशोरीका उत्तर देना– 'जाओ प्राणाधिक!' फिर साँवरका विदा लेकर अपने आवासकी ओर चल पड़ना। उनके आँखसे ओझल होते ही सहचरियों सहित दौड़कर नन्दभवन पहुँचना, तोरणद्वारपर ही जाकर बैठ जाना। (३०५-३०७)

(८३८-८४६) साँवरका अग्रज सहित रथारूढ़ होना, किशोरीका आकुल होकर 'भूकम्प हो रहा है, दौड़ो' – आदि शब्दोंका उच्चारण, सहचरियोंका उन्हें सम्हालना, फिर किशोरीके मस्तकके अनुमतिसूचक हिलानेसे रथका आगे बढ़ना, सहचरियोंका एक–एककर गिरकर प्राणशून्य होते जाना। (३०७-३१०)

(८४७) उदुम्बर वृक्षके पास जहाँ पथ मुड़ता है, साँवरके तनसे दो नीली ज्योतियोंका निकलना, एकका राधामें प्रवेश होना, दूसरेका रथके साथ चला जाना। (३१०)

(८४८-८६१) किशोरीकां उन्मादयुक्त प्रलाप सुनकरके सखियोंका उसके प्राण बचानेका यत्न करना, किन्तु किशोरीके महाकरुण रुदनसे वनके समस्त प्राणियोंका प्राणशून्य होकर गिर जाना। (३१०-३१३)

(८६२-८६४) किशोरीका यमुनाकी ओर प्रस्थान तथा यमुनातटपर बैठकर यमुनासे विनय करने लगना। (३१३-३१४)

(८६५-८९६) यमुनानदीको किशोरीका सन्देश (३१४-३२१)

(८९७-८९९) किशोरीका यमुनामें आत्मविसर्जनके लिये प्रवेश। एक सहचरीका स्तब्ध हुई देखते रहना तथा दूसरीद्वारा उसका अनुसरण (३२१)

(९००-९०१) अन्तिम विन्दु प्राप्त होनेपर सहचरीका उसे अंकमें भर लेना, दोनोंका जलमग्न हो जाना। (३२२)

(९०२-९०४) अचानक गैरिकवसना जगज्जननी पौर्णमासीजीका आविर्भाव, यमुनाजलका तलतक घट जाना तथा राधाकिशोरीको अंकमें धारण किये उनका तटपर आना। सहचरियोंका भी प्राणसमन्वित हो उठना। जगन्माताका सबको धैर्यदान। (३२३)

(९०५-९०९) जगन्माताका अन्तर्धान हो जाना। सुन्दरी–सरोवरके रत्नमय आवासों युक्त उस गाँवका भी विलुप्त हो जाना, किशोरी एवं उसकी सहचरियोंके विषयमें सबकी विस्मृति। किशोरीके लिये तो अब सौ वर्षकी वियोगनिशाका वर्त्तमान रहना तथा निरन्तर रुदन ही उसका जीवन बन जाना। (३२३-३२४)

दशम शतक

एकादश शतक

चित्रसूची

चित्र परिचय

श्रीललिताकुंजमें फलयुक्त शहतूतके वृक्षोंकी छायामें बिछे मखमली कालीनपर आधी लेटी हुई अवस्थामें श्रीराधारानी मखमली मसनदपर टिके एक चित्रमें अपनी आँखें केन्द्रित किये आसीन हैं। चित्रमें दिखलाया गया है कि श्रीप्रियाका बायाँ हाथ श्यामसुन्दरके दाहिने हाथमें है तथा दोनों एक दूसरेको निर्निमेष नेत्रोंसे देख रहे हैं। श्रीप्रियाकी गगरी वहीं टेढ़ी होकर पड़ी है जिससे जल गिर रहा है तथा श्यामसुन्दर गायोंकी सुधि भूले बैठे हैं।

पासमें ही गोरोचनके समान अंगकान्तिवाली तथा मयूरपिच्छके वर्णके परिधान धारण किये श्रीललिताजी ताम्बूलादिकी सेवाकी सामग्री लिये खड़ी हैं। (पृष्ठ सं. ६४)

श्रीविशाखाकी कुंजमें श्रीराधारानी सब ओर पुष्पित कदम्बकी छायामें विराजित हैं। श्रीश्यामसुन्दरने भाँति-भाँतिके कुसुमोंके आभरण निर्माण करके प्रियाको विचित्र कुसुमोंसे बना लँहगा धारण कराया है तथा फूलोंका गजरा पहना रहे हैं।

पासमें ही बिजलीके समान अंगकान्तिवाली तथा तारकांकित परिधान धारण किये श्रीविशाखाजी कर्पूरादि विलेपनकी सेवाकी सामग्री लिये खड़ी हैं। (पृष्ठ सं. ९०)

श्रीचित्राके कुंजमें अत्यन्त सुन्दर पुष्पोंसे लदी झाड़ीकी छायामें दोनों पैर फैलाये हुई श्रीराधारानी श्रीश्यामसुन्दरकी गोदमें विराजित हैं। प्रियाजी निम्नांकित पदकी भावधारामें आविष्ट हैं—

कैसे जाऊँ री बीर घट भरिबे नीर, ठाढो जमुना तीर साँवरो अहीर, मारे दृगन तीर हरे सुधि शरीर।

विशाखा इसी पदको वीणा बजाती हुई गा रही है तथा श्रीश्यामसुन्दर विशाखाके सुरमें सुर मिलाकर बाँसुरी बजा रहे हैं।

पासमें ही केशरकान्तिके समान अंगप्रभावाली एवं सुन्दर काचके वर्णके परिधान धारण किये श्रीचित्राजी वस्त्राभूषणादिकी सेवा-सामग्री धारण किये खड़ी हैं। (पृष्ठ सं. १३५)

श्रीइन्दुलेखाकी कुंजमें मानवती श्रीराधारानीकी गंभीर मुखमुद्रा देखकर श्रीश्यामसुन्दर सुगन्धित पुष्पके वृक्षकी छाँहमें बायें हाथमें मुरली धारण किये चुपचाप खड़े हैं। प्रियाके समीप बैठी सारीके कथनसे श्यामसुन्दरको ज्ञात हो रहा है कि प्रियाका मान उनके अन्य सखीकी कुंजमें चले जानेकी सूचना पाकर हुआ है।

पासमें ही हरतालके समान अंगकान्तिवाली तथा दाड़िमपुष्पके वर्णके वस्त्र धारण किये श्रीइन्दुलेखाजी नृत्यभंगिमा धारण किये खड़ी हैं। (पृष्ठ सं. १४५)

श्रीचंपकलताके कुंजमें विमलामंजरी द्वारा निर्मित श्यामसुन्दरके सुन्दर चित्रको देखकर प्रिया आँखोंमें अश्रु भरे बैठी हैं। प्रियाके एक ओर विमला मंजरी बैठी है। प्रियाकी इस दुर्लभ भाव-निमग्न अवस्थाका दर्शन प्रियतम लताकुंजमें छिपकर कर रहे हैं।

पासमें ही चम्पाके कुसुमोंकी अंगकान्तिवाली तथा नीलकण्ठपक्षीके वर्णके परिधान धारण किये श्रीचम्पकलताजी अपनी सेवा-सामग्री चँवर धारण किये खड़ी हैं। (पृष्ठ सं. १६८)

श्रीरंगदेवीकी कुंजमें श्रीराधारानी सुन्दर खिलेहुए पुष्पोंसे निर्मित बिछौनेपर पुष्पोंके ही तकियेपर सिर रखे श्रीकृष्णके आगमनकी आकुल होकर प्रतीक्षा कर रही हैं। श्रीललिता प्रियाके चरणोंको अपनी गोदमें धारण किये धीरे-धीरे दबा रही हैं।

पासमें ही पद्म किंजल्कके समान अंगकान्तिवाली तथा जवाकुसुमके वर्णके वस्त्र धारण किये श्रीरंगदेवीजी अपनी यावक समर्पणकी सामग्री धारण किये खड़ी हैं। (पृष्ठ सं. १७०)

श्रीतुंगविद्याकी कुंजमें मधुमती वीणा बजाती हुई गा रही हैं। श्रीश्यामसुन्दर प्रियाजीकी गोदमें अपना सिर रखे लेटकर वंशीवादन कर रहे हैं। प्रिया अपनी दाहिनी हाथकी अंगुलियोंसे उनके मस्तकको सहला रही हैं।

पासमें ही चन्द्रकुंकुमके समान अंगकान्तिवाली तथा पीत वर्णके परिधान धारण किये गीत-वादनकी सेवामें प्रवीण सखी श्रीतुंगविद्याजी गीत गा रही हैं। (पृष्ठ सं. १९३)

सखी सुदेवीकी कुंजमें प्रिया अमरूदके वृक्षकी छायामें आसीन है। श्यामसुन्दरकी वंशीके सुरोंसे ललिताके मनकी अन्तरंग चाहें अभिव्यक्त हो रही हैं जिन्हें सुनकर श्रीललिता अपने सुगुप्त भावोंके प्रकाशसे संकुचित हो रही है।

पासमें ही तप्त स्वर्णके समान अंगकान्तिवाली एवं प्रवाल वर्णके परिधान धारण किये श्रीसुदेवीजी शीतलजल-सेवाकी सामग्री धारण किये खड़ी हैं। (पृष्ठ सं. २०३)

।।विजयेतां श्रीप्रियाप्रियतमौ।।

सप्तम शतक

राधाकिशोरीकी स्वप्नानुभूति

अश्वत्थ पुराना एक बड़ा पथमें विचित्र-सा था, प्रियतम !
पत्रावलि पतझड़में उसकी गिरती थी नहीं कभी, प्रियतम !
रहता हरीतिमाका वह था अचरजका पुञ्ज बना, प्रियतम !
हरीतिमा और अचरजका था वह पुञ्ज बना रहता, प्रियतम !
जन गाथा थी, हो व्यक्त वहाँ देवी बैठा करती, प्रियतम ।।६०७।।

जहाँसे राधा सरोवरके लिये पगडण्डीका पथ जाता था वहीं एक अश्वत्थका पुराना वृक्ष बड़ी विचित्र सुषमा लिये न जाने कबसे खड़ा था। उसकी विशेषता यह थी कि पतझड़के समय उसकी पत्रावली कभी गिरती न थी। पतझड़के कालका कोई भी प्रभाव उस पर नहीं पड़ता था। वह सदा हरीतिमा एवं आश्चर्यका पुञ्ज बना रहता था।

ब्रजपुरवासियोंको सामान्य रूपसे यह चर्चा प्रायः सबको ज्ञात थी कि इसके नीचे वनकी अधिष्ठात्री देवी व्यक्त होकर – विराजकर बहुतोंको दर्शन दिया करती थी।।।६०७।।

था नहीं कालका इसीलिये कोई प्रभाव पड़ता, प्रियतम !
उस तरुपर, तथा मनोरथ थे पूरित होते सबके, प्रियतम !
जिसकी जैसी इच्छा होती, उसको वैसी मिलती, प्रियतम !
परिणाम किंतु सबका होता मंगलमय परम सदा, प्रियतम ।।६०८।।

इसीलिये इसपर कालका कोई प्रभाव नहीं था। उस अश्वत्थ तरुकी एक विशेषता यह भी थी कि व्रजपुरवासियोंके सभी मनोरथ प्रायः पूर्ण हो जाया करते थे। जिसकी जैसी इच्छा होती, उसको उसकी रुचिकी वस्तु मिल ही जाती और परिणाममें सभी व्रजपुरवासियोंका परम मङ्गल ही होता।।।६०८।।

रहने दो स्वप्न अनुक्त, यहीं इस पादप के नीचे, प्रियतम !
बाला ने जो देखा, जब वह लौटी थी उस गृह से, प्रियतम !
विश्राम लगी करने वह थी सखियों के कहने से, प्रियतम !
क्षण एक मूँदी बस आँख, हुई अनुभूति रहस्यमयी, प्रियतम ।।६०९।।

इसी पादपके नीचे एक दिन राधाकिशोरी भी गयी थी और उन्होंने एक विचित्र स्वप्न देखा था। वह कहने भरके लिये ही स्वप्न था – वास्तवमें वह किशोरीकी विचित्र अनुभूति ही थी। वे नन्दग्रामसे लौटी थीं। क्षणभरके लिये उनकी आँखें निमीलित हुईं और एक परम रहस्यमयी अनुभूति उन्हें हुई थी।।।६०९।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

पाठकोंको निस्सङ्कोच सूचित किया जा रहा है कि सप्तम शतकमें पू.गुरुदेवने मधुररसकी जिस लीलाका वर्णन किया है, वह लीला प्रेमकी पराकाष्ठा-स्वरूपा, परकीया-महाभावरूपा है। प्रेमकी इस सर्वोच्च अधिरूढ़ महाभावावस्थामें श्रीराधारानीके शरीर, प्राण, मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, इन्द्रियोंके सभी स्वाभाविक कर्म, अभिलाषा, आसक्ति, कामना,

अहंता-ममता, अहंता-ममतासे होनेवाले लोक-परलोकके, परमार्थ-स्वार्थके ऊँचे-नीचे सब व्यवहार-व्यापार, देहके धर्म, परिवारके धर्म, लोकधर्म, वेदधर्म, धर्मजीवन, धर्मकी आत्मा – सबकुछ मात्र श्रीकृष्णप्रेममें समर्पित हो चुके हैं। उनमें अपने प्रियतम श्रीकृष्णकी प्रीतिके अतिरिक्त कुछ भी उत्तम-मन्द नहीं बचा है। उनकी जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति और तुरीया – ये चारों अवस्थाएँ, भूत-भविष्यत्-वर्तमान – तीनों काल भी बिना किसी अहङ्कारके प्रियतम श्रीकृष्णमें लीन हो चुके हैं। यहाँ तक कि उनकी इस सर्वसमर्पणकी स्मृति भी उनके प्रियतममें समर्पित हो गयी है। इस आत्यन्तिक समर्पण अथवा त्यागका तनिक-सा भी अभिमान उनमें शेष नहीं रहा है। उनका सबकुछ श्रीकृष्णका हो चुका है। ऐसी स्थितिमें उनका कोई लौकिक उपपति होनेकी तो कोई संभावना ही नहीं है। हाँ, यह अवश्य है कि अघटन-घटना-पटीयसी भगवती योगमाया लीलामहाशक्ति स्वयं अपनी ही स्वरूपभूता श्रीकृष्णाह्लादिनी श्रीराधा और उनकी ही कायव्यूहरूपा – उनकी छोटी बहिन मञ्जुश्यामा एवं ललिता-विशाखादि सखियोंमें मिलन-विलासादिरूप सर्वोच्च शृङ्गारका रसास्वादन करानेके लिये उनमें औपपत्य भावका प्रादुर्भाव स्वप्न-सदृश कर देती हैं।

यह ध्यान रहे, न तो इस परकीयाभावमें अङ्ग-सङ्ग है, न ही कामकी इन्द्रियजन्य ज्वाला है। इस विलक्षण प्रेमभावमें तो अपनी ही आत्मा – अपने प्रियतम प्राणवल्लभ श्रीकृष्णका प्रगाढ़ निरन्तर चिन्तन मात्र है। उनसे मिलनकी स्वसुखग्रहणमयी नहीं – सुखदानमयी उत्कट उत्कण्ठा भर है; प्रियतमके प्रत्येक व्यवहारको प्रेमकी गुणमयी दृष्टिसे देखनेकी भावना है; उनसे अपने लिये कुछ भी न चाहकर, उनसे कुछ भी आशा नहीं रखकर, उन्हें अपना सर्वस्व देकर मात्र सुखी करनेकी चाह भर है।

इस परकीया प्रेममें चाहे प्रेमीके स्वयंके जीवनमें घोर, गहन-से-गहन अशान्तिके बादल छाये रहें, किन्तु उसके प्रियतम जिस आचरणसे परम सुखी हों, वही विहित कर्म माना गया है। इस विलक्षण प्रेममें न तो धर्म-अधर्मसे कुछ प्रयोजन है, न ही ज्ञान-अज्ञानसे ; न किसी भी प्रकारके बन्धनसे दुःख है, न ही मोक्षकी कामना है; न अपरोक्ष ज्ञानकी चाह है और न ही तमोमय अज्ञानसे वैराग्य है। किसी भी प्राणी, पदार्थ किंवा परिस्थितिसे यहाँ न तो राग है, एवं न ही विराग है। एकमात्र प्रियतम-सुखकी कामना ही इस निर्मल भावमें जीवन है। श्रीराधा एवं उनकी कायव्यूहरूपा गोपियोंके पवित्रतम परकीया प्रेममें उनका अपना स्व कुछ बचा ही नहीं है। उनका अस्तित्व भी अपने लिये नहीं है। वे श्रीकृष्णकी हैं एवं लोकदृष्टिमें परकीया होनेसे प्रतिकूल-से-प्रतिकूल मानी जानेवाली अवस्थामें भी उन्हें अपने प्रेमास्पद श्रीकृष्णके व्यवहारमें महान् दिव्य मधुर गुणोंके ही सहज दर्शन होते रहते हैं।

मेघ अपने अनन्य प्रेमी चातकको स्वातिका जल तो कभी दे ही नहीं, वरं कठोर पत्थरों – ओलोंकी वर्षा करके उसके पंखोंके टुकड़े-टुकड़े कर डाले, इतनेपर भी प्रेमके तत्वको जाननेवाले चतुर चातकके मनमें उसके प्रति प्रेममें कभी चूक नहीं पड़ती। चातकका प्रेम न तो शिथिल ही होता है, न उसका प्रवाह ही रुकता है। मेघ बड़ी रूखी एवं कठोर ध्वनि करता हुआ, कठोर पत्थर तो बरसाता ही हो, साथ ही बड़ी डाँट-डपटके साथ गरज-तरजकर वज्र भी गिराता हो, फिर भी प्रेमी चातक अपने प्रियतम मेघके सिवा किसी दूसरेकी ओर ताकता भी नहीं। मेघ अपनी क्रियासे चातकको दिखलाता है कि मैं तुम्हारा प्रियतम नहीं, पूरा शत्रु हूँ। इतने प्रत्यक्ष दोषोंको देखकर भी चातकको अपने प्रियतमके प्रति तनिक भी रोष नहीं होता। उसे अपने प्रियतमके दोष दीखते ही नहीं, वरं मेघके बिजली गिराने, ओले बरसाने, वर्षाकी झड़ी लगाने, आँधीके प्रबल झांके देने-जैसे कृत्योंमें भी उसको अपने प्रति मेघका अनुराग ही दिखलाई देता है। वह इसी बातपर रीझा रहता है कि मेरा प्रियतम अपने मनकी करके मेरे प्रति अपनी आत्यन्तिक आत्मीयताका ही परिचय दे रहा है।

परकीया राधा अपने प्रियतमके ऐसे निर्मल प्रेमकी सजीव मूर्त्ति हैं। इस सप्तम शतकमें जो कथा है, उसमें प्रियतम श्रीकृष्ण श्रीराधाको बहुत ही सांघातिक दुःख पहुँचाते हैं। जहाँ श्रीराधा दुस्त्यज स्वजनोंका, दुर्ल्लंघ्य आर्यपथका सहज

परित्याग करके, लोक-वेद-कुलकी कुछ भी परवाह न करके सर्वसमर्पणपूर्वक श्रीकृष्णको अपना जीवन-यौवन समर्पित करनेको समुत्सुका हैं, वहाँ वे ही उसकी पूर्णतया उपेक्षा कर देते हैं। श्रीराधा सर्व लज्जा त्यागकर उन्हें प्रेमपत्रतक भेजती हैं किन्तु वे उसका भी कोई प्रत्युत्तर नहीं देते हैं, उससे मिलनेका कोई सङ्केत भी नहीं देते। वे प्रेमशून्य, अतिशय रूखा व्यवहारकर श्रीराधाकी अवहेलनाकर, उसकी सखीको निराश लौटा देते हैं। फलतः श्रीराधा यमुनामें प्राणत्याग करनेको उद्यत हो उठती हैं। यह क्या कम दुःख है ? परन्तु यमुनामें अपने प्राण विसर्जित करनेको उद्यत हुईं श्रीराधाका भाव अपने प्रियतमके इस व्यवहारसे तनिक भी प्रभावित नहीं होता। उनका विशुद्ध प्रेम इस कठिन वियोगकी स्थितिमें भी उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है। उनके मनमें एक क्षणके लिये भी ऐसे सङ्कल्पकी एक लेशात्मक तरङ्ग भी नहीं उठती कि ऐसे निर्मम, निष्ठुर स्वभाववाले व्यक्तिसे प्रेम करनेमें क्या लाभ है ? जो व्यक्ति अपने वियोगमें रात-दिवस जलती हुई, दुखी प्रेमिकाकी दशाको जानता हुआ भी उसकी उपेक्षा करता है, उसका तो मनसे त्याग करना ही सर्वोचित है – ऐसे परायेपनके विचारोंसे सर्वथा परे रहती हुई परम मधुर स्वभाववाली श्रीराधा घोर मर्म-पीड़ा, तीक्ष्ण तिरस्कार सहती हुई भी हृदयमें अपने प्रियतमके किसी दोषका विचार आने ही नहीं देती। प्रियतम भले ही न मिलें, वे उनको अपने हृदयदेशसे क्षण भरके लिये भी विलग नहीं करतीं। उनके प्रेमपूर्ण हृदयमें प्रेमजन्य मुदिता एवं परम शीतलता अक्षुण्ण ही बनी रहती है। उनमें अत्यन्त उदारताके साथ-साथ प्रेमभावका एकाङ्गी प्रवाह बहता ही रहता है। स्वसुखकी वासना उनमें है ही नहीं। ऐसे विलक्षण प्रेमकी धनी श्रीराधा हैं। यह परकीया भाव उनके सर्वोच्च महाभाव-सिन्धुकी उच्चातिउच्च ऊर्मि ही है। इस भाव-तरङ्गका स्वप्न-दर्शन उन्हें नन्दभवनसे श्रीकृष्णके लिये भोजन-निर्माणकर लौटते समय कदम्ब वृक्षके नीचे विश्राम करते समय होता है। वे वस्तुतः परकीया हैं ही नहीं। वे श्रीकृष्णकी ही थीं, हैं एवं सदैव उनकी ही रहेंगी। यह तो मात्र एक महाभाव-स्फूर्त्ति है। श्रीराधा द्वारा इस परकीया भावका स्वप्नवत् भावदर्शन उनके सर्वोच्च प्रेमतत्वका प्रकाश है, इसे पाठकोंको इसी रूपमें देखना एवं अवगाहन करना चाहिये।

कदम्ब वृक्षका भाव

श्रीराधा महाभावस्वरूपा हैं। भावका प्रवाह नित्य-निरन्तर उनमें प्रवाहित होता रहता है। इसीलिये वे व्यक्ति तो हैं ही, राधाभाव-सरोवररूपा भी हैं। राधा-प्राणप्रियतम रसिक-शिरोमणि श्यामसुन्दर भी क्योंकि उनसे नित्य मिलित, नित्य अभिन्न हैं, अतः वे भी श्रीकृष्णसरोवर बने उनके पार्श्वमें ही लहरा रहे हैं। दोनोंके मूलस्रोत एक-दूसरेसे परस्पर जुड़े हैं। इन दोनों कुण्डों (सरोवरों)की ऐसी शोभा है मानो कलङ्कहीन पूर्ण श्यामचन्द्र अपनी प्रियतमा ज्योत्स्नाको वाम भागमें लिये ज्योतिर्मण्डलके साथ आकाशसे पृथ्वीपर उतरकर शोभा-विस्तार करता हुआ वृन्दाविपिनमें झूला झूल रहा हो।

श्रीराधारानी अपना प्रेमसुख समस्त जीव-समुदायमें भी वितरित करना चाहती हैं। श्रीराधारानी ही मूल प्रकृति हैं, अतः सम्पूर्ण जीवसमुदाय भी तो उनका कायव्यूहरूप ही है। उनमें नित्य ही नव-नूतन वेगसे यह भाव उत्थित होता रहता है कि जैसे मेरे द्वारा मेरे प्रियतम श्रीकृष्णको सुख प्राप्त होता है, उसी प्रकार समस्त जीव-समुदाय भी श्रीकृष्ण-सुखके लिये ही जीवन-धारण करे। वस्तुतः बिना श्रीकृष्ण-सुख-सुखिया भावके जीवका स्वसुख-विधान भी तो होना संभव नहीं है। भोगसुख तो जीवको सदासे नरकोंमें प्रवृत्त करता ही आ रहा है। अतः श्रीराधा जीवमात्रमें श्रीकृष्णसुखको पल-पल वितरण करना चाहती हैं। वे अपने प्रियतम श्रीकृष्णको केवल अपनी ही वस्तु मानकर, उनको अपने ही प्रणयकक्षमें बन्द करना नहीं चाहतीं। श्रीकृष्ण हैं भी तो परम स्वच्छन्द, पूर्ण स्वेच्छाचारी। वे किसी एककी प्रणय-मञ्जूषामें निबद्ध रहनेवाले भी तो नहीं हैं, अतः अपने प्रियतमको सभीके सुखकी वस्तु बनाकर, सबको प्रेम-सुख-सिन्धुमें निमज्जित करनेकी स्वाभाविक महोदार प्रवृत्ति श्रीराधामें नित्य ही उमड़ती रहती है। रासमण्डलमें इसीलिये असंख्य गोपाङ्गनाओंका समावेश होता है। प्रत्येक दो-दो गोपाङ्गनाओंके मध्य प्रकट होकर असंख्य रूपोंमें ही श्रीकृष्ण उनके विशुद्ध प्रेमका रसास्वादन करते-कराते हैं। श्रीराधारानीकी उदारताका यह कैसा विलक्षण आश्चर्यपूर्ण मनोहर फल है ?

श्रीराधाका श्यामप्रेम सीमित नहीं है। वह अनन्त है और वे उसका वितरण करके ही परम सुखी होती हैं। उनका यह सहज उदार स्वभाव प्रत्येक क्षेत्रमें क्रियाशील रहता है। उनके इस महोदार स्वभावकी सङ्कल्प-पूर्त्तिके लिये ही अघटन-घटना-पटीयसी योगमाया कदम्ब वृक्ष बनकर ऐसा विधान करती है कि उसकी छायामें प्रेम-साधनरत गोपकुमारियाँ कात्यायनीदेवीकी साधना करके प्राणप्रियतम श्रीकृष्णको प्राणनाथरूपमें प्राप्त करनेका वरदान प्राप्त करें। नित्यसिद्धा स्वरूपभूता गोपियोंको तो श्रीकृष्ण अप्राप्त हैं ही नहीं। यह अप्राप्तिका भाव तो साधनरत देवीपूर्वा, श्रुतिपूर्वा गोपकुमारियों एवं अन्य जीवभावापन्ना ऋषिपूर्वा गोपियोंमें ही था। इन जीवपूर्वा उच्च प्रेम-साधनरत गोपियोंका भगवान्‌को प्राप्त करनेकी साधना करना भी प्रेमराज्यकी एक परम मधुर लीला ही है। प्रेमराज्यमें प्रवेश किस प्रकार हो सकता है, इसमें कितने त्यागकी आवश्यकता है – इसीका दिग्दर्शन करानेके लिये अघटन-घटना-पटीयसी योगमाया लीलामहाशक्ति ही कदम्ब वृक्ष बनती हैं। इस कदम्ब वृक्षपर चढ़कर ही भगवान् श्रीकृष्ण उन गोपी बने जीवोंका आवरण-वस्त्र हरते हैं जिनको पूर्ववर्त्ती अनेकों अवतारोंमें प्रेम-प्राप्तिका वरदान प्राप्त हुआ है। आवरणका नाश सहजमें नहीं होता। अज्ञान इस सुकौशलसे जीवकी बुद्धिको ढँके रहता है कि वह किसी तरह भी विवस्त्र, बेपर्द हो ही नहीं पाता। यमुना किनारेका यही तो वह कदम्ब वृक्ष है जिसपर चढ़कर गोपी-वस्त्रापहरणलीला होती है। यहाँसे राधासरोवरकी ओर पथ जाता है। भक्तोंके बाह्याभ्यन्तर – सभी प्रकारके आवरण नष्ट होजानेका तत्व इस वस्त्र-हरणकी लीलामें निहित है।

आनन्द-सौन्दर्य-सुधानिधि रसराज प्रियतम श्रीकृष्णका चिदानन्दरसमय रूप ही ऐसा विलक्षण मधुर है कि उसके सामने आ जानेपर किसी प्रकारकी सुधि रहती ही नहीं। देह-गेह, लज्जा-सङ्कोच, मान-अपमान, अपना-पराया, लोक-परलोक – सभी उस अनुपम रूप-सरिताकी प्रखर धारामें बह जाते हैं। फिर बाह्य वस्त्रोंके आवरणकी तो बात ही क्या है ?. यह अघटन-घटना-पटीयसी योगमाया लीलामहाशक्तिके स्वरूपभूत कदम्ब वृक्षकी महिमा ही ऐसी है कि जो भी इसकी कृपा-छायाकी परिधिमें आ जाता है उसके अविद्यारूप मायाके समस्त बन्धन सदाके लिये टूट जाते हैं, अज्ञान-आवरणका मोटा पर्दा हमेशाके लिये फट जाता है। जीवके हृदयमें उस दिव्य प्रेमका उत्कर्ष हो उठता है, जिसमें तन-मनकी कुछ सुधि ही नहीं रहती।

इसी कदम्ब वृक्षके नीचे गोपियोंकी साधना पूर्ण होती है। अघटन-घटना-पटीयसी भगवती योगमाया महाशक्तिरूप इसी कदम्बके कृपारूप सान्निध्यमें ही भगवान् इन समस्त गोपियोंके साथ विहार करनेका सङ्कल्प भी करते हैं। भगवान् इन साधनसिद्धा गोपियोंके साथ अपनी राधामुख्या गोपियोंको भी, जों नित्यसिद्धा भागवती शक्तियाँ हैं एवं परकीया भावापन्न हैं, इन्हीं रात्रियोंमें दिव्य लीलामें सम्मिलित करते हैं।

इसी अनन्त करुणामयी कृपाशक्ति – करुणा-कदम्बका आश्रय लेकर ही भगवान् प्रेमदान करनेके लिये दिव्य नवीन मनका सृजन करते हैं। योगेश्वरेश्वर भगवान् श्रीकृष्णकी यही कदम्बरूपा योगमाया ही रासलीलाके लिये दिव्य स्थल, दिव्य सामग्री, दिव्य मनका निर्माण करती हैं। सर्वथा एवं सर्वांशमें कुछ भी प्राकृत नहीं, सबकुछ अप्राकृत रङ्गमञ्चका सृजन ये ही लीलामहाशक्ति करती हैं।

पुनः इसी कदम्बके नीचे भगवान् बाँसुरी बजाते हैं। यह बाँसुरी जड़को चेतन, चेतनको जड़; चलको अचल एवं अचलको चल; विक्षिप्तको समाधिस्थ एवं समाधिस्थको विक्षिप्त बना देती है। आवरणरहित हुईं, निश्छल प्रीतिको प्राप्त हुईं गोपियाँ निस्सङ्कल्प – निश्चिन्त हुईं अपने गृहकार्योंमें लगी होती हैं। कोई गुरुजनोंकी सेवा-सुश्रूषारूप 'धर्म'में निरत होती है, तो कोई गोदोहन आदि 'अर्थ'कार्यमें संलग्न होती है; कोई साज-शृङ्गारादि 'काम'के साधनमें व्यस्त हैं, तो कोई पूजा-पाठ आदि मोक्ष-साधनमें प्रवृत्त रहती हैं। यद्यपि सभी गोपियाँ व्यस्त होती हैं, फिर भी इन कार्योंमें उन सभीका

चित्त **'ज्यों नागरिको चित गागरिमें'** के समान भगवान् श्रीकृष्णसे ही जुड़ा होता है । वास्तवमें उनके चित्तमें पूरे भगवान् श्रीकृष्ण ही बसे हैं। उनकी आन्तरिक चित्तवृत्तियाँ इन पदार्थोंमें किसीसे भी संयुक्त, जुड़ी नहीं है – यही उनकी विशेषता है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि वंशीध्वनि सुनते ही जिस भी काममें वे लगी हैं, उस कामको पूर्ण करनेकी ओर उनका ध्यान नहीं जाता। वे कहीं भी, किसी भी कार्यमें अटकती नहीं। काम पूरा करके चलें, ऐसा वे नहीं सोचतीं। वे चल पड़ती हैं, उस विषयासक्ति-शून्य संन्यासीकी तरह जो सबकुछ जो जैसा जहाँ है, वहीं उसे वैसा ही छोड़कर चल पड़ता है। उनका हृदय वैराग्यकी प्रदीप्त ज्वालासे परिपूर्ण है। कोई भी किसीसे कुछ पूछता नहीं। परस्पर भी कोई किसीसे कोई सलाह नहीं लेता। अस्त-व्यस्त अवस्थामें जो जैसी है, वैसे ही श्रीकृष्णके पास पहुँच जाती है। वैराग्यकी पूर्णता और प्रेमकी पूर्णता एक ही बात है – दो नहीं। गोपियाँ मूर्त्तिमान् वैराग्य हैं, अथवा मूर्त्तिमान् प्रीति हैं, इसका निर्णय कौन करे ?

ध्यान रहे, इसी कदम्बके तले श्रीराधारानीको शिक्षा मिलती है – मर्यादारहित अवैध प्रेम-साधनाकी। जहाँ वैध साधनामें वेदोक्त नियमोंके बन्धनका; सनातन आर्य पारंपरिक रीति-रिवाजोंका, कर्त्तव्योंका और विविध पालनीय धर्मोंका त्याग साधनसे भ्रष्ट करनेवाला, महान् हानिकर, घोर नरकोंमें ले जानेवाला होता है, वहीं इस कदम्ब तले मिली अवैध प्रेमसाधनाकी प्रणालीमें ठीक इसके विपरीत – इनका पालन ही कलङ्करूप होता है। सर्वोच्च प्रेम-स्तर ही ऐसा है, जहाँ लोक-वेदोक्त किसी धर्मकी आवश्यकता ही नहीं है। वेदोक्त धर्म इस प्रेमधर्ममें अपने-आप वैसे ही छूट जाता है, जैसे नदीके पार पहुँचे हुए व्यक्तिकी नाव अपने आप छूट जाती है। वेदोक्त, लोकोक्त परम्परा-धर्मका पालन तभी तक सार्थक है, जबतक जीवकी सारी वृत्तियाँ सहज स्वेच्छासे सदा-सर्वदा एकमात्र प्रियतम भगवान् श्रीकृष्णकी ओर दौड़ने नहीं लग जातीं।

श्रीराधामुख्या गोपाङ्गनाएँ साधनाके इसी स्तरकी आदर्श हैं। सप्तम शतककी इस लीलामें श्रीराधा देह-गेह, पति-परिवार, लोक-परलोक, कर्तव्य-धर्म – सबको पूर्णतया तिलाञ्जलि देकर, सबका पूर्णतया उल्लंघन करके अपने एकमात्र प्रियतम श्रीकृष्णको ही पानेके लिये अभिसार करनेको अपना परम धर्म समझती हैं । यहाँ उनका यह पति-परिवाररूप सर्वधर्मका त्याग ही उनके स्तरके अनुरूप परम धर्म है। सूर्यका प्रखर प्रकाश हो जानेपर जैसे तैल-दीपककी ज्योति, किंवा जुगनूकी टिमटिमाहट स्वतः मन्द एवं निरर्थक हो उठती है, वैसे ही प्रेमकी सर्वोच्च स्थितिमें पहुँची गोपीजनोंके लिये वेद-मर्यादाएँ अर्थहीन हो जाती हैं। यह सब शिक्षा इन गोपाङ्गनाओंको इस कदम्बके तले ही मिलती है।

ऐसे निर्मल प्रेमकी शिक्षा देनेवाला यह कदम्ब तरु ब्रजभावकी निराली हरीतिमा लिये श्रीराधासरोवरके मार्गमें अनादि कालसे अवस्थित है। अखिल रसामृतसिन्धु ब्रजेन्द्रनन्दनके नयन-सरोजोंको इसकी प्रीतिशोभा सदासे ही समाकर्षित किये रहती है। इस कदम्बकी एक नहीं, शत-शत सुन्दर शाखाएँ हैं – असंख्य नव-नूतन सुकोमल कोंपलें इसमें नित्य विकसित होती हैं, किन्तु इस प्रेम-कदम्बको विषम स्वसुखरूप काम-विषकी तीव्र तप्त लू कभी म्लान नहीं कर पाती। इसका एक पत्र, एक पल्लव भी कभी इस विषसे संस्पर्शित ही नहीं हो पाता। यह तरुराज सदैव सर्वात्म-समर्पण एवं श्रीकृष्ण-सुख-सुखिया भाव-सौरभका ही सतत सर्वत्र सञ्चार करता रहता है। कालके नियमोंका इसपर कोई प्रभाव नहीं, क्योंकि यह प्रीतिवृक्ष जबसे लीलासृष्टि है, तभीसे सनातन एवं अनादि है।

पावस, शरद, हेमन्त, शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म – इन सभी ऋतुओंमें , बारहों मास निरन्तर इसके अङ्ग पुष्पभारसे नमित रहते हैं, सदा ही यह प्रेम-कदम्ब कुसुमित रहता है एवं इसकी शोभासे दसों दिशाएँ सदैव उद्भासित रहती हैं। यह प्रश्न हो सकता है कि ऐसी असम्भावित घटना क्यों? सारे विश्वको आक्रान्त करनेवाले, स्वसुख – स्वकल्याणभावरूप काम-विषकी इस तरुके प्रति ऐसी प्रभावहीनता कैसे? जिस कामने शिवको तप्त कर

दिया, सनकादि·जिसके भयसे पाँच वर्षके बालक बने हैं, वह त्रिलोकजयी काम यहाँ इस तरुके एक पत्रको भी संस्पर्शित नहीं कर पावे, ऐसी विलक्षणता इसमें क्यों ? यह मात्र इसीलिये है क्योंकि इसी बड़भागी तरुराज प्रेम-कदम्बके तले ही ब्रजेन्द्रनन्दन प्रतिदिन – गोचारण करने जाते हुए एवं वनसे लौटकर आते समय विश्रामके क्षण व्यतीत करते हैं, साथ ही इसी कदम्बके तले वे वेणुवादनकर सम्पूर्ण व्रजवनमें ही प्रीतितत्वका सञ्चार करते हैं। ब्रजराजनन्दनके अधरामृतसे सिक्त वंशीध्वनिका संस्पर्श इसे मिलता है, और उसी वंशीसे शिक्षा पाकर यह कदम्ब ब्रजराजनन्दनके नलिन-सुन्दर चरणसरोरुहोंकी शाश्वत प्राप्तिका उपाय – उसका मार्ग सबको दर्शाता हुआ, सभीके लिये शिक्षागुरु होनेके सौभाग्यसे विभूषित है।

प्रियतम प्राणसुन्दरकी प्रेमवितरण-प्रणालीकी महिमा यही है कि जो भी प्राणी इस कदम्बकी छाया तले एक क्षण भी आ जाये, यहाँ विश्राम कर ले, बस, यह कदम्ब उसे ब्रजेन्द्रनन्दनके प्रीतिभावसिन्धुमें डुबानेका, उसकी अथाह प्रवहमान ऊर्मियोंमें लहरानेका, उसके अनन्त प्रबल शक्तिशाली भाव-आवर्त्तोंमें चक्राकार घुमानेका सुदुर्लभ विधान एवं सौभाग्य सम्पन्न कर देता है। भला, किसीके जीवनकी इससे अधिक कृतार्थता शेष ही क्या रहती है ? वह प्राणी, चाहे वह पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग, नर-नारी, आबाल-वृद्ध ही क्यों न हो, ब्रजेन्द्रनन्दन की अचिन्त्य प्रीति-महाशक्ति उसे अपनी लीलोपकरण-सूचीमें सम्मिलित कर ही लेती है। ब्रजेन्द्रनन्दन अपने बाल्यावेशकी मौजमें इस कदम्बपर आरोहण करते हैं, वे गोपाङ्गनाओंके चीरहरण करके इसीकी सुदृढ़ लम्बी शाखाओंमें बैठ जाते हैं, गोचारणके लिये वन-भ्रमण करने जाते हुए वे इसी कदम्बके नीचे विश्राम करते हैं, यहीं उनका छाक-भोजन, वन-भोजन होता है। सुदूर वनमें गयी गौओंको बुलानेके लिये इसी कदम्बकी उन्नत शाखाओंमें चढ़कर वे धौरी, धूमरी, कारी, कजरी, आदि नाम ले-लेकर टेर लगाते हैं। ब्रह्मामोहनलीला, कालिय-दमनलीला आदि सभी प्रकरण इस तरुराजके माध्यमसे ही हों, इसीकी छायामें यमुना-सैकतमें महारासमण्डलकी भी संरचना हो – ये सभी विधान इस प्रेम-तरुराजके भालपर ही लीला-महाशक्तिने अंकित कर रखे हैं। यह कदम्ब इसीलिये लीलामहाशक्तिसे पूर्ण एकात्म प्राप्त उनका ही स्वरूप है।

जिन ब्रजेन्द्रनन्दनके मात्र एक नामके जिह्वाग्रपर उपस्थित होनेसे, – नाम ही नहीं, केवल नामाभासके कर्णरन्ध्रोंमें प्रविष्ट होने भरसे, उनके त्रिभुवनमनोहर रूपकी एक काल्पनिक आभा भरके मानसतलमें उदित होने मात्रसे, परिस्थिति विवश हुए आकुल प्राणोंकी ' नाथ ! मैं आपका हूँ'' इस प्रकारकी पुकार मात्रसे , उनके शीतल शंतम चरण-सरोरुहोंकी मात्र थोथी भावुकतावश ही शरण ग्रहण करनेके शब्दोच्चारण कर लेने भरसे, उनके नाम-रूप-लीला-गुण आदिके सम्पर्कमें भाव अथवा कुभावसहित – किसी भी प्रकार चले आने मात्रसे जब काम-सर्प-विषकी ज्वाला सदा-सदाके लिये शान्त हो जाती है, फिर ब्रजराजनन्दनके पूर्ण कृपापात्र इस कदम्बको काम-विष संस्पर्श करे, यह भला कैसे संभव है?

इसीलिये इस प्रेम-कदम्ब तरुवरपर काम-विषकी कराल ज्वाला तनिक भी प्रभाव नहीं कर पाती, यह उससे सर्वथा संस्पर्शसून्य अक्षत ही बना रहता है। इतना ही नहीं, इससे संस्पर्शित पवनतक नित्य नवीन प्रेमोल्लासका सौरभ प्रवाहित करती रहती है। सर्वोच्च प्रीति-महाभावके पल्लव एवं पुष्प इसमें नित्य नवीन-नवीन उल्लासमें सुविकसित रहते हैं। न जाने कबसे, यह प्रेम-कदम्ब महाभाव-पल्लवोंका शृङ्गार धारणकर, अपने भाव-कुसुमरूप नयनोंके पाँवड़े बिछाये रसराज रसिकेन्द्रशेखर एवं प्रिया राधाका आह्वान कर रहा है – '' आओ मेरे प्रेमदेवता ! मेरे चिरजीवनकी अभिलाषा पूर्ण करो !''

इस पादपकी चिर साध पूर्ण करने एक दिवस नन्दभवनसे पाक-रचनाकर लौटते समय प्रिया श्रीराधा अपनी अनुजा मञ्जुश्यामा एवं सखियों – ललिता-विशाखादि सहित इस पादपके नीचे विश्राम करने पहुँच ही गयी थीं। विश्राम करते-करते ही इस प्रेम-पादपके तले उन्हें जो विचित्र अनुभूति हुई, उसका ही वर्णन सप्तम शतकमें किया गया है।

स्वप्नका भाव

भगवती श्रीराधा परात्पर परब्रह्मस्वरूपा ह्लादिनी महाभावशक्ति हैं। उनमें प्राकृत गुणमयी तीन अवस्थाएँ – स्वप्न, जागरण एवं सुषुप्ति तो हो ही नहीं सकतीं। प्रकृतिके मायामय सत्व, रज एवं तमोगुणोंकी न्यूनाधिकता होनेसे ही ये लौकिक तीन अवस्थाएँ – जाग्रत्, स्वप्न एवं सुषुप्ति त्रिगुणभावापन्न जीवोंमे देखी जाती हैं। श्रीमती राधारानी सर्वथा अप्राकृत भगवत्स्वरूपा हैं, उनका हम लौकिक जीवोंकी तरह स्वप्न देखना संभव ही नहीं है। वस्तुतः श्रीकृष्ण-स्मृतिकी आत्यन्तिक प्रगाढ़तामें डूब जाना ही उनका आँख निमीलित होना है। इस प्रगाढ़ स्मृतिजन्य भाव-समाधिमें किंचित् विक्षेप होना एवं सच्चिन्मय अप्राकृत लीलाजगत्की विचित्र अनुभूतिका होना ही उनका स्वप्न देखना है।

संकेत भले सुन लो, यद्यपि रस का सागर वह है, प्रियतम!
पर गिरा न जाने क्यों कुण्ठित हो रही अचानक है, प्रियतम!
कानन में विविध विहंगम हैं रसलोलुप, किंतु सभी, प्रियतम!
हैं रस-मर्मज्ञ नहीं पूरे, अतएव न समझेंगे, प्रियतम ॥६१०॥

'प्राणरंमण नीलसुन्दर ! यद्यपि किशोरीका वह स्वप्न रसका समुद्र सृजन करता है किन्तु उसका मैं सङ्केतमात्र ही कर सकती हूँ। न जाने क्यों, अचानक गिरा कुण्ठित हो रही है। इस काननमें विविध जातिके असंख्य विहङ्गम हैं और वे सबके सब रसलोलुप भी हैं, किन्तु वे सभी रसमर्मज्ञ हों, ऐसी बात नहीं। इसीलिये वे इसे यथोचित रूपसे समझ नहीं सकेंगे।।।६१०।।

जिज्ञासा

कृपया रसलोलुप एवं रसमर्मज्ञका भेद समझावें।।६१०।।

समाधान

यहाँ 'कानन' प्राकृत पाञ्चभौतिक जगत्का ही प्रतीक है। जगत्के विषयानुरागी मायाग्रस्त प्राणी भीषण कामानलसे जल रहे हैं। कामका अर्थ है – जो पाञ्चभौतिक शरीर अन्नजलादिके द्वारा संवर्धित है और मल-मूत्र ही जिसका परिणाम है, उसको तृप्त करनेकी इच्छा। प्राकृत शरीरोंमें कभी विशुद्ध रस – आनन्दका उदय हो ही नहीं सकता। जो लोग प्राकृत वस्तुओंके माध्यमसे प्राकृत शरीरको सुखी करनेके लिये लोलुप एवं लुब्ध हैं, वे ही वस्तुतः कामलोलुप हैं। कामलोलुपोंके लिये ही यहाँ रसलोलुप शब्दका प्रयोग किया गया है। कृमि, भस्म या विष्ठा ही जिस नश्वर प्राकृत शरीरका परिणाम है, उसमें कभी विशुद्ध रस उत्पन्न हो ही नहीं पाता। उसमें तो कुत्सित रस – कुरस अथवा रस-विहीनता – विरसताका ही उदय होता है। विरसता अथवा कुरसताको ही सांसारिक लोग रस मानकर उसके लोलुप रहते हैं तथा नरकगामी होते हैं। विश्वकाननमें इसीलिये रसलोलुपोंकी भरमार है।

रसस्वरूप तो सच्चिदानन्दघनविग्रह भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं। **'रसो वै सः'** कहकर वेद सच्चिदानन्दतत्वको ही परिलक्षित करते हैं। अतएव जो केवल सहज, परम त्यागस्वरूप भगवदनुरागके महाप्लावनकी चाह करते हैं, वे ही रसमर्मज्ञ कहे जा सकते हैं। रसकी वास्तविक मर्मज्ञा तो राधामुख्या ब्रजाङ्गनाएँ हैं, जो नित्य निरन्तर अपनेको रसमें पूर्णतया निमग्न रखती हैं। जिन भगवत्प्रेमियोंकी प्रत्येक गतिविधि, चेष्टा तथा क्रिया सर्वथा राधामाधवके अनुरागकी प्राप्तिमें ही संलग्न है, वे ही रसमर्मज्ञकी श्रेणीमें आ सकते हैं।

परब्रह्म परमात्मा ही अनादिकालसे विशुद्ध आनन्द है। श्रीराधा उसी परमानन्दमयी आह्लादशक्तिका अनादि मूर्तिमान् विग्रह हैं। वे परमानन्दमयी भगवत्स्वरूपा पराशक्ति ही कायव्यूहस्वरूपमें असंख्य मूर्त्तियोंमें प्रकट होकर स्वयं

रसराज रसिकेन्द्रशेखर भगवान् श्रीकृष्णको अत्यन्त चमत्कारपूर्ण परमानन्द प्रदान करती रहती हैं। अनादि अनन्त काल श्रीराधा एवं गोपियोंकी स्वरूपानुबन्धिनी कृष्णानुकूलता – कृष्ण-सुखप्रदानकी पराकाष्ठा उत्तरोत्तर वर्धमान रहती है, यही परमाश्चर्य है। श्रीराधामाधवका यह मधुरतम लीलाविलास प्राकृत नीच कामोपभोग नहीं है, यह केवल श्रीकृष्णसुखमयी प्रीतिका अनुभाव है। इस विशुद्ध रसमें जिनका प्रवेश है – वस्तुतः वे ही सच्चे अर्थमें रसमर्मज्ञ हैं। जबतक प्राकृत जीवगत कामके संस्कार अथवा इस प्रकारके किसी भी कामयुक्त पुरुषत्व या नारीत्वका अभिमान जीवमें शेष रहता है, तबतक वह कायव्यूहरूपा ब्रजाङ्गनाओंसे समन्वित श्रीराधा और रसराज श्रीकृष्णकी दिव्य मधुरतम प्रेमलीलाका रहस्य समझ ही नहीं सकता। अतः विशुद्ध रससे अछूता जीव 'रसमर्मज्ञ'की श्रेणीमें कदापि नहीं आ सकता।

जो जिस विषयकी कामनावाले होते हैं – वे उस विषयमें लोलुप होते हैं। अर्थलोलुप पैसे-पैसेके लिये दीन-दरिद्र ललचाये होते हैं। सम्राट् पृथ्वीका राज्य प्राप्त करनेके लोलुप हैं, कोई पुरुष मांसमूत्रागार नारीशरीरका लोलुप है, एवं नारी पुरुषशरीरपर लुब्ध, लोलुप है। ये सभी अपनी लोलुपताके कारण दीन तथा याचक हैं। क्योंकि समस्त प्राकृत विषयभाग अपूर्ण एवं विनाशी हैं, अतएव इनकी लोलुपताका कभी समाधान संभव ही नहीं है।

एकमात्र भगवान् श्रीकृष्ण ही नित्य पूर्णकाम हैं। वे किसी भी प्राणि-पदार्थ-परिस्थितिके लोलुप नहीं हैं। भगवान् श्रीकृष्णमें श्रीराधामुख्या गोपाङ्गनाओंके प्रेमरसके आस्वादनकी जो कामना-सी देखी जाती है, अथवा श्रीराधामुख्या गोपीजनोंमें जो अपने प्राणप्रियतमके दर्शन-मिलनकी असीम उत्कण्ठा देखी जाती है, वह वस्तुतः कामना है ही नहीं। वह तो स्वरूपभूत रसका मात्र लहराना, उच्छलन अथवा आदान-प्रदान ही है। किरणें सूर्यकी स्वरूपभूत अङ्ग हैं। उनमें अपना स्वयंका कुछ भी नहीं है। उनका सबकुछ रूप, ज्योत्स्ना, प्रकाश पूर्णरूपेण सूर्यका ही है। वे सूर्यसे नित्य जुड़ी हैं, वियुक्त हो ही नहीं सकतीं। सूर्यकी ओर उनका जो धावन है, सूर्यसे एकात्म होनेकी उनमें जो आदान-प्रदानात्मक लालसा है, वह कामना कदापि नहीं हो सकती। भगवान्में इसी प्रकार अपने स्वरूपभूत रसको अपने प्रेमियोंमें वितरण करनेकी अतिशय स्वाभाविक प्रक्रिया होती है, वह कामना नहीं है। वह भगवान्का प्रेमानुग्रह है। भगवान् प्रेमानुग्रहवश ही अपना स्वरूपभूत प्रेमरस गोपीजनोंमें वितरण करते हैं और उस अपने ही दिये प्रेमरसको पुनः उनसे लेते हैं। वे जितना लेते हैं, उससे असंख्य, अनन्तगुना उन्हें पुनः देते रहते हैं। गोपाङ्गनाएँ भगवान्की स्वरूपाशक्तियाँ हैं। वे भगवान् श्रीकृष्णकी स्वरूप-वितरण-लीलाकी उपकरणरूपा हैं। वे अन्नजलादि द्वारा परिपुष्ट प्राकृत मांस-मल-मूत्र-पुरीषपिण्ड नहीं हैं। इसीलिये गोपाङ्गनाओंका रासविलास, यह श्रङ्गारप्रधान मधुररसमयी मिलनोत्कण्ठा, सर्वात्मसमर्पणक्रिया लौकिक कामविलास कदापि नहीं है। यह विशुद्ध रसका विशुद्ध विलास है। नित्य पूर्णकाम, पूर्णरसैश्वर्यरूप भगवान्में सर्वात्मसमर्पण करना ही परम धर्म है और यही इनके जीवनका परम सौभाग्य है। इनमें नारी-पुरुषका प्राकृत भाव है ही नहीं।

राधामुख्या ब्रजाङ्गनाओंके प्रियतम श्रीकृष्णरमणमें कोई भी उपाधि, आवरण या किसी भी प्रकारका कोई अन्य हेतु नहीं है। वहाँ न ऐश्वर्यज्ञान है, न धर्माधर्मका लेशभर भी संस्मरण। गोपियोंको अपने प्रेमोत्पादनके लिये उनके प्रियतम श्रीकृष्णके रूप-गुणादिकी भी आवश्यकता नहीं है। उनमें स्वसुखानुसंधानका लेशकण ही नहीं है। उनमें रमण-रमणीबोध भी नहीं है, जो कान्ताभावका जीवन-स्वरूप है। ब्रजाङ्गनाओंके पवित्रतम प्रेममें केवल और केवल सहज परम त्यागमय अनुराग-महासागरका महाप्लावन है। श्रीराधामाधव नित्य-निरन्तर उसमें पूर्णतया निमज्जित रहते हैं। *गोपाङ्गनाओंकी प्रत्येक गतिविधि, उनकी प्रत्येक चेष्टा-क्रिया सर्वथा श्रीकृष्णसुखमय, श्रीकृष्णानुरागकी ही एकमात्र* अभिव्यक्ति है।

अतः काननमें ऐसे प्रेम-रसमर्मज्ञ साधकोंका अभाव है, यही यहाँ इस छन्दके वक्तव्यका प्रयोजन है।

यह वही सिन्धु है, अबतक जो नापा जा सका नहीं, प्रियतम!
है गहरायी कितनी, कोई बतला न सका, न सकी, प्रियतम!
नीचे जितना जो गया, गयी, बढ़ती ही मिली उसे, प्रियतम!
वह मरा, मरी, जो बचा, बची, गूँगा, गूँगी वह है, प्रियतम ॥६११॥

'प्राणनाथ ! यह वही सिन्धु है, जो अबतक किसीके द्वारा नापा नहीं जा सका। यह कितना, गहरा है, आज तक कोई भी बतला न सका, बतला नहीं सकी। जो जितना भी नीचे बढ़ता चला गया, उसे इस सिन्धुकी गहराई बढ़ती ही प्रतीत हुई। वह उसीमें समाप्त हो गया, समाप्त हो गयी और जो बचकर बाहर निकल सका, निकल सकी वह सदाके लिये गूँगा अथवा गूँगी बन गयी हैं।।६११।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

छन्द सं. ६११ में जिस सिन्धुका वर्णन है, वह पूर्णतम परात्पर महाभाव-रसावतार भगवान् श्रीराधामाधवके प्रेमका प्रतीकात्मक वर्णन है। रसब्रह्म श्रीकृष्ण एवं महाभावस्वरूपा साक्षात् सच्चिदानन्द-रस-विग्रहा, परमानन्द-परमानन्दप्रदायिनी श्रीराधाका परस्पर प्रेम ही वह सिन्धु है, जो अमाप है, अथाह है, असीम है, अनन्त है, अभूतपूर्व है, अतीव है, अनुपम है, अतुलनीय है तथा विलक्षण है। राधामाधवका उज्ज्वल प्रेम चरम एवं परम त्यागका, सर्वसमर्पणका, स्वसुख-वाञ्छा-विरहित प्रियतम-सुखेच्छामय स्वभावका, अहंकी चिन्ता एवं मङ्गलकामना ही नहीं – अहंकी स्मृतिसे भी शून्यताका एवं प्रियतम-स्मृतिकी प्रगाढ़ताका अथाह सिन्धु है। यह प्रेमोदधि मायाके लेपसे भी शून्य, प्रकृतिसे परे है। इस सिन्धुका आस्वाद ऐसा विलक्षण मधुर है कि इसके प्राप्त होनेकी आशा मात्रमें इन्द्रियजन्य भोगोंका तो कोई प्रश्न ही नहीं, सर्वैश्वर्यमय भगवान्के समान लोकोंमें निवास, भागवती ऐश्वर्यकी प्राप्ति, भगवान्के समीप रहनेका अधिकार, भगवान्के समान रूपाकृतिकी प्राप्ति और भगवान्में एकत्व – ये पाँच प्रकारकी मुक्तियाँ भी नमक-सी खारी लगने लगती हैं। इसमें ऐसा सुस्वादु, अलौकिक, मिष्टतायुक्त रस लबालब भरा है, जिसमें छिलका एवं गुठली जैसा त्याज्य तो कुछ है ही नहीं, वरं इसके तनिक-सा स्वाद लेने मात्रका यह परिणाम होता है कि स्वाद लेनेवालेकी न तो किसी भी अर्थमें रुचि रहती है, न ही धर्ममें, भोगकामनाका तो प्रश्न ही नहीं, मुक्ति भी उसे कड़ुवी लौकीके समान खारी लगती है।

इस पावनतम प्रेम-सिन्धुमें न तो जगत्की लवणता है, न ही जगत्के विषैले भोग एवं उनकी कामना-वासनाका फेन है। इस सिन्धुमें अहङ्कार-अभिमानरूप भयावह तिमिङ्गल हैं ही नहीं। इसमें तो चिदानन्दमय भगवान् श्रीकृष्ण ही निर्मलतम सुमिष्ट जलके [illegible]बालब भरे हैं। इसका जल भी भगवान् श्रीकृष्ण, इसकी लहरें भी भगवान् श्रीकृष्ण, एवं इसका तट भी भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं। इस सिन्धुके भोक्ता भी भगवान् श्रीकृष्ण हैं, इसके भोग्य भी भगवान् श्रीकृष्ण हैं एवं इसकी भोगक्रिया भी भगवान् ही हैं। इसका आस्वादन भीं श्रीकृष्ण, आस्वाद्य भी श्रीकृष्ण एवं आस्वादक भी श्रीकृष्ण ही हैं। यहाँ प्रेमीका अनन्त जीवन प्रेमास्पदका सुखसाधन ही सुखसाधन बना रहता है। स्वसुख-वाञ्छा एवं स्वका आत्यन्तिक अभाव रहनेके कारण इस सिन्धुमें परस्पर दोनों ही प्रेमी-प्रेमास्पद क्षण-क्षण एक दूसरेका रूप हो जाते हैं।

यह प्रेमसिन्धु प्रतिक्षण बढता ही जाता है। यहाँ प्रेमीका सौन्दर्य-माधुर्यपूर्ण स्वभाव एवं गुण-गौरव प्रतिक्षण प्रेमास्पदको 'बढ़े हुए दिखते हैं और प्रेमास्पदका सौन्दर्य-माधुर्य-सौशील्य-सद्गुण प्रेमीको नित्य नव-नूतन असीम दृष्टिगोचर होते हैं। इस सिन्धुकी विशुद्ध रसधाराका प्रवाह अनन्त असीम है, इसमें नित्य रसपान एवं नित्य रसदान

स्वाभाविक हैं। इस सिन्धुकी रसधारा इतनी पवित्र एवं मङ्गलकारिणी है कि इससे संस्पर्शित वायु भी यदि किसीको स्पर्श कर ले तो तत्क्षण ही उसका राग-द्वेष, मेरे-तेरेकी भीषण कामना-वासना, अहङ्कार-अभिमान, क्रोध-हिंसा, वाद-विवादकी अग्निमें झुलसता हुआ जीवन विशुद्ध त्याग, प्रेम एवं आनन्दसे परिपूर्ण हो उठता है।

यह प्रेमसिन्धु सूक्ष्म-से-सूक्ष्म तो है ही, साथ ही महान्-से-महान् भी है। वह अलभ्य भी है और सदैव सबको प्राप्त भी है। यह प्रेमसिन्धु ही आत्मा है, अनात्मा है, उग्र है, शान्त है, अल्प है, महान् है, सर्वव्यापक है, एकदेशीय है, नित्य प्रकाशमान् है, और सर्वथा अप्रकाशित है। इसमें युगपत् विरुद्धगुणधर्माश्रयता है। यह अजन्मा है, अविनाशी है और जन्म लेनेवाला भी है। यह अव्यक्त रूपसे सर्वत्र परिपूर्ण है। इसी प्रेमसिन्धुकी लहरें पूर्ण आनन्दमयी, पूर्ण भोक्तृत्वयुक्त, पूर्ण कर्तृत्वसहित एवं ज्ञानमयी हैं। यह प्रेमसिन्धु पूर्ण ज्योतिर्मान् है, शक्तिस्वरूप है। इसका रसैश्वर्य अनन्त, अमाप है, इसमें पूर्ण अदोषस्पर्शित्व विद्यमान् है।

इस प्रेमसिन्धुमें विहार करनेवाले श्रीराधा-माधव एवं गोपाङ्गनाएँ महान् भोगी होकर भी परम योगी हैं, विभक्त दो एवं अनेक होकर भी सदैव परस्पर एक-दूसरेसे अखण्ड मिलित, अविभक्त रहते हैं। वे सर्व प्रेमकर्मोंके कर्त्ता होकर भी सदा अकर्त्ता रहते हैं, क्योंकि प्रेम कोई क्रिया रूप होता ही नहीं। वे दृश्य होकर भी द्रष्टा, परिच्छिन्न होकर भी अपरिच्छिन्न – विभु, जन्म लेनेवाले होकर भी नित्य अजन्मा, सापेक्ष होकर भी निरपेक्ष, महामुग्ध होकर भी परम चतुर, प्रेमकामी होकर भी नित्य पूर्णकाम, प्रेममें दीन होकर भी परम स्वतंत्र, परस्पर एक-दूसरेके प्रेमबन्धनमें बँधे होकर भी नित्यमुक्त, प्रेमगम्य होकर भी परम अगम्य, परस्पर प्रगाढ़ ममतायुक्त होकर भी पूर्ण निर्मम, अनेक होकर भी सदा एक, अत्यन्त बुभुक्षित होकर भी नित्य तृप्त, सर्वसम्बन्धयुक्त होकर भी सर्वसम्बन्धविमुक्त हैं।

इस प्रकारके विलक्षण स्वभाववाला यह राधा-माधव-प्रेमसिन्धु सर्वतोभावेन पूर्ण सच्चिदानन्द रसमय होनेके कारण पूर्णतया अप्राकृत एवं भगवत्स्वरूप ही है। यह प्रेमसिन्धु नित्य अवितर्क्य प्रेमैश्वर्यसम्पन्न, चिन्मय एवं विभु होनेसे इसकी लम्बाई-चौड़ाई, आकार आदि निर्धारित हो ही नहीं सकते। इस निर्मल प्रेमसिन्धुका रूप अलौकिक अप्राकृत है, इसकी पाञ्चभौतिक आकृति है ही नहीं। नाम-जोख तो प्राकृत वस्तुकी ही संभव है। जब इसका पाञ्चभौतिक आकार है ही नहीं तो निराकार वस्तुकी लम्बाई-चौड़ाई भला कोई कैसे मापेगा? इसके दर्शन मात्रसे चक्षु चिन्मय हो उठते हैं एवं चिन्मय चक्षुओंसे ही यह देखा जाता है, अतः इसकी माप-जोख संभव ही नहीं है।

अपने अव्यक्त चैतन्यरूपसे इसकी दिव्य गहराईका भी अन्त नहीं है। यह अखिल रसामृत-प्रेमसिन्धु अविनाशी, अपरिच्छिन्न होनेसे असीम गहरा है। यह नील-पीत युगपत् कान्तिवाला, अनिर्वचनीय सिन्धु अपने सौन्दर्य-माधुर्य-प्रेम-सुधावर्षणसे अपने आर्श्व-पार्श्व आनेवाले किसी भी नर अथवा नारीको ऐसा मुग्ध कर लेता है कि उसके समस्त विषय तत्क्षण ही नष्ट हो जाते हैं। सच है, इसकी सौन्दर्य-सुधामयी सुरभिके संस्पर्शमात्रसे विषय-विष तत्क्षण ही अपनी मूल अविद्यारूपा माया सहित विनष्ट हो जाते हैं। नर हो अथवा नारी, ऋषि हो या मुनि, पहले तो वह इसके स्वरूप-सौन्दर्यको टकटकी लगाकर देखता रह जाता है, फिर उसका धैर्य छूट जाता है। वह कम्पित और रोमांचित होने लगता है और उसकी बुद्धि ही लुप्त हो जाती है। बस, वह तत्क्षण ही अपना सबकुछ विस्मृतकर अपने आपको ही पूर्णरूपेण मिटा देनेकी अदम्य लालसा लिये इसमें छलाँग लगानेको उमग उठता है। इसमें डूब जानेकी लालसामें उसके प्राण हाहाकार कर उठते हैं। इसके सिवा उसको कोई दूसरी बात सूझती ही नहीं । चाहे वह अद्वैतपथसे स्वाराज्य-सिंहासनपर आरूढ़ ज्ञान-महारथी ही क्यों न हो, अथवा घोर नारकीय विषयोंमें लिप्त हो, यह सिन्धु बिना किसी भेदभावके हठपूर्वक उसे अपनेमें एकात्म कर लेता है। इसका आकर्षण उस व्यक्तिकी ऐसी दशा कर देता है कि वह सोता है, या जागता है, अथवा समाधिस्थ है – उसे कुछ भी अनुभव नहीं रहता। इससे एकात्म हो उठनेकी, अपने आपको इसमें पूर्णतया विलीन कर लेनेकी उसमें ऐसी दुर्दम्य वासनाका उदय होता है कि वह इसकी

ओर पूर्ण वेगसे दौड़ता हुआ इसमें कूद पड़ता है। यह अदृष्ट और अश्रुतपूर्व प्रेमसिन्धु उस नर अथवा नारीको अपनी गहराईके असंख्य स्तरोंमें डुबाता ही चला जाता है। एक भावलहरीके पश्चात् दूसरी भावलहरीकी प्रगाढ़तामें लहराता वह इसके भीतर, और अधिक भीतर जाता ही रहता है एवं इसमें ही अपनेको खो देता है। वह जितना गहरा इसमें डुबकी लगाता है, उतनी ही उसे गहराई बढ़ती ही मिलती है। अब उसके पुनः उबरकर ऊपर आनेकी तो कोई संभावना ही नहीं रहती, अतः इस प्रेमसिन्धुमें डूबे-डूबे ही वह मर जाता है। किसी प्राकृत सिन्धुमें तो डूबनेपर व्यक्तिका दम घुटता है, किन्तु इस सिन्धुका तो पूर्णतया विपरीत ही स्वभाव है। यह इतना सुमिष्ट प्रेमामृतसे भरा प्राणदायी सिन्धु है कि इसमें डूबे प्राणीके प्राण इससे बाहर निकलनेपर घुटते हैं। अतः वह बाहर आना ही नहीं चाहता। हाँ ! अघटन-घटना-पटीयसी योगमाया ही जगत्का अशेष मङ्गल करनेके लिये किसी-किसीमें असंभव संभव कर देती हैं, और वह पूरा मरा हुआ नर भी बच जाता है, अथवा पूरी मरी हुई नारी भी बच जाती है। वह इसकी सतहपर, लहरोंपर विहरने लगता है, लगती है। किन्तु हतभाग्य! वह इसका आस्वाद-सुख बतानेमें गूँगा – वाणी रहित एवं गूँगी – मौन ही रह जाती है। न तो वह इसकी गहराई ही बता सकता है, बता सकती है, न ही उसके द्वारा इसके स्वरूपके सम्बन्धमें, आस्वादके सम्बन्धमें ही कुछ कहा जा सकता है।।६११।।

उस गूँगीका इंगित कोई समझे, न समझ पाये, प्रियतम !
जो समझे, वह सब समझ गया, है नियम नहीं यह भी, प्रियतम!
गूँगी तो यह निर्णय करने आयेगी नहीं कभी, प्रियतम !
बहरी तो थी ही, अंधी, फिर पगली हो जाती है, प्रियतम ।।६१२।।

उस गूँगीका अथवा गूँगेका सङ्केत कोई समझे अथवा नहीं ही समझ पाये ! जो समझनेका दम भरता है, वह पूरा समझ गया है, यह भी नियम नही। जो गूँगी है, वह तो कभी अब निर्णय करने आयेगी नहीं। ऐसा इसीलिये कि वह बहरी तो थी ही, इसके बाद तुरन्त अन्धी भी हो गई। साथ ही बचकर निकलनेवालीके प्रति जो नियम लागू पड़ते हैं वे तो लागू होंगे ही। नियमतः जैसे बचनेवाले सभी विक्षिप्त हो जाते हैं वैसे वह गूँगी भी पगली हो ही जाती है। अस्तु,।।।६१२।।

तात्विक विवेचन-विस्तार

क्योंकि उस गूँगे अथवा गूँगीकी अनुभूतिका विषय उसके मन-बुद्धिमें नित्य-निरन्तर स्फुरित होता रहता है, एवं वे इस प्रेम-सिन्धुमें सभी जीवोंको डुबोना भी चाहते हैं, अतः वे गूँगे एवं गूँगी सभी जीवोंको इसमें डूबनेकी प्रेरणा देनेके लिये सङ्केत भी करते हैं, परन्तु उनके इन सङ्केतोंको जगत्के प्राणी समझ ही नहीं पाते। साधारण जीवोंकी तो बात ही कया, ब्रह्मा एवं रुद्र प्रभृति ईश्वरकोटिके महापुरुष, सनकादि भक्तगण भी उन गूँगोंके इस पृथ्वीमण्डलपर जीवनधारण करनेके उपलक्ष्यमें अपनेको कृतार्थ मानते हैं एवं '**तद्भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्याम्**' आदि वचनोंसे इसको स्वीकार भी करते हैं, किन्तु वे भी इन गूँगोंके अनुभूत अनिर्वचनीय सौभाग्यका सङ्केत समझ पाये हों, ऐसी बात नहीं होती।

इन अनिर्वचनीय सौभाग्यशाली गूँगोंका नित्य सङ्ग करनेवाले परम सौभाग्यशाली जीव इनकी ही हेतुरहित करुणाके अनन्त प्रवाहमें पतित रहनेके कारण एवं उनके परम दुर्लभ निरन्तर सत्सङ्गके फलस्वरूप यदि कुछ सङ्केत समझ भी पाये हों, तो भी वे उसे पूर्णरूपेण समझ ही गये हों, सो बात भी नहीं होती। गूँगी तो निरपेक्ष, अपने जीवनकी रहनीसे ही उन्हें सङ्केत देती है, वह वाणीसे तो बोलती नहीं। फिर वह उस महान् सुदुर्लभ विलक्षण रसमें लहराती इतनी रसमत्त होती है कि उसका वाणीरहित होना ही आगे जाकर उसकी रसमत्तताको और बढ़ाता हुआ उसे बहरी एवं अंधी

भी कर देता है। वह तो उस अवस्थामें सर्वत्र प्रेम-सिन्धुकी शोभा ही देखने लगती है, और उसका ही गर्जनरव सुनने भी लगती है। धीरे-धीरे उसकी सभी ज्ञानेन्द्रियाँ अपना-अपना कार्य स्थगित कर देती हैं और तब उसके मन-बुद्धि भी उस रसमत्ततामें जगत्‌की समझके परे हो जाते हैं और वह पगली हो जाती है।

ऐसे इस दिव्य प्रेमसिन्धुमें जिनका लहराना स्वभाव है, उन गूँगे, बहरे, अन्धे एवं पागलोंकी चरणरज भी परम पावन है। ज्ञानीशिरोमणि उद्धव एवं नारदादि भी ऐसे प्रेममत्तोंकी चरणधूलि प्राप्त करनेके लिये ब्रजमें लता-गुल्म-औषधि बनना चाहते हैं। ऐसे रसमत्त सौभाग्यवानोंकी चरणधूलिके कणसे अपनेको पवित्र करनेके लिये स्वयं साक्षात् भगवान् भी उनके पीछे-पीछे घूमा करते हैं –

"अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यंघ्रिरेणुभिः।।"

वस्तुतः प्रेम वर्णनका विषय ही नहीं है। जब वेद वाणी द्वारा ब्रह्मका वर्णन भी असंभव मानकर **'नेति, नेति'** कहकर चुप हो जाते हैं, फिर प्रेम-सिन्धुका वर्णन भला कौन कर सकता है ?

प्रेमका अनुभव होता है प्रेमीके मनमें और प्रेमीका मन रहता है सदा अपने प्रेमास्पदके पास। फिर मनके अभावमें वाणीको यत्किंचित् भी वर्णन करनेका असली मसाला कहाँसे मिले ? अतएव प्रेमका जो कुछ भी वर्णन मिलता है, वह साङ्केतिक मात्र है, बाह्य है। प्रेमसिन्धुमें डूबे बिना, उसकी अतल गहराइयोंमें निमग्न हुए बिना तो कोई प्रेमकी सर्वोच्च महाभावादि अवस्थाओंको जान ही नहीं पाता और इन अवस्थाओंकी प्राप्ति होनेपर वह अपने मनसे हाथ धो बैठता है। जलके भीतर डूबा प्राणी भला कैसे बोले, कैसे सुने और कैसे देखे ? उसे तो जल ही सर्वत्र दीखता है, जल ही उसकी वाणी होती है। इसी प्रकार प्रेमी तो सर्वत्र प्रेमास्पदको ही देखता है, सुनता है और बोलता है। जगत्‌की वाणीमें बोलना, सुनना और देखना तभीतक होता है, जबतक मुख जलके बाहर रहता है । जो बाहरकी श्वाससे जीवित रहता है वह भीतरकी बात कैसे जानेगा ? जबतक किसीके प्राण बाह्य जगत्‌की वायुसे अनुप्राणित हैं, तबतक तो वह प्रेमजगत्‌की सही स्थितिको जानता ही नहीं है। उसके आँख, नाक, कान, मुख, मन-बुद्धि सभी तो प्राकृतिक जगत्‌में ही हैं। प्रकृति ही उसे अपने तत्वोंसे जीवित किये है। प्रेम तो सर्वथा सर्वांशमें अप्राकृत है। जब प्राकृत प्राणी अप्राकृत प्रेमसिन्धुके अतल तलमें डूब जाता है , तब तो डूबनेवालेकी प्राकृत सत्ताका पता लगाना ही कठिन हो जाता है। क्योंकि डूबनेवालेका प्राकृत सबकुछ अप्राकृतमें घुलमिलकर अप्राकृत हो जाता है। फिर भी भगवद्विधानवश यदि किसी महात्माकी प्राकृत सत्ता बची रह जाती है तो जैसे गूँगा गुड़ खाकर प्रसन्न होता है, हँसता है परन्तु गुड़का स्वाद नहीं बतला सकता, उसी प्रकार ऐसे प्रेमी महात्मा भी प्रेमका अनुभव करके आनन्दनिमग्न हो जाते हैं, किन्तु अपने उस अनुभवका स्वरूप अन्य किसीको बतला नहीं सकते। प्रेममें विलक्षण तन्मयता होती है। प्रेमसिन्धुके आस्वादको प्रकट करने योग्य भाषा वस्तुतः किसीके पास है नहीं। हृदयके भीतर उसका स्पर्श होता है और जैसे ही वह प्रेम-संस्पर्श होता है, तभी सारा ज्ञान चला जाता हैं। हाँ ! यह अवश्य है कि अघटन-घटना-पटीयसी योगमाया लीलामहाशक्तिकी कृपासे किसी बिरले प्रेमी महापुरुषके प्राकृत शरीरमें भी अप्राकृत प्रेममदमें छककर दिव्य उन्मत्तता प्रकट हो जाती है। प्राकृत तन-मनकी पूर्णतया सुधि भूले उस महात्माके अङ्गोंमेंसे उस अवस्थामें प्रेमका कुछ-कुछ प्रकाश उसके साथ रहने वाले श्रद्धालु लोगोंको प्रकट दीखने लगता है। ऐसे महात्माकी वाणीसे और नेत्रोंसे ही नहीं, शरीरके रोम-रोमसे प्रेमकी किरणें अपने आप निकलने लगती हैं। ऐसे प्रेमी महात्माका स्वरूप-प्रकाश ही इस छन्दमें है।।६१२।।

अस्तु, भगवत्याः योगमायायाः रङ्गस्थलोद्घाटनम् ॥६१३॥

जो हो, भगवती योगमायाके द्वारा रङ्गस्थलका उद्‌घाटन होता है।।।६१३।।

जिज्ञासा

संख्या ६१३-६१४की संस्कृत पंक्तियोंमें भगवती योगमाया द्वारा रङ्गस्थलके उद्घाटनकी बात आयी है, साथ ही बाला राधाकिशोरीके स्वप्नका प्रारंभ हो जाता है। भगवती योगमाया किस रङ्गस्थलका उद्घाटन करती हैं एवं राधाकिशोरीके स्वप्नका आरंभ किस प्रकार होता है, इसका रहस्य उद्घाटित कर दीजिये।।६१३-६१४।।

समाधान

श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् कहते हैं – **''नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः''** अर्थात् योगमायासे पूरा-पूरा ढ़का रहनेके कारण मैं सबके सामने प्रकाशित नहीं होता।

उपरोक्त पंक्तिमें इसी रहस्यका उद्घाटन है कि भगवती लीलामहाशक्ति भगवान्की आत्ममाया भगवान्को जिस परदेसे ढके रखती हैं, श्रीराधारानीके सामनेसे वे वह परदा उठा लेती हैं। भगवान्के भी दो रूप हैं। एक उनका 'ऐश्वर' रूप है और दूसरा 'ब्राह्म' रूप है। ऐश्वर' रूपमें भगवान् श्रीकृष्णका महत्व प्रकट होता है, किन्तु उनके विशुद्ध ब्राह्म रूपमें उनके आदर्श प्रियत्वकी झाँकी मिलती है। उनकी लीलामें जब ऐश्वर्यका प्रकाश होता है, तब वहाँ माधुर्य छिप जाता है। जैसे सूर्यके उदय होते ही चन्द्रमाकी सुमधुर सुशीतल चन्द्रिका निरस्त हो जाती है, किन्तु जब माधुर्यरूपी राकाशशिकी सुशीतल सुधावर्षिणी चन्द्रिका छिटकती है, उस कालमें ऐश्वर्यरूपी रवि अस्त रहता है। भगवान्के 'ऐश्वर'रूपमें योगमाया महाशक्ति उनके ब्राह्मस्वरूपको अनेक परदोंसे ढक लेती है। पहला परदा होता है भगवान् श्रीकृष्णके सर्वेश्वरत्वका। भगवान्की सर्वेश्वरत्वशक्ति जिसको सर्ववशीकारिताशक्ति भी कहते हैं, सबपर अबाध गतिसे अपना 'प्रभुत्व' कर सकती है। दूसरा भगवान्को ढँक रखनेका परदा होता है – 'धर्म'का। भगवान् ही 'लोकधर्म' 'वेदधर्म'की प्रतिष्ठाके आधार होते हैं। तीसरा परदा होता है 'यश'का। भगवान्की अनन्त ब्रह्माण्डव्यापिनी 'कीर्त्ति' ही यशरूप परदा है। चौथा परदा जिससे भगवानका ब्राह्म स्वरूप आच्छादित रहता है , वह है उनकी 'श्री'। सभी प्रकारकी सम्पत्तियोंकी जो मूल सत्तारूपा महान् शक्ति है उसे 'श्री' कहते हैं। पाँचवाँ परदा अनासक्तिरूप वैराग्यका है, और छठा परदा ज्ञानका है। सर्वकालकी समस्त वस्तुओंके साक्षात्कारको ज्ञान कहते हैं। सातवाँ परदा असम्भव मानी जानेवाली घटनाओंको सम्पन्न करनेकी शक्तिको कहा जाता है। इसीसे भगवान् 'कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथाकर्त्तुम् समर्थ' कहे जाते हैं। आठवाँ परदा भगवान्पर 'बल'का रहता है। अनायास ही सबको धारणकर रखनेकी शक्तिको 'बल' कहा जाता है। नौवाँ परदा जो भगवान्के ब्राह्म स्वरूपको ढके रखता है, वह है भगवान्के अनन्त वीर्यका। विश्व-ब्रह्माण्डके मात्र कारण होनेपर भी सहज विकारहीन रहना – निष्परिणाम रहना ही 'वीर्य' है। दसवाँ परदा जो भगवान्के विशुद्ध स्वरूपको आच्छादित किये रहता है, वह है उनके 'तेज'का। सबको सहज ही 'पराभूत' करनेका नाम तेज है। इन अनेकों परदोंसे ढके रहनेके कारण सबके सम्मुख भगवान्का ऐश्वर रूप तो सहज उजागर रहता है, किन्तु उनका ब्राह्मरूप सदैव छिपा ही रहता है।

इन पंक्तियोंमें इसी तत्वका प्रकाश है कि अब योगमाया महाशक्ति श्रीराधाके सम्मुख भगवान् श्रीकृष्णका ऐश्वर रूप तो छिपा लेती है और भगवान्के ब्राह्म स्वरूपके असमोर्ध्व माधुर्यका, प्रियतम रूपका रङ्गस्थल उद्घाटित कर देती है।

भगवान् श्रीकृष्णका जो ऐश्वर्यविरहित ब्राह्म स्वरूप है वह लीलामाधुरी, वेणुमाधुरी, रूपमाधुरी एवं प्रेममाधुरीसे युक्त है। इनमें उनकी प्रेममाधुरी सर्वोपरि है। शेष तीनों माधुरी भगवान्की सर्वविजयिनी प्रेममाधुरीकी सहायिकाओंके रूपमें ही कार्य करती हैं। उनकी वेणुमाधुरी गोपियोंके मनमें प्रेम (काम) जाग्रत् करती है, उनकी रूपमाधुरी प्रेमोद्दीपनका कार्य करती है एवं लीलामाधुरी प्रेमके परस्पर आदान-प्रदानमें हेतु होती है।

योगमाया लीलामहाशक्ति द्वारा प्रेम-रङ्गस्थलका उद्घाटन उन प्रेमोन्मादी भक्तोंके लिये ही होता है, जिनके प्रेम-ऋणसे भगवान् अनन्त कालतक सेवा करते रहनेपर भी उऋण नहीं हो सकते। फिर श्रीराधा तो भगवान्‌की ही आत्मस्वरूपा अन्तरङ्गा शक्ति हैं।

यहाँ यह ध्यान रखनेकी आवश्यकता है कि भगवान् श्रीकृष्ण एवं श्रीराधामुख्या गोपाङ्गनाओंके जो भी कर्म हैं, वे श्रीराधा एवं श्रीकृष्णके स्वरूपतत्वसे भिन्न अन्य कुछ नहीं हैं। वे कर्म सच्चिदानन्द-स्वरूपका चित्स्वरूप विलास हैं। जैसे समुद्रकी तरङ्गें समुद्रका विलास ही होती हैं, वैसे ही चिद्घनसिन्धु भगवान् और उनकी स्वरूपभूता अन्तरङ्ग शक्तियाँ – राधामुख्या गोपाङ्गनाओंकी सम्पूर्ण चेष्टा-क्रिया चित्स्वरूपके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। भगवान्‌की प्रकट लीलामें जितने भी लीला-सहचर हैं, चाहे वे परकीया महाभावलीलाके उपकरणरूपमें श्रीराधारानी एवं उनकी छोटी बहिन मञ्जुश्यामाके तथाकथित पति रायण एवं दुर्मद गोप ही क्यों न हों, श्रीराधाकी सास जटिला एवं उनकी ननद कुटिला ही क्यों न हों – ये सबके सब भगवान्‌के ही स्वरूप हैं। इनके द्वारा जो कुछ भी ऊपरसे दिखनेमें अच्छी-बुरी, अनुकूल-प्रतिकूल चेष्टा, स्फुरणाएँ होती हैं, वे सभी भगवान्‌की इच्छाशक्ति-समन्वित लीलाशक्तिके द्वारा ही सञ्चालित होती हैं। ये सब लीला रङ्गमञ्चके ही भिन्न-भिन्न पटाक्षेप हैं, अथवा पट-उद्घाटन हैं।

जैसे भगवान्‌की बाल लीलाएँ ठीक बालकोंकी तरह होती हैं, वैसे ही भगवान्‌की कैशोरलीला भी प्राकृत नर-नारीकी तरह ही होती है। अप्राकृतका यह प्राकृतानुकरण बड़ा मनोहर होता है। भगवान्‌की यही प्रेमाधीनता है। भगवान् अखिल ब्रह्माण्डपालक होकर भी अपने असीम ऐश्वर्यका तनिक भी प्रकाश नहीं करके साधारण परकीय जार पुरुष एवं नारीकी तरह लीला-व्यवहार करते हैं। वे कोई दंभ नही करते, सचमुच ही उन्हें परस्पर मिलनमें आनन्द होता है। आनन्दस्वरूपमें आनन्दकी यह कामना, पूर्णतया आनन्दसिन्धुका ही ज्वार है। देखनेमें यह रङ्गस्थल अवश्य प्राकृत-सा है, परन्तु है सब अप्राकृत।

इस रङ्गस्थलके उद्घाटनका ही सङ्केत पू.गुरुदेव द्वारा इस पंक्तिमें किया गया है।।६१३।।

बालायाः स्वप्नारम्भः ॥६१४॥

राधाकिशोरी स्वप्न देखना आरम्भ करती है।।।६१४।।

राधाकिशोरीके स्वप्नका आरंभ

श्रीराधाकिशोरी स्वप्न देखना प्रारंभ करती हैं – 'ब्रजेश्वर श्रीनन्दराय श्रीकृष्णचन्द्रको लिये खड़े हैं। वे गोपोंका गोचारण-निरीक्षण करने वनमें आये हैं। अचानक चारों ओर काली घटाएँ घिर आती हैं। तरु-लताएँ तीव्र वेगशाली वायु (झंझा) के प्रवाहमें काँप उठती हैं। कदम्ब एवं तमाल वृक्षोंके पत्र चतुर्दिक् छिन्न हो-होकर उड़ने लगते हैं। अन्ततः नन्दरायको श्रीकृष्णके साथ-साथ एक विशाल वटका आश्रय लेना पड़ता है। ब्रजराज नन्दरायको अपनी स्वयंकी उतनी चिन्ता नहीं है, जितनी श्रीकृष्णकी सुरक्षाकी चिन्ता है।

वैसे तो नन्दराय प्रायः अकेले ही वनमें आते हैं, किन्तु आज श्रीकृष्ण आग्रह कर बैठे, किसी प्रकार माने ही नहीं। इसीलिये वे उन्हें साथ ले आये हैं। यहाँ वनमें आनेपर गोरक्षकोंको तो उन्होंने दूसरे वनकी गायें एकत्र करके एक साथ रखनेके लिये भेज दिया है एवं स्वयं वे इस वनकी गायोंकी देखरेख करने लगे हैं। इतनेमें झंझावात प्रारंभ हो जाता है। बड़ी-बड़ी बूँदें बरसने लगती हैं। अब नन्दराय गायोंके मध्य ही नन्दनन्दनके साथ फँस जाते हैं। झंझावात तीव्र, तीव्रतर होने लगता है। निरुपाय ब्रजेश्वर एकान्त मनसे भगवान् नारायणका स्मरण करने लगते हैं।

सहसा मानो कोटि सूर्य एक साथ उदय हो उठे हों, इस प्रकार दिशाओंको अपनी कुन्दन-द्युतिसे दमकाती श्रीराधाकिशोरी उनके सम्मुख उपस्थित हो आती हैं। वह झंझावात तो न जाने कहाँ विलुप्त हो जाता है। नन्दराय आँखें खोलकर देखते हैं – सामने एक बालिका खड़ी है। नन्दराय बोल उठते हैं – 'हैं, हैं , बृषभानुदुलारी ! तू यहाँ इस समय

कैसे आयी, बेटी ?' किन्तु दूसरे ही क्षण उनके अन्तर्हृदयमें दिव्य ज्ञान उन्मिषित हो उठता है। मौन, हतप्रभ-से वे भानुनन्दिनीकी ओर निहारने लगते हैं।

"ओह ! कोटि चन्द्रोंकी द्युति मुखमण्डलपर झलमल-झलमल कर रही है। नीलवसन-भूषित अङ्ग हैं। अङ्गोंपर काञ्ची, कङ्कण, हार, अङ्गद, अङ्गुलीयक तथा दिव्यातिदिव्य रत्नचूड़ामणिसे किरणें झर रही हैं। भानुकुमारीके अङ्गोंकी प्रभासे तो समग्र वन ही मानो आलोकित हो उठा है।"

नन्दरायजीको अपने पुत्रके नामकरण-संस्कारके पूर्व महर्षि श्रीगर्गाचार्यजीने श्रीराधातत्वके सम्बन्धमें एवं श्रीवृषभानुपुत्रीकी महिमाके सम्बन्धमें जो-जो बातें बतलायी थीं, वे सभी बातें वे काल-प्रवाहमें भूल गये थे, क्योंकि नन्दरायका चित्त इतना अधिक वात्सल्याभिभूत है कि उनके सखा बृषभानुकी पुत्री राधा उन्हें अपनी पुत्रीवत् ही प्रतीत होती है एवं रह-रहकर गर्गोक्त महिमाको वात्सल्यावेशमें वे विस्मृत ही कर बैठते हैं। किन्तु आज उन सभीकी स्मृति जीवन्त हो उठी है। सबका रहस्य इस समय उनके सम्मुख प्रत्यक्ष हो उठा है। अञ्जलि बाँधकर ब्रजराज नन्दराय श्रीराधाको प्रणाम करते हैं एवं स्तुति करने लगते हैं – यह स्तुति भी वही है जो श्रीगर्गाचार्यजीने ही उनके सम्मुख श्रीराधाकिशोरीकी महिमामें की थी –

"देवि ! महायोगमयि ! महाप्रभामयि ! मायेश्वरि ! मेरे महान् सौभाग्यसे , न जाने किन अनन्त शुभ कर्मोंसे रचित सौभाग्यका फल प्रदान करने तुम मेरे दृष्टिपथमें उतर आयी हो। देवि ! ये तुम्हारे दिव्य अङ्ग अत्यन्त मोहन हैं। ओह! इन मधुर अङ्गोंसे माधुर्यका निर्झर झर रहा है। इस मधुरिमाका एक कण ही उस महाद्भुत रसानन्दसिन्धुका सृजन कर रहा है, जिसमें अनन्त भक्त अनन्त कालतक स्नान करते रहेंगे। देवि ! तुम्हारे इन निमीलित नेत्रोंसे भी सुखकी वर्षा हो रही है, वह सुख बरस रहा है – जो नित्य नवीन है। मैं अनुभव कर रहा हूँ, तुम्हारे अन्तर्देशमें सुखका समुद्र लहरा रहा है। उसीकी लहरें नेत्रोंपर, तुम्हारे इस प्रसन्न, सौम्य, मधुर मुखमण्डलपर नाच रही हैं।"

"देवि ! तुम्हीं ब्रह्म हो, सच्चिदानन्द ब्रह्मके सदंशमें स्थित सन्धिनी शक्तिकी चरम परिणति – विशुद्ध तत्व तुम्हीं हो। विशुद्ध सत्त्वमयी तुममें ही चिदंशकी संवित्शक्ति, संवित्की चरम परिणति – विद्यात्मिका पराशक्ति – ज्ञानशक्तिका भी निवास है। तुम्हीं आनन्दांशकी ह्लादिनीशक्ति – ह्लादिनीकी भी चरम परिणति – महाभावरूपिणी हो । आश्चर्यवैभवमंयि! तुम्हारी एक कलाका भी ज्ञान ब्रह्मा-रुद्रतकके लिये कठिन है, फिर योगीन्द्रगणके ध्यानपथमें तो तुम आ ही कैसे सकती हो ? मेरी बुद्धि तो यह कह रही है कि इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति – ये सभी तुम ईश्वरीके अंशमात्र हैं। मेरे इस पुत्र कृष्णकी आनन्दरूपिणीशक्ति तुम्हीं हो, तुम्हीं उसकी प्राणेश्वरी हो – इसमें कोई संशय नहीं । मेरा यह पुत्र कृष्ण तुम्हारे ही साथ निश्चय ही बृन्दावनमें क्रीड़ा करता है। देवि ! तुम्हारा मेरे सम्मुख प्रकट यह कौमार रूप ही इतना मङ्गलमय विश्वविमोहक है, तब वह किशोर रूप कितना विलक्षण होगा ?"

कहते-कहते नन्दरायका कण्ठ वात्सल्य स्नेहके आवेगसे रुद्ध होने लगता है। वे पुनः कुछ सँभलकर बोलने लगते हैं – "देवि ! मैं जान गया हूँ, मेरे सङ्ग तुम्हारे प्राणनाथ स्वयं पुरुषोत्तम श्रीहरि ही विराजित हैं। लो, देवि ! ले जाओ; अपने प्राणेश्वरको साथ ले जाओ ! किन्तु .....!" नन्द कुछ रुक-से जाते हैं। श्रीकृष्णके भीति-विजड़ित नयनोंकी ओर उनकी दृष्टि चली जाती है। क्षणभर बाद बोलते हैं–" किन्तु देवि ! यह बालक तो अन्ततः मेरा पुत्र ही है न ! इसे मुझे ही लौटा देना।" – नन्दराय श्रीकृष्णचन्द्रको श्रीराधाके कर कमलोंमें सौंप देते हैं। श्रीराधा श्रीकृष्णचन्द्रको लेकर गहन वनमें प्रविष्ट हो जाती हैं।

बृन्दावनकी भूमिपर गोलोकका दिव्य रासमण्डल प्रकट होता है। श्रीराधा नन्दपुत्रको लिये उसी मण्डपमें प्रवेश कर जाती हैं। सहसा नन्दपुत्रके स्थानपर गोलोकविहारी किशोरमूर्त्ति श्रीकृष्णचन्द्र प्रकट हो जाते हैं। अपने प्रियतमको देखकर बृषभानुनन्दिनीका हृदय भर आता है। प्रेमावेशसे वे विह्वल हो जाती हैं। श्रीकृष्णचन्द्र कहने लगते हैं – 'प्रिये

! गोलोककी बातें भूल गयी क्या ? मैं तो तुम्हें नहीं भूला ! तुम्हें भूल जाऊँ – यह मेरे लिये असंभव है। मेरे प्राणोंकी रानी ! तुमसे अधिक प्रिय मेरे पास कुछ हो, तब तो तुम्हें भूल पाऊँ ! तुम्हीं बताओ, प्राणोंसे अधिक प्यारी वस्तुको कोई कैसे भूल सकता है ? प्राणाधिके! मेरे जीवनकी समस्त साध एकमात्र तुम्हीं हो। किन्तु यह भी कहना नहीं बनता; क्योंकि वस्तुतः हम-तुम दो हैं ही नहीं; जो तुम हो, वही मैं हूँ और जो मैं हूँ वही तुम हो। यही ध्रुव सत्य है। हम दोनोंमें भेद है ही नहीं।'

'जिस प्रकार दूधमें धवलता है, अग्निमें दाहिकाशक्ति है, पृथ्वीमें गन्ध है, इसी प्रकार हम दोनोंका अविच्छिन्न सम्बन्ध है। सृष्टिके उस पार ही नहीं, सृष्टिके समय भी मेरी विश्वरचनाका उपादान बनकर तुम मेरे साथ ही रहती हो। तुम यदि नहीं रहो तो फिर मैं सृष्टिरचना करनेमें कभी भी समर्थ नहीं हो सकूँ। कुम्भकार मृत्तिकाके बिना एवं स्वर्णकार स्वर्णके बिना अपनी रचनाएँ कैसे कर सकता है ? तुम सृष्टिकी आधाररूपा हो और मैं उसका अच्युत बीजस्वरूप हूँ। अलग दीखनेपर भी शक्ति, बुद्धि, ज्ञान, तेज आदिकी दृष्टिसे हम-तुम सदा समान हैं। यह तत्वज्ञान नित्य रहनेपर भी मेरे प्राण तुम्हारे लिये नित्य व्याकुल रहते हैं। प्राणाधिके ! तुम्हें पाकर रससिन्धुमें निमग्न हो जाऊँ, इसमें तो कहना ही क्या है, तुम्हारा नाम भी मुझे कितना प्यारा है – यह भी कैसे बताऊँ ? सुनो, जिस समय कोई मात्र तुम्हारे नामाक्षरका आधा पूर्वभाग – 'रा' का ही उच्चारण कर लेता है, उस समय उसे सुनते ही मैं आनन्दमें भरकर अपने कोषकी बहुमूल्यतम सम्पत्ति मेरी भक्ति – मेरा प्रेम मैं उसे दे देता हूँ और 'धा' का जैसे ही वह उच्चारण पूरा करता है, मैं उसके पीछे-पीछे चल पड़ता हूँ। मेरे मनमें इसके उपरान्त भी सदैव सङ्कोच बना रहता है कि 'ओह ! मैं इसे इसका उचित पुरस्कार नहीं दे सका। इसने मेरी प्रियाका नामोच्चारण किया, मेरे कानोंमें तुम्हारे नामकी सुधाधारा बहायी और मैं इसे कुछ भी नहीं दे पाया। तुम्हारा नाम सुनाकर तो इसने मेरे प्राण ही शीतल, रसमय कर दिये हैं। यह विचारता हुआ मैं उसका कृतज्ञ एवं ऋणी अनुभव करने लगता हूँ।''

इस प्रकार रसिकशेखर राधानाथ अपनी प्रियाको अतीतकी स्मृति दिलाकर, अपने स्वरूपका साक्षात्कार कराते हुए अपनी प्रियाके नामकी सुधासे निजको सिक्तकर अपनी प्रियतमाका आनन्दवर्धन करने लगते हैं। राधा-भावसिन्धुमें भी उत्ताल तरङ्गें उठने लगती हैं।

इसी समय माला-कमण्डलु धारण किये जगद्विधाता चतुर्मुख ब्रह्मा आकाशसे नीचे उतर आते हैं, राधा-राधानाथके चरणोंमें वन्दना करते हैं। पुष्करतीर्थमें साठ हजार वर्षोंतक विधाताने श्रीकृष्णचन्द्रकी आराधना की थी, राधा-चरणारविन्द-दर्शनका वर प्राप्त किया था। उसी वरकी पूर्तिके लिये एवं राधानाथकी मनोहारिणी लीलामें एक छोटा-सा अभिनय करनेके लिये योगमाया-प्रेरित वे ठीक उपयुक्त समयपर आये हैं। अस्तु,

भक्तिनतमस्तक, पुलकिताङ्ग, साश्रुनेत्र हुए विधाता बहुत देरतक तो रासेश्वरकी स्तुति करते रहते हैं, फिर रासेश्वरीके समीप जाते हैं। अपने जटा-जालसे वे श्रीराधाके युगल चरणोंकी रेणुकणिका उतारते हैं। रेणुकणोंसे अपने सिरका अभिषेक करते हैं, पश्चात् कमण्डलु-जलसे चरण-प्रक्षालन करने लगते हैं। इतना सब करके अब श्रीकृष्णप्रियाका स्तवन प्रारंभ करते हैं। यह स्तवन न जाने कितने कालतक चलता है, इसका कौन निर्णय करे क्योंकि ब्रह्माका कालमान भी तो इस भूमण्डलके कालमानकी तुलनामें अनन्त गुना है। अन्ततः श्रीराधामुखसे युगल चरणोंमें अचला भक्तिके वरको प्राप्त करके ही वे विराम करते हैं।

श्रीराधा एवं राधानाथको प्रणामकर दोनोंके बीचमें विधाता अग्नि प्रज्वलित करते हैं। अग्निमें विधिवत् हवन करते हैं। इसके पश्चात् रासेश्वरी, रासेश्वर दोनो ही सात वार अग्नि-प्रदक्षिणा करते हैं, अग्निदेवको प्रणाम करते हैं। विधाताकी आज्ञा मानकर श्रीराधा एक बार पुनः हुताशनकी प्रदक्षिणा करके श्रीकृष्णचन्द्रको श्रीराधाका पाणिग्रहण करनेके लिये कहते हैं तथा श्रीकृष्णचन्द्र श्रीराधाके हस्तकमलको अपने हाथोंमें धारण कर लेते हैं। हस्तग्रहण होनेपर

श्रीकृष्णचन्द्र सात वैदिक मंत्रोंका उच्चारण करते हैं। इसके पश्चात् श्रीराधा अपना हस्त श्रीकृष्णके वक्षस्थलपर एवं श्रीकृष्ण अपना हस्तपद्म श्रीराधाके पृष्ठदेशपर रखते हैं तथा श्रीराधा मंत्रसमूहका पाठ करती हैं। आजानुलम्बित दिव्यातिदिव्य पारिजात-निर्मित कुसुममाला श्रीराधा श्रीकृष्णचन्द्रको पहनाती हैं एवं श्रीकृष्णचन्द्र सुन्दर मनोहर वनमाला श्रीराधाके गलेमें डालते हैं। यह हो जानेपर ब्रह्मा श्रीराधाको श्रीकृष्णचन्द्रके वाम पार्श्वमें विराजितकर, दोनोंको अञ्जलि बाँधनेकी प्रार्थनाकर, दोनोंके द्वारा पाँच वैदिक मंत्रोंका पाठ कराते हैं। अनन्तर श्रीराधा श्रीकृष्णचन्द्रको प्रणाम करती हैं। जैसे पिता विधिवत् कन्यादान करे, वैसे ही सम्पूर्ण विधि पूर्ण करके विधाता श्रीराधाको श्रीकृष्ण-कर-कमलोंमें समर्पित कर देते हैं। आकाशमें दुन्दुभि, पटह, मुरज आदि देववाद्योंकी ध्वनि निनादित होने लगती है। आनन्दमग्न देववृन्द पारिजात पुष्पोंकी वर्षा करते हैं, गन्धर्व मधुर गायन प्रारंभ कर देते हैं, अप्सराएँ मनोहर नृत्य करने लगती हैं। ब्रजगोपोंके, ब्रजसुन्दरियोंके सर्वथा अनजानमें ही इस प्रकार बृषभानुनन्दिनी एवं नन्दनन्दनकी विवाह-लीला सम्पन्न हो जाती है।

भाण्डीरवनके निकुञ्जोंमें रसकी तरंगिणी बह चलती है। रासेश्वरी श्रीराधा, रासेश्वर श्रीकृष्ण – दोनों ही आनन्दविभोर होकर उसमें बह चलते हैं। जब भावसन्धिका समय आता है, उस समय श्रीराधाको बाह्यज्ञान होता है। बृषभानुनन्दिनी देखती हैं – मेरी गोदमें नन्दरायने जिस पुत्रको सौपा था, वह तो है – शेष सब स्वप्नवत् स्मृतिमात्र हो गया है। श्रीकृष्णकी वह कैशोर मूर्त्ति तो अन्तर्धान हो जाती है और बालरूपमें वे श्रीराधाके पार्श्वमें ही स्थित हो जाते हैं।

श्रीराधा नन्दनन्दनको यशोदारानीके पास ले जाकर कहती हैं – 'मैया ! वनमें झंझावात आरंभ हो गया था। बाबा बोले – तू इसे घर लेजा, घर पहुँचा दे। बड़ी वर्षा हुई है। देखो, मेरी साड़ी सर्वथा भीग गयी है। मैं अब जाती हूँ। घरसे आये मुझे बहुत देर हो गयी है, मेरी मैया चिन्तित होंगी। श्रीकृष्णको सँभाल लो।'' यह कहकर बृषभानुनन्दिनी श्रीकृष्णको नन्दरानीको सौंप देती हैं और स्वयं बृषभानुपुरकी ओर चल पड़ती हैं। यशोदामैया देखती हैं – भानुनन्दिनीकी साड़ी सर्वथा आर्द्र है उन्हें प्रबल उत्कण्ठा घेर लेती है कि वे भानुनन्दिनीको दूसरी साड़ी पहना दें किन्तु मैयाका शरीर निश्चेष्ट-सा हो जाता है। '' ओह ! कीर्त्तिदाकी पुत्री इतनी सुन्दर है !'' मैया इस सौन्दर्यप्रतिमाकी ओर निहारती ही रह जाती है। और यह राधारूपा सौन्दर्यप्रतिमा देखते-ही-देखते वनके लताजालकी ओटमें ओझल हो जाती है।

श्रीराधारानीकी स्वप्नानुभूतिका प्रारंभ इस प्रकार होता है। यहाँ पुनः इस बातको स्पष्टतया समझ लेना है कि श्रीराधारानीका यह स्वप्न देखना प्राकृत जीवोंके काल्पनिक स्वप्न देखने-जैसा नहीं है। प्राकृत जीवोंका स्वप्न तो उनके मनकी छिपी वासनाओंके संस्कारोंका उभार है। श्रीराधारानी तो अखण्ड चिति, ज्ञानस्वरूपा भगवान्‌की स्वरूपाशक्ति हैं, अतः यह स्वप्नलीला रस-पोषणकी एक विशेष लीलानुभूति है, जो मात्र कल्पना नहीं, सत्य-का-सत्य है। श्रीराधाकी भावतरङ्ग, उनकी कल्पना, सङ्कल्प – सबकुछ सत्य-का-सत्य, परम अखण्ड नित्य सत्य है। वह पूर्ण रसमय है, नित्य है।।६१४।।

प्रियतमसम्बन्धविस्मृतिः ।।६१५।।

प्रियतम नीलसुन्दरसे जो उनका नित्य सम्बन्ध है, उसकी ही उन्हें विस्मृति हो जाती है।।६१५।।

द्विरागमनानुभूतिः ।।६१६।।

उनका द्विरागमन हो रहा है – ऐसी अनुभूति राधाकिशोरी करती हैं......।।६१६।।

जिज्ञासा

कृपया सुस्पष्ट करें, अखण्ड ज्ञानस्वरूपा भगवान्‌की सच्चिदानन्दमयी अखण्डस्वरूपा शक्ति होकर भी श्रीराधाका प्रियतम नीलसुन्दरसे जो नित्य सम्बन्ध है, वह विस्मृत कैसे हो जाता है ? विस्मरण तो तमोगुणके कारण होता है, श्रीराधा तो गुणातीत हैं, फिर उनमें विस्मरण क्यों होता है?

समाधान

श्रीराधारानीका यह विस्मरण जीवोंके स्वरूप-विस्मरण अथवा तमोगुण, जन्म-विस्मृति, विमूढ़ता, मूर्च्छा, प्रमाद जैसी स्थिति कदापि नहीं है। यह मुग्धता तो अखण्ड ज्ञानस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, श्रीराधारानी तथा गोपाङ्गनाओंमें रस-पोषणके लिये प्रकट होती है। रस-परिवर्त्तनके कालमें यह पुनः छिप जाती है और फिर यथावसर प्रकट हो जाती है। यही तो भगवान्‌की भगवत्ता है कि अनेकों ही परस्पर विरोधी भाव उनमें एक साथ, एक ही समयमें वर्त्तमान रहते हैं। एक साथ, एक समयमें ही उनमें अखण्ड सम्पूर्ण ज्ञान एवं रसमयी मुग्धता – दोनोंका प्रकाश होना ही उनकी कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथाकर्त्तुम् शक्तिमत्ता है। इसीलिये वे अजन्मा होकर भी जन्म लेते हैं, अविनाशीस्वरूप होकर अन्तर्धान हो जाते हैं, सम्पूर्ण भूत उनमें स्थित होते हुए भी वे बृन्दावनादि धाममें व्यक्त होते हैं, पूर्णतया गुणातीत होते हुए भी उनमें चौसठ गुण कहे जाते हैं, वे अकर्त्ता होकर भी गोदोहन, गृहमार्जन, पाकरचना, परिजन-सुश्रूषा आदि सभी कर्म करते हैं। वे नित्य जाग्रत् होकर भी '**निद्रयापगतस्मृतिः**' भी होते हैं। वे पूर्ण तृप्त होकर भी नयनोंके द्वारा रूप-सुधाका अतृप्त भावसे पान करते हैं। वे नित्यमुक्त, नित्य अजन्मा होकर भी कारागारमें जन्म लेते हैं। ये सभी भगवान्‌की अचिन्त्य परस्पर-विरुद्ध-गुण-धर्माश्रयता ही है। इस रसमयी मूढ़ताको इसी रूपमें मानना, समझना चाहिये।

प्रियतम नीलसुन्दरसे श्रीराधारानीका नित्य सम्बन्ध है। इसकी पूर्णतया विस्मृति हो जाना मात्र इसीलिये है कि अब योगमाया लीलामहाशक्तिको रस-प्रवाहका एक नया द्वार खोलना है। श्रीकृष्ण मेरे नित्य प्रियतम हैं और मैं उनकी नित्य प्राणेश्वरी हूँ – इस स्मृतिका भी रससिन्धुके अतल-तलमें जा छिपना इसी हेतुसे है।।६१६।।

अनुजया सहगमनम्।।६१७।।

अनुजाके साथ ही वे अपने गंतव्य स्थानकी ओर जा रही हैं..।।।६१७।।

दुर्मदस्य पथप्रदर्शनम्।।६१८।।

दुर्मद आगेसे आगे चलकर पथका प्रदर्शन करता जा रहा है।..।।६१८।।

पथि अननुभूतवैवाहिकवृत्तस्य चिन्तनम्।।६१९।।

पथमें किशोरीने अपने जिस विवाहके वृत्तको कभी अनुभव नहीं किया था, उसका वे चिन्तन करने लगती हैं। .... ।।।६१९।।

रविसेतुं प्राप्य तत्र स्थित्वा बालायाः दुर्मदं प्रति सविनयं आदेशदानम्।।६२०।।

रवि-सेतु आ जानेपर राधाकिशोरी वहाँ बैठ जाती हैं और अत्यन्त विनयकी मुद्रामें दुर्मदको कुछ आदेश देती हैं।........।।।६२०।।

दुर्मदस्य तथैवाचरणम्।।६२१।।

दुर्मद ज्यों-का-त्यों उस आज्ञाका पालन करता है......।।।६२१।।

रविमन्दिरदर्शनार्थं गमनं च।।६२२।।

राधाकिशोरी रविमन्दिरका दर्शन करनेके लिये उस ओर अग्रसर होती हैं।.......।।।६२२।।

बालायाः अनुजां प्रति स्वहृदयवेदनाकथनम्।।६२३।।

किशोरी अनुजाको अपने हृदयकी वेदना बतलाने लगती हैं।....।।६२३।।

अनुजायाः क्रन्दनम् ।।६२४।।

अनुजा फुत्कारपूर्वक रोने लग जाती है।....।।६२४।।

मिथो धैर्यप्रदानम् ।।६२५।।

राधाकिशोरी एवं उनकी अनुजा दोनों परस्पर धैर्य प्रदान करती हैं।....।।६२५।।

बालायाः ग्रामप्रवेशः ।।६२६।।

राधाकिशोरी ग्राममें प्रवेश करती हैं। ......।।६२६।।

गृहप्रवेशः ।।६२७।।

फिर उस विशाल गृहमें प्रवेश करती हैं।........।।६२७।।

देवीपूजनम् ।।६२८।।

किशोरीके द्वारा देवीकी अर्चना करवायी जाती है।....।।६२८।।

बालायाः वृद्धापदयोः पतनम् ।।६२९।।

राधाकिशोरी वृद्धाके चरणोंमें सिर रखकर प्रणाम करती हैं।...।।६२९।।

जिज्ञासा

दुर्मद गोप कौन है ? श्रीराधाका द्विरागमन तो नन्दभवनमें होना चाहिये। जब स्वप्नानुभूतिमें उनका विवाह भगवान् श्रीकृष्णके साथ जगद्विधाता ब्रह्माजीने पुरोहित बनकर सम्पन्न कराया है, फिर पंक्ति सं.६१९ में वे अपने किस विवाहका चिन्तन करने लगती हैं जो कभी सम्पन्न हुआ ही नहीं है? कृपया इन सभी दुरूह विषयोंपर प्रकाश डालें।

समाधान

प्रीति-साधनाके दो प्रधान मार्ग हैं। पहली विधिमार्गी प्रीतिसाधना एवं दूसरी रागमार्गी प्रीतिसाधना। विधिमार्गी प्रीतिसाधनामें 'स्वकीया' प्रीति है। श्रीरुक्मिणीजी, श्रीसीताजी आदि महाभागा देवियाँ इस विधिमार्गी प्रीतिसाधनाकी आदर्श हैं।

श्रीराधा अपने प्रियतम श्यामसुन्दरकी मधुर रागमयी प्रीति-आराधना करती हैं। रागमार्गमें ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीराधाके प्रियतम हैं, पति नहीं हैं। 'राग'का अर्थ ही है कि इस प्रेमसाधनामें आत्यन्तिक प्रेममयी तृष्णाका अभ्युदय हो। जहाँ स्वकीया प्रीति है, पति-पत्नीका निर्बाध वैध मिलन है, पति पूर्णतया पत्नीका निर्वोढा – निर्वाहकर्त्ता है, वहाँ आत्यन्तिक प्रेममयी तृष्णाका आस्वादन संभव ही नहीं है। विधिमार्गका जहाँ ऐश्वर्यमयं दिव्यधाम वैकुण्ठ, अयोध्या, द्वारका आदि राजपुरियोंके साथ सम्बन्ध है, वहाँ रागमार्गका सम्बन्ध ब्रजके साथ है। रागमार्गी मधुरभाव उन्हींमें प्रस्फुटित होता है जो वैराग्यकी चरम सीमाका भी अतिक्रमण कर जाते हैं। पत्नी अपने पतिसे सम्पूर्ण इन्द्रियभोगोंका आदान-प्रदान करती है, किन्तु रागी प्रियतमाको तो भोगसुखका अवसर ही नहीं है। वहाँ तो मोक्षसुखतकका भी पूर्णतया परित्याग है। अपने लिये जहाँ कुछ रहता ही नहीं, न पितृगृह है – न पतिगृह है, जहाँ न लोकमें यश है, न सतीत्वका धर्म-महत्व है, जहाँ सुख एवं दुख दोनों ही मात्र प्रियतम श्रीकृष्णके सुखके लिये स्वीकारे जाते हैं, जहाँ अहंकी पूर्ण भर्त्सना ही नहीं, अहंकी सर्वतोभावेन सर्वथा विस्मृति है, उसकी पूर्ण निवृत्ति है – यह विलक्षण मधुरतम भावमयी प्रीति श्रीराधामुख्या ब्रजगोपियोंमें ही पूर्ण एवं सदैव सुप्रतिष्ठित रहती है।

इस प्रीतिका प्रवाह ब्रह्मनदकी धाराके समान प्रखर है, जिसे कोई अवरोध रोक ही नहीं सकता। यद्यपि गोपियाँ भगवान्‌की इच्छासे, वंशीध्वनिके द्वारा उन्हींके प्रेमाह्वानपर, उनके द्वारा निमंत्रित की जानेपर उनके पास आती हैं, फिर भी भगवान् स्वयं उनको पातिव्रतका उपदेश देने लगते हैं। वे इन्हें सनातन धर्मान्तर्गत पतियोंकी सेवाका पाठ पढाते हैं। वे उनकी भर्त्सना करके कहते हैं कि प्रेममें शारीरिक सन्निधि आवश्यक नहीं है। वे उन्हें सनातन सदाचारका पालन करानेको वापस उनके घरोंमें लौट जानेतककी आज्ञा दे देते हैं। किन्तु जब भगवान् परीक्षा करके देख लेते हैं कि गोपियोंके प्रेमकी साधारण जगत्‌के किसी प्राणीसे तिलमात्र भी तुलना नहीं की जा सकती, उनके मन-प्राण-इन्द्रियाँ एवं स्थूल शरीर भी उनके प्राणसारसर्वस्व प्रियतमके प्रेममें एकतान हैं, उनका प्रेमोन्माद अलौकिक है, तब उन्हें बरबस स्वीकार करना पड़ता है कि यदि वे स्वयं उनकी अनन्तकालतक सेवा करके प्रेम-ऋणको चुकाना चाहें तो चुका नहीं सकते। उनका प्रेम अत्यन्त उज्ज्वल और समृद्ध है। श्रीराधामुख्या गोपियोंके प्रेमकी ऐसी उज्ज्वल छटा है कि अनन्तकालतक श्रीकृष्णके बाहुओंके परिरंभणमें बँधी श्रीराधा भी पूर्णतया विस्मृत कर जाती हैं कि उन्होंने कभी श्रीकृष्णको देखा भी है, उनका नाम भी सुना है। यह विस्मृति इस सीमातक पहुँच जाती है कि उन्हें गोप रायाणसे अपना एवं अपनी बहिन मञ्जश्यामाका उसके सगे भ्राता दुर्मद गोपसे विवाहतककी स्फूर्ति हो उठती है।

प्राकृत लोकमें अविद्याशक्ति मायाके कारण जैसे जीवको अपने स्वरूप – परात्पर परब्रह्मका विस्मरण तो होता ही है, साथ ही जैसे विपर्यय ज्ञान भी हो उठता है कि मैं अमुक नाम-रूपवाला मलिन मल-मूत्र-पुरीषका आगार देह हूँ, ठीक इसी तरह अप्राकृत लोककी इस प्रीतिलीलामें अघटन-घटना-पटीयसी लीलामहाशक्ति योगमाया विलक्षण प्रेमोत्कर्षकी रसभूमिका निर्माण करनेके लिये श्रीराधामुख्या गोपाङ्गनाओंमें अपने नित्य प्राणपतिसे अपने प्रेमसम्बन्धको तो विस्मृत करवा ही देती है, साथ ही उन्हें यह विपर्यय ज्ञान भी हो जाता है कि उनका विवाह-सम्बन्ध यावट ग्रामके राजा रायाण गोपसे हो चुका है। यद्यपि इस विवाह एवं पाणिग्रहण-संस्कारकी स्मृति करते समय उन्हें यही बोध होता है कि उनका पाणिग्रहण तो स्वयं ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णने किया था, उन सभीने वरमाला भी यशोदानन्दन श्रीकृष्णकी ही ग्रीवामें डाली थी, फिर यह रायाण एवं दुर्मद गोप कहाँसे टपक पड़े ? उन्हें तो इन ब्रजगोपोंके मुखदर्शनका भी कहीं कोई संस्कार नहीं है, फिर बिदा कराने बृषभानुपुरमें यह दुर्मद गोप कैसे चला आया है और उनकी माता-पिताने इस दुर्मद गोपके साथ उनकी द्विरागमन-विदाई कैसे करादी है , ये प्रश्न इन सभी गोपाङ्गनाओंके मनको मथित कर डालते हैं, परन्तु उन्हें इस विस्मयजनक घटित विधानको गरलके घूँटके समान पीना पड़ता है।

यद्यपि श्रीराधाके तथाकथित पति श्रीरायाण गोप एवं उनकी छोटी बहिन मञ्जश्यामाका पति दुर्मद एवं इनकी सखी अन्य ब्रजाङ्गनाओंके सभी पति ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रके आत्मप्रकाश गोप ही होते हैं। सृष्टिके विधाता चतुरानन ब्रह्माने जब गोवत्सों एवं गोपशिशुओंको मायामुग्धकर अपहृत कर लिया था, उसी समय पूरे एक वर्षतक मायामुग्ध अपहृत हुए गोपशिशुओंकी जितनी संख्या थी, उतनी ही संख्यामें श्रीकृष्ण ही ये गोवत्स एवं गोपशिशु बन गये थे। इस नवीन प्रकाशमें शिशुओंके कलेवरका परिमाण, उनके कर-चरण आदिकी परिमिति, उनकी आकृति, उनका स्वभाव, आयु, चलनेकी भंगिमा, अन्य चेष्टाएँ, कण्ठस्वर, स्वरूप, चिह्न, दोष-गुण, रुचि-अरुचि सबमें ऐसी एकरूपता थी, जिसकी संतुलना विश्वमें कहीं संभव ही नहीं है। ये सभी कलिन्दकन्याके उसी शुभ्र पुलिनपंर वैसे-के-वैसे प्रकट हो गये थे, जैसे पहले थे। सचमुच ही श्रीकृष्णने **'सर्वं खल्विदं कृष्ण'** इस वाक्यका वास्तविक अर्थ प्रकाशित किया था। इस वाक्यमें किसीको तनिक भी भ्रम, संशय न रह जाय इस उद्देश्यसे इसका अर्थ उस दिवस मूर्त्तिमान् ही हो गया था। अतः रायाण, दुर्मद एवं अन्य सभी गोपोंके रूपमें जिनका विवाह इस अवधिके भीतर राधामुख्या गोपाङ्गनाओंसे घटित हुआ था, वस्तुतः ब्रजेन्द्रकुलचन्द्र ही थे। इस वर्षभरकी अवधिमें मूल रूपमें वे स्वयं ही अवस्थित रहकर अपने ही गोपशिशु बने रूपोंके द्वारा स्व-स्वरूप गोवत्सोंका आह्वान करते, स्वयं ही यावट आदि ग्रामोंमें लौटते थे। अमुक चतुष्पथसे श्रीदामके गोवत्स

बृषभानुपुरकी गोशालाओंके लिये अलग हो जाते हैं, एवं अमुक सखाके गोवत्स अमुक ग्रामके लिये अमुक पथसे पृथक् होंगे आदि समस्त नियमोंका सदाकी भाँति ठीक यथायोग्य ही प्रतिदिवस पालन होता था। अतः वात्सल्यवती जटिला आदि माताओंने अपने-अपने द्वारदेशमें तोरणद्वारके समीप आकर प्रतिदिनके नियमानुसार ही अपने पुत्रोंका स्वागत भी वैसे ही किया था। इनकी माताओंमेसे यह भेद किसीने भी नहीं जाना था कि वस्तुतः रायाण एवं दुर्मद गोपोंके कलेवर तो ब्रह्माजी द्वारा मायामोहित हुए किसी गिरि-गुहामें मूर्च्छित निबद्ध पड़े हैं और उनका रूप रखकर स्वयं नन्दनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र ही आज इन गोपियोंके अङ्कमें आलिङ्गनबद्ध हैं। इसीलिये इस अवधिमें जो श्रीराधा एवं गोपियोंकी विवाहलीला भी सम्पन्न हुई थी, वह भी श्रीकृष्णके साथ ही हुई थी। अवश्य ही अन्य सभी ब्रजगोपियोंकी दृष्टिमें तो यह विवाह रायाण, दुर्मद आदि गोपबालकोंके साथ ही घटित हुआ था, किन्तु श्रीकृष्णकी माया राधामुख्या गोपाङ्गनाओंके सम्मुख ठहर नहीं पायी थी एवं पूर्णतया निरस्त हो गयी थी। अतः इनको तो विवाहके समय यही अनुभूति हुई थी कि ब्रजेन्द्रकुलचन्द्र उनके प्राणप्रियतम श्रीकृष्ण ही उनसे हथलेवा कर रहे हैं, उनके कण्ठमें वरमाला डाल रहे हैं एवं पुरोहितगण श्रीकृष्णके साथ ही उनका वैदिक रीतिसे विवाह सम्पन्न करा रहे हैं। यदि राधामुख्या गोपाङ्गनाओंके सम्मुख तनिक भी दूसरा मायादृश्य आया होता तो भले ही उनके देह-कलेवरोंसे उनके प्राण-पखेरू उड़ जाते, वे कदापि श्रीकृष्णके अतिरिक्त अन्य किसीको भी अपना हस्त-समर्पण नहीं करतीं।

इसीलिये पंक्ति सं.६१९में उल्लेख हुआ है कि श्रीराधा अति आश्चर्य रूपमें चिन्तन कर रही हैं कि उनको उनका कथित देवर दुर्मद कहाँ ले जा रहा है, जबकि उनका विवाह तो श्रीकृष्णके साथ ही हुआ है। इसके अग्रज रायाण गोपको तो उन्होंने कभी देखा तक नहीं, फिर यह किससे किसके विवाहका उल्लेखकर उन्हें अपने मातृ-पितृगृहसे विदा करा लाया है, और उनके माता-पिताने भी इस पुरुषके साथ उन दीनों बहिनोंकी बिदाई कैसे सम्पन्न कर दी है। पंक्ति सं. ६१९ में श्रीराधाकी चिन्ताका यही हेतु है। वे विधाताके द्वारा श्रीकृष्णके साथ घटित विवाह और पूर्व शतकोंमें वर्णित श्रीकृष्णदर्शन, प्रतिमाको माल्यसमर्पण आदि तथ्योंको तो सर्वांशमें विस्मृत ही कर गयी हैं।

इधर रविसेतुके आनेतक तो वे फिर भी असमञ्जसमें रहती हैं कि कहीं दुर्मद उन्हें नन्दभवनकी ओर ही ले जावे, क्योंकि बृषभानुपुरसे रविसेतुतक तो नन्दग्रामकी ओर जानेका भी यही मार्ग है। रविसेतुसे ही एक मार्ग यावट ग्रामकी ओर जाता है और एक मार्ग नन्दग्रामकी ओर। रविसेतुसे जब दुर्मद नन्दग्रामकी ओर जानेवाला मार्ग छोड़कर अपने गृह यावट ग्रामकी ओर श्रीराधाकी पालकीको ले चलनेका आदेश पालकी-संवाहकोंको देता है उस समय श्रीराधा दुर्मदसे विनयकी मुद्रामें तनिक रुकनेकी प्रार्थना करती हैं।

गोप दुर्मद उनकी आज्ञाका पालन करता हुआ पालकी रुकवाता है। श्रीाधा रविमन्दिर दर्शनार्थ जाती हैं। उनकी छोटी बहिन मञ्जश्यामा भी उनके साथ ही रविमन्दिर जाती हैं। वे एकान्त पूजाके बहाने दुर्मदको पालकियोंके पास ही खड़े रहनेको कहती हैं। रविमन्दिरमें एकान्त पाकर किशोरी अपनी छोटी बहिनके सम्मुख अपने हृदयकी वेदना कह बैठती हैं। श्रीराधाकी वेदना यही है कि सौभाग्यरात्रिके कालमें यदि रायाण गोपने उनको संस्पर्श किया तो वे तत्क्षण ही यमुनामें कूदकर अथवा अंगूठीमें विजड़ित वज्रमणिको निगलकर प्राणत्याग कर देंगी।

राधानुजा मञ्जुश्यामा भी उनका अनुगमन करनेका ही अपना निश्चय उन्हें सुनाती है और दोनों बहनें प्राणत्यागका सङ्कल्प कर लेती हैं। अपनी बहिनकी इस आसन्न विपत्ति एवं विछोहके कारण छोटी बहिन फूत्कारकर रो उठती है। श्रीराधा मञ्जुश्यामाको आश्वस्त करती है कि मृत्युके पश्चात् उन दोनोंका पुनः कलेवर धारणकर मिलन तत्क्षण ही हो जायगा क्योंकि जबतक ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ब्रजमें हैं, वह (राधा) उनकी सेवार्थ ब्रजमें ही शीघ्र जन्म ग्रहण कर लेगी एवं छोटी बहिनकी जो उसके प्रति अनन्य प्रीति है, वह प्रीति दोनों बहनोंको पुनः भगिनीके रूपमें ही जन्म लेनेमें हेतु बनेगी । इस प्रकार परस्पर दोनों बहिनें रविमन्दिरमें एकान्त पाकर अपना हृदय हलका कर लेती हैं।

दुर्मदके साथ यावट ग्राममें श्रीराधा एवं मञ्जुश्यामाकी पालकियोंका प्रवेश होता है। फिर उन्हें ग्रामवासी यावटके राजमहलमें ले जाते हैं। उस विशाल राजभवनमें भी भगवती महादेवीका उपासना-मन्दिर है। उन्हें प्रणाम कराने वहाँ ले जाया जाता है। ब्राह्मण पुरोहित नववधुओंसे महादेवीकी अर्चना सम्पन्न कराते हैं। अर्चनाके पश्चात् ब्राह्मण पुरोहितोंके आदेशानुसार गुरुजनोंके रूपमें वृद्धा सास जटिलाके चरणोंमें श्रीराधा एवं मञ्जुश्यामा दोनों ही प्रणिपात करती हैं। वृद्धा सास उन्हें अखण्ड सौभाग्यवती होने एवं यथाशीघ्र पौत्रमुख दर्शन करानेका शुभाशीर्वाद प्रदान करती है।।६२९।।

मूर्च्छा ।।६३०।।

अचानक राधाकिशोरीको गहरी मूर्च्छा आ जाती है।।।६३०।।

जिज्ञासा

श्रीराधारानी यावटके राजमहलमें जब सकुशल पहुँच जाती है, उनके द्वारा पथके मध्यमें स्थित रविमन्दिरका पूजन सम्पन्न हो जाता है, यहाँ राजमहलमें उनका मङ्गल सुस्वागत हो जाता है, उनके द्वारा कुलदेवीका पूजन होकर गुरुजन-वन्दना एवं ''पुत्रवती भव'' के आशीर्वादकी प्राप्ति हो जाती है, फिर अचानक ही उनमें यह 'मूर्च्छा' भावकी उत्पत्ति क्यों होती है ? कृपया इसे स्पष्ट करें।

समाधान

यावटके राजमहलमें जैसे ही श्रीराधाका मुखदर्शन उनकी सास जटिला करती है, श्रीराधाके मुखसौन्दर्यसे वह अभिभूत हो उठती है। मातृवर्गीया सभी स्त्रियाँ आश्चर्यसे विस्फारित-नेत्र हुई मन-ही-मन कह उठती हैं –'' हैं, हैं, यह कोई किशोरी है ? इसके तो रोम-रोमसे सौन्दर्यका निर्झर झर रहा है। कैसी नयन-सुखद सुकुमारी है यह ? इसकी अङ्गकान्तिमें तो विद्युल्लता मानो मूर्त्तिमान् हुई कूट-कूटकर भरी है। ओह ! इसके अङ्गोंकी कुन्दनद्युतिसे तो प्रासादका अणु-अणु प्रतिभासित हो रहा है। इसकी छोटी बहिन मञ्जुश्यामाने तो सभी प्रासादको, प्राङ्गणको, तोरणसे लेकर पीछेके उपवनतकको अपनी श्याम-मनोहर द्युतिसे प्रभासित कर दिया है। अहा ! सारे प्रासादमें ही मानो सर्वत्र आनन्दसुधाका ही प्रसार हो उठा है। धन्य भाग्य हैं मेरे दोनों पुत्रोंके और हमारे कुलके, जो ऐसी सौन्दर्यशालिनी, सौभाग्यवती, शील एवं सदाचारकी मूर्त्तियाँ – वधुएँ हमें मिलीं। ओह ! इनके तो रोम-रोमसे आनन्दनिर्झरका ही प्रस्फोट हो रहा है। मृदु हास्य-समन्वित कितने सुन्दर इन दोनोंके मुख-पद्म हैं। कमल-कोशसे भी अधिक सुकोमल इन दोनोंके नील-पीत चरण हैं।'' – यावट ग्रामकी मातृवर्गीया एवं अन्य सभी स्त्रियाँ जो श्रीराधारानीके स्वागतमें राजमहलमें एकत्र हुई थीं – इस सौन्दर्यदर्शनसे उन सभीके नयन विथकित हो रहे थे। राधारानीकी सास जटिलाके कामनापूरित हृत्तलमें तो ऐसी सुन्दरी वधू पाकर परम सुन्दर एवं मङ्गलकारी पौत्र-प्राप्तिकी कामना हिलोरें लेने लगती हैं। निमित्त पाकर विद्युत् रेखा-सी कामनाकी ज्योति वृद्धा जटिला एवं उपस्थित मातृवर्गीया स्त्रियोंके हृदयको प्रकाशित कर जाती है – '' इसी वर्ष कहीं मेरी दोनों बहुएँ मेरे प्रासादके प्राङ्गणमें किलकारी भरते, क्रीड़ा करते दो पौत्रोंका सुन्दर मुख-दर्शन करादें'' – जटिला कामनाभिभूत हुई भगवती महादेवीसे वर माँगने तो लगी ही, साथ ही उसके मुखसे श्रीराधा एवं मञ्जुश्यामाके प्रति शीघ्रातिशीघ्र पुत्रवती होनेके आशीर्वादोंकी झड़ी लग जाती है। इधर सास जटिलाके मुखसे आशीर्वादोंकी, कामना-वाक्योंकी झड़ी लग रही होती है, उधर श्रीराधाका हृदय चिन्तासे व्याकुल हो उठता है। लोकलज्जावश वे अपने नेत्रोंमें संचित अश्रु भी प्रवाहित नहीं कर पा रही हैं। अस्फुट कण्ठसे भी वे अपनी मनोव्यथा भला किसे सुनातीं ? उनके तो रोमको भी यदि उनके प्राण-प्रियतम श्रीकृष्णसे इतर कोई संस्पर्श कर ले, इस कल्पना मात्रसे प्राणत्यागसे भी महान् कष्टके भाव उनके हृत्पटलको आच्छादित कर रहे होते हैं।

श्रीराधा एवं उनकी छोटी बहिन मञ्जुश्यामा दोनों ही विशुद्ध प्रीतिकी मूर्त्तिमती स्वरूपा हैं। उनमें देहेन्द्रिय भोगकी

तो लेशात्मक भावना ही कभी उदय नहीं हुई है। सास जटिला तो उनको मानसिक विकृतिकी ओर धकेल रही है। वह स्वार्थ-साधनका मात्र यंत्र ही उन्हें समझ रही है। वे अनेकों बार नन्दभवनमें यशोदा मैयाके यहाँ भी गयी हैं, उनके चरणस्पर्श भी किये हैं, परन्तु यशोदा एवं अन्य किसी भी नन्दग्रामकी गोपीने उन्हें भोगप्रधान पाशविक इन्द्रियसुखमें प्रवृत्त करनेकी रुचि तो कभी नहीं जताई है। सदैव उनसे इन्द्रिय-विकाररहित पवित्र प्रेम ही उन्हें मिला है। आज वे दोनों न जाने किस मोह-जञ्जालमें फँस गयी हैं। यह कैसा प्रारब्धभोग उनके सम्मुख समुपस्थित हो गया है। यह सब विचार करतीं श्रीराधा दुःख, शोक, भयके अनन्त भारसे आक्रान्त हो उठती हैं। उनके प्राणं इस वातावरणसे बाहरकी ओर किसी विशुद्ध प्रीतिकी स्वच्छ वायु ग्रहण करनेको भाग छूटनेको व्याकुल हो उठते हैं। वियोग-वेदना, अपमान-अत्याचार, भर्त्सना-तिरस्कार – ये सब तो फिर भी सहे जा सकते हैं, किन्तु इन्द्रियभोगोंकी धधकती आग – श्रीराधाका सुकोमलतम, सहज प्रेमानन्दमें उत्फुल्ल हृदय भला कैसे सह सकता है ? इस कल्पना मात्रसे वे मूर्च्छित होकर तत्क्षण ही वहीं संज्ञाशून्य होकर ढुलक जाती हैं। यही उनकी मूर्च्छाका हेतु है।।६३०।।

वृद्धाकृतविविधशीतलोपचारैः संज्ञालाभः ।।६३१।।

वृद्धाके द्वारा विविध भाँतिके शीतल उपचारोंके माध्यमसे राधाकिशोरीको बाह्य ज्ञान होता है।।।६३१।।

तात्विक विवेचन-विस्तार

अपनी पुत्रवधू परम सुकुमारी श्रीराधाके सहसा मूर्च्छित हो जानेपर वृद्धा सास जटिलामें वात्सल्य स्नेहकी ऐसी प्रखर धारा उमड़ती है कि उसका हृदय ही विगलित हो उठता है। श्रीराधारानीको सास जटिला प्राणोंकी अतिशय ललक-सहित अङ्कमें धारण कर लेती है। स्वाभाविक वात्सल्यवश अपने हाथोंसे वे श्रीराधाके अङ्गोंको सहलाने लगती हैं। श्रीराधाके अङ्गोंको इतनी लम्बी यात्रा करनेके कारण अतिशय श्रान्त मानकर वृद्धा जटिला अनेक शीतल उपचार करने लगती हैं। सभी वात्सल्यवती वृद्धा गोपाङ्गनाओंके स्नेहकी प्रखर एवं निर्मल धारा थोड़ेसे ही उपचारमें श्रीराधाकी मूर्च्छाको भङ्ग कर देती है। वे शनैः-शनैः नेत्र उन्मीलित करती हैं।।६३१।।

आ पहुँची वही पर्णकुटियावाली देवी सहसा, प्रियतम!
बाला पहलेकी भाँति नहीं उनको पहचान सकी, प्रियतम!
केवल इतना-सा ही अनुभव उसको उस समय हुआ, प्रियतम!
मेरी रक्षा करनेवाली जगमें अब ये ही हैं, प्रियतम।।६३२।।

अचानक इसी समय वह पर्णकुटीरवासिनी देवी आ पहुँचती हैं। राधाकिशोरी पहलेकी भाँति उनको पहचान भी न सकीं। उस समय उनको केवल इतना-सा ही अनुभव हुआ – जगतमें मेरी रक्षा करनेवाली अब एकमात्र यह पर्णकुटीरवासिनी अम्बा ही हैं।।।६३२।।

तात्विक विवेचन-विस्तार

अनन्तैश्वर्यमयी अघटन-घटना-पटीयसी भगवती महादेवी क्या स्वयं नहीं देख रही थीं अपनी ही स्वरूपभूता ह्लादिनी महाभावरूपा श्रीराधारानीकी परम दयनीय दशा ? वे क्या नहीं सुन रही थीं उनका आन्तरिक मूक आत्यन्तिक करुण क्रन्दन ? नहीं, नहीं, वे हेतुरहित करुणामयी सबकुछ देख-सुन रही थीं। उनका ही निर्मित तो यह रङ्गस्थल था। ह्लादिनी महाभावमयी श्रीराधाके भाव-हृत्सिन्धु – उनके महाभावोदधिकी ही तो यह मन्थन लीला है। कामदेवके पाँच अग्निबाणोंसे नित्य जलते हुए असंख्य प्राणियोंके लिये महौषधिरूपा महाभाव-प्रेमसिन्धुकी कुछ बूँदें, महाभाव-उदधिके मन्थनसे उत्पन्न प्रेमामृतकी कुछ कणिकाएँ प्रपञ्चके तटपर बिखर जावेंगी, अनन्तकालतक जो भी सौभाग्यशाली प्राणी

इसके सम्पर्कमें आ सकेंगे, उनकी त्रिताप-ज्वाला सदाके लिये प्रशमित होगी – इसी अभिसन्धिसे – साथ ही रसपोषण एवं रस संवर्धनके लिये ही भगवती योगमायाने इस विषम रङ्गस्थलका निर्माण किया था। श्रीराधारानीकी मूर्च्छाने भगवती लीलामहाशक्तिको सङ्केत दे दिया था कि अब अधिक समयतक यह रङ्गस्थल यदि इसी रूपमें रहा तो श्रीराधारानी एवं मञ्जुश्यामाके देह-कलेवर भस्म हो सकते हैं – और तब समग्र नाटिकाका ही इसी क्षण पटाक्षेप हो जायगा। जैसे ही श्रीराधारानीकी इस कलेवरसे मुक्ति हुई कि फिर उनकी कायव्यूहरूपा एक भी गोपी नहीं बचेगी और ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णको भी उनसे निरावरण मिलनेके लिये इस पृथ्वीमण्डलपर होनेवाली लीलाका अन्तिम अध्याय लिखकर तुरन्त ही इन गोपाङ्गनाओंका सान्निध्य पानेके लिये गोलोकधाम ही प्रस्थान करना पड़ेगा। उनके लिये इसके सिवा अन्य कोई विकल्प बचेगा ही नहीं – यह लीलामहाशक्तिने तत्क्षण ही अनुमान कर लिया था। अतः तत्क्षण ही अनन्त करुणामयी लीलामहाशक्ति स्वयं तपस्विनी पौर्णमासीका शरीर धारणकर श्रीराधाकी सम्पूर्ण आर्त्ति हर लेनेके उद्देश्यसे दौड़ पड़ती हैं। वे सर्वसौहार्दमयी परमस्नेहमयी जननी महातपस्विनी त्रिकालज्ञा पौर्णमासीदेवीके रूपमें श्रीराधारानीको अपनी वात्सल्यभरी छाया देने प्रकट हो जाती हैं।

श्रीराधा तो भूतकालकी अपनी सभी पूर्वस्मृति भुला बैठी हैं, अतः भगवती पौर्णमासीदेवीसे भी अपने पूर्वमिलनकी बात वे विस्मृत कर चुकी हैं। पूर्वकी स्मृतिसे तो उन्हें वे पहचान ही नहीं पाती हैं। किन्तु पूर्व संस्कारोंसे महादेवीको इस रूपमें प्रकट देखकर उनकी अन्तश्चेतनामें यह बात दृढ़तापूर्वक स्थापित हो जाती है कि इस विषम अवस्थामें, इस कालमें उनकी इस संसारमें रक्षा करनेवाली एकमात्र ये भगवती पौर्णमासीदेवी ही हैं।।६३२।।

देवीकूटोक्तिश्रवणेन बालाया: परित्राणाशा ॥६३३॥

देवीके गूढ़ वचनोंको सुनकर राधाकिशोरीको अपने परित्राणकी आशा हो जाती है।।।६३३।।

देव्याः सूर्यव्रतोपदेशः ॥६३४॥

कुटीरवासिनी देवी राधाकिशोरीको सूर्यव्रतके लिये आदेश देती है...।।।६३४।।

द्वादशवर्षीयनियमनिर्धारणम् ॥६३५॥

देवीके द्वारा ही द्वादशवर्षीय उस व्रतके लिये नियम निर्धारित कर दिये जाते हैं।...... ।।।६३५।।

वृद्धायाः सहर्ष अनुमोदनम् ॥६३६॥

वृद्धा अत्यन्त हर्षके साथ देवीकी प्रत्येक उक्तिका अनुमोदन करती चली जाती हैं।।।६३६।।

बालाका, उसकी अनुजाका दुस्सह परिताप मिटा, प्रियतम !
पाकर अभीष्ट देवी-पदमें दोनों ही लोट पड़ीं, प्रियतम !
वे दयामयी लेकर उनको, चिपकाकर छाती से, प्रियतम !
रोने लग गयीं, स्नेह उरकी सीमा में रह न सका, प्रियतम ॥६३७॥

राधाकिशोरीका एवं उनकी अनुजाका दुस्सह परिताप मिट जाता है; अपना अभीष्ट पाकर दोनों ही कुटीरवासिनी देवीके पदमें लोट पड़ती हैं।.. उन दयामयी अम्बाने उन दोनोंको अपनी छातीसे चिपटा लिया। अम्बाकी आँखोंसे झर-झर अश्रु बहने लग गये।स्नेह अन्तस्तलकी सीमामें बद्ध नहीं रह सका।।।६३७।।

बालायाः सूर्यार्चनारम्भः ॥६३८॥

अस्तु, राधाकिशोरीके द्वारा सूर्यकी अर्चना आरम्भ होती है।...।।६३८।।

तात्विक विवेचन-विस्तार

भगवती पौर्णमासी आते ही श्रीराधाके आकुल प्राणोंमें यत्किंचित् सान्त्वनाका सञ्चार करनेके उद्देश्यसे कूटोक्तिका आश्रय लेती हैं। उन्हें श्रीराधाकिशोरीसे एकान्तमें मिलनेका तो अवसर मिल नहीं पाता क्योंकि वृद्धा सास जटिला उमड़ते वात्सल्यावेशवश अपनी बहूको रुग्ण मानकर उसे अपने सामीप्यसे दूर ही नहीं कर रही होती है। अतः तपस्विनी देवी पौर्णमासी श्रीराधाकी सास जटिलाको ही सम्बोधित करती हुई कूटोक्तिका आश्रय लेकर कहती हैं – 'वृद्धे ! तेरी परम सुकुमारी बहूको पूर्ण स्वास्थ्यलाभ हो इसका एक ही उपाय है। जिस चम्पाको भ्रमरराज और उसका दुर्मद मंत्री भ्रमर कभी नहीं संस्पर्श करे, उसके मकरन्दमें यह वनौषधि जो मैं लाई हूँ उसका श्यामलेप इसके अङ्गोंमें करते ही यह स्वस्थ हो उठेगी।'

देवी पौर्णमासीकी इस कूटोक्तिको सुनते ही श्रीराधाकिशोरी तत्क्षण ही आश्वस्त हो जाती हैं। वे देवी पौर्णमासीके चरणोंमें तुरन्त ही गिर जाती हैं। तपस्विनी त्रिकालज्ञा पौर्णमासी उन्हें आशीर्वाद देती हुई द्वादशवर्षीय रविपूजनके अनुष्ठानका आदेश देती हैं। द्वादशवर्षीय सूर्यपूजा-साधनाका यही कठोर नियम होता है कि इसका व्रत रखनेवाली युवती पूर्ण ब्रह्मचारिणी रहती है। वह अपने पतिकी द्वादशवर्षतक छाया भी संस्पर्श नहीं करती। यदि वह अखण्ड ब्रह्मचारिणी रहकर द्वादश वर्षपर्यन्त अनुल्लंघ्य इस व्रतका एवं नित्य रविपूजनका अखण्ड पालन कर लेती है तो इसके फलस्वरूप उसके पतिकी आयु विधाता ब्रह्माजीके तुल्य दीर्घ हो जाती है और उसे कभी रोग एवं वृद्धावस्थाका मुख नहीं देखना पड़ता। साथ ही उसका अक्षय राजलक्ष्मीका प्रारब्ध भी भगवान् सूर्यदेवकी कृपासे निर्माण हो जाता है। श्रीपौर्णमासीजी यावट ग्रामकी राजमाता जटिलाको भी उसकी दोनों वधुओंको इस व्रतके पालन करानेमें पूर्ण सहयोग देनेकी आज्ञा देती हैं। राजमाता जटिला इस व्रतपालन द्वारा अपने पुत्रोंका परम कल्याण समझ सहर्ष मनसे अपनी दोनों बहुओंको इस व्रतचर्यामें निविष्ट होनेका आदेश दे देती हैं।

देवी पौर्णमासीजी वृद्धा सासको पुनः निर्देश करती हैं कि यदि कामावेश, प्रमाद एवं व्रतकी अवहेलनाकरके किसी कारणसे भी इन दोनों किशोरियोंपर इनके पतिकी छाया पड़ गयी, भूलसे भी कहीं संस्पर्श हो गया, इनका मुखदर्शन भी उन्होंने कर लिया तो इनके पतियोंकी तत्क्षण ही मृत्यु हो जायगी एवं राज्यमें घोर अमङ्गल एवं विनाश समुपस्थित हो जायगा।

त्रिकालज्ञा भगवती पौर्णमासीकी तपःशक्तिका प्रभाव यावटग्राम-राजमाता जटिलापर ऐसा पड़ता है कि वह एवं उनके आसपास आसीन सभी वृद्धा गोपियाँ श्रीराधा एवं उसकी छोटी बहिन मञ्जुश्यामासे इस भीषण तपश्चर्याके व्रतको करानेका पूर्ण मनसे अनुमोदन कर देती हैं। तत्क्षण ही इन दोनों बहिनोंके आवासकी भी ऐसी सुरक्षित व्यवस्था कर दी जाती है, जिससे कभी भूलकर भी युवराज रायाण और उनका अनुज दुर्मद इनके महलकी ओर, जबतक यह व्रत पूर्ण न हो , झाँक भी नहीं ५१७।

भगवती पौर्णमासीजी द्वारा की जानेवाली इस व्यवस्थाका ऐसा प्रभाव होता है कि राधाकिशोरी एवं बहिन मञ्जुश्यामा दोनोंका ही दुःसह परिताप मिट जाता है। जो हो, ब्रजरस एवं परकीया महाभावके उज्ज्वलतम प्रेमकी इस निराविल विशुद्ध रसमयी मन्दाकिनीको भगवती पौर्णमासीके लोकोत्तर तेजसमन्वित मुखमण्डलसे निःसृत आश्वासन एवं उनके द्वारा स्थापित मर्यादाकी दुर्ल्लंघ्य घाटियाँ पार अवश्य करनी पड़ती हैं। प्रेमविह्वल होकर श्रीराधा एवं राधानुजा देवी पौर्णमासीके चरणोंमें पुनः गिर पड़ती हैं। मानो इन दोनों बहनोंके मृत देहमें सचमुच ही नवीन प्राणोंका सञ्चार हो उठा हो, उनकी समस्त इन्द्रियाँ उत्फुल्ल हो उठती हैं। उनके तन-मनका अणु-अणु परमानन्दसे पूर्ण हो जाता है। भगवती पौर्णमासी भी दोनों बहिनोंको अपने स्नेहालिङ्गनसे आप्यायित कर देती हैं। स्नेहके उस स्रोतमें तीनों ही– तपस्विनी महादेवी एवं दोनों बहिनें – राधा एवं राधानुजा डूबने-उतराने लगती हैं एवं सुधबुध भूल जाती हैं। तपस्विनी

पौर्णमासीके नेत्र भी झर-झर बरसने लगते हैं एवं दोनों बहिनोंके मस्तकको भिगोने लगते हैं वृद्धा तपस्विनीका अन्तस्तल स्नेहकी सीमांमें बद्ध नहीं रह पाता है। आनन्दसिन्धुकी लहरें उनके रोम-रोमको आत्मसात् कर लेती हैं। सजल नयनोंसे मानो वृद्धा तपस्विनी श्रीराधा एवं राधानुजाको पी जाना चाहती हैं। प्रफुल्ल नासापुटोंसे उनके प्रत्येक अङ्गोंको वे सूँघने लगती हैं। तपस्विनी माता एवं पुत्रियोंमें प्रेम-विह्वलताका कैसा अपूर्व प्रदर्शन होता है इसे कोई भाग्यवान् ही अनुभव कर पाता है !

इस प्रकार श्रीराधारानीके द्वारा सूर्यपूजनका प्रारंभ होता है।। ६३८।।

संध्यायां सहचरीसमागमः ॥६३९॥

संध्याके समय सभी सहचरियोंसे मिलन होता है।....।।६३९।।

द्वितीय दिवसे अर्चनार्थं पुष्पचयनम् ॥६४०॥

दूसरे दिनका प्रभात हो जानेपर राधाकिशोरी अर्चनाके लिये पुष्पचयन करने जाती हैं।।।६४०।।

उद्यानप्रवेशः ॥६४१॥

उद्यानमें प्रवेश करती हैं।.......।।६४१।।

उद्यानसौन्दर्यदर्शनम् ॥६४२॥

उद्यानके सौन्दर्यका दर्शन करती हैं।...............।।६४२।।

प्रश्नः ॥६४३॥

सहचरियोंसे राधाकिशोरी कुछ प्रश्न करती हैं।.........।।६४३।।

सहचर्याः उत्तरदानम् ॥६४४॥

एक सहचरी उत्तर देती है।।।६४४।।

मानो था भरा सहचरी के उत्तर में टोना-सा, प्रियतम !
बालाका कर कम्पित होकर गिर गया पुष्प-दोना, प्रियतम !
एवं कुछ कहे बिना ही वह चल पड़ी वाटिकासे, प्रियतम !
सीधे आकर कपाट गृहके कर लिये बन्द उसने, प्रियतम ॥६४५॥

मानो सहचरीके उत्तरमें टोना-सा भरा था – किशोरीका कर कम्पित होकर पुष्पका दोना हाथोंसे गिर गया। राधाकिशोरी किसीसे कुछ कहे बिना ही वाटिकासे चल पड़ी और सीधे घर आकर, गृहके अपने कक्षमें प्रविष्ट होकर उन्होंने कपाट बन्द कर लिये।।।६४५।।

श्रवणयोः तन्मयता ॥६४६॥

राधाकिशोरीके श्रवणपुटोंमें एक अद्भुत तन्मयताका आविर्भाव हो गया।....।।६४६।।

अनाहारः ॥६४७॥

दिन भर उन्होंने कुछ भी भोजन न किया।........।।६४७।।

निशि च ॥६४८॥

रात्रि भी पूरे अनाहारमें व्यतीत हुई।।।६४८।।

निद्राभावः ॥६४९॥

किशोरीको आज तनिक भी निद्रा नहीं आई।..........।।६४९।।

रवौ उदिते सति सहचर्याः आगमनम् ॥६५०॥

सूर्योदय होनेपर सहचरी उनसे मिलने आई। ....।।६५०।।

तस्याः बालादशादर्शनेन महदाश्चर्यम् ॥६५१॥

सहचरी राधाकिशोरीकी दशा देखकर अत्यन्त आश्चर्यमें डूब गई।......।।६५१।।

सहचरीस्नेहाग्रहरूद्धायाः बालायाः हेतुकथनम् ॥६५२॥

सहचरीके अत्यधिक आग्रहके कारण राधाकिशोरीने अपनी ऐसी दशा हो जानेका हेतु बतलाया।।।६५२।।

आँखें उस नर्म सहेली की कारण वह सुनते ही, प्रियतम
उल्लास-सहानुभूति-पूरित जल बिन्दु-दान करती, प्रियतम!
संकेत मूक किंचित् देकर, चञ्चल कर बाला को प्रियतम!
क्षणभर होगयीं निमीलित, थी अनुजा सब देख रही, प्रियतम ॥६५३॥

वह कारण सुनते ही उस नर्म सहचरीकी आँखें भर आईं। साथ ही उल्लास एवं सहानुभूतिपूरित जलविन्दु सहचरीकी आँखोंसे झरने लग गये। वह कुछ मूक सङ्केत किशारीको देने लग गई। किन्तु किशोरी और भी चञ्चल हो उठी। सहचरीने क्षणभरके लिये आँखें बन्द कर लीं। राधाकिशोरीकी अनुजा यह सब बड़े ध्यानसे देख रही थी।।।६५३।।

अनुजाकृत सामयिक सेवा ॥६५४॥

अनुजाने राधाकिशोरीकी सामयिक सेवा की।.......।।६५४।।

संध्याधिगमः ॥६५५॥

संध्या हो गयी।।।६५५।।

मुरली रव श्रवणम् ॥६५६॥

अचानक किशोरीके कर्णपुटोंमें मुरलीका रव झंकृत होने लग गया।........।।६५६।।

रवप्रणेतारं प्रति आत्मनिवेदनम् ॥६५७॥

वंशीरवका सृजन करनवालेके प्रति राधाकिशोरी अपना सम्पूर्ण आत्मनिवेदन कर बैठती हैं।।।६५७।।

चित्तस्य तन्नादमयत्वम् ॥६५८॥

किशोरीका चित्त उस वंशीनादसे सर्वथा एकत्व स्थापित कर लेता है। किशोरीके चित्तका रूप ही वंशीनादमय बन जाता है।......।।६५८।।

उषसि संध्याप्रदोषभ्रान्तिः ॥६५९॥

उषाकाल लग रहा है, किन्तु किशोरीको भ्रम होने लगता है – संध्या हो गयी है; प्रदोष लग चुका है।।।६५९।।

देहविस्मृतिः ॥६६०॥

किशोरीको अपनी देहकी आत्यन्तिक विस्मृति हो जाती है।....।।६६०।।

अनुजा के किये उपायों से बाला को चेत हुआ, प्रियतम !
हो सका भोरके कृत्योंका निर्वाह अधूरा-सा, प्रियतम !
अनुजा सँभालती थी प्रतिपल, अतएव परिस्थिति को, प्रियतम !
वृद्धा न तथा उसकी न सुता आभास पा सकी थी, प्रियतम ॥६६१॥

अनुजा बहुतसे उपायोंका आश्रय लेती है, तब कहीं जाकर राधाकिशोरीको कुछ बाह्य ज्ञान होता है। जैसे-तैसे प्रातःके कृत्योंका अधूरा-सा निर्वाह हो पाता है। प्रतिपल अनुजा किशोरीको सँभाल रही थी। इसीलिये इस परिस्थितिका आभासतक वृद्धा एवं उसकी पुत्री न पा सकीं।।।६६१।।

अपराह्णसमये सहचर्याः चित्रपटदानम् ॥६६२॥

अपराहके समय सहचरीने लाकर किशोरीको एक चित्रपट दिया।।।६६२।।

बालायाः चित्रसौन्दर्यदर्शनम् ॥६६३॥

राधाकिशोरी उस चित्रका सौन्दर्य देखने लगती हैं।........।।६६३।।

विचित्रानुभूतिः ॥६६४॥

किशोरीको, विचित्र अनुभव होता है।...।।६६४।।

तं अखिलरसामृतमूर्तिं बालकं प्रति आत्मोत्सर्गः ॥६६५॥

उन अखिलरसामृतमूर्ति बालकके प्रति किशोरी अपना सम्पूर्ण आत्मोत्सर्ग कर बैठती हैं।।।६६५।।

बुद्धेः तद्रूपत्वम् ॥६६६॥

किशोरीकी बुद्धि तद्रूप हो जाती है। ....।।६६६।।

सर्वत्र तद्दर्शनम् ॥६६७॥

सर्वत्र उन्हें उस नील बालकके ही दर्शन होते हैं। ......।।६६७।।

तस्यां रजन्यां चित्तस्य अद्भुतवैक्लव्यम् ॥६६८॥

उस रजनीमें किशोरीका चित्त अद्भुत विकलतासे परिपूर्ण हो जाता है।...।।६६८।।

बाला की चित्तदशा ऐसी हो गयी रात भर में, प्रियतम !
जिसको वह सखी देखते ही चिन्ता में डूब गयी, प्रियतम !
लक्षण उन्माद रोगके सब उसमें थे दीख रहे, प्रियतम !
अच्छा था यही, सखीको वह पहचान गयी अब भी, प्रियतम ॥६६९॥

रात भरमें ही किशोरीके चित्तकी दशा ऐसी हो गयी कि जिसे देखते ही वह सहचरी चिन्तित हो उठी। उन्माद रोगके सभी लक्षण राधाकिशोरीमें परिपूरित दीखे। इतना भर अच्छा था कि राधाकिशोरी अपनी उस सहचरीको अब भी पहचान रही थीं।।।६६९।।

नामोच्चारणपूर्वकं मां मा स्पृश मा स्पृश इति उक्त्वा पलायनम्॥६७०॥

सहचरीका नाम लेकर राधाकिशोरी बड़े उच्च स्वरसे बोल उठीं- मुझे मत स्पर्श करो, मुझे मत स्पर्श करो।' इस प्रकार कहकर भाग चलीं।....।।६७०।।

सहचर्याः समवरोधनम्॥६७१॥

सहचरी सामने आकर द्वार रोककर खड़ी हो गयी। ......।।६७१।।

बालायाः भृशं विलापः॥६७२॥

राधाकिशोरी उच्च स्वरसे विलाप करने लगती हैं।....।।६७२।।

सहचर्याः सान्त्वनादानम्॥६७३॥

सहचरी उन्हें सान्त्वना देने लगती है।......।।६७३।।

बालायाःशनैःशनैःस्वहृदयस्य अनिवार्य परिताप कथनम्॥६७४॥

राधाकिशोरी धीरे-धीरे अपने हृदयके अनिवार्य परितापकी बात कहने लगती हैं।....।।६७४।।

सहचर्याः हासः॥६७५॥

सहचरी उसे सुनकर उच्च स्वरमें हँस पड़ती है।......।।६७५।।

बालायाः सरसभ्रान्तिनिवारणं च॥६७६॥

अब वह राधाकिशोरीकी उस सरस भ्रान्तिको दूर कर देती है।।।६७६।।

आ गिरी धधकती ज्वाला पर मानो जलधर-धारा, प्रियतम!
ऐसा परिणाम सहेली के उस एक वाक्य का था, प्रियतम!
सुखमयी अचेतनता के मृदुकर से लालित होती, प्रियतम!
थी पड़ी अङ्क में उसके दस-पंद्रह पलतक बाला, प्रियतम॥६७७॥

धधकती हुई अग्निकी ज्वा़लापर मानों जलधरकी धारा बड़े वेगसे गिरने लगी हो - सहचरीके उस एक वाक्यका ऐसा ही परिणाम राधाकिशोरीके लिये हुआ। सुखमयी अचेतनताके मृदुकरसे संलालित होती हुई किशोरी सहचरीके अङ्कमें दस-पन्द्रह पलतक पड़ी रही।।।६७७।।

सहचर्याः परिचयदानम्॥६७८॥

सहचरी सम्पूर्ण घटनाक्रमका परिचय देती है।।।६७८।।

बालायाः भावाभिवृद्धिः॥६७९॥

राधाकिशोरीके भावोंकी और भी अभिवृद्धि होती है।।।६७९।।

सहचर्याः यथावसरं तं बालकं प्राप्य बालावृत्तकथनम्॥६८०॥

सहचरी अवसर देखकर उस नील बालकसे मिलकर राधाकिशोरीके संबंधमें बातें करती है।।।६८०।।

बालकस्य स्वानभिज्ञता प्रदर्शनम्॥६८१॥

किन्तु बालक सहचरीको उत्तरमें इस प्रकारकी मुद्रा प्रदर्शित करता है, मानो वह इस प्रकारकी घटनाओंसे सर्वथा अनभिज्ञ है।।।६८१।।

दिवसचतुष्टयानन्तरं बालां प्रति स्वाकर्षणाभावमूलकचेष्टा ॥६८२॥

चार दिनोंके पश्चात्, राधाकिशोरीके प्रति उस बालकके मनमें आकर्षणका अत्यन्त अभाव है - ऐसी चेष्टाओंका प्रदर्शन उस बालकके द्वारा होने लगता है।.........।।६८२।।

सहचर्याः भावविवर्द्धनार्थं विविध प्रयासः ॥ ६८३॥

सहचरीके द्वारा उस बालकके मनमें राधाकिशोरीके प्रति भावकी अभिवृद्धि हो – इसके लिये विविध प्रयास होने लगते हैं।।।६८३।।

असफलता ॥६८४॥

किन्तु सहचरीको आत्यन्तिक असफलता मिलती है।।।६८४।।

आखिर कुल-भय, लज्जा, गौरव, सब परित्याग करके, प्रियतम!
अपने सर्वस्व समर्पण का, अत्यन्त विवशता का, प्रियतम!
संकेतचित्र शुचि पत्ते पर अङ्कित कर नखमणि से, प्रियतम!
नीरद-सुन्दर उस बालक को बाला ने भी भेजा, प्रियतम॥६८५॥

आखिर राधाकिशोरीके द्वारा अपने कुल भय, लज्जा एवं गौरव – सबका परित्याग करके, अपने सर्वस्व समर्पणका, अपनी आत्यन्तिक विवशताका सङ्केतचित्र एक पवित्र पत्तेपर अपने नखमणिसे अङ्कित करके उस नीलसुन्दर बालकको भेज दिया जाता है।......।।६८५।।

तथापि नैराश्योपलब्धिः ॥६८६॥

तथापि सहचरीको, राधाकिशोरीको आत्यन्तिक निराशाकी उपलब्धि होती है।...........।।६८६।।

न भवति दुर्विपाकमूलेऽस्मिन् जन्मनि मत्प्राणनाथयोगः मम नवजन्मायुतमध्ये देवो दययिष्यत्यवश्यमेव इति बालायाः प्राणविसर्जनोपक्रमः ॥६८७॥

राधाकिशोरी सोचने लगती हैं-'मेरे कर्मोंके दुर्विपाकके फलस्वरूप इस जन्ममें मेरा मेरे प्राणनाथसे मिलन होना संभव नहीं दीखता। किन्तु यह निश्चय है, मेरे नवीन अयुत जन्मोंमें जगन्नियन्तादेव मुझपर अवश्य दया करेंगे। ऐसा सोचकर राधाकिशोरी अपने प्राणविसर्जन कर देनेके लिये उद्यत होती हैं।।।६८७।।

कल्लोलिनीं प्राप्य प्रवाहनिरीक्षणम् ॥६८८॥

कलिन्दनन्दिनीके समीप राधाकिशोरी चली आती हैं और उसके प्रवाहको देखने लगती हैं।।।६८८।।.....

सहचर्याः आगमनम् ॥६८९॥

इसी समय वहाँ सहचरी पहुँच जाती है।.....।।६८९।।

बालायाः तां आश्लिष्य क्रन्दनम् ॥६९०॥

राधाकिशोरी सहचरीको अपने भुजपाशमें लेकर रोने लग जाती हैं। ....।।६९०।।

महाप्रयाणपाथेयरूपतच्चित्रपटदर्शनस्य कामना ॥६९१॥

अपने महाप्रयाणके समय, पाथेयके रूपमें नीलसुन्दर बालकके चित्रपटके दर्शनकी कामना उनके मनमें जग उठती है। .....।।६९१।।

तदपूर्तिः तस्य तत्रानुपलब्धेः ॥६९२॥

किन्तु यह कामना पूर्ण नहीं हो पाती; क्योंकि वह चित्रपट वहाँ था जो नहीं। ....।।।६९२।।

यह सुख भी मन्दभाग्य वाली कैसे ले सकती है प्रियतम !
मैं देख न सकी चित्र तक भी आराध्यदेवता का, प्रियतम !
था उस दिन तो छवि से पूरित उर का कोना-कोना, प्रियतम !
देखूँ वे कहीं मिलें, विलीन कर सकूँ प्राण उनमें, प्रियतम ॥६९३॥

'हाय रे ! मैं मन्दभाग्यवाली इतना-सा सुख भी कैसे ले सकती हूँ ? इसीलिये मैं अपने आराध्य देवताका चित्रतक भी अन्तमें देख न सकी। उस दिन तो मेरी ऐसी दशा थी कि मेरे हृदयका कोंना-कोना सर्वत्र उनकी छविसे परिपूरित था। देखूँ, कदाचित् हृदयके किसी कोनेमें उनका दर्शन हो जाये और मैं उनमें ही अपने प्राणोंको विलीन कर सकूँ।.....।।६९३।।

इत्युक्त्वा बालायाः नयननिमीलनम् ॥६९४॥

यह कहती-कहती राधाकिशोरी अपनी आँखें बन्द कर लेती हैं।।।६९४।।

सहचर्याः बालां अङ्के कृत्वा उच्चस्वरेण क्रन्दनम् ॥६९५॥

सहचरी राधाकिशोरीको अपने अङ्कमें लेकर उच्च स्वरसे क्रन्दन करने लगती है।...... ...६९५।।

तत्क्षणमेव तस्य महामरकतद्युतेः बालकस्य तत्रागमनम् ॥६९६॥

बस, इसी क्षण महामरकतमणिकी द्युति धारण करनेवाले उस नीलसुन्दर बालकका वहाँ आगमन हो जाता है।...............।।६९६।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

बृषभानुनन्दिनी एवं उनकी सभी सखियोंका सन्ध्याकालमें यावटग्रामके राजप्रासादमें ही सम्मिलन होता है। ये सभी सखियाँ यावटके ही राजपरिवारके गोपोंमें ब्याही गयी है। एवं भगवती पौर्णमासीजीने इन सभीको द्वादशवर्षीय सूर्यपूजन-व्रतपालनका वैसा ही आदेश दिया है, जैसा श्रीराधा एवं राधानुजा मञ्जुश्यामाको आदेश दिया गया है। सभीके लिये वैसी ही कठोर मर्यादाएँ भी सुनिश्चित की गयी हैं, जैसी कि पूर्व पृष्ठमें श्रीराधा एवं राधानुजाके लिये सुनिश्चित की गयी हैं। अतः सभी दूसरे दिवस प्रातः मिलकर रविपूजनार्थ पुष्पचयन करने सामूहिकरूपसे वनमें चलनेकी योजना बनाती हैं।।६३९।।

बृषभानुकिशोरीमें कैशोरका पूर्ण आविर्भाव है। उनके श्रीअङ्गोंके दिव्य सौन्दर्यसे यावट ग्रामका राजमहल तो आलोकित रहता ही है; वे एवं उनकी सखियाँ जिस पथसे वनमें पुष्पचयन करने जाती हैं, उसपर भी सौन्दर्यकी ऐसी किरणें बिखरती हैं कि सारा यावट ग्राम उनके मुखकी उज्ज्वलतम स्मितिसे उद्भासित हो उठता है। किसी भी ग्रामवासीको अनुसन्धान लेना हो कि किशोरी एवं उनकी सखियाँ इस समय किस वनमें पुष्पचयन कर रही हैं, तो वह सहज ही जान लेता है। उनके श्रीअङ्गोंका सुवास ही उनका पता बता देता है। सुवाससे उन्मादित उड़ती हुई भ्रमरपंक्ति

सङ्केत कर देती है – आओ ! मेरे पीछे चले आओ; भानुकिशोरी इसी पथसे वनमें गयी हैं। अस्तु, आज वे प्रथम दिवस इस ग्रामके निकट स्थित वनमें अपने अङ्गसौरभसे वनको सुरभित करती हुई पुष्पचयन करने गयी हैं। उनके साथ उनकी छोटी बहिन तो हैं ही, चिरसंगिनी ललिता-विशाखादि सखियाँ भी हैं। वे पुष्पित वल्लरियोंसे समालिंगित वृक्षोंकी शोभा देखती हुई वृन्दाकाननमें प्रवेश करती हैं। ।।६४०-६४१।।

सचमुच वनकी निराली शोभा है। अगणित निर्झरोंके मधुर झर-झर शब्दमें झींगुरोंकी झङ्कार मिलकर वीणावादनका भ्रम उत्पन्न कर रही है। सुरभित नम वायुसे स्निग्ध हुई तरुश्रेणी अद्भुत सुन्दर रङ्गबिरङ्गी पत्रावलियोंसे अलंकृत है। कुमुद, पद्म, नीलोत्पल, बेला, चमेली, चम्पा आदि पुष्पोंके किञ्जल्कको अपने आँचलमें भरकर सुरभित बयार वृन्दावनकी परिक्रमा कर रही है। तरुराजि, लताएँ राशि-राशि कुसुमोंके भारसे नमित हैं। कण-कणसे सौन्दर्यका मानो स्रोत ही प्रसरित हो रहा है। राधाकिशोरी विविध विचित्र विहङ्गमोंका कलरव, मृगोंका मनोहर सञ्चरण, मयूरोंका सुन्दर रव , भ्रमरोंका मधुर गुञ्जन, कोकिल एवं सारसोंका कूजन, बृन्दावनमें सतत व्याप्त उस अप्रतिम श्रीका दर्शनकर चकित हैं।।६४२।।

पुष्पित वृक्षोंकी शोभासे अतिशय प्रसन्न हुई किशोरी सभी सखियोंमें प्रधान ललितासे अकस्मात् ही जिज्ञासा कर बैठती है – "ललिते ! बहिन ! क्या यही बृन्दावन है ?" ललिता किशोरीकी जिज्ञासाका समाधान करती हुई प्रत्यत्तर देती है – "हाँ बहिन ! श्रीकृष्णक्रीड़ा-कानन यही है ।"।।६४४।।

ललिताका प्रत्युत्तर मानो कोई जादू कर देता है। श्रीकृष्ण-क्रीड़ा-कानन – यह शब्दावलि सुनते ही किशोरीके हाथ विलक्षण कम्पविकारसे काँपने लगते हैं। इस प्रेम-विकारके उदय होते ही वे सञ्चित पुष्पोंका दौना भी नहीं सम्हाल पातीं। थरथराते हाथोंमें निहित पुष्पराशि भूमिपर बिखर जाती है। ललिता एवं सभी सखियाँ धरापर पतित पुष्पोंको पुनः सञ्चय करनेमें संलग्न हो उठती हैं।

"किसका नाम बताया, बहिन ?" भानुकिशोरी कम्पित कण्ठसे पुनः पूछती है।

"सखि, यह श्रीकृष्णकी क्रीड़ास्थली है ।" – कहकर ललिता पुष्पोंको किशोरीके अञ्चलमें डालने लगती है। " तो, अब बहिन, लौट चलें । बहुत पुष्प सञ्चित हो गये।" – कहती हुई किशोरी सखियोंको साथ लिये बिना ही अन्यमनस्क हुई यावटके राजप्रासादकी ओर चल पड़ती हैं। वे अपने कक्षके कपाट तत्क्षण ही बन्द कर लेती हैं।।६४५।।

श्रीराधाके कानोंमें निपतित श्रीकृष्ण-नाम एक अद्भुत तन्मयताका सृजन कर देता है। उन्हें यह शब्द इतना सुधा-मधुर लगता है कि वे एकान्तमें अनवरत इसी नामका उच्चारण करती हुई अपने पर्यंकमें ध्यानस्थ होकर मुख ढापकर निपतित हो जाती हैं। वे दिनभर निराहार रहती हैं, सायंकालमें ब्यारू(सायंकालीन भोजन) भी नहीं करतीं। रात्रिभर जागरण ही होता है, एक पलके लिये भी उनके पलक नहीं झपकते। 'कृष्ण-कृष्ण' मन-ही-मन उच्चारण करते हुए ही उनकी सम्पूर्ण निशा व्यतीत हो जाती है। ।।६४९।।

दूसरे दिवस रविके उदय होनेपर ललिता एवं सखियाँ पुनः आती हैं, द्वार खटखटाती हैं। द्वार खुलता है किन्तु ललिता एवं सखियाँ किशोरीकी विचित्र दशा देखती हैं। उनका शरीर एक ही दिनके निराहारमें इतना कृश हो जाता है मानों वे एक पक्षसे निराहार रही हों। कुन्तलराशि पीठपर बिखरी पड़ी है। किशोरीने आज वेणीरचना ही नहीं की है। दिवस-रात्रि वह मुख ढाँपे पड़ी रही है। किसीसे वार्त्ता करनेका तो प्रश्न ही नहीं है। ललिता गोदमें लेकर प्यारसे सिर सहलाकर मुख उघाड़ती है तो देखती है – नेत्र सजल हैं, अरुण हैं, सूचना दे रहे हैं कि किशोरी निशापर्यन्त जागी हैं। बारंबार ललिताके प्रश्न करनेपर भानुदुलारी कुछ कहने चलती हैं, किन्तु वाणी रुद्ध हो जाती है, वे बोल नहीं पातीं। ललिताके शत-शत प्यारसे सिक्त होनेपर कहीं दो घड़ी पश्चात् वे सखीके प्रति अपना हृदय खोल पाती हैं।

रुद्ध कण्ठसे किशोरी अपनी दशाका कारण निम्न रीतिसे बताती हैं –

कृष्ण नाम जबतें श्रवणन सुन्यौ री आली,
भूली री भवन हौं तो बावरी भई री।
भरि-भरि आवैं नैन चित हू न परै चैन,
मुख हू न निकसै बैन, तनकी दसा कछु औरै भई री।।
जेतेक नेम-धरम कीने री मैं बहु बिधि,
अङ्ग-अङ्ग भई हौं तो श्रवणमई री।
नन्ददास जाके श्रवण सुनत यह गति भई,
माधुरी मूरत कैधों कैसी दई री।।

अनुजा मञ्जुश्यामा देख रही है – प्रियतम श्रीकृष्णके नाम-श्रवण मात्रसे किशोरीकी हुई दशाका विवरण उसके ही मुखसे सुनकर ललिता सखीके भी नेत्र भर आये हैं। भानुदुलारीको हृदयसे लगाकर वे उल्लास एवं सहानुभूतिपूरित हुई स्वयं भी नेत्रोंसे जल बरसाने लगती हैं। अपने हृदयका मूक अनुमोदन किंचित् सङ्केत द्वारा देकर वे किशोरीको और भी चञ्चल कर देती हैं किन्तु क्षणभरके लिये स्वयं अपने नेत्र निमीलितकर वे स्नेहसिन्धुमें स्वयं निमग्न हो उठती हैं।

अनुजा मञ्जुश्यामा किशोरी राधाकी दन्तधावन, स्नान, शृङ्गार आदिकी समुचित सेवा स्वयं अपने हाथों किसी प्रकार उन्हें सचेत करवा-करवाकर सम्पादित करती हैं। किशोरीके कण्ठमें दो कौर अन्न उतर जाये और वे किसी भी प्रकार रविपूजन सम्पादित करलें – इसकी सब व्यवस्था करती हैं। सन्ध्याकाल हो आता है।।६५०-६५५।।

दूसरे दिवस प्रातः उषाकाल होता है। मन ही मन कृष्ण-कृष्ण उच्चारण करती भानुनन्दिनी उद्यानमें बैठी हैं। इसी समय कदम्बकुजोंमें श्रीकृष्णकी वंशी बज उठती है। वंशीरव किशोरीके कानोंमें प्रवेश करता है। ओह ! यह अमृतनिर्झर! यह सुधाप्रवाह !! कहाँसे, किस ओरसे ? भानुकिशोरीका सारा शरीर थर-थर काँपने लगता है – जैसे शीतकालमें हिमकी वर्षा हो रही हो। साथ ही अङ्गोंसे प्रस्वेदकी धारा बह चलती है – इत्नी अधिक मात्रामें मानो ग्रीष्मतापसे अङ्गका अणु-अणु उत्तप्त हो रहा हो। कानोंपर हाथ रखकर विस्फारित नेत्रोंसे वे वनकी ओर देखने लगती हैं। दूरसे अनुजा मञ्जुश्यामा यह दशा देख रही है। वह दौड़कर पास आ जाती है।

राधानुजा मञ्जुश्यामा देखती है – उसकी बहिन मुरलीवादकको पूर्ण आत्म-समर्पण कर बैठी है। उसका चित्त उस वंशीनादसे पूर्ण एकतान हुआ बाह्यज्ञानशून्य हो चुका है। जब उपवनके वृक्षोंसे, पर्वत-कन्दराओंसे वंशीका प्रतिनाद आना स्थगित हो जाता है, तब कहीं जाकर वह अपने नेत्र उन्मीलित करती है। किन्तु उस समय भी उसके नेत्रोंमें उन्मादावस्था स्पष्ट परिलक्षित होती है। 'कृष्ण-'कृष्ण' के उच्चारणके संस्कार उसमें इतने प्रगाढ़ हो उठते हैं कि उसे ऊषाकी मन्द प्रकाशमयी लालिमा दिखनी ही बन्द हो जाती है एवं व्योम एवं सारा वातावरण इतना कृष्णवर्णका दिखने लगता है मानो प्रदोषकाल एवं संध्याकाल समुपस्थित हों। अपनी देहकी भी विस्मृति होकर उसे अपनी देह भी कृष्ण वर्णकी दृष्टिगोचर हो उठती है। मञ्जश्यामा अत्यन्त प्यारसे बहिन किशोरीको झकझोरकर पूछती है – 'मेरी लाडिली बहिन ! सच बता, तुझे क्या हो गया है ? सहसा तेरे अङ्ग विवश क्यों हो गये हैं ?' लाडिली उत्तरमें इतना ही कह पाती है –

नादः कदम्ब विटपान्तरतो विसर्पन्
को नाम कर्णपदवीमविशन्न जाने ।

'ओह ! उस कदम्ब वृक्षके अन्तरालसे न जाने कैसी एक ध्वनि आयी ! मेरे कानोंमें प्रविष्ट हो गयी।' .... 'आह ! कदाचित् मैं उस अमृत-निर्झरको देख पाती ! न जाने वह किसका वंशीनाद था ? '' फिर तो .... कहती-कहती किशोरी पुनः मूर्च्छित हो जाती है।

अनुजा अनेक प्रकारके उपचार करके अपनी बहिनको संयत कराती है, मीठी वार्त्ता करके उसे देहकी स्मृति कराती है। देहकी स्मृति होनेपर प्रातःकृत्य किसीतरह आधे-अधूरे सम्पन्न हो पाते हैं। किशोरीकी इस दशाका आभास वृद्धा सास जटिला, ननद कुटिला एवं अन्य परिजनोंको नहीं हो – अनुजा मञ्जुश्यामाकी चिन्ताका मुख्य विषय यही होता है।।६५५-६६१।।

किसी प्रकार अपराह्न होता है। किशोरीसे मिलने विशाखा सखी समुपस्थित होती है। उसके हाथोंमें किशोरावस्थाका ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णका स्वहस्तनिर्मित चित्र है। वह यह चित्र किशोरीको दिखाती है। श्रीराधाकिशोरी चित्रपटको हाथमें लेकर उसे अतिशय ध्यानपूर्वक देखती हैं। सहसा उनके नेत्रोंसे झर-झर करता अश्रुप्रवाह बह उठता है। वह अञ्चलसे अश्रुमार्जनकर चित्रको पुनः ध्यानपूर्वक देखना चाहती है, किन्तु उसके नेत्र पुनः अश्रुपूरित हो उठते हैं। इससे चित्र दिखाई देना बन्द हो जाता है। इसके पश्चात् किशोरीके नेत्रोंसे ऐसी अश्रुधारा प्रवाहित होती है कि वह रुकती ही नहीं। चित्र दीखनेका तो प्रश्न ही नहीं बनता।

विशाखा स्वयं प्रियतम श्रीकृष्णका चित्र अंकितकर इस अभिप्रायसे अपनी प्यारी सखीके पास ले आयी थी कि श्रीराधा प्राणप्रियतम श्रीकृष्णचन्द्रका नाम सुनकर उनकी ओर अत्यधिक आकर्षित हो उठी है, चित्रपटके दर्शनसे उसे सान्त्वना मिलेगी। किन्तु परिणाम उलटा होता है। भानुकिशोरीकी व्याकुलता पहले-से सौगुनी अधिक हो उठती है।

* * *

विक्षिप्त-सी हुई भानुकिशोरी प्रलाप कर रही है – 'मेरा शरीर अग्निकुण्ड हो गया है। उसमें ओह! कितनी आग धक्-धक् कर जल रही है, फिर भी मैं जल नहीं पाती। जलूँ भी तो कैसे ? श्याममेघ अनवरत वर्षा जो कर रहा है!' – स्नेहसे सिरपर हाथ फेरकर ललिता-विशाखा पूछती हैं – " हमारे हृदयकी रानी ! इस प्रकार क्या कर रही हो ? ग्राममें कहीं कुछ भी भनक हुई तो लोकापवाद होगा, न?"

उत्तरमें भानुकिशोरी उन्मत्तवत् हँसने लगती है। हँसकर कहती है – 'सुनोगी ? अच्छा, सुनो। महामरकतद्युति अङ्गोंसे शोभा झर रही है, सिरपर मयूरपिच्छ है, नवकैशोरका आरंभ ही हुआ है – इस रूपमें वे चित्रपटसे बाहर निकल आये –

वितन्वानस्तन्वा मरकतरुचीनां रुचिरतां
पटान्निष्क्रान्तोऽभूत् धृतशिखिशिखण्डो नवयुवा।

– कहकर किशोरी मौन हो जाती है। ललिता-विशाखा परस्पर देखने लगती हैं। कुछ सोचकर ललिता कहती है – "किशोरी ! तुमने स्वप्न तो नहीं देखा है ?" यह सुनते ही अविलम्ब भानुनन्दिनी बोल उठती है – "वह स्वप्न था या जागरण, दिवस था या रात्रि – यह तो नहीं जान पायी; जाननेकी शक्ति भी नहीं अवशेष थी, क्योंकि उस समय एक श्याम ज्योत्स्ना फैली थी। उस ज्योत्स्नामें रस-सिन्धु तरङ्गें ले रहा था। वे रसतरङ्गें मुझे भी बहा ले गयीं। चञ्चल लहरोंपर नाचती मैं भी चञ्चल हो उठी। अब जाननेका अवकाश कहाँ था ? " – भानुकिशोरी इतना कहकर पुनः मौन हो जाती है।

* * *

रातभरमें ही किशोरीके चित्तकी दशा ऐसी हो गयी कि उसे देखते ही सहचरी चिन्तित हो उठती है। उन्माद रोगके सभी लक्षण राधाकिशोरीमें परिपूरित दीखे। इतना भर अच्छा था कि राधाकिशोरी अभी भी अपनी सखियोंको पहचान रही थीं। शेष तो उसे अब सर्वत्र केवल नीली ज्योति ही सब रूपोंमें भरी दिखाई दे रही थी।।६६९।।

* * *

'मेरी प्यारी ललिते ! तू दूर चली जा ! विशाखे ! तू मेरे समीपसे हट जा । तुम दोनों मुझे स्पर्श मत करना। मेरी जैसी मलिनाके स्पर्शसे तुम दोनों भी मलिन हो जाओगी। मेरी छायाका स्पर्श भी तुम्हें मलिन बना देगा।'' – किशोरी अत्यन्त कातर स्वरमें कहती जा रही है – '' देखो ! तुम कहा करती थी न, कि मैं तुम दोनोंको बहुत प्यार करती हूँ, तो उसी प्यारका प्रत्युपकार चाहती हूँ। तू बाधा मत दे, अपितु शीघ्र-से-शीघ्र मेरे इस मलिन शरीरका अन्त हो जाय, इसमें साधक बन जा।' विकल होकर भानुनन्दिनी यहाँतक कह गयी। वह यमुनातटमें शरीर-परित्यागकी चेष्टामें वहाँसे पलायनको समुत्सुक हो रही थी।।६७०।।

ललिता एवं विशाखा उन्हें रोकती हुई दोनों ही एक साथ रो पड़ती हैं। रोकर कहती हैं – 'किशोरी ! यह सब सुनकर हमारे प्राणोंमें कितनी वेदना हो रही है, इसका तुझे ज्ञान नहीं। अन्यथा तेरे मुखसे ऐसे वचन कभी नहीं निकलते।'।।६७१।।

भानुनन्दिनी विलाप करने लगती है। विलाप करती हुई कहती है – 'बहिन ! तुम जानती नहीं– मैं कितनी अधमा हूँ।' रोते-रोते उनकी हिचकी बँध जाती है।।६७२।।

ललिता एवं विशाखा उन्हें कण्ठसे लगा लेती हैं एवं पीठ सहलाती हुई उनसे अपने हृदयकी व्यथा कह सुनानेका आग्रह करती हैं।।६७३।।

शनैः-शनैः किशोरीकी हिचकी रुकती हैं। रोदन कुछ विरमित होता है और वे अपना हृदय खोलनेको तत्पर हो उठती हैं। वे ललिताका अश्रु पौंछनेको उठा हाथ थाम लेती हैं तथा कहती हैं – '' बहिन ! तू जानती नहीं मैं कितनी अधमा हूँ। अच्छा, सुन ले। मृत्युसे पूर्व मेरे अपराधोंको तुम-जैसी सरलमति सखियोंके सम्मुख प्रकट कर देना ही उत्तम है। उस दिवस मैंने तुम्हारे मुखसे 'कृष्ण' नाम सुना, सुनते ही मेरा विवेक जाता रहा। मैं यह भी सोचनेका अवसर नहीं पा सकी कि अन्ततः यह कृष्ण कौन है, कैसा है ? तत्क्षण ही मन-ही-मन अपना मन, प्राण, जीवन, यौवन – यहाँतक कि अपना सर्वस्व भी उसे समर्पण कर बैठी। कृष्णनामका मधुपानकर उन्मत्त होने लगी। सोचती थी – वे मिलें अथवा नहीं मिलें, इस कृष्ण नामके सहारे अपना जीवन व्यतीत कर दूँगी। किन्तु उसी दिवस कदम्बकुञ्जोंमेंसे संध्याके समय वेणुनाद सुनाई पड़ा। वह ध्वनि सुनकर ही मेरा मन विक्षिप्त हो गया। अभी दो पहर पूर्व ही कृष्णनाम वाले व्यक्तिको आत्मसमर्पण कर चुकी थी, अब इतने अल्प समयमें ही चित्त चञ्चल होकर वंशीवादकके आकर्षण-प्रवाहमें बह चली। चित्तवृत्तियाँ इतनी उन्मादिनी हो गयीं कि बाह्यज्ञानतक भूल गयीं। अबतक वह उन्माद मिटा नहीं है। रह-रहकर मैं सबकुछ भूल जाती हूँ; इस भूलमें मैं अपना पूर्वकृत आत्मसमर्पण भी भूल गयी, वंशीके छिद्रोंसे सुधा बरसानेवालेपर न्यौछावर होगयी। वह कौन है, नहीं जानती, किन्तु उसकी होगयी, उसको लेकर अनेकों कल्पनाएँ करती हुई सुखसमुद्रमें बह चली। इतनेमें ही विशाखा यह चित्रपट मेरे सम्मुख ले आयी। मात्र एक बार ही चित्रकी छवि देख सकी, किन्तु देखते ही वह मेघद्युति किंशोर मेरे हृदयमें, प्राणोंमें समा गया। ओह ! धिक्कार है मुझको। जिसने तीन पुरुषोंके प्रति हृदयमें रति उत्पन्न करली। ऐसी मलिनाकी तो मृत्यु ही कहीं श्रेयस्कर है'' –

एकस्य श्रुतिमेव लुम्पति मतिं कृष्णेति नामाक्षरं
सान्द्रोन्मादपरम्परामुपनयत्यन्यस्य वंशी कलः।
एष स्निग्धघनद्युतिर्मनसि मे लग्नः पटे वीक्षणात्
कष्टं धिक् पुरुषत्रये रतिरभून्मन्ये मृतिं श्रेयसीम्।।(विदग्धमाधव)

भानुकिशोरी सुबक-सुबककर रो रही हैं। किन्तु ललिता एवं विशाखाको अब पथ मिल जाता है।।६७४।।

दोनों उल्लासमें हँसती हुई बोलती हैं –'' किशोरी ! तू भी बड़ी भोली, अजब बावरी है। हम नहीं समझती थीं कि तू इतनी सरलचित्ता है। अरी ! कृष्णनाम, वंशीध्वनि एवं वह चित्र – ये तीनों ही एक ही व्यक्तिके हैं। ये तीन पृथक् व्यक्ति नहीं हैं। ।।६७५-६७६।।

किशोरीके उत्तप्त प्राणोंमें ललिता मानो अमृत-जलधारा ही उड़ेल देती है। किशोरीके प्राण शीतल हो जाते हैं। नेत्र मुँद जाते हैं तथा वह सुखकी नींद सोजाती है। इस प्रकार सुखमयी अचेतनताके मृदुकरोंसे लालित आनन्दमूर्च्छित हुई किशोरी ललिताकी क्रोडमें निश्चेष्ट होकर पड़ जाती है।।६७७।।

दस-पन्द्रह पलतक किशोरीकी ऐसी ही सुखमयी मूर्च्छा बनी रहती है। तत्पश्चात् जब उसे बाह्यज्ञान होता है तो ललिता नन्दकुलचन्द्रमा श्रीकृष्णका सम्पूर्ण परिचय देती है।।६७८।।

* * *

अब तो किशोरीकी यह दशा है कि यदि उसके सामनेसे मयूर पलायन कर जाय और उसका पिच्छ उसके दृष्टिपथमें आ जाय तो उसके शरीरमें कम्प होने लगता है। गुञ्जापुञ्ज देखते ही उसके नेत्रोंमें जल भर आता है, वह चीत्कार कर उठती है। नभमें श्याम मेघ उमड़ आते हैं तो किशोरीको अपने प्रियतम ब्रजेन्द्रनन्दनकी गाढ़ स्मृति होकर शत-सहस्र श्रीकृष्ण नभमें नृत्य करते दीखने लगते हैं। किशोरी भुजाएँ उठाकर उड़नेकी चेष्टा करने लगती है, परन्तु हाय ! पंख नहीं हैं कि उड़ सके। कभी विरहमें अत्यन्त व्यथित होकर चाहने लगती है कि किसी प्रकार मैं श्रीकृष्णको विस्मृत कर पाऊँ, हृदयसे वह त्रिभङ्ग छवि निकल जाय। केवल चाहती ही नहीं, वस्तुतः श्रीकृष्णको भुलानेके लिये अनेक विषयोंमें मनोनिवेश करने लगती है। किन्तु विषय तो विस्मृत हो जाते हैं और श्रीकृष्ण नहीं भूलते; वह नवनीरद छवि हृदयसे बाहर होती ही नहीं। ओह ! सचमुच ही क्या आश्चर्य है –

प्रत्याहृत्य मुनिः क्षणं विषयतो यस्मिन् मनो धित्सते
बालासौ विषयेषु धित्सति ततः प्रत्याहरन्ती मनः।
यस्य स्फूर्त्तिलवाय हन्त हृदये योगी समुत्कण्ठ्यते
मुग्धेयं किल पश्य तस्य हृदयान्निष्क्रान्तिमाकांक्षति।।(विदग्धमाधव)

विषयोंसे अपने मनको खींचकर मुनिगण जिन श्रीकृष्णमें क्षणभरके लिये भी मन लग जाय, ऐसी इच्छा करते हैं, उन्हीं श्रीकृष्णचन्द्रमें लगे हुए मनको वहाँसे हटाकर बृषभानुनन्दिनी विषयोंमें लगाना चाहती हैं। ओह ! हृदयमें जिन श्रीकृष्णचन्द्रमें लवमात्र स्फूर्त्तिके लिये योगी उत्कण्ठित रहते हैं, यत्न करते हैं, फिर भी स्फूर्त्ति नहीं होती, उन्हीं श्रीकृष्णचन्द्रको अपने हृदयसे हटानेके लिये बृषभानुनन्दिनी इच्छा कर रही हैं, प्रयत्न कर रही हैं, फिर भी हटा नहीं पातीं।।६७९।।

अस्तु, इधर श्रीराधाकिशोरीकी तो यह दशा है, उधर श्रीकृष्णचन्द्रकी ओरसे किशोरीके प्रति बाह्यरूपमें कहीं कोई किंचित्सा भी आकर्षण नहीं दीखता। ललिता अवसर पाकर श्रीकृष्णचन्द्रसे किशोरीके स्नेहाकर्षणकी सारी बात निवेदन भी कर देतीं है, किन्तु प्रेम-विवर्धन-चतुर श्रीकृष्णचन्द्र अपना भाव पूर्णतया सङ्गोपित ही रखते हैं। ललिता-विशाखा गन्धतक नही पातीं कि किशोरीके प्रति इनके मनमें किंचिन्मात्र भी स्थान है। यहाँतक कि वे इन दिनों जानबूझकर ऊपरसे ऐसा बेरुखीका प्रदर्शन करते हैं जिससे किशोरीके पास उनकी सखियोंके द्वारा हताशाके ही समाचार प्रेषित हों। ललिता-विशाखा श्रीकृष्णमें किशोरीके प्रति प्रेमाकर्षण बढ़ानेका अनेक प्रयास करती हैं, किन्तु उन्हें असफलता ही हाथ लगती है।।६८०-६८४।।

श्रीकृष्णचन्द्रके अन्तरमें तो किशोरीके प्रेमकी आँधी चल ही रही है। वे जिस समय वनमें कुसुमोंसे विभूषित चम्पकलताको देखते हैं, उस समय किशोरीकी स्मृतिमें उनके अङ्ग काँपने लगते हैं। समस्त चम्पकवनमें उन्हें राधाकिशोरी ही भरी दृष्टिगोचर होती हैं। उन्हें भान ही नहीं रहता कि कब उनका मयूरपिच्छ मस्तकसे गिर गया। मधुमङ्गल माला पहनाता है, किन्तु उसने कब माला पहनाई – इसकी उन्हें स्मृति ही नहीं रहती। कदम्बवनके नीरव कुञ्जोंमें वंशीपर वे राधा-राधा गाकर अपने विकल प्राणोंको शीतल करते रहते हैं, किन्तु ऊपरसे अपना आकर्षण सर्वथा गोपनीय बनाये रखते हैं।

अन्ततः विरह-व्याकुल किशोरी कुल-भय, लज्जा-गौरव – सबका परित्याग करके श्रीकृष्णचन्द्रको पत्र लिखकर भेजती हैं। वे अपनी भाव-विवशताका, सर्वस्व-समर्पणका सम्पूर्ण विवरण साङ्केतिक भाषामें अपने नखसे कमल-पत्रपर अंकित कर सखीके हाथ भेजती हैं। किन्तु उन्हें पत्रोत्तरमें भी निराशा ही मिलती है। किशोरीका हृदय चूर चूर हो जाता है; उनके जीनेकी साध ही समाप्त हो जाती है।।६८५-६८६।।

प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्र मुझे इस शरीरसे मिलेंगे, यह आशा शून्यमें विलीन हो जाती है। किशोरीको उसके आकुल प्राण यही राह दिखाते हैं कि इस जीवनमें न सही, जीवनके उस पार तो विधाता अवश्यमेव उनसे मिलनका विधान घटित कर ही देंगे। बस, भानुनन्दिनी कलिन्दनन्दिनीमें अपने प्राण विसर्जित करनेको उद्यत हो उठती हैं।।६८७।।

लताजालकी ओटसे श्रीकृष्णचन्द्र भानुनन्दिनीकी विकल चेष्टा देख रहे हैं। उनका हृदय धक्-धक् करने लगता है। रोती हुई किशोरी यमुनाके प्रवाहमें भी अपने प्रियतमकी रसमयी छवि देखने लगती है। इसी समय विशाखा आ जाती है। किशोरी उसको अपने बाहुपाशमें बाँध लेती है। सखीको आलिङ्गनमें बाँधकर किशोरी रुदन करने लगती है। भानुकिशोरी अपने हाथमें पहने नीलमणिके कंकणको उतारती हैं एवं विशाखाके हाथमें रख देती हैं – 'लो बहिन ! मेरा यह स्मृतिचिह्न मेरी प्यारी ललिताको दे देना।'' फिर मुद्रिका उतारती हैं एवं विशाखाकी अँगुलीमें पहनाने लगती हैं – " प्राणाधिके बहिन विशाखे ! चिरविदाके समय मेरी यह तुच्छ भेंट तू अस्वीकार मत करना। इस मुद्रिकाको देखकर तू कभी मुझे याद कर लेना, भला !'' विशाखा किशोरीसे लिपटकर फुफकार मारकर रोने लगती है।

रुद्धकण्ठसे भानुनन्दिनी कहती है – " तू क्यों रोती है ? बहिन ! यह तो भाग्यकी बात है, इसमें तेरा क्या दोष है ? तूने तो अपनी सारी शक्ति लगा दी फिर भी श्रीकृष्णचन्द्रका मन फिरा नहीं सकी। मेरे मन्दभाग्यको तू कैसे पलट पाती ? किन्तु अब समय नहीं है। हृदयको बहिन ! पत्थर कर ले । मेरी अन्तिम वासना तुझे सुना दे रही हूँ, धीरज धरके सुन ले। तटका वह तमाल तुझे दीख रहा है न ? अच्छी तरह तू देख ले। बहिन ! मैं तो इसे देख ही नहीं पा रही हूँ, पहले देख चुकी हूँ। इस तमालका वर्ण मेरे प्रियतम जैसा श्याम है। बस, मेरे लिये इतना ही पर्याप्त है। आह! तमालस्कन्धपर मेरे निष्प्राण शरीरको तू लिटा देना। मेरी भुजाओंसे तमालस्कन्धको वेष्टितकर सुदृढ़ बन्धन लगा देना, जिससे चिर कालतक यह शरीर वृन्दावनमें ही, तमालशाखापर चिर विश्राम करता रहे।''।।६९०।।

"किन्तु ..... हाँ ! एक बार वह चित्रपट मुझे पुनः दिखा दे। त्रैलोक्यमोहन उस मुखचन्द्रको साक्षात् तो देख नहीं सकी, महाप्रयाणसे पूर्व उस चित्रपटको ही देख लूँ; मेरे प्राण शीतल हो जायँ, उसी त्रिभङ्गसुन्दर छविमें मैं अनन्तकालतकके लिये लीन हो सकूँ !''।।६९१।।

विशाखाके धैर्यकी सीमा न रही। किन्तु उत्तर दिये बिना तो किशोरीके प्राण यों ही निकल जायेंगे। किसी प्रकार समग्र शक्ति बटोरकर विशाखा रोती हुई रुक-रुककर इतना ही कह सकी – लाडिली ! वह चित्रफलक तो यहाँ इस समय नहीं है। वह तो घरपर ही है। ।६९२।।

'आह ! इतना सौभाग्य भी नहीं !' – किशोरीने नेत्र बन्द कर लिये। उसके अङ्ग अवश हो गये। वह वहीं बैठ गयी – 'आओ ! प्रियतम ! प्राणेश्वर ! आओ ! स्वामिन् ! नाथ ! एक बार दासीके ध्यानपथमें उतर आओ ! दासीका यह अन्तिम मनोरथ तो पूर्ण कर दो।' – किशोरी अस्फुट स्वरमें आवृत्ति करने लगती है। " ओह ! उस दिवस तो हृदयका कोना-कोना तुम्हारी छविसे आपूरित था, और आज मैं तुम्हारे चित्रफलक भी देख पाऊँ – यह भी सौभाग्य नहीं ! फिर भी देखूँ कहीं वे मेरे हृदयके कोनेमें छिपे मिल जावें और मैं अपने प्राण उनके चरणोंमें न्यौछावर कर सकूँ। मेरा अस्तित्व उनके चरणोंमें ही विलीन हो जाय !' – यह कहती हुई किशोरी ध्यानमुद्रामें नयन निमीलित कर लेती है।।६९३-६९४।।

विशाखा किशोरीको क्रोड़में भरकर उच्चस्वरमें विलाप करने लगती है।।६९५।।

श्रीकृष्णचन्द्रके भी धैर्यकी सीमा नहीं रहती है। लताजाल फटता है। श्रीकृष्णचन्द्र राधाकिशोरीके सम्मुख आ जाते हैं। उन्हें देखते ही किशोरीके दुःखसे जड़वत् हुई विशाखाके प्राण भी आनन्दसे नाच उठते हैं। 'लाड़िली ! लाड़िली ! नेत्र खोल ! देख ! प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्र आये हैं ! " भानुकिशोरी नयन खोलती हैं – सचमुच ही श्यामसुन्दरको सामने खड़ा पाती है।।६९६।।

जो नीलपद्म रसना हो, फिर बन्धन न कालका हो, प्रियतम !
लेकर रसना-तूलिका चित्र लिखती मैं रह जाऊँ, प्रियतम !
जो सुखद सखीको, बालाको अनुभूति हुई, उसका, प्रियतम !
आ जानेसे उस बालकके, तब भी न लिख सकूँगी, प्रियतम ।।६९७।।

कदाचित् नील-पद्मकी संख्यामें मेरे मुखमें रसना होतीं तथा कालका बंधन बिलकुल ही नहीं होता, तब उस रसनाकी तूलिका लेकर मैं चित्र अङ्कित करती ही रह जाती।.... .. किसका चित्र? उसका चित्र – जो सुखद अनुभूति सहचरीको तथा राधाकिशोरीको नीलसुन्दरके वहाँ सहसा आ जानेसे हुई। .... किन्तु लगता है, इतना होनेपर भी यथोचित चित्र मैं अङ्कित कर नहीं सकूँगी।..........।।६९७।।

तात्विक विवेचन–विस्तार

अनादि कालसे अबतक जितनी भी साधनाएँ जिसने भी की हैं, वे सभी साधनाएँ आनन्द-प्राप्तिकी कामनासे ही की गई हैं। आनन्द ही सर्वोच्च विभु पद है। आनन्दस्वरूप हो जाना ही पूर्ण परमपद है। श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा गया है कि ब्रह्मभूत हो जानेपर भी पूर्ण आनन्दकी प्राप्ति नहीं होती। सर्वभूतोंमें सम हुआ ब्रह्मभूत महात्मा यद्यपि सोच-विचारोंसे परे प्रसन्नात्मा हो जाता है, उसकी कोई आकांक्षा नहीं रहती, फिर भी उस पदतक पहुँचे जीवको भी भगवान्की पराभक्तिकी प्राप्ति नहीं होती। वह पराभक्तिके लिये लालायित रहता है। पद्मपुराणके पातालखण्डमें आता है कि ब्रह्मविद्या पराभक्तिकी प्राप्तिके लिये तप करती हैं। ब्रह्मविद्याको स्त्रीवेषमें तप करते देखकर ऋषि उनसे जिज्ञासा करते हैं। ऋषियोंकी जिज्ञासाका उत्तर देती हुई ब्रह्मविद्या कहती हैं – यद्यपि सारे जगत्को अज्ञानसे मुक्त करके ब्रह्ममें प्रतिष्ठित कर देना मेरा कार्य है। फिर भी मुझमें महाभावरूपा पराभक्तिका अभाव है। उसकी प्राप्तिके लिये मैं तप कर रही हूँ।

महाभावरूपा पराभक्ति (प्रीति) में इस प्रकारका आनन्द है – प्रलोभन है, ह्लादात्मा प्रियतम श्रीकृष्णको सुखी देखकर सुखी होनेका समाकर्षण है कि स्वयं ब्रह्मविद्या एवं भगवान्की कोटिके देव शङ्करजी एवं पितामह ब्रह्माजी आदि भी इस भावकी प्राप्तिके लिये, इस रसका आस्वादन करनेके लिये लालायित रहते हैं। स्वयं परात्पर परब्रह्म सच्चिदानन्दकन्द श्रीकृष्ण भी इस प्रीतिरसमें पूर्ण एकमेक होनेके लिये प्रेमलीला करनेको बाध्य होते हैं, जिससे इस परम पुनीत परमादर्श प्रेमराज्यकी थोड़ीसी झाँकी जगत्को मिल सके। यह प्रेम ही भगवान्का परात्पर स्वरूप है। यह भगवान्के स्वरूपानन्दका सार है। श्रीप्रियाप्रियतमका मिलन-सुख ही इस प्रेमका फल है। प्रिया-प्रियतमके भावमिलन-सुखकी अनन्त उद्दाम तरङ्गें हैं। आह्लादिनी तत्वोदधिकी उद्दाम तरङ्गें ही रति, प्रेम, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव एवं महाभावरूपमें निरन्तर उमड़ती रहती हैं। श्रीराधामाधव प्रिया-प्रियतमका हृदय ही वह क्षेत्र है जहाँ ये अनन्त महानन्दकी ऊर्मियाँ लहराती रहती हैं। प्रियतम श्रीकृष्णके आनन्दका नाम राधा है और राधाके प्रेम (आनन्दसार) का नाम श्रीकृष्ण उनके प्रियतम है।

इन दोनों आनन्दसिन्धु राधा-माधवके उद्दाम प्रेम-मिलन-सुखको ही शब्दचित्र द्वारा छन्द सं.६९७में व्यक्त करनेका प्रयास पू.गुरुदेव कर रहे हैं।

भला यह प्रेम-मिलनका सुख जो अनिर्वचनीय है, अचिन्त्य है, मात्र अनुभवगम्य है, वह शब्दों द्वारा कैसे कहा जा सकता है ? वाणीदेवी जहाँ एक साधारण-सी मानवेन्द्रिय जिह्वाके द्वारा अनुभूत गुड़ (मिष्ट पदार्थ) का स्वाद तो बता ही नहीं सकती, वह गुड़का मीठापन और हलवेके मीठेपनमें भेद तो दर्शा ही नहीं पाती। फिर उस महाह्लादात्मा एवं ह्लादिनीशक्तिके परस्पर महाभावसार – प्रथम मिलनके नव-नवायमान सुखको – अशब्द अनुभवको शब्द कैसे दे पावेगी? अचिन्त्य, अनिर्वचनीय प्रेमसुखको कैसे वाणी द्वारा कथन कर सकेगी ?

इसी असम्भावनाको दरसानेके लिये पू.गुरुदेव कहते हैं कि यदि किसीके पास कथनके उपकरणरूपमें नील-पद्म रसनाएँ हों जिनसे वह कथन कहा जावे एवं इस कथनको कहते रहनेके लिये कालका बन्धन नहीं हो, अनन्तकालतक नील-पद्म रसनेन्द्रियोंसे कोई कहता ही रहे, तब भी उस नीलमणि नन्दतनयके आगमनसे उस काल राधाकिशोरीको एवं उसकी संखी विशाखाको जो सुख हुआ, उसका वर्णन वह नहीं कर सकेगा।

जैसे कोई कवि चुन-चुनकर कल्पना सरस अपनी, प्रियतम !
गुम्फित कर उसको माला में प्राणों में ही रख ले, प्रियतम !
सम्मान-गर्व के कर से वह अस्पृष्ट सर्वथा हो, प्रियतम !
जो है उल्लास भरा उसमें, आया वह दोनों में, प्रियतम ।।६९८।।

जैसे कोई कवि अपनी सरस कल्पनाओंको चुन-चुनकर, उनको मालामें गुम्फित करके, अपने प्राणोंमें ही छिपाकर रखले, सम्मान एवं गर्वके हाथोंसे वह माला सर्वथा अस्पृष्ट रहे, उस मालामें जो एक नित्य उल्लास भरा होता है, वही उल्लास राधाकिशोरी एवं उस नील बालकमें सब ओरसे परिपूर्ण हो उठा।।।६९८।।

तात्विक विवेचन-विस्तार

विशाखाभाव, ललिताभाव कितना पवित्र है, उसे वाणीसे कहा ही नहीं जा सकता। वहाँ न लोक है, न ही लोकसंग्रह है, वहाँ श्रीकृष्ण न तो भगवान् हैं, न ही लोकनेता हैं। इन्हें श्रीकृष्णकी प्रीतिलाभ हो – इसकी भी कोई आकांक्षा नहीं, इन्हें केवल अपने प्रेमास्पदके सुखकी स्मृति है और कुछ नहीं। आकांक्षा, वासना वहाँ होती है जहाँ अहं होता है। प्रेमप्राप्तिकी भी इच्छा वहाँ होती है जहाँ अहंके मङ्गलकी लालसा हो। जहाँ अहंका पूर्णरूपेण विस्मरण है, वहाँ कैसी आकांक्षा एवं किसकी वासना। विशाखा, ललिता – कोई भी गोपी मात्र इसी बातको लेकर जीवन धारण किये है कि राधामाधव-मिलनसुखकी सामग्री एकत्रित कर दें। इनके जीवनका सहज स्वभाव है – श्रीराधाका सुख, इनके प्रियतम श्रीकृष्णका सुख। इन्हें जगत्की स्मृति नहीं , ब्रह्मकी परवाह नहीं, ज्ञानका प्रलोभन नहीं, मुक्तिकी कामना नहीं। यहाँ अज्ञानका तिमिर नहीं, क्योंकि अज्ञानका मूल है – 'मैं' नामक देहभाव। गोपी ज्ञानकर्मादिसंस्पर्शशून्य है। गोपीसे कोई कर्म होता ही नहीं। क्योंकि वह है ही नहीं। जो है ही नहीं, उससे कर्म कैसे हों ? गोपी है ही श्रीराधाके आह्लादकी हेतु। वह 'स्व एवं अहंमें निहित ही नहीं है। वह श्रीराधामें ही निहित है। वह सोती नहीं, अलसाती नहीं, घरसे भागती नहीं, फिर भी घरमें रमती नहीं। यों गोपीके जीवनका एक-एक क्षण श्रीराधा-माधवकी सेवामें ही रममाण है। फिर भी उसमें क्रियाका पूर्ण अभाव है क्योंकि उसकी समग्र क्रिया प्रिया-प्रियतमके सुखार्थ है, स्वसुखार्थ नहीं। गोपीको 'मैं ब्रह्म हूँ' यह ज्ञान सर्वथा सर्वांशमें नहीं है, किन्तु उसे यह पूर्णतया ज्ञान है कि उसके श्रीकृष्ण ही परात्पर परब्रह्म पूर्ण परमात्मा हैं, एवं उसका मैं श्रीकृष्णका है। जिस ज्ञानसे ज्ञानकी सत्ता सिद्ध होती है, वह ज्ञान गोपीको नहीं है, किन्तु जिस ज्ञानसे श्रीकृष्णकी सत्ता सिद्ध होती हैं, वह ज्ञान गोपीको पूर्ण, पूर्णतम है। उसके चित्तसे श्रीकृष्णाकारताका लोप कभी होता नहीं, ब्रह्माकांरता उसे कभी होती नहीं। इसीलिये गोपीको कृष्णसुख होता है, ब्रह्मसुखका कभी अनुभव ही नहीं होता।

गोपी मुक्तिका पल-पल तिरस्कार करती है, क्योंकि उसकी मुक्तिका अर्थ श्रीकृष्णसे मुक्ति है। संसारदुख जिसके मनमें हो, वह संसारदुखसे मुक्ति चाहे। गोपीमें संसार है ही नहीं, वहाँ तो मन कृष्ण, बुद्धि कृष्ण, इन्द्रियोंकी अनुभूति भी कृष्ण -ही-कृष्ण है। उसकी चेतना भी कृष्णको समर्पित है, तब उसमें संसार, अज्ञान है ही नहीं। फिर मुक्ति किससे ? विलक्षण गोपीभाव है यह ! इसकी मूर्त्तिमान् स्वरूपा हैं श्रीविशाखा एवं ललितादि सखियाँ।

इन राधामुख्या गोपियों – ललिता-विशाखादिके प्राण-सार-सर्वस्व प्रियतम श्रीकृष्ण भी न तो योगेश्वर योगसिद्ध महापुरुष हैं, न ब्रह्माका ज्ञानगर्वज्वर, स्रजनगर्वज्वर, इन्द्रका शक्तिगर्वज्वर, राक्षस राजाओंका बलगर्वज्वर हरण करनेवाले लोकनायक ही हैं। वे न तो दुर्जननाशक हैं, न दीन-दुर्बलोंके बन्धु ही हैं; वे न धर्म-संस्थापक हैं, न ही पूतना, शकटासुर, तृणावर्त्त आदिके मुक्तिदाता ही हैं, न ही वे कंसारि मल्ल योद्धा हैं, न चमत्कारी विराट् पुरुष हैं, वे न सारथी हैं, न ही वे गीताज्ञानोपदेशक हैं; न ही वे कूटनीति-विशारद हैं, न वाग्मी हैं। न ही वे जगद्गुरु हैं, न ही शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी अमित तेजस्वी अद्भुतकर्मा हैं, न ही वे निर्गुण-निराकार निर्विशेष ब्रह्म हैं, न ही वे सगुण-साकार-सविशेष भगवान् हैं; उनके प्रियतम श्रीकृष्ण तो मात्र आह्लादरसके सार-सर्वस्व मात्र प्रेमी हैं, रसिकशेखर, रससागर हैं, प्रेमघनमूर्त्ति हैं, उनके श्रीकृष्ण मात्र ह्लादात्मा हैं। गोपियाँ मात्र ह्लादात्मा श्रीकृष्णकी ह्लादिनीशक्ति श्रीराधाकी कायव्यूहरूपा हैं। अतः इन ह्लादिनी कायव्यूहरूपा शक्तियोंको ह्लादिनी-ह्लादात्माके मिलनपर कैसा आह्लाद हुआ होगा, इसे वाणी एवं शब्द देना तो साक्षात् वाणीदेवी सरस्वतीके लिये भी असंभव है। ह्लादात्मा एवं ह्लादिनीशक्तिका अर्थ ही है कि अनन्त मायाराज्य, विश्व-ब्रह्माण्डोंमें जो, जहाँ, जितना भी आह्लाद हो, वह सब मात्र जिसकी छायाका कण मात्र हो। अतः उस विशुद्ध आनन्द-प्रवाहके दो सिन्धुओंके उच्छलित मिलनका जो आह्लाद है, उसे नित्य अनुभघ करनेवाली इन गोपियोंके सुखका अङ्कन भला किसकी सामर्थ्य है ?

हाँ ! यह अवश्य है कि श्रीराधा-माधवकी विशुद्ध प्रीतिकी सरस छाया उनकी अनन्त कृपासे उस कविके हृदयमें अवश्य आपूरित हो सकती है, जिसकी रसमयी कल्पनाका लक्ष्य हो ऊर्ध्वतम सर्वानन्दस्वरूप प्रिया-प्रियतमका प्रेमानन्दविधान। किन्तु वह कवि अहङ्कारमूलक गर्व एवं सम्मानसे सर्वथा अछूता होना आवश्यक है। यह पहली शर्त्त है। बात यह है कि किसी अन्धे व्यक्तिकी सरस कल्पनामें तो प्रिया-प्रियतमके प्रेमानन्द-विधानका सूर्य उदित हो सकता है किन्तु जो कवि अन्धतम कामग्रस्त हुआ विवेकहीन हो चुका है एवं बुद्धि-विपर्ययसे कामको प्रीति मान रहा है उसपर कृपा होनी असंभव ही है। काममूलक शृङ्गार-भावना इतनी भयानक वस्तु है कि वह कल्याण-साधनसे गिराती ही नहीं, सर्वनाश ही कर डालती है। कामकी दृष्टि ही रहती है अधः इन्द्रियोंकी तृप्तकी ओर। कामसे अधःपतन होता है एवं प्रेमसे भगवद्रसका दुर्लभतम आस्वादन प्राप्त होता है। कामके प्रभावसे विद्वान्की विद्वत्ता, बुद्धिमान्की बुद्धि, त्यागीका त्याग, संयमीका संयम, तपस्वीकी तपस्या, साधुकी साधुता, विरक्तका वैराग्य, धर्मात्माका धर्म, ज्ञानीका ज्ञान – बात-की-बातमें विनष्ट हो जाता है। इस कामका बाप है अहङ्कार। अहङ्कार, गर्व एवं सम्मानकी भावनासे भरा कवि कामभावयुक्त ही होगा, काममुक्त हो ही नहीं सकता। अहङ्कार, गर्व एवं सम्मानकी भावनाके बीज जिस कविमें पल्लवित हैं, वहाँ लौकिक दृष्टि ही होगी, परमात्मदृष्टिका पूर्ण अभाव ही होगा। अहङ्कार सदैव देहबद्ध ही होता है। जो देहाध्यासरूप मदमें छका है, उसे भौतिक अङ्गोंके मिलन-सुखका ही घ्यान होगा। उसके हृदयकी कल्पना भी कुरसभरी, इन्द्रिय-भोगोंमें सुखकी भावनासे ही ग्रस्त होगी। अतः ऐसे कुकविके चित्तमें श्रीराधामाधवके प्रेम-शृङ्गारकी सरस कल्पना झाँक ही नहीं सकती। जैसे सूर्यके प्रचण्ड प्रकाशमें अन्धकारकी कल्पना ही नहीं है, ऐसे ही जिस कविके हृदयमें कामान्धताका लेश भी यदि न हो और वह कवि यदि अपनी सरस कल्पनाओंकी गुम्फित माला अपने प्राणों एवं हृदयमें सँजोकर रखले, किसीके सम्मुख व्यक्त करनेकी भावना नहीं रखे, तब उसे जो अहङ्कारशून्य विशुद्ध उल्लासका अनुभव होगा, वह उल्लास *अवश्य उन दोनों प्रिया-प्रियतमके मिलनोल्लासकी कुछ समानता कर सकेगा। जो भी कवि अपनी*

सरस कल्पनाओंको दूसरे व्यक्तिको सुनाकर उससे सम्मान चाहेगा, वह विशुद्ध रसिक कदापि नहीं हो सकता। विशुद्ध रसिक सदैव आत्मसुखमें डूबा एवं छका रहना ही चाहेगा। इस सरसतामें डूबना एवं छके रहनेसे जो प्रेम उत्पन्न होता है, वही भगवद्रसका दुर्लभ आस्वादन प्राप्त करता है। अतएव इस पवित्रतम विशुद्ध प्रिया-प्रियतमकी मिलनोल्लासकी छाया तो उसी कविके हृदयमें परिपूरित हो सकती है, जिसमें लौकिक दृष्टि है ही नहीं, जिसे न प्राकृत भूतोंकी स्मृति है, न ही भौतिक अङ्गों एवं प्रत्यङ्गोंके सुख-साधनकी कल्पना है। जहाँ कामजगत्की सम्बन्ध-लेश-कल्पना ही नहीं है, उसी विलक्षण हृदयमें राधा-माधवका मिलन-सुख प्रकाशित हो सकता है।।६९८।।

पावन अनुरागमयी धारा दो बह-बहकर दृगसे, प्रियतम !
इस देश-कालकी सीमासे उस पार पहुँच करके, प्रियतम !
हो जायँ संगमित, उनमें जो शीतलता रहती है, प्रियतम !
थी आत्मसात् कर रही वही दोनोंके प्राणोंको, प्रियतम ॥६९९॥

जैसे अत्यन्त पवित्र-से-पवित्र अनुरागमयी दो धारायें दृगोंसे बह- बहकर, फिर इस देशकालकी सीमासे उस पार पहुँच करके सङ्गमित हो जायें, उनमें जो नित्य शीतलता रहती है, वही शीतलता इस समय उन दोनों प्राणोंको आत्मसात् कर रही थी।।।६९९।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

पू.गुरुदेव छन्द सं. ६९९में यही बतानेकी चेष्टा कर रहे हैं कि उनकी नायिका श्रीराधाके चित्त, इन्द्रियाँ, शरीर, बुद्धि, मन एवं अहङ्कार – सभी ह्लादिनीके सारस्वरूप प्रियतम श्रीकृष्णके प्रेम द्वारा ही सुगठित हैं, प्राकृत रक्त-मांसादि द्वारा नहीं। उनके इस काव्यकी नायिका बाला राधाकिशोरी विशुद्ध, परिपूर्ण, सबको पवित्र करनेवाले मधुर प्रेमकी सुधा-धारा हैं, जो सबको प्रेम-सुधा-धारामें प्लावित करती रहती हैं। अतः ये उसीके हृदयमें प्रकट होती हैं, जन्म लेती हैं जिस हृदयमें उनके प्रियतम श्रीकृष्णको स्नेहदान करनेकी तड़प हो। रूपके सदन प्रियतम श्रीकृष्ण जिसके मनको प्रेमोन्मत्त करके इतना रसमसृण कर दें कि उसके दोनों नेत्रोंसे प्रेमाश्रुओंकी मधुर धारा सदैव निखरती-बिखरती रहे। यह नयनोंके माध्यमसे बहती मधुके समान मीठी मधुर चिन्मय रसमयी धारा उसे प्राकृत देशकालके परे ले जानेमें समर्थ हो जाये और तब सौन्दर्य-माधुर्यके सदन प्रियतम श्रीकृष्णसे उसे सङ्गमित करदे। जब वह प्रेमी मर्त्यजगत्के कामोपभोगसे पूर्णतया मुक्त होकर नित्य दिव्य प्रेमसरितामें बहता है, उस पावन क्षणमें उसे जिस मृदुता, शीतलता, मधुरताका अनुभव होता है, वही शीतलता उस मिलनक्षणमें बाला श्रीराधा एवं उसके प्रियतम नन्दतनयको हो रही थी।।६९९।।

है नहीं अहंता जहाँ, नहीं है बुद्धि, न ये गुण हैं, प्रियतम !
है नहीं प्रकृति भी जहाँ, अहो! केवल चिति-ही-चिति है, प्रियतम !
जो है गम्भीरता नित्य वहाँ निरूपम अद्वयपनकी, प्रियतम।
थी व्यक्त हो रही वही, भला, दोनोंके प्राणोंमें, प्रियतम ॥७००॥

जहाँ यह अहंता नहीं है, बुद्धिकी वृत्ति भी नहीं है, न यह प्राकृत गुण ही हैं; और तो क्या, जहाँ यह प्रकृति भी नहीं है, तथा अहो ! बस, जहाँ केवल चित्त-ही-चित्त है, जहाँ अद्वयपनकी नित्य निरुपम गम्भीरता परिपूरित रहती है वही राधाकिशोरी एवं नीलसुन्दरके प्राणोंमें उस समय व्यक्त हो रही थी, भला! ।।७००।।

तात्विक विवेचन-विस्तार

छन्द सं.७०० में एक अतिशय क्लिष्ट सत्यका प्रकाश हुआ है। वेदान्त शास्त्र कहता है कि इच्छा प्राकृत मनकी ही वृत्ति है। जहाँ मन है ही नहीं, वहाँ कोई भी इच्छा – भले ही वह विशुद्ध श्रीकृष्ण-सुखेच्छा ही क्यों न हो, उत्पन्न हो ही नहीं सकती। छन्द सं. ७००में वर्णन है कि राधा-माधवके ब्रजलीलाराज्यमें (मन) बुद्धि-अहङ्कार आदि प्राकृत त्रिगुणात्मक गुण हैं ही नहीं, इन सबकी मूल अव्याकृत प्रकृति ही नहीं है। जिस ब्रजमें मूल अव्याकृत प्रकृति ही नहीं है, फिर यह सम्पूर्ण ब्रजक्षेत्र – महल, मकान, ग्राम, पृथ्वी, सूर्य, चर-अचर प्राणी, उनके शरीर, उनके मन-बुद्धि कहाँसे आ गये हैं ? यह एक कूट प्रश्न है।

इस सबका समाधान यही है कि जैसे अचित् अविद्यामूलसे उत्पन्न यह प्राकृत जगत् है, ठीक इसी प्रकार चितिके मेलसे भी अघटन-घटना-पटीयसी लीलामहाशक्ति योगमाया विलक्षण भागवती प्रेमजगत्का प्राकट्य करती है। इस लीलाजगत्में पूर्ण द्वैत एवं अनेकता होते हुए भी एक विलक्षण निरुपम अद्वयपनेकी गंभीरता सभीमें परस्पर सरसती रहती है। इस तथ्यको ही छन्द सं.७००में उजागर किया गया है। इसे तनिक और विस्तारसे समझ लें।

भगवान् श्रीकृष्ण पूर्ण सच्चिदानन्दकन्द हैं। भगवान्के सत् अंशकी शक्तिका नाम है संधिनी। इसी प्रकार उनके चिदंशकी शक्तिको कहते हैं 'चिति' और उनकी आनन्द, आह्लादशक्तिको ह्लादिनीशक्ति कहा जाता है।

स्वयं सदात्मा होकर भी भगवान् जिस शक्तिके द्वारा अपनी एवं अन्य अनेकों चर-अचर प्राणियोंकी, लीलापात्रोंकी सत्ता धारण करते हैं, उस शक्तिका नाम सन्धिनीशक्ति है, जिसकी चरम परिणति वृन्दावनधाम, ब्रजक्षेत्र है। ब्रजक्षेत्रमें इसीलिये अविद्यामयी अव्याकृत प्रकृति नहीं है क्योंकि यहाँ विशुद्ध सत्वरूपा अप्राकृत चिति क्रियाशील है। यह भगवान्के चिदंशकी परिणति है। भगवान्की चिच्छक्तिके कारण ही नित्य ज्ञानस्वरूप ज्ञानात्मा होकर भी भगवान् अपनेको भी जानते हैं, साथ ही यह भी जानते हैं कि यह मैया यशोदा है, ये नन्दबाबा हैं, ये राधाकिशोरी हैं, एवं ये ललिता-विशाखादि सखियाँ हैं। जहाँ भगवान्की सर्वज्ञताशक्ति इसी विशुद्ध चितिके हेतुसे है, वहीं उनकी सार्वत्रिकता, सर्वशक्तिमत्ता – जिससे वे सर्वत्र हैं, सर्वशक्तिनिकेतन हैं, उनकी संधिनीशक्तिका परिणाम है। इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णमें प्रेम, सर्वसौहार्द, उनकी आनन्दशक्ति – आह्लादशक्तिके हेतुसे है। यह प्रेम ही श्रीकृष्णसुखेच्छारूप होकर श्रीराधाकी मूलवृत्ति है। यह प्राकृत मनका प्रकाश नहीं है।

जैसे लोहा जब अग्निसे तादात्म्य कर लेता है, तब प्राकृत धातुपिण्ड होते हुए भी जलाने आदिके अग्निके गुण उसमें स्वतः प्रकट हो जाते हैं, उसी प्रकार जब किसी भक्तका प्राकृत मन भी ह्लादिनीप्रधान विशुद्ध सत्त्वसे तादात्म्यलाभ कर लेता है, तब उसमें श्रीकृष्णसुखेच्छारूप प्रेम जो श्रीराधाकी विशुद्ध सत्वमयी वृत्ति है, स्वतः जगमगाने लगती है। वह प्राकृत मनकी वृत्ति नहीं है।

जैसे सत् चित् आनन्दादि भगवान्के गुणोंको भगवान्से एवं परस्पर एक दूसरेसे भी पृथक् नहीं कर सकते, इन तीनों गुणोंमें जैसे निरुपम अद्वयपना है, उसी प्रकार चिति, संधिनी एवं ह्लादिनी इन तीनों शक्तियोमें भी भगवान् श्रीकृष्ण स्वयंसे भी, साथ ही परस्पर एक दूसरेसे भी, निरुपम विलक्षण अद्वयभाव है। सन्धिनीमें पूर्णतया ह्लादिनीशक्ति ओतप्रोत है, सन्धिनी एवं ह्लादिनीका अमिट एकत्व है, उन्हें विलग, पृथक् कोई कर ही नहीं सकता। उसी प्रकार सन्धिनी एवं चितिका एवं चिति और ह्लादिनीका परस्पर एकत्व समझना चाहिये। इन सभीमें जो निरुपम अद्वयपनेकी, एकमेवत्वकी गंभीरता नित्य व्यक्त है, वही प्रिया-प्रियतम श्रीराधामाधवके परस्पर मिलनके समय उनमें व्यक्त हो रही है – यही इस छन्दका तात्विक आशय है।।७००।।

कितना-सा समय लगा उनको इस कालमानसे था, प्रियतम!
अब पुनः लौटकर आनेमें तत्रस्थ कलेवरमें, प्रियतम!
जग उठे और सो गये अहो! शतबार चतुर्मुख थे, प्रियतम!
इतना-सा या दो दण्ड मात्र तुम एक जानते हो, प्रियतम॥७०१॥

इस कालमानसे उन दोनोंको अपने यथास्थित कलेवरमें लौट आनेमें कितना समय लगा, अहो ! शतवार चतुर्मुख जग-जगकर पुनः सो गये, इतना-सा अथवा केवल दो दण्ड मात्र ही समय लगा, इसे तो एकमात्र तुम्हीं जानते हो, मेरे नीलसुन्दर देवता !।।७०१।।

तात्विक विवेचन-विस्तार

पूर्व छन्दमें जैसे प्रिया-प्रियतमके चिन्मय मिलनके समय उनमें संघटित होनेवाले निरुपम अद्वयपनेका वर्णन है, इसी प्रकार इस आगेके छन्दमें उनके मिलनके चिन्मय कालको सङ्केतित किया गया है। बात यह है कि चिन्मय जगत्में कालजनित अवश्यंभावी परिणामोंपर भी अघटन-घटना-पटीयसी योगमायाका ही शासन रहता है। चिन्मय जगत्में काल भी चिन्मय ही होता है। दुरत्यय गुणमयी मायाशक्तिके अन्तर्गत जो जड़ कालसत्ता है, वह वहाँ कोई अर्थ ही नहीं रखती। इसीलिये पू.गुरुदेव कहते हैं कि प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवको अद्वय भावमें प्रतिष्ठित होकर परस्पर मिलित रहते कितना काल व्यतीत होगया उसकी समयावधि सङ्केतित करके प्राकृत जीवोंको बतलाना संभव ही नहीं है। चिन्मय जगत्में तो राधा-माधवके इस मिलनमें मात्र दो दण्ड काल ही व्यतीत हुआ था, किन्तु इस जड़ जगत्में उतनेसे चिन्मय कालके व्यतीत होते-होते सौ बार पितामह ब्रह्माजी जाग-जागकर पुनः सो गये थे। यहाँ समझनेकी बात है कि प्राकृत जड़ जगत्के कालमानसे ब्रह्माजीकी एक त्रुटि पूरा एक वर्ष होती है। एक दिनके अट्ठारह करोड़, बाईस लाख पचास हजारवें भागको त्रुटि कहा जाता है। अर्थात् प्राकृत जड़जगत्के कालमानसे ब्रह्माजीका एक दिन हमारे लिये अट्ठारह करोड़ बाईस लाख, पचास हजार वर्षका काल होता है। इतनी ही दीर्घ उनकी रात्रि होती है। जड़ जगत्की इतनी लम्बी अवधिके ब्रह्माजीके सौ दिन-रात व्यतीत होनेतक चिन्मय जगत्में श्रीराधामाधवका मात्र दो दण्ड कालमान ही मिलन संभव हुआ। चिन्मय जगत्में दो दण्ड कालतक ही प्रिया-प्रियतम श्रीराधामाधव उस महामिलन समाधिमें डूबे रहे, पश्चात् वे अपनी-अपनी स्थितिपर लौट आये।।७०१।।

जो हो, रजनीके अञ्चलमें बसनेवाली सुषमा, प्रियतम!
उनके लोचनकी पलकोंको छू-छूकर धीरेसे, प्रियतम!
संकेत लगी करने विशुद्ध रसकी उस पद्धतिका, प्रियतम!
वे तभी प्रकृति अपनी-अपनी स्वीकार कर सके थे, प्रियतम॥७०२॥

जो हो, रजनीके अञ्चलमें बसनेवाली वह सुषमा उनके लोचनोंकी पलकोंको छू-छूकर धीरेसे उस विशुद्ध रस-पद्धतिका जब सङ्केत करने लगी वे तभी अपनी प्रकृतिको स्वीकार कर सके थे भला !।।७०२।।

तात्विक विवेचन-विस्तार

ज्ञानकी ज्योतिका उद्भव नन्दनन्दनके चरणनखोंसे होता है अतः प्रकाशरूप होनेके कारण वह ज्योति अनन्तकोटि सूर्य-समप्रभ है। प्रीतिकी विमल धारा तो प्रिया-प्रियतम श्रीराधामाधवके कजरारे नयन-सरोजोंसे उद्गमित होती है, अतः उसमें रजनीके अञ्चलमें बसनेवाली कृष्ण-सुषमा भरी होती है। यद्यपि पूर्व छन्दमें वर्णित अद्वयपनेकी निरुपम गंभीरता

उसमें नित्य है फिर भी ज्ञानकी वह लौ प्रीतिकी स्निग्धतामें समा जाती है। प्रीतिकी स्निग्धता ही ज्ञान-ज्योतिकी जननी है। रजनीके अञ्चलमें बसनेवाली प्रीतिकी स्निग्धतासे युक्त कृष्ण-सुषमा जब सान्द्र-सान्द्रतर होती हुई उन दोनोंके लोचनोंकी पलकोंको छू-छूकर सङ्केत करने लगती है कि विशुद्ध प्रीतिरसकी पद्धति इस प्रकार अद्वय भाव-समाधिस्थ होजाना कदापि नहीं है, वह तो प्रेमास्पदके चरण-सरोजोंकी निर्बाध सेवाकी तत्परता और जागरूकता है, जब वह कृष्ण-सुषमा उपरोक्त सङ्केत करने लगती है तभी वे दोनों उस जागरण-सङ्केतको सुनकर अपनी-अपनी नाम-रूपात्मक अप्राकृत प्रकृतिको स्वीकार कर पाते हैं।।७०२।।

तीनोंके ही मुखसे कोई निस्सृत न हुई वाणी, प्रियतम !
थी प्रणय-रोषकी छाया-सी क्षणभर केवल आयी, प्रियतम !
चञ्चल-सी हुई सहचरीके मुखपर इतनेमें ही, प्रियतम !
आँखें उसकी उन दोनोंके आननपर नाच उठी, प्रियतम।।७०३।।

राधाकिशोरीके, नीलसुन्दरके एवं सहचरीके मुख सरोजसे कोई भी वाणी निस्सृत न हो सकी। केवल सहचरीकी आँखोंमें प्रणयरोषकी छाया-सी क्षणभरके लिये झाँक गयी थी। सहचरी उस समय चञ्चल-सी हो गयी। उसके मुखपर उसके हृदयगत भाव सुस्पष्टरूपसे अङ्कित हो गये थे। किन्तु सहसा सहचरीकी आँखें राधाकिशोरी एवं नीलसुन्दरके मुख-सरोजपर नाच उठी।।७०३।।

बाला-बालकके गालोंपर जो बनी लोर-रेखा, प्रियतम !
उसके ही अन्तरालसे था उनका उर बोल रहा, प्रियतम !
सहचरी, भला, अब बालकको क्या उपालम्भ देती, प्रियतम !
लग गयी याद करने रसकी भाषाका ककहारा, प्रियतम।।७०४।।

राधाकिशोरी एवं उस नीलसुन्दर बालकके कपोलोंपर जो अश्रुकी रेखा बन गई थी, बनती जा रही थी उसीके अन्तरालसे उनका हृदय बोल रहा था। ऐसे समयमें अब सहचरी भला उन नीलसुन्दर बालकको क्या उपालम्भ देती! वह तो रसकी भाषाका ककहरा मात्र स्मरण करने लग गयी।।।७०४।।

तात्विक विवेचन-विस्तार

प्रेमकी विचित्र लहरें जो अबतक श्रीराधा-माधव एवं सखी विशाखाको प्रीतिके अद्वैत-अतल तलकी ओर ले गयी थीं अब प्रेम-सिन्धुमें संतरण कराने लगती हैं। तीनों एक दूसरेको अत्यन्त सतृष्ण नेत्रोंसे देखने लगते हैं, किन्तु किसीके भी मुखसे वाणी निःसृत नहीं होती। प्रियाप्रियतम एवं सखीकी प्रेमलालसा निर्मलतमरूपमें दैन्यके सौरभसे सुरभित होकर व्यक्त होने लगती है।

बाला भानुकिशोरीके कामगन्धहीन, स्वसुखवांछा-वासना-कल्पना-गन्धसे सर्वथा रहित केवल प्रियतम-सुख-तात्पर्यमय विशुद्ध प्रेम उसके नेत्रोंको उसके हृदयको निर्मल दर्पण बना देता है। उन निर्मल दर्पण सदृश नेत्रोंने और उनके माध्यमसे श्रीराधाके हृदयने अपने प्रियतम श्रीकृष्णके परमोज्ज्वल माधुर्यको ज्योंही ग्रहण किया, श्रीकृष्ण-माधुरीकी जगमगाती ज्योति अपनी प्रिया राधाके हृदयको और भी अधिक स्वच्छ एवं निर्मल ज्योतिर्मय कर देती है। इस प्रकार राधाप्रेमरूप दर्पणमें प्रतिफलित ज्योति अनवरतरूपसे श्रीकृष्णके माधुर्यको और प्रियतम श्रीकृष्णका माधुर्य प्रियाके प्रेमको बढ़ाता ही जाता है। अब तो दोनों प्रिया-प्रियतम – बाला एवं उस नीलमणि बालकके गालोंपर प्रेमद्रवित हृदयोंको सङ्केतित करनेवाली नेत्रोंकी अश्रुधारा लोरके रूपमें प्रवाहित होने लगती है।

अवश्य ही सखी विशाखा निज सखी-प्रेमके और अधिक प्रगाढ़ हो जानेसे स्नेहकी मधुरताका विशेष रसास्वादन करती हुई दक्षिणभावका परित्याग कर बैठती है। अदम्य वेगमयी भागीरथीका तीव्र प्रवाह जैसे तनिक-सी भी बाधा नहीं सह सकता है, उद्दीप्त गर्वसे उच्छ्वसित हो उठता है, इसी प्रकार विशाखासखीके नयनोंमें क्षणभरके लिये वक्र प्रणय-रोषकी छाया अवश्य आती है किन्तु अपनी सहचरी राधाके एवं नीलमणि नन्दनन्दनके आननपर बहती प्रेमाश्रुधाराको देखते ही, उनकी विलक्षण परस्पर तत्सुखभावमयी प्रीतिको निरखकर उसकी आँखें हतप्रभ-सी उनके आननपर रमं जाती हैं, वहीं प्रेमनृत्य करने लगती हैं। बाला राधा एवं उसके प्रियतम ब्रजकिशोरके प्रेमपूरित हृदय तो गालोंपर बहती अश्रुधाराकी भाषामें ही अपनी सब व्यथा-कथा कह रहे होते हैं। अब सहचरी उस बालकपर रोषकर उसको क्या उपालंभ दे ? वह भी रसका ककहरा सीखने लगती है, अर्थात् उसके नेत्र भी अश्रुवर्षा करने लगते हैं।७०३-७०४।।

साखी देता शशि था नभमें ऊपर उठकर तरु से, प्रियतम !
नीली प्रवाहिणी कल-कलकर शुभ गीत गा रही थी, प्रियतम !
धो रही सखी थी दृग-जलसे परिणयकी वेदीको, प्रियतम !
विद्युल्लहरीका कर धारणकर कृष्ण-वारिधर था, प्रियतम।।७०५।।

ऊपर नभमें वृक्षावलीसे ऊपर उठकर चन्द्रदेव साक्षी दे रहे थे। नीली प्रवाहिणी कल-कल रवके द्वारा मङ्गलमय शुभ गीतोंका गान कर रही थी। सहचरी अपने नयनोंके जलसे परिणयके वेदीको प्रक्षालित कर रही थी। .... तथा विद्युत्लहरीका करसरोज धारण किये कृष्ण जलधर सुशोभित हो रहा था।।।७०५।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

ओह ! यह प्रीति-मिलन रस-सुधासे भी अतिशय सुमधुर, आसव-से भी अत्यधिक मादक है। वैसे तो बाला एवं नीलमणि बालकके इस मिलनकी साक्षी सान्ध्य गगनमें उदित चन्द्रमा तरुसे ऊपर उठकर झाँक लगाये टुकुर-टुकुर निरखता हुआ दे ही रहा है। बालाके दृग अपने प्रियतमके अनिन्द्यसुन्दर रूपमें उलझे हैं एवं बालक नीलसुन्दर विद्युल्लहरी-सी अपनी प्रिया बालाके कर-सरोजोंको अपने करोंमें थामे हैं। दोनोंके नासारन्ध्रोंमें दोनोंके ही श्रीअङ्गोंका सौरभ परिव्याप्त हो रहा है। दोनोंकी रसनाएँ परस्पर एक दूसरेके अधरामृतका रस चख रही हैं। कहनेका इतना ही सार है कि प्रिया-प्रियतम किशोरी बाला एवं नीलसुन्दर अपनी-अपनी सभी एकादश इन्द्रियोंसे एक-दूसरेके असमोर्ध्व माधुर्यमें छक रहे हैं, अविराम परस्पर चिन्मय प्रेमसुधारसका बार-बार पान कर रहे हैं। कलिन्दनन्दिनी यमुना अपनी मधुस्यन्दिनी कल-कल वाणीमें इस प्रीतिरसके मधुर गीत गा रही है। सखी विशाखा अपने निर्मल-निर्मलतम प्रेमाश्रुओंसे बाला एवं नीलमणिके परिणयकी वेदीका शृङ्गार कर रही है। सखी विशाखाके प्रेमाश्रु ही कुसुम बनकर अपने सौन्दर्य एवं सौरभसे इस प्रणय-रङ्गमञ्चको विभूषित कर रहे हैं। कितनां अप्राकृत पीयूषरस है यह !।।७०५।।

निर्मल था स्वप्न, अहो! पर यह था लिये अँधेरा भी, प्रियतम!
संकल्प न था इसमें, अद्भुत विक्षिप्तपना पर था, प्रियतम!
संविद् रसमय था, फिर भी था हृत्तल की आह लिये, प्रियतम!
बालाका तो सपना था, पर जीवन यह है रस का, प्रियतम।।७०६।।

यह एक निर्मल स्वप्न था। अहो ! किन्तु यह किञ्चित् अँधेरा भी लिये था। इसमें सङ्कल्पकी कहीं कोई गंध भी न थी, फिर भी इसमें अद्भुत विक्षिप्तपना भरा था। यह संविद रसमय था, तथापि हृत्तलकी आह लिये हुए था।

राधाकिशोरीके लिये तो यह स्वप्न था किन्तु सच पूछा जाय, तो यह भूत, वर्तमान, भविष्यके संविन्मय रसका – संविन्मय जीवनका चित्र था।।।७०६।।

तात्त्विक विवेचन–विस्तार

पू. गुरुदेव कहते हैं कि बाला राधाकिशोरीको जिस परकीयाभावजन्य लीलाकी मात्र स्वप्नानुभूति हुई है वह मर्यादारहित अवैध प्रेमसाधना रसजगत्की तो प्राणतन्तु ही है। इसमें यही अन्धकार है कि यहाँ सभी लोक-जीवनके नियमोंसे पूर्णतया मुक्ति है, इसमें सनातन पद्धतिके पालनीय आचार-धर्मोंका उल्लंघन और त्याग है, जिसे लोक, वेद कलङ्करूप मानता है। यद्यपि प्रेमी ऐसा करनेका कोई सङ्कल्प नहीं करता है, प्रेमी सदाचार, शीलको हृदयसे पूर्णतया पालनीय मानता है फिर भी अपने प्रेमोन्मादके विक्षिप्तपनेमें उससे ये स्वतः ही छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। प्रेमीका संविद् (चित्त) अत्यन्त रसमय होता है, किन्तु उसमें हृत्तलकी अथाह आह (प्रीति-पीड़ा) भरी रहती है।।७०६।।

उस सपने में ही जो सपना उसको था अन्य हुआ, प्रियतम!
कह देती हूँ किंचित् यदि कह पाऊँगी, हूँ रोती, प्रियतम!
प्राणोंको है अनुभूति, किंतु वे बोल नहीं पाते, प्रियतम!
अतएव जान सकता है वह, जो है अन्तर्यामी, प्रियतम॥७०७॥

उस स्वप्नमें ही राधाकिशोरीको जो एक दूसरा स्वप्न हुआ था, उसे कह देनेका प्रयास कर रही हूँ प्रााणरमण! किञ्चित् कह पाऊँगी तो ! मैं निरन्तर रो रही हूँ, हृदयेश्वर ! प्राणोंको तो अनुभूति है किन्तु वे बोल जो नहीं पाते। अतएव जो अन्तर्यामी है वही जान सकता है नाथ ! जीवनसर्वस्व !।।७०७।।

❑

अगले खण्डमें होगा –

अष्टम शतकमें *– श्रीराधाकिशोरीका पुनः अपने स्वप्नमें ही एक नया सुखमय स्वप्न देखने लगना, निकुंजभवनमें प्रियतम नीलसुन्दरके साथ जागरणसे पुनः शयन पर्यंतकी संयोगकालीन परम मधुर लीलाएँ, कलिन्दनन्दिनीके निर्मल प्रवाहमें नौका खेना, नन्दभवन जाकर श्रीकृष्णके लिये रंधनकार्य, सोलह कौड़ियों द्वारा अक्षक्रीड़ा, रात्रिमें रासस्थलीमें रासनृत्य, शयनपूर्व किशोरीका प्रियतमको रसमय पहेलियाँ बुझाना ।*

नवम शतकमें *– ज्वाला ! अन्धकार !! स्वाहा !!! नराधम कंसके आवाहनपर अक्रूर सहित नीलसुन्दरका वृन्दावनसे मथुरा–प्रस्थान, विरहाविष्ट किशोरीका यमुनामें देहविसर्जजनके लिये प्रवेश, भगवती पौर्णमासीका प्रकट होकर उनकी प्राणरक्षा एवं धैर्यदान, बालाकी आँखोंमें सौ वर्षकी वियोग–रजनीका समा जाना।*

दशम शतकमें *– साँवर द्वारा प्रेषित दूत उद्धवका आगमन, एवं ज्ञानके प्रतिपादन द्वारा गोपियोंको धैर्यदानकी चेष्टा, गोपियोंके मानयुक्त रसोद्गार, उद्धवके ज्ञानाभिमानका विगलन, दैन्ययुक्त उद्धवकी किशोरीकी वचन–सुधा श्रवणके लिये आकुल प्रार्थना।*

एकादश शतकमें *– साँवरके प्रस्थानके समय पहनाई मालाको हाथमें लिये किशोरीका अश्रु पोंछकर सन्देश देना, भ्रमर–प्रसंग, श्रीराधाका उद्धवको वरदान, प्रियाका मूर्च्छित होकर गिरना, उन्मत उद्धवका प्रस्थान, अश्वत्थ वृक्षके नीचे निद्रामग्न किशोरीका स्वप्न टूटकर जाग पड़ना।*

।। विजयेतां श्रीप्रियाप्रियतमौ ।।

अष्टम शतक

जब उषा शयनगृह में आकर छू लेती बाला को, प्रियतम !
कहकर 'रजनी अब चली गयी, दे रही उसे मैं हूँ, प्रियतम !
'हृत्तलका प्यार', सोच में पड़, जो सो न सका, न सकी; प्रियतम !
है स्वप्नमिलन या सच्चा? तब खुलती समाधि उसकी, प्रियतम ।।७०८।।

नीलसुन्दर! प्राणनाथ! जब शयनागारमें उषासुन्दरी आकर राधाकिशोरीको स्पर्श कर लेती, यह कहकर – 'किशोरी! अब रजनी चली गई। मैं उसे अपने हृत्तलका प्यार दे रही हूँ, जो सम्पूर्ण रात्रि चिन्तामें पड़कर सो न सकी। सारी रात वे सोचते ही रह गये – यह स्वप्न-मिलन है अथवा यह सचमुच मिलन हो रहा है, ठीक इसी समय राधाकिशोरीकी समाधि खुल जाती।।७०८।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

श्रीराधाकिशोरी पुनः अपने स्वप्नमें ही दूसरा स्वप्न देखने लगती हैं। वे देखती हैं – एक अतिशय विलक्षण निकुंज है। निकुञ्ज सर्वत्र सभी भागोंमें उज्ज्वल नीलमणिवत् प्रकाशपुञ्जकी तरह ज्योतिर्मान् है। अहा! चन्दनके नवतरुओंसे यह कुञ्ज बना है। इस कुञ्जकी परिक्रमामें पानीदार फलोंसे लदे असंख्य श्रीफलके वृक्ष खड़े हैं। मलयगन्धसे इस कुञ्जकी शीतल वायु मह-मह महक रही है। कुञ्जका प्रत्येक भाग इतने अलौकिक सौन्दर्य-माधुर्यसे आपूरित है कि जिस भागपर भी दृष्टि चली जाती है, सीमातीत रूपतक वह भाग द्रष्टाको प्रेमोद्दीपित कर देता है। ऐसे निकुञ्जभवनमें एक बाला शैयामें अपने अचिन्त्य सुन्दर, कल्पनातीत मधुर, अतुलनीय ललित, असीम प्रेममय स्वभावयुक्त प्रियतमके साथ शयन कर रही हैं।

उन दोनों प्रिया-प्रियतम बाला एवं किशोरको रात्रिपर्यन्त निद्रा नहीं आयी है। वे दोनों रात्रिभर यही सोचते रहे हैं कि यह जो दृश्य उन दोनोंके सम्मुख आ रहा है, वह सत्य है किंवा क्षणभङ्गुर स्वप्न? अवश्य ही बाला नेत्र मूँदे शयित रही है। वह अपनी अनमोल वस्तु – अपने प्रियतमको अपने नयनोंमें ही निहित रखना चाहती है। वह सोचती है कि कहीं ये मेरे प्रियतम मेरे नेत्रोंसे बाहर हुए तो इधर-उधर चले नहीं जावें, मुझसे छिन नहीं जावें! यही दशा प्रियतम नीलसुन्दरकी भी है। वस्तुतः वे दोनों ही परस्पर एक-दूसरेके लिये अतुलनीय प्रीति-वैभवके निस्सीम कोष हैं। दोनोंके प्राणोंकी एक ही अदम्य लालसा है कि दोनों एक-दूसरेको अपने नेत्रोंकी पुतलियोंमें सँजोये रखें। यद्यपि दोनों शयनका नाट्य कर रहे हैं, परन्तु हैं पूर्णतया जाग्रत्। दोनोंकी ही चितवनोंसे प्रीतिरसका निर्झर झर रहा है। एक क्षण अपने-अपने प्रियतमका प्रेमभरा जो भी रूप उनके नेत्रोंमें छलकता है, झलमलाता है, दूसरे ही क्षण वह और अधिक नव-नवायमान् मधुर हो उठता है। दोनोंके ही हृदय मानो एक दूसरेके सौन्दर्य-माधुर्यको दर्पणवत् प्रतिबिम्बित कर रहे हैं। क्षण-क्षणमें दोनोंके हृदय-दर्पण एक-दूसरेकी छवि प्रकाशित करते हुए और अधिक स्वच्छ एवं ज्योतिर्मान् हो उठते हैं और परस्पर दोनोंके हृदयोंमें दोनोंकी ही व्यक्त छवि और अधिक सुन्दर होकर प्रतिबिम्बित हो उठती है। बाला किशोरी अपने प्रियतमकी छवि देख-देखकर मन-ही-मन कह उठती है - 'ओह! कितने सुन्दर हैं मेरे प्रियतमके अलकजाल! नील कमल-सदृश आननपर कृष्ण अलकावलि मँडरा रही है। अरे, अरे! लज्जाके घन आवरणमें अलिकुल अपना मुख छिपा लेता है।' इधर नन्दतनूज बालक सोच रहा है - 'कितने मृदुल अङ्ग-संस्थान हैं मेरी प्रियाके! यह मृदुलता भी नित्य नूतन होती चली जाती है। मेरे प्राणोंको तो चरम विन्दुतक समाकर्षित कर रही है यह! प्रियाकी कुञ्चित कुन्तलराशि

जिसपर दृष्टि पड़ते ही षटपद-श्रेणीका गर्व चूर्ण-विचूर्ण हो जाता है। इसके अङ्गोंके स्वाभाविक सौरभसे दसों दिशाएँ सुरभित हो रही हैं। इसके झूमते हुए कमनीय नयनोंमें कैसा अभिनव आकर्षण है! ओह! मेरी प्यारीकी पलकें निमीलित हैं, फिर भी इसकी दृष्टिसे रसकी कैसी अभिनव वेगवती सरिता बहती है, जो मुझे सुख-समुद्रमें बहा ले जाती है। अवश्य ही मेरे रसदानकी मधुरिमामय अभिसन्धिको लेकर ही अघटन-घटना-पटीयसी योगमायाने इस मेरी प्रियाकी देहयष्टिका निर्माण किया है। इसके एक रोमकी ही विभु रसराशिका बखान करनेमें मेरी वाणी हतप्रभ हो उठती है। मेरी प्रियाकी सौन्दर्य-माधुरीकी महिमाको भाषामें बाँध देना सर्वथा सर्वांशमें असंभव है। यह तो क्षण-क्षण नित्य-नवीनतर रसमय होती रहती है।'

इस प्रकार मीलितनयन दोनों बाला एवं किशोर परस्पर एक दूसरेको सुखदान करनेके भावसे एक दूसरेपर न्यौछावर हो रहे हैं। दोनो प्रिया-प्रियतम एक दूसरेके रस, सौन्दर्य-माधुर्य, सौरभ एवं सौख्यके भावोंमें मुग्ध हुए लहरा रहे हैं।

इनकी सम्पूर्ण निशा इसी प्रकार भावोंमें लहराते-लहराते एक क्षणके कालमानके समान ही अति शीघ्र व्यतीत हो जाती है।

शुभ्र ज्योत्स्नाका परिधान, तारकावलिके अनमोल अलङ्कार धारणकर काल अपने वामार्द्धांगसे निशासुन्दरीके रूपमें वृन्दावन भूमिमें पदार्पण कर चुका है। वह आते ही अपने अन्तस्तलकी घनी नीरवता समस्त ब्रजवासियोंपर बिखेर देता है। उसकी यही शुभेच्छा है कि सभी गोप-गोपियाँ निद्राकी सुखमयी गोदमें ढल पड़ें, निशाके प्रथम प्रहरमें कभी न तन्द्रित होनेवाले वयोवृद्ध गोप भी आज निद्रा-अभिभूत हो ही उठें। काल अपने मनोरथमें पूर्ण सफल हो गया है। वह यही तो चाहता है कि बाला एवं किशोर नीलमयङ्कका प्रथम मिलन निर्बाध, निःशङ्क सम्पन्न हो।

किशोरी तो मध्याह्नकालमें ही रविपूजनार्थ रविमन्दिर गयी थी। रविपूजन करके ही वह सीधे विशाखा एवं मञ्जुश्यामा सहित यमुना-पुलिन चली आयी थी। प्राण-विसर्जनकी मनोभावनासे तो वह अनेक दिवसोंसे ही ग्रस्त थी। आज तो रविपूजनके उपरान्त वह शरीरत्यागका दृढ़ सङ्कल्प करके ही यमुनाकी ओर रविमन्दिरसे सीघे ही चली आयी थी। उसके पश्चात् उसका प्रिय-मिलन सम्पन्न हो गया था। किशोर एवं बालाके इस प्रथम मिलन-सुखकी साक्षी देता रवि अस्ताचलगामी हो उठा था एवं सान्ध्य गगनमें चन्द्रमा तमालकी टहनियोंकी ओटसे झाँकने लगा था। कालको ऐसे रसमय मिलनकी आज पहली बार ही यह झाँकी मिली थी। इस रसमय मिलनके दर्शनमें वह अपना अस्तित्व ही भूल गया है। राकाकी चन्द्रिकाने ही चिकुटी काटकर उसे भावुक न होकर सावधानी बरतनेका आदेश दिया है। उसे उसका कर्त्तव्य भी उसीने निर्दिष्ट कराया है। चन्द्रिकाने निशारूप कालको सजग करके अपना मूल कर्त्तव्यबोध करा दिया है। अतः कालने अपने निशारूपमें सघन नीरवतारूप जादूका प्रभाव ग्रामवासियोंपर इस सफलता पूर्वक किया कि क्रमशः ग्रामके सभी गोप अलसाए हुए निद्राकी सुखमयी गोदमें ढुलक पड़े। मातृ-वक्षस्थलको अलंकृत करते शिशु, सुरम्य शैयापर पौढ़ी वृद्धा गोपिकाएँ, पतिव्रता, पतिपरायणा, पतिसुख-सुखिनी युवती गोपसुन्दरियाँ, शिशुओंको अपने क्रोड़में धारण किये माताएँ, सखीजनोंको भुजपाशमें बाँधे गोपकुमारियाँ – सभीके नेत्र निद्रासे एक समान अभिभूत हुए हैं। किसी को भी किसी अन्यका ध्यान नहीं रहा है और सभी घोर निद्रासुखका अनुभव करने लगे हैं। सारांश यही है कि काननमें सर्वत्र राशि-राशि प्रस्फुटित कुसुमोंके सौरभसे सुरभित हुई शीतल मन्द बयार, नन्दनकाननकी शोभाको तुच्छ, अकिञ्चित्कर करनेवाली आजके राकाचन्द्रकी मनोहर चन्द्रिका गोपोंके, गोपसुन्दरियोंके श्रीअङ्गोंका स्पर्शकर उनके निद्रासुखको और भी गम्भीर बनाने लगती है। इस प्रकार सभी निस्पन्द, निश्चेष्ट हो जाते हैं।

अब काल निश्चिन्त होकर नीलोत्पलोंकी सुन्दर शैयामें आलिङ्गनबद्ध प्रेमसमाधिमें लीन बाला किशोरी एवं नन्दतनय किशोरको निहार रहा है। वह इस युगल छविपर न्यौछावर हो रहा है। "ओह! नवीन नील अम्बुदराशिको एकत्रकर अभिनव कौशलसे एक अपरिसीम पीयूषवर्षी अप्रतिम चन्द्रका निर्माण किया गया हो एवं उसकी ज्योत्स्ना

सर्वत्र प्रसरित हो रही हो, इस प्रकार नीलसुन्दर प्रियतमके श्रीअङ्गोंकी शोभाका निर्झर झर रहा है। निर्मल स्वर्ण शिलाको जैसे काश्मीर(केसर) विलेपित कर दी गई हो और उसके अन्तरालसे कोटि-कोटि राकाचन्द्रोंकी सुस्निग्ध ज्योत्स्ना झर रही हो, जिसकी स्वच्छता, पवित्रता एवं मङ्गलमयता शत-सहस्र सुरधुनियोंकी धाराओंको हेय बना दे रही हो, ऐसी आभा श्रीराधाकिशोरीके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंसे झलमल कर रही है। "

निशारूपमें काल अपलक नेत्रोंसे निरखता मुग्ध है। सौन्दर्यसिन्धुमें दो कुमुद परस्पर गुँथे निमीलित हों, इस प्रकार राधाकिशोरीके नयनोंकी शोभा है एवं शारदीय शशधरकी चन्द्रिकाके द्वारा नभको द्योतित देख पङ्कजने अपने नयन मूँद रखे हों, प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्रके नेत्रोंकी ऐसी विलक्षण शोभा है। प्रिया बाला किशोरीकी चूर्ण कृष्ण कुन्तलराशि उनके वाम स्कन्धको आच्छादित करती हुई प्रियतम श्रीकृणके श्रीअङ्गोंको आश्लिष्ट कर रही है एवं प्रियतमके अलकोंकी एक लट प्रियाके वाम कपोलपर विश्राम कर रही है। प्रियतमके अधर प्रियाके अधरोंसे संलग्न हैं।

उरझ्यौ नीलाम्बर पीताम्बर महियाँ।
कुण्डल सौं लर, लट बेसर सौं, पीतपट
हार ही में बनमाल, बहियनमें बहियाँ।।
हंस गति अति छवि, अंग-अंग रही फबि,
उपमा अवलोकिवे कों पटतर नहियाँ।
कामके कलोल छूटैं सेजहूको सुख लूटैं,
सूर प्रभु विलसत कदंबकी छहियाँ।।

निशारूपमें काल निहार रहा है –" निकुञ्जकी दीवारें भी मानो ठीक प्रिया बालाकी अङ्गप्रभा कुन्दनसे ही निर्मित हैं – यह कुञ्ज है, अथवा किशोरीकी अङ्गप्रभा ही घनीभूत होकर अपने प्रियतमकी विश्रामस्थली बन गयी है" - वह मन-ही-मन स्वयंसे ही प्रश्न कर बैठता है। " किसलय दलोंको भी लज्जित करनेवाली सुकोमलता तो उसने आजतक किसी भी धातुमें नहीं देखी है। फिर इतनी ही सुकोमल धातुसे निर्मित दीवारोंमें ऐसे ही सुकोमल तथा प्रभामयी मणियोंसे प्रिया-प्रियतमकी निशाकालीन विहार-छवियोंकी चित्रकृतियोंका निर्माण" - निशा रूपमें काल विस्फारित-नेत्र हुआ हतप्रभ है। चित्राङ्कन निहारकर उसे निश्चय ही नहीं हो पाता कि यहाँ सब ओर जीवन्त लीला नहीं हो रही है। निशारूपमें काल जिधर दृष्टि डालता है, उसे शोभा-ही-शोभा सर्वत्र तृण तोड़ती, दीन हुई दिखती है। नीलमणियोंका मन्द-मन्द प्रकाश सर्वत्र प्रसरित है। गवाक्षिकाओंपर पीले रेशमी परदे पड़े हैं जो यमुना पुलिनसे प्रवेश करती मंद समीरके झौंकोंसे कम्पित हो रहे हैं। प्रिया-प्रियतमकी सान्द्र अङ्ग-गन्धसे समस्त निकुञ्ज ही सुरभित है। निकुञ्जके पूर्व-दक्षिणके कोनेमें एक मणिजटित पीठिकापर जलसे भरी दो झारियाँ रखी हैं। अनेक पात्रोंमें सुरभित ताम्बूल रक्खे हैं, जिनमें स्वर्ण-बरक लगी है। शैयाके पास ही चौड़े मुखके स्वर्ण-निर्मित मुख-प्रक्षालन पात्र भी रखे हैं। चतुर्दिक् ऊँची पीठिकाओंमें शृङ्गारोपयोगी सामग्री सज्जित है। एक ओरकी भित्तिपर एक विशाल दर्पण विजड़ित है, जिसमें प्रिया-प्रियतमकी शयित छवि अङ्कित हो रही है।

निकुञ्जके पूर्व दिशाके कोनेमें एक लटकती स्वर्णडंडीपर जो छतपर लगी कड़ियोंमें गुँथी रेशमी डोरीसे दोनों शिराओंसे बद्ध है, एक सारिका पक्षी नेत्र मूँदे ध्यानस्थ आसीन है।

निकुञ्ज-शोभाको निरखते-निरखते निशारूप धारण किये काल सत्ताको अपनी अवधिके व्यतीत हो जानेका पता ही नहीं चलता। सहसा ही उसकी दृष्टि पूर्व दिशाकी ओर खुली गवाक्षिकाकी ओर चली जाती है। वह देखता है कि पूर्व दिशामें तो प्रभातागमनजनित अरुणाई फैल चुकी है। वह हतप्रभ-सा मुख्य द्वारपर ऊषाकी दस्तक भी सुनता है।

उसे द्वार-विमोचन करने ही पड़ते हैं। ओह! ऊषासुन्दरी शयन-गृहमें प्रवेशकर प्रिया-प्रियतमको जाग्रत् करनेके उद्देश्यसे उन्हें अपनी प्रभा द्वारा स्पर्श कर रही है। ऊषा देखती है – 'किशोरी निशा पर्यन्त विचारों एवं चिन्तनमें ग्रस्त हुई सो ही नहीं पायी है।" वह अपने हृत्तलका सम्पूर्ण प्यार उसपर उड़ेलनेको लालायित हो उठती है। दोनों ही प्रिया-प्रियतम निशापर्यन्त यही विचार करते रहे हैं कि हम दोनोंका यह मिलन सत्य ही हो रहा है कि हम दोनों यह मिलनका स्वप्न मात्र ही देख रहे हैं? ऊषाके सुखद संस्पर्शसे प्रिया राधाकी भाव-समाधि खुल जाती है।।७०८।।

साँवर सहेज देते उसकी अलकें मुखपर बिखरी, प्रियतम !
आलस्य भरे उन दोनों की आँखें मिलती जब थीं, प्रियतम !
साँवर बन जाते थे बाला, साँवर होती बाला, प्रियतम !
वे प्राण नहीं केवल उनकी थी देह बदल जाती, प्रियतम।।७०९।।

नीलसुन्दर उनकी अलकें, जो मुखपर बिखरी हुई थीं, सहेज देते। उन दोनोंकी आलस्यभरी आँखें जब मिलतीं, तब उस समय नीलसुन्दर तो सर्वथा सर्वांशमें राधाकिशोरी बन जाते एवं राधाकिशोरी सर्वथा नीलसुन्दर बन जातीं। केवल उनके प्राणोंका परिवर्तन होता था, यह बात नहीं! उनकी देह भी सर्वथा सर्वांशमें पलट जाती थी।।।७०९।।

साँवर सहेज देते उसकी अलकें मुखपर बिखरी, प्रियतम !

न जाने कितने कालसे जाग्रत् हुए प्रियतम नीलकिशोर पार्श्वमें शयित अपनी प्रियाके मुकुलित नेत्रोंकी शोभा चुपचाप निरख रहे हैं। भाव-समाधिके भङ्ग होनेपर ज्योंही बाला किशोरी अपने निमीलित नेत्र विकसित करती है, एक अद्भुत आलोकमाला-सी सर्वत्र फैल जाती है। शयनागार भानुनन्दिनीकी रूपकिरणोंका स्पर्श पाकर विकसित हुए कमलोंकी भाँति उद्भासित हो उठता है। प्रियतम नीलसुन्दरका रोम-रोम हर्षसे खिल उठता है। हृदयमें आनन्दकी सरिता बह चलती है। नीलकिशोर निर्निमेष नयनोंसे अपनी प्रियाकी मुखछविका पान करने लगते हैं। " ओह! मेरी प्रियाके पद्म-दलायत नयनोंसे झरती प्रेम-सुधा-धारा कैसी असमोर्ध्व है कि उसका एक कण मात्र ही मेरे रोम-रोमको सिक्त करनेके लिये पर्याप्त है। इसके सुकोमल शीतल चरणपङ्कजोंको नेहभरे नयनोंकी पलकोंसे सहलाते-सहलाते ही मेरा सम्पूर्ण जीवन व्यतीत हो जाय। अहा! यह रूप-छटाकी पुतली मेरी प्रिया कैसी आश्चर्यकारी सुन्दरी है!' इस प्रकार विचार करते-करते प्रियतम नीलकिशोर अपनी प्रिया बाला किशोरीके मुखपर बिखरी रेशम-सी अलकावलि सहेज देते हैं।

साँवर बन जाते थे बाला, साँवर होती बाला, प्रियतम !

दोनोंके आलस्यभरे नेत्र सहसा परस्पर मिल जाते हैं। दोनों परस्पर एक दूसरेके अभिनव सुन्दर रूपको ऐसी घनी प्रीति-तृष्णासे देखते हैं कि तत्क्षण ही नीलसुन्दर राधाकिशोरी बन जाते हैं एवं राधाकिशोरी नीलसुन्दर बन जाती हैं। केवल उनके प्राणोंका विनिमय होता हो, सो बात नहीं – उनके देह भी पूर्णतया बदल जाते हैं एवं देहपर धृत अलङ्कार भी तत्क्षण अपना रूप एक दूसरेके आभूषणोंके रूपमें बदल लेते हैं। प्रियाके सुन्दर भालपर लगी कस्तूरीकी बिन्दी तत्क्षण ही बदलकर प्रियतमका केसरतिलक हो जाती है। प्रियतमकी सुचिक्कण काली घुँघराली अलकें लहराती नागिनके समान वेणीका रूप ग्रहण कर लेती हैं। प्रियाके तरल तरौना प्रियतमके कानोंके मकराकृति कुण्डल बन जाते हैं एवं कुण्डल बन जाते हैं तरौना। ओह! चञ्चल कुण्डलोंका प्रतिबिम्ब प्रियाके गुलाबी कपोलोंपर नाचने लगता है और तरल तरौनोंकी चञ्चल छवि प्रियतमके दमकते श्याम कपोलोंपर कभी प्रत्यक्ष होती है एवं कभी विलुप्त। ओह! लालिमाकी झाँई लिये श्याम कपोल मानों कभी इन तरौनोंकी छविको अपनेमें लग्न कर लेते हों और कभी-कभी इन

तरौनोंकी छवि श्याम कपोलोंकी शोभाको पराजित करती हुई, पुनः अपने वैशिष्ट्यको अभिव्यक्त कर देती हो। शुकचञ्चुके समान श्याम एवं पीत नासापुट समान सुन्दर होनेके कारण मात्र वर्ण ही बदलते हैं। हाँ! उनमें अलंकृत बेसरका वर्ण अवश्य बदल जाता है। प्रियतमकी नासामें शोभित पीत बेसर श्याम वर्णकी हो उठती है एवं प्रियाकी नासिकामें भूषित श्याम बेसर तत्क्षण पीत वर्णकी हो उठती है। प्रियाके अधरोंपर अङ्कित श्याम वर्णकी आभा तत्क्षण ही प्रियतमके अधरोंकी लालिमाका वर्ण ग्रहण कर लेती है, एवं प्रियतमके अधरोंपरकी लालिमा श्याम वर्णकी आभामें परिवर्त्तित हो उठती है। दोनोंके अधरोंसे समान शोभा झरने लगती है और इन्हें देखकर शय्यामें सज्जित बन्धूक, बिम्बफल एवं प्रवाल लज्जित हो उठते हैं। ओह! इन दोनों ही प्रिया-प्रियतमका मृदु हास तो आनन्द एवं उमङ्गकी ऐसी लहरें हैं मानो आनन्दसिन्धु चरम सीमातक उमड़ आया हो। अहा! दोनों नीलकिशोर एवं बाला किशोरीकी दंतपंक्ति ऐसी दीप्ति दे रही हैं मानो इन्द्रवज्रकी विद्युन्मयी किरणें एकत्र होकर दसनपंक्तिके रूपमें परिणत हो गयी हों। दोनोंके शङ्खके समान कण्ठोंके लावण्यका तो कहना ही क्या। हाँ! यह अवश्य है कि नीलकिशोरके किशोरी रूपमें परिवर्त्तित हो जानेकी अवस्थामें उनके कण्ठमें धृत कौस्तुभ भी किशोरीके कण्ठहारमें तत्क्षण ही रूपान्तरित हो जाता है, और किशोरीका कण्ठहार कौस्तुभ रूपमें। यह देखो! प्रियतमके सुन्दर वक्षस्थलपर राजित शुभ भृगुपद तत्क्षण ही स्तनसन्धिके रूपमें प्रियाके दोनों उरोजोंकें मध्यकी रेखामें परिवर्त्तित हो गया है। दोनों ही किशोर-किशोरीकी विकसित कमल-जैसी हथेली, कमलदलों-जैसी नखश्रेणी तो एक-सी होनेसे चित्तको चुरा ही रही हैं, परन्तु हाथोंके वर्ण, उनकी कठोरता सुकुमारतामें और सुकुमारता किञ्चित् कठोरतामें अवश्य परिवर्त्तित हो जा रही है। दोनों ही प्रिया-प्रियतमके अणु-अणुसे क्षण-क्षणमें नव-नव शोभाका विस्तार हो रहा है। नीलाम्बर पीताम्बरमें एवं पीताम्बर नीलाम्बरमें रूपान्तरित हो रहा है।

{यहाँ यह बात पाठकोंके सम्मुख पुनः रखनी है कि ये सभी लीलाएँ उन उच्च कोटिके साधकोंके अधिकार क्षेत्रकी हैं, जिनमें भगवान् श्रीकृष्ण एवं श्रीमती राधाकिशोरीके प्रति नर-नारी – भाव, अथवा रमण-रमणी-भावकी कल्पना ही नहीं है, जिनकी दृढ़ आस्था, निष्ठा यह है कि आस्वाद्य एवं आस्वादक, आश्रयालम्बन एवं विषयालम्बनके रूपमें महाप्रीतिभाव ही प्रिया-प्रियतम बन गया है। पूर्व छन्दमें हम यह अनुशीलन कर ही चुके हैं कि क्षणके कोटि भागमें ही प्रिया प्रियतम हो जाती है, एवं प्रियतम प्रिया। उनके प्राणोंकी अनुभूति ही नहीं, उनके देह, स्वभाव, मन, और वस्त्राभूषण भी बदल जाते हैं। अतः न तो किशोरी बाला ही इदमित्थं हैं, न ही नवकिशोर नटवर ही। इतना ही नहीं, सखियाँ, मञ्जरियाँ, दासियाँ, वन, उपवन, गिरि, ह्द, सरोवर, सरोवरोंमें क्रीड़ा करते पक्षीगण, सरिताएँ, चर-अचर – सभी प्रकृति निद्रा-महाभावमें, एक विलक्षण प्रेम-समाधिमें समाकर प्रिया-प्रियतमसे एक हो जाते हैं और प्रिया-प्रियतम परस्पर एक दूसरेमें लीन होते रहते हैं। अतः चाहे कृष्णसिन्धुमें मिलकर अथवा राधा-महाभावसिन्धुसे एक होकर सभी अन्ततः एकमेव सत्य सच्चिदानन्द प्रेम-भावसिन्धुमें ही लय रहते हैं। यह सम्पूर्ण ब्रजराज्य ही महाभावसिन्धुकी उच्छलित लहरें मात्र है, अन्य कुछ नहीं। इन महान् उद्दाम रस एवं भावसिन्धुकी लहरोंके ही नाम हैं – यशोदा, नन्द, उपनन्द, अभिनन्द, सन्नन्द, बृषभानु, कीर्त्तिदा, सखागण – श्रीदाम, सुदाम, मधुमङ्गल,सुबल एवं सखीगण - ललिता, विशाखादि। यहाँका स्वप्न भी पूर्ण जागरणवत् सत्य है और जागरण त्रिकाल-सत्य है। यहाँ लीलाएँ कालसापेक्ष, कालान्तर्गत नहीं हैं, काल तो लीला-महाशक्तिका मात्र एक उपकरण है। यह जड़ प्रकृतिका मायाबन्धनयुक्त जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधिभरा जगत् नहीं है, वरं पूर्ण आनन्दमय सच्चिन्मय मात्र अघटन-घटना-पटीयसी योगमायाका चिन्मय आनन्दविलास भर है। यह आनन्दशक्तिका निर्मल उच्छलन है, आनन्दविलाससिन्धुका विलक्षण नर्त्तन है। ये सभी महाह्लादमयी चिन्मय लीलाएँ लोकोत्तर महासिद्ध सन्त पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाके ह्लादिनीप्रधान अन्तःकरणमें अभिव्यक्त हुई हैं। अतः इन्हें इसी पवित्रभावसे अध्ययन करना चाहिये।}

श्रीराधाकिशोरीकी निद्रा-महाभावसमाधिका अवसान हो चुका है। फिर भी वे अपने आपको निद्रित-सी बनाकर इस अनुसन्धान-वृत्तिमें निस्पन्द शयित हैं कि उनका प्रियतम-मिलन सत्य है, अथवा स्वप्न? निद्रित, निमीलिताक्षी अपनी प्रियाकी शयित रूप-माधुरीका पान प्रियतम अत्यन्त ललकभरी दृष्टिसे कर रहे हैं। वे किशोरीके नेत्र-सरोजोंसे झरते सौन्दर्यको निहारकर मुग्ध हो उठते हैं, उनकी बिखरी कुन्तलराशि, जो उनके मुखपर मँडराने लगती है, उसे अपने हाथों निवारण करते हैं, उसकी सुकोमलताका संस्पर्शकर प्रेममें डूब जाते हैं, उस कुन्तलराशिपर अपने प्रीतिचिह्न अङ्कित करते हैं, उसकी दिव्य गंधको बार-बार सूँघकर उस सौरभपर मदहोश हो उठते हैं। उनका प्रेमभाव अपनी प्रियाके दर्शनकर इतना सान्द्र, सान्द्रतर हो उठता है कि वे एक क्षणमें ही सम्पूर्ण अङ्ग-अवयवों एवं आभूषणों सहित प्रिया बन जाते हैं, और तत्क्षण ही प्रिया राधा प्रियतम श्यामसुन्दरका रूप ग्रहण कर लेती है। यह प्रिया-प्रियतमका परस्पर आत्म-परिवर्त्तन अविराम चलता ही रहता है, किन्तु इसका स्थगन होता है उसी समय जब प्रभात हुआ मानकर उन्हें जगाने सखियाँ उस निकुञ्जमें प्रवेश करनेको उद्यत हो उठती हैं।

वस्तुतः निकुञ्जभावमें सेवारत सभी सखियाँ श्रीराधारानीकी ही कायव्यूहरूपा हैं। कायव्यूहरूपाका अर्थ ही है कि जैसे हाथ-पैर-अंग-अवयव अपनी कायाके व्यूह ही होते हैं, उसी प्रकार ये सखियाँ भी श्रीराधारानीके अङ्ग-अवयवरूपा ही होती हैं। इन सभी सखियोंके गोष्ठलीलामें तो अपने माता-पिता हैं, इनका जन्म होता है, लालन-पालन सभी पृथक् व्यक्तित्वके रूपमें होता है, किन्तु निभृत निकुञ्जभावमें ये सभी सखियाँ श्रीराधारानीमें एकात्म हो जाती हैं। वे श्रीराधाके भिन्न-भिन्न अवयवोंमें समाकर राधारूप हो जाती हैं। जब निकुञ्ज एवं कुञ्जलीलाका प्रारंभ होता है, तो ये श्रीराधारानीके अङ्गोंसे ही निर्गत होती हैं और लीलारत होती हैं। पुनः निभृत निकुञ्जभावमें प्रिया राधा अपने प्रियतमके साथ प्रविष्ट होती हैं, उस समय सभी सखियाँ इनके अपने स्वस्थान - श्रीराधाके भिन्न-भिन्न अङ्गोंमें विलीन हो जाती हैं। निभृत निकुञ्जमें ये सभी राधाभावरूप होकर ही प्रियतमकी सेवामें विलसित होती हैं। अस्तु,

> कङ्कण की ध्वनि सहचरियों की इतने में सुन पड़ती, प्रियतम !
> पहले-जैसे हो जाते थे क्षणभर में दोनों ही, प्रियतम !
> भीतर सब वे जब आ जातीं उनपर बलिहार हुई, प्रियतम !
> लज्जित होकर अञ्चलसे थी ढक लेती मुख बाला, प्रियतम ।।७१०।।

इतनेमें ही सहचरियोंको कंकणकी ध्वनि सुन पड़ती और वे दोनों ही क्षणभरमें पुनः पहले जैसे हो जाते। जब सहचरियाँ उनपर बलिहार जाती हुई भीतर प्रविष्ट हो जातीं, तब राधाकिशोरी लज्जित होकर अञ्चलसे अपना मुख ढक लेती।।।७१०।।

कङ्कणकी ध्वनि सहचरियोंकी इतनेमें सुन पड़ती, प्रियतम !

अब क्योंकि निभृत निकुञ्जभाव प्रभात एवं अरुणोदय होनेके साथ ही अस्तमित हो रहा है एवं निकुञ्जभाव अपने आगमनकी तत्परता प्रकट कर रहा है, बस, इसीलिये तत्क्षण ही प्रिया राधाकिशोरीकी बेसरके श्याम रत्नमेंसे उनकी भगिनी मञ्जुश्यामा प्रकट हो जाती है एवं श्रीराधारानीकी कटि किङ्किणीसे गुणमञ्जरी प्रकट हो जाती है। ये सहचरियाँ अपने प्रकाशकी सूचना प्रियाको अपने नूपुरोंकी झङ्कारसे ही देती हैं। इनके नूपुरोंकी झङ्कार स्वाभाविक ही प्रिया श्रीराधाको निभृत निकुञ्जके प्रगाढ़तम महाभावसे निकुञ्जभावमें अवतरण करा देती है। बस, प्रिया-प्रियतमका एक दूसरेके रूपोंमें आत्मपरिवर्त्तन तत्क्षण ही रुक जाता है।

बात यह है कि अप्राकृत राज्यके पात्रोंमें अप्राकृत महाभावरूपमें घटित होनेवाली इन लीलाओंको शब्दोंकी परिधिमें बाँधना सर्वथा असंभव है। पू.गुरुदेवके छन्द तो महाभाव-मंत्र हैं। परन्तु मुझ-जैसे विषयकीट पामर प्राणीके लिये

इन्हें प्राकृत वाणीमें व्याख्यायित करना सूर्यको दीपक दिखलाना मात्र है। प्राकृत जगत्के पाठकोंके लिये व्याख्या करना आवश्यक मानकर ही यह व्यर्थ चेष्टा की जारही है। इतनी परिभाषा जो मुझ-जैसे व्यक्ति द्वारा दी जा रही है, यह भी नीलकिशोर प्रियतम श्रीकृष्णकी अपार कृपा-वैभवका चमत्कार मात्र ही मानना चाहिये।

भीतर सब वे जब आ जातीं उनपर बलिहार हुईं, प्रियतम !

अनुजा भगिनी मञ्जुश्यामादिका प्रकाश निकुञ्जभावकी भूमिकाके प्रकाशके लिये ही हो रहा है। ये सखियाँ अपने नूपुरोंकी झङ्कारको अवरुद्ध करनेके लिये यद्यपि उन नूपुरोंमें सुन्दर क्षौम वस्त्रकी पट्टी लपेटकर ही प्रकट हुई हैं, फिर भी नूपुर मंद किङ्किणीध्वनि कर ही देते हैं।

मञ्जुश्यामा एक अति सुन्दर स्वर्णिम रत्नजटित थालमें तूलिका एवं विलेपनयोग्य परम सौरभयुक्त सुगन्धिद्रव्य कटोरियोंमें रखकर लायी हैं। श्रीगुणमञ्जरी नवीन रत्नहार मुक्तामालाएँ एवं अन्य आभूषण एक रत्नजटित थालमें लिये हैं। श्रीमञ्जुश्यामा अपनी अग्रजा भगिनी एवं प्रियतम श्यामसुन्दरकी ओर दृष्टिपात करती हैं। वे देखती हैं कि दोनों दम्पति एक दूसरेमें पूर्णतया समाहित भावसमाधिमें लीन हैं। दोनोंकी परस्पर गुँथी नील-पीत शोभाको देखकर सखियाँ बाह्यज्ञान खोने लगती हैं। युगल दम्पतिमें लहराता प्रणय-महाभाव उन्हें समाकर्षित करता अपनी अथाह ऊर्मियोंमें लीन करने लगता है। परन्तु वे अति संयमपूर्वक अपने भावजन्य विलयावेशको रोकती हैं। सखियोंके निकुञ्जमें प्रकट होते ही एवं उनकी नूपुर-झङ्कारके श्रवण मात्रसे ज्योंही प्रिया-प्रियतमका एक दूसरेके रूपमें घटित होनेवाला परिवर्त्तन रुकता है, त्योंही उनके आभूषणोंमें भी होनेवाला रूप-परिवर्त्तन स्थगित हो जाता है। सखियाँ देखती हैं कि शयित अवस्थामें प्रिया-प्रियतमके आभूषण उनके अङ्गोंमें संलग्न नहीं हैं, किन्तु उन्हें घेरे शय्यामें सुशोभित हैं।

सखियाँ देखती हैं कि निराभरण प्रियाकी छवि उसकी शृङ्गारित छविसे सहस्रगुनी अधिक सुन्दर प्रतीत हो रही है। वे इन दोनों युगल दम्पतिके प्रेम, सौन्दर्यपर न्यौछावर हो उठती हैं। श्रीमतीकी वेणी उन्मुक्त है। उसमें गुम्फित मुक्तामालाएँ, उनके शीशफूल नामक आभूषणको घेरकर ऐसी शोभा दे रहे हैं मानो रत्नमय सुमेरुकी सुरसरि अपनी असंख्य धाराओंसे फेरी लगा रही हो। प्रियाके गलेका स्वर्णहार मानो कानोंके तरौने और चक्री नाम आभूषणको प्रणाम करनेके उद्देश्यसे साष्टाङ्ग प्रणत होरहा है। उसीके पार्श्वमें प्रियाकी ककी पड़ी है। उसके पार्श्वमें ही अलकावलीको संवरित करनेवाली दो रत्नमयी शलाकाएँ, वलय, कण्ठहार, अङ्गुलीयक, ताराहार, भुजाओंमें धारण किये जानेवाले अङ्गद, रत्नचूड़ियाँ, चरणोंमें पहने जानेवाले नाना प्रकारके मणिजटित नूपुर, मञ्जीर, कमरकी करधनी एवं पादाङ्गुलीयक पड़े हैं।

इधर प्रियतम श्रीकृष्णके पार्श्वमें उनका रत्नमुकुट, उसमें खौंसा जानेवाला मयूरपिच्छ उनके मकराकृत कुण्डलोंसे घिरा पड़ा है। कुण्डलोंके पास उन मुक्ता-माणिक्यकी लड़ियाँ पड़ी हैं, जो उनके घुँघराली कृष्ण केशराशिको संवरित करती हैं। इधर प्रियतम श्रीकृष्णका उत्तरीय शान्त पड़ा है, उससे सटकर उनके बाहुओंके वलय, कङ्कण, अङ्गुलीयकोंसे संलग्न रत्नोंकी लड़ियाँ, कटिकिङ्किणी, पैरोंके अङ्गुलीयक, और इन सबको घेरे पड़ी है उनकी वनमाला।

प्रिया-प्रियतमकी परस्पर गुँथी शयित छविकी ऐसी शोभा है, मानो रूपके दो पुञ्ज परस्पर मिले विराज रहे हैं। निशाविहारके चिन्होंकी ओर मञ्जुश्यामा बहिनका ध्यान चला जाता है। वे उन्हें कस्तूरी पङ्कसे छिपा देती हैं। अधरोंपर नेत्रोंके कज्जलकी रेखा है, वे उसे मुस्कुराकर रक्तिम अङ्गरागसे छिपा देती हैं। श्रीगुणमञ्जरी मञ्जुश्यामाके पार्श्वमें ही खड़ी रानीका अप्रतिम रूप निहारती दाँतोंतले तृण दबा रही हैं। सखियोंका शयनमन्दिरमें आगमन अनुभवकर प्रिया लज्जासे अपना मुख प्रियतमके उत्तरीयसे छिपा लेती हैं।

दोनों प्रिया-प्रियतमको उचित प्रकारसे पुनः शृङ्गारितकर दोनों सखियाँ निस्पन्द – बिना कोई ध्वनि किये कुञ्जसे बाहर निर्गमन कर जाती हैं। कुञ्जसे बाहर आनेके पूर्व दोनों सखियाँ पुनः प्रिया राधाकिशोरीपर एक दृष्टि डालती हैं। वे मन-ही-मन बोल उठती हैं – 'ओह! विधाताने इन दोनों युगल दम्पतिको मानो एक-दूसरेके लिये ही निर्माण किया

है - मानो इन दोनोंके रूपमें अपनी निर्माणकलाकी इति करदी है। सम्पूर्ण सौन्दर्य इन दोनोंके अङ्गोंमें मानो उँडेल दिया गया है। इस शोभाराशिका दर्शन करलेनेपर चतुर्दश भुवनोंका सौन्दर्य फीका एवं नीरस लगता है। इनके चरणोंके तालुप्रदेशकी लालिमापर रति, कमला और शची – तीनोंको न्यौछावर कर दिया जावे। कुवलयदलोंपर शयित दम्पतिके रोम-रोमसे जो सहज माधुरीकी राशि स्फुटित हो रही है उसका पानकर सखियाँ न्यौछावर हो उठती हैं। ।।७१०।।

मङ्गल-नीराजन करती थीं उनका सब सहचरियाँ, प्रियतम !
'जोरी जीओ युग-युग' कहकर सुखमत्त सभी होतीं, प्रियतम!
झर पड़ते बाला-साँवर के दृगसे जलके कण थे, प्रियतम!
रव भरा कणों में यह रहता 'होंगे न उऋण तुमसे!' प्रियतम।।७११।।

सभी सखियाँ, सहचरियाँ,मञ्जरियाँ उन दोनोंका मंगल नीराजन करतीं। 'दम्पति युगल! तुम दोनों युग-युग जियो।'यह कहकर सभी सुखमें निमग्न हो जातीं। राधाकिशोरी एवं साँवरके दृगोंसे अश्रुके कण झर पड़ते और उन अश्रुकणोंमें यह रव परिपूरित रहता – हम कभी त्रिकालमें भी तुमसे उऋण न हो सकेंगे।।।७११।।

मंगल-नीराजन

प्रिया-प्रियतमका वस्त्राभूषण-शृङ्गार यथास्थान यथोचित धारण करादेनेपर अनुजा मञ्जुश्यामा गुणमञ्जरीके साथ निस्पन्द, बिना कोई ध्वनि किये निकुञ्जसे बाहर आ जाती हैं। इसी समय सखियोंकी टोली हँसती हुई कुञ्जद्वारको उन्मुक्त करती हुई भीतर प्रवेश कर जाती है। मुसकाती हुई ललिता सबकी अग्रणी होती है।

सखियाँ, मञ्जरियाँ तत्क्षण ही नीराजनका मङ्गलथाल ललितारानीके हाथोंमें दे देती हैं। ललिता अत्यन्त प्रेमसे दम्पतिकी रूपसुधाका पान करते-करते उनका मङ्गल-नीराजन करती है। **'युग-युग जिओ, युग-युग जिओ'** कहती सखियाँ प्रिया-प्रियतमकी रूप-छवि निहारती सुखमत्त हो रही हैं। आश्चर्य है! दम्पतिके असीम सौन्दर्यसिन्धुकी एक बूँद भी तो किसीकी आँखोंमें नहीं समा पाती। नीलोत्पलोंकी शय्यामें अवस्थित रस-विलाससे श्रान्त, अलसाये दम्पति सखियोंको इतना समाकृष्ट करते हैं कि कोई तो उनके नखोंकी ज्योतिका दर्शन करती उनके चरणतलमें ही विराजित हो जाती है एवं कोई सखी कदलीस्तंभकी शोभाको अपहृत करनेवाली उनकी जंघाओंपर अपना मस्तक रखकर उनके चरणोंके सहारे भूमिपर बैठ जाती है। कोई सखी विलक्षण संविन्मय सौरभका दान करनेवाली प्रिया-प्रियतमकी अङ्गगंधका आघ्राण करनेको उनकी बाहुओंको सूँधने लगती है। कोई प्रियाके पृष्ठदेशके पास शय्यापर ही आसीन होकर उनकी उन्मुक्त केशराशिको अपने हाथोंमें धारणकर उसे सहलाने लगती है। कोई सखी चकोरीकी तरह युगल दम्पतिके मुखचन्द्रोंकी चन्द्रिका पान करने लगती है। कोई सखि उनके ताम्बूलरंजित अधरोंकी ही प्यासी हो उठती है।

सभी सखियोंकी विशुद्ध प्रेम-दशा देख-देखकर दोनों प्रिया-प्रियतमके नयन प्रेमसे छलछला उठते हैं।

होंगे न उऋण तुमसे, प्रियतम !

"ओह! हमारे ही सुखकी स्पृहा रखनेवाली मेरी ये सखियाँ मुझे प्रियतम-सुखमें डूबी देखकर, साथ ही मेरे प्रियतमको मेरे सङ्ग विलास-सुखमें निमग्न निरखकर पारावार-विहीन सुख-समुद्रमें संतरण कर रही हैं। कितना प्रेम है इनका हम दोनोंके प्रति! स्वभोगके लिये, अपने अहंकी मङ्गलकामनासे सम्प्रेरित, सच्चिदानन्द परब्रह्मका साक्षात्कार कर लेनेके लिये असंख्य जीवोंको दौड़ते हुए देख लेना संभव है; परन्तु अपने सुखभोगकी तनिक भी लालसा न होनेपर भी हमारे सुखानुसंधानके लिये इस प्रकार अनवरत चेष्टारत सेवाप्रायण रहना, ऐसे अप्रतिम सौहार्दका प्रदर्शन करना इन सखियोंके अतिरिक्त अन्यत्र कहाँ संभव है? कितनी अनुरागवती हैं ये! " - विचार करते-करते प्रिया-प्रियतम दोनोंके नयनोंमें अश्रु-आर्द्रता आ जाती है। रोकते-रोकते ही यह आर्द्रता कपोलोंपर दृगविन्दु ढलका ही देती है। यह दृगजल ही मूक वाणीमें सखियोंको सन्देश दे देता है कि हम दोनों युगल दम्पति तुम्हारे चिर ऋणी हैं, तुम्हारे प्रेमऋणसे



उन्हें भूलि गई गैयाँ इन्हें गागर उठाइबो ।
(ताम्बूल-सेवा-निरत सखी श्रीललिताजी) (पृष्ठ ६४)

कभी उऋण नहीं हो सकते। हम तो ब्रजके पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग, तरु, लता-गुल्मों तकके नित्य ऋणी हैं। फिर तुम्हारे ऋणभारका तो कहना ही क्या है? ।।७११।।

शीतल समीर सौरभका ले उपहार विनय करता, प्रियतम!
'अब-चलो, युगल दम्पति! तुम हे, काननकी वल्लरियाँ, प्रियतम!
पुष्पित हो, तरुसे जुड़कर, हैं हिल-हिलकर देख रहीं, प्रियतम!
पथ तुम दोनोंका, आशा ले, मुख देख निहाल बनें,' प्रियतम।।७१२।।

शीतल समीर सौरभका उपहार लेकर इसी समय विनय करता – 'युगल दम्पति हे! अब तुम चलो। काननकी वल्लरियाँ तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हैं। पुष्पित होकर, तरुसे जुड़कर, स्पन्दित हो-होकर तुम दोनोंका पथ वे निहार रही है। वे आशा लिये हुए हैं कि तुम दोनोंका मुखसरोज निहारकर वे परम कृतार्थ हो जायें।।।७१२।।

शीतल समीर सौरभका ले उपहार विनय, करता, प्रियतम !

निकुञ्जके पूर्व दिशाके कोनेमें एक झूलती हुई छतसे संलग्न स्वर्णडंडीपर निकुञ्जान्तर्गत घटित होनेवाले सम्पूर्ण निशाविहारकी लीलाकी द्रष्टा सूक्ष्मधी नामक सारिका सहसा अपने उन्मीलित नेत्र विकसित कर देती है। वह चीखकर कहती है – " अरे, कोई है? इस हृदयहीन दुर्बुद्धि मलय-मारुतको अनुशासित करो। इसकी निर्लज्जता तो देखो! हमारे प्रियतमके सुखमें बाधा डालने यह आ गया है। यह गवाक्षरंध्रोंसे बिना अनुमति लिये ही अन्तर्कक्षमें प्रविष्ट हो गया है।" – सारीकी उक्ति सुनते ही मलय-मारुत सारिकासे अतिशय विनयपूर्वक निवेदन करता है –" बहिन सारिके! मुझे तो वृन्दादेवीने अपना दूत बनाकर प्रेषित किया है।"

"सूर्योदय होनेमें अभी विलम्ब है। वनश्रेणी ऊषाकालीन सौन्दर्यसे सजी वृन्दादेवीसे प्रार्थना कर चुकी है कि अद्भुत शृङ्गार धारण किये जो कानन सज्जित है, उसकी शोभापर दम्पति अवश्य एक बार दृष्टि डालें। वृन्दा वनकी प्रार्थना प्रिया-प्रियतमको निवेदित कराना चाहती है, इसीलिये उसने मुझे भेजा है।"

"ओह! पुष्पोंसे लदी सघन लताएँ कुञ्जको चतुर्दिक् घेरे सुशोभित हैं मन्द समीर इन लताओंको झकझोर-झकझोरकर इनके सुरभित पुष्प सर्वत्र वनपथमें फैला रहा है। निकुञ्जके चतुर्दिक् हरिणियाँ कुलाचें भर-भरकर निकुञ्जद्वारके समीप आती हैं और वहाँसे प्रिया-प्रियतमका निर्गमन न देखकर पुनः वन-लताओंमें छिप जाती है। कदम्ब एवं आम्रवृक्षोंपर कोकिलाएँ आसीन हैं और अपनी कुहू-कुहूकी काकलीसे वनको गुञ्जारित कर रही हैं। मालती-जुही आदि लताएँ नाना प्रकारके वृक्षोंको आच्छादित किये मह-मह महक रही हैं। विकसित पुष्पोंपर अलिदल यूथ-के-यूथ गुञ्जार कर रहे हैं। सभी वनराजि मानो समवेत प्रार्थना कर रही है – 'हमारे जीवनाधार! निशापर्यन्त तुम्हें हृदयमें छिपाये बैठी रही। आओ! एक बार नयनपथमें प्रकट हो जाओ। ऐसा विधान तो संभव ही नहीं कि तुम दोनोंको एक पल भी अपने अङ्कसे विलग नहीं करूँ, आवागमन-गमन एवं गमन-आगमन – ये तो मेरे भालमें लिखे चिर स्थायी अङ्क हैं। किन्तु एक बार तो दर्शन देकर हृदयको शीतल कर ही दो।"

"देखो सारिके! सौन्दर्य-निकेतन वृन्दाकानन प्रिया-प्रियतमके नयनोंको सुख देने आज अपूर्व शृङ्गारसे सज्जित है। चतुर्दिक् वसन्तने वनको आक्रान्त कर लिया है। सरोवरोंमें प्रस्फुटित असंख्य अरविन्द अपने किञ्जल्कोंका अर्घ्य-पाद्य इनके चरणोंमें अर्पित करनेको आकुल हो रहे हैं। सन्-सन् रव करता मन्द समीर भी सरोजोंका समग्र सौरभ एकत्रकर इन्हें अर्पित करनेको समुत्सुक है। वन-श्री इनके अङ्ग-सौरभका घ्राण करनेको कबकी मतवाली हो रही है। सारिके! सम्पूर्ण सौरभका भण्डार इन दोनोंका नील-पीत कलेवर ही तो है। विलासवती वन-धरा इनके चरणोंको अपने

उरोजोंमें रखनेको लालायित हो रही है। आमोदातिरेकसे अलिदल झूम उठे हैं। इन सभीको दर्शन देकर निहाल कर देनेकी प्रार्थना करने ही मैं यहाँ समुपस्थित हुआ हूँ। अतः सारिके! रोष मत करो।।।७१२।।

वे ज्यों बाहर आते, दौड़ी आती रङ्गिणी मृगी, प्रियतम !
बालाकी कटि को छूकर थी संकेतों में कहती, प्रियतम !
'हो चपल चतुष्पद देते हैं फेरी उन कुञ्जों की,' प्रियतम !
'अङ्गों की तुम दोनों के कल है गन्धभरी जिनमें!' प्रियतम।।७१३।।

गौर-नील दम्पति ज्योंही बाहर आते कि वह रंगिणी नामकी मृगी दौड़ी हुई उनके समीप आ जाती। राधाकिशोरीके कटिदेशको स्पर्श करके वह संकेतोंमें कहती –'किशोरी एवं नीलसुन्दर देवता! देखो, वे सम्पूर्ण चतुष्पद उन कुञ्जोंकी फेरी दे रहे हैं भला! जिनमें तुम दोनोंके श्रीअङ्गोंकी सुगन्ध भरी हुई है।।।७१३।।

वे ज्यों बाहर आते –

लो! वन्-काननकी आकुल प्रार्थना सखी वृन्दादेवीके द्वारा प्रिया-प्रियतमको निवेदन किये जानेपर उस प्रार्थनाको सक्रिय भूमिका दिलानेको ललितासखी कुञ्जद्वारपर वीणावादन करने लगती हैं। ललिताकी वीणाकी मधुर झङ्कारसे भैरवीकी कोमल स्वरलहरी गूँजने लगती है। कोमल गांधार और कोमल निषादकी झंकृति सातों स्वरोंपर अपना आधिपत्य जमा लेती है। रागिनी भैरवी मूर्त्तिमती होकर वीणापर आसीन हो जाती है और ललिता सखीकी कोमल अँगुलियोंके सङ्केतपर वीणासे तानें बजने लगती हैं।

प्रिया-प्रियतम उस सङ्गीत स्वरलहरी द्वारा स्वयंको त्वरापूर्वक जगाये जानेका सखियोंका सङ्केत समझकर सरस मुद्रामें जागनेका उपक्रम करने लगते हैं। वीणाकी स्वरलहरी इतनी सुरीली है कि दम्पतिको बरबस आकृष्ट होनेको बाध्य कर लेती है। जब भी रागिनीकी बन्दिशमें सम आता है, दम्पतिकी ग्रीवा अनुमोदनमें हिल ही जाती है। दोनों प्रिया-प्रियतम किञ्चित् मुसकाते एक-दूसरेके अलकावलि-मण्डित आननके सौन्दर्यका पान करने लगते हैं।

रानी अपनी मृणाल-सी भुजाओंको उठाकर अँगड़ाई लेती हुई आलस्यका निवारण करती है। उस समय अपनी प्रियाके अधरोंपर विराजित स्मितिकी, अर्धमुक्त कबरीकी, विमर्दित कुसुममालाकी, अस्त-व्यस्त हुए रत्नहारोंकी, आलस्यभरे विघूर्णित नयनोंकी छविका दर्शन करते-करते ब्रजकुलचन्द्र आनन्दसे उन्मत्त हो उठते हैं।

रानी यद्यपि पूर्णतया जाग्रत् हो उठती हैं, परन्तु वे रतिश्रमसे श्रान्त होनेके कारण तथा आलस्यके आवेशसे अपने तमालनील प्रियतमसे पुनः लिपट जाती हैं। श्रीकिशोरीकी ऐसी शोभा निखर रही है मानो चञ्चल विद्युल्लता नवीन मेघमें स्थिर हुई शोभा पा रही हो। उनके मदसे भरे नेत्रोंकी ऐसी शोभा है, मानो चन्द्रबिम्बपर दो अर्ध विकसित सरोज हों। किशोरीके नेत्र-सरोजोंको विधाताने इसीलिये कज्जलसे अनुरंजित कर रक्खा है ताकि इन सरोजोंके सौन्दर्यको किसीका दृष्टिदोष नहीं लग जाय। किशोरीके रोम-रोमसे मानो पद्मोंका सौरभ फूट पड़ा हो और चञ्चल भ्रमरपंक्ति उस मकरन्दका पान करने आस-पास बैठी हो, नेत्रोंमें कज्जलकी ऐसी ही छवि बन रही है। रानीके अनावृत कुच-युगलोंकी शोभा ऐसी निराली है मानो असंख्य राकाशशियोंकी ज्योत्स्ना कर्पूरमें मिश्रित कर दी गयी हो और उसके दो परम सुन्दर पिण्ड विधाताने अपने सम्पूर्ण कौशलकी इति करके निर्माण किये हों, तथा फिर उनको परम पवित्र मानकर उनका पूजन कस्तूरीके दो लघु विन्दु लगाकर किया हो। प्रियतम श्रीकृष्ण एकटक प्रियाकी ओर निहारने लगते हैं। लज्जा प्रियाके नेत्र निमीलित कर देती है।

इसी समय सरिता एवं ह्रदोंमें विकसित असंख्य पद्मोंका सौरभ लिये समीर निकुञ्जके मुख्यद्वारका पर्दा हिला देता है। प्रियतमको प्राची दिशामें अरुणोदयकी लालिमा गहन हुई दृष्टिगोचर हो जाती है। वे अतिशय प्यारसे प्रियाके मुखारविन्दको देखते हुए शनैः-शनैः उसके कानोंमें मधुर स्वरमें कहते हैं – '' प्रिये! प्रभातोदय हो रहा है।''

अपने प्रियतमकी बात कानोंमें जाते ही प्रियाके मुखपर एक विषाद-मिश्रित गम्भीरताकी रेखा फैल जाती है। वे शय्यापर बैठ जाती हैं। प्रियतम प्रियाके मुखपर मँडराती अलकावलिको अतिशय रसपूर्वक संयमित करते हैं। अनेक सखियाँ प्रियाके सङ्ग शय्यापर, कुछ नीचे प्राङ्गणमें बिछे कालीनपर, कुछ उन्हें चतुर्दिक् घेरे खड़ी हैं। सखियोंके मध्य प्रिया-प्रियतमकी अनिर्वचनीय शोभा समस्त निकुंजको आनन्दसे सराबोर कर रही है। प्रियतमकी अङ्गकान्ति नीलमणिवत् दमक रही है। गुणमञ्जरी प्रिया-प्रियतमको चरणप्रदेशतक लम्बी, अत्यन्त सुरभित शतरङ्गी पुष्पोंकी माला धारण कराती है। रूपमञ्जरी ललिताके आदेशसे केसर-कुङ्कुमसिक्त चन्दनसे उनके अङ्ग चर्चित करती है। रानीके कपोल इतने निर्मल एवं ज्योतिर्मय हैं कि उन कपोलोंपर प्रियतमछविका प्रतिबिम्ब अङ्कित हो रहा है। सखियाँ बार-बार अनुसंधान करती हुईं उस प्रतिबिम्बका दर्शनकर निहाल हो रही हैं। सखियोंके अङ्गोंमें भी प्रिया-प्रियतमकी जो प्रतिबिम्ब-छवि अङ्कित हो रही है उसे निहार-निहारकर सखियोंमें सात्विक विकार उदय हो रहे हैं। कोई स्वेदसे लथपथ हो रही है, कोई अट्टहास कर रही है, किसीको कम्पविकार हो रहा है। किसीके नयनोंसे निर्झरवत् अश्रुप्रवाह हो रहा है। कोई लज्जासे रक्तवर्णकी हो रही है। किसीके रोम-रोम ऊर्ध्व हो उठे हैं।

सखी-मण्डली सहित प्रिया-प्रियतम निकुञ्जसे बाहर आ जाते हैं।।७१२।।

रंगिणी मृगी

वे ज्यों बाहर आते, दौड़ी आती रंगिणी मृगी, प्रियतम !

मैं रंगिणी मृगी हूँ। मैंने अपना सर्वस्व – देह, मन, प्राण, सुख सभीकुछ इन युगल दम्पतिके चरणोंमें समर्पित कर दिया है। मैं भली प्रकार जानती हूँ कि जिन्हें मैं अपना स्वामी, प्राणधन, सबकुछ मान चुकी हूँ, वे भक्तोंके परमाराध्य, ब्रह्म-रुद्र-शुक-नारद-सनकादिके भी अगोचर, योगियोंके जीवननिधि सर्व-सिद्धि-स्वरूप हैं। फिर मैं तो परम नगण्य चतुष्पद जातिकी अति तुच्छ दीन-हीन पशु हूँ। मुझे न भजन-पद्धतिका ही ज्ञान है, न मुझमें सेवा करनेकी भी कोई योग्यता है। सारे विश्वमें हमारी जातिकी पहचान ही यही है कि हमारी मृग जाति कर्णेन्द्रियोंकी अतिशय भोगासक्तिसे ग्रस्त है। हमें कोई बाँसुरीकी मधुर स्वरलहरी सुना भर दे, वीणाकी सुरीली झङ्कार कर दे, हम समाकृष्ट हुईं उसके जालमें फँस जाती हैं। हमारी इसी दुर्दमनीय आसक्तिके कारण, मेरी स्वर-तृष्णा ही मेरे परम सौभाग्यकी हेतु बन गयी है। मैं तो आज भी अपना भला-बुरा कुछ भी नहीं जानती।

मेरी इस स्वर-तृष्णाने मेरे प्राणोंके दो टुकड़े कर दिये हैं। प्राणोंका एक अंश तो नीलद्युति नन्दतनयको समर्पित है और दूसरा पीतद्युति रानीको। कदाचित् मैं विक्षिप्त हो चुकी हूँ। मेरा उस दिवस परम सौभाग्योदय ही हुआ था जिस दिवस मैं निरी बाल्यावस्थामें अपनी माताके साथ वृन्दावनमें सुकोमल घास चर रही थी। मेरे कानोंमें अचानक ही अमृतपूरका प्रवाह - नन्दतनूजका वंशीनिनाद आपूरित हो उठा। मैं ही क्या, वृन्दावनमें निवास करने वाली समग्र मृग जाति ही उस दिवस उस अमृतप्रवाहमें निमग्न हो गयी थी। कुछ क्षणोंके लिये तो जितने मृग वहाँ मेरे दृष्टिपथमें थे, सभी विलुप्त-चेतना हो उठे थे। मैं तो निर्णय ही नहीं कर पायी थी कि यह अनिवर्चनीय मधुर नाद क्या है? बस, उसी दिवससे मैं अपनी जन्मदात्री माता, अपना मृगयूथ, सभीको विस्मृतकर इस निनादके स्रोतको पाने विकल एकाकी उन्मत्त-सी भटकने लगी। न तो मुझे क्षुधाका ज्ञान रहा, न ही पिपासाका। मैं मृगदेह हूँ - इस ज्ञानको भी मेरी वृत्ति अधिकांशतया नहीं पकड़ती थी। मेरी सारी चेतना सिमटकर बस, कर्णेन्द्रियमें समा गयी थी और कर्णेन्द्रियोंमें गूँजता रहता था, वह एकमात्र उन्मद मधुरतम नाद।

फिर मेरे महासौभाग्यका दूसरा क्षण समुपस्थित हुआ। एक दिन अन्वेषण करते-करते मुझे इस नादका उन्मद स्रोत मिल ही गया। मैंने देखा – प्रस्फुटित पीत झिण्टी पुष्पोंकी झुरमुटके अन्तरालमें अपनेको छिपाये, अपने बिम्बारुण अधरोंपर हरित बाँसकी वंशी धारण किये वह यशोदाका नीलतनय ही इसके छिद्रोंमें अपने प्राणोंकी फूँक लगा-लगाकर यह निनाद उत्पन्न करता है।

मैं तो जड़ पुत्तलिकाकी भाँति खड़ी-की-खड़ी देखती रह जाती। उसका वह मधुरतम निनाद मात्र वृन्दावनको ही झंकृत नहीं करता, वह तो सम्पूर्ण अन्तरिक्षको ही आत्मसात् कर लेता, पातालको भी प्रकम्पित कर देता, मेघसमूह रुद्ध हो जाते। मैं तो अपने कर्णपुटोंके द्वारा इस मधुरास्फुट वेणुध्वनिका रसपान करती विभोर हो उठती, मेरा बाह्यज्ञान लुप्त हो जाता और प्रेम-विवश वहीं नन्दतनूजकी चरणाङ्कित रजमें बारबार लोटने लगती। मेरे नेत्रोंसे अश्रुबिन्दु झरने लगते, अङ्ग-अङ्ग अवश हो जाते, एक विचित्र सुखमयी जड़ता मुझे घेर लेती। तभीसे मैं इस नन्दतनयकी बिना मोलकी दासी हो गयी। मुझे न तो क्षुधाका ज्ञान रहता, न ही पिपासाका। मेरे नेत्रोंमें इस नन्दतनयकी रूपसुधा ऐसी बस गयी कि स्वप्न-जागरण कभी भी उसकी छवि मेरे नेत्रोंसे ओझल नहीं होती। मेरे नयनोंके आगे सदैव एक ही झाँकी रहती – 'वह देखो! विचित्र भूषण-वसन-विभूषित असंख्य गोपशिशु हैं, और सभीके नायक नन्दतनूज ललित त्रिभङ्गीमें अपने हाथोंमें वंशी लिये उसके छिद्रोंमें स्वर भर रहे हैं।'' दिनरात यह एक ही दृश्य मेरे मन-मस्तिष्कमें छाया रहता और मैं देखती कि ये सभी गोपबालक मानों सौन्दर्य-सरिताकी अनेकानेक लहरें हैं जो घनीभूत होकर गोपबालकोंकी आकृति धारण कर चुकी हैं। और नन्दतनय तो इन सबके मध्य ऐसा लगता – मानो कोटि-कोटि नील मयङ्कोंकी चन्द्रिका घनीभूत होकर अपूर्व बालवेषमें सुधाकी वर्षा करने प्रकट हो गयी है।

मेरे माता-पिता-परिवार, मृगयूथ किसीकी भी मुझे तनिक भी सुधि नहीं रही। नन्दतनय नीलमणि ही मेरा सबकुछ होगया। वह गौएँ चराकर जब नन्दभवनमें लौटता तो मैं भी उसकी गायोंके पीछे-पीछे नन्दभवनके उपवनमें आ जाती। निशापर्यंत मैं नन्दभवनकी परिक्रमा करती रहती। ब्राह्ममुहूर्त्त होते ही ब्रजपुरका आकाश मङ्गलवाद्योंकी ध्वनिसे, आभीर सुन्दरियोंके मङ्गलगानसे परिपूर्ण होने लगता। समस्त निशा मेरे नेत्रोंमें नन्दतनयकी ध्यानछवि समायी रहती, फिर तमोगुणी निद्राके आनेका तो प्रश्न ही कहाँ रहता। स्वर्णिम रविरश्मियोंके आलोकमें पुरीकी शोभा देखने ही योग्य होती। स्थान-स्थानपर कदलीस्तम्भ, द्वार-द्वारपर स्वर्णके मङ्गलघट, ध्वजा, पताका, बन्दनवार, पुष्पवितान आदिसे गोपगण एक पल्लव-पुष्पमय पुरकी रचना कर देते। मङ्गलगान करती, विविध वेषभूषाओंसे सज्जित, हाथोंमें मङ्गलद्रव्यपूरित थाल लिये दल-की-दल गोपसुन्दरियाँ आतीं। किन्तु मेरी दृष्टिपर तो न जाने जादू ही हो गया था कि मुझे तो नन्दभवनकी दीवारें, उनके साज-शृङ्गार, देवाङ्गनाओं-सी सुन्दरी गोपबालाओंमें, उमङ्गमें भरे फुदकते-थिरकते गोपशिशुओंमें सर्वत्र नित्य नव-नवसुन्दर मेरे जीवनसर्वस्व नन्दतनय ही भरे दृष्टिगोचर होते। क्षण-क्षण उनका लावण्य, उनका सर्वाकर्षक सौन्दर्य मुझे सदैव परिवर्द्धित होता ही दृष्टिगोचर होता रहता। अतः मेरी विह्वल दशा ही रहती। भावके प्रखर प्रवाहमें कभी मुझे प्रेम-मूर्च्छा हो जाती और कभी मैं अचिन्त्य लीलामहाशक्ति द्वारा जाग्रत् कर दी जाती। प्रायः मैं तभी जाग्रत् होती जब एक हाथमें छोटा-सा लकुट और दूसरेमें वंशी धारण किये, सजे-सजाये कूदते-चौकड़ी भरते गोवत्सोंको नियन्त्रित करने नील नन्दतनय अपने सखाओंके साथ प्रभातमें नन्दभवनके बाहर राजपथमें आ जाता। बस, उसे देखते ही प्राण मेरी देहको छोड़कर मेरे नेत्रोंमें ही समा जाते। ओह! अपने वंशीविभूषित हाथसे जब वह वंशीको अधरोंपर रखता, तब तो मेरा समग्र अस्तित्व ही उसके सुकोमल पाद-पद्मोंमें न्यौछावर हो उठता। एक परम सुखमयी तड़िल्लहरी-सी मेरे रोम-रोममें व्याप्त हो जाती।

सहसा गोपशिशु शृङ्गध्वनि कर उठते। जननी यशोदा अपनेप्राण-सर्वस्व नीलमणिकी आरती उतारती, ब्रजपुरंध्रियाँ मङ्गलगीत आरंभ करतीं तथा सबके नेत्रोंको शीतल करते नन्दतनय, मेरे प्राणमणि वनको प्रस्थान कर जाते। नन्दग्रामके प्रत्येक द्वारपर ही अतिशय आह्लादसे पूर्ण गोपरामाएँ बहुमूल्य राशि-राशि रत्नोंसे उनका निर्मञ्छन करतीं, दीप्तिवान् मणियोंसे उनकी आरती उतारी जाती। प्रफुल्ल सुरभित कुसुमोंकी वर्षा तो सब ओर निरन्तर होती ही रहती।

इस प्रकार पुरकी सीमाका अतिक्रमणकर मेरे नीलसर्वस्व वनकी सीमापर आ जाते। मैं भी वनमें सबकी आँख बचाती - मेरे ज़ीवनसर्वस्व नीलमणिके साथ-साथ वनमें आ जाती।

मेरे मनमें यह सङ्कोच अवश्य सदैव रहता कि वनमें तो रेंगनेवाले कीट, कण्टक, क्षुरधार प्रस्तरखण्डोंकी बहुलता रहती ही है, विधाताने हमारे चरणोंमें इनसे रक्षा हेतु कठोर खुर दिये हैं, किन्तु नीलमयङ्क, मेरे जीवनधनके चरणतल तो कमलकी पंखुड़ियोंसे भी अधिक सुकोमल है। फिर इन चरणोंको वनमें दौड़ने-भागनेमें कितनी पीड़ा होती होगी? यह अवश्य है कि मेरे जीवनधन वनमें प्रवेश करते समय उसी पथका अनुसरण करते थे, जिस पथका निर्माण असंख्य गौएँ अपने तीक्ष्ण खुरोंसे पृथ्वीको खोदकर कठोर रजकणिकाओंको पीसती हुईं पहलेसे ही कर चुकी होतीं। फिर भी कभी-कभी गोशावकोंके साथ वे वनके उस खण्डमें भी प्रवेश कर जाते, जहाँकी घास गौओंके चारणसे अधूरी कटी होती। इतना ही नहीं, वे अपने सुकोमल हाथोंसे भी लम्बी-लम्बी सुकोमल घास तोड़कर लाते और गोशावकोंको खिलाने लगते। उस समय मेरे प्रियतम नीलसुन्दरमें वात्सल्यरसकी जो शत-सहस्र मंदाकिनियाँ प्रवाहित होतीं, उसका चित्रण करनेकी सामर्थ्य भला किसमें है? ओह! अपने प्रिय गोशावकोंको ग्रास देते समय मेरे जीवनसर्वस्व नीलमणिमें जो प्रेमावेश जागता, वह सब मेरे नेत्रोंमें, मनमें प्रविष्ट हो जाता। कभी-कभी ये मेरे जीवनधन अपने असीम वात्सल्यपूरित करोंसे वनमें इन गोशावकोंका पुष्पमालाओंसे, साथ ही भिन्न-भिन्न लाल-पीली मिट्टीसे शृङ्गार करते, फिर इनका शृङ्गारित सौन्दर्य निहारकर स्वयं ही अपने करोंकी ताली बजाकर प्रसन्न होकर नाचने लगते। मेरे प्राणजीवन सर्वस्वके वात्सल्यरस-वितरणकी प्रणाली देख-देखकर मैं जय-जयकार कर उठती। वनचारणके समय लीलाबिहारी श्रीकृष्णचन्द्रकी ऐसी असंख्य झाँकियाँ मुझे देखनेको मिलतीं और मैं देखती हुई उनपर न्यौछावर होती रहती। इन गोशावकोंका कैसा सौभाग्य था कि वे मेरे स्वामी इनपर अपनी एक-से-एक बढ़ी-चढ़ी मनोहर चेष्टाओंसे अपना नेह उँडेलते। एक दिवस मैंने देखा एक अल्पवयस्क गोवत्स द्रुतगतिसे चलनेमें श्रान्त-सा दीखने लगा; बस, उस समय तत्क्षण ही मेरे जीवनधनने उसे अपनी गोदमें धारण कर लिया। मैं उनका यह प्रेमिल सौहार्द देखकर कृतकृत्य हो उठी। पुष्पचयनके समय किसी पुष्पवृक्षको खण्डित हुआ देखकर मेरे जीवनसर्वस्व इतने व्यथित हो जाते, उस समय अपने कोमल करस्पर्शसे उस वृक्षकी सम्पूर्ण वेदना हर लेनेके लिये उनकी आतुरता, वृक्ष-गुल्म-लताओंके प्रति भी उनका स्नेहदान देखकर कौन व्यक्ति उनपर अपना सर्वस्व न्यौछावर नहीं कर देगा।

मेरी बहुत ही विचित्र दशा थी। कभी तो इन नीलमयङ्कके प्रेमकी विचित्र लहरें मेरे अन्तःकरणको आप्यायित कर उठतीं, और कभी-कभी ऐसा लगने लगता मानो उन मेरे जीवनसर्वस्वके अतिरिक्त अन्य किसीकी सत्ता है ही नहीं। उस समय पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग, भृङ्ग, तरु-लता-गुल्म नन्दव्रजमें स्थान पाये जीवमात्र मुझे नीलमणि नन्दतनय ही दीखने लगते। उस समय निर्भ्रान्त यह प्रतीति होती कि उनके सिवा अन्य किसीकी सत्ता ही नहीं है। वे स्वयं अपने आप ही अपने आपसे सारा लीलारमण कर रहे हैं उस कालमें मुझे अपने स्वयंका शरीर मेरे नेत्र, नासिका आदि इन्द्रियाँ, मेरे मन-प्राण भी नन्दतनय ही दिखने लगते।

इस प्रकार मेरा जीवन सायंसे प्रातः एवं प्रातःसे सायं, दिवस-रातके झूलेमें झूलता हुआ व्यतीत हो रहा था। वह दिवस मुझे भली प्रकारसे स्मरण है, जब मेरे प्रीति-जीवनमें एक और विलक्षण मोड़ आया। उस दिवस नन्दतनय नीलमणि किसी उत्सव-विशेषके कारण वनमें नहीं गये थे। वे वर्षमें पच्चीस दिवस तो फाल्गुन मासमें वनचारणके लिये नहीं जाते हैं, जब वे फागोत्सव मनाते हैं एवं इसी प्रकार भाद्रपद मासमें अठारह दिवस नन्दव्रजमें मनाये जानेवाले स्वयंके जन्मोत्सवके उपलक्ष्यमें, एवं नौ दिवस प्रिया राधाके जन्मोत्सवके उपलक्ष्यमें बृषभानुपुरमें रहते समय उनका वनचारण स्थगित रहता है। मेरे प्राणधन जब वनचारणके लिये नहीं जाते तो मैं भी उनकी निवासस्थलीकी या तो नन्दभवन या बृषभानुभवन – जहाँ भी वे होते हैं, वहाँकी परिक्रमा ही करती रहती हूँ, अथवा उनकी निवासस्थलीसे थोड़ी दूर, सैकत भागसे तनिक हटकर जो भी सुन्दर कुञ्ज होते हैं, उनमें विश्राम करती रहती हूँ। उस समय मन-ही-मन मैं अपने नीलमणि प्राणप्रियतम नन्दनन्दनकी ध्यानछविको मनमें बसाये उनसे ही वार्त्ता करती, उनका ही कृष्णनाम

जपती दिवस व्यतीत कर देती हूँ। मेरा मन उस काल मेरे चतुरचूडामणि प्राणाधिक प्रियतम श्यामसुन्दरके अगाध गुणोदधिमें डूबता-उतराता रहता है। मुझ अभागिन मलिन मृगी-शरीरके पास वे नीलसुन्दर ही तो एकमात्र अनमोल सम्पदा है। शेष तो मेरे पास मनकी महा मलिनता एवं तनकी कुरूपता रूपी अक्षय पापराशि अवश्य है किन्तु इस चितचोरने न जाने कबसे उसे भी पूरी-की-पूरी ही अपहृत करली है। ऐसे सर्वस्वहर्त्ता चोर-जार-शिरोमणिके प्रति भी मेरे प्राण इतने आकृष्ट हैं कि क्षण-क्षण उन्हींके चरणोंमें लिपटे रहना चाहते हैं। मेरे प्राणोंको न जाने क्या हो गया है कि उनकी एक झलक मात्र पानेको परम व्याकुल हुए हाहाकार करते रहते हैं। उनके एक क्षणके मिलनसुखके सम्मुख मुझे सागर-समन्वित सम्पूर्ण धराका निर्विघ्न आधिपत्य, पातालकी कल्पावधि अक्षय सम्पदा, योगसिद्धियाँ, यहाँ तक कि जन्म-मृत्यु-विहीन ब्रह्मपद भी तुच्छातितुच्छ लगता है।

उस दिवसकी घटना मेरे मन-मानसमें सुस्पष्ट प्रत्यक्षवत् अङ्कित है। उस दिवस प्रातःके प्रथम प्रहर ही एक बड़ी सुन्दरी गोपी नन्दभवनमें चली आयी थी। मैं नन्दभवनके राजपथमें उस दिवस प्रातःकालसे इस प्रतीक्षामें बैठी थी कि मेरे प्राणपति नन्दतनय भवनसे अपनी गौओंके साथ निकलें। जब प्रथम प्रहर व्यतीत होने चला, नीलमणि गौओंके सङ्ग बाहर नहीं आये एवं गायें समीपके ही चरागाहमें ग्वालोंके साथ चली गयीं, तब मुझे पता चला कि आज नीलमणि नन्दतनय गोचारणार्थ नहीं जावेंगे। मैं अपने यमुना तटवर्त्ती कुञ्जमें लौटना ही चाहती थी कि मेरी दृष्टि उस गोपीपर पड़ी। उसके सिरपर जलका मटका था। वह नील लहँगा, अरुण कञ्चुकी धारण किये थी। सिरपर जलका मटका टिकाये रखनेके लिये उसकी ओढ़नीपर ही ईंडुरी रखी थी। ओढ़नीके दोनों छोर समीरके झोंकोंमें उड रहे थे।

अरे! न जाने क्या हुआ, वह यमुना घाटपर जल भरकर ईंडुरीमें अपनी जल-कलशी रख रही थी कि उसकी दृष्टि सखाओं सहित स्नान करने आये नन्दतनयपर पड़ गयी। बस, मटका सिरसे गिर गया, और गोपी उन्मादिनी हो उठी। 'नीलसुन्दर! प्राणधन! प्रियतम! की ध्वनि उसके मुखसे निकल रही है। गोपीका बाह्यज्ञान लुप्त है। विलक्षण प्रभाव है गोपीका! जो भी उसे छू लेता है उसके देहमें जड़िमा-विकार व्यक्त हो जाता है। उसके मुखसे निकले 'प्रियतम! नीलसुन्दर हे! प्राणरमण हे!' — शब्दराशिके श्रवण मात्रसे जनगण चेतनाशून्य हो उठते हैं, जो जहाँ है, वहीं खड़ा रह जाता है। 'प्रियतम! प्रियतम! नीलरमण! नीलरमण!' की ध्वनिसे नन्दग्राम मुखरित है और पागल-सी वह कभी इस छोर और कभी उस छोर दौड़ी जा रही है।

देखो, देखो! इस वृद्धाने उसे स्सपर्श किया और वह ऐसे काँपने लगी, मानो झंझावातमें कोई पुष्पलता काँप रही हो। और वह युवती तो न जाने कैसी जड़ पुत्तलिकाकी भाँति स्थिर ही हो गयी है। कुछ काल तो दोनोंकी यह दशा रही, अब तो ये दोनों भी नीलमणि! कृष्ण! कृष्ण! रटतीं विक्षिप्त हो उठी हैं।

अब कोई उसे छेड़ता नहीं है। उसे तो अपने तनकी ही सुधि नहीं रही, फिर लज्जा-सङ्कोच, कुलमर्यादा क्या अर्थ रखते हैं? उसके तो रोम-रोममें नीलमणि नन्दतनय परिपूरित हो चुके हैं। लो! अब वह बिना रोक-टोकके यमुनाके कूलवर्त्ती तमालोंको निनादित करती हुई दक्षिण अरण्यकी ओर चली आ रही है। ओह! चलो, मैं इसकी चरणरजसे अपना मृगीदेह कृतकृत्य कर लूँ। आज तो मैं धन्य ही हो गयी। इसकी चरण-रजसे मेरा रोम-रोम सिक्त हो जाय; इससे बड़ा सौभाग्य ही मेरा क्या होगा। मुझ मृगीदेहमें ऐसी सामर्थ्य तो है नहीं, कि इस गोपीके तुल्य परम प्रेमानन्दमयी अनिर्वचनीय स्थितिको प्राप्त कर लूँ। इस प्रेम-परिणतिके अगाध महासिन्धुमें अवगाहन करनेके लिये तो मुझे अवश्यमेव इस ब्रजभूमिमें कोई मानवी गोपीका जन्म ही ग्रहण करना पड़ेगा। किन्तु इस महासौभाग्यवती गोपीमें उमड़े हुए निर्मल प्रेमसिन्धुका एक कणका ही मुझे स्पर्श हो जाय - यह विचार करती मैं उसकी चरणधूलिमें लोटने लगती हूँ।

अरे! आश्चर्य! उसकी चरणरजमें लोटने मात्रसे मेरे हृदयमें कैसी आनन्द-मन्दाकिनीका सृजन हो उठा है। अरे, अरे! मेरे नेत्र, कर्ण, स्पर्शेन्द्रिय आदिसे उत्पन्न विषयराशि बाँटनेवाला यह मृगीदेह अब तो प्रेमानन्दभवन ही बन गया

है। प्रियतम नीलाम्बुज नन्दनन्दनके पाद-पद्मोंके अतिरिक्त कोई सत्ता है, हो सकती है – यह निर्णय करनेवाली मेरी बुद्धि ही अब तो सदा-सदाके लिये विलुप्त हो गयी है। निस्सार जगत्-स्मृतिका द्वार ही सदा-सदाके लिये रुद्ध हो गया है। देखो, देखो, कैसा चमत्कार हुआ है – मैं मृगी, पशुजातिकी होकर भी चिन्मय, आनन्दधाम, अनन्त - पारावारविहीन प्रियतम प्रीति-रस-सिन्धुमें सदा-सदाके लिये समा रही हूँ।

अब भला मैं मृगी, इस गोपीका अनुसरण कैसे छोड़ूँ? देखो, इस गोपीकी ओढ़नी गिर गयी, अलकें बिखरी हैं, कुन्तलोंकी लटें, उसके ललाटपर झूल रही हैं, उन्मादकी दशामें वह डगमग गतिसे गहन अरण्यमें बढ़े ही चली जा रही है। पैर रखती है कहीं, और पड़ते हैं कहीं, अरण्यके वृक्षोंसे टकराने लगती है। परन्तु तरुशाखाएँ अति विचित्र रूपसे अपने कोमल पल्लव-जालसे गोपीको थाम लेती हैं। लो, वह आ पहुँची उत्तरवाहिनी कलिन्दनन्दिनीके तटपर। विस्फारित नेत्रोंसे वह कलिन्दनन्दिनीके कल-कल प्रवाहको देखने लगती है। अब तो सायङ्काल हो चला है। रवि अस्ताचलगामी हो रहा है।

जनशून्य अरण्यस्थल है। कल-कल करती हुई प्रवाहिणी अपनी लहरोंसे गोपीके चरण पखारने लगती है। अरे, अरे! इन लहरोंमें गोपीको न जाने क्या दृष्टिगोचर हो उठा है। देखो! वह उन्मादिनी अट्टहास कर रही है। उसके इस प्रेमोन्मादी अट्टहासको सुनकर तरुशाखाओंपर विराजित काकली करते वन-विहङ्गम भी मूक हो जाते हैं। गोपी तो आलिङ्गन मुद्रामें अपने हाथ उठाये कालिंदीकी लहरोंमें कूद पड़ी। अरे, यह मूढ़ा कालिन्दीकी लहरोंको प्रियतम नन्दनन्दनके बाहुयुगल समझकर आलिङ्गन कर रही है। वृक्षोंमें शयनके लिये समागत सभी पक्षी चीत्कार कर उठते हैं।

किन्तु कृपा-महाकृपा! पारावारविहीन कृपा-रस-सिन्धुका ज्वार उमड़ उठता है। नन्दकिशोर श्रीकृष्णचन्द्र मेरे स्वामी अपने साथ बृषभानुनन्दिनी राधा एवं अन्य गोपियोंको लिये नौकामें आरूढ़ चले आ रहे हैं। जैसे ही गोपीके प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्रकी नौका गोपीके समीप आती है, गोपीके उन्मादका स्रोत ही रुद्ध हो जाता है। ओह! उसके प्राणोंकी उत्कण्ठा, प्रियतम नीलसुन्दरसे मिलनकी प्रेमिल त्वरा, गोपीके रोम-रोमसे प्रसरित प्रीतिकी कल्लोलिनीकी रसधारामें बृषभानुनन्दिनी, उनकी सखियाँ एवं प्रियतम नीलसुन्दर बहने-से लग जाते हैं। गोपीको कालिन्दीकी धारासे नावपर खींच लेनेके लिये सभी एक साथ अपने-अपने आसनोंसे उठ पड़ते हैं। नीलसुन्दरने गोपीके उठे कर-पल्लवको अपने हाथोंमें थाम लिया है। लो, बृषभानुनन्दिनीने गोपीकी ग्रीवामें अपनी भुजाएँ डाल दीं।

आश्चर्य! महाश्चर्य! गोपी तो पूरी-की-पूरी बृषभानुनन्दिनीके अङ्गोंमें समा गयी। गोपी गोपी रही ही नहीं। वह भानुकिशोरी ही हो गयी। प्रीतिकी इस महान् परिणतिको देखकर कालिन्दीकी लहरें जय-जय नाद कर उठीं। वनस्थली झूम उठी। चर, अचर, स्थावर, जङ्गम सभी इस महामिलनसे स्पन्दित हो उठे।

पश्चिम गगनमें भुवनभास्कर भी ढलते-ढलते इस महान् प्रेम-मिलनके साक्षी हो उठे। मेरे प्राणोंमें एक रसमय हाहाकारकी लहर-सी उठ रही है। ' आह! कदाचित् वह गोपी मैं होती, फिर तो मेरे सौभाग्यकी सीमा नहीं होती। अब मैं नन्दभवन पुनः लौटकर क्या करूँगी? बृषभानुनन्दिनी एवं प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्रकी निराली प्रेमशोभाका चिन्तन करती मैं कालिन्दीके तटपर चलती हुई इस नावका अनुसरण करती इस नौकाके गन्तव्यस्थलकी ओर ही बढ़ी जा रही हूँ। अब तो जहाँ यह नाव रुकेगी, वहीं मेरा भी शेष जीवन व्यतीत होगा। ओह! भानुनन्दिनी और उनकी सखियोंके मध्य विविध रसमयी चेष्टाएँ करते मेरे प्राणधन नीलमणिके महामरकत-श्यामल श्रीअङ्गोंकी रूपछटा कैसी निराली है। उनका मस्तक मयूरपिच्छनिर्मित मनोहर मुकुटसे मण्डित है। घुँघराली अलकोंमें विविध वर्णके मह-मह महकते हुए कुसुमसमूह गुम्फित हो रहे हैं। अन्य अङ्गोंमें भी सखियोंने कुसुमोंके ही आभरण पहनाये हैं। ओह! कुङ्कुम मिश्रित उत्कृष्ट चन्दन और कस्तूरीसे श्याम कलेवरपर सुन्दरातिसुन्दर चित्रोंका निर्माण किया हुआ है। जब अपने बिम्ब-विडम्बी अधरोंपर वे वंशीको धारणकर उससे रसमय स्फुट स्वरोंका सृजन करते हैं, अद्भुत मनोहर मिलन-रागमयी एक ऊँची अतिशय मधुर

तान छेड़ देते हैं, तो गोपियाँ – कोई उनके चरणोंसे, कोई उनके स्कन्धसे, कोई उनकी भुजाओंसे संलग्न आलिङ्गनरत हो जाती हैं, अपनी हृत्तलकी प्रीतिको सङ्गोपित रखनेमें असमर्थ हो उठती हैं। वे इस मुरलीकी अद्भुत तान एवं आलापके सुखसे विभोर विह्वल एवं असंयत हो उठती हैं। कोई उनकी पगथलीको अपने कपोलोंसे, उरोजोंसे सटा लेती हैं, कोई उनके हस्तकमलोंको आकर्षितकर उसे अपने कंधेपर रख उनके नयन-से-नयन मिलानेकी चेष्टा करती है, कोई उनकी गोदमें सिर रखकर, नयन मूँदकर किसी अन्य भावलोकमें पहुँच जाती है। अपने प्रियतम नीलसुन्दरका ये सखियाँ परम सुकोमल अङ्गस्पर्शके दान द्वारा नवीन-नवीन प्रेमिल चेष्टाएँ करके उपलालन कर रही हैं। कोई सखी अपने प्राणोंकी अतीव उत्कण्ठावश उन्मादिनी हुई, अपने प्रियतमके ठीक सामने खड़ी हो जाती है। उसकी ओढ़नी अस्त-व्यस्त हो गयी है, उसके नेत्र अपने प्रियतमपर इस प्रकार केन्द्रित हो उठते हैं, मानो वह प्राणधनको अपने नेत्रोंसे पूरा ही पी जायेगी। अपने दृगोंमें श्याम ज्योति पूरित किये वह मदहोश हो उठी है। उसके उमड़ते शृङ्गार-भावोंका चित्रण भला कैसे संभव हो? देखो, देखो, इस प्रेमोन्मादिनी गोपीको देखो, साज–शृङ्गारसे अस्त-व्यस्त विभूषित हुई, अपनी परम रमणीय हाव-भावादि चेष्टाओंसे पल-पल प्रीति-सरिताका सृजन करती गोपीजन-नयनानन्द अपने प्रियतमको उस सरितामें अवगाहन करा रही है।

वनमें सर्वत्र वंशीनादकी सुधा पूरित हो चुकी है। सन्ध्याकाल हुआ मानकर अपने आवासस्थलमें सघन वृक्षोंमें आसीन पक्षियों, यमुनामें तैरते जलचरों, वनचर, चतुष्पादोंपर भी वंशीध्वनिका उन्मादी प्रभाव हो चुका है। ध्वनिने सभीके मन-प्राणोंको आकर्षित कर लिया है। इन सभी पक्षियों, वनचरो-जलचरोंके नयनोंसे स्नेहकी ऐसी प्रखर अश्रुधारा बह रही है मानो बिना मेघ ही वन वर्षामें नहा रहा हो। इनके हृदय विगलित हैं, एवं पङ्ख रोमाञ्चित, उत्फुल्ल हो रहे हैं। इन सभीके शरीर भले ही निश्चल अपने-अपने आवासोंमें स्थित हों, किन्तु प्राण तो अपने प्राणपतिके चरणोंमें लुट पड़े हैं। वनचर तो पंक्तिबद्ध हुए, जातिगत सभी वैर एवं भेदभावोंसे सर्वथा उन्मुक्त, परम निर्मल चित्त बने यमुनातटके किनारे-किनारे नौकाके सञ्चरणके साथ-साथ चल रहे हैं। उनकी आँखोंमें पूरित है प्रिया-प्रियतमकी प्रेमालिंगित छवि; एवं उनके प्राण आकर्षित होकर केन्द्रित हो गये हैं उनकी कर्णेन्द्रियोंमें। यंत्रचालितसे उनके पैर बढ़ रहे हैं शनैः-शनैः नौकाके सञ्चालनके साथ उसी स्थलकी ओर जहाँ इन्द्रनीलद्युति प्रियतमसे लिपटी विद्युन्माला-सी प्रिया राधा और सखियाँ निशा-विहार करेंगी।

लो, यह सम्मोहनघाट आ गया। यहाँसे कुछ ही दूरीपर यमुनाका आंशिक जल एक स्रोतसे नारायणगिरि परिसरमें स्थित राधाकुण्ड एवं कृष्णकुण्ड नामक दो सरोवरोंकी ओर प्रवाहित हो रहा है। प्रिया-प्रियतमकी नौका यमुनाकी मुख्य धाराको त्यागकर इसी स्रोतसे सरोवरोंकी ओर संतरण करने लगती है। इस गिरिस्रोतकी भी विलक्षण संरचना है। जब कभी प्रिया-प्रियतम नौकाविहार करते हुए यमुनासे सरोवरोंकी ओर संतरण करते हैं तब तो यमुनाजलका प्रवाह इस स्रोतसे सरोवरोंकी ओर बह उठता है, किन्तु जब प्रिया-प्रियतम सरोवरोंसे इस स्रोतपथसे यमुनाकी ओर संतरण करते हैं तो इन सरोवरोंका निर्मल जल उमड़कर यमुनाको आपूरित करने उस ओर प्रवाहित हो उठता है।

ओह! गिरिस्रोतके पथसे नौका सरोवरोंकी ओर जैसे ही मुड़ती है, विलक्षण सुन्दर उपवनकी अतिशय सुरभित बयार सभीको मुंग्ध कर देती है। वृन्दावनकी अधिष्ठात्री देवीने स्रोतके दोनों तटोंपर अतिशय सुरभित लताओंसे असंख्य पुष्प-मण्डप निर्माण कर दिये है। चतुर्दिक् विकसित पुष्पराशि पथको सौरभसे आमोदित कर दे रही है। मैं देखती हूँ – रह-रहकर मेरे प्रियतम नीलमणिके अधरोंपर स्मिति व्यक्त होती है और यह स्मिति ही परिणत हो रही है – सुमनावलीके रूपमें। यह सुमनावली स्रोतके दोनों तटोंकी भूमिमें आस्तरण बिछाती जा रही है। कलाकी अधिष्ठात्री देवी वृन्दाने अनगिनत एक-से-एक परम सुरभित पुष्पोंको उनके ही वृन्तोंसे गुम्फितकर सुभग प्राकृत मालाओंका निर्माण

किया है एवं इस पथमें सर्वत्र वृक्षोंमें गुच्छोंके रूपमें लटका दी हैं। इन मालाओंमें निशा होनेपर भी मधुकर झूम-झूमकर लिपट रहे हैं। राकाशशिकी ज्योत्स्ना सर्वत्र वनको आलोकित कर रही है। इन चञ्चरीकोंकी वाणी दूरसे तो स्वाभाविक ही गुन-गुन श्रवणगोचर होती है किन्तु तनिक भी ध्यान देकर कोई सुनता हो तो उसे 'गुन-गुन' रवके स्थानपर 'प्रिया-प्रियतम, प्रिया-प्रियतम' ध्वनि ही श्रवणगोचर होती है। कालिन्दीका प्रवाह जो स्रोतसे सरोवरोंकी ओर उमग रहा है, कल-कलके स्थानपर कृष्ण-कृष्ण ही उच्चारित कर रहा है। इसे यदि किञ्चित् और ध्यानसे सुनो तो यह कृष्ण-कृष्ण ध्वनि पहले तो 'राधाकृष्ण-राधाकृष्ण' सुन पड़ती है एवं कुछ काल पश्चात् 'राधा-राधा' में पर्यवसित हो जाती है।

गिरिस्रोतका तटवर्त्ती प्रदेश एक-से-एक अभिनव सुन्दर कुञ्जोंसे भरा है। कोई कुञ्ज सर्वथा राग भावरूप होनेसे रक्तवर्णके पुष्पोंसे लदा है, कोई उन्मद प्रीतिभावके प्रतीक पीत पुहुपोंसे, कोई निर्मलताके प्रतीक श्वेत पुष्पोंसे भरा है एवं कोई -कोई मिश्रित भावके पुष्पोंकी शोभा-विस्तार कर रहा है।

देखो! प्रियतम प्राणसुन्दर अपनी प्रियाको वन-शोभा दिखाते हुए कितने उत्फुल्ल दृष्टिगोचर हो रहे हैं। प्रियतम ब्रजेन्द्रनन्दनके बिम्बारुण अधरोंपर विराजित वेणुकी महा मोहन स्वरलहरीसे प्रिया राधामुख्या सखियोंके सुमधुर कोकिलकण्ठसे निःसृत प्रियतम-प्रीति-सुयशकी सुमधुर तानोंसे सम्पूर्ण वनक्षेत्र मुखरित हो रहा है। वनचारी चतुष्पदोंकी एवं जलचर, नभचर विहङ्गमोंकी टोली प्रेमविह्वल हुई उनके सङ्ग-सङ्ग आगे बढ़ रही है। रङ्ग-बिरंगे राशि-राशि कुसुम-समूहोंसे समलंकृत वृन्दाकानन अपने प्राणपतिके सुस्वागतके लिये प्रस्तुत है।

लो! यह गिरि-परिसर भी आ गया। यह गिरि भी कैसा प्रेममय है! अपने कोषकी अपरिसीम सम्पदा पहले तो यह प्रिया-प्रियतमके चरण-सरोजोंमें समर्पित करता है एवं तब चर-अचरको साथ लिये स्वयं भी उनपर न्यौछावर हो जाता है। देखो, देखो, प्रिया-प्रियतम सखियों सहित इस परम मनोरम कुञ्जमें प्रवेश कर रहे हैं। ओह! मानों प्रकृतिने अपना सम्पूर्ण कौशल ही इस कुञ्जके निर्माणमें लगा दिया है। स्थान-स्थानपर शुक-पिक आदि पक्षियोंकी प्रतिकृति यह भ्रम उत्पन्न कर देती है कि ये जीवन्त हैं अथवा मात्र छवि ही हैं। छविमय होनेके साथ-साथ ही सबकुछ चिन्मय है! मणिमुक्ता एवं रत्न आदि भी कठोर नहीं होकर अत्यन्त कोमल हैं।

अब तो प्रिया-प्रियतम निशापर्यन्त यहीं विहार करेंगे। हम वनचरोंकी तो नियति ही यही है कि हम इस कुञ्जकी परिक्रमा करते हुए निशा व्यतीत कर दें। हाँ! यदि निशामें रास-नृत्यादिके लिये वे किसी निर्धारित स्थलपर इस कुञ्जसे बाहर यमुना-पुलिनपर गये, तो मैं भले ही चुपचाप उनका अनुकरण कर लूँ। उस अवसरपर भी पुलिनसे दूर ही किसी वृक्षके नीचे ही मुझे चुपचाप शान्त निस्पन्द रासनृत्यकी माधुरीका दर्शन करते रहना होगा। ओह! यदि यह रासनृत्य कुञ्ज- परिधिके अन्दर ही कहीं किसी निर्मित रासमण्डलमें हुआ तो मैं प्रियाकी नूपुरोंकी मधुर ध्वनि एवं प्रियतमकी वंशीध्वनिकी माधुरी अवश्य ही श्रवण करती हुई कालक्षेप करूँगी। भले ही मुझे युगल दम्पतिके नृत्यादिके दर्शन न हों, किन्तु प्रियाकी वीणावादन-माधुरी, उन दोनोंके गीत-गायनकी आलाप-ध्वनिकी विलक्षण मधुरतामें डूबी मेरी निशा क्षणोंकी तरह ही कट जायगी।

और फिर रजनीको विराम देने ऊषा आयेगी ही। उस समय प्रिया-प्रियतमके स्वागतार्थ हम सभी वनचर कुञ्जके बाहर ही उनके दर्शनके लिये नेत्र बिछाये खड़े रहेंगे। निशापर्यंत उनके अदर्शन एवं वियोगके उपरान्त उनके जो मुझे दर्शन होंगे, उस रसके आवेग और सुखकी कल्पनामें ही मेरे नयन पल-पल प्रेमाश्रुओंसे छलछलाये रहते हैं। ओह! प्रिया किशोरी कैसी प्रियतममयी है, मानो उनका रोम-रोम, अङ्ग-अङ्ग नील नीरदाभ ब्रजेन्द्रनन्दन नामक पदार्थसे ही निर्मित हो; कोटि-कोटि नन्दनन्दन जैसे उसके अणु-अणुसे निरन्तर 'प्रियतम-प्रियतम' पुकारते रहते हों। उसपर दृष्टि पड़ते ही मेरे मन-प्राण तो पूर्णतया निस्पन्द-जड़ हो जाते हैं। निर्निमेष नयनोंसे मैं एकटक उसे ही दृष्टि स्थिर किये निरखती रहती हूँ। यंत्रचालित-से मेरे चरण उसके समीप पहुँचनेको चल पड़ते हैं। और प्राणप्रियाके तनसे अपना तन मैं सटा

लेती हूँ। मेरे पास इसके सिवा अन्य कोई अपने प्रेम-मन्तव्यको प्रकट करनेका साधन भी तो नहीं! यही मेरा संक्षेपमें जीवन-वृत्तान्त है।।।७१३।।

जिज्ञासा

कृपया छन्द सं.७१३ में 'हो चपल चतुष्पद देते हैं, फेरी उन कुञ्जोंकी, प्रियतम!' का अर्थ सुस्पष्ट करें। 'हो' शब्द यहाँ यही अर्थ ध्वनित कर रहा है कि कोई इतर अस्तित्व चपल चतुष्पद बनकर कुञ्जोंकी फेरी दे रहा है। इन छन्दोंके प्रसङ्गमें कहीं स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता कि कौन चतुष्पद बना कुञ्जोंकी फेरी दे रहा है?

समाधान

वस्तुतः वृन्दाकाननके हृदयदेशमें विराजित इस निकुञ्जस्थलीके अमित प्रीतिवैभवका अनुमान ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य एवं गणेशादि ईश्वरकोटिके देवगण भी नहीं लगा पाते। संभव ही नहीं कि राधा कायव्यूहरूप जन्तुओंके अतिरिक्त कोई इसकी ओर-छोरविहीन प्रीति-महिमाका आस्वादन भी पा सके। इस राधा-निकुञ्जस्थलीकी विलक्षण चमत्कारिता ही यह है कि इस दृश्यजगत्में कृष्णद्युति नीलमयङ्क और उसकी प्रेमचन्द्रिका प्रिया राधाके प्राणोंका स्नेह ही वृक्ष-लता-वल्लरियाँ, एवं सभी स्थावर सौन्दर्य बना है, तब भला राधाकृपाकटाक्षकी उपलब्धि हुए बिना कौन अन्य जङ्गम यहाँ प्रवेश पा सकता है?

सत्यका सत्य यही है कि ईश्वरकोटिके देवगण भी प्राकृत इन्द्रियोंके अभिमानी हैं। महादेव अहङ्कारके अधिष्ठाता हैं, ब्रह्मा बुद्धिके, चन्द्रमा मनके, दिग्देवता कर्णेन्द्रियोंके, वायुदेव त्वगिन्द्रियके, सूर्य चक्षुओंके, प्रचेता रसनेन्द्रियके, अश्विनीकुमार नासिकाके, अग्निदेवता वागिन्द्रियके, इन्द्र हाथोंके एवं उपेन्द्र पैरोंके अभिमानी देवगण हैं। इन सभी देवगणोंको भ्रम हो जाता है कि यह ब्रज क्षेत्र भी त्रिलोकीके समान प्राकृत होगा और देवगण ब्रजवासी जनोंकी एकादश इन्द्रियोंके भी अभिमानी होंगे। किन्तु ब्रह्मा-मोहन-लीलाके उपरान्त सर्वविद्यापति हंसवाहन जब इन देवताओंको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके असमोर्ध्व ऐश्वर्यकी एक झाँकी दिखाते हैं तब उन्हें पता चलता है कि नन्दनन्दन और उनका समग्र ब्रजक्षेत्र ही प्रकृतिसे परेकी वस्तु है। प्राकृत पदार्थ ही इन्द्रियगोचर हो सकते हैं, परन्तु इस राधाकुञ्जकाननका तो एक पतङ्ग, एक भृङ्गकीट भी स्वप्रकाश परमानन्दस्वरूप है। जब उन्हें इन्द्रियाँ प्रकाशित ही नहीं कर सकतीं, तो इन्द्रियोंके अभिमानी देवगण इन ब्रजपुरवासियोंको मिलनेवाले श्रीकृष्ण-चरणसरोजके मधुर मकरन्दरसकी अनुभूति भला कैसे पा सकते हैं।

इन देवगणोंको तो परमात्मतत्वके सम्बन्धमें इतना ही ज्ञान था कि वह तत्व स्थूल नहीं, अणु नहीं, क्षुद्र नहीं, विशाल नहीं, घन नहीं, द्रव नहीं, छाया नहीं, तम नहीं, वायु नहीं, आकाश नहीं, सङ्ग नहीं, रस नहीं, गन्ध नहीं, नेत्र नहीं, कर्ण नहीं, वाणी नहीं, मन नहीं, तेज नहीं, प्राण नहीं, मुख नहीं, माप नहीं - इस प्रकार समस्त अपरमात्म वस्तु मायिक पदार्थोंका निषेधकर ब्रह्मका प्रतिपादन करनेवाली श्रुतियोंके द्वारा संकेतित मात्र है। देवगण ब्रह्माजीको इसी लिये ईश्वरकोटिका मानते रहे हैं क्योंकि वे सर्ववेदविद्यापति हैं। आपाततः ब्रह्ममें विचरते रहनेके कारण ही उनका नामकरण ब्रह्मा किया गया है। इसी प्रकार संसार-माया-गरल पीकर भी अपने अचल एवं विशुद्ध कल्याणस्वरूपमें अच्युत रहनेके कारण ही रुद्रदेवका नाम महादेव एवं शिव रखा गया है। यही विष्णुका विष्णुत्व है कि वे कभी अपनेको परिच्छिन्न शेषशय्याशायी नहीं समझते एवं दुग्धके समान आवरण-सागरमें अनन्त विक्षेप वृत्तियोंके सहस्रों फनवाले सङ्कर्षणकी शय्यामें लेटे रहकर, लक्ष्मीसे चरण दबवाते हुए भी सदैव अडिग सर्वव्यापी ब्रह्मभावमें डूबे रहते हैं। इसी प्रकार देवगणोंने सूर्यदेवको भी अपना प्रमुख इसीलिये माना है कि उनमें तमोगुणका संश्लेष भी नहीं। विशुद्ध सत्व सदैव जाज्वल्यमान् भावसे उनमें अदम्यरूपसे दमकता रहता है। देवगणोंने उनके अपरिमित तेजसे अभिभूत होकर ही उन्हें 'भास्कर' नामसे

सम्बोधित किया।। किन्तु इन देवगणोंको **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म''** - यह सबकुछ निश्चय ही ब्रह्म है – इस श्रुतिके वास्तविक अर्थका अबतक ज्ञान नहीं था। चतुरानन वेदगर्भने ही उन्हें ब्रह्मा-मोहन-लीलाके पश्चात् समझाया था कि इस ब्रजक्षेत्रमें श्रीकृष्णने इस श्रुतिवाक्यका वास्तविक अर्थ प्रकाशित किया है। इसके अर्थके सम्बन्धमें देवगणोंको तनिक भी भ्रम, संशय नहीं रह जाय, इस उद्देश्यसे अर्थको मूर्त्तिमान् हुआ दिखानेके लिये ही ब्रह्माजीके नेतृत्वमें ये देवगण इस राधाकुञ्जकाननमें चपल चतुष्पाद बनकर आये हैं। देवगण चमत्कृत हैं। आश्चर्यकारी दृश्य उनके सम्मुख हैं। अतिशय चकित देवगण देखते हैं कि सृजन, सृष्टि आदि शब्दोंमें सामर्थ्य ही नहीं कि मूर्त्तिमान् परात्पर परब्रह्म श्रीकृष्णचन्द्रकी आत्मप्रकाशमयी इस निकुञ्ज-सृष्टिकी रूपरेखाको रञ्चक मात्र भी वे किसीको हृदयङ्गम करा सकें। यहाँ प्रापञ्चिक सृष्टि जैसी कोई वस्तु नहीं, जो नियमोंकी परिधिमें समा सके। यह मायिक सृष्टि होती, तब न इन नियामक देवताओंकी दाल गलती। देवगण विस्फारितनेत्र देख रहे हैं कि यहाँका तो एक लधुतम कीट-पतङ्ग भी सच्चिदानन्दात्मक है। यह समस्त परिणति ही सर्वथा विशुद्ध है, अपने कारणसे सर्वथा अभिन्न है, तथापि यह लीलाकी संघटनाके उद्देश्यसे है। इसीलिये लीला-परिकरोंके स्वभावका इसमें उन्मेष हो गया है और यही कारण है कि असंख्य लीला-परिकर कीट-भृङ्ग-पतङ्ग, पशु-पक्षी, अण्डज-जरायुज-उद्भिज सभी अपने-अपने भिन्न-भिन्न स्वभाव एवं आकृतियोंमें प्रतिभासित हो रहे हैं। ओह! इस एक पतङ्गका भी कैसा सौभाग्य है कि परात्पर परब्रह्म परतत्व जो इन्द्रिय-मन-बुद्धिका प्रकाशक है, सभीसे अगोचर है, और जिसे मात्र वेद-प्रमाणसे ही अनुमानित किया जाता है, आज इन्हें प्रत्यक्ष दीख रहा है। ओह! इन सभीकी यह दर्शनोत्कण्ठा कितनी तीव्र है, दर्शनलालसा इनके अन्तस्तलमें कितने तीव्र तूफानकी तरह उमड़ती है, और दर्शन पा लेनेपर भी तृप्त होनेके बदले ये और अधिक उत्कण्ठित हो उठते हैं। ओह! यह प्रीति-प्रदेश कैसा विलक्षण है कि यहाँके एक भ्रमरके भी मन-प्राण राधा-प्राणवल्लभ श्रीकृष्णके चरण-सरोरुहोंमें ही बँधे रहते हैं। यह गूँ-गूँकर कुञ्जोंमें भ्रमण करता है, किन्तु उसके साथ उसके मन प्राणोंकी छाया मात्र रहती है। इस छायाको लेकर केवल अभ्यासवश ही यह भ्रमर बना सब क्रिया कर रहा है। गुञ्जनके साथ सब समय इसकी प्राणोंकी आर्त्तिसे सनी यह प्रार्थना इसके अन्तर्देशको पूर्ण किये रहती है - 'हे विधाता! मेरे अनादि-सञ्चित सुकृतोंका एक फल यदि तू दे सके तो दे दे – कदाचित् नीलमणि ब्रजराजकिशोर एवं भानुकिशोरीको मैं भी इन कुञ्जोंकी तरह ही अपने हृदयमन्दिरमें निशापर्यंत शयन करा सकूँ, उन्हें पूरे-का-पूरा अपने हृदयदेशमें निबद्धकर मैं उनकी प्रीतिसमाधिमें लीन हो जाऊँ। मेरा हृदय भी इन निकुञ्जमन्दिरोंकी तरह ही प्रेमप्लुत हो उठे जिससे इन युगल दम्पतिपर मेरा एकछत्र अधिकार हो जाय।

और इन मूक चतुष्पादोंकी – इन नीलगायोंकी, राशि-राशि हरिणोंकी, इन वनपशुओं – वाराहों, व्याघ्रों, बिडालों, श्वानों तथा सिंहोंकी दशा किसे ज्ञात है? प्रिया-प्रियतमके दर्शनसे जो प्रीति इनमें उमड़ती है, उसे व्यक्त करनेके साधन उनके पास हैं ही कहाँ? युगल दम्पतिको देखते ही एक विचित्र उल्लासपूर्ण स्वर-निष्कासन, कम्पोदय, अपने जोड़ों एवं शावकोंका तिरस्कारकर नील-पीत दम्पतिके निकट आकर अपनी ग्रीवा और अङ्गोंको प्रसारित कर देनेकी क्रिया करना – इतने ही उपाय इनके पास हैं जिससे ये अपना प्रेम प्रदर्शित कर पाते हैं। कदाचित् ये अपनी जीभ निकालकर किञ्चिन्मात्र भी युगल दम्पतिको संस्पर्श कर लें तो इन्हें सङ्कोच हो जाता है कि ओह! सुकोमलतम अङ्ग-अवयववाली किशोरी कहीं भयभीत नहीं हो जाय, उसके सुकोमलतम अङ्गों एवं हृदयको कहीं क्षति नहीं लग जाय। ये तुरन्त अपनी जिह्वा समेट लेते हैं। ये युगल दम्पतिके अङ्गोंकी घ्राणमात्र लेकर शान्त हो जाते हैं। अन्तर्यामी ही जानते हैं कि युगलदम्पतिके श्रान्त अङ्गोंको लेहन करनेकी वासना उनमें कितनी तीव्र वेगसे उदित होती है, किन्तु पूर्ण नहीं हो पाती। ये व्याघ्रादि हिंस्र कहानेवाले चतुष्पाद जो यहाँ गौओंकी तरह अहिंसक रहते हैं इन युगल दम्पतिके पार्श्वदेशमें अधिक-से-अधिक समयतक रहनेके लिये सतत व्याकुल रहते हैं। किन्तु नैसर्गिक निर्माण ही इन सभीका ऐसा है कि वे अधिक समयतक युगल दम्पतिके पास रहें भी तो कैसे?

अब तो इन देवगणोंको भी अपनी स्थिति इन वनचर व्याघ्रादिके तुल्य ही प्रतीत हो रही है। नतजानु हुए अञ्जलि बाँधकर ये ब्रह्मादि देवगण युगल दम्पति राधामाधवके चरणकमलोंमें प्रणाम करनेको उत्सुक हैं। किन्तु इस वनकी अधिष्ठात्री देवी वृन्दाने उनमें अनुशासनकी वृत्ति जाग्रत् कर दी है। 'देखो! देखो!! यह प्रेमधाम निकुञ्जस्थल है। यह प्रदेश ही ऐश्वर्य-वर्जित है। यहाँ मात्र रसकी सरिता बहती है। यहाँ यह तो फिर भी संभव है कि चुपचाप निस्पन्द किसी वट अथवा अश्वत्थके भूभागपर बैठकर ज्ञानके आलोकमें ब्रजेन्द्रनन्दन एवं उनकी प्रियाके अचिन्त्यानन्त ऐश्वर्यको अनुभवकर चमत्कृत होते रहो, किन्तु यहाँ देवरूपसे दम्पतिको प्रणामादि करना सर्वथा वर्जित है। यहाँ देवरूपका प्रकाश तो किसी भी प्रकार सह्य नही होगा। अतः सभी देवगण निरुपाय हुए चकित चञ्चल रस-विजड़ित नेत्रोंसे चतुष्पाद बने प्रिया-प्रियतमके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। उनके रससिक्त नेत्र निस्पन्द हुए कुञ्जद्वारपर लग रहे हैं। उनके लिये यह जानना तो असंभव ही है कि कितने कालतक उनकी प्रतीक्षाकी अवधि रहेगी। ब्राह्ममुहूर्तसे ही उनकी यह दशा है। भीतर निभृत निकुञ्जमें क्या हो रहा है, यह ज्ञान कर लेना तो उनके अधिकारके सर्वथा ही बाहरकी बात है। परन्तु प्रतीक्षा करते-करते मात्र प्रिया-प्रियतमकी मानसी ध्यानछविके अभ्युदयसे ही हर्षातिरेकवश उनका कण्ठ अवरुद्ध है, वे कुछ भी बोल नहीं पाते। चतुष्पाद रूपमें ही अपने महासौभाग्यको सराहते ये ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र अग्नि, वायु, वरुण आदि देवगण नेत्रोंसे अनवरत अश्रुकी वर्षा करते-करते निकुञ्जस्थलीकी घूम-घूमकर परिक्रमा कर रहे हैं। अपने-अपने स्वरूपोंमें स्थित रहते हुए इन्होंने अलक्ष्य भावसे तो अपने मुकुटमण्डित मस्तकोंको झुकाकर ब्रजचन्द्रकी चरणनखचन्द्रिकामें प्रणाम कर ही लिया है, परन्तु कदाचित् वे अपने हाथोंसे प्रिया-प्रियतमके चरण-सरोजोंका स्पर्श पावें - इस लालसासे वे परिक्रमा करते-करते निकुञ्जद्वार आनेपर ठिठक जाते हैं। लीलाविहारीका प्रेमावेश एवं लीलामहाशक्तिका लीला-नियन्त्रण देवगणोंको यह सौभाग्य देना नहीं चाहता। लीलाशक्ति अजस्र प्रीतिरसप्रवाहमें यह प्रणामजनित विक्षेप सर्वथा नहीं चाहती। अतः युगल दम्पतिका प्रभातदर्शन मात्र करके ही देवगण चतुष्पदरूपमें पुलकित हो उठते हैं। वे एक अभिनव रसतरङ्गमें बह चलते हैं। पू.गुरुदेवने इन्हीं देवगणोंके लिये ही यहाँ संकेत किया है।

ये देवगण प्रिया-प्रियतमके श्रीअङ्गोंमें अपने प्रणाम निवेदन करनेकी चाह अपूर्ण रह जानेपर इन कुञ्जोंके दर्शनसे ही सन्तोष कर ले रहे हैं, क्योंकि इन कुञ्जोंमेंसे प्रिया-प्रियतमके अङ्गोंकी तीव्र गन्ध समस्त वनको परिपूरित कर रही है। 'हो' शब्द यही प्रकट कर रहा. है कि देवगण ही चपल चतुष्पद बनकर इन कुंजोंकी फेरी दे रहे हैं।।।७१३।।

साँवर-बालाके अङ्गोंकी हरिताभ-पीत शोभा, प्रियतम !
अपने लोचन-अञ्चलमें भर, होकर मदमाती-सी, प्रियतम!
दो घड़ी अभी पहले जब थी ले रही बिदा रजनी, प्रियतम!
चकई-चकसे थी मिली हुई शशिसे जो यह कहती, प्रियतम ॥७१४॥

नीलसुन्दर एवं राधाकिशोरीके अङ्गोंकी हरिताभ एवं पीत शोभाको अपने लोचनोंके अंचलमें भरकर, मदमाती सी होकर अभी दो घड़ी पूर्व जब रजनी विदा ले रही थी, तब उस समय चकई चक्रवाकसे मिलकर चन्द्रमासे इस भाँति कहने लगी –।।७१४।।

'आना राकेश! पुनः सुखसे कूलों पर सरिता के,' प्रियतम !
'कोसेंगे ये दोनों पंछी, होना न भीत हमसे।' प्रियतम !
बाला-साँवर हैं नित्य यहाँ, होंगे न विलग हम भी, प्रियतम!
दुःखद निसर्गके नियम यहाँ लागू होंगे न कभी, प्रियतम ॥७१५॥

'चन्द्रदेव! इस नीली सरिताके कूलोंपर तुम पुनः सुखसे आना भला! यह दोनों विहंगम मुझे कोसेंगे, ऐसा समझकर तुम हमसे भयभीत मत होना। यहाँ इस वनमें राधाकिशोरी एवं नीलसुन्दर नित्य मिले हुए रहते हैं और

कभी भी पृथक् नहीं होंगे। यहाँ निसर्गके दुखद नियम कभी लागू होंगे ही नहीं। हम दोनों भी कभी पृथक् नहीं होंगे।।।७१५।।

चर्चा प्रतिदिन कुछ ऐसी ही रसकी उनकी होती, प्रियतम !
उड़कर फिर शयन-भवन के थे आँगन में वे आते, प्रियतम !
सारी-शुक आँख गड़ाकर थे उनको देखा करते, प्रियतम !
दम्पति विहंगमुद्रा लखकर उन्मुक्त हँसी हँसते, प्रियतम।।७१६।।

प्रतिदिन ही उन विहङ्ग दम्पतिकी कुछ ऐसी रसीली चर्चा होती ही और फिर वे दोनों उड़कर शयनागारके प्रांगणमें आ जाते। सारिका एवं शुक आँखें गड़ाकर उन दोनोंको ही प्रतिदिन देखा करते। राधाकिशोरी तथा नीलसुन्दर सारी तथा शुक और उन दोनों विहंगमोंकी मुद्रा देखकर उन्मुक्त हँसी हँसने लगते।।।७१६।।

मैं वृन्दावन धाममें स्थित चिन्मय कालसत्ता हूँ।

दो घड़ी अभी पहले जब थी ले रही विदा रजनी, प्रियतम !

विशुद्ध दिव्यरससे अनभिज्ञ लोग कहीं मुझे पृथ्वीपिण्डकी अपनी धुरीपर घूमनेकी अवधि मात्र नहीं मान बैठें, इसीलिये मुझे यह अपना आत्मपरिचय देना परमावश्यक प्रतीत हो रहा है। मैं क्षण-क्षणमें व्यतीत होनेवाला आठ प्रहरके दिवस एवं रात्रिका मुखौटा लगाये सर्वत्र स्वच्छन्द विचरण करनेवाला सर्वग्रासी काल कदापि नहीं हूँ। मैं तो प्रेमानन्दमय प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्रकी चरण-नख-चन्द्रिकासे उत्पन्न लीला महाशक्तिके हाथोंका यन्त्र - परम रसमय काल हूँ। यों, अप्राकृत मदन श्रीकृष्णचन्द्रके सर्वमनोहारी श्यामाङ्गोंसे निःसृत जो तेजोराशि है, उसे भी मेरी उद्भवस्थली कही जा सकती है। इसीलिये दिव्यधाम इस वृन्दाकाननमें मेरी सर्वत्र गति एवं स्थिति है। मेरे स्वरूपके दो भाग हैं। मैं दक्षिणार्द्धांग भागसे ज्योतिर्मय प्रकाशमान् रहता हूँ एवं मेरे इस दक्षिण भागको दिवस कहा जाता है, एवं अपने वामार्द्धांग भावसे मैं ही कृष्णनिशा कहलाता हूँ। वेदोंने मुझे ही सनातन, परमानन्दस्वरूप, परात्पर परब्रह्म, साक्षी, सर्वद्रष्टा माना है। जिस समय मैं रात्रिरूपमें रहता हूँ, उस समय भले ही मेरी आभा तमोमयी हो अनन्त कोटि राकाशशियोंको पराभूत करनेवाली समुज्ज्वल स्वच्छ कान्तिसे मेरा अणु-अणु दिपदिपाता रहता है। मेरा परम मङ्गलमय विग्रह सम्पूर्ण प्रेमैश्वर्यसे सम्पन्न है।

मैं प्राकृत त्रिगुणोंसे सर्वथा रहित होनेसे पूर्णतया निर्गुण हूँ, फिर भी अपने स्वरूपभूत अचिन्त्यानन्त गुणोंसे सदैव मेरे प्रियतम आराध्य श्रीकृष्णकी सुख-सेवा करता रहता हूँ। मेरा कोई पाञ्चभौतिक कलेवर नहीं है; इसीलिये चर्मचक्षुओंसे मेरा दर्शन करनेमें सुरेन्द्र, मुनीन्द्र एवं ईश्वरकोटिके देवता भी असमर्थ हैं। किन्तु सभीको मैं काल-प्रवाहके रूपमें प्रत्यक्ष अनुभवमें आता ही रहता हूँ। न मैं पुरुष हूँ एवं न ही नारी। फिर भी एक सीमित कालके लिये गोपियाँ मुझे अपनी निशासखी समझने लगती हैं एवं मैं स्त्रीसंज्ञक हो उठता हूँ। मेरा कोई भी नाम-रूप नहीं है, किन्तु ब्रजमें कभी मेरे प्रकाशमान् उज्ज्वल अर्द्धांगका दर्शनकर लोग मेरा नाम अरुणोदय रख देते हैं, कोई ऊषा कह देते हैं एवं सूर्योदय होनेपर मुझे दिवस कहने लगते हैं, फिर मध्याह्न, संध्या एवं निशा आदि मेरा नामकरण कर देते हैं। इस टिमटिमाते नक्षत्र सूर्यसे मेरा कोई संसर्ग ही नहीं है। मैं तो अनन्तानन्त सूर्योंका आधार हूँ। सूर्यकी भला सामर्थ्य ही कहाँ है कि मुझे ज्योतिर्मान् कर सके। यह अवश्य है कि वृन्दावन धाममें एक सूर्य अवश्य है, किन्तु वह भी मेरी ही तरह अप्राकृत है। वह परम विलक्षण सूर्य भी मेरी ही तरह लीला महाशक्तिका एक परिकर है। मुझसे तो स्वतः ही एक ऐसी उज्ज्वल स्वप्रकाश ज्योति झरती रहती है, जो परम शोभन एवं शिव है। श्रुतियोंने अवश्य ही उस मेरी स्वप्रकाश ज्योतिका निर्देश किया है -

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।।(कठ. २।२।१५)

मेरी इस स्वप्रकाश ज्योतिके मात्र एक आंशिक प्रकाशको पाकर ही यहाँका विस्तृत सुनील नभ और नभके अन्तर्गत अनन्त सूर्य, पीयूषवर्षी चन्द्र, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु, केतु, एवं असंख्य तारक-पंक्तियाँ प्राकृत नक्षत्र एवं तारामण्डलसे परम रमणीय, कल्पनातीत मङ्गलमय एवं अनन्तगुनी तेजोराशि सम्पन्न हैं। फिर भी ये सब मिलकर भी मेरी स्वप्रकाश आनन्दमयी प्रभाको संस्पर्श नहीं कर पाते। मेरी प्रभासे आलोकित इन सभी नक्षत्रमण्डल एवं तारागणोंकी कोई इत्थंभूत सीमा बाँधी जा सके, यह संभव नहीं है। यहाँ यही समझना है कि मुझ कालकी, कालान्तर्गत दिवस एवं निशाकी अवधिकी, सूर्य-चन्द्र-तारकगणों एवं नक्षत्रोंकी जड़ वस्तुओंकी तरह कोई इयत्ता नहीं है। हम सभीके रूप-रङ्ग, आकार-प्रकार, स्थिति, गुण, चेष्टा-भाव – सभी मेरे प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्रकी जैसी लीला होनी होती है, उसीके अनुसार स्वतः स्वभावतः ही होते रहते हैं। हम सभी अचिन्त्य लीला महाशक्तिका अनुसरण करते रहते हैं। मेरे प्राणपति श्रीकृष्णचन्द्रको सुख देनेके लिये यदि उन्हें निशा ही निशाकी आवश्यकता हो तो मेरा स्वरूप निशारूप बन जाता है। मैं कल्पावधियोंतक निशा ही बना रहता हूँ। यदि उन्हें उसी समय मध्याह्न चाहिये तो तत्क्षण ही मेरा स्वरूप मध्याह्न बन जाता है। एवं कहीं उन्हें एक साथ एक ही स्थानमें, एक ही कालमें मध्याह्न एवं मध्य निशा भी चाहिये, तो मेरे लिये उस असंभवको भी संभव करनेमें कभी कोई असमर्थता नहीं होती। मेरे प्रियतम श्रीकृष्णकी रुचिके लिये यदि मुझे युग-परिवर्त्तन भी करना होता है, तो मुझे उनके सङ्कल्प-सङ्केतका आभास ही होना आवश्यक होता है, एक क्षण भी नहीं लगता कि मैं कलियुगसे सत्ययुगमें परिवर्त्तित हो जाता हूँ। ये युग मेरे वस्त्र ही तो हैं, इन्हें बदलनेमें मुझे कोई आयास नहीं करना होता है। सत्ययुगसे कभी द्वापर, कभी त्रेता एवं कभी एक साथ एक ही कालमें दो-तीन युगोंको धारणकर अपने प्राणवल्लभकी रुचिको पूर्ण कर देना मेरे लिये सहज है। नन्दभवनमें तो मेरी यह विचित्र लीला प्रति दिवस ही होती रहती है। जब नन्दबाबा अपने भवन-प्राङ्गणमें स्थित भगवान् नारायणकी शेषशायी प्रतिमाका पूजन करते होते हैं, उस समय वहाँ मैं पूर्णतया सत्ययुगके रूपमें समुपस्थित रहता हूँ, परन्तु उसी कालमें नन्दभवनके ही दूसरे भवन-भागमें जब मेरे प्रियतम श्रीकृष्ण बालवेषमें अपनी मैयासे कलह करते मचलते होते हैं वहाँ मैं कलियुगका रूप धारणकर कलिवेषी हो उठता हूँ। मेरे प्रियतमकी इच्छासे मैं उनकी बुद्धिमें प्रवेशकर उनसे पूर्णतया असत्य भाषण कराता हूँ, उन्हें चौर्यकर्ममें प्रवृत्त कराता हूँ। उनकी बुद्धिमें परस्त्री-सौन्दर्यके प्रति आकर्षण जगा देता हूँ, यहाँतक कि परम सती धर्मपरायण गोपाङ्गनाओंके चित्तमें भी लोक-वेद-मर्यादाके विरुद्ध उच्छृङ्खल कार्य करनेकी प्रीति उत्पन्न कर देना उस समय मेरा ही कार्य होता है। किन्तु वह मेरा कलिकाल भी प्राकृत नहीं होता। वह भगवल्लीलाका ही एक अप्राकृत उपकरण होता है।

मेरे प्रियतम राधा-माधव तो सर्वभवनसमर्थ हैं। वे स्वभावसे ही परिपूर्णतम हैं। दिव्य धाम गोलोक तथा सुरम्य क्षेत्र गोकुल, वृन्दावन एवं बृषभानुपुरमें तो उनका नित्य निवास है ही, किन्तु कभी वे अपनी मौजमें द्विभुज गोपवेषके साथ ही साथ परम शान्त सनातन चतुर्भुज रूप भी धारण कर लेते हैं। उस समय यह ब्रजक्षेत्र अपनी महिमामें नित्य अक्षुण्ण प्रतिष्ठित रहते हुए ही साथ ही साथ वैकुण्ठधाम भी हो जाता है। उस समय राधाकिशोरी ही लक्ष्मी एवं सरस्वतीके नामरूपमें वहाँ दो रूपोंमें प्रकट हो जाती हैं। मेरे प्रियतम श्रीकृष्ण विलक्षण लीलामय हैं। ये अपने चतुर्भुज रूपसे क्षीरसमुद्रके भीतर श्वेतद्वीपमें भी लीला करनेको अवतार ले लेते हैं। वहाँ श्रीराधा समुद्रकी मानसी कन्या मर्त्यलक्ष्मी बनकर इनको वरमाला पहनाती हैं।

ये ही लीलामय श्रीराधामाधव कभी धर्मस्वरूप, धर्मवक्ता, धर्मनिष्ठ, धर्ममार्गप्रवर्त्तक, ऋषिवर नर-नारायणका रूप रख लेते हैं। उस समय श्रीराधा पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें धर्मपरायणा, पतिव्रता शान्ति एवं लक्ष्मीके रूपमें इन्हें पतिके रूपमें

वरण करती हैं। कभी ये द्वारकामें चतुर्भुजरूपसे द्वारकाधीश होते हैं तो श्रीराधा इनकी पत्नी रुक्मिणीके रूपमें प्रकट रहती हैं। कभी ये ही दोनों युगल श्रीसीताराम रूपमें लीला करते हैं। जहाँ-जहाँ भी ये मेरे प्रियतम श्रीकृष्ण अवतरित होते हैं, अपनी छाया एवं कलाओंके रूपमें श्रीराधा भी इनके साथ अवश्य होती हैं और मैं इनके साथ ही शाश्वत कालमान बना इनसे संलग्न होता ही हूँ।

मेरे प्रियतम प्रेमस्वरूप हैं, प्रेमकी निधि हैं, प्रेमसे ही प्रकट होते हैं, प्रेमियोंके साथ ही रहते हैं, प्रेमियोंको सुख देने तथा उनके साथ प्रेममयी लीलाएँ करनेमें ही उनको आनन्द मिलता है। मैं उनसे अपनेको ओतप्रोतकर कृतकृत्य हो उठता हूँ। मेरे कण-कणमें उनकी स्थिति नित्य रहती है। फिर भी कोटि-कोटि कन्दर्पोंके दर्पको दलन करनेवाला उनका रूप प्रेमधाम वृन्दावनमें ही प्रकट रहता है। प्रेमका भूखा मैं भी इन बाँकेबिहारी और बिहारिनको अपना तन-मन-प्राण समर्पितकर तदेकप्राण हुआ वृन्दावनको एक पल भी नहीं त्यागता। यह ब्रज-वृन्दावन मेरा हृदय है। मेरे हृदयमन्दिरमें मैं वृन्दावन, गोप, गोपबालक, गोपीजन, श्रीराधा, श्रीकृष्णकी प्यारी गौएँ, गोवर्धनपर्वत, यमुना नदी सबको बैठाये यहाँ विहार करते राधा-माधवपर अपने प्राण न्यौछावर करता रहता हूँ।

मेरे प्रियतम श्रीकृष्णकी मुझपर ऐसी कृपा है कि वे स्वयं तो वृन्दावनधाममें ही अपने सगुण साकार रूपसे निवास करते हैं किन्तु अपना सर्वव्यापकत्व गुण वे मुझे प्रदानकर अपने निर्गुण निराकार ब्रह्मरूपमें मेरी प्रतिष्ठा कर देते हैं। मेरे प्रियतमका स्वप्रकाश ब्रह्मनामक रूप मैं ही हूँ। इसीलिये वे गीतोपनिषद्में स्वयंको मुझ ब्रह्मकी प्रतिष्ठा कहकर उद्घोष करते हैं। कितने कृपालु हैं वे!

सुनो! मैं कालब्रह्म अपने वामार्द्धांगसे कृष्ण रजनीका रूप रखे मेरे प्राणधन श्यामा-श्याम - साँवर एवं बाला किशोरीके अङ्गोंकी युगपत् हरिताभ एवं पीत शोभाको नेत्रोंमें आँजकर चार प्रहर प्रेममदमें मत्त बना कुञ्जोंमें विहार करता रहा हूँ और अब अपने दक्षिणार्द्धांगरूपसे प्रकाशरूप होकर ऊषा नाम रखकर प्रिया-प्रियतमके निभृत निकुञ्जकी पूर्व दिशाको अनुरंजित करने जा रहा हूँ। यद्यपि मेरे प्रिया-प्रियतम निशापर्यन्त एक क्षणके लिये भी निद्रा नहीं ले पाये हैं, अतः उनके प्रभातशयनमें विक्षेप करते हुए मुझे अतिशय सङ्कोच हो रहा है। किन्तु अचिन्त्य लीलाशक्तिकी महाइच्छासे परवश होकर मुझे यह क्रूर कर्म करना पड़ रहा है। सुख-दुख, संयोग-वियोग – इन द्वन्द्वोंमें ही तो नियतिकी चरितार्थता है। नियतिका विधान सभीपर समान रूपसे क्रियाशील होता ही है।

ओह! फिर भी मेरा कैसा सौभाग्य है कि मैं अपने वामार्द्धांग निशारूपमें पूर्ण काल ही मेरे प्रियतम श्रीकृष्णकी जो अपनी प्रियाके विद्युन्मालावर्णी अङ्गोंसे आलिङ्गित रहनेसे हरे वर्णके अनुभव हो रहे हैं एवं पीतवर्णी प्रियाकी शोभा हृदयमें बसाये रहा हूँ। मैं निशापर्यन्त चकवा और चकवीकी प्रेमवार्त्ता सुनता-सुनता पुलकित एवं अतिशय रोमाञ्चित होता रहा। ब्रजके सभी जीव धन्यातिधन्य हैं जो मेरे प्रिया-प्रियतमके प्रेमसे ऐसे लबालब भरे है। ये चकवा-चकवी भी विलक्षण प्रेमी हैं। निशापर्यन्त परस्पर वियुक्त रहकर भी प्रिया-प्रियतमरूप श्याम-पीत चन्द्रोंकी प्रेमचन्द्रिकाका पान करते हुए अपने देह-संयोग-सुखसे भी अनन्तगुना सुख अनुभवकर मस्त हुए रहते हैं।

चकई चकसे थी मिली हुई शशिसे जो यह कहती, प्रियतम !

अनन्त ब्रह्माण्डोंके प्रधान पालक एवं उनकी भी स्वामिनी जब अपने अनन्त अपरिसीम ऐश्वर्यको रससिन्धुके अतल तलमें डुबाकर प्रिया-प्रियतम बने निकुञ्जमें शयन लीला-विहार कर रहे हों फिर प्रकृतिको तो अपना अपूर्व शृङ्गार करना ही पड़ता है। ओह! देखो! प्रकृति कैसी सजी है। यमुना-पुलिनपर रासमण्डलसे सटा निकुञ्ज हैं। उत्तरमें कचनार महक रहे हैं एवं मध्यमें उन्नत शाखाओंवाला पारिजातका वृक्ष है। इस वृक्षकी टहनियाँ यमुनातटवर्त्ती प्रदेशतकको व्याप्त कर रही हैं। पूर्वमें अगस्त्य एवं पश्चिममें अशोककी पंक्तियाँ हैं। सभी वृक्षोंपर पूर्णतया पुष्पित लताएँ लिपटी हैं। सम्पूर्ण वृक्ष जाति ही लताओंकी अधीनतामें सिर झुकाए नतमस्तक है। निकुञ्जस्थलीमें सैकतसे विपरीत दिशामें दूर-दूरतक

हरी-हरी दूर्वाका ऐसा सुभग आस्तरण है कि यही प्रतीत होता है मानो अति सुन्दर हरी मखमल सर्वत्र बिछा दी गयी है। यमुना तटवर्ती सैकतकण राकाचन्द्रके प्रकाशमें रजत कणोंके समान चम-चम द्युति प्रकाश कर रहे हैं। पश्चिम गगनकी ओर चन्द्रमा अत्यन्त तेजीसे भाग रहा है।यमुना तटपर पारिजात वृक्षकी एक छोटी टहनीपर एक चक्रवाक दम्पति नेत्र-निमीलित ध्यानस्थ बैठे परस्पर वार्त्तालाप कर रहे हैं। रससमुद्र जब उठानें ले-लेकर विभिन्न दिशाओंमें अपनी शत-सहस्र ऊर्मियोंको प्रेषित करता है, तो उन ऊर्मियोंमें प्रीति-संवेदन सर्वांशमें परिपूरित रहता ही है। प्रिया-प्रियतमके अन्तस्तलमें विगत चार प्रहरके मिलनकालमें जो रसोच्छलन हुआ है - उसकी ऊर्मियोंसे ये पक्षी-द्वय भी अभिभूत हैं ही। अतः इनके अङ्ग-अङ्ग अगाध स्नेहसुधामें परिप्लुत हैं।

चक्रवाकी आनन्दमें मत्त उत्फुल्ल मुद्रामें बोल रही है – '' अहो प्रिय चकवे! मङ्गल, सुमङ्गल प्रभात हुआ। मिलन-बेलाके आगमनपर देखो! बकुल प्रस्फुटित हो उठे। नवीन कुसुमोंका शृङ्गार धारण किये ऋतुराज वसंतने वृन्दावनमें प्रवेश किया। विलासवती वनधराने अभिनव शृङ्गारसे अपने सम्पूर्ण अङ्गोंको सजाया। अब तो यह कलङ्की, दुष्ट, टेढ़े मुखवाला क्रूर चन्द्र भी मलिन हो उठा है। यह पश्चिमकी ओर त्वरासे धावित हो रहा है।

चकवा – ''री चकवी! बिचारे चन्द्रकी क्यों भर्त्सना कर रही हो? इसके आनेसे ही तो हमारी प्राणप्यारी किशोरीरानी अपने प्रियतमसे कुंजमें मिलती हैं। इसका आगमन तो हम सभीके आनन्द-सौभाग्योदयका हेतु होता है। फिर इसकी कलङ्की, दुष्ट, क्रूर आदि शब्दोंसे क्यों भर्त्सना कर रही हो? हाँ, अवश्य ही इसे पश्चिम दिशाकी ओर इतनी शीघ्रतासे पलायन नहीं करना चाहिये था। निशा-विहारसे श्रान्त प्रिया-प्रियतम अभी-अभी तो शयन किये हैं। परन्तु री चकवी! इस दीन चन्द्रका भी क्या दोष है? वृन्दाने निकुञ्जकी पश्चिम दिशावाली गवाक्षिकाके द्वार ही उन्मुक्त छोड़ दिये हैं। मैं भी तो उसी द्वारकी राहसे प्रिया-प्रियतमकी शयित छवि नयनोंमें सँजोकर आ रहा हूँ। इस चन्द्रकी भी दृष्टि उन शयित युगलपर अवश्य केन्द्रित हो गयी होगी। बस, यह चन्द्र उन मेरे प्रियतम कृष्णचन्द्रकी आनन-ज्योत्स्ना निहारकर हतप्रभ एवं लज्जित हो उठा होगा। इसीलिये यह बेचारा घोर लज्जासे अपना मुख पश्चिम दिशामें छिपाने हेतु पलायन कर रहा है।'

चकवी (हँसती हुई) – 'चन्द्रदेव! जाओ, सुखपूर्वक जाओ। पुनः आना। मैं तुम्हें अब सर्वथा गाली नहीं दूँगी। देख, चन्द्र! इस वनमें मेरी प्रिया किशोरी एवं प्रियतम नीलमयङ्कका एकछत्र अखण्ड साम्राज्य है। अतः यहाँ प्राकृत नियम कभी लागू नहीं होंगे। मैं यहाँ तुम्हारे आगमनसे अपने प्रिय चकवासे कदापि पृथक् नहीं होने वाली। फिर इस वृन्दाकाननमें हम चकवा-चकवी प्राकृत पक्षी हैं भी तो नहीं। भाई चन्द्र! मेरी दृष्टिमें इस ब्रजके गगनमें तुम प्रकाश फैलाने आते ही नहीं हो। यहाँ तो मेरे प्रियतम श्यामचद्रका प्रकाश ही सर्वदा प्रकाशित होता रहता है। तुम्हें विश्वास नहीं हो तो मेरी दृष्टिको तनिक लेकर देखो। मेरी दृष्टि अपनाते ही तुम्हें इस मेरे चकवेमें , तुझ स्वयंमें, निशाके कृष्णाकाशमें, यमुनामें, पुलिनवर्त्ती वृक्षोंमें, लताओंमें, सभी पशु-पक्षियोंमें, मुझ गाली देनेवालीमें, भूमि-भवन-गिरि-पर्वत - सर्वत्र प्यारे नीलमणि ही भरे दृष्टिगोचर होंगे। चन्द्र प्यारे! देखो न! एक नहीं, अनन्त भी नहीं, सभी रूपोंमें जब एक वे ही दृष्टिपथमें खड़े मुसकाते दीखें, फिर कौन किससे शत्रुता करे, द्वेष करे! मैंने तुम्हें पूर्वतः जो क्रूर, दुष्ट कलङ्की आदि गालियाँ भी दी हैं उन्हें रस और प्रेमकी पनाली ही मानना भला।'

चकवा – 'चकवी, री सुन! मैं निकुञ्जकी पश्चिम दिशावाली खुली गवाक्षिकासे जो अपूर्व दर्शन कर आया हूँ उसकी बात सुन तो ले! देख, प्रिया समग्र निशा एकटक अपने प्रियतम नीलमयङ्ककी छविको चकोरीकी तरह निरख-निरखकर उसे अपने अंग-अंग, रोम-रोममें परिपूरित करती रही हैं। अब प्रभात वेलामें वे उस दर्शनकी प्रगाढ़तामें अर्ध-निमीलित-नेत्र प्रीति-समाधिमें डूब चुकी हैं। प्रियतम नीलमणिदेव भी अपनी प्रियाकी इस प्रगाढ़ प्रेमस्थितिको पहचानकर उसपर ऐसे रीझ उठे हैं कि उसके रोम-रोमको अपने रोम-रोमसे आलिङ्गन करनेको उत्सुक हो उठे हैं।

ओह! इन दोनोंकी एक-दूसरेमें परस्पर समायी छविसे, री चकवी! भला कौन अपनी दृष्टि हटा पावेगा? देख, चकवी! प्रिया अतिशय निश्चिन्त हैं क्योंकि उन्हें प्रभात होनेका भान ही नहीं है। परस्पर दोनोंके मुखचन्द्र एक दूसरेसे इतने अधिक निकटतासे सटे हैं एवं अपनी भुजाओंसे दोनों एक दूसरेको इतना प्रगाढ़ आलिङ्गन दिये हैं कि दोनोंकी कोई पृथक् सत्ता है, ऐसा अनुभव ही नहीं होता। चकवी री! चलो! निकुञ्ज-प्राङ्गणमें चलकर तनिक उच्च स्वरमें इन युगल दम्पतिका यश-कोलाहल करें, जिससे इन्हें किञ्चित् बाह्यावेश तो हो!'

चकवी – "प्यारे चक्रवाक! प्रिया-प्रियतम जागृत् हो गये। मैं यहीं इसी वृक्षपर आसीन अपनी भाव-दृष्टिसे उनके शयन-मन्दिरका दृश्य स्पष्ट देख रही हूँ। नीलोत्पलोंकी शय्यापर रस-विलाससे श्रान्त युगल दम्पति जम्हाई ले रहे हैं। उनके चालीस नखोंकी ज्योतिका तो दर्शन करो। पाँच-पाँच चन्द्रमाओंकी दस पंक्तियाँ - अहा! कैसी मनोहर ज्योत्स्ना बिखेर रही हैं। मेरे चकवे! कदली-स्तम्भोंकी शोभाको तुच्छ बनानेवाली प्रिया-प्रियतमकी चार जंघाओंका तो दर्शन करो और कमलनाल-सी अतुलनीय सुन्दर उन दोनोंकी भुजाएँ - इन्हें भला कौन कवि उपमा दे सकेगा?'

चकवा – 'प्रिये चकवी! तुम धन्य हो। तुम्हारी पावन दृष्टिकी बलिहारी है। सम्पूर्ण वनक्षेत्रको विलक्षण संविन्मय सौरभका दान करनेवाली प्रिया-प्रियतमके श्वास-प्रश्वासकी गंध मुझे बाह्यज्ञानलुप्त कर रही है। चकवी प्रिये! मेरी घ्राणेन्द्रियाँ, मन और अहङ्कारके सहित इनमें विलीन हो रही हैं।'

चकवी – 'मेरे प्रिय चकवे! देखो, देखो निकुंज द्वार उन्मुक्त हो उठा है। कुञ्जसे प्रिया-प्रियतम बहिर्वनमें आवें, उसके पूर्व ही उनका जयगान करने हम पहुँच जायें। यह बेला भावाविष्ट होनेकी नहीं है। ओह! यह मलय मारुत भी अठखेलियाँ करने जा रहा है। यह प्रियाके उन्मुक्त केशोंको प्रियतमकी चूड़ासे गूँथ रहा है। चलो, उसको अनुशासित करें।'

दोनों पक्षी उड़कर निकुञ्ज-प्राङ्गणमें स्थित कचनार वृक्षपर जा बैठते हैं। यह वृक्ष द्वारके ठीक सम्मुख है। जैसे ही प्रिया-प्रियतम निकुञ्जद्वारसे प्राङ्गणमें आते हैं ये उनकी रूप-सुषमाका वर्णन करते हुए जय-जयगान कर उठते हैं।

चकवी-नवरसिककिशोर -मुखचन्द्र-चकोरी गोरीकी जय हो!
विश्वविमोहन-मोहिनी मनोहारिणी श्यामा भोरीकी जय हो!
कृष्णाधर-सुधारस-पानमत्त मयूरीकी जय हो!
विशुद्ध कुन्दन-विडम्बिनी प्रीतिरस-पूरीकी जय हो!
सुकुञ्चितकेशी वृन्दावनेश्वरीकी सदा ही जय हो!

चकवा- इन्द्रनीलद्युति मन्मथ-मन्मथकी जय हो!
केलिसमरमध्य प्रिया-प्रेम-हतश्लथकी जय हो!
प्रेममत्त वृषभानुकुमारी-नागरकी जय हो!
ओर-छोर-विहीन प्रिया-प्रेम-सागरकी जय हो!
प्रिया-चरण अलक्तकरंजित भालकी जय हो!
केलि चञ्चलित-चम्पकमालकी जय हो!
राधाधव मत्त मधुर माधवकी सदा ही जय हो!
राधा-पीन-पयोधर-धारी वनमालीकी जय-जय-जय हो!

चक्रवाकी-चक्रवाक द्वारा अपनी यशगाथा सुनते हुए प्रिया-प्रियतम उनकी आकृति देख-देखकर उन्मुक्त हँसी हँसने लगते हैं। भावी विरहकी आशङ्कासे मलिन हुआ प्रियाका मुख इस हँसीसे खिल उठता है। ।।७१६।।

शोभा देखते हुए वनकी वे मन्द-मन्द गति से, प्रियतम !
चलते थे, आगे पीछे थीं चलतीं सब सहचरियाँ, प्रियतम !
फूलोंसे लदे हुए द्रुमकी अवलीसे झरती थीं, प्रियतम !
सुमनोंकी राशि-राशि, उसपर दम्पति पद रखते थे, प्रियतम ॥७१७॥

कुञ्जोंकी शोभा देखते हुए दम्पति मन्द-मन्थर गतिसे चलते। उनके आगे-पीछे सभी सहचरियाँ चलतीं। फूलोंसे लदे हुए द्रुमोंकी श्रेणीसे राशि-राशि सुमन झरते और उन सुमनोंपर ही गौर-नील दम्पति अपने चरण-सरोरुह रखकर अग्रसर होते।।।७१७।।

वे झूम लताएँ उठतीं, जब बाला अपने करमें, प्रियतम !
लेकर साँवर के करमें थी उनको पकड़ा देती, प्रियतम !
कहकर 'देखो, प्राणाधिक! ये कैसी हैं शीलवती, प्रियतम !
है नहीं स्वसुखकी गन्ध तथा इनमें, जय हो इनकी।' प्रियतम ॥७१८॥

वे लताएँ झूम उठतीं जब राधाकिशोरी अपने करसे उनको स्पर्श करतीं -अपने करमें लेकर फिर नीलसुन्दरको पकड़ा देतीं- यह कहकर कि 'प्राणाधिक! देखो, ये कैसी शीलवती हैं, तथा मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि इनमें स्वसुखीपनकी गंध भी नहीं है! आह! इनकी जय हो!।।७१८।।

वनकी शोभा निहारते हुए वे मन्द-मन्दगतिसे चले जारहे थे।

किसकी सामर्थ्य है कि जो चिदानन्दकन्दकी विहारभूमि वृन्दावनकी शोभाका ठीक-ठीक वर्णन कर दे। जिनके नेत्रोंमें श्रीकृष्ण-चरण-सरोरुहकी रजका अञ्जन लगा होता है, वे मात्र इस वन-शोभाकी छाया-की-छायाकी एक झाँकी भर पाते हैं और उसी क्षण वे अपने बुद्धि-मनको सर्वथा अपहृत अनुभव करने लगते हैं।

विलक्षण वन है यह! यहाँ एक देशमें शरद् राशि-राशि सुविकसित कमलोंके उपहार लिये युगल दम्पतिको उपहार समर्पित करने समुत्सुक है, तो दूसरे प्रदेश-खण्डमें शिशिर ओसकणोंकी असंख्य मालाएँ पिरोकर युगल चरणोंके लिये पथ सज्जित करनेको तत्पर है। वसन्त कुसुमित वल्लरियोंका, मुकुलित आम्र-शाखाओंका वितान निर्मित किये मलय मारुतका व्यजन डुलाकर प्रिया-प्रियतमका श्रम हरना चाह रहा है तो भ्रमर अपने गुञ्जन-निनादसे, कोकिल कुहू-कुहू रवसे प्रिया-प्रियतमका अभिनन्दन करनेको उमग रहे हैं। कोई कहेगा - ग्रीष्म तो शरीरधारी मात्रको जलाता है, किन्तु धन्य है यह प्रिया-प्रीति-कानन! इसके संस्पर्श मात्रसे ही ग्रीष्म इतना सुखद हो उठता है कि वसन्त भी इसकी मनोरमताको निहारकर तृण तोड़ने लगता है। जिस वनमें प्रिया-प्रियतमकी प्रीति-लीला-मन्दाकिनी प्रवाहित हो रही हो, चिन्मय रसकी मदमाती ऊर्मियाँ अठखेलियाँ कर रही हों, अनन्त रसैश्वर्य उच्छलित हो रहा हो, वहाँ तपन, जलनका स्थान ही कहाँ है? वहाँ सभी ऋतुएँ एक-दूसरेसे अधिक सुखमयी होनेकी स्पर्धामें प्रयासरत रहती हैं।

ओह! सचमुच ही वनकी निराली छटा है। अगणित निर्झरोंका झर-झर सुरीला रव वीणाकी स्वरलहरीको परास्त कर रहा है। भूमि हरित तृणोंकी मखमली सुकोमलता लिये स्निग्ध है। कहीं कठोरताका आभास ही दम्पतिके सुकोमलतम चरणोंको नहीं हो जाय - दूर्वादलोंने बीड़ा उठा लिया है। सरिता, सरोवरों एवं प्रपातोंकी सुशीतल लहरोंपर बहती वायु इतनी समशीतल है कि तन एवं मन दोनों उत्फुल्ल हो उठते हैं। कुमुद, पद्म, नीलोत्पलोंसे कालिन्दीके घाटवर्त्ती प्रदेश पटे हुए हैं। तरुराजि, लताएँ राशि-राशि कुसुमोंसे लदी होनेसे नमित हो रही हैं। कण-कणसे मानो सौन्दर्यके स्रोत फूट रहे हैं। विविध विचित्र विहङ्गमोंका कलरव, मृगोंका मनोहर सञ्चरण, मयूरोंका झूम-झूमकर नर्त्तन, भ्रमरोंका मधुर गुञ्जन, कोकिल एवं सारसोंका कूजन - वृन्दाकाननकी अप्रतिम शोभाश्री अपने पूर्ण उभारपर है।

ठाँ-ठाँ गिरि तैं निर्झर झरैं। ते वै सलिल सिलन पर परैं।।
तिन तैं बहति जु सरिता गहिरी। दूरि-दूरि लौं परसति लहरीं।।
बहुरि अनेक अगाध जु सरवर। रस झूमरे घूमरे तरुवर।।
तिनके तर तृन - वीरुध जिते। हरित-हरित रँग भरित सु तिते।।
ठौर-ठौर सर सरसिज फूले। डोलत लंपट अलिकुल भूले।।
कमल पवन अरु चन्दन पौन। मिलि जु बहत, सुख कहिये कौन।।
बोलत सुक जनु सुक मुनि पढे। सरसुति सम कल कोकिल रढे।।
मधुर-मधुर सुर बोलत मोर। नन्दसुवन के मन के चोर।।(नन्ददास)

अस्तु, सखियोंसे घिरे युगल दम्पति सब ओरसे कुसुमित हरीतिमाका पुञ्ज बने हुए इस परम रमणीय वनमें स्थित अगणित एक-से-एक सुन्दर स्वतः निर्मित कुञ्जोंकी शोभा निरखते हुए विहर रहे हैं। आगे-आगे उछलते-कूदते चतुष्पद वनचर हरिणोंकी एवं रङ्गबिरंगे अनेकों पक्षियोंकी टोली फुदकती चल रही है। निर्दिष्ट पथपर स्वतः ही नव पल्लव झुक-झुककर स्वागत कर रहे हैं – "स्वागत! वनके राजा-रानी! हमें अपने श्रीअङ्गोंपर स्थान देकर कृतार्थ कर दो। फूलोंसे लदे नीप- द्रुमोंकी श्रेणीसे राशि-राशि कुसुम स्वतः झर-झरकर पथको आस्तृत कर दे रहे हैं और दम्पति इन कुसुमोंपर ही अपने चरण निक्षेप करते आगे बढ़ रहे हैं। द्रुमवल्लरियोंके हृदयका आह्लाद देखते ही बनता है। वनश्रीने अपने अन्तस्तलका सम्पूर्ण राग उँडेल देनेके उद्देश्यसे वनकी पगडंडीके दोनों ओर, जिस पथसे दम्पतिको यमुना तटकी ओर अग्रसर होना है, शोभा एवं सौन्दर्यकी एक-से बढकर एक मनोरम दृश्यावलियाँ सृजन कर दी हैं। नव किसलयोंसे, चित्र-विचित्र मनोहर सौरभ बिखेरते कुसुम-गुच्छोंसे, विविध वर्णमयी पुष्पमालाओंसे वन-पथ जैसे लदा है। वनपथके दोनों ओर स्थावर तरुश्रेणी सेवा समर्पित करनेकी उत्कट इच्छा लिये पूर्णतया सज्जित खड़ी है। युगल दम्पतिके श्रीअङ्गोंका संस्पर्श प्राप्त हो जाय – इस आशामें इन वृक्षोंसे आलिङ्गित लताएँ पुलकान्वित हुईं प्रतीक्षारत हैं। फिर परमोदार गुणागार प्रिया-प्रियतम उनका मनोरथ पूर्ण किये बिना भला, कैसे रह पावें। प्रिया अपने करसे झूमती लताओंको स्पर्श करती हैं और तब अपने प्रियतमके करमें उन्हें सौप देती हैं - यह कहकर कि – 'प्राणाधिक! देखो, ये वल्लरियाँ स्वसुखभावविहीन कितनी प्रेममयी हैं, इनके निर्मल मनकी मैं साक्षी हूँ। ओह! इनकी जय हो।'

ओह! कौन पहचान सकता है इस प्रेमवेषमें परात्पर परब्रह्म पुरुषोत्तमको? एक प्राकृत किशोर- जो अपनी प्रेयसीपर उसका रुख देख-देखकर प्राण न्यौछावर कर रहा है, एवं उनमें अन्तर ही कहाँ है?।।७१८।।

सन्मुख कलिन्दनन्दिनी-कूल आ जाता इतने में, प्रियतम!
श्रीमुख तट को उज्ज्वलता में प्रतिबिम्बित हो जाता, प्रियतम!
बाला हो जाती भ्रमित, अहो! हैं हम सच्चे या ये; प्रियतम!
साँवर हँसने लगते, तब कहीं भूल समझ पाती, प्रियतम।।७१९।।

इतनेमें ही सर्वथा सामने कलिन्दनन्दिनीका तट आ जाता। गौर नील दम्पतिके श्रीमुखकी शोभा तटकी उज्ज्वलतामें प्रतिबिम्बित हो जाती तथा उस समय राधाकिशोरी भ्रमित हो जातीं-'अहो! ये सच्चे हैं अथवा हम दोनों सच्चे हैं।' किशोरीकी बात सुनकर साँवर हँसने लगते। तब कहीं जाकर राधाकिशोरीको अपने भ्रमका भान होता।।।७१९।।

अति मंजुल जल प्रवाह, मनोहर सुखावगाह,
विदित राजत अति तरनिनन्दिनी।
श्याम बरन झलकत रूप, लोल लहर वर अनूप,
सेवित संतत मनोज वायु मन्दिनी।।
कुमुद कंज वन विकास, मंडित दिसि-दिसि सुवास,
गुंजन अलि-हंस-कोक मधुर छन्दिनी।
प्रफुल्लित अरविन्द पुंज, कोकिल कल सार गुंज,
गावत अलि मंजु पुंज, विबुध बन्दिनी।।
नारद-सिव-सनक-ब्यास ध्यावत मुनि धरत आस,
चाहत पुलिन वास, सकल दुख निकन्दिनी।
नाम लेत कटत पाप, मुनि किन्नर ऋषि कलाप,
करत जाप परमानन्द, महा आनन्दिनी।।

पूर्वगगन अरुण राग रंजित होने लगा है। यमुना पुलिन प्रिया-प्रियतमके आगमनको देख इतना प्रेमोन्मत्त हो उठा है कि उसकी शोभा सहस्रगुनी हो गयी है। शुक पिकादि कलकण्ठ वन-विहङ्गमोंकी काकली सङ्गीतकी स्वर-लहरीको भी फीकी कर दे रही है। मन्द समीरकी सन्-सन् सम तालपर लता-वल्लरियाँ सचमुच ही कुशल नर्त्तकीको भी पराजित करनेवाला नृत्य प्रस्तुत कर रही हैं। धरासुन्दरी रोमाञ्चित हुई अङ्कुर राशिके रूपमें अपने हर्षको सुव्यक्त कर रही है। उसे प्रिया-प्रियतम युगल दम्पतिके चरणोंका युगपत् एक ही साथ संस्पर्श जो मिल रहा है। पुलिन सचमुच ही इस समय एक अभिनव आनन्दोल्लाससे पुलकोद्गमित हो उठा है। अरण्यका अणु-अणु अपनेमें न समाते हुए आनन्दको विभिन्न अनुभावोंसे व्यक्त कर रहा है।

प्रियतम नीलसुन्दर सखियोंसे धिरे अपनी प्रियाके सम्मुख यमुनाकी मनोहर शोभाका वर्णन करने लगते हैं।

"प्रिये! देखो न! यमुनाकी कैसी मनोहर शोभा विकसित हो रही है। सुदूर, जहाँतक दृष्टि पहुँच पाती है, तटप्रदेश चित्र-विचित्र रत्नोंसे दमक रहा है। बालरविकी रक्ताभ किरणें पल्लवजालोंपर आसीन हुई, कितना सुखद अनुभव कर रही है। रत्नोंकी समुज्ज्वल कान्तिसे निःसृत दिव्य प्रकाश यमुनाके नील जलको दिव्य ज्योतिर्मान् बना दे रहा है। जलमें चित्र-विचित्र हंस-सारसादिके अगणित समूह, रङ्गबिरङ्गी मछलियाँ, सभी आनन्दमत्त हैं। फिर विलक्षण वर्णोंके हरे, पीले, श्वेत, रक्त नील कमलोंकी शोभा तो सर्वोपरि है। इनपर मदमत्त अलियूथोंका गुञ्जार वातावरणमें सौरभ, सौन्दर्य एवं सङ्गीतकी त्रिवेणी प्रवाहित कर दे रहा है।"

"प्रिये! इन यमुना सखीका मुख-सरोज ये प्रस्फुटित कमल ही तो हैं। स्वर्णिम तट-प्रदेशमें विजड़ित रत्नों एवं मणियोंकी लघु-लघु गिरिश्रेणी ही इनका अनमोल मुकुट भूषण हैं। नीलोत्पल ही तो इनके सुदीर्घ नेत्र हैं। चक्रवाक दम्पति ही इनके स्तनमण्डल हैं, हंसोंकी मनहरण उदार गति ही इनकी मनोहर चाल है, ये युगल तट ही इनके दोनों नितम्ब हैं एवं प्रिये! यह नीलाम्बुधारा ही इन यमुना सखीका नील निचोल है। रङ्ग-बिरङ्गी मछलियाँ इनकी मेखला हैं। प्रिये! यह यमुना सखी तेरा सुस्वागत कर रही है। प्रिये! देखो! इस स्वच्छ आरसीवत् यमुनाजलमें तेरा एवं मेरा - हम दोनोंका सुविकसित प्रसन्न आनन-सरोज कैसा स्पष्ट प्रतिबिम्बित हो रहा है।'

प्रियतम प्राणसुन्दरकी उक्ति सुनकर सचमुच ही प्रिया यमुना जलमें दृष्टिनिक्षेप करती हैं और वहाँ प्रतिबिम्बित अपनी आनन-छाया देखकर सचमुच स्वयंको तो असत्य एवं उस बिम्बको ही सत्य मान बैठती हैं। अपनी प्राणप्रियाकी

सरल निश्छल भोली चेष्टा देखकर चतुर चिन्तामणि श्रीकृष्ण अट्टहास कर उठते हैं। अपने प्रियतमका उन्मुक्त हास ही प्रियाके भावको संवरित करनेमें हेतु हो उठता है। ।।७१९।।

मानो हंसिनी पीठपर थी लेने आयी उनको, प्रियतम !
ऐसी नाचती दीख जाती लहरों पर सित नौका, प्रियतम !
बाला साँवरको कर्षित कर उस दिव्य घाटवाले, प्रियतम !
पथ पर चलकर जल्दी से थी आरोहण कर जाती, प्रियतम।।७२०।।

मानों हंसिनी अपनी पीठपर गौर-नील दम्पतिको लेने आई हो, लहरोंपर ऐसी नाचती-सी उज्ज्वल वर्णकी नौका दम्पतिके दृष्टिपथमें आती। फिर क्या था, राधाकिशोरी नीलसुन्दरको आकर्षित करके उस दिव्य घाटवाले पथपर चलकर अत्यन्त शीघ्रतासे उस नौकापर आरोहण कर जाती।।।७२०।।

मानो हंसिनी पीठपर थी लेने आयी उनको, प्रियतम !

सहसा ही यमुनाकी लहरियोंमें श्वेत हंसाकृतिकी रत्नमयी नौका नाच उठती है। स्वभावतः ही वह लहरोंके थपेड़ोंसे हिलती हुई तटसे ठीक घाटपर सट जाती है, जहाँसे प्रिया-प्रियतम सखियों सहित सुविधापूर्वक उसपर आरूढ़ हो सकें। प्रियतम प्रियासहित दिव्य घाटके पथकी ओर चल पड़ते हैं। सभी सखियाँ उनके पीछे-पीछे चल रही हैं। गुणमञ्जरीके हाथोंमें प्रिया-प्रियतमको दृष्टिदोष नहीं लग जाय, अतः चमरी गौके पुच्छसे निर्मित कलात्मक मुट्ठेवाला चँवर है। सखी लवङ्गमञ्जरी पानपात्र लिये है। रतिमञ्जरी पीकदान लिये चल रही है। प्रिया राधा प्रियतम श्यामसुन्दरको आकर्षित करती हुई उस सुन्दर नौकापर आरूढ़ हो जाती है। प्रियाका अनुगमन करती सखियाँ भी नौकारूढ हो जाती हैं। महती आश्चर्य इसी बातका है कि प्रत्येक सखीको यही अनुभव होता है कि वह प्रियासे सटकर उसके समीप ही नौकापर विराजित है। यमुनामें पङ्कहीन निर्मल जल होते हुए भी अतिशय सुन्दर कमल खिले हैं। प्रियतम अपनी प्रियाको प्रसन्न करनेके लिये एक सुन्दर लाल कमल तोड़कर प्रियाकी वेणीमें सजा देते हैं। प्रिया-प्रियतमको घाटपर स्थित नौकापर आरूढ़ होते देख रङ्ग-बिरंगे मनेरम जल-पक्षी घाटसे थोड़े ही दूर मध्य धारामें आकर प्रिया-प्रियतमकी मधुर मनोहर छवि निहारने लगते हैं। वे अपनी सुमधुर काकलीमें दम्पतिका यशोगान करने लगते हैं। काकली करते-करते ही वे अपनी लम्बी ग्रीवाको जलमें डुबोकर जलके भीतर ही डुबकी लगाये अपना संतरण-कौशल दिखाने लगते हैं। मञ्जुश्यामा प्रियाको बहुत सी द्राक्षादि सूखी मेवा देती हैं, प्रिया-प्रियतम नावको घेरे पक्षियोंको मेवा खिलाने लगते हैं। प्रिया-प्रियतमकी अङ्ग-गंधसे लुब्ध हुए भ्रमरदल अपने प्रिय पद्मोंको कुछ काल त्यागकर दल बनाकर उनके चतुर्दिक गुंजार करने लगते हैं। भ्रमरोंके कोलाहलसे वातावरण मुखरित हो उठता है। हंस-हंसनियोंका विहार देखकर प्रेमावेशके कारण प्रिया प्रियतमके वक्षस्थलसे लिपट जाती हैं। कभी कमलदलोंका सौन्दर्य देखकर अपने प्रियतमका मुख निर्निमेष निरखने लगती हैं। उन्हें ऐसा अनुभव होता है मानो उनके प्रियतम इतने सुमनोहर हैं कि सहस्रों कमलोंका हास उनकी मुखछविकी मात्र एक भंगिमापर न्यौछावर कर दिया जाये। इसी प्रकार प्रियाकी दृष्टि जब चक्रवाक-चक्रवाकीकी मिलनमुद्रापर पड़ती है तो प्रिया अत्यन्त रसभरी मुद्रामें अपना मुख अपने प्रियतम नीलसुन्दरके उत्तरीयमें छुपा लेती हैं। ।।७२०।।

अपने बायें करसे हँसकर थी डाँड़ थाम लेती, प्रियतम !
'प्राणेश! अहो! देखो, कितना सुन्दर मैं खेती हूँ', प्रियतम !
उसकी चितवन-वाणी में जो रस निर्झर पूरित था, प्रियतम !
साँवरको मत्त बना देता, उसपर ढल पड़ते वे, प्रियतम।।७२१।।

प्रतिदिन ही यह क्रीड़ा तनिक अन्तरसे प्रायः संघटित हो ही जाती। राधाकिशोरी नौकापर विराजकर अपने करसरोजमें डाँड़को लेतीं और कहतीं – 'अच्छा प्राणेश! तुम देखो, मैं कितना सुन्दर नाव खेती हूँ

भला!'किशोरीकी चितवनमें, वाणीमें उस समय रसका निर्झर पूरित हो जाता जो साँवरको रसमत्त बना देता। नीलसुन्दर किशोरीपर ढल पड़ते।।।७२१।।

प्राणेश ! अहो ! देखो, कितना सुन्दर मैं खेती हूँ, प्रियतम !

ओह! स्वयं वाग्वादिनी देवी सरस्वतीमें भी कहाँ सामर्थ्य है, जो करुणासिन्धु प्रिया-प्रियतम बाला राधा एवं ब्रजराजकिशोरके अन्तस्तलमें नित्य उच्छलित कृपा-तरङ्गोंकी उद्दामताका चित्रण कर सके। यदि पुराणेतिहासोंमें किसी भी त्रिकालदर्शी कविके द्वारा इस कृपोद्वेलनका यत्किञ्चित् चित्रण हो पाया है तो केवल युगल दम्पतिके बाह्य अनुभावोंको लेकर ही। सो भी तभी, जब हेतुरहित चिन्मय कृपासिन्धु इन दम्पतिकी चरणनखचन्द्रिकाका प्रकाश उनकी बुद्धिमें, मन-प्राण-इन्द्रियोंमें परिव्याप्त हो गया एवं उस आलोकमें उन चिन्मय कृपा-अनुभावोंका वे दर्शन पा सके।

रसिक जनोंकी सदैवसे यह मान्यता ही रही है कि -

''श्रेयः सृतिं भक्तिमुदस्य ते विभो क्लिश्यन्ति ये केवल बोधलब्धये।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम्।। (श्रीमद्भा.१०।१४।४)

''जो भी योगीजन भक्तिकी उपेक्षाकर केवल ज्ञानलाभके लिये ही अथक श्रम करते रहते हैं, ज्ञानकी आलोकमाला उनके मानसतलको उद्भासित नहीं कर पाती। परिणाममें उनके तो हाथ लगता है – केवल क्लेश ही क्लेश – साधनश्रम मात्र। ठीक उसी प्रकार जैसे थोथी भूसीके ढेरको कूटनेपर अन्नकणोंकी उपलब्धि नहीं ही होती।''

सचमुच ही वे आत्महत्यारे लोग ही हैं जो प्रिया-प्रियतम श्रीराधामाधवकी कृपाधारामें निपतित हुए बिना अपवर्ग एवं निश्रेयस्की सिद्धि चाहते हैं।

''कः उत्तमश्लोकगुणानुवादात् पुमान् विरज्येत बिना पशुघ्नात्।।''

हतभाग्य! इन भ्रान्त लोगोंके विषयमें क्या कहा जाय! ये परम मङ्गलदायी प्रिया-प्रियतमकी चरण-नख-चन्द्रिकाका आश्रय ग्रहण करना तो दूर, इनकी अवहेलना करने लगते हैं। उन्हें इन युगल दम्पतिकी रसमयी लीलाएँ, आस्वादनके योग्य प्रतीत नहीं होतीं। ये लोग मिथ्या ज्ञानके झंझावातमें भगवान्की चिन्मय सगुण-साकार सत्ताको ही मायोपाधिक मान बैठते हैं। छद्म वैराग्यके आवेशमें इन्हें प्रिया-प्रियतमका चिदानन्दमय लीलाविहार अवस्तु दृष्टिगोचर होने लगता है। वे उनके कल्याणमय मधुस्रावी गुणगणोंका, उनकी सरस प्रेमभावनाओंका एवं रसमयी वार्त्ताओंका अनादर कर देते हैं और इसके बदले ज्ञानकी संथा लेकर सूखे तत्व-प्रतिपादनके विश्लेषणोंमें कूद पड़ते हैं।

ये तथाकथित वाचिक ज्ञानी उन सन्तोंका भी अवहेलनाजन्य अपराध कर बैठते हैं जो प्रेमावेशवश निरन्तरं हरे! नारायण! जगत्पते! आदि पावन भगवन्नामोंका कीर्त्तन करते रहते हैं। ये उन्हें निम्न स्तरका साधक समझ बैठते हैं जो नाम-रूप-लीलाओंका कीर्त्तन किये बिना नहीं रह सकते। अतएव भगवद्भक्तोंकी अवहेलनासे हुए भक्तापराध, भगवन्नामापराध, भगवद्विग्रहापराध आदि बाधक कर्मोंके घटित हो जानेसे ये तथाकथित वाचिक ज्ञानी इस वृन्दाकाननमें सूखे कँटीले काष्ठ ठूँठ बन जाते हैं। इन ठूँठोंमें जब हरे पत्ते भी उत्पन्न नहीं हो पाते, तो इनके पुष्पित एवं फलित होनेकी तो कल्पना ही नहीं की जा सकती। ये वृक्ष कण्टकोंसे सर्व ओर आच्छादित होते हैं जिससे काकली करते पक्षी भी इन्हें अपने नीड़के योग्य नहीं मानते।

जय हो! अप्राकृत हेतुरहित विशुद्ध सत्वमयी प्रियाकी कृपाधाराकी! सखी वृन्दादेवीकी अधीनस्थ सखियोंकी अनुग्रहदृष्टि इन कँटीले शुष्क वृक्षोंपर पड़ जाती है। ये कृपावतार भगवान्के सगुण साकर स्वरूपकी भले ही भ्रान्तिवश, अवहेलना कर बैठे हों, किन्तु निर्गुण-निराकार स्वरूपके लिये ही सही, अन्ततः इन्होंने अनवरत अथक श्रम तो किया ही है। फिर कृपावारिधिकी ऊर्मियाँ इन्हें भला अछूता कैसे छोड़ दें? '' बस, इन वृक्षोंके काष्ठसे ही परिवहन-नौका निर्माण हो, और प्रिया-प्रियतम इसपर आरूढ़ होकर यमुना-संतरण लीला करें'' - वृन्दादेवी काननाधिष्ठात्रीकी सखियाँ

सङ्कल्प कर उठती हैं। ये सूखे काष्ठवृक्ष काटे जाते हैं और इन वृक्षोंके कठोर काष्ठसे सुघड़ शुभ्र हंसाकृति नौका निर्मित हो जाती है।

धन्य है! ये भगवदपराधी वाचिक ज्ञानी जीव भी आज सुन्दर नौका बने प्रिया-प्रियतमके यमुना-संतरणमें हेतु हो रहे हैं। असमोर्ध्व हेतुरहित कृपावर्षणकी जय हो! कृपावारिधिके असीमोच्छलनकी सदा ही जय हो। आज तो इन निर्गुण-निर्विशेष सत्तामात्र ब्रह्मकी उपासना करने वालों, इनके नीरस सूखे काष्ठवत् जड़ निश्चल अन्तःकरणोंके ऊपर भी ब्रजलीलाविहारी एवं विहारिणीका अनन्त अपरिसीम माधुर्यसिन्धु उद्वेलित हो उठेगा। धन्य! धन्य!! धन्य!!!

आज अनन्त रस-निकेतन रसराज अपनी ह्लादिनी-सार-सर्वस्व प्रियाको अनर्गल विशुद्ध प्रेम-रसका दान इन्हीं वाचिक ज्ञानियोंके मन-बुद्धि एवं चित्तपटलपर करेंगे - हेतुरहित कृपासिन्धुका इससे बड़ा उच्छलन भला कोई क्या देखेगा?

ओह! इनके अन्तःकरण भले ही सूखे नीरस काष्ठ ही क्यों न बन गये हों परन्तु आज ये द्रष्टा होंगे - ह्लादिनी कायव्यूहरूपा गोपाङ्गनाओंके साथ परात्पर परब्रह्मका प्रेमसिन्धुमें निर्बाध संतरण कैसा होता है; इनकी कर्णेन्द्रियाँ आज निश्चय ही श्रोता बनेंगी - वंशीछिद्रोंसे स्वरूपगत प्रेमानन्दके वितरणकी; साथ ही इनकी नेत्रेन्द्रियाँ भी निश्चय ही निरखेंगी - परात्पर परब्रह्मकी रूपमाधुरीमें सम्पूर्ण विश्वप्रपञ्चके सम्प्लावनको। किन्तु हा हतभाग्य! ये शुष्क काष्ठकी गति पाये योगीजन इस रसलीलाके पात्र बनकर भी परोक्ष साक्षी ही हो पावेंगे, कृपावारिधिका इतना उद्दाम उच्छलन भी इन्हें इस रस-कालिन्दीमें डुबा तो नहीं ही सकेगा। ये योगीजन महज्जनापराधों एवं नामापराधोंके कारण निर्जीव हंसाकृति नौका ही बने रहेंगे, रसधारा इन्हें मात्र अपने ऊपर -ऊपर ही बहावेगी, इन्हें रसमसृण, रससिक्त नहीं ही कर पावेगी।

मयूरपिच्छधारी ब्रजलीलाविहारीकी रूपसुधाके पानसे विषयी सुर-असुर, नर-नाग, पशु-पक्षी एवं ब्रजके कीट-पतङ्गतक भले ही बेसुध हो उठें; वेणु-माधुर्यके वितरणसे ब्रजजगत्के स्थावर-जङ्गम भले ही धर्म-विपर्यय कर उठें - प्रस्तर प्रवाहित होने लगें एवं जल-प्रवाह भले ही स्थिर हो जाय; पृथ्वी एवं पहाड़ोंसे भले ही रसके निर्झर निकल पड़ें, महज्जन सन्तोंकी अवहेलना और अवज्ञाके कारण उमड़ती भगवत्कृपा भी इस तरणीको रसनदीके ऊपर तैरा तो देगी, इसे स्वयंको रसमत्त नहीं ही बना सकेगी। इसकी नियति ही यह है।

फिर भी कृपा हार नहीं ही मानती। हेतुरहित अमोघ कृपावर्षाकी बलिहारी है! गुञ्जावतंस मयूरपिच्छकी छटासे उल्लसित वनमाली एवं प्रेममदसे छकी निकुञ्जरानीके उन्मद सुन्दर युगल वदनारविन्दकी सुधा-सिन्धु-तरंगें इस हंसाकृति नौकाके हृद्देशके ऊपर मयूरासनमें विराजित हो गयी हैं, और इस तरणीकी डाँड थाम ली है, कृपावात्सल्यकी घनीभूत प्रतिमा बृषभानुराजदुहिताने।

"तू कितने ही शुष्क, नीरस, काष्ठकी क्यों न बनी हो, मैं मात्र अपने बायें हाथसे ही तेरी नकेल थामकर तुझे रसमार्गमें धकेल दूँगी।" बृषभानुराजदुहिताकी करुणा उद्रिक्त हो उठी है।

ओह! कैसी विलक्षण रस-सरिता उमड़ी है। कालिन्दीकूलपर वृक्षोंमें विराजित पक्षीगण जय-जय मङ्गलगान कर रहे हैं। इस हंसाकृति शुष्क काष्ठ-तरणीकी डाँड थाम ली है - भक्ति एवं प्रीतिकी उत्स उन कीर्त्तिदाकुमारीने जो विश्व प्रकृतिमें बिन्दुरूपसे स्थित वैदग्ध्य, अनुराग, वात्सल्य, कृपा, लावण्य, सौन्दर्य एवं केलिरस - इन सातों रसोंकी मूल उद्गम ही नहीं, अनन्त अथाह अगाध उदधि हैं। यह डाँड भी उन्होंने थामी है - मात्र अपने बायें कर-सरोजसे। क्योंकि वे अपने दक्षिण करसे तो आवृत किये हैं अपने प्रियतमके कण्ठदेशको; वह तो उनके नवघनसुन्दर प्रियतमके मनोहरतम स्कन्धमें झूल रहा है, कञ्चनलताकी तरह। अपने सच्चिदानन्दघन दिव्यरससुधासिन्धु प्रियतमके वदनारविन्दकी ओर अतिशय

सतृष्णापूर्वक निहारते-निहारते ही वे कह उठती हैं - "प्राणनाथ! अहो! देखो, मैं इस शुष्क काष्ठ तरणीको भी कितनी सहज सुन्दरतासे रसनदी कालिन्दीमें खे लेती हूँ। अद्यावधि जो सदा आपके सगुण साकार स्वरूपको मायोपाधिक मानते रहे, आपके लीला-विहारको जो मात्र मनकी काल्पनिक ध्यानवस्तु ही समझते रहे, उनकी शुष्क शान्त नीरस चित्तवृत्तिको भी प्रेमघन-रससुधास्रावी इस कलिन्दतनयाकी धारामें मैं मात्र अपने बायें करस्पर्शके संयोगसे निर्बाध प्रवाहित करा देती हूँ। जो मेरा करस्पर्श विश्वकी विशिष्ट चिन्मय सत्ताको कृतकृत्य करता हुआ, उसके स्कन्धदेशको आवृत करता उसके वक्षस्थलपर क्रीड़ायमान रहता है, उसके संस्पर्शसे ही मैं इस नीरस नावको निश्चय ही रसनदीमें प्रवाहित कर लूँगी।"

ओह! प्रियाकी प्रेमरस-फुहारें बिखेरनेवाली निर्झरिणीकी उपमा धारण करनेवाली चितवन एवं मधुर रसमयी वाणीसे जो प्रेम प्रवाहित हो रहा है, वह उनके प्रियतम प्राणवल्लभको आनन्दमत्त बना देता है। वे अपनी प्रियाके अङ्कमें न्यौछावर हुए ढुल पड़ते हैं।।।७२१।।

'बलिहार अहो! निकुञ्जरानी!' कहकर सहेलियाँ वे, प्रियतम!
उत्साहित बालाको करती, दूसरी डाँड़ खेती, प्रियतम!
उससे वह बात छिपानेका करती प्रयास, फिर भी, प्रियतम!
लेती वह देख, बोलती 'क्या इतनी निर्बल मैं हूँ?' प्रियतम।।७२२।।

'अहो! बलिहार! बलिहार! बलिहार! निकुञ्जरानीकी जय! 'ऐसा कहकर सहेलियाँ राधाकिशोरीको उत्साहित करने लगतीं और शेष सहचरियाँ डाँड़ खेने लग जातीं। सहचरियोंका यह प्रयास होता कि वे डाँड़ खे रही हैं-इसे किशोरी जान न पायें। तथापि किशोरी इस बातको देख ही लेतीं और उल्लासभरे स्वरमें कह बैठतीं-'अरी! मैं इतनी निर्बल हूँ, डाँड़ खे नहीं सकती?।।७२२।।

क्या इतनी निर्बल मैं हूँ, प्रियतम !

अब सखियोंकी ओर निहारें। प्रिया-सुखमूलक शुद्ध अनुरागकी ही जो मूर्त्तिमान् स्वरूप हैं उन सखियोंके सङ्कल्प तो अपनी सखी राधाकी रुचिसे ही सञ्चालित होते हैं। जो राधारानीको अभीष्ट हो स्वतः ही इन सखियोंकी कर्मेन्द्रियाँ वही कर्म सम्पादित करने लगती हैं। प्राणसखी राधा जो सोचे, सङ्कल्प करे, जो भी स्फुरणा सखी राधाके चित्तमें स्फुरित भर हो जाय, इन सखियोंका तो वही कर्म हो जाता है।

"अहाहा! अरे! वाह रे! हमारी प्रिया राधा नाव खे रही हैं " – बस, स्वभावतः ही सखियोंके हाथ दूसरी डाँडसे संलग्न हो उठते हैं। यह कर्म – उनका अपना स्वतंत्र अहंतामूलक कर्म सर्वथा सर्वांशमें नहीं है। यह उनकी प्राणसखी प्रिया राधाका ही कर्म है। वे तो श्रीराधाके ही सङ्कल्पसे सञ्चालित होनेवाली मात्र यंत्र हैं। किन्तु साथ ही कैसी विलक्षणता है कि वे यह भी प्रदर्शित नहीं करना चाहतीं कि वे मात्र कठपुतली हैं, स्वतंत्र सत्ताएँ नहीं हैं। वस्तुतः हैं वे पूरी यंत्र, संकेत-सञ्चालित पुतलियाँ ही। परन्तु अभिनय सभीका होता है पूर्ण स्वतंत्र अभिमानिनियोंका। अतः सभी सखियोंके हाथ अवश्य दूसरी डाँडको थाम लेते हैं, किन्तु ऊपरसे वाणी उच्चस्वरसे यही उच्चारित करती है – " बलिहार है, निकुञ्जरानीकी! " सभी सखियाँ गुप्तरूपसे गुपचुप दूसरी डाँड खे रही हैं। वे अति सुकुमार सुकोमलांगी प्रियाको नौका-सञ्चालन जैसे कठोर श्रमयुक्त कर्मके सर्वथा अनुपयुक्त मानती हैं, फिर भी ऊपरसे ऐसा ही झलकाती हैं कि प्रिया राधा उनके सहयोगकी मुखापेक्षी सर्वथा नहीं हैं, वे नौका-सञ्चालन करनेमें समर्थ हैं।

यहाँ यह समझनेकी बात है कि श्रीराधा निर्मलतम प्रेमकी प्रतिमा हैं। प्रेममें कुछ भी सञ्चालित करने, किसीको भी रससिन्धुमें डुबोने-जैसा ऐश्वर्ययुक्त अहङ्कारभरा सामर्थ्यभाव प्रकाशित हो ही नहीं पाता। प्रिया राधाके सम्मुख तो

उनके प्रियतम भी पूर्णतया ऐश्वर्यलुप्त मात्र प्रेमी-शिरोमणि ही रहते हैं। फिर अद्यावधि तो निभृत निकुञ्जमें अपने प्रियतमसे प्रथम मिलित प्रिया बालाका हृदय वर्तमानमें अत्यन्त घन शीतल है। बालाके प्रियतम प्रेमार्णव उसके दक्षिण बाहुबन्धनमें बन्धित निहित हैं, वे उसके अङ्कसे सटे बैठे हैं। राधाका हृदय मिलनानन्दमें मुग्ध, महान् मोदसे प्रमुदित, हिमके समान धनीभूत माधुर्यमय ठोस हो गया है। इस घन-माधुर्यमें उनकी स्वयंकी अहंता भी माधुर्यके सिवा शेष कहाँ बची है? उनकी मन-इन्द्रियाँ तो प्रियतम-सान्निध्यमें प्रियतमरूपमें परिणत होकर अपनी इच्छानुसार अपने प्रियतमका संस्पर्श पाकर कृतकृत्य हो उठी हैं। उनमें अपने स्वतंत्र बलका अभिमान ही कहाँ रहा है। बालाके नेत्रोंमें मदनका मद हरण करनेवाले मधुर मधुकर बने प्रियतम नीलसुन्दर बस गये हैं। उसके कानोंमें अपने प्रियतम नीलमणिकी सर्वसुखकारिणी अमृत मधुर प्रेमवाणी ही स्वरलहरीके रूपमें लहरा रही है; उसकी घ्राणेन्द्रियोंमें सबको मत्त बना देनेवाली प्रियतमकी मधुर अङ्ग-गंध पूरित है; उसकी रसनामें वे परम रुचिकर मधु-मनोहर पवित्रतम अधरामृतरस बनकर आस्वादन दे रहे हैं, उसके सारे अङ्गोंमें उसके प्रियतम मत्त करदेनेवाले अङ्गस्पर्श बनकर लहरा रहे हैं; अब उस प्रियाके पास कहाँ तो तन-बल है, कहाँ मनोबल है एवं कहाँ धर्मबल है। उसके पास न तो पुण्यबल है, न ही कोई लोक-परलोकका बल है। वह तो स्वजन एवं अपना कुल-गोत्र ही नहीं, अपने आपको भी पूर्णतया अपनी प्रियस्मृतिमें आत्मविस्मृत कर चुकी है। अब उसके तो भोक्ता भी उसके प्रियतम हैं, भोग्य भी प्रियतम ही और भोगशक्ति भी प्रियतम ही हैं। अतः जब अपने वाम हस्तसे नौका-सञ्चालनका प्रश्न उसके सम्मुख आता है और प्रच्छिन्न रूपसे उसकी सखियाँ ही दूसरी डाँडको निमित्त बनाकर नौका सञ्चालन करने लगती हैं, तो प्रिया अपने प्रियतमके मुखारविन्दकी ओर ताकती हुई मन-ही-मन कह उठती है – " प्रियतम! क्या मैं इतनी निर्बल हूँ?" और सत्य यही है कि प्रिया बाला परम अकिञ्चना हैं। वह अपने प्रियतम-प्रेम-सौभाग्यसे ही सुभग है। उसके पास यदि कुछ भी वस्तु है तो मात्र अपने प्रियतमका प्रेमामृत ही है। प्रेमराज्यमें अभिमानको स्थान ही कहाँ? सर्वथा अकिञ्चन निर्बल होनेपर ही तो प्रेम **'प्रतिक्षण वर्धमानम् '** प्रतिक्षण बढता है। राधाका अपने प्रियतमकी ओर देखकर अपनेको निर्बल अनुभव करना मिथ्या दैन्य या दिखावटी विनम्रता नहीं है। यह निर्बल अनुभव करना पवित्र प्रियतम-प्रेमस्वरूप ही है। ।।७२२।।

साँवर मुसकाकर कहते,'री! तुम सब छोड़ो, देखो;'प्रियतम!
'मेरे प्राणों की रानी से छू जाने का जादू'; प्रियतम!
'इनको छूकर मैं ही जब हूँ चञ्चल हरदम, फिर तो,'प्रियतम!
'यह डाँड़ चलेगी नाव तथा अपने-ही-आप, भला!' प्रियतम॥७२३॥

उस समय साँवर-नीलसुन्दर मुस्कुराकर कह ही उठते- 'अरी! तुम सब छोड़कर देखो कि मेरे प्राणोंकी रानीसे छू जानेका क़ैसा जादू होता है। इनको छू लेनेके फलस्वरूप जब मैं ही निरन्तर चंचल रहता हूँ, तब यह डाँड़ तथा नाव अपने आप चलेंगे ही भला!'।।७२३।।

लज्जित होकर बाला तुरंत, थी हाथ हटा लेती, प्रियतम!
उस ओर सरित की धारामें परिवर्तन हो जाता, प्रियतम!
हिल्लोलित लहरों से होकर तरणी चल पड़ती थी, प्रियतम!
बालाको उरमें भरकर थे 'जय-जय' साँवर कहते, प्रियतम।।७२४।।

नीलसुन्दरकी यह रसीली बात सुनकर किशोरी लज्जित हो जातीं और डाँड़परसे अपना हाथ हटा लेतीं। उस ओर सरिताकी धारामें परिवर्तन हो जाता। लहरोंसे हिल्लोलित होकर तरणी चल पड़ती थी और उन्हें हृदयसे लगाकर नीलसुन्दर 'जय हो! जय हो! कहने लगते।।।७२४।।

इसको छूकर मैं ही जब हूँ चंचल हरदम, फिर तो, प्रियतम !

किसी प्रत्यक्षलीलादर्शी कविने ठीक ही तो गाया है –

अबला तेरे बल है न और।
बँधे मदनगोपाल महागज कुटिल कटाक्ष नयनकी कोर।।
यमुना तीर तमाल लता वन फिरत निरंकुश नंदकिशोर।
भौंह विलास पास बस कीने मोहन अंग गहे तैं जोर।।
लै राखे कुच बीच निरन्तर शृंखल सुखद प्रेमकी डोर।
यहै जो उचित होय ब्रजसुन्दरि परमानन्द चपल चितचोर।।

बल उस सर्ववशीकारिताशक्तिको कहते हैं, जो सबपर अबाध गतिसे अपना प्रभुत्व स्थापित कर सके। श्रीराधाने अपने अकिञ्चन प्रेमसे गजराजके समान उद्धत अनन्त बलशाली नायक भगवान् ब्रजेन्द्रनन्दनपर अपना एकछत्र आधिपत्य स्थापित किया है, जिसको '**कृष्णस्तु भगवान् स्वयं**' कहा जाता है। जो सर्वातीत है, अच्युत है, देश-काल-अवस्था-परिणामसे जो सदा अनवच्छिन्न है, जो नित्यतृप्त, पूर्ण निष्काम, घन शान्त है, उन निरङ्कुश ब्रजेन्द्रनन्दनको यमुनातीरमें, लतावनोंमें चञ्चल बनाकर भ्रमणशील बना देना, अबला राधाका प्रेमबल ही है। जो श्रीकृष्ण सर्वातीत, सर्वव्यापी हैं उन्हें अपने भौंह-पाशसे बाँधकर '**बृन्दावनं परित्यज्य पादमेकं न गच्छति**' - एकदेशीय सीमित बना देना प्रिया श्रीराधाका ही बल है। सर्वमनविमोहन मन्मथको भी विमुग्ध कर देनेवाले नीलमयङ्कदेवको अपनी शक्तिसे प्रेमकी सुखद शृंखलाओंमें जकड़कर अपने उरोजोंके मध्य बलपूर्वक रख लेना अबला राधाका ही निरीह प्रेमैश्वर्य है। अपने प्रेमभरे नयनोंकी कोरसे बरसाये कटाक्षवाणोंसे बींधकर अपने प्राणाराध्य ब्रजेन्द्रनन्दनको अपने सङ्ग विहारमें इतना मुग्ध बना लेना कि उन्हें हानि, ग्लानि, दुःख, भय, सम्भ्रम, लोकनिन्दा, ईश्वरत्व यहाँ तक कि अपने परात्पर स्वरूपतत्वका भी विस्मरण हो जाय - यह राधाका ही निरीह प्रेमबल है।

यह सर्वथा निर्विवाद सत्य है कि भगवान्के परम ज्ञानस्वरूप ऐश्वर्यको, उनकी भगवत्ताको कोई भी अन्य आवृत नहीं कर सकता; किन्तु श्रीराधाकी निरीह अकिञ्चन प्रेमवृत्ति भगवान्की भगवत्ता एवं ऐश्वर्यज्ञानको भी आवृत कर उन्हें मात्र प्रेमी ही बना देती है।

श्रीमती राधाके इसी प्रेमबलका सङ्केत करते हुए प्रियतम ब्रजेन्द्रनन्दन गोपाङ्गनाओंसे कहते हैं कि तुम मेरी प्रिया राधाकी सुकुमारतापर दृष्टि रखकर जो यह नौका-संवाहनमें गुपचुप सहयोग कर रही हो, इसे छोड़ो। मेरे प्राणोंकी रानीने यदि एक बार इन शुष्क वाचिक ज्ञानार्थियोंको संस्पर्श भी कर लिया है, तो ये रसमार्गमें अपने आप प्रवाहित हो उठेंगे। यह डाँड और नाव दोनों ही स्वतः चलने लगेंगे। ।।७२४।।

उजली युगलित बरटावलि, जल-कुक्कुटटोली काली, प्रियतम !
उड़-उड़कर नाव घेर लेती, फैला-फैला पाँखें, प्रियतम !
आगे विहंग वे कर देते अपनी-अपनी ग्रीवा, प्रियतम !
दम्पति उनको सहला-सहला दे प्यार दान करते, प्रियतम ।।७२५।।

उज्ज्वल वर्णकी बरटा दम्पति एवं जल-कुक्कुटोंकी कृष्णवर्ण टोली उड़-उड़कर आती तथा अपनी पाँखें फैलाकर दोनों ही नावको घेर लेतीं। वे सभी विहंगम अपनी-अपनी ग्रीवा राधाकिशोरी एवं नीलसुन्दरके सामने कर देते और उन विहंगमोंको सहला-सहलाकर, उन्हें प्यार देकर गौर-नील दम्पति उन्हें अभिषिक्त करते रहते।।।७२५।।



निज कर गूँथि सुमन के गजरा हरषि तोहि पहरावत हैं।
(कर्पूरादि-विलेपन-सेवा-निरत सखी श्रीविशाखाजी)(पृष्ठ ९०)

उजली युगलित वरटावलि, जलकुक्कुट टोली काली, प्रियतम !

कोटि-कोटि कन्दर्प-कमनीय-सौन्दर्य-निकेतन प्रिया-प्रियतम जब नौका-संतरण कर रहे हों तो ब्रह्मा-रुद्रादि देवगण इन प्रिया-प्रियतमको अपने कोटि-कोटि आत्माओंसे भी प्रिय मानकर सेवा-उपासनार्थ इन्हें घेर लें इसमें आश्चर्य ही क्या है? ब्रजेन्द्रनन्दनकी कैशोरवयकी विश्वमनोहर माधुर्यलीलाको निहारनेका प्रलोभन उन्हें अपने लोकोंसे आकर्षितकर इस राधा-प्रेम-काननमें अवतरण करनेको बाध्य कर देता है। अतः कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंके ब्रह्मा-ब्रह्माणी, रुद्र-रुद्राणी, युगलित हंस-हंसिनी बन-बनकर नावके चतुर्दिक् उड़ने लगते हैं। ये सभी देवगण अपना धैर्य तो कबके ही खो चुके हैं। नैसर्गिक नियमोंका उल्लंघन करते हुए एक बार तो इन देवगणोंको सङ्कोच होता है। इनका देवाभिमान पूर्णतया चूर-चूर तो हुआ ही नहीं है। फिर ये **''नहि देवाः भुवं स्पृशन्ति''** इस नियमको स्मरण भी किये ही हैं, अतः ये कुछ काल तो सङ्कोच करते हैं, फिर जैसे ही इनकी समझमें आता है कि यह तो सर्वेश्वरकी चिदानन्दमयी क्रीड़ाभूमि है, इसकी एक रजःकणिकाका संस्पर्श पा लेनेके लिये योगीन्द्र-मुनीन्द्र तरसते हैं, तब तो ये यमुनाजलमें संतरण करने उतर पड़ते हैं। पद्मयोनि ब्रह्मा गोवत्सोंका हरण करनेके लिये वृन्दावनके तृणक्षेत्रमें उतरे थे। गोपशिशुओंको, गौओंको स्थानान्तरित करने वे इसी यमुनापुलिनके समीप भी आये थे। पर उस समय वे श्रीकृष्णचरणचिन्हित इस काननके रजःकणका संस्पर्श पानेका अधिकार नहीं ही पा सके थे। निम्नतम आकाशमें स्थित रहकर ही – वनभूमिके एक पत्रतकको संस्पर्श नहीं करते हुए ही उनके द्वारा वह अपराध घटित हुआ था। वे इस वनभूमिको संस्पर्श नहीं कर सके थे। किन्तु बादमें श्रीकृष्ण-पद-पङ्कजमें दण्डवत् गिरकर प्रणिपात करनेकी उनकी उत्कण्ठा जागी थी। उन्होंने प्रणत होकर अपने साश्रु नयनों एवं भरे कण्ठसे प्रार्थना की थी तब उन्हें यह अधिकार मिला था कि वे श्रीकृष्णचरण-चिन्हित भूमिका संस्पर्श पा सकें। उस अधिकार-प्राप्तिके कारण ही आज अनेकों ब्रह्माण्डोंके वेदगर्भोंको यह साहस हो रहा है कि ये वरटावलिके रूपमें ब्रजराजनन्दनके चरणनखचन्द्रकी कृपा प्राप्त कर सकें। ब्रजराजनन्दनको अपनी प्रिया बृषभानुनन्दिनी एवं उनकी सखीमण्डलीके साथ नौकाविहार करते देखनेका सुख कितना निराला है – इसे तो ये वरटावलि बने पद्मयोनियोंके प्राण ही अनुभव करते हैं। अवश्य ही इनके प्राणोंकी यह अनुभूति गुप्त नहीं रह पाती है। इस अनुभूतिसे ही खिंचे अन्य अनेकों अमरवृन्द जिन्हें लीलादर्शनका अधिकार सर्वेश्वरसे मिल चुका है, कृष्णवर्णी जलकुक्कुट बने टोलियोंमें प्रिया-प्रियतमकी नौकाको आवृत कर लेते हैं। इनकी सुमधुर काकली, इनके पखोंकी उत्फुल्लता इनके अन्तर्देशके सम्पूर्ण आनन्द-प्रवाहको बाहर छलका रहा है, प्रकट कर रहा है। अश्रुवारिके रूपमें, इनकी काकलीमें स्वरकी विकृतिसे, इनके कण्ठोंके स्वरावरोधसे प्रियाके सम्मुख इनका प्रेमभाव ज्योंही प्रकट होता है, उनके नेत्र भी झरने लगते हैं। ज्योंही इन जलपक्षियोंके सिर आनन्दभरे किञ्चित् ऊपरकी ओर उठते हैं और वे अपनी ग्रीवा आगे करते हैं, युगल दम्पति प्रिया-प्रियतम उनको सहला-सहलाकर संस्पर्श करते हुए प्रेमदान देने लगते है। इसी कालमें गुणमञ्जरी प्रियाको ढेर सारी द्राक्षा, काजू, पिश्ता बादाम आदि सूखी मेवा देती हैं, जिसे प्रिया इन्हें अतिशय प्रेमपूर्वक खिलाने लगती हैं। इनके कलरवसे सारा वातावरण मुखरित हो रहा है।।।७२५।।

सहसा लहरोंका वेग, अहो ! इतना बढ़ जाता था, प्रियतम !
तरणी डगमग करने लगती, बाला डर जाती थी, प्रियतम !
साँवर अञ्जलिमें जल लेकर उसका पद धो देते, प्रियतम !
देते फिर छींट तरंगोंपर वे धीमी पड़ जातीं, प्रियतम ॥७२६॥

अचानक लहरोंका वेग इतना अधिक बढ़ जाता कि नौका डगमग करने लगती। राधाकिशोरी भयभीत हो जातीं। साँवर अञ्जलिमें किञ्चित् सरिताका जल ले लेते तथा राधाकिशोरीका पद धोकर उसे तरंगोंपर छींट देते। फिर क्या था, वे तुरंत धीमी पड़ जातीं।।।७२६।।

'हे प्राणवल्लभे! सरिता यह छूना है चाह रही'; प्रियतम!
'तुमको, अतएव चलो, इसकी इच्छा अवश्य रख दें'; प्रियतम!
'है नीर न यहाँ गम्भीर, तनिक लहँगा ऊँचा कर के'; प्रियतम!
चलना!' यह कहते साँवरके लोचन छल-छल करते, प्रियतम।।७२७।।

अचानक नीलसुन्दर कहते – 'प्राणवल्लभे! यह सरिता तुमको स्पर्श करना चाह रही है। अतएव चलो, इसकी इच्छाको हमलोग अवश्य पूर्ण कर दें। यहाँपर जल गम्भीर नहीं है। किञ्चित् अपने लँहगेको तुम ऊँचा करके चलना।'इतना कहते-कहते साँवरकी आँखोंमें अश्रु छल-छल करने लगते। अस्तु,।।७२७।।

सरिता है छूना चाह रही, इसकी इच्छा रख दें, प्रियतम !

इधर कलिन्दनन्दिनीके भी अन्तस्तलमें एक अनिर्वचनीय भावका स्रोत उमड़ चलता है। युगल दम्पतिके प्रति कलिन्दकन्यामें विशुद्धतम प्रेमिल अपनत्व जागृत् हो उठता है। वे प्राणोंकी उमङ्ग लेकर उमड़ उठती हैं - प्रिया-प्रियतमके मुखचन्द्रोंकी शोभा निरखने। किन्तु नौकाका अस्तित्व उसकी ऊँची-ऊँची पङ्खनुमा दीवारें, उसकी उठी हुई हंसाकृति ग्रीवा अवरोध खड़ा कर देती है। प्रेमजन्य सात्विक भावावेगवश कालिन्दीकी लहरें इस अवरोधको सह नहीं पातीं। किन्तु वे करें भी तो क्या? अभिमान-प्रदर्शन तो इस रसराज्यमें बहुत बड़ा अपराध माना जाता है, साथ ही हृदयका प्रवाह उसका रुकता भी नहीं – इन दोनों आवेगोंमें कालिन्दीकी लहरें उमड़ रही थीं।

कलिन्दकन्या देखती है कि मेरी बहिन भानुकिशोरी ही जब प्रियतम प्राणनाथ श्यामसुन्दरके सम्पूर्ण रस, सम्पूर्ण आनन्द, सम्पूर्ण शोभा-सौन्दर्यादिकी एकमात्र भोक्ता हैं तो यह नीरस काठकी नीरस तरणी मेरे और इन दम्पतिके बीचमें अवरोध उत्पन्न करनेवाली कौन?

कालिन्दीकी लहरें अतिशय आवेगपूर्वक प्रार्थना करने लगती हैं – " हे स्वमनमोहन-मनोमोहिनी! हे भुवनमोहन-मनोमोहिनी भानुदुलारी! तुम्हारी जय हो। हे मदनमोहन- मनोमोहिनी, हरिहृद्भृङ्गमञ्जरी, हे मुकुन्दमधुमाधवी, पूर्णचन्द्र नीलमयङ्कके पूर्ण विकासकी आधारमूर्त्ति तेरे स्वामित्वमें मुझसे मेरे प्रियतमका विलगत्व क्यों? हे प्रियतम हृत्पद्ममें अखण्ड आवास करनेवाली भृङ्गी, हे पूर्णिमास्वरूपिणी, मेरे और तेरे मिलनमें इस जड़ नौकाका अवरोध कैसा? हे प्रेमकी पराकाष्ठा महाभावस्वरूपे! तेरे लीलाविहारमें मुझसे पृथकत्व कैसा? हे अद्वयज्ञानतत्वस्वरूपे! सच्चिदानन्दघनविग्रहे! तू भी भानुनन्दिनी और मैं भानुतनया, फिर हम दोनों एक पिताकी पुत्रियोंके मध्य यह नौकाका दुराव कैसा? हे विशुद्ध आह्लादस्वरूपे! मृगमदगन्धे! हम दोनोंमें तो नित्य एकत्व है, मात्र लीलाके लिये ही तो मैं कृष्णा हूँ और तू गोरी है, शेष तो हम दोनों एक ही श्रीकृष्णोदधिकी तरंगें हैं; तू प्रकाश है तो मैं तेज हूँ – तू महाभावस्वरूपा है तो मैं रसराजस्वरूपा हूँ – तू उनके हृत्पद्मपर एकछत्र विराजित स्वामिनी है तो मैं उनके चरण पखारनेवाली चेरी; फिर यह नौका हमारे मध्य अवरोध उत्पन्न करनेवाली कौन?"

प्रार्थनास्वरोंमें गर्जन करती कालिन्दीकी लहरोंका वेग इतना बढ़ जाता है कि तरणी डगमग करने लगती है। बाला यमुनाका क्रन्दन सुनती अपने प्राणपतिके अङ्कमें लिपट जाती है।

प्रियतम श्रीकृष्ण यमुनाकी भावनाके समझते हुए प्रियाके चरणोंका स्पर्शित उदक कालिन्दीपर छींट देते हैं। यमुना कृतकृत्य हो उठती है। वह जयगान कर उठती है।

" हे प्राणपति! अपनी प्रियाके शीतल शंतम चरण-सरोजोंका अखण्ड आश्रय देनेके लिये तुम्हें मेरा नमस्कार! हे गोपेन्द्रतनय! तुम्हें अनन्त नमन! तुम्हारे इस नवजलधरश्यामल अङ्गकान्तिके सुमधुर वेषके लिये मेरा सर्वस्व न्यौछावर! हे तुलसीपत्ररचित वनमालाधारी वनमाली! तुम्हें अनन्त प्रणाम! हे गुञ्जारचित कर्णभूषण-अलंकृत! मयूरपिच्छचूड़ापरिशोभित! तुम्हें अनन्त नमन! ।।७२६।।

ब्रजेन्द्रनन्दनके समक्ष यमुनाका अनन्त अपरिसीम उद्वेलित प्रीतिभाव प्रकट हो जाता है। यमुना उनकी ओर शान्त हुई निहारने लगती है। श्रीअगोंकी स्निग्ध श्यामल ज्योतिके प्रवाहमें डूबती उतराती हुई यमुनाकी दृष्टि प्रियतम प्राणवल्लभके पीतपटमें उलझ जाती है। "ओह! प्राकृत मेघमें सौदामिनी सतत चञ्चल है, किन्तु प्रियतम प्राणवल्लभ कृष्णमेघके सम्पर्कमें आकर यह सुस्थिर सुशान्त है।" यमुनाको स्वतः प्रियतम नीलसुन्दरके पद्मदलायत नेत्रोंसे शिक्षा मिल जाती है। प्रियतम नीलसुन्दरके पद्मदलायत नेत्रोंसे शिक्षा झरने लगती है – "यमुने! देखती हो, न? तड़ित्-सी चञ्चल वस्तु भी जब मेरे सम्पर्कमें आकर स्थिर शान्त, सौम्य हो रही है, फिर तुझमें इतना रोष और चञ्चलता क्यों?"

यमुना पानी-पानी हो उठती है। उसका प्रवाह अत्यन्त सौम्य शान्त हो उठता है। किन्तु नन्दनन्दनको यमुनाका मान भी तो रखना ही है। भक्तवांछाकल्पतरु उनका नाम केवल कथन मात्रके लिये हो, ऐसी बात नहीं है। अपने स्वजनोंके गुप्त-से-गुप्त प्रेम-मनोरथोंको जानना और उन्हें पूर्ण करना ही उनके नन्दतनय श्रीविग्रहकी अभिव्यक्तिका एकमात्र उद्देश्य है। प्रियतम नीलमणिका श्रीविग्रह कोई पञ्चभूतोंकी रचना थोड़े ही है; वह तो मात्र स्वजन-पोषणरूपा कृपाकी ही घन प्रतिमा है।

बस! वे प्रिया राधाको सम्बोधित करते हुए कह उठते हैं – 'प्राणेश्वरी! यह सरिता तेरी महाभावद्युतिको छू लेना चाहती है। मेरी सेवारूपा क्रीड़ाकी नित्य निवासस्थली इस काननको यह रसमय तो अवश्य कर रही है, परन्तु तेरे समान ही यह मेरे नेत्रोंको अनन्तानन्द देनेवाली द्युतिसे सुभूषित होना चाह रही है। यह कालिन्दी तन-मन-वचनसे मेरी आराधनामें ही नियुक्त है, अतः इसपर कृपा कर दो।'

'हे प्रिये! तुम तो सर्वऋषि-मुनि-देव-वन्दिता हो। अनन्त ब्रह्माण्डोंकी जननी हो। इसपर अपनी कृपादृष्टि-निक्षेप कर दो।'

'हे प्राणाधिके! तुम समस्त शोभाओंकी अधिष्ठान, आश्रय, आधाररूपा हो। तुम्हीं ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य – इन छहों ऐश्वर्योंकी प्राणसारस्वरूपा मूल हो। समस्त लक्ष्मियाँ तुम्हारे वैभवविलासकी मात्र एक अंश हैं। तुम ही मेरी समस्त इच्छाओंकी साक्षात् मूर्त्ति हो; तुम भुवनमनोमोहिनी, सर्वसम्मोहिनी हो, मेरी परमाराध्या हो, प्रिया हो, इस तुम्हारी चरणकिङ्करी यमुनापर कृपाकणवर्षा कर दो।'

'प्रिये! इसकी इच्छा रखदें। यहाँ नीर गंभीर नहीं है अतः अपने कटिवस्त्रको तनिक-सा उन्नत करके इस यमुनाको अपने चरण प्रक्षालन करनेका अवसर दे दो, न!' यह कहते-कहते प्रिय नीलमणिके नेत्र-मन-प्राण अपनी प्रियाके अनन्त अपरिसीम पारावार-विहीन वात्सल्य-महिमामें डूबने-उतराने लगे। उनके नेत्र छल-छल प्रेमाश्रु बहाने लगे।।।७२७।।

यौं कहकर साँवर बाला को ले साथ उतर पड़ते, प्रियतम !
दोनों के अतिशय सावधान रहकर चलने पर भी, प्रियतम !
लहँगेकी नील किनारी वह गीली हो ही जाती, प्रियतम !
बाला हँस-हँसकर फिर रसमय थी उपालम्भ देती, प्रियतम॥७२८॥

इस प्रकार कहकर नीलसुन्दर राधाकिशोरीको साथ लिये हुए जलमें उतर पड़ते। दोनों ही अतिशय सावधान रहकर चल रहे थे, तथापि लहँगेकी नीली किनारी किञ्चित् गीली हो ही जाती। राधाकिशोरी हँस-हँसकर नीलसुन्दरको उस समय रसमय उपालम्भ दिये बिना नहीं रहती।।।७२८।।

लहँगेकी नील किनारी वह गीली हो ही जाती, प्रियतम !

प्रियाके नील लहँगेके रूपमें प्रियतम श्यामसुन्दर ही तो उनके अङ्गोंको आवृत किये हैं। यमुना प्रियाकी चरणरजसे एक ही काम्य वस्तु पाना चाहती है, और उसकी प्राप्तव्य काम्य वस्तु है – नीलसुन्दरके नलिनाभ

श्रीचरणोंकी सेवा-प्राप्तिरूप महासम्पत्। श्रीकृष्णचरण-सेवा-सम्पत्तिका दान मात्र प्रिया ही कर सकती है। अवश्यमेव श्रीकृष्ण भी प्रेमी-भक्त हैं, प्रेमदानी भी हैं। वे भक्त-पक्षपाती हैं। किन्तु वे प्रेमशेषसीमासमन्वित होकर भी वक्रगतियुक्त हैं। किन्तु श्रीराधाकी श्रीकृष्णसेवा-दानशीलता असीम है। प्रियतम श्रीकृष्ण अपने दर्शनसे त्रिभुवनको आनन्ददान दे सकते हैं, किन्तु वे स्वयं पूर्णानन्द होनेसे दूसरेसे आनन्ददान लेनेके प्रति निरपेक्ष हैं। किन्तु श्रीराधामें ऐसी असमोर्ध्व प्रेमसम्पदा है कि श्रीकृष्ण श्रीराधाके सम्मुख अपनेमें आनन्दका अभाव देखते हुए उसकी सेवाके याचक हो जाते हैं। श्रीकृष्णका माधुर्य असमोर्ध्व है, वे कोटि-कोटि कामदेवोंके सौन्दर्यपर विजयी हैं, किन्तु कोई यदि चाहे कि उसके रूप-सौन्दर्यके श्रीकृष्ण लालायित, याचक हो उठें तो उसे श्रीराधाके रूप-सौन्दर्यकी छाया प्राप्त करनेकी अभिलाषा परमावश्यक है। श्रीकृष्णकी कलित ललित वंशीध्वनि चतुर्दश भुवनोंको आप्यायित भले ही करदे किन्तु यदि कोई चाहे कि श्रीकृष्ण उसकी वचनसुधासे तृप्त हों तो उसे श्रीराधाकी शरण ग्रहण करना परमावश्यक है। श्रीकृष्णकी कर्णेद्रियोंकी रसायन श्रीराधा-वचनमाधुरी ही है। बस, इसी सत्यको ठीक अवगत करती कालिन्दी श्रीराधाकी नील साड़ीकी किनारीको भिगोती अपना यही मनोरथ व्यक्त करती है कि कृष्णप्राणेश्वरी! कृपा करके ऐसी शक्ति दो, जिससे मेरी रसमयता तुम्हारे प्रियतमके हृदयकी कोरको प्रेमाप्यायित कर सके।

बाला हँस-हँसकर फिर रसमय थी उपालम्भ देती, प्रियतम !

"हे मेरे प्राणरमण! इस कालिन्दीको मेरी चरणसेवामें नियोजन करते-करते ही अन्ततः इसकी रसमयतामें तुम डूब ही गये न! प्राणेश्वर! मैं तो सदैव तुम्हारे सुखसे ही सुखी हूँ। यह कालिन्दी तो मेरी ही सखी है। किन्तु लँहगेके रूपमें ही सही, मुझसे लिपटे तुम्हें अपने हाथों पकड़े रखकर निवारण करते रहनेपर भी अन्ततः तुम नहीं ही माने एवं मेरे हाथोंसे फिसलकर तुमने मेरे लँहगेकी कोरके रूपमें ही सही, इसके उमड़ते यौवनरससे अपनेको भिगो ही लिया, न! अब पुनः इसी रससिक्त लहँगेसे मेरे ही चरणोंमें पुनः लिपट रहे हो। बोलो प्रियतम! क्या चाहते हो? क्या मेरे मानसे भयग्रस्त हो रहे हो? प्राणाधिक! यदि सखि कालिन्दीसे तुम्हारे प्राण रससिक्त होनेको आकुल ही हैं तो मेरा अवरोध ही कहाँ है? तुम्हारा सुख ही तो मेरा सुख है! मैं तो तुम्हारे सुखमें पूरी सुखी हूँ। तुम परनारीलम्पटतासे निवृत्त तो होते नहीं एवं सदैव मेरे सम्मुख झूठी चाटुकारी करते हो – "प्रिये! मेरे नेत्र तुम्हारे अतिरिक्त अन्य किसीको देखते ही नहीं। मेरी कर्णेन्द्रियोंमें मात्र तुम्हारा अतिशय प्यारा राधा-नाम ही गूँजता रहता है। मेरी स्पर्शेन्द्रियाँ सदैव तुम्हारे ही अङ्गसंस्पर्शकी लोलुप रहती हैं। मेरी नासिकामें सदैव तुम्हारे ही अङ्गोंकी गन्ध परिपूरित रहती है।" बोलो प्रियतम! तुम्हारी इन चाटूक्तियोंको मैं क्या समझूँ? प्रियतम! तुम ही मेरा मान हो, एवं तुम ही मेरा सम्मान हो। मेरा तो वही धर्म है, वही कर्म है जिसमें तुम परम सुखी हो। मुझे तो कहीं न तनिक राग है, न वैराग्य ही। तुम्हारा सुख ही मेरा जीवन है, वही सौभाग्य है।"

प्रिया मन-ही-मन अपने नेत्र मूँदे विचित्र भावदशामें अपने प्रियतमका स्मरण करने लगती हैं – "प्राणवल्लभ! जीवनसर्वस्व! प्राणनिकेत! गुणनिधि! मधुराधिपते! सर्वविमोहन! स्पर्शमणि! राधाधन! सुखार्णव! हे परमाह्लाद!" प्रियाके सुधापूर अधर प्रियतमके नामोच्चारण करते जा रहे हैं।

प्रियतम नीलमणि अपनी प्रियाको किसी प्रकारसे भी भाव-संवरित करें – ऐसी चेष्टा करते हैं। प्रियाके निमीलित नेत्र अनेक चेष्टाओंके उपरान्त किसी प्रकार उन्मीलित होते हैं, तो उन्हें यमुना-तटवर्त्ती कुञ्जोंमें, पुलिनस्थित वृक्षोंके पत्र-पत्रमें, ललिता-विशाखादि सखियोंमें, हंसाकृतिकी नौकामें, उनको घेरा लगाये युगलित हंस-हंसिनियोंके समूहमें, कलरव करते कृष्णजलकुक्कुटोंमें, चातकों-कोकिलों एवं मयूरोंमें उसके प्राण-सार-सर्वस्व नीलमणि ही भरे दृष्टिगोचर होते हैं। ।।७२८।।

नीली प्रवाहिणीके दक्षिण तट पर अब वे आते, प्रियतम !
अवली तमालतरु की जलको छू-छूकर हिलती थी, प्रियतम !
कर देते और नमित उसको साँवर दक्षिण करसे, प्रियतम !
डोली-सी वह बनती, उसपर बालाको बैठाते, प्रियतम॥७२९॥

अब दम्पति नीली प्रवाहिणीके दक्षिण तटपर आ जाते। तमाल तरुकी श्रेणी जलको छू-छूकर स्पन्दित हो रही थी। साँवर अपने दक्षिण करसे उसे और भी नमित कर देते। वह सचमुच एक डोली-सी बन जाती और नीलसुन्दर किशोरीको उसपर विराजित कर देते।।।७२९।।

शोभा निहार, पलभर वे भी आरोहण कर जाते, प्रियतम !
सहचरियाँ सुखमें भरकर थीं झोंटा देने लगतीं, प्रियतम !
अभिनव झूला-उत्सव-सा वह सचमुच हो जाता था, प्रियतम !
दम्पतिकी हँसी निराली वह सबका मन हर लेती, प्रियतम॥७३०॥

किशोरीकी अनुपम शोभा निहारकर पलभरमें वे ही आरोहण कर जाते। सहचरियाँ अत्यन्त सुखमें डूबकर झोंटा-सी देने लगतीं। सचमुच वह अभिनव एक झूलाका उसव-सा हो जाता। उस समय युगल दम्पति जब हँसते तो वह हँसी अत्यन्त मनोहर हो जाती। सभी सहचरियोंका मन उसमें विलीन होने लगता।।।७३०।।

अवली तमाल तरुकी जलको छू-छूकर हिलती थी, प्रियतम !

प्रियतम प्राणसुन्दर ब्रजेन्द्रनन्दन इस भावाविष्ट दशामें डूबी अपनी प्रियाको किसी प्रकार नील प्रवाहिणीके दक्षिण तटतक लाते हैं। यमुनाके इस दक्षिण तटपर एक विशाल कदम्ब वृक्ष खड़ा है। इस कदम्बकी एक शाखा कालिन्दीके जलको छूती सुदूर नदीतक चली आयी है। वह मन्द-मन्द हवाके झौंकोंसे हिलती रवितनयाके रसमय जलको रह-रहकर छू लेती है।

प्रिया बालाकी दृष्टि जैसे ही इस तमालपर पड़ती है, वे तमालके रूपमें अपने प्राणपतिको ही साक्षात् वहाँ अवस्थित अनुभव करती हैं। तमालकी अवलीके रूपमें प्रियाको अपने प्रियतमके बाहुयुगल ही आलिङ्गनमें लेने उत्थित दृष्टिगोचर होते हैं। वे पुनः भावावेशमें बुदबुदाने लगती हैं –

"प्राणनिकेत! तुम प्रीतिकी साक्षात् प्रतिमा हो। मैं तो तुम्हारी दासीकी दासी भी होने योग्य नहीं हूँ।" प्रियतम किसी प्रकार प्रियाको उस तटवर्त्ती कदम्बकी अवलीतक ले आते हैं और उस अवलीपर भार देकर, उसे झुकाकर उसपर प्रियाकों आसीन कर देते हैं। वे स्वयं भी अपनी प्रियाके पार्श्वमें ही उस डालीपर बैठ जाते हैं। वह शाखा प्रिया-प्रियतमकी हेम एवं सुनीलवर्णाभासे रत्नमयी हो उठती है। सखियाँ उसे हिला-हिलाकर अपने प्रिया-प्रियतमको झूलेका सुख देने लगती हैं।

प्रिया श्रीराधा तो महाभावस्वरूपा हैं। वे बड़ी उदारतासे अपने भावका प्रवाह सर्व ओर बहाती हैं। वे परिपूर्ण त्यागमयी हैं। उनमें स्वसुख-कामना है ही नहीं। केवल एवं केवल श्रीकृष्ण-सुख-कामना है। फिर कोई प्रश्न कर सकता है कि कुछ ही क्षणों पूर्व कालिन्दीके द्वारा उनके लहँगेके किनारे भिगोने मात्रसे उनमें प्रणयरोषकी रेखा क्यों अभिव्यक्त होती है, एवं यदा-कदा अन्य प्रसङ्गोंमें भी उनमें मान-भावका कठोर विस्तार होता क्यों दृष्टिगोचर होता है। इसका उत्तर यही है कि श्रीराधा अधिरूढ़ महाभावकी सकल सम्पदासम्पन्न सजीव मूर्त्ति हैं। श्रीकृष्ण मेरे, केवल मेरे हैं, इस मदीय रतिरूप भावकी चरम परिपूर्ण परिणति श्रीराधामें है। श्रीराधा इस भावकी मूल उद्गम हैं। श्रीराधा अपनी वस्तुका महान् उदारतापूर्वक दान तो कर सकती हैं, परन्तु जैसे ही उनमें एक रेखा भी इस भावकी आ जाती है कि श्रीकृष्ण मेरे न होकर किसी अन्यके भी हैं, उनके मदीयात्मक भावमें विक्षेप आता है, और यही उनके मान-भावके उद्भवका हेतु होता

है। मानवती होनेके उपरान्त जब उन्हें अपनी कसौटीमें श्रीकृष्ण पुनः पूर्णतया मेरे ही हैं यह सिद्ध हो जाता है, उनका स्वाधीनभर्तृका भाव पूर्ण प्रणयका उत्ताल उच्छलन लेने लगता है। वे अपने प्रणय भावको उन्मुक्त हस्तसे अपनी कायव्यूहरूपा सखियोंमें लुटाती हैं। वे अपने प्रियतमको केवल अपनी ही वस्तु मानकर उनको अपने ही प्रणयकक्षमें सीमित रखना नहीं चाहतीं। उनके विशुद्ध प्रेममें उदारताकी न्यूनता सर्वथा नहीं है। इसीलिये रासमण्डलमें असंख्य गोपाङ्गनाओंका समावेश है। प्रत्येक दो-दो गोपाङ्गनाओंके मध्य अगणित रूपोंमें प्रकट होकर श्रीराधाके प्रियतम गोपियोंके विशुद्ध प्रेमका रसास्वादन कर रहे हैं-करा रहे हैं। श्रीराधारानीकी उदारताका यह विलक्षण आश्चर्यपूर्ण मनोहर फल है।

श्रीराधा प्रेमकल्पलताके रूपमें झूल रही हैं और सभी सखियाँ उस लताकी पल्लवपुष्पस्वरूपा हुई झुला रही हैं। अब श्रीराधाके मनमें स्वाभाविक ही सङ्कल्प होता है कि इन सखियोंको भी अपना रस देकर वे प्रफुल्ल एवं सुपुष्ट करें। वे अपने नेत्रोंके, भौंहके इशारेसे प्रियतमको सङ्केत कर देती हैं कि जिस प्रकार प्रियतम उनके दक्षिणकी ओर बैठे उन्हें सुखदान कर रहे हैं, उसी प्रकार वे एक-एककर उनकी सखियोंको भी अपने दक्षिणकी ओर बैठाकर सुखदान करें। और इस सङ्केतके साथ ही ब्रजेन्द्रनन्दनके द्वारा सखियोंके सुखदानकी मधुर एवं उदार लीला आरंभ हो जाती है।

राधादृगिंगितनयाल्ललितामघारि
राकृष्य दक्षिणभुजं विनिधाय तस्याः।
कण्ठे परं भुजमसौ दयितांसदेशे
मध्ये तयोः स बिबभौ तड़ितोरिवाब्दः।।
कौन्द्यब्रवीत् पश्यताल्यो : ज्योतिश्चक्रे चले पुरः।
राधानुराधयोर्मध्ये पूर्णोऽयं मुदितो विभुः।।

अपनी प्रिया राधाका संकेत पाकर रसिकशिरोमणि प्रियतम श्यामसुन्दर पहले श्रीमती ललिताको अपनी दाहिनी ओर बैठाते हैं और अपनी दक्षिण भुजा उसके कंधेपर रखकर श्रीराधाकी भाँति ही उसे सुख देने लगते हैं। यह देखकर सखी कुन्दलता मृदु मुसकानके साथ कहती हैं – " देखो! देखो! सखियों, आज यह कलङ्कहीन पूर्णचन्द्र अपनी प्रियतमा राधा और अनुराधाको अपने वाम और दक्षिण ओर लिये ज्योतिर्मण्डलके साथ आकाशसे पृथ्वीपर उतरकर शोभा-विस्तार करता हुआ झूला झूल रहा है। ।।७३०।।

मानो आती थी करने वह संकेत कालगति का, प्रियतम!
शाखा पर एक उसी तरु की चढ़ती बंदरी, अहो! प्रियतम!
बाला का ध्यान उधर बँटता, दृग चिन्ताकुल होते, प्रियतम!
साँवर भी स्वयं उतर, नीचे उसको उतार लेते, प्रियतम।।७३१।।

ठीक इसी समय उस झूला बने हुए तरुपर एक बन्दरिया चढ़ जाती-अहो! मानो वह कालकी गतिका संकेत करने ही आयी हो। राधाकिशोरीका ध्यान उधर बँट जाता और आँखें चिन्ताकुल हो जातीं। साँवर भी स्वयं झूलेसे नीचे उतर आते और राधाकिशोरीको उसपरसे नीचे उतार देते।।।७३१।।

दोनों की आँखें भर आतीं, मस्तक झुक जाता था, प्रियतम!
कंधे पर एक दूसरे के, कुछ बोल न वे पाते, प्रियतम!
आता प्रस्वेद गात से था इतना कि वस्त्र उनके, प्रियतम!
उससे धुल जाते, यों लेते वे बिदा परस्पर थे, प्रियतम।।७३२।।

उस समय दोनोंकी आँखें भर आर्ती पर मस्तक झुक जाता था। परस्पर एक दूसरेका सिर एक दूसरेपर टिक जाता। उस समय वे कुछ भी बोल नहीं पाते। गात्रोंसे इतना अधिक प्रस्वेद निसृत होता कि दोनोंके ही वस्त्र उससे पर्याप्त गीले हो जाते, धुल-से जाते थे। इस प्रकार वे परस्पर मध्याह तकके लिये मानों विदा लेते।।।७३२।।

कक्खटी मर्कटी

जय हो प्रभुकी लीलामहाशक्ति महायोगमायाकी। वे सत्यकी सत्य सबकी अनादि परिपूर्णतम परात्पर आत्मा हैं। सोपाधिक - निरुपाधिक सभी उनका स्वरूप है। निरन्तर रमणशील रहना उनका स्वभाव है। वे महायोगमाया ही आस्वाद्य, आस्वादक एवं आस्वादनके रूपमें ब्रजमें प्रिया-प्रियतम राधा-माधव हुईं अपनी विलक्षण प्रेमलीलाका प्रकाश कर रही हैं। मैं भी उन्हीं भगवती योगमायाकी यंत्र बनीं इस ब्रजलीलाकी एक घटक हूँ और उनके संकेतानुसार उनके लीलाक्रमकी पात्र बनी कार्य कर रही हूँ।

गोकुल एवं बृषभानुपुरमें एक पक्षके अन्तरालमें ही जब नन्दगेहिनी यशोदा एवं भानुमहिषी कीर्त्तिदाकी पावन कोखोंसे सच्चिदानन्दकन्द भगवान् श्रीहरि एवं उनकी ही ह्लादिनी शक्ति श्रीराधाका प्राकट्य हुआ तो उनके कायव्यूहरूपमें हम उनके नित्य लीलापरिकर भी ब्रज वृन्दाकाननमें भिन्न-भिन्न कालमें आगे-पीछे भिन्न-भिन्न भूखण्डोंमें प्रकट होगये थे।

मेरा जन्म भी पावन पुण्यस्थली बृषभानुपुरीमें ही भानुकुमारीके जन्मके चार-पाँच वर्षके पश्चात् भानुभवनके पिछवाड़ेके उपवनमें एक अश्वत्थ वृक्षमें हुआ था। उस दिन देवशयनी एकादशी थी एवं भानुपुरकी कुलदेवीके मन्दिरमें महाराज भानुनरेश विशेष पूजन कर रहे थे। कुमुद, कल्हार, कुन्द एवं मन्दार पुष्पोंके परागसे सुरभित बयार महाराजके महादेवी मन्दिरमें बँधे हुए बन्दनवारोंको नचा-नचाकर स्वयं भी नृत्य कर रही थी। जैसे ही मैंने बाल-वानरीके देहमें अपने आपको पाया, घण्टानाद, शङ्ख तथा मृदङ्गध्वनिका मङ्गलघोष सुनकर मैं अपनी माताके उदरसे चिपक गयी थी। भानुप्रासादका महादेवी मन्दिर जगन्माताके यशगान, स्तुतिघोष एवं नाम-सङ्कीर्त्तनसे मुखरित हो रहा था।

हम वानर जातिके शिशु तो जन्मते ही उछलकूद करने लगते हैं, अतः मेरी माता भी प्रसवके कुछ ही काल पश्चात् मुझे अपनी जिह्वासे चाट-चाटकर स्वच्छ करके मन्दिर-प्रासादके कंगूरोंमें ले आयी थी। अपनी माताकी गोदमें चिपके-चिपके ही सर्वप्रथम मुझे जगन्माताकी स्वर्णिम ज्योतिमान् प्रतिमाके दर्शन हुए थे। उस प्रथम दर्शनमें ही मुझे यह अनुभव हो गया था कि मैं मात्र इनकी ही चरणनखचन्द्रिकाकी चिज्ज्योति हूँ। जैसे भानुपुरके रत्नमय मन्दिरमें माँकी सच्चिन्मयी सत्ता झलमल करती विराजित है, ठीक इसी प्रकार मेरे हृदयमन्दिरमें भी वे ही माँ अपनी चिन्मयी आभा लिये सुविराजित हैं। ओह! उसी समय मैंने भानुयुवराज श्रीदाम भैयाके एवं उनकी दोनों अनुजा भगिनियों - राधा एवं मञ्जुश्यामाके दर्शन किये थे। श्रीदाम भैयाके साथ वहाँ प्रस्फुटित नीलपद्मके समान परम मनोहर ब्रजेन्द्रनन्दन भी उपस्थित थे जो अपने माता-पिताके साथ उत्सवमें अतिथि रूपमें आये थे। इन दोनों सखाओं - श्रीदाम दादा एवं ब्रजेन्द्रनन्दनके त्रिभुवनमोहन सौन्दर्य, उनकी मधुरातिमधुर बाल-चपल भंगिमा, परमानन्दमें निमग्न क्रीड़ापरायणता देखकर तो मैं ठगी ही रह गयी थी।

इन सबके दर्शन मात्रसे मुझे विलक्षण आत्मबोध हो गया। उसी समय जैसे मेरा वानर देह छिटककर मुझसे पृथक् हो गया और मुझे ठीक-ठीक ज्ञान हो गया कि मुझमें, मेरी माता वानरीमें, वृक्षोंमें, गोपोंमें, गोपियोंमें, आकाश-भूमि-अन्तरिक्ष सभी जड़ पदार्थोंमें मात्र एक अनादि पुरुष ही विद्यमान् है। वह अनादि पुरुष सभी उत्तम-अधम देहोंके मात्र वस्त्र पहने है। वह अनादि पुरुष ही नन्दगोपतनय है, किन्तु उसका अनादि लीलामय स्वभाव ही है कि वह

अपनेको अनेक रूपोंमें प्रस्तुतकर अपनी ही आराधनाके लिये तत्पर है। इसीलिये सम्पूर्ण ब्रजक्षेत्र – गोकुल-वृन्दावन, बृषभानुपुर सर्वत्र जो भी सृष्टि है, वह रसिकानन्दरूपा है, इन्हीं नन्दतनूज रसराजकी आनन्दमूर्त्ति है। यह समग्र सृष्टि ही श्रीराधाकी कायव्यूहरूपा सृष्टि है और स्वयं निर्वाण (आनन्द) नहीं चाहकर सबको निर्वाणरूप प्रेमानन्दका दान करती है। इस सभी सृष्टिके साथ-साथ मेरा भी इन अनादि सर्वेश्वर महापुरुष श्रीकृष्णके प्राणोंसे ही आविर्भाव हुआ है। यह सृष्टि श्रीकृष्णको प्राणोंसे भी अधिक प्यारी है और इस सृष्टिको श्रीकृष्णचन्द्र प्राणोंसे ज्यादा प्यारे हैं।

.आविर्बभूव प्राणेभ्यः प्राणेभ्योऽपि गरीयसी।। (वृ.वैवर्त पु. ब्र.सं.)

इन सबके प्रथम दर्शनसे ही यह ज्ञान मेरे चित्तमें इस भाँति उदय होकर उद्दाम वेगपूर्वक लहराने लगा कि मेरी बाह्य वृत्ति ही लुप्त होने लगी। उत्सवमें लक्षकोटि गोपाङ्गनाएँ सम्मिलित थीं।

किन्तु मुझे ये सभी गोपाङ्गनाएँ श्रीराधाके लोमकूपके रूपमें ही अभिव्यक्त दृष्टिगोचर हो रही थीं। मुझे यही अनुभव हो रहा था - सृष्टि, सृजन एवं फिर संहार - इस प्रवाहसे उस पार ये नन्दनन्दन एवं ये बृषभानुराजनन्दिनी नित्य ही दो रूपोंमें रहते हैं एवं इनका सपरिकर लीलाविहार अनादिकालसे अनन्त कालतक चलता ही रहेगा। प्रलय एवं विनाशकी छाया इसे छू नहीं सकती, सृजनका कम्पन इसे उद्वेलित कर ही नहीं सकता।

बस, मेरा अहोभाग्य! इस प्रथम दर्शनसे ही मेरा चित्त प्राकृत मनको त्यागकर प्रेमविभावित हो उठा। मेरे अनन्त जन्मार्जित पुण्यों एवं मेरी साधनाका जैसे फलोदय हो उठा हो - मेरे वानर चञ्चल मनमें यह इच्छा उत्पन्न हो गयी कि प्रियतम श्रीकृष्णको मुझसे सुख मिले। मैं इसे यथार्थ रूपमें समझ रही थी कि मेरी यह अदम्य इच्छा मेरे प्राकृत बानर मनकी वृत्ति कदापि नहीं है। यह वृत्ति तो उपासनासे निर्मल हुए मनमें उस काल उत्थित होती है जब मनमें श्रीकृष्णकी विशुद्ध सत्वप्रधान ह्लादिनी स्वरूपाशक्तिका आविर्भाव होता है और मन स्वरूपाशक्तिसे मिलकर तद्रूप हो जाता है। उस कालमें प्रज्वलित अग्निमें पड़े लोहपिण्डकी भाँति विशुद्ध सत्व मनके अणु-अणुमें एकात्म हो जाता है। यह इच्छा ही प्रेम है एवं यही प्राणीका पञ्चम परम पुरुषार्थ है।

इस प्रेमवृत्तिके जागृत् होते ही मेरी दृष्टि ही बदल गयी। मुझे यमुनाकी जलधारा ही अनुपम शोभा धारणकर कुछ दूसरी ही दिखने लगी। समग्र ब्रजक्षेत्र कृष्ण, श्वेत, हरित एवं रक्तवर्णके विविध दिव्यातिदिव्य रत्नसमूहोंसे परिशोभित हो उठा। कहीं पद्मराग तो कहीं दिव्य इन्द्रनीलमणि, कहीं दिव्य मरकत तो कहीं दिव्य स्यमन्तकमणि, कहीं दिव्य रुचक तो कहीं दिव्य कौस्तुभमणि - यह ब्रजप्रदेश मुक्ता-माणिक्य-स्पर्शमणिखचित हो उठा। मैं यमुनातटपर जाती तो उसे शुद्ध स्फटिकाभ सुविस्तीर्ण परम मनोहर पाकर उसके दर्शन मात्रसे आत्मविभोर हो उठती। अब तो मैंने सर्वत्र वनोंमें भ्रमण प्रारंभ कर दिया। एक दिवस मैं शतशृङ्गसमन्वित गिरिराज गोवर्धनके परिसरमें आ पहुँची। मैंने नवपल्लवोंसे परिशोभित चन्दन, मन्दार, चम्पक; आदि पुष्पोंके परागसे सुवासित सुमधुर भ्रमररवसे गुंजित वहाँ असंख्य कुञ्जोंके दर्शन किये। ओह! दिव्य फल-समन्वित आम्र, नारङ्ग, पनस, नारिकेल, ताल, जम्बू, बदरी, खर्जूर, आम्रांतक, कदली, श्रीफल एवं दाड़िम वृक्षोंकी पंक्तियाँ देख-देखकर मैं तो सौन्दर्यसिन्धुमें ही लहराने लगी। मैंने वृन्दावनके दर्शन किये। नव पल्लवोंसे परिशोभित वृन्दावन मेरी कल्पनाओंसे अतीत सौन्दर्य-समन्वित था। वहाँ प्रियाल, साल, तमाल, अश्वत्थ, निम्ब, शाल्मलि, तिंतिड़ आदि विशाल सघन् वृक्षोंकी शंतम शीतल छायामें मैं झूमने लगी। मल्लिका, मालती, कुन्द, केतकी, माधवी एवं यूथिकादि लताजालोंसे आच्छादित तमाल एवं कदम्ब श्रेणियोंकी सुवाससे तो मैं आनन्दके अतल तलमें डूब गयी। इस वृन्दावनको चतुर्दिक् अपने आलिङ्गनमें बाँधे दिव्यातिदिव्य कुञ्जकुटीरों, सच्चिदानन्दमय मणिमन्दिरोंकी अतुलनीय छविको अपने निर्मलतम जलसे सिञ्चित-आप्लावित करती यमुनाकी कलकल ध्वनि सुनती मैं अपनी सौभाग्य-सीमाको सराहने लगी।

यहीं मुझे **बहुमूर्त्येकमूर्त्तिकम्** ब्रह्मका साक्षात्कार एवं पूर्ण तत्वबोध हुआ। **'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते '** इस श्रुतिकी अवश्य ही मैंने अपने पूर्व जन्मोंमें उपासनाकी होगी, तभी आज मुझे परात्पर परब्रह्मकी विविध, विचित्र, अनन्त असमोर्ध्व आनन्दमयी शक्तियोंका प्रत्यक्ष साक्षात्कार हो रहा था। आनन्दमें, सौन्दर्यमें, माधुर्यमें, शोभामें सर्वापेक्षा बृहत्, विभु वृन्दावन सच्चिदानन्दधामकी मैं जय-जयकार कर उठी। जय हो प्रभो! जय हो! तभीसे मैं इस महान् शोभासम्पन्न वनमें ही रहने लगी। इस वृन्दाकाननके अन्तर्गत अनेक अन्य सुषमासम्पन्न कानन भी थे। मैं भी कभी केतकीवन, कभी महावन, कभी शृङ्गारवन, कभी लोहवन, कभी तालवन, कभी काम्यवन, कभी खेलनवन, कभी मधुवन - अनेक वनोंमें उनकी शोभा निहारती, उनके सुमिष्ट फल खाती विचरण करती।

ब्रजमें रस-प्रवाहका एक नया द्वार ही खुल गया था। मेरे जीवनका तो रूप ही बदल गया है। मुझे अधिकांश काल देहस्मृति नहीं रहती है। मैं तो छायाकी तरह ही बृषभानुनन्दिनीके पीछे-पीछे लगी रहती हूँ। वे भूमिपर चरण रखती हैं और मैं वृक्षोंपरसे उन्हें निहारती रहती हूँ। नेत्रोंकी पुतलीकी तरह वे आठों याम मेरे दृश्यपटलसे कभी ओझल नहीं होतीं।

ओह! कैशोर्यने भी भानुकुमारीपर कैसा अपूर्व चमत्कारी प्रभाव दिखाया है। उनके श्रीअङ्गोंके दिव्य सौन्दर्यसे सारा बृन्दाकानन ही नित्य आलोकित रहता है। वे प्रतिदिवस ही सूर्यपूजनार्थ रविमन्दिर जाती हैं। पुष्पचयन करें अथवा किसी सरोवरमें स्थान करें, उनकी अङ्ग-सुवाससे समग्र वनक्षेत्र महकता रहता है। उनके मुखकी उज्ज्वल स्मितिसे वे सारे पथ उद्भासित हो उठते हैं, जिधरसे किशोरी अपनी नूपुरध्वनि निनादित करती यात्रा करती हैं। यदि किसीको अनुसंधान लेना हो कि भानुकिशोरी इस समय किंस वनमें हैं तो उनके श्रीअङ्गोंकी दिव्य सुवासपर मतवाला बना अलिदल ही सङ्केत कर देता है कि आओ! मेरे पीछे चली आओ, चले आओ।

यही दशा ब्रजेन्द्रनन्दनकी है। कोटि-कोटि नीलमयंकोंकी द्युति उनके मुखमण्डलपर झलमल करने लगी है। ब्रजयुवतियाँ तो उनपर ऐसी मुग्ध हैं कि उनके चतुर्दिक् भ्रमरियोंकी तरह मँडराती रहती हैं। नन्दनन्दन गोचारणको नन्दभवनसे वनमें जावें, अथवा वनसे पुनः वापस गोष्ठमें आवें, अगणित यूथोंमें ब्रजाङ्गनाएँ उनके पथमें नयन बिछाये रहती हैं। चाहे नन्दनन्दन यमुनाके कितने ही दूरवर्त्ती तटपर अपने सखाओंके साथ क्रीड़ारत हों, गोपाङ्गनाएँ उसी तटपर जल भरने जाती हैं। वे अपने अङ्गोंपर काञ्ची, कङ्कण, हार, अङ्गद, मञ्जीर, नूपुर आदि झङ्कार करने वाले आभूषण पहनती हैं एवं बरबस किसी न किसी प्रकार ब्रजेन्द्रनन्दनकी दृष्टि उनकी ओर केन्द्रित हो उठे - ऐसी चेष्टा करती हैं। वे कभी गगरी ऊँची कराने, कभी पैर फिसलनेके बहाने, कभी घाटपर, चढ़ न पाने - किसी न किसी मिससे ब्रजेन्द्रनन्दनको अपने निकट बुलाती हैं, एवं उनसे आँखें चार किये बिना नहीं रह पातीं। नन्दनन्दन भी चपल भौहें चलाकर, नयनोंसे कटाक्षकर, चञ्चल कर्णकुण्डल अपने कपोलोंपर दमकाकर उनका चित्त इस प्रकार अपहरण कर लेते हैं कि वे प्रमोन्मादिनी हो उठती हैं।

ओह! नन्दनन्दनकी वंशीध्वनिका तो कहना ही क्या? विश्वमें ऐसी स्वर-मधुरता बहानेकी शक्ति न तो किसी पक्षीकण्ठने कभी पायी है, न ही किसी तन्तुवाद्यने। तुम्बुरु गन्धर्वका तानपूरा, ब्रह्माणीकी वीणा, रुद्रका प्रलयवाद्य डमरू, अप्सराओंका सुमधुरतम कोकिलकण्ठ – सभी तो हतप्रभ हो उठते हैं जब ब्रजेन्द्रनन्दन अपने अधरोंपर इस बाँसकी बाँसुरीको रखते हैं।

ओह! उस सन्ध्यासमयकी घटना मुझे याद है। भानुनन्दिनी अपनी सखि ललिताके साथ उद्यानमें बैठी थीं। भानुकिशोरीका आसन कदम्ब वृक्षके नीचे निर्मित मण्डपमें था और मैं उनके सम्मुख ही स्थित तमालकी एक शाखापर आसीन उनकी मुखशोभा निरखकर निहाल हो रही थी।

इसी समय कदम्बकुञ्जोंमें ब्रजेन्द्रनन्दनकी वंशी बज उठी थी। ओह! वह अमृतनिर्झर! वह सुधाप्रवाह! कहाँसे? किस ओरसे? भानुकिशोरीका तो समग्र शरीर ही थर-थर काँपने लगा था। कुछ ही कालमें किशोरी बाह्यज्ञानशून्य हो गयी थी। तबसे ही इधर कालिन्दीतटपर कदम्बकी शीतल छायामें त्रिभङ्गसुन्दर नन्दनन्दन अवस्थित होते, उधर किशोरीके चरण रविमन्दिरके पथसे भटक जाते और अनियंत्रित-सी किशोरी ब्रजेन्द्रनन्दनके समीप पहुँच जाती। भानुनन्दिनीके अन्तःप्रेमसुखकी अचिन्त्य धाराकी अनुभूति अन्य किसीको भी भला कैसे होती? जिसके हृदयमें श्रीकृष्णचन्द्र प्रियतमरूपमें अपना दिव्य प्रेम जाग्रत् करते हैं, मात्र उसीको तो प्रेमके इस प्रबल दुर्ल्लंघ्य पराक्रमका अनुभव हो पाता है।

जैसे सरिता मिली सिन्धुमें उलटि प्रवाह न आवै हो।
तैसे सूर कमलमुख निरखत चित इत-उत न डुलावै हो।।

ब्रजमें इतस्ततः सर्वत्र भानुकिशोरी एवं ब्रजेन्द्रनन्दनके मिलनकी चर्चा फैलने लगी। इन दिनों किशोरीरानी ब्रजललनाओंमें श्रीकृष्ण-प्रीतिकी आदर्श थीं। अनेक किशोरियाँ तो श्रीराधा-माधव-मिलनकी चर्चा करती-करती ही आनन्दमें निमग्न हो उठतीं।

किशोरीकी दशा यह थी कि वे बिना किसी लज्जा एवं कपटके अपना भाव सभी सहचरियोंके सम्मुख प्रकट कर देतीं। उन्हें अपने प्रियतमका भाव-विरह भी असह्य था। वे क्षणभर भी अपनेको अपने प्रियतमसे असंयुक्त नहीं देख सकती थीं। चाहे वे श्रीकृष्णालिङ्गनपाशमें बँधी हुई ही हों, वे भावावेशवश अपने प्रियतमकी उपस्थिति ही विस्मृत कर जातीं - समझने लगतीं कि प्रियतम उन्हें छोड़कर चले गये हैं। वे विरहक्रन्दन करती हुईं ललितासे लिपटकर पूछने लगतीं -

क्व नन्दकुलचन्द्रमा क्व सखि चन्द्रिकालंकृतिः।
क्व मंत्रमुरलीरवः क्व नु सुरेन्द्रनीलद्युतिः।।
क्व रासरसताण्डवी क्व सखि जीवरक्षौषधिः।
निधिर्मम सुहृत्तमः क्व बत हन्त हा धिग्विधिम्।।

"हाय! नन्दकुलचन्द्रमा कहाँ चले गये? कहाँ हैं मेरे मयूरपिच्छधारी? सखि! मेरे सम्मुख मोहनमंत्रमयी मुरलीध्वनि करनेवाले कहाँ हैं? बहिन! जिनके अङ्गोंकी कान्ति इन्द्रनीलमणिमयी है, वे मेरे हृदयेश्वर कहाँ हैं? ओह! हाय रे! हाय! मेरी प्यारी निधि कहाँ चली गयी? मेरे जीवनकी रक्षा-औषधि, रास-नृत्यमें ताण्डवकी तरह रसमत्त होनेवाले मेरे जीवनधन कहाँ हैं? हाय! मेरे भाग्यको धिक्कार है!"

इस प्रकार मैं अपनी प्राणसखीकी विरह एवं मिलन दोनों ही दशाओंकी साक्षी रहती।

मेरा तो यही कार्य रहता - जब सखियाँ प्रिया-प्रियतमके मिलनके लिये पुष्पशय्या रचना करने चलतीं तो मैं वृक्षोंपर ऊँची-ऊँची डालियोंको आच्छादित करनेवाली लता-वल्लरियोंको हिला-हिलाकर पुष्पवर्षाकी झड़ी लगा देती। कभी प्रिया-प्रियतम झूला झूलनेका मनोरथ करते तो मैं लताओंको गूँथकर पुष्पित झूलेकी डोर बना देती। प्रिया-प्रियतमके लिये सुमधुरतम फलोंके अम्बार लगा देती। किशोरी अपने प्रियतमकी स्मृतिमें बाह्य जगत्को भूल ही गयी थीं, और किशोरीकी अनुसंगिनी बनी मैं भी अपने आपको भूले रहती। प्रभात आता, दिन हँसता, सन्ध्या आँचल फैलाती, निशा साँस लेती, ऊषा अरुण राग बिखेरती और फिर प्रभात हो जाता। न मैं जानती कि कब क्या हुआ और न ही किशोरी। मध्याह्न एवं निशामें तो किशोरीका अपने प्रियतम ब्रजेन्द्रनन्दनसे निर्बाध साक्षात् मिलन होता ही, मध्याह्नमें भी वे रविपूजनके मिस उनसे वनमें मिल ही लेतीं। प्रतिदिवस ही वे नन्दभवनमें मैया यशोदाके निमंत्रणपर पाक-रचनार्थ जातीं और ब्रजेन्द्रनन्दनको गोचारणके लिये वनमें भेजकर ही वहाँसे लौटतीं। श्रीकृष्णस्फूर्तिका उनमें आनन्दसागर ही

लहराता रहता। वे चाहे ससुरालमें हों, चाहे पीहरमें - कहीं भी क्यों न हों, भानुकिशोरी तो अपनी भावभूमिमें सुदूर उपवनके किसी कदम्बकुञ्जमें अपने नीलमयङ्क प्रियतमके मुखारविन्दसे झरते हुए मधुका पान किये मतवाली ही रहतीं।

ब्रजमें विशेषकर दो स्त्रियाँ ऐसी थीं जिन्हें भानुकिशोरीका नन्दनन्दनके प्रति प्रेम शूलकी तरह व्यथा दे रहा था। उनमें से एक तो तरुणी थी जिसका नाम कुटिला था एवं दूसरी वृद्धा थी जिसका नाम जटिला था। दोनों ही जीवनके अनेकों उलटफेर देख चुकी थीं। दोनों ही अपनेको अनुसूया एवं सावित्रीसे भी ऊँचा चरित्रवान् मानती थीं। अपने सतीत्वके गर्वमें उन्हें भानुकिशोरीकी तो प्रत्येक चेष्टा ही दोषपूर्ण दिखाई देतीं। वे किशोरीकी प्रत्येक चेष्टाको अपने मापदण्डपर परखतीं और उनके सतीत्वके मापदण्डपर किशोरीका उन्मुक्त श्रीकृष्ण-मिलन उन्हें चरित्रहीनता ही लगता था। मैं उन दोनोंको यथाशक्ति किशोरीके आसपास ही नहीं फटकने देती। जैसे ही मैं इनको किशोरीके आसपास आती हुई पाती, मैं अपना रौद्ररूप प्रकट कर देती और भयभीत हुईं वे उस वनसे अथवा उस स्थानसे भाग जातीं। मैं दूर-दूरतक इनकी टोह रखती और ये अथवा इनकी कोई सन्देशवाहिका भी मुझे कहीं आसपास दिख जाती तब या तो मैं वहाँ उपद्रवकर किशोरीको उस स्थानसे किसी निरापद स्थानपर जानेको बाध्य कर देती अथवा इन टोह रखनेवालियोंको इतना भयभीत कर देती कि फिर कभी किशोरीकी ओर झाँकनेका भी साहस नहीं करें। इन दोनों गोपाङ्गनाओं – जटिला, कुटिलाकी बुद्धि ही लीला-सूत्रधारिणी योगमायाने ऐसी बनाई थी, अन्यथा तो भोली किशोरीकी अपने प्राणनाथके प्रति हृदयको मथनेवाली प्रीति ऐसी निर्मल थी कि उसके आसपासकी लता-वल्लरियाँ एवं पशु-पक्षीतक उस निर्मल प्रीति-प्रवाहमें प्रवाहित हो उठते थे। चाहे कोई भी हेतु हो, यह अवश्य हो रहा था कि ये दोनों स्त्रियाँ जहाँ भी पैर रखतीं, – चाहे वनमें, अथवा ग्रामवीथियोंमें, घरोंमें अथवा यमुनाघाटोंपर – इनकी चर्चाका विषय यही होता कि " हाय रे! बडे महर एवं कुलकी बेटी भानुनन्दिनीने निर्मल बृषभानुकुलमें कलङ्क लगा दिया, सती कीर्त्तिदाकी कोख लजा दी। उसे ऐसा कदापि नहीं करना चाहिये था।" यह चर्चा यहाँतक बढ़ गयी कि किसीकी कुलवधूको घर लौटनेमें तनिक भी विलम्ब हो जाता कि उसे भानुकिशोरीका उदाहरण देकर ताना दिया जाता।

कब की गई न्हान तुम यमुना, यह कहि-कहि रिस पावै ।
राधाकौ तुम संग करति हौ, ब्रज उपहास उड़ावै ।।
वा है बड़े महर की बेटी, तौ ऐसी कहवावै ।
सुनहु 'सूर' यह उनहीं भावै, ऐसी कहति डरावै ।।

इधर तो यह सब हो रहा है एवं इधर मैं देख रही थी कि भानुनन्दिनीके मनमें जगच्चर्चाका तिलमात्र भी प्रभाव नहीं है। उसका उपहास, उसकी लोकनिन्दा उसके प्रेमप्रवाहको रोक दे – यह तो संभव ही नहीं था। सम्पूर्ण ब्रज देखता रहता, इतना उपहास होनेपर भी प्रेमोन्मादिनी भानुनन्दिनी निःशङ्क यमुनाघाटपर अपने प्राणवल्लभके संकेतपर आती, उनकी रूप-सुधानिधि छककर पान करती। कदम्बकी शीतल छायामें ब्रजेन्द्रनन्दन अवस्थित रहते, किशोरी एवं किशोर दोनोंके नेत्र बरबस चार होते और फिर दोनों ही निमेषशून्य बाह्यज्ञानरहित जड़िमा अवस्थामें स्थित हो जाते। कभी नन्दनन्दनकी बाँसुरी बजती और सिरपर मटुकी रखे ही किशोरीके चरण थिरकने लगते। मटुकीका पानी छलक-छलककर किशोरीके सभी वस्त्रोंको आर्द्र कर देता। बाह्यज्ञानशून्य प्रेमोन्मादिनी किशोरीको किसी प्रकार उसकी सखियाँ गृहमें लाकर शयन करातीं। उस अवस्थामें यदि कोई प्रेमनिन्दक उसे स्पर्श भी कर लेता, तो वह भी प्रेमोन्मत्त हो उठता। आश्चर्य है, फिर भी लोग किशोरीके दिव्य प्रेम-पराक्रमको नहीं पहचान पाते।

लोकनिन्दकोंकी आलोचना सीमोल्लंघन कर रही थी किन्तु किशोरीसे कोई कुछ प्रश्न करता तो अधिकांशतः वह मौन ही रहती। लोग भाँति-भाँतिके उलटे-सीधे प्रश्न करते किन्तु वह सबके सम्मुख नीचा मुख किये रो देती। किशोरीको यह समझ ही नहीं आता कि ब्रजेन्द्रनन्दनको विशुद्ध स्नेहानुराग करनेमें उसने कोई पाप किया है। वे सब

ब्रजके गुरुजन उसके परम निर्दोष आचरणपर भी क्यों आपत्ति कर रहे हैं और इनकी आपत्तिका हेतु क्या है? किसी मयूरीको जलधरके गर्जन कर उठनेपर नृत्य करनेसे ये धर्मध्वजी प्रतिबन्धित क्यों नहीं करते? नदियोंका वारिधिसे सम्मिलन इन धर्मध्वजियों द्वारा रोका क्यों नहीं जाता? श्रीकृष्णाधर वेणुवादन करते हुए माधुर्यका निर्झर बहाते हैं जिससे गिरि पिघल जाते हैं, नदियाँ स्थिर हो जाती हैं। फिर उस महाद्भुत रसानन्दसिन्धुके उच्छलनपर किशोरीके पैर थिरक उठते हैं, उसके नूपुर झङ्कार कर उठते है, इसमें सबको क्यों आपत्ति है? ये उसे रोकते हैं किन्तु गौओं एवं गोशावकोंको, हरिणों एवं मूक वनचरोंको नन्दनन्दनके पास उसकी ही तरह निर्निमेष निहारनेसे प्रतिबन्धित क्यों नहीं करते? भानुकिशोरीका संसार एवं उसका सोच ही दूसरा था।

लाड़िलीका सरल क्रन्दन सुनकर लीलाधिष्ठात्री योगमाया द्रवित हो उठीं। बस, दूसरे ही दिवस रङ्गमञ्चका पट-परिवर्त्तन हो गया।

गोशालाके उज्ज्वल मणिप्राङ्गणमें क्रीड़ा करते अचानक ही श्रीकृष्ण ऐसे रुग्ण एवं मूच्छित हुए कि समग्र ब्रज ही चिन्ताग्रस्त हो उठा। चौरासी कोसके ब्रज जनपदमें सर्वत्र वैद्योंकी खोज की गयी, मुँहमाँगा पुरस्कार देनेकी भी घोषणा की गयी। यद्यपि अनेक वैद्य आये, पर सफलता किसीके भी हाथ नहीं लगी। समग्र ब्रजक्षेत्र चिन्तामें डूब गया। तरुण ब्रजेन्द्रनन्दनकी मूर्च्छा टूट ही नहीं पायी।

अन्ततः एक तरुण वैद्य आया। उसका तेजस्वी व्यक्तित्व देखकर सभीके आकुल प्राणोंमें आशाकी किरणें चमक उठीं। वैद्यके चरणोंमें नीलमणिको डालकर यशोदारानी बिलख-बिलखकर रोने लगीं।

तरुण वैद्यने ब्रजेन्द्रनन्दनकी नाड़ी छूकर कहा – " ब्रजेश्वरि! कोई चिन्ताकी बात नहीं है। मैं तुम्हारे पुत्रको अभी स्वस्थ कर देता हूँ। बस, एक कलसी पात्र मँगा लो। और उस पात्रमें किसी सती स्त्रीसे मैं कहूँ जिस विधिसे जल मँगानेकी व्यवस्था कर दो।"

यशोदारानीने तत्क्षण ही एक कलशी उस वैद्यको दी। वैद्यने उस कलशीमें स्वर्णधातुकी कीलसे एक सहस्र छिद्र कर दिये। फिर वैद्यने नन्दनन्दनके मस्तकसे बालोंका एक गुच्छा काट लिया और एक एक केशको जोड़ने लगे। इस प्रकार एक क्षणमें ही वैद्यने यमुना पारतक पहुँचने लायक दीर्घ केशतन्तु निर्माण कर लिया। उसे लेकर प्रबल वेगसे बहती हुई कालिन्दीके तटपर वे गये। नौकासे उस पार जाकर एक तमाल वृक्षके मूलमें उन्होंने केशतन्तुका एक छोर बाँधा। पुनः इस पार आकर दूसरे छोरको ठीक उसके सामनेके दूसरे तमालसे सन्नद्ध कर लिया। वह क्षीण तन्तु कलिन्दतनयाकी लहरोंसे एक हाथ ऊपर नाचने लगा।

अब वैद्यराज नन्दगेहिनीसे बोले – " ब्रजेश्वरी! विधान यह है कि कोई सती स्त्री श्रीकृष्णचन्द्रके केशोंसे निर्मित इस तन्तुपर पैर रखकर कलिन्दकन्याके इस पारसे उस पार मात्र तीन बार आवे-जावे; फिर इस छिद्रपूर्ण कलशीमें जल भरकर यहाँसे ठीक उस स्थानपर जावे जहाँ तुम्हारे श्रीकृष्णचन्द्र मूर्च्छित होकर गिरे हैं। फिर इस जलसे तत्क्षण ही मैं तुम्हारे नीलमणिको चैतन्य कर दूँगा।"

यशोदारानी एक बार तो इस असंभव बातको सुनकर रो पड़ती हैं किन्तु तत्क्षण ही वैद्यराज उन्हें यह कहकर ढ़ाढस दिला देते हैं –'ब्रजरानी! ब्रजमें सतियोंकी कमी नहीं है। सतीकी महिमा इतनी अपार है कि वह शून्यमें चल सकती है तथा आकाशमें जल स्थिर कर सकती है। मैं जानता हूँ – तुम भी यह कार्य कर सकती हो, परन्तु जननीके हाथों लाये जलसे पुत्रका उपचार संभव नहीं है।"

तरुण वैद्यकी बात समग्र ब्रजमें हवाकी तरह फैल गयी। यमुनातटपर अपार गोपसुन्दरियोंकी भीड़ इकट्ठी हो गयी। तरुण वैद्यने तटपर खड़ी तरुणी गोपियोंका आह्वान किया। उनमेंसे एक गोपीने रुद्ध कण्ठसे कहा - "वैद्यराज! हमसे क्या आशा रखते हो? हम तो राधाकी संगिनियाँ होनेसे श्याम-कलङ्किनियाँ हैं। सतीत्व हमारे पास भला कहाँसे आवेगा?"

यशोदारानीकी प्रार्थनापर यावट ग्रामकी जगत्प्रसिद्ध वृद्धा सती जटिला एवं तरुणी सती कुटिला बड़ा गर्व जताती अवश्य आयीं। भानुकुमारीकी निन्दा, उपहास एवं भर्त्सना करनेमें एवं अपने सतीत्वका बखान करनेमें ये सदा अग्रगण्य रहती थीं।

सर्वप्रथम युवती कुटिलाने कलशी उठायी। किन्तु केशतन्तुपर पैर रखते ही वह टूट गया और चञ्चल तरंगें तरुणीको यमुनामें डुबाने लगीं। नौकारोहियोंने किसी प्रकार उसको बचाया। लज्जासे उसका मस्तक नीचा हो गया।

वैद्यराजके सम्मुख आकर वह बोली – "वैद्यराज! यदि मैं इस विधानसे जल नहीं ला सकी तो फिर यह निश्चय ही मान लेना कि सती सावित्री एवं शैलेन्द्रनन्दिनी पार्वती भी इस विधानसे जल नहीं ला पावेंगी।" तरुण वैद्यने उस तरुणीकी बात हँसकर टाल दी एवं उत्तरमें इतना ही कहा – "लगता है देवि! तुम्हें सतीकी महिमाका ज्ञान नहीं।"

अब वृद्धाकी बारी आयी। वैद्यराजने पुनः तन्तुसेतुका निर्माण किया। किन्तु जो दशा युवतीकी हुई वही वृद्धाकी भी हुई। ब्रजेश्वरीके मुखपर निराशा छा गयी – "हाय! मेरे नीलमणिका अब क्या होगा?"

ब्रजरानीने तरुण वैद्यके पैर पकड़ लिये – " वैद्यराज! तुम यदि किसी सतीका नाम जानते हो तो बताओ।" उनकी कातर दृष्टिने तरुणी ब्रजाङ्गनाओंके नेत्रोंसे झर-झर अश्रु प्रवाहित करा दिये। सहसा कुछ ज्योतिषीय गणना करके वैद्यने उद्‌घोषित किया – 'नन्दरानी! ज्योतिषके बलपर कहता हूँ, चिन्ताकी बात नहीं। इसी ब्रजमें एक परम सती हैं, उन सतीकी चरणरजसे विश्व पावन होगा। उन्हें बुलाओ – उनका नाम राधा है।'

भानुकिशोरीको तो जगत्का ज्ञान ही नहीं, फिर घटित घटनाओंकी भला उन्हें सूचना ही कौन देता? उनके सामने तो उनके प्रियतमकी ध्यानमूर्त्ति ही प्रत्यक्षवत् खड़ी है और वे अपने झरते नेत्रोंसे प्रेमवर्षा करती हुई उन्हें निहार रही हैं। किशोरीके हृदयके दैन्यभरे प्रेमभावोंको उनका रोम-रोम प्रकट कर रहा है -

'मेरे प्रियतम! मैं तुम्हें क्या कहूँ? मैं तो इतना ही जानती हूँ – जीवनमें, मृत्युमें, जन्म-जन्ममें तुम्हीं मेरे प्राणनाथ थे, हो एवं रहोगे। मैं सबकुछ तुम्हें समर्पितकर एकान्त मनसे तुम्हारी दासी हो चुकी हूँ। तुम्हारे चरण एवं मेरे प्राणोंमें प्रेमकी गाँठ लग गयी है। मेरे प्राणेश्वर! इस त्रिभुवनमें 'राधा' कहकर मुझे प्रेमसे पुकारनेवाला तुम्हारे सिवा अन्य कौन है। सर्वत्र ज्वाला है, मात्र तुम्हारे चरणकमल ही शीतल हैं। अब तो मुझ शरण आयी अबलाको अपने चरणोंमें स्थान दे दो। सोचकर देखती हूँ, मेरे नाथ! तुम यदि दूर फेंक दोगे तो तुम्हारे बिना अब मेरी गति कहाँ होगी? एक निमेषके लिये भी मैं तुम्हें नहीं देख पाती हूँ तो मेरे प्राण छटपटाने लगते हैं। मेरे स्पर्शमणि! तुम ही तो मेरे हृदयके भूषण हो, जिसे मैं दीना धारण किये हूँ। "

जैसे ही सखीने किशोरीको ब्रजरानीका आदेश सुनाया एवं उसे ज्ञान हुआ कि श्रीकृष्णचन्द्र रुग्ण हैं, बस, उसी क्षण विक्षिप्त-सी दौड़ती हुई किशोरी नन्दभवनकी गोशालामें आ पहुँची। तरुण वैद्य आसनसे उठे, उन्होंने भानुकिशोरीके चरणोंमें सिर टेक दिया।

तमाल तरुसे सन्नद्ध अपने प्रियतमके केशोंसे निर्मित उस सेतुको किशोरीने प्रणाम किया। भानुनन्दिनीने गगरी उठायी और जल भरनेको चली। ' सतीकी जय हो, भानुकिशोरीकी जय हो' – तुमुल नादसे यमुनाकूल निनादित हो रहा था। कलिन्दनन्दिनी आनन्दमग्न होकर नाच रही थी। सारा ब्रज उमङ्गमें भरा था। आनन्द-कोलाहल सुनकर ही भानुकिशोरीने मध्य धारामें पीछेकी ओर फिरकर देखा था। क्रमशः तीन बार किशोरी इस सेतुद्वारा इस पारसे उस पार गयीं। फिर सहस्र छिद्रोंवाली कलसीको जलसे पूर्ण करने चली। बायें हाथसे कलसीको जलमें ऊपरतक भरनेको डुबाया और उसे ऊपरतक भर ली। कलसीके छिद्रोंसे एक बूँद भी जल नहीं बह रहा था। उसे सिरपर एँडुरीमें रखकर किशोरी गोशालाकी ओर चल पड़ी। गोपोंने, गोपसुन्दरियोंने तोड़-तोड़कर भानुनन्दिनीके चरणोंमें इतने पुष्प चढाये कि समग्र पथ ही कुसुममय हो गया।

भानुकिशोरीने कलसी ही तरुण वैद्यके सम्मुख रख दी। वैद्यराजके नेत्र सजल हो रहे थे। तरुण वैद्य बोले - "देवि! तुम्हीं अपने पवित्र हाथोंसे एक अञ्जलिभर जल नन्दनन्दनपर डाल दो।" लज्जासे अवनत किशोरीने अञ्जलिमें जल लिया और श्रीकृष्णचन्द्रपर बिखेर दिया। श्रीकृष्णचन्द्र ऐसे उठ बैठे मानो सोकर जगे हों।

सिर नीचा किये किशोरी अपने गृहकी ओर चल पड़ीं। उन्हें न निन्दासे द्वेष था, न ही प्रशस्तिसे राग। उनके लिये सर्वसुखका हेतु तो मात्र नन्दनन्दनका नीरोग हो जाना ही था। अभी-अभी कुछ देर पहले जो गोपियाँ उनके चरित्रपर धूल उछाल रही थीं, वे अपने अञ्चलमें उनकी चरणधूलि बटोर रही थीं। बड़े-बड़े धर्मप्राण वृद्ध गोप उस पथमें लोट रहे थे, जिधरसे किशोरीके चरणोंने ब्रजको रञ्जित किया था।

उस पूरे दिवस ही मेरे नेत्र किशोरीके प्रेममें अश्रु बरसाते रहे। किन्तु सायङ्काल होते ही किशोरी तो पुनः वैसे ही निर्द्वन्द्व अपने प्रियतमके संकेतपर उनसे मिलने यमुनाघाटपर चल ही पड़ीं। किशोरीके पीछे-पीछे मैं भी शारदीय शशधरकी ज्योत्स्नासे उद्भासित यमुना-पुलिनपर पहुँच गयी। मैंने वहाँ जो कुछ दर्शन किये वह सब वर्णनातीत है। भानुकिशोरी सौदामिनी है और श्रीकृष्णचन्द्र नवजलधर। श्याम वारिधर श्रीकृष्णचन्द्र उमड़-घुमड़कर रसकी वर्षा कर रहे हैं। श्याम घटामें निलीन तड़ित्-लहरी-सी भानुकिशोरी अपने प्रियतमके अङ्कमें समाहित है।

यह एक झाँकी है भानुकिशोरी श्रीराधा एवं नन्दकिशोर श्रीकृष्णचन्द्रके मिलनकी - जो मैं कक्खटी मर्कटी अपने अचिन्त्य सौभाग्योदयके फलस्वरूप निहारती रहती हूँ।

आज भी मैं निशापर्यंत इस कुंजमें अपने प्रियतमके आलिङ्गनपाशमें बँधी किशोरीको उनके मुखारविन्दसे झरते मधुको मतवाली हुई पान करती देखती रही हूँ। किशोरीके हृदयमें तो जो अपने प्रियतम-मिलनका आनन्द है, वह उसे न तो बाह्य परिवेशका ज्ञान होने देता है, न ही कालगतिका, परन्तु मुझपर तो किशोरीकी इन खलनायिकाओं – जटिला, कुटिलासे उसकी रक्षा करनेका गुरुतर भार भगवती लीला-महाशक्तिने सौंपा ही है। अतः मुझे निशाके व्यतीत होने एवं दिवसके प्रथम प्रहरके आगमनका ज्ञान उसे करानेके लिये उसके झूलनसुखमें बाधा देनी ही होती है।

क्या करूँ, मैं परिस्थितिवश असहाय हो उठती हूँ। सम्पूर्ण ब्रजक्षेत्रके जीव समुदाय जहाँ अपनी प्रत्येक चेष्टासे इन युगल दम्पतिका सुख-संवर्धन करनेमें निरत रहते हैं, मुझे इनके सुखमें बाधक होना ही पड़ता है। नियति ही बलवती है। ।। ७३२।।

दक्षिण-पश्चिमकी ओर एक जाती पगडंडी थी, प्रियतम !
उसपर रुक-रुककर चल पड़ते, साँवर निहारते थे, प्रियतम !
बालाको आकुलता-बिनती-परिपूरित लोचन से, प्रियतम !
पैंतीस-तीस पल में होते ओझल तरुजालों में, प्रियतम।।७३३।।

वहाँसे दक्षिण-पश्चिमकी ओर एक पगडंडी जाती थी; उसीपर रुक-रुककर नीलसुन्दर चलने लगते। रह-रहकर उनकी दृष्टि राधाकिशोरीकी ओर केन्द्रित हो जाती। वे आकुलता एवं विनय-परिपूरित आँखोंसे किशोरीकी ओर देखने लग जाते। इस प्रकार २५-३० पल व्यतीत होते और फिर नीलसुन्दर तरुजालोंमें किशोरीके दृष्टिपथसे ओझल हो जाते। ।।७३३।।

निष्प्राण हुई-सी बाला अब चलती धीरे-धीरे, प्रियतम !
घर जाकर शय्यापर आँखें मूँदे पड़ जाती थी, प्रियतम !
थे प्राण नीलसुन्दर उसके, तन छूटी रहे, क्या था, प्रियतम !
प्राणोपम पर वह सखियोंको प्रिय था, सँभालती वे, प्रियतम।।७३४।।

अब निष्प्राण-सी हुई राधाकिशोरी धीरे-धीरे चलने लगतीं। घर आकर आँखें मूँदे शैयापर पड़ जातीं। नीलसुन्दर ही तो उनके प्राण थे। तन कहीं भी रहे उसमें रखा ही क्या था। तथापि किशोरीका स्थूल शरीर भी सखियोंको प्राणोंके समान प्रिय था और वे निरन्तर उसे सँभालती रहतीं।।।७३४।।

आवेश भावका बाला में अद्भुत हो जाता था, प्रियतम ।
ज्यों-की-त्यों सब घटनाओं को वह सत्य देख लेती, प्रियतम !
साँवर की मैया, साँवर जो-जैसे घर पर करते, प्रियतम !
उसके निस्पन्द बंद दृग पर अङ्कित वह हो जाता, प्रियतम ॥७३५॥

भावका एक अद्भुत आवेश राधाकिशोरीमें अचानक हो जाता। वे ज्यों-की-त्यों सब घटनाओंको शैयापर पड़ी-पड़ी वहींसे देखने लग जातीं। साँवरको मैया नीलसुन्दरको अपने घरपर जैसे-जैसे सँभालती थीं; किशोरीके निस्पन्द बन्द दृगोंपर वह ज्यों-का-त्यों अङ्कित हो जाता।।।७३५।।

जिज्ञासा

कृपया छन्द सं. ७३३ से ७३५ तककी लीलाका विस्तारपूर्वक वर्णन करें।

समाधान

वैसे तो श्रीमती राधाकिशोरी विश्वप्रपञ्चके सम्पूर्ण आह्लादकी मूल स्रोतस्विनी हैं, भगवान् ब्रजेन्द्रनन्दनमें भी जितना आनन्दरस है, वह आनन्द भी उन्हें श्रीराधाके उद्गमसे ही प्राप्त होता है, किन्तु फिर भी जब उत्तरपूर्वके सङ्गम-संयोग-केन्द्रसे उनके प्राणाराध्य दक्षिण-पश्चिमकी वियोग-पगडंडीपर चरण रख देते हैं और चाहे बार-बार वे उसपर चरण रखते ठिठक-ठिठक, रुक-रुक ही जाते हों, किन्तु जब चल पड़नेका निश्चय कर लेते हैं तो बालाकी आकुलता प्राणहारी ही हो उठती है। वह मणिहारा फणिनीकी तरह विनय-परिपूरित लोचनोंसे अपने प्रियतमको निहारने लगती हैं। स्नेहमें स्थायी विछोहकी आशङ्का नित्य ही बनी रहती है। क्या पता अब भविष्य मिलनका क्षण लेकर उपस्थित होगा कि नहीं, कहीं मिलन भूतमें ही समा जाय और कभी वर्त्तमान बने ही नहीं, चिर वियोग ही नित्य वर्त्तमानका स्वरूप ग्रहण कर ले। इन आशङ्काओंमें डूबे प्रियतम ब्रजेन्द्रनन्दन अपनी प्रियतमाकी ओर अतिशय निरीह नेत्रोंसे ताकने लगते हैं। शेष तो उन दोनोंके बसमें है ही क्या? तीस-पैंतीस पलका यह काल अथाह वेदनामें ही व्यतीत होता है और तब तरु-लताजालोंकी ओटमें दोनों ही एक दूसरेसे ओझल हो जाते हैं। संयोग-वियोगका तो तत्व ही ऐसा है कि संयोगमें प्रियतम बाहर दिखते हैं और वियोगमें अपने भीतर। मिलन तो एक ही देशमें, एक कालमें ही होता है परन्तु जैसे ही प्रियासे प्रियतम अदृश्य हुए वे उसे सर्वत्र सदा, अन्दर-बाहर, सबमें भरे दिखने लग जाते हैं। विरही मिलनसे वञ्चित रह ही नहीं सकता। बस, एक क्षण तो विरहका उसे प्राणांतक कष्ट होता है, किन्तु दूसरे ही क्षण वह अपनेको उनकी चरणदासी बनाकर उन्हींकी इच्छापर अपनेको छोड़ देता है।

किशोरीकी दशा एक क्षण तो छिन्न हुई नन्हीं-सी द्रुमलताके तुल्य हुई किन्तु दूसरे ही क्षण अपने प्रियतमकी हृदयस्थ स्मितशोभी छवि उसके हृदयमें प्रकट होती गयी। प्रिया अपने प्रियतमकी मानसिक मूर्त्तिमें इतनी तन्मय हो उठती हैं कि उनसे पैर उठाकर चलना ही कठिन हो जाता है। उनके प्रियतमकी मानस छवि उनके हृदयमें ऐसी रूपराशि बिखेरती है कि वे संभ्रममें पड़ जाती हैं। यह उनके प्रियतमका आनन है या पूर्ण विकसित नील अरविन्द। अरविन्दका तो मेरे पिता भानुसे शाश्वत प्रेम है, तभी वह मेरे हृदयमें पूर्ण उल्लाससहित विकसित हो रहा है। किन्तु अरविन्दमें ज्योत्स्ना-प्रकाश कैसे संभव है? तब यह अवश्यमेव कलङ्कहीन नीलचन्द्र है। किन्तु चन्द्रोदय तो संध्यामें संभव है, अभी तो रवि किरणोंका सर्वत्र प्रकाश छिटक रहा है, फिर चन्द्र भला इस प्रकार दिनमें कैसे शोभायमान रह सकता

है? इस प्रकार उत्प्रेक्षाओंमें डूबती-उतराती प्रिया शनैः-शनैः सखिका सहारा लिये अपने यावट ग्रामस्थित गृहमें पहुँच ही जाती हैं। अपने प्रासादके कक्षमें पिछवाड़ेके गुप्त मार्गसे प्रवेशकर वे जाकर शय्यामें गिर पड़ती हैं।

पू.गुरुदेवने प्रियाका जो तत्कालीन ध्यान निरूपित किया है, अब उसे हृदयङ्गम करें –

प्रियाका मस्तक दक्षिणकी तरफ है एवं चरण उत्तरकी ओर। उसके नेत्र अर्धनिमीलित हैं। विद्युद्वदनी प्रियाका मात्र आनन तो प्रेमरश्मियोंको छिटका रहा है, शेष उसके सभी अङ्ग एक नीले क्षौम वस्त्रसे आवृत हैं। बाहरसे द्रष्टाको यही अनुभूति होगी कि प्रिया शयित हैं, किन्तु प्रिया अन्तःकरणसे पूर्णतया सजग हैं। गुणमञ्जरीके चरण तो शय्याके नीचे लटक रहे हैं और उसकी दृष्टि प्रियाके मुखकी ओर है।

सखियाँ भिन्न-भिन्न कार्योंमें व्यस्त हैं। कोई उबटन तैयार कर रही है, कोई चन्दन घिस रही है, कोई झारीमें जल भर रही है, कोई इत्र एवं फुलेलके छोटे-छोटे पात्रोंमें इत्र भर रही है। कोई दन्तमञ्जन रख रही है, कोई प्रियाके पहननेके वस्त्र सजा रही है। राधारानीके प्रासादसे यमुनाघाटतक रानीकी सखियों एवं मञ्जरियोंके आवागमनका ताँता लग रहा है। कोई शीघ्रतापूर्वक स्नानको जा रही है, कोई स्नान करके खुले केश उधरसे आ रही है। कोई स्वर्णतारोंकी अलगनीमें कपड़े सुखा रही है, कोई किसी अन्य दासीसे केशोंमें फुलेल डलवा रही है, कोई नेत्रोंमें अञ्जन लगा रही है। प्रासादमें रानीका कक्ष तो महलके ऊपरी खण्डमें है, अतः इस खण्डमें तो रानीकी अन्तरङ्ग सखियोंकी ही अपने-अपने कार्योंमें चहल-पहल है, नीचे प्रासादके प्रथम खण्डमें रानीकी सास जटिलाके निर्देशपर कोई दासी अभी बिलोये दूधमेंसे मक्खन निकाल रही है, कोई विशेष बनी भट्टीमें दूधकी चरी ही सेवकोंसे गर्म करनेके लिये रखवा रही है। कोई झाड़ू लगा रही है। कोई वस्तुओंको यथास्थान सजाकर रख रही है।

प्रियाके प्रासादके चतुर्दिक् बहुत ही सुन्दर उपवन है। उस उपवनमें भी सखियोंका आवागमन हो रहा है। पूर्व दिशामें मोगरा, चमेली, जुही, बेलाके पुष्प खिल रहे हैं। कुछ सखियाँ इनमेंसे पुष्प चयन कर रही हैं। अनेक सखियाँ तुलसीवनमेंसे तुलसीदल चयन कर रही हैं। अवश्य ही समग्र कार्य इस प्रकार निश्शब्द शान्तिसे हो रहे हैं जिससे प्रियाके विश्राममें कोई व्याघात नहीं हो। हाँ! किञ्चित् अन्तरालसे कलशोंकी सुमधुर ठन-ठन शब्दावली एवं नूपूरकी रुनझुन ध्वनि अवश्य स्वरभीना कोलाहल कर देती है। यह रुनझुन इतना मनोहारी होता है कि अनेक बार तो मञ्जरियोंकी अपनी ही कङ्कण एवं नूपुरध्वनि प्रियतम नीलमणिके आगमनका भ्रम उत्पन्न कर देती है।

प्रियाके कक्षमें उत्तरके कोनेमें ललिता शीघ्रतापूर्वक अपना शृङ्गार कर रही है। रूपमञ्जरी उनकी सहायता करना चाहती है किन्तु वह संकेतसे निषेध कर देती है। रूपमञ्जरी थालमें शृङ्गारका बहुत-सा सामान एवं एक दासी आभूषणोंकी सज्जित थाली लिये सम्मुख खड़ी है, किन्तु ललितारानी इसमेंसे किसी वस्तुका उपयोग नहीं करती। हाँ, वे रूपमञ्जरीके थालमें रखी एक छोटी रत्ननिर्मित कटोरीमेंसे अपनी अनामिका अंगुली डालकर बस, छोटी-सी कस्तूरीकी बेंदी अवश्य अपने भालपर लगा लेती हैं। वे बिन्दी लगाकर रूपमञ्जरीकी ओर ऐसी मनोहर नेहभरी मुसकान बिखेरती हैं कि रूपमञ्जरी बिना मोल ही उनपर न्यौछावर हो जाती हैं। तत्क्षण ही ललिता निम्नमुख किये लज्जित रूपमञ्जरीके कपोलोंपर भी अपने हाथमें लगी शेष कस्तूरी रञ्जित कर देती हैं। ललिता रूपमञ्जरीके कानमें धीरेसे कुछ कहती हैं। रूपमञ्जरी तत्क्षण ही शृङ्गारकी थाली यथास्थान रखकर कार्यार्थ कक्षके बाहर चली जाती है।

ललिता राधारानीकी शय्याके पास पहुँचकर उसके मुखकी ओर निहारती हैं। ललिता जान लेती हैं कि रानीका मात्र तन ही शय्यापर है वह मन-प्राणोंसे अपने प्रिय नन्दलालके पास नन्दभवनमें चली गयी हैं। उसके प्राण ही जब घनीभूत होकर नन्दतनयकी सत्तासे एकात्म हो चुके हैं फिर वह उनसे पृथक् यहाँ यावट ग्राममें रह ही कैसे सकती है? ललिताको ठीक अनुभव हो रहा है कि उसकी सखीमें भावका अद्भुत आवेश है और नन्दभवनमें उसके प्रियतम नीलमयङ्कदेव एवं यशोदामैयाके मध्य जो-जो वात्सल्यमयी लीलाएँ घटित हो रही हैं, वे सभी लीलाएँ राधाकी निमीलित

दृगपुतलियोंके भीतर स्पष्ट प्रत्यक्षवत् अभिव्यंजित हो रही हैं। कालगत व्यवधान किंवा देशगत दूरी अन्योंके लिये भले ही बाधक हों, राधाका चित्त इन व्यवधानोंसे पूर्णतया मुक्त है, स्वतंत्र है। ।।७३५।।

बाला देखती, कालकी गति पीछे है सरक गयी, प्रियतम !
हैं क्रियाशील हो रही अघटघटनापटीयसी वे, प्रियतम !
है उषा लगी, अब जननी भी जग उठी, किंतु भोली, प्रियतम !
साँवर रजनी में बाहर थे घर से, न समझ पायी, प्रियतम।।७३६।।

किशोरी देखतीं – कालकी गति सहसा पीछेकी ओर सरक गयी है। वे अघटनघटनापटीयसी महाशक्ति क्रियाशील हो रही हैं। इसीलिये सबकी दृष्टिमें उषाकाल अब आरम्भ हुआ है। नीलसुन्दरकी जननी यशोदा मैया जग उठी हैं। किन्तु उनपर महामायाका ऐसा प्रभाव व्यक्त हो रहा था कि भोली मैया समझ तक नहीं पाई कि अभी-अभी सारी रात नीलसुन्दर घरसे बाहर अवस्थित रह चुके हैं। इसका किञ्चित् भी आभास वे न पा सकीं। अस्तु, ।।७३६।।

दीपककी लौ से निर्मञ्छन अपने सुतका करके, प्रियतम !
करने दधिमन्थन लगी सुधास्यन्दी स्वरमें गाती, प्रियतम !
उसके श्रवणों में पूरित है रुन-झुन-रव नूपुरका, प्रियतम !
आँखों में भरा नीलमणि है आँगनमें नाच रहा, प्रियतम।।७३७।।

अपने कोटि प्राणोंके प्राण नीलसुन्दरका मैयाने दीपककी लौसे निर्मञ्छन किया और फिर दधिमन्थन करने लगीं। मैया सुधास्यन्दी स्वरमें गा रहीं हैं। उनके श्रवणपुटोंमें तो अपने पुत्रका रुनझुन-रुनझुन रव परिपूरित हो रहा है और आँखोंमें परिपूर्ण हो रहे हैं, नीलमणि जो प्रांगणमें नाच रहे हैं।।।७३७।।

कालकी गति पीछे है सरक गयी, प्रियतम !

ललिता देख रही है कि हम सभीके लिये जावट ग्राममें इस समय दिवसका प्रथम प्रहर हो चुका है, सूर्यदेव क्षितिजसे पर्याप्त ऊपर चमकने लगे हैं, किन्तु उसकी सखीकी चिन्तनधाराने कालकी गतिको पीछे लौटनेको बाध्य कर दिया है। उसकी मानसभूमिमें अभी तो ऊषाका आगमन ही हुआ है एवं पूर्व दिशाके क्षितिजमें मात्र लालिमाकी एक रेखा ही उदय हुई है। शेष आकाश अभी भी नक्षत्रावलियोंको दमका रहा है। जननी यशोदा जाग उठी है। उनकी दृष्टि तत्क्षण शयनकक्षकी ओर पड़ती है। वे तत्क्षण ही धीरे-धीरे चरण रखती नन्दनन्दनकी शैयाके पास रक्खे दीपकके पास पहुँचती हैं। दीपककी लौ समग्र निशा निस्पन्द रहकर जननीके उरहार नीलमणिकी शोभा निहारती रही है। जननी समीपमें रक्खी स्वर्णशलाकासे लौको किञ्चित् ऊपर उठा देती है। वे दीपककी मन्द ज्योतिके प्रकाशमें नन्दनन्दनकी शय्याकी ओर निहारती अवश्य हैं, किन्तु वे इतनी भावमयी एवं भोली हैं कि यह अनुमान ही नहीं कर पाती हैं कि उनका नीलमणि शय्यामें नहीं है, रजनीपर्यन्त यमुना-पुलिनवर्ती निकुञ्जोंमें अपनी प्रिया गोपिकाओंके पास रमणरत रहता है। यह बात भोली मैयाकी बुद्धिमें प्रवेश पानी ही असंभव है। मैयाका मन-मानस तो अपने तनूजको अधिकांशतः शिशुरूपमें ही देखता है। हाँ, उसकी भावदृष्टि भले ही अपने नीलमणिके बालपने और पौगण्डसे किसी कालमें सामञ्जस्य बैठा ले, किन्तु नीलमणि किशोर हो गये हैं- यह तो मैयाका भावपटल स्वीकार ही नहीं कर पाता। यशोदा मैयाके सामने तो उन्हें ठुमुक-ठुमुककर नाचनेवाला शिशु अथवा कुमार होना ही पड़ता है।

कहनेका यही तात्पर्य है कि तनय-विरहित सूनी शय्यामें ही अपने तनयको शयित परिकल्पितकर भोली मैया पहले तो दीपकके आलोकमें अपने पुत्रको ललाटसे चरणपर्यन्त भावमें ही निहार लेती हैं, फिर अपने युग्म हस्ततलपर

दीपको स्थापितकर उसे अपने पुत्रके परिकल्पित मुखपर ही तीन बार घुमा देती हैं। वे इस प्रकार दीपकसे निर्मञ्छनकर नन्दनन्दनके कक्षसे लौट आती हैं और अपने सुधास्यन्दी मधुर स्वरमें नन्दतनयके लीलाचरित्र, उसके रूप-यशके गीत गाती दधिमन्थन करना प्रारंभ कर देती हैं। जब मैया उल्लासमें भरकर राग-रागिनियोंके विभिन्न स्वर आलापने लगती हैं, उस समय यह तो सर्वथा ही स्पष्ट हो जाता है कि वीणावादिनीके रागसृजनका समस्त कौशल मूर्त हो उठता है – मैयाके कण्ठमें। मैया यशोदाके हृत्तलमें न जाने नीलसुन्दरके कितने ही शत-सहस्र पुनीत, प्रेमिल, रसमय चरित्रोंके संस्मरण नित्य पूर्ण हैं। किसका द्वार खुले यह नियम थोड़े ही है। आनन्दविभोर हुई मैयाको जब जिस लीलाकी स्फूर्त्ति हो उठे, बस, उसका गीत सर्वथा अपनी विलक्षण प्रतिभासे रचकर वह गाने लगती है। और आश्चर्य तो यह है कि उसने कभी तालस्वरकी योजना सीखी नहीं, कभी छन्दोंमें शब्दोंको बाँधा नहीं। फिर भी किसी धुरन्धर काव्य-साहित्य-रचनाकारका साहस नहीं कि वह मैयाकी रचनामें, उसके गायनमें कोई काव्यदोष, कोई छन्द-स्खलन, कोई स्वरभङ्ग, कोई राग-विराग निर्देशित कर सके। ठीक लयमें बँधी-सी मैयाके कण्ठकी धारा भी मानो दौड़ी जाती है - अपने नीलमणिके श्रीअङ्गोंसे व्यक्त हुई उन कौतुकमयी चेष्टाओंके पीछे-पीछे, उस चिन्मय रसप्रवाहको छूती हुई-सी। ओह! उधर तो दधिमन्थनसे हिलते मैया यशोदाके अङ्गोंमें संलग्न आभूषणोंका एक स्वाभाविक झङ्कार-गुञ्जन होता रहता है, और इधर रईके भ्रमणसे दधिमन्थनजन्य घर्र-घर्र ध्वनिकी अद्भुत अलौकिक मनोहारिणी गूँज निनादित होती है। इन सबमें सङ्गमित होती हैं - मैया यशोदाके आह्लादपूर्ण श्रीकृष्ण-सुयश-सङ्गीतकी ललित लहरियाँ। तीनोंका विचित्र सम्मिश्रण हो जाता है नन्दभवनके अलिन्दमें। व्रजेश्वरी हाथोंसे तो अपने प्राणाराम नीलमणिके लिये नवनीत प्रस्तुत कर रही है, मुखसे नीलमणिके रसमय गुणोंका गायन होता है और उनकी चित्तभूमिपर इन विविध लीलाओंके अनुरूप क्षण-क्षणमें नव-नव वेषसे विभूषित होते हुए उसके नीलमयङ्क नृत्य कर रहे होते हैं। मैया इस प्रकार काय-मनो-वाक्यसे भी तन्मय हो उठती है।।। ७३७।।

नवनीत हुआ प्रस्तुत, समाधि मैयाकी अब टूटी, प्रियतम !
फिर उसी शयनमन्दिरमें जा पहुँची धीरे-धीरे, प्रियतम !
साँवरके मुख-सरोजपर से भ्रमरावलि-सी अलकें, प्रियतम !
मृदु करसे अपसारित कर वह फूली न समाती है, प्रियतम।।७३८।।

नवनीत प्रस्तुत हो गया। अब मैयाकी समाधि टूट गयी। फिर शयन-मन्दिरमें वे धीरे-धीरे जा पहुँचीं। नीलसुन्दरके मुख-सरोजपर भ्रमरावली-सी अलकें बिखर रही थीं। उन्हें मृदु करसे अपसारित कर मैया फूली नहीं समा रही हैं।।।७३८।।

तात्त्विक विवेचन विस्तार

मैया कहीं इस रसमय आवेशमें आत्मविस्मृत नहीं हो उठे इस आशङ्कासे लीला-महाशक्ति उसके श्रवणरंध्रोंमें नन्दनन्दनके नूपूरोंका रुनझुन रव पूरित कर देती है। मैयाके कर्णपुटोंमें नूपुरझङ्कारकी पीयूषधारा बह चलती है, साथ ही अपने तनयके नूपुरोंकी झङ्कारसे मैया भ्रमित भी हो उठती है कि सचमुच ही कहीं मेरा नीलमणि शय्या त्यागकर अलिन्दमें आगया तो नहीं? मैयाका रोम-रोम एक अभिनव विशुद्ध स्नेहावेशसे पूरित हो जाता है। उनके नेत्रोंमें भरी पुत्रकी छवि एक बार तो सचमुच ही उन्हें भ्रमित कर देती है और उन्हें उनका नीलमणि अपने सम्मुख ही अपने हाथों कजरारे उनींदे नेत्र मलता प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर भी हो उठता है। परन्तु दूसरे ही क्षण मैयाको अनुभव हो जाता है कि नहीं, नहीं यह सत्य नहीं, यह तो मात्र मेरा मानस-विक्षेप है। मेरा नीलमणि तो पर्यंकमें अभी शयन ही कर रहा है।

मैया दधिभाण्डमें झाँककर देखती है। लो, अब तो नवनीत भी संतरण करने लगा। मैयाको अब धैर्य कहाँ है? दधिमंथनको त्यागकर वह सीधे शयनमन्दिरमें धीरे-धीरे आ पहुँचती है।

ओह! मैयाके श्रीअङ्गोंकी शोभा कैसी दर्शनीय है? उनके स्थूल कटिदेशमें सुकोमल क्षौम (रेशम)-तन्तुओंसे निर्मित रेशम-डोरीमें बँधा लहँगा सुशोभित है। अपने पुत्र नीलमणिके लीलागायनसे, एकतान होनेवाली मधुरातिमधुर श्रीकृष्णस्मृतिसे वात्सल्य-स्नेहसिन्धुके उद्वेलित हो जानेसे जननीके दोनों स्तनोंसे दूध झर रहा है। मैयाके वक्षोज भी रह-रहकर प्रकम्पित भी हो रहे हैं। प्रेमावेशके कारण प्रस्वेदंकण भालपर, कपोलोंपर, चिबुकपर झलमल कर रहे हैं। अञ्चल सिरसे नीचे उतर आया है। वेणीबन्धन शिथिल है। प्रेमावेशके कारण जननीका बाह्यज्ञान लुप्तप्राय हो रहा है, तथापि अन्तश्चेतनामें यह संस्कार भी सर्वथा यथावत् बना है कि मैं नीलमणिको शयनागारमें छोड़ आयी हूँ, उसे उठाना है, मुख धुलाना है। जननीके भ्रू-युगल अतिशय बङ्किम बन गये हैं और बहुत ही सुन्दर दीख रहे हैं। इस प्रकार वात्सल्य-महोदधिरूपा ब्रजेश्वरी एक चञ्चल सौन्दर्य-प्रतिमासी अपने नीलमणिके शयनकक्षमें पदार्पण करती है। ब्रजेश्वरी देखती है मानो नीलोत्पल अपने ही परागसे सना हो, इस प्रकार उनके लालके मुखपर काजल फैल गया है। अलकें इस प्रकार उसपर मँडरा रही हैं मानो भ्रमरावली परागका पान करनेको टूट पड़ी हों। मैया उन अलकोंको अपने अति मृदु हाथोंसे निरवारित करती है एवं अपने वत्सल वेगजनित हर्षसे फूली नहीं समाती है। उसके स्तनोंसे दूधकी धारा बहने लगती है।।।७३८।।

अपने अर्बुद मैं प्राण लक्ष शतगुण तुझपर वारूँ, प्रियतम !
तू जाग लाल मेरा अमोल ! हो चुका सबेरा है, प्रियतम।
आयेंगे अभी सखा तेरे, गायें पुकारती हैं, प्रियतम !
तुझको, जाकर दुह ले उनको, उठ तो तू, देख, भला, प्रियतम।।७३९।।

'अरे मेरे लाल! मैं अपने कोटि-कोटि अर्बुद प्राणोंको तुझपर न्योछावर कर रही हूँ। तू आँखें खोल। निद्राका परित्याग कर दे। सबेरा हो चुका है भला। देख, तुझे गाय पुकार रही हैं। कुछ ही क्षणोंमें तेरे सभी सखा भी आ जायेंगे। तू पहले जाकर उन गायोंके दूधको दूह ले भला! तू उठ तो सही।'।।७३९।।

तात्विक विवेचन विस्तार

'मेरे लाल! तू तो ब्रजराजकुलका तिलक है। अरे! तूने एक-से बढकर एक परम मनोहर, सुन्दर, पवित्र लीलाएँ यहाँ की हैं। ओह! उन्हें निहारकर ब्रजवासी सुखमें डूबे हुए हैं। लीलासुख देकर तू सदा ब्रजवासियोंका आनन्द सहस्र गुना बढ़ाता रहता है। वत्स! मैं अपने अरबों प्राण तुझपर कोटि-कोटि बार न्यौछावर कर दूँ। हे मेरे अनमोल प्राणरत्न! देख, प्रभात हो चुका है। वत्स! देख, आनन्द-कोलाहलसे समस्त उपवन निनादित है, यमुनातीर मुखरित है। मेरे लाल! कमलनयन!' – कहते-कहते मैयाका वात्सल्यसिन्धु उमड़ पड़ता है। 'देख वत्स! सुदाम, श्रीदाम, किङ्किणी, वरूथप, तोक, मधुमङ्गल – सभी तो शृङ्गध्वनि कर रहे हैं। अरे बेटा! शीघ्र जाग्रत हो अन्यथा तेरे सखा विजयी हो जावेंगे। सखागण नित्य ही तो तेरा यह कहकर उपहास करते हैं कि यह कन्हैया नहीं, सुवैया है। हम सभी तो अपनी माताओंकी एक पुकारपर जागते हैं और यह सुवैया तो हम सभीके समन्वित शृङ्गनादके तुमुल कोलाहलके उपरान्त भी ऊँ-आँ करता रहता है। देख वत्स! तेरी गौएँ तो आज अपने पालकसे भी बहुत पूर्व जाग चुकी हैं। वे तेरे शृङ्गनादकी प्रतीक्षामें दुग्ध रोके खड़ी हैं। देख, शीघ्र उनके थनोंको स्पर्श भर कर ले, फिर वे अपने सुधासम दुग्धसे सभी स्वर्णचरियाँ पूरित कर देंगी। अरे! तू क्या उनका हम्भारव सुन नहीं पा रहा, वे कृष्ण-कृष्ण, गोपाल-गोपाल पुकारे ही जा रही हैं।।।७३९।।

यों प्रेमिल शत मनुहारों से साँवर को जगा सकी, प्रियतम !
होते-होते न मुखारी वे पूरी अब भाग चले, प्रियतम !
जा पहुँचे दृहसम्बद्ध उसी गोशालामें पल में, प्रियतम !
वह धेनुसमूह निहाल हुआ लखकर आनन नीला, प्रियतम।।७४०।।

इस भाँति प्रेमिल शत-शत मनुहारोंसे वे नीलसुन्दरको जगा सकीं। तथा जैसे-तैसे वे मुखारी मात्र पूरी करवा सकी थीं-इतनेमें ही नीलसुन्दर तो भाग चले। गृहसे सम्बद्ध उस गोशालामें पल बीतते-न -बीतते वे आ पहुँचे। वह विशाल धेनु-समूह उनका नीला सुन्दर मुख देखकर निहाल होने लग गया।।।७४०।।

तात्विक विवेचन विस्तार

यों शत-शत मनुहारोंसे मैया अपने पुत्र नीलमणिको जाग्रत कर पाती हैं वे अपने कजरारे नेत्र मलते-मलते मुखारी लेते है। और जैसे ही पूर्व गगनमें होते प्रकाशपर उनकी दृष्टि पड़ती है, तत्क्षण ही अपने भवनसे संलग्न गौशालाकी ओर दौड़ पड़ते हैं।

मैया चाहती है कि कन्हैया पहले हाथ-मुख धोकर, दंतधावनकर स्नान-शृङ्गार करके कुछ खाले किन्तु गोशाला पहुँचनेकी कन्हैयाकी त्वराके पीछे मैयाकी मनुहार अनसुनी हो जाती है। उसे तेल, उबटन, स्नान, अङ्गमार्जन, परिधान, अलङ्करण – सभी सामग्रियाँ लेकर दासियोंके साथ अन्ततः गौशालामें ही अपने कन्हैयाके पीछे-पीछे पदार्पण करना पड़ता है।

मैया बोलती जारही है – 'अरे श्रीकृष्ण! छिः-छिः, देख, तेरे समस्त अङ्ग धूलि-धूसरित हो रहे हैं। नहीं, नहीं, अब स्नान आदि करके पवित्र होकर ब्राह्मणोंको गोदान कर। अरे! इधर देख, यहाँ आये हुए इन गोपशिशुओंकी ओर तो देख। इनकी माताओंने इन्हें स्नान कराया है। देख, ये सभी आभूषणोंसे यथावत् समलंकृत हैं। ये कितने सुन्दर लगते हैं। तू भी स्नान करले तथा फिर भूषणोंसे भलीभाँति विभूषित होकर, भोजन कर ले। इसके अनन्तर ही गोदोहन करना।'

इस प्रकार अपने लालका अनुसरण करती मैया गोशाला पहुँचती है और वहाँ देखती है - उनका लाल कन्हैया प्रत्येक गायको मानो अपने प्राणोंका रस देकर आप्यायित करनेमें संलग्न है। वह अपने उत्तरीय अम्बरको आर्द्रकर गौओंके फेनिल मुखका प्रक्षालनकर उसपर शत-शत चुम्बन अङ्कित कर रहा है। किसी गौका कण्ठ अपनी सुन्दर भुजाओंमें धारण कर लेता है और फिर उसके सिरपर अपने चूर्ण कुन्तलमण्डित सिरको रख देता है। गौएँ अपने प्राणधन कृष्णका अप्रतिम स्नेह पाकर, सम्पूर्ण पशुता त्यागकर किसी अनिर्वचनीय प्रेमानन्दमें विभोर हुईं अपने प्राणपतिके हाथका यंत्र बन गयी हैं। श्रीकृष्णके आदेशसे गोपालोंने राशि-राशि वन्य पुष्पोंकी मालाएँ निर्माण कर रखी हैं और यशोदानन्दन प्रत्येक गौको अपने हाथों विभूषित कर रंहे हैं। अपने पुत्रकी इन गौओंके प्रति प्रेमिल चेष्टा देखकर मैयाका हृदय आर्द्र हो उठता है।।।७४०।।

इस भाँति देख लेती बाला रहकर अपने घर ही, प्रियतम!
जैसे-तैसे सहचरियाँ सब उसको प्रबुद्ध करतीं, प्रियतम!
रसभरे अनेक उपायों से निर्वाह करा पातीं, प्रियतम!
मुखशोधन, उद्वर्तन, मज्जन, परिधान विभूषणका, प्रियतम।।७४१।।

इस भाँति अपने घरपर विराजित रहकर ही राधाकिशोरी इन सम्पूर्ण दृश्योंको देख लेतीं। इधर जैसे-तैसे सहचरियाँ उन्हें प्रबुद्ध करतीं। राधाकिशोरी आँखें खोलकर देखने लगतीं। रसभरे अनेकों उपायोंसे मुख-शोधनका, उद्वर्तनका, मज्जनका, परिधान धारण करानेका एवं आभूषणसे सुसज्जित होनेका- इन सभी कार्योंका निर्वाह सहचरियोंके आत्यन्तिक सहयोगसे ही हो पाता भला!।।७४१।।

जैसे-तैसे सहचरियाँ सब उसको प्रबुद्ध करतीं, प्रियतम !

इस प्रकार बाला अपने प्रासादमें विश्रामावस्थामें नेत्र मूँदे-मूँदे ही नन्दभवनमें घटित होनेवाली सम्पूर्ण घटनाको निहार ले रही है। ललिता प्रियाके मुखपर पहली दृष्टि डालते ही समझ लेती है कि उसे निद्रा नहीं आयी है। फिर

भी प्रियाको जाग्रत तो करना ही है, इस उद्देश्यसे वह प्रियाके केश अपनी अँगुलियोंसे सहलाती प्रश्न कर उठती है - 'क्यों, निद्रा नहीं आयी?'

रानी कुछ गंभीरताकी मुद्रामें कहती है – 'नींद नहीं आती तो क्या करूँ?'

रानीकी बात सुनकर ललिताके नेत्र प्रेमसे छलछला उठते हैं। वह समझती है कि जिसके हृदयमें प्रेमघनसुन्दर नीलमणिदेव अपना प्रेम-प्रकाश फैलाये हैं, वहाँ निद्रा भला कैसे प्रवेश करे? प्रियाके हृदयमें तो प्रियतमके सिवा अन्य वस्तु प्रवेश ही नहीं कर सकती।

ललिता अपने हृदयके भावोंको गोपनीय रखती हुई इतना ही कह पाती है – " सखि! सूर्योदय हो गया है। कुन्दमञ्जरी या धनिष्ठा शीघ्र ही पहुँचनेवाली हैं। तू स्नानादि सम्पन्न कर ले।"

ललिताका कथन रानीको अपने प्रियतम नीलमणिसे शीघ्र मिलनकी संभावनाका संदेश दे देता है। वह शय्यासे तत्क्षण ही उठ पड़ती है। किन्तु वह ज्योंही कक्षके बाहर दृष्टिंनिक्षेप करती है पुनः प्रियतम ब्रजेन्द्रसुन्दरकी भावमूर्त्ति उसके दृगपटलपर प्रत्यक्षवत् दृष्टिगोचर हो उठती है। "ओह! वही त्रिभुवनमोहन सौन्दर्य है, वही मधुरातिमधुर कैशोर भंगिमा है। क्षीरसिन्धुकी उच्छलित तरङ्गोंके सदृश गौएँ आगे-आगे चल रही हैं। परमानन्दमें निमग्न क्रीड़ापरायण गोपशिशुओंका समाज है। गोकुलके भवनोंके ऊपर छतोंपर चढ़ी गोपरामाओंको अपनी बङ्किम चितवनसे निहारते, उनके द्वारा बरसायी पुष्पराशि और तुलसीमालाओंको पुनः उन्हींकी ओर उछालते, हँसते-हँसाते, अपनी वंशीकी मधुर स्वरलहरीसे वृन्दाकाननको रसप्लावित करते, मत्त गयंदकी तरह झूमते, चाल भरते, रानीके प्राणपति नन्दभवनसे नवतृणास्तीर्ण वनभूमिकी ओर बढ़ रहे हैं।" रानीको अनुभव होता है मानो वह सशरीर नन्दभवन ही पहुँच गयी है और यशोदाके पार्श्वमें ही स्थित है। रानीकी भावदशाके फलस्वरूप जो शब्द उच्चस्वरसे उसके मुखसे यदा-कदा उच्चरित हो उठते हैं, उनका भी गुरुजनोंके सम्मुख व्यक्त होना ललिताको कुलवधूकी मर्यादाका उल्लंघन ही समझमें आता है। किन्तु वह करे भी तो क्या? वह जबतक रानीको नन्दभवन नहीं ले जावेगी तबतक तो उसे सखिका बावलापन निर्वाह करना ही है।

रसभरे अनेक उपायोंसे मुखशोधन, उद्वर्त्तन, मज्जन निर्वाह करा पातीं, प्रियतम !

सहसा ही रानीको शान्त रखनेका एक अमोघ उपाय ललिताके ध्यानमें आ जाता है। रानीकी इस समय शोभा परम निराली हैं। उसके मन-मस्तिष्कमें अपने प्रियतम प्रेमकी तुमुल तरंगें नृत्य कर रही हैं। ये प्रीति-तरंगें कभी आनन्दकी उफनती सरितामें रूपान्तरित हो जाती हैं, एवं कभी विरह-वेदनाके औदास्य-सुधा-सरोवरमें। प्रियतमके अदर्शनमें प्रिया अपने प्रासादमें सर्ववैभवके मध्य भी महाकण्टकाकीर्ण अरण्यमें खिली स्वर्णयूथीकी तरह विराजित हैं। तृण-जञ्जाल एवं कण्टकादिसे आच्छन्न कोई सूखा सरोवर हो, जिसमें जल पूर्णतया सूख चुका हो, एवं बस, पङ्ककी पपड़ियाँ ही बची हों, उस सरोवरमें ऊर्ध्व मृणालदण्ड-समन्वित अनेक रक्तपद्म विकसित हो रहे हों, और उन सभीके मध्य एक सहस्रदल स्वर्णसरोज शोभा पा रहा हो, सखियों सहित प्रियांकी यहाँ ऐसी ही शोभा है। इस प्रासादमें प्रिया मरुभूमिमें सुरतरुके अङ्कुरकी तरह नितान्त एकाकिनी हैं। परम दुःख, निन्दा, लोकग्लानि आदि वृक्षोंके शिखरपर जैसे निविड़ प्रीतिकुसुम प्रस्फुटित हो, ऐसा सौन्दर्य इस समय प्रियाके रोम-रोमसे झर रहा है।

ललिता किशोरीरानीके सरोज-सदृश हाथको सहारा देती उसे शय्यासे उत्थित करनेका उपक्रम करती हैं और अतिशय सुमन्द ध्वनिमें कानमें कहती हैं – 'देख! नन्दभवन चलना है न? तू शीघ्रतापूर्वक हाथ-मुख प्रक्षालन कर, मैं तुझे तबतक एक अतिशय रोचक वार्त्ता सुनाती हूँ।' ललिताकी मंत्रणा श्रवणेन्द्रियमें जाते ही प्रियाकी भावधारामें क्रमशः तरंगें नृत्य करने लगती हैं। रानीका मन उत्कण्ठासे भर जाता है। एक परमाद्भुत प्रियतम-ध्यान-धारा जो उसके मन-प्राणोंमें प्रवाहित हो रही थी, और जिसका मात्र एक सुखी प्रवाह भर था, अब भावसन्धिसे चञ्चल हो उठती है।

पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा द्वारा वर्णित मुखशोधन आदि सेवाओंका ध्यान :

ललिता एवं सभी सखियाँ भली प्रकार जानती हैं कि इस प्रभातागमनवेलामें रानी अपने प्रियतमके मुखचन्द्रसे झरती हुई सौन्दर्यसुधाके पानमें इतनी तन्मय एवं डूबी रहती हैं कि सहजमें उनका मुख-प्रक्षालन, उबटन, मज्जन एवं शृङ्गार धारण करा देना असंभव ही है। अपने प्रियतमके आलिङ्गन-सुखकी मादकतामें निशापर्यन्त पूरी छकी प्रियाका प्रेममद प्रभातमें उनसे पृथक् होनेके पश्चात् और अधिक प्रभावी हो उठता है। प्रियाको वनमें एकाकिनी सखियोंके साथ बिदाकर यद्यपि प्रियतम दूसरे वनपथसे नन्दभवन प्रस्थान कर जाते हैं, परन्तु वे प्रियाके मानसमें अपनी ध्यानछवि इतनी प्रगाढ़ और प्रत्यक्ष प्रकट कर देते हैं कि रानीकी अति विह्वल दशा हो जाती है। रह-रहकर रानीके नेत्र भर आते हैं, उन्हें स्वेद, कम्प आदि प्रेमविकार होने लगते हैं। स्वरभङ्ग होनेसे वह बोलना कुछ चाहती हैं और बोल कुछ ही जाती हैं। भावके इस प्रबल प्रवाहको प्रतिदिन ही झेलना ललितादि सखियोंको ही पड़ता है। आज भी प्रियाकी वही दशा है।

ललिताके द्वारा कोई अपूर्व वार्त्ता सुनाये जानेकी उत्कण्ठा रानीको यद्यपि त्वरापूर्वक मुख-प्रक्षालनार्थ रखी स्वर्णचौकीपर आसीन तो करा देती है किन्तु उसपर विराजमान होते ही प्रिया पुनः अपने प्रियतमके भुवनमोहन सौन्दर्यको निहारने लग जाती है। उत्तर दिशाकी ओर मुख किये बैठी प्रियाके हाथोंमें झारीसे गुणमञ्जरी जल डाल रही है, परन्तु प्रिया उस जलसे मुख-प्रक्षालन करना, गण्डूष लेकर मुख भीतरसे प्रक्षालितकर जल बाहर फेंकना आदि सब ज्ञानको सर्वथा ही विस्मृत कर जाती है। प्रियाके नेत्रोंमें तो अपने प्रियतम नीलसुन्दरका अनन्त अपार सौन्दर्यसिन्धु लहरा रहा है। शोभासिन्धुके अधिदेवता प्रियतमको अपने सम्मुख ललित त्रिभङ्गीमें खड़ा देख अब वह उनसे वार्त्ता करे कि मुख प्रक्षालन करे? प्रिया गुणमञ्जरीको डपटकर कहती है – 'मूढे! सम्मुख प्राणवल्लभ खड़े हैं न?' रतिमञ्जरी प्रियाके पार्श्वमें ही सुगन्धित वनौषधियोंसे निर्मित रक्तवर्णका दन्तधावन-चूर्ण लिये खड़ी है। प्रियाकी भावदशा निरखकर वह भी मन्द-मन्द मुसकाने लगती है। अन्ततः ललिताको हस्तक्षेप करना ही पड़ता है। वह प्रियाको तर्जित करती हुई कहती है – 'तुझे नन्दभवन नहीं चलना हो तो सर्वत्र उन्हींको निरखती रह। ले, मैं तुझे दंतधावन कराती हूँ।' कहती हुई ललिता रतिमञ्जरीसे दंतधावन-चूर्ण लेकर प्रियाका मुख खोलकर अपनी सुकोमल तर्जनी अँगुली उसके मुख-विवरमें निवेशकर उनकी मुक्तासदृश स्वच्छ दंतपंक्ति चूर्णसे रगड़ने लगती है। ओह! चूर्णके वर्णको आत्मसात्कर प्रियाकी स्वच्छ दंतपंक्ति दाड़िम बीजोंकी तरह द्युतिमान् हो उठती है। प्रियाके अम्बुजकोष सदृश मुख-विवरसे मनोहर गन्धका ऐसा झौंका उठता है कि उसके मज्जनकी औषधि-गन्ध निरर्थक हो जाती है। पुनः गण्डूष कराके ललिता स्वर्णपत्रकी पतली सुकोमल जिह्वा-प्रक्षालिकासे प्रियाकी जिह्वा स्वच्छ करती है। ललिताके द्वारा शक्तिपूर्वक यह सब क्रिया करनेसे कुछ काल तो प्रियाकी भावदशा निज देह एवं ग्रामके दृश्यको पकड़ती है, किन्तु ललिता जैसे ही नापितकन्या सुगन्धाको उबटनके लिये आह्वान करनेको मुड़ती है, तत्क्षण ही प्रियाकी वृत्तियाँ पुनः निवासस्थलको, पिंजरेसे उन्मुक्त पक्षीकी तरह त्यागकर अपनी अशरीरी सत्तासे पहुँच जाती है - वृन्दाकाननके उस भूखण्डपर जहाँ उसके प्राणपति ब्रजेन्द्रनन्दनके बिम्बारुण अधरोंपर विराजित वेणुकी महामोहन स्वरलहरी मुखरित हो रही है। प्रियाका दृश्य ही बदल जाता है। उसे सखियों-मञ्जरियोंके स्थानपर दृष्टिगोचर होने लगती है – सघन सुन्दर पुष्पजालोंसे मण्डित, फल एवं प्रसूनोंके गुरुभारसे अवनत काननाधिष्ठात्री वृन्दादेवी जो प्रियाके प्राणसर्वस्व प्रियतमके पादपद्मोंपर अपना सर्वस्व समर्पित करने जा रही है। देखो, देखो, पहले तो इस वृन्दाने अपने कोषकी अपरिसीम सम्पदा प्रियतमके चरणोंमें समर्पित कर दी और अब अपने अधिकृत समस्त चर-अचरको साथ लिये वह स्वयं ही उनपर न्यौछावर होने जा रही है। ओह! जब जड़ भूमि होकर भी काननाधिष्ठात्री प्रियतमपर इस प्रकार न्यौछावर है, फिर वह राधा उनसे इतनी दूर क्यों? प्रिया उच्च स्वरमें पुकारती हुई दौड़ पड़ती है – "जीवनसर्वस्व! मैं आई ....।"

रानीका उत्कट भावावेश देखकर ललिता घबड़ा जाती है। वह रानीको झकझोरकर किसी प्रकार सचेत करती है। सभी सखियाँ मिलकर बाहुसे सहारा देकर प्रियाको मनोहर रत्नखचित स्वर्णनिर्मित दीर्घाकार चौकीपर स्वच्छ शुभ्र क्षौमके गद्देपर विराजित कर देती हैं। ललिता गोलाकार उपधान लगाकर प्रियाको लेटा देती हैं। सखियाँ रानीके कुन्दनद्युति अङ्गोंसे कञ्चकी अपसारित कर देती हैं। नापितकन्या सुगन्धा रानीके केशर एवं कर्पूरके मिश्रणके वर्णके अङ्गोंकी सुन्दरता देखती हुई विथकित हो उठती है। सुगन्धा यह देखकर चकित हो उठती है कि एक क्षण तो रानीकी त्वचा उसे केशरवर्णी दृष्टिगोचर होती है, किन्तु दूसरे क्षण ही सुगन्धाके नेत्रोंमें रानीकी त्वचामेंसे मुकुरवत् एक नीलाम्बुजवर्णी किशोर मुस्कुराता प्रतिबिम्बित हो उठता है। सुगन्धा चकित है। क्या यह भानुनन्दिनी श्रीकृष्ण-प्रवाहिणी मात्र स्वच्छ रससरिता भर है? इसका अपना देह है ही नहीं? क्या प्रियतम ही इसके देह हैं? सुगन्धाको रानीकी लाल-लाल कमलपत्र-सी पगथलियोंसे चूड़ा पर्यन्त अङ्ग-अङ्ग ही नहीं, वरं रोम-रोममें भी नीलमयङ्क मुसकाता दृष्टिपथमें आता है। सुगन्धा स्तम्भित हो जाती है।

ललिताकी भी विचित्र स्थिति है। वह रानीको सँभालती है तो सुगन्धा जड़िमाभावमें डूबी दृष्टिपथमें आती है। धन्य है सेवाव्रत और उसकी आदर्श ललिता महारानी जो क्रीड़नक फिरकिनीकी तरह स्वयं भावशून्य बनी सभीको यथायोग्य सेवामें नियुक्त रख रही है।

ललिता सुगन्धाको डपटकर पुनः सचेत करती है कि यदि इसी प्रकार सेवामें भावविक्षेप होता रहा तो नन्दतनयको तो क्षुधातुर ही वनगमन करना पड़ेगा। ललिताके शब्द सुनकर नलिनी एवं सुगन्धा जागरूक होकर सेवा करने लगती हैं।

ललिता मन्द किन्तु सुस्पष्ट शब्दोंमें रानीके सम्मुख वार्त्ता सुनाने लगती है। रानी भी पूरे मनोनिवेशसे ललिताकी कथा सुनने लगती है –

" आज निरे प्रभातकालमें चित्राने एक विचित्र स्वप्न देखा है। उस स्वप्नकी कथा कह रही हूँ।" रानी हुङ्कार देकर ललिताके सम्मुख अपनी श्रवणोत्कण्ठा व्यक्त कर दे रही है। नापितकन्या नलिनी रानीके निरावृत अङ्गोंमें पहले सुगन्धित तैल लगाती है, जिससे उबटन करते समय उसकी स्वर्णतन्तु-सी रोमावलि उखड़े नहीं। रानीकी घनकृष्ण केशराशि नलिनीके द्वारा वेणी-निर्बन्ध होते ही कञ्चनशिलासम उसकी पीठपर लहराने लगती है। शीतल मन्द समीर उस केशराशिको इतस्ततः उड़ाने लगता है। सुगन्धा पैरों एवं पिण्डलियोंमें शनैः शनैः उबटन मल रही है।

ललिताकी वार्त्ता रानी सुन रही है – " चित्राने स्वप्नमें देखा कि वह किसी अपरिचित देशमें आ गयी है। अवश्य वह देश है - यमुनाके किसी पुलिनवर्त्ती भागमें ही। चित्रा अपनेको नितान्त एकाकिनी देख विचारोंमें डूब जाती है - 'यहाँ मुझे कौन ले आया? प्रियतम ब्रजेन्द्रनन्दन यहाँसे न जाने कितनी दूर हैं! यहाँ तो रानी एवं सखियाँ भी दृष्टिगोचर नहीं हो रहीं।' आश्चर्यमें भरकर चित्रा सर्वत्र दृष्टि डालती है। वहाँ यमुनाके किनारे-किनारे सुन्दर सुसज्जित प्रासाद अवश्य थे। उनमें पार्श्ववर्त्ती रमणीय उद्यान भी थे। रसमत्त भ्रमरोंकी गुञ्जार भी हो रही थी। किन्तु चित्राको वहाँ किसी जन-समुदायके होनेका कोई चिह्न ही नहीं दृष्टिगोचर हो रहा था। चित्रा एक-एक सखीका नाम ले-लेकर पुकारने लगी। ललिता, विशाखा, इन्दुलेखा, चम्पकलता, रङ्गदेवी, तुङ्गविद्या, सुदेवी - उसने सभी सखियोंको उच्च स्वरसे पुकारा। किन्तु उत्तरमें वहाँ यमुनापुलिनस्थित वनतरुओंने गिरिशृङ्गोंने प्रतिध्वनि मात्र लौटा दी।"

रानी अतिशय उत्कण्ठापूर्वक ललिताकी वार्त्ता सुनती हुङ्कार भर रही है। सुगन्धा रानीके अङ्ग-अङ्गमें ज्यों-ज्यों उबटन लगाती है, त्यों–ही–त्यों रानीके अङ्गोंसे महकके आवर्त्त पर आवर्त्त उठ रहे हैं। रानीकी सघन अङ्ग-गंधसे भ्रमरावली चतुर्दिक् उसे घेरकर झङ्कार कर उठती है। अवश्य ही वृन्दाका भ्रमरावलीको स्पष्ट आदेश है कि वह प्रियाके अङ्गोंसे इतनी दूरी बनाये रखे कि प्रिया न तो भयभीत हो, न ही सखियोंकी सेवामें कोई बाधा ही आवे।

ललिता कह रही थी – "चित्राकी उत्कण्ठाभरी पुकारका जब कहींसे भी प्रत्युत्तर नहीं मिला तो चित्रा गहन चिन्तामें समा गयी। चित्राको सरोवर, तरुश्रेणी, तपनतनयाकी शुभ्र बालुकाराशि – सभी दीख रहे थे, किन्तु वे सभी निर्जन थे। एक बार तो चित्राके मनमें यह भी आया कि संभव है मुझसे परिहास करनेके उद्देश्यसे ही प्रियतम श्यामसुन्दरने सभी सखियोंको यहीं कहीं छिपा दिया होगा और स्वयं भी यहीं छिपे होंगे। अतः वे करुणाभरी वाणीसे प्रियतम नीलसुन्दरको पुकारने लगी, पर सब व्यर्थ हुआ। चित्राकी सभी पुकारें पुलिनके कण-कणमें गूँजती रहीं और तब पुनः नीरवता छा गयी। चित्राको कोई कारण नहीं समझमें आ रहा था कि वह इस जनशून्य एकाकी भूमिखण्डमें आ कैसे गयी?"

"अकस्मात् उसके मनमें एक बात आयी कि पृथ्वी, जल, तेज, वायु आकाश - सभी व्यापक तत्व हैं। मैं इनसे जिज्ञासा करूँ, ये मुझे मेरे प्रियतमका पता अवश्य बता देंगे। किन्तु दूसरे ही क्षण उसके मनमें अपनी ही सोचका प्रतिवाद ध्यानमें आ जाता है। 'अरे! ये पृथ्वी आदि पाँचों तत्व सर्वदेशगत ज्ञान तो अवश्य रखते हैं, किन्तु इनमें वाणी तो है ही नहीं। वाणीके अभावमें ये अपना मंतव्य मुझपर प्रकट तो कर ही नहीं पावेंगे। हाँ, यदि वह कोई प्रेमपाती लिख दे, तो यह वायु उसका पत्र प्रियतमतक अवश्य पहुँचा सकती है।' बस, चित्राने एक विकसित पद्मका पुरैन पत्ता ले लिया और माँगमें भरी सिन्दूरसे प्रियतमको सन्देश लिखना प्रारंभ कर दिया। किन्तु दूसरे ही क्षण उसके मनमें पुनः विचार आया – 'कहीं ऐसा ही हो कि प्रियतम श्यामसुन्दरने ही उसे अपनेसे पृथक्, इस एकाकी निर्जन स्थानमें भेजनेका विधान किया हो। तब तो वह उनकी इच्छाके प्रतिकूल उनसे मिलनेका प्रयास क्यों करे? यह तो प्रीति-मर्यादाकी बात नहीं होगी। नहीं, नहीं! वह ऐसा कदापि नहीं कर सकती, चाहे उसके प्राण ही एकाकी तड़प-तड़पकर निकल जावें। और कहीं वस्तुतः ही प्रियतम एवं सभी सखियाँ उसके लिये व्याकुल हो रही होंगी तो? अच्छा, आकाश तो वाणीयुक्त है, वह शब्दतन्मात्रक है, सर्वव्यापी भी है, उसीसे पूछती हूँ।' बस, चित्रा स्वप्नमें ही आकाशसे प्रार्थना करने लगी।"

"चित्राने देखा कि उसकी प्रार्थना पूर्ण ही नहीं हुई, इसी मध्य उसके समीप पाँच दिव्य देवपुरुष प्रकट हो जाते हैं। नतजानु हुए, अञ्जलि बाँधे वे दिव्य पुरुष उसके चरणोंमें प्रणाम करते हैं। चित्रा सोचने लगती है -'मैंने अपने पिताके मुखसे अनेकों बार देवताओंके स्वरूपका वर्णन तो सुना है, लक्षणोंसे तो ये उनके समान ही हैं। इनके चरण भी पृथ्वीका संस्पर्श नहीं करते। किन्तु ये देवगण होकर भी मेरे चरण क्यों स्पर्श करना चाहते हैं?'

"चित्रा उन देवपुरुषोंको अपने करोंसे निषेध करती हुई उसे स्पर्श एवं प्रणाम नहीं करनेका संकेत करने लगती है। उसी समय उन पाँचों देवपुरुषोंमेंसे एक बोलने लगता है – 'देवि! हम पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं व्योम - इन पाँचों तत्वोंके अधिष्ठात्री देवगण हैं। आपके आमंत्रणपर यहाँ उपस्थित हुए हैं। आप आज्ञा करें, आपको कौनसी सेवा करके हम अपना जीवन कृतार्थ करें?'

"चित्रा यद्यपि अतिशय सङ्कोचमें है, फिर भी प्रियतम नीलसुन्दरका पता जाननेकी जिज्ञासावश वह उनका अता-पता देवगणसे पूछ बैठती है – ' कहाँ हैं मेरी प्राणोपम सखियाँ – राधा, मञ्जुश्यामा, ललिता, विशाखा? कहाँ हैं मेरे प्रियतम प्राणवल्लभ यशोदानन्दन? हाय! इन सभीके बिना मैं कैसे जीवित रहूँगी? ' चित्राके नेत्रोंमें जल भी आता है। देवगण भी द्रवित हो उठते हैं - वे सभी ऐश्वर्यवान् हैं – किन्तु उनकी सर्वज्ञता भी मात्र प्राकृत है। अप्राकृत लीला-विश्वके सम्बन्धमें इन सभीकी बुद्धि कुण्ठित ही है। देवगण चित्राकी जिज्ञासाका कुछ भी उत्तर नहीं दे पाते। कुछ काल विचार करनेके पश्चात् देवगण चित्रासे यही निवेदन करते हैं कि 'वे सभी यद्यपि चित्रादेवीके प्राणपति नीलसुन्दरकी सत्तासे तो अवश्य परिचालित हैं, किन्तु प्राकृत प्राणी होनेके नाते उनका ज्ञान सीमित है। वे विश्ववित् श्रीकृष्णको देख पावें, उनका ज्ञान करलें, यह संभव ही नहीं है। हाँ, प्राकृत विश्वान्तर्गत तो वे सबकुछ जान पाते हैं। क्योंकि चित्रादेवीने उन्हें स्मरण एवं आह्वान किया था, इसीलिये वे यहाँ प्रकट हो सके हैं। अन्यथा अपनी सामर्थ्यसे

तो वे चित्रा-जैसी लीलाराज्यकी नित्यसिद्धा गोपाङ्गनाओंकी छायाके भी दर्शन नहीं कर पाते। हाँ, यदि देवी चित्रा अपनी चरणधूलि उन्हें प्रदान कर दें तो उसे अपने प्राकृत नेत्रोंमें आँजकर वे अवश्य ही ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शन पानेकी योग्यता प्राप्त कर सकते हैं। और तब वे चित्रादेवीको उनका पता भी बतानेकी सेवा कर सकते हैं। प्राकृत जगद्विधाताकी चेष्टाएँ, उनके द्वारा रचित विश्वके प्राणियोंके सम्पूर्ण मनोभाव, अतीत-अनागत एवं वर्तमान प्राकृत विश्वका सूक्ष्मतम स्पन्दनतक तो वे अनायास अकस्मात् ही जान लेते हैं। किन्तु अप्राकृत लीलाराज्यके सम्बन्धमें तो वे क्या उन सभीके परमेश्वर त्रिदेव – ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र तक भी पूरे कोरे कागजकी तरह अनभिज्ञ हैं।' कहते-कहते देवगण पुनः चित्राको प्रणाम करने लगते हैं।''

''चित्रा सङ्कोचवश इन देवताओंसे जितना संभव हो पाता है, दूर हटनेकी चेष्टा करती है। बस, देवगणोंको चित्राके भूमिसे हटते ही उसके चरणोंकी धूलि उपलब्ध हो जाती है और देवगणोंके परम सौभाग्यका द्वार ही खुल जाता है। ओह! न जाने कौन-कौनसे जन्मोंके इनके श्रीकृष्ण-दर्शनके मनोरथ थे, ब्रजेन्द्रकुलचन्द्रके अमित माधुर्यका, अनन्त प्रेमवैभवका आस्वादन इन्हें प्राप्त होगा - इस आशासे देवगणोंके हृदयमें आनन्द एवं कृतकृत्यताकी तरंगें उत्थित होने लगती हैं। उनका रोम-रोम पुलकित हो उठता है। पाँचों देवगण उन्मत्त हुए-से चित्रादेवीकी चरण-संस्पर्शित धूलिमें लोटने लगते हैं वे उस धूलिसे अपने नेत्र आँजने लगते हैं।''

''चित्रा देखती है कि पाँचों देवगण स्तुति कर रहे हैं – 'हे श्रीकृष्णचन्द्र! तुम्हें नमस्कार है। अहा! नवजलधर-श्यामल अङ्गोंवाले, सौदामिनी सदृश पीताम्बरधारी, गुञ्जारचित कर्णभूषणधारी, मयूरपिच्छसे परिशोभित चूड़ावाले, वन्य पत्रपुष्परचित वनमालाधारी वनमालीको अनन्त कोटि-कोटि वन्दन हैं। सुकोमलतम पादपद्मोंसे चिन्मय वृन्दावनभूमिके विहारीकी जय हो!' फिर वे ही देवगण – 'जय हो देवि! तुम्हारी जय हो! तुम्हारी कृपासे हम सब कृतकृत्य हुए। प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्र अब बस, तुम्हारे निकट पहुँचने ही वाले हैं। हम लोगोंको आज्ञा हो!' कहते-कहते अन्तर्धान हो जाते हैं।''

''चित्रा आश्चर्यचकित हो उठती है। उसका मुख उत्तर दिशाकी ओर है। कुछ ही क्षणोंमें वह देखती है कि जिस दिशाकी ओर उसका मुख है, उसी ओरके लताजालको चीरते हुए उसके प्राणपति प्रियतम नीलसुन्दर प्रकट हो जाते हैं।''

''ओह! किसमें सामर्थ्य है जो चित्राके नयनभूषण, प्राणवल्लभ श्रीकृष्णचन्द्रके चञ्चल श्रीअङ्गोंकी शोभाका शब्दोंमें वर्णन कर सके। हँस-हँसकर सर्वत्र वनमें अपनी चञ्चल चितवन निक्षेप करते, सुन्दर काली घुँघराली बिखरी अलकोंको एक हाथसे समेटते, पीताम्बरके उत्तरीयको फेंटरूपमें कसे, अधोवस्त्रको चतुर्दिक् पवनसे फहराते, वनमेंसे प्रकट होते अपने प्रियतमको निहारते ही चित्रा उनकी ओर दौड़ पड़ी। उसके मनमें तो अपने प्रियतमके प्रति असंख्य आक्रोश हैं किन्तु मुखसे बस, इतने ही शब्द निकलते हैं–'बड़े निष्ठुर हो तुम! भला, मुझे यहाँ अकेली छोड़कर कहाँ चले गये थे?'

ललिता रानीको कथा सुना ही रही थी, इतनेमें ही दक्षिण कोनेकी सीढ़ीसे चढ़कर प्रासादके ऊपरी तल्लेपर एक मञ्जरी आती है एवं सङ्केतसे ललिताको सन्देश देती है कि उसे नीचे पूजागृहमें जटिला सास बुला रही है।

ललिता चित्राको अपने पास बुलाकर कानमें कहती है – ' संभव है, नन्दभवनसे कुन्दलता अथवा धनिष्ठामेंसे कोई आयी होगी, इसीलिये माताजी बुला रही हैं। देख, शेष स्वप्नकी बात रानीको तू ही सुना दे।'

चित्राने स्नेहकी बाढ़से अपनी दक्षिण भुजा तैलमर्दन कराती रानीके अङ्गोंपर फेरते हुए कहना प्रारंभ किया। चित्राके संस्पर्शसे रानीके नेत्र मुकुलित हो गये। चित्रा कहने लगी – '' प्रियतमने अविलम्ब मुस्कुराकर कहा - ' मैं तो भगवती त्रिपुरसुन्दरीको प्रसन्न करनेके लिये तुम सबसे एकाकी तप करनेको गया था।' प्रियतमकी बात सुनकर मुझे हँसी आ गयी। मैंने बहुत चेष्टा की कि वह हँसी रुक जाय। किन्तु बार-बार हँसी मेरे भीतर समाती ही नहीं थी, उन्मुक्त

फूट पड़ती थी। मैंने अन्ततः किसी प्रकार हँसी रोककर प्रियतमसे पूछा – 'तपस्वीजी! तुम्हें भगवतीकी अर्चनासे प्रयोजन क्या था? क्या तुम्हारे सभी प्रयोजन मेरी सखी प्रिया पूर्ण नहीं करती है?' इसी समय मैंने देखा – प्रियतम अतिशय गंभीर एवं भावार्द्र हो उठे हैं।''

''वे कहने लगे – 'चित्रे! जिस समय भी मैं अपनी प्राणवल्लभापर दृष्टिपात करता हूँ तो उसकी सुकोमलता, स्निग्धता एवं सौन्दर्यको निहारता अपलक स्थिरनेत्र हो उठता हूँ। कलकी ही बात है, तुम निकुञ्जमें मेरी प्रियाका शृङ्गार कर रही थीं। तुमने उसके नेत्रोंमें अञ्जन लगाया, उसके कण्ठदेशको वनमालासे सुभूषित किया। मैं उस काल लताजालोंकी ओटमें अपनेको सुगुप्त किये अपनी प्रियाके निरावरित एवं निराभरित अङ्गोंकी शोभा निहार रहा था। ओह! मेरी प्रियाका एक रोम भी असमोर्ध्व माधुर्यके अमृतसे सतत पूर्ण है। मेरी प्रियाके समग्र कलेवरकी कोमलता, मृदुलता अनिन्द्य असीम है। मैं उस काल यह देखकर अतिशय व्यथित हो उठा था कि तू जो मेरी प्रियाके सुकोमलतम कण्ठदेशमें इतनी भारी एवं बृहद् वनमाला झुला रही है, तो मेरी प्रियाकी सुकुमार ग्रीवा इतने पुष्पभारको भला, कैसे सहती होगी। प्रियाके मृदुलतम उरोजोंमें, उसके परम कमनीय उदरमें अपने तीक्ष्ण वृन्तोंके आधातसे ये पुष्प उसे विद्धकरं कितनी वेदना पहुँचाते होंगे। यद्यपि तुमने मेरी प्रियाके नेत्रोंमें आँजनेके लिये जो भी अञ्जन निर्माण किया था, वह नीलपद्मके परागसे भी अधिक सुकोमल था, किन्तु फिर भी चित्रे! मेरी प्रियाके नेत्रकमल तो इतने सुकोमल हैं कि उसकी कल्पना विधाता भी नहीं कर सकता। तब, उस अञ्जनसे मेरी प्रियाके नेत्रोंमें कितनी वेदना हो रही होगी, सत्य ही उस व्यथासे मेरी तो आत्मा ही सिहर उठी। तुम तो उसे बहुमूल्य रत्नोंसे दमकते आभूषण पहना रही थी। मेरी प्रियाकी अभिनव चिन्मय सुकोमलतम त्वचा उन आभूषणोंके नुकीले कोणोंसे निश्चय ही क्षत-विक्षत हो उठी होगी।'

'यद्यपि मेरी प्रिया तो – मेरे नेत्रोंको इन आभूषणोंकी शोभासे सुख मिलेगा – इस भावसे मेरी सुख-स्मृतिमें अपने आपको ही विस्मृत किये कठोर आभूषणोंके नुकीले कोणोंकी शूलकी तरह चुभनेवाली वेदना-व्यथाको भी सह लेती है। मैं मानता हूँ कि तूने यह कज्जल तनिक भी प्रमाद न करके परम स्वच्छ, मृदु, स्निग्ध एवं सुचिक्कण सिद्ध किया है। यह कज्जल मेरे वर्णकी साम्यतासे युक्त होनेसे मेरी प्रियाको हर्ष भी देता है। किन्तु प्रियाके सुकोमलतम नेत्रकोरकोंमें तो वह अवश्य ही खटकता होगा। अब चित्रे! मैं मेरी प्रियापर इतना अत्याचार कैसे सहन करूँ?'

'चित्रे! मैं अपनी प्रियाके हृदयको भली प्रकार जानता हूँ। उसमें स्वयं शृङ्गारित होकर अपनी सुन्दरता प्रदर्शित करनेकी भावना है ही नहीं। वह तो मेरे चरणसरोजकी मधुर मकरन्द-रस-सुधाका प्रेम-मादक रस पीकर अपना विवेक ही खो बैठी है। यदि मैं उसे इसी क्षण मना कर दूँ कि तू पुष्पमालाएँ मत पहन, आभूषणोंसे अपने अङ्गोंको मत सुसज्जित कर, तो वह इन्हें संस्पर्शित भी नहीं करेगी। उसकी बुद्धि तो अनवरत मेरे सङ्ग विविध क्रीड़ाकर मुझे सुख पहुँचानेका ही अध्यवसाय करती रहती है। मेरी प्रियाका अहङ्कार तो चित्रे! मेरे रुचिकर कार्योंके सङ्कल्पमें ही संलग्न रहता है। यद्यपि तुम सभी सौन्दर्यभावनासे, मात्र मुझे सुखी करनेके सङ्कल्पसे ही कर्पूरचूर्ण, अगुरु, चन्दनादि द्रव्योंके मिश्रणसे मेरी प्रियाका पृष्ठदेश, बाहुयुगल, कुचद्वय, वक्षस्थलादि विलेपित करती हो, किन्तु यह लेप्य सामग्री निश्चय ही मेरी रानीको कुरूप बनाती है। उसकी प्राकृत शृङ्गारशून्य छवि, उसका निरावरण अनन्त सौन्दर्य तो इस ऊपरी लेपसे आच्छादित ही हो जाता है। वस्तुतः तो शृङ्गार ही मेरी प्रियाके अङ्गोंसे लगकर शृङ्गारित हो जाता है। मेरी प्रियाका शृङ्गार तो मात्र मेरे प्रति उसका अतिशय प्रगाढ़ प्रेम है।'

'ललिता मेरी प्रियाके अनाविल निर्मल सौन्दर्यसीमा कटिभागको स्वर्णतन्तुओंके द्वारा शिल्प किये हुए नीले रेशमके लहँगेसे लपेट देती है। वह उसे उसकी सुकोमलतम कटिसे अतिशय क्रूरतापूर्वक लाल-लाल क्षौमरज्जुसे कस देती है। मेरी प्रियाको तो इस इन्द्रनीलवर्णी लहँगेके रूपमें उसके कटिदेशसे मैं ही लिपटा दृष्टिगोचर होता हूँ, अतः वह भावावेशवश इस क्रूरताको सह जाती है।'

'किन्तु मेरी प्रियाके स्निग्ध सुकोमलतम कटिभागके साथ इस लहँगेके द्वारा होनेवाला निर्मम अत्याचार मैं कैसे सहन करूँ? क्या मैं अपनी प्राणप्रियाके प्रपीड़नको सहता रहूँ? मेरी प्रिया तो अभी इसी क्षण मेरे सङ्केत मात्रसे इसे उतारकर निर्वस्त्र हो जावेगी। उसकी तो एक ही टेक है, मेरे संकेतपर लोक-वेद-धर्म एवं कुलके यश-मान सबको न्यौछावर कर देना। उसका तो मात्र एक ही व्रत है, मुझे प्रसन्न करनेके लिये हँसते हुए होम हो जाना। उसके मनको स्त्रियोचित लज्जा एवं शीलरक्षाके विचारकी छाया भी संस्पर्श नहीं करेगी। वह तो मेरी रुचि देखते ही तत्क्षण उसके ढाँचेमें ढल जायेगी। किन्तु चित्रे! ये सांसारिक लोग तो उसे उन्मादिनी एवं विक्षिप्त ही मान बैठेंगे। ये उसे कपाटोंमें शृंङ्खलाओंसे बाँधकर बन्द कर देंगे। वह मेरे विरहमें जल-विहीन मीनकी तरह तड़प-तड़पकर प्राण दे देगी।'

'चित्रे! मेरी प्रिया मुझे कितना स्नेह करती है, इसका एक उदाहरण मात्र सुनले। उस दिवस मञ्जुश्यामा मेरी प्राणप्रियाकी वेणी गूँथ रही थी। श्यामला लघु-लघु सुकोमलतम कलियोंको गूँथ-गूँथकर उसे मालाएँ रचनाकर दे रही थी। मञ्जुश्यामा परम कुशलतासे उन मालाओंको प्रियाकी लटोंके साथ इस प्रकार सुगुम्फित कर रही थी कि वेणी अद्भुत सुन्दर हो उठे और उसे निरखकर मैं सुख-सिन्धुमें निमग्न हो जाऊँ। किन्तु मेरी प्रिया अपनी वेणीको रचनाके मध्य ही अपनी केशराशिको इस प्रकार प्रकम्पित कर देती कि वेणी बन्धन-विहीन होकर उन्मुक्त हो जाती। प्रकम्पित केशराशिसे मालाएँ भूमिपर बिखर जातीं। अनेकों बार अपने श्रमको इस प्रकार व्यर्थ होते देख खिन्नमना मञ्जुश्यामा अपनी बहिनसे इसका हेतु पूछती है –

बूझति साँवरि बहिन, बतारी ।

* * *

हौं रचि-रचि कच तोर सँभारत, बेनि निहारि जाउँ बलिहारी ।
पलक परन नहिं परत देत तुम, जानि-अजानि कँपाइ बिदारी ।।

* * *

अलकन यह पिय कौ बंधन लखि सपनेहुँ सूल परत उर भारी।।

'अरी बहिन! तू मुझे इसका अन्ततः हेतु बता तो सही। मैं तो इतने श्रम एवं चतुराईसे तेरी वेणी गुम्फित करती हूँ, किन्तु तू इस प्रकार प्रकम्पित कर देती है कि सारे केशबन्धन खुल जाते हैं, मेरा समग्र वेणी-गुम्फन-प्रयास ही व्यर्थ हो जाता है।'

'चित्रे! सुन। मेरी प्राणप्यारी इसका कैसा प्रीतिभरा उत्तर देती है – 'देख बहिन मञ्जू! मैं मात्र तेरा मन रखनेके लिये ही वेणीरचना करवा लेती हूँ। किन्तु जब दृष्टि इन केशोंके बन्धनपर जाती है तो बंधनमें जकड़े-बँधे मुझे ये मेरे प्रियतम नीलमणि ही दृष्टिगोचर होते हैं। मञ्जू! मैं अपने प्रियतमको भले पुष्परज्जुसे ही सही, इस प्रकार बँधा स्वप्नमें भी भला कैसे देख सकती हूँ। मेरे हृदयमें तो शूलसे भी अधिक व्यथा होती है।'

'अब बता चित्रे! कहाँ तो प्रियाका मेरे प्रति इतना असीम प्रेम और कहाँ मेरी ऐसी हृदयहीन निठुराई!'

'चित्रे! मेरे पास अब इस कठिन उलझनको सुलझानेका अन्य उपाय ही क्या शेष बचा था? अतः मैं प्रातःकाल अपनी प्रियासे बिदा होते ही निकुञ्जसे नन्दभवन न जाकर सीधे भगवतीके मन्दिर चला गया था।'

'देवी-मन्दिरमें जैसे ही मैंने प्रवेश किया, देवीने साक्षात् प्रकट बोलकर मुझसे कहा - "वत्स यशोदातनय! तुम मेरे पास यहाँ चले आये हो, एवं तुम्हारी मैयाके प्राणरक्षार्थ मुझे वहाँ नन्दभवनमें तुम्हारी छाया स्थापित करनी पड़ी है। तुम्हें भवनमें नहीं पाकर - किसी महाअसुर द्वारा तुम्हारा अपहरण कर लिया गया है - वह तो यही मान्यता सुदृढ़ कर लेती एवं उसकी प्राणरक्षाका सङ्कट उपस्थित हो जाता। तेरी प्रतीक्षामें गौएँ, सखागण, सारे गोप एवं पूरा नन्दव्रज ही विरह-व्याकुल हुआ श्मशान हो उठता। वत्स! भविष्यमें ऐसा प्रमाद कभी मत करना।"

'मैंने कहा – "माते! मेरी एक बहुत ही कठिन उलझन है। मुझे तू यही बतादे कि तेरे इस अनादि अंतहीन सृजनमें सबसे सुकोमलतम वस्तु क्या है?" चित्रे! देवीने मुझे यही प्रत्युत्तर दिया कि विश्वकी सर्वाधिक सुकोमल एवं मृदुल वस्तु तेरी प्रिया राधाका एवं तेरे स्वयंका नील-गौर कलेवर है। तुम दोनोंसे अधिक सुकोमल एवं मृदुल वस्तु न किसी भी देश-कालमें कभी सृजित हुई है एवं न ही भविष्यमें हो पावेगी। महादेवीकी वार्त्ता सुनकर मैं आश्चर्यचकित हो गया। मेरी प्रियाकी सुकोमलता तो मेरे सम्मुख प्रत्यक्ष थी, किन्तु मेरे नील कलेवरकी गणना महादेवीने कोमलतम वस्तुओंमें कैसे करली, मेरे चकित होनेका यही हेतु था। किन्तु महादेवीकी त्रिकाल-सत्य वाणीपर सन्देह करनेका तो कोई प्रश्न ही नहीं था। बस, मैंने महादेवीसे मेरे मनोरथ पूर्ण होनेका वरदान माँग लिया।'

'चित्रे! मेरा चिरकालीन मनोरथ यही था कि अपने सुकोमलतम नील कलेवरसे मैं जो चाहूँ, वही बन जाऊँ, एवं उससे जहाँ चाहूँ, वहाँ समा जाऊँ। मैंने जैसे ही इस मनोरथकी पूर्त्तिका वर माँगा, महादेवीने तत्क्षण बेहिचक 'तथाऽस्तु' कह दिया। चित्रे! मैं जगन्मातासे यह वर लेकर ही आ रहा था कि मुझे तू दृष्टिगोचर होगयी। ओह! आज तो अथाह आनन्दसे मेरे चरण ही धरापर नहीं गिर रहे हैं। मेरा रोम-रोम नृत्यरत है।'

'चित्रे! अब मेरी प्रियाका कोई चाहे जैसे शृङ्गार करे, अब वह शृङ्गार मेरे सुकोमलतम नील कलेवरसे ही होगा, क्योंकि उस सभी शृङ्गारमें मैं समा जाऊँगा। ओह! अब विविध मणियोंसे विजड़ित, कोटि-कोटि सूर्योंके प्रकाशको हेय बनानेवाली, प्रियाके मस्तकपर सुविराजित चन्द्रिका नामक आभूषणमें मैं समा जाऊँगा। अब नव विकसित शुभ्र कमलोंकी शोभा धारण करनेवाले मेरी प्रियाके नेत्रोंमें संलग्न सुचिक्कण काजल मैं हो जाऊँगा। अब प्रियाके कानोंके अतिशय चञ्चल कुण्डल मैं हो जाऊँगा, जिससे मेरी प्रियाके सुकोमल नवपल्लवोंसे कान कभी पीड़ित नहीं हो पावें। अब तो शङ्खके तुल्य प्रियाकी ग्रीवामें झूलती मुकुलित मल्लिकाकी माला मैं बन जाऊँगा, जिससे उसके पुष्पवृन्त मेरी प्रियाकी सुकोमलतम त्वचापर कहीं भी आघात नहीं कर सकें। अब उनके हृदयमें उरोजोंके ऊपर शिवधारावत् सुशोभित मुक्तामालाओंमें मैं समा जाऊँगा। अब प्रियाके उरपर सुविराजित हीरहारावली एवं मणिमालाएँ मैं बन जाऊँगा। चित्रे! अब सखियाँ मेरी प्राणप्रियाको जिस मृगमदसे विलेपित करेंगी, वह मृगमद एवं जिस चन्दनपङ्कसे उसके उरस्थलपर चित्ररचना करेंगी, वह चन्दनपङ्क भी मैं ही होऊँगा। मेरी प्रियाके चरणोंमें जिस महावरसे रङ्ग लगाया जावेगा, वह महावर मैं ही हो जाऊँगा। अब तो प्रियाके बाहुओंके बाजूबन्द, उसके हाथोंके कङ्कण, उसकी रत्नमयी चूड़ियाँ, उसकी अँगुलियोंमें धृत अङ्गुलीयक (अँगूठियाँ), उसकी हथेलियोंमें रंजित मेंहदी - सबमें मैं समा जाऊँगा। मेरी प्रियाके चरणोंमें रुनझुन करनेवाली पैंजनी, उसकी क्षीण सिंहशावकसी कटिपर बंधित कटि-किङ्किणी, उसके लहँगेका नीवी-बंधन – सब मेरा नील कलेवर ही होगा। अब मेरी प्रियाकी कटिपर कठोर नीवी-बन्धनजन्य कोई निशान नहीं हो सकेगा। मेरी प्रियाके चरणोंकी अँगुलियोंमें पहने जानेवाले बिछुए, झङ्कार करनेवाली मनोरम चरण-चूड़ियाँ सभी मैं ही होऊँगा।'

'अब प्रिया जो नीली साड़ी बाँधती है, अपने उरोजोंको आच्छादित करने जो कञ्चुकी पहनती है, उन सभी वस्त्रोंके अणु-अणुमें, इन वस्त्रोंके तन्तु-तन्तुमें मैं समा जाऊँगा। जिस पुष्पराशिसे मेरी प्राणप्रियाकी वनमाला गूँथी जाती है, जिन पुष्पोंको प्रिया अपनी वेणीमें गूँथती है, जिस कङ्कतिकासे मेरी प्रिया अपने केश सँवारती है, जिस दर्पणमें वह अपनी मुखछवि निहारती है, इन सभी शृङ्गारसाधनोंके रूपमें मैं ही प्रियाके उपयोगमें आऊँगा। जिस पीकदानीमें प्रिया अपनी ताम्बूलपीक विसर्जित करती है, जिस शय्यामें मेरी प्राणप्रिया शयन करती है, जिस तूलपुष्ट उपधानोंका प्रिया प्रयोग करती है, इन सभी वस्त्रों, तोषकों, उपधानों, आस्तरणोंके रूपमें मैं ही प्रियाकी सेवा कर पाऊँगा। जिस भूमिपर मेरी प्राणप्रियतमाके चरण निक्षिप्त होते हैं, मैं उस भूमिपर सुकोमलतम दूर्वा बन जाऊँगा। जहाँ-जहाँ मेरी प्रिया दृष्टि डालती है, वह मनोहर दृश्य मैं ही हो जाऊँगा। मेरी प्रियतमाके श्रीअङ्गोंके सौरभपानसे मदान्ध हुए भ्रमरोंके रूपमें मैं ही मेरी प्रियाके चतुर्दिक मँडराऊँगा। जो गुञ्जनरव मेरी प्रियाकी श्रवणेन्द्रियोंको तृप्त करेगा, मैं वह गुञ्जनरव हो जाऊँगा। मेरी प्रियाकी जिन सुस्वादु सुमिष्ट भोज्य, लेह्य, चोष्य, पेय पदार्थोंसे उदर-परितृप्ति होती है, मैं वे सभी पदार्थ बन जाऊँगा।

जिन पात्रोंमें प्रिया भोजन करती है, जल पीती है, वे सब पात्र भी मैं ही हो जाऊँगा। मेरी प्रियाके कर्णपुटोंमें मधुर कोमल आलाप सुनानेवाली कोकिला मैं बन जाऊँगा। कोकिलाके भी कूजनकी मधुर पञ्चम तान मैं बन जाऊँगा। प्रियाको यदाकदा अनुरंजित करनेवाली शुक-सारिका मैं बन जाऊँगा। मेरी प्राणप्रियाके कानोंमें जानेवाला प्रत्येक स्वर मधुस्यन्दी हो उठे, इसलिये उसके चतुर्दिक् होनेवाली सब ध्वनि भी मैं ही हो जाऊँगा। प्रिया जिस सरोवरका जल पीती है, अथवा कालिन्दीका निर्मल जल पान करती है, वह जहाँ जिस जलसे स्नान करती है, वह सरोवर, कालिन्दी एवं उसका जलस्रोत मैं हो जाऊँगा। जिस व्यजनसे सखियाँ प्रियापर वायुसञ्चार करती हैं, वह खस आदि सुगंधित औषधियोंसे निर्मित व्यजन मैं बन जाऊँगा। जिस व्योमके नीचे प्रियाका देह अवकाश पाता है, वह नभ मैं हो जाऊँगा। जिस प्राणवायुसे प्रिया श्वास लेती है, वह प्राणवायु मैं हो जाऊँगा। जिस चन्द्र-सूर्य एवं नक्षत्रोंके तेजसे प्रियाके अङ्ग ऊर्जान्वित होते हैं, वे चन्द्र-दिवाकर तारागण एवं नक्षत्रसमूह मैं बन जाऊँगा। जिस पृथ्वीपर मेरी प्रियतमाके चरण गिरते हैं, वह पृथ्वी मैं हो जाऊँगा।'

रानीके अङ्ग-प्रत्यङ्ग सखी विशाखा द्वारा जैसे-जैसे स्वच्छ किये जाते हैं, वैसे-वैसे ही ऐसा प्रतीत होता है, मानो कोई अतिशय सुगन्धिमयी गन्धकी ही घनीभूत प्रतिमा घिसे जानेके कारण चतुर्दिक् असीम गन्धप्रवाह प्रसरित कर रही है। उस निस्सृत दिव्य सुवाससे सम्पूर्ण वातावरण ही सुवासकी लहरोंसे परिव्याप्त हो रहा है। मञ्जुलीला स्वर्णघटोंमें जल ला रही है। जिन जलकुण्डोंसे घट भर-भरकर मञ्जरियाँ जल ला रही हैं, उन कुण्डोंमें पुष्पसारकी परतें तैर रही हैं। इन जलकुण्डोंमें विगत रात्रिमें ही सखियों एवं सेविकाओंने पद्म, केवड़ापुष्प, चमेली, बेला, चम्पा, मोगरा एवं खसकी अति मनोहारी घास पर्याप्त डाल रक्खी है। फलस्वरूप जलमें पुष्पसार तैरने लगा है। इन सभी कुण्डोंका जल समशीतोष्ण है एवं अतिशय मनोहारी सुगन्धित है। मञ्जरियोंके कमलनाल-से हाथ जब रत्नजटित स्वर्णघटोंसे प्रियाके कुन्दनद्युति अङ्गोंपर जलधारा विसर्जित करते हैं तो यही अनुभव होता है मानो स्वर्ग-सुन्दरियाँ अन्तरिक्षसे सुमेरु गिरिपर स्वर्गगङ्गाका जलाभिषेक कर रही हों।

भली प्रकार स्नान सम्पन्न हो जानेपर विशाखा चम्पई वर्णके सुदीर्घ वस्त्रसे रानीके अङ्गोंको आवृत करनेका प्रयास करती है। ललिता रानीके पुरातन गीले वस्त्र उतारनेकी चेष्टा कर रही है। रतिमञ्जरी रानीकी समग्र पीठको आच्छादित करती पिण्डलियोंका संस्पर्श करती सुदीर्घ घनी जल टपकाती केशराशिको सुखानेके लिये एक-एककर अनेक सूखे वस्त्रोंमें लपेटती है। जब एक वस्त्र आर्द्र हो जाता है तो दूसरा वस्त्र लपेटती है। केलिमञ्जरी उनकी कुन्दन-शिला-सी सुघड़ पीठको सुकोमल मलमलके वस्त्रसे पोंछ रही है। रानीकी कुन्दनद्युति पीठ दमक रही है। रानीके केशोंका सखियों द्वारा आर्द्रताशोषणसंस्कार सम्पन्न होनेके पश्चात् भी उनमें तनिक भी नमी न रहे इस हेतुसे मञ्जरियाँ अगुरु, घूप, आमला, ब्राह्मी आदि अनेक औषधियोंके धूममें सुखाती हैं।

रानीको नीले रेशमका लहँगा एवं अतिशय सुन्दर जड़ाऊ साड़ी तुङ्गविद्या पहनाती हैं। विशाखा चम्पई वर्णके वस्त्रको जिससे रानी स्नानोपरान्त लिपटी हैं, शनैः-शनैः उनके अङ्गोंसे सरकाती जाती हैं। सुदेवी तनिक-सा आड़ देकर रानीके निर्वस्त्र बाहुओं एवं वक्षस्थलको आवृत करती कौसुम्भी वर्णकी चोली धारण करा देती हैं। विशाखा रानीकी साड़ीमें गाँठ लगाकर सुव्यवस्थित कर देती है, साथ ही सिरपर अञ्चल दे देती है।

प्राङ्गणके पश्चिममें शृङ्गारकक्ष है। सखियाँ रानीको कक्षमें लेजाकर एक स्वर्णजटित बृहदाकार आरसीके सम्मुख रखी लम्बी चौकीपर जिसमें मखमलका सुकोमल गद्दा बिछा है, बैठा देती हैं। रानीका मुख पूर्व दिशाकी ओर है।

मञ्जुश्यामा एवं विशाखा अब कर्पूर, अगुरु, एवं चन्दन द्वारा श्रीमतीका पृष्ठदेश, बाहुयुगल, उदर आदि वे भाग जो वस्त्रोंसे आवृत नहीं हैं, विलेपित कर देती हैं। सूखे अगुरु-चन्दनके चूर्णको वस्त्रावृत भागोंपर भी छिड़क दिया जाता

है। अब चित्रा रानीके ललाटपर सिन्दूरसे सीमन्तरेखा रंजित करती हैं। भालपर कामयंत्र नामक तिलक रचना करती हैं। चन्दन एवं कस्तूरी बिन्दुओंसे तिलकके दोनों पार्श्वोंमें कपोलोंतक कस्तूरीसे पत्रावली रचना करती हैं। प्रियाके उरोजोंपर चम्पकलता मृगमद द्वारा चन्द्ररेखा, पद्म, मकरी एवं आम्रपल्लवोंको चित्रित करती हैं। रङ्गदेवी किशोरीरानीके कर्ण-युगलोंमें स्वर्णनिर्मित कमलकलीके आकारके ताटङ्कयुगल पहनाती हैं। तुङ्गविद्या प्रियाके युगल कानोंमें ऊपरकी ओर स्वर्णसे बने अति मनोहर चक्रशलाका-द्वय पहनाती हैं। विशाखा रानीकी नासिकामें बेसर धारण कराती हैं। ललिता सर्वप्रथम कसौटी प्रस्तरकी शिलामें अपने नख घिसती हैं, जब वह पूर्ण आश्वस्त हो जाती है कि उसके नख प्रियाके सुकोमल नेत्रोंको कहीं भी क्षति नहीं करेंगे, तब अपनी मध्यमा अँगुलीमें मनोज्ञ अञ्जन लगाकर रानीके नयनोंको आँजती हैं।

विशाखा रानीको गुच्छ नामक हार पहनाती हैं। इन्द्रनीलमणिके वलयोंके मध्यमें मुक्तावलिखचित स्वर्णकङ्कण प्रियाकी बाहुओंमें अतिशय शोभा पा रहे हैं। इन कङ्कणोंसे श्यामल ज्योत्स्ना इतस्ततः प्रसरित हो रही है। अब ललिता नाना प्रकारके अङ्गुलीयक रानीको पहनाती हैं। इन अङ्गुलीयकोंमें राधा नाम अङ्कित है।

विशाखा किशोरीके चरणोंमें पदवलय आभूषण पहनाती हैं ये पदवलय अत्यन्त मनोहारी शब्दध्वनि करते हैं। विशाखा प्रियाके हाथमें मालिनकन्या नर्मदा द्वारा आनीत लीलाकमल धारण कराती हैं। लीलामञ्जरी रानीको स्वर्णनिर्मित रत्नजटित आरसी दिखाती है। चम्पकलता पनबट्टेमेंसे दिव्य सुवासित एला, लवङ्ग एवं अन्य प्रकारके सुगन्धित खाद्य द्रव्योंसे पूरित स्वर्णबरकसे समाच्छादित पानका बीड़ा निकालती हैं एवं रानीके मुखमें देती हैं। मञ्जुलीला पुनः एक बीड़ा चम्पकलताके पनबट्टेमेंसे लेती है एवं प्रियाके द्वारा किञ्चित् चर्वित किये जानेके पश्चात् उसका अंश कुन्दवल्लीको देदेती हैं। कुन्दलता यह शेष ताम्बूल भाग नन्दभवनमें कलेऊके पश्चात् प्रियतम श्यामसुन्दरको खिलानेके लिये सँभालकर अपने पनबट्टेमें रख लेती है। इसी प्रकार कुन्दलता प्राणप्रियतम श्यामसुन्दरके द्वारा चर्वित ताम्बूलका कुछ अंश अपने पनबट्टेमें नन्दभवनसे लाती हैं , जिसे वह रानीके मुखमें दे देती हैं।

दृष्टिदोष-निवारणके लिये ललिता रानीके कपोलोंपर एक कज्जलरेखा खींच देती हैं। परन्तु यह कज्जलरेखा प्रियाके मुखकी सुन्दरताको घटानेकी अपेक्षा अधिक अभिवर्द्धित ही कर देती है। वस्तुतः शृङ्गार प्रियाको सजा नहीं पाता। प्रिया इतनी सुन्दर है कि शृङ्गार उनके अङ्गोंमें सजकर स्वयं अपनेको कृतकृत्य करता है। आभूषणोंसे प्रियाकी सुन्दरता निखरती हो, सो बात नहीं। अपितु प्रियाके अङ्गोंसे संलग्न होकर सभी आभूषण स्वयं अनन्तगुने सुन्दर लगने लगते हैं। पुष्पमालासे प्रियाके वक्षस्थलकी शोभा अभिवर्धित नहीं होती, अपितु प्रियाके अङ्गोंसे जुड़कर पुष्पमाला स्वयं अनन्तगुनी सुन्दर बन जाती है। अञ्जन प्रियाके नेत्रोंकी सुषमा बढ़ाता हो सो बात नहीं, अपितु प्रियाके नेत्रोंसे संलग्न होकर अञ्जन स्वयं सौन्दर्यकी सीमा लाँघ जाता है। सभी सखियाँ इस रहस्यको भली भाँति जानती हैं। प्रियतम प्राणवल्लभ नीलसुन्दर भी इसे भली प्रकार समझते हैं। इसके उपरान्त भी सखियाँ एवं प्रियतम प्रियाके शृङ्गारका इसीलिये अनुमोदन करते हैं क्योंकि उन्हें निरन्तर आशङ्का रहती है कि निराभरित प्रिया इतनी असीम सुन्दरी प्रतीत होगी कि उन्हें स्वयं प्रियतम एवं सखियोंकी ही दृष्टि लग जायेगी। इसलिये अपनी प्यारी रानीकी स्वयंके दृष्टिदोषसे रक्षा करनेके उद्देश्यसे ही उसे सखियाँ भी सजाती हैं एवं निकुञ्जमें प्रियतम भी सजाते हैं। इधर स्वयं रानीकी विलक्षण मानसिकता है। उसकी कठिनाई यही है कि जबसे वह जन्मी है तभीसे उसे अपनी स्वयंकी छवि आरसीमें कभी दिखी ही नहीं। जब भी उसका शृङ्गार मैया कीर्त्तिदा किंवा उसकी मौसी कीर्त्तिमती अथवा उसकी ललितादि सखियोंने किया एवं उसे आरसीमें अपनी छवि दिखाई उसे अपनी छविके स्थानपर अपने प्रियतम नीलसुन्दरकी मुखशोभा ही दिखाई पड़ी। आज भी कालिन्दीके स्थिर जलमें यदाकदा स्नान करते समय यदि वह अपना प्रतिबिम्ब देखनेका प्रयास करती है तो उसे प्रियतमकी ही मुखछवि अपने स्थानपर प्रतिबिम्बरूपमें मुसकाती दृष्टिगोचर होती है। हाँ, वह अपनी सखियोंके

नित्य नव-नवायमान अनुपम सौन्दर्यको नित्य ही निरखती है। उन अपनी सखियोंका सर्वविजयी सौन्दर्य देख-देखकर उसे ऐसा निश्चय होगया है कि उनकी तुलनामें अन्य कोई सुन्दर हो ही नहीं सकता और निश्चय ही वह स्वयं भी सुन्दरतामें उनकी तुलनामें कहीं नहीं ठहरती। उसे ऐसा निश्चय होगया है कि वस्तुतः वह परम कुरूपा तो है ही, अवगुणोंकी भी खान है। उसे यह अवश्य अमोघ विश्वास है कि उसके प्रियतम उसके अवगुणोंकी ओर देखते ही नहीं एवं उसकी असुन्दरताकी पूर्णतया उपेक्षा करते हुए उसे अनन्त असीम प्रेम करते हैं। उनका उसके प्रति गुणरहित, कामनारहित, अति विशुद्ध प्रेम है। वह तो उनके प्रेमको अपने प्रति आत्यन्तिक मोहकी ही संज्ञा देती है। उसके प्रियतम अतिशय भोले और निर्मल हृदय हैं, इसीलिये उन्हें उससे मोह होगया है। वे उसे सर्वथा अपनी निजी वस्तु समझ बैठे हैं। उसके प्रियतम उससे इतना अधिक मोह करते हैं कि कहीं उसकी कुरूपता उसके स्वयंके सम्मुख भी प्रकट नहीं हो जाय, इस भयसे वे उसके नेत्रोंकी पुतलियोंमें स्थायी निवास कर गये हैं। वह जहाँ भी दृष्टि डालती है, उसे अपने प्रियकी छवि ही दृष्टिगोचर होती है। वे उसे अपना स्वरूप भी देखने नहीं देते। आरसीमें ज्योंही वह अपना प्रतिबिम्ब देखनेकी चेष्टा करती है, उसके रूपके स्थानपर उसके प्रियतम अपना रूप प्रकाशित कर देते हैं। यदि प्रियतम ऐसा नहीं करें और कहीं उसकी कुरूपता उसके स्वयंके सम्मुख व्यक्त हो जाय तो वह ग्लानिसे ही मर जाय। इसीलिये उसके अवगुणी और कुरूप होनेपर भी किसी भी अवसरपर प्रियतम मुग्ध होकर सदैव उसका ही गुणगान करते हैं। इस भावप्रवाहमें बहती प्रिया सखियोंसे इस हेतुको लेकर ही अपना शृङ्गार कराती हैं जिससे किसी भी प्रकार उनकी किञ्चित् कुरूपता अवगुंठित होजाय एवं उनके प्रियतमकी सौन्दर्यास्वादन-स्पृहा किसी अल्पतम अंशमें ही पूरी हो जाय। केवल मात्र इसी भावनासे, एकमात्र अपने प्राणेश्वरको सुख पहुँचानेके उद्देश्यसे ही भानुनन्दिनी अपने श्रीअङ्गोंको सजाती हैं। इस समय प्रभातकालमें कुन्दवल्लीके आगमनके कारण उनकी प्रियतम-मिलनोत्कण्ठा इतनी तीव्र रहती है कि यदि वे स्वयं कहीं अपना शृङ्गार करने लगें तब तो उनका सम्पूर्ण शृङ्गार ही ऊटपटाँग होजाय। वे गोस्तन नामक मणिमय हारको नितम्बदेशमें पहनलें, कटिकिङ्किणीको कण्ठमें डाल लें, पुष्पमालाको सिरपर लपेट लें एवं ललाटिका (बिन्दी) को वेणीमें लटकालें, नेत्रोंमें मृगमद आँज लें एवं अञ्जनसे ललाटमें बेंदी देलें। किन्तु सखियाँ अतिशय सावधानीपूर्वक किशोरीके भावावेगको संवरित रखती हैं और ऐसा शृङ्गार धारण कराती हैं कि अखिल रसामृतमूर्त्ति उनके प्रियतमके हृदयमें अपनी प्रियाको देखकर रसकी एक अभिनव धारा बह चलती है। अश्रुविन्दुओंके रूपमें यह रस उनके नेत्रोंसे झरने लगता है। रसमय नेत्रोंसे वे भानुनन्दिनीके शृङ्गारको निरखते ही रह जाते हैं। आजसे ही नहीं, अनादिकालसे वे अपनी प्रिया किशोरीको इसी शृङ्गारमें निरखते रहे हैं, परन्तु किशोरीका आन्तरिक भावशृङ्गार ऐसा है कि वे अबतक तो एक लवमात्रके लिये भी न तो परितृप्त हुए हैं, न ही कभी भी भविष्यमें परितृप्त हो पावेंगे। किशोरीके प्रियतमको दिखता है कि उनकी प्रिया उनके असीम अनन्त स्नेहका तो अपने अङ्गोंमें उबटन लगाये हैं, इसमें अपनी सखियोंका प्रणयरूप अतिशय सुगन्धित द्रव्य मिश्रित रहता है। इस प्रतिक्षण वर्द्धमान स्नेहरूपी उबटनसे किशोरीके अङ्ग सदैव स्निग्ध, कोमल, सुगन्धपूर्ण उज्ज्वल रहते हैं। यह ऐसी स्निग्ध सुकोमलता है जो प्रतिक्षण उनके प्रियतमको उनके प्रति लालायित ही रखती है। किशोरीका प्रातःस्नान तारुण्यरूप अमृतधारामें होता है। तारुण्य एवं लावण्यरूप सुधाधारामें स्नान करनेसे किशोरीका कैशोर नित्य नव-नवायमान सुन्दर हो उठता है।

स्नानके उपरान्त किशोरी लज्जारूप श्यामवर्णकी साड़ी धारण करती है। इस साड़ीमें दिव्य शृङ्गाररसके तन्तुओंका ताना-बाना रहता है। इसके उपरान्त वे अपने हृदयस्थलको अपने प्रियतमके अनुरागकी लाल चोलीसे आच्छादित करती हैं। सौन्दर्यरूप कुंकुमसे उनका अङ्गविलेपन होता है। सखी-प्रणयरूप चन्दन और अधरोंकी स्मिति-कान्तिरूप कर्पूरचूर्ण भी इस विलेपनमें मिश्रित रहता है। वे माधुर्यरसके मृगमदसे अपने कुन्दनद्युति श्रीअङ्गोंको सुचित्रित करती हैं। प्रच्छन्न बङ्किम मानके द्वारा अपने केशबन्धोंकी रचना करती हैं। धीर, अधीर नायिकाके दिव्य गुणोंको

लेकर उससे उनका पटवास (सुगन्धित चूर्ण - पाउडर) निर्मित होता है और इस दिव्य चूर्णको उनके अङ्गोंपर बिखेरा जाता है। वे रागका ताम्बूल ग्रहण करती हैं। इस ताम्बूलमें उनके प्रियतमका अधरामृतरस संसिक्त होता है। उससे उनके अधर उज्ज्वल अरुणवर्ण हो उठते हैं। वे प्रेमकी कुटिलतारूप अञ्जनसे अपने नेत्र आँजती हैं। किशोरीरानी स्तंभ (जड़िमा), स्वेद, रोमाञ्च, स्वरभङ्ग, कम्प, वैवर्ण्य, अश्रु एवं प्रलय (मूर्च्छा) - ये सात्विक सुदीप्त आठ भावोंके मुख्य आभूषण पहने हैं। इसी प्रकार निर्वेद, विषाद, दैन्य, ग्लानि, श्रम, मद, गर्व, शङ्का, त्रास, आवेग, उन्माद, अपस्मार, व्याधि, मोह, मरण, आलस्य, जाड्य, लज्जा, अनुभावगोपन, स्मृति, वितर्क, चिन्ता, मति, धृति, हर्ष, उत्सुकता, उग्रता, अमर्ष, असूया, चपलता, निद्रा, सुषुप्ति एवं बोध – इन तैंतीस सञ्चारी भावोंके वे उप-आभूषण धारण करती हैं। श्रीराधारानी जिन आठ मुख्य आभूषणोंको धारण करती हैं, वे हैं – (१) सौदामिनी, (२) कर्णभूषण, (३) नासिकाकी नथ, (४) कण्ठमें गोस्तन नामक हार, (५) बाहुओंमें बाजूबन्द, (६) हस्तमें कङ्कण, (७) कटिमें करधनी, (८) पैरोंमें चूड़ियाँ। इनके अतिरिक्त अन्य जितने भी आभूषण हैं, वे सभी उप-आभूषण हैं।

श्रीराधारानी अपने अङ्ग-प्रत्यङ्गोंमें निम्नलिखित पच्चीस दिव्य भावोंकी पुष्पमालाएँ एवं पुष्पाभरण धारण किये रहती हैं - (१) मधुरिमा, (२) नित्य किशोरावस्था, (३) नेत्रोंकी चञ्चलता, (४) निर्मल उज्ज्वल हास्य, (५) सुन्दर सौभाग्यरेखा, (६) माधवमनोन्मादकारी अङ्गसौरभ, (७) सङ्गीतशास्त्रमें निपुणता, (८) श्रुतिमनोज्ञ वाणी (९) परिहास-वाक्योंके प्रयोगमें निपुणता, (१०) सह्य विनयशीलता, (११) पूर्ण करुणा, (१२) विदग्धता, (१३) कर्त्तव्यकुशलता, (१४) लज्जाशीलता, (१५) सुमर्यादा (प्रियतमके प्रति अतिशय गौरवबुद्धि) (१६) परम धैर्य, (१७) आदर्श गम्भीरता, (१८) लीलामयता, (१९) परमोत्कर्षमयी महाभावमयता, (२०) समस्त गोकुलकी प्रेमपात्री, (२१) ब्रह्माण्डोंमें उद्दीप्त यश, (२२) गुरुजनोंके श्रेष्ठ स्नेहकी पात्रता, (२३) सखियोंके प्रति प्रेमवशता, (२४) प्रियतम श्रीकृष्णको सदा-सर्वदा अपने आधीन रखनेकी मधुर शक्ति।

श्रीकृष्णप्रियाके सुन्दर ललाटपर सर्वसौभाग्यरूप सुन्दर सुमनोहर तिलक सुशोभित रहता है। प्रेमवैचित्त्यरूप रत्नहार हृदयपर नाचता रहता है। नित्यकिशोर वयस्‌रूप सखीके कन्धोंपर वे अपना दाहिना हाथ रखती हैं तथा कृष्णलीलामयी मनोवृत्तिरूप सखियाँ उन्हें घेरे रहती है। अपने श्रीअङ्गोंके सौरभरूप गृहमें वे दिव्य गर्व-पर्यंकपर विराजित रहकर सदा निज प्रियतम-मिलनका चिन्तन करती हैं। कृष्णनाम, कृष्णगुण, कृष्णयशका श्रवण ही उनके कानोंमें अवतंसरूप भूषण हैं। उनकी वाणी निरन्तर श्रीकृष्णनाम-गुण-यशसे समलंकृत रहती है। शृङ्गाररसरूप मधुसे पूरित पात्र हाथमें लेकर वे अपने प्रियतमको मधुपान कराती हैं। यही उनके हाथोंकी शोभा है। अपने सम्पूर्ण अङ्ग-अवयवोंसे स्वाभाविक ही श्रीकृष्णसेवा - यही उनकी अङ्गशोभा है। विशुद्ध प्रियप्रेमरसकी आकर श्रीकिशोरीरानीके अङ्गोंके अन्तरालसे अनन्त सद्गुण चमकते रहते है। अपने नित्य विभूषित स्वरूपसे श्रीकृष्णप्रियाको बाह्य शृङ्गारकी आवश्यकता ही नहीं है।।।७४१।।

इतनेमें आ जाती दूती साँवर की मैयाकी, प्रियतम!
बालाको नित्य बुलाती थी अपने ही घर जननी, प्रियतम!
था अनुभव उसे, रसोई जो बाला छू देती है, प्रियतम!
साँवर भर पेट उसे ही है खाता, न अन्य कुछ भी, प्रियतम॥७४२॥

इतनेमें ही साँवरकी मैयाके द्वारा प्रेषित दूती आ जाती। यशोदारानी किशोरीको प्रातःकाल नित्य ही अपने घर बुलाया करतीं। उन्हें सदाका यह अनुभव जो था कि जो रसोई राधाकिशोरी प्रस्तुत करती हैं-नीलसुन्दर पेट भरकर उसे ही खाते हैं, अन्य कुछ भी नहीं खाते। अस्तु,।।७४२।।

इती एवं सब सहचरियाँ उसको ले-चल पड़ती, प्रियतम!
साँवर-ही-साँवर बाला को सर्वत्र दीख पड़ते, प्रियतम!
विक्षिप्त हुई-सी आ पाती घरपर वह साँवर के, प्रियतम!
उनका दर्शन होने पर ही प्रकृतिस्थ कहीं होती, प्रियतम ॥७४३॥

दूती एवं सब सहचरियोंसे धिरी हुई राधाकिशोरी चल पड़तीं। विचित्र-सी दशा किशोरीकी उस समय हो जाती। उन्हें सर्वत्र साँवर-ही -साँवर दीख पड़ते थे भला! ऐसी दशामें ही विक्षिप्त-सी वे साँवरके घर पहुँचतीं। जब नीलसुन्दरका उन्हें दर्शन हो जाता तभी जाकर वे प्रकृतिस्थ हो पातीं।।। ७४३।।

मैया से मिलकर, साँवर के अग्रज की जननी के, प्रियतम!
तत्वावधान में रन्धन के होते थे काम सभी, प्रियतम!
सब कुछ करते रहने पर भी बाला का मन रहता, प्रियतम!
डूबा प्रियतम साँवर के ही नीले-नीले तन में, प्रियतम ॥७४४॥

मैयासे मिलकर साँवरके अग्रजकी जननी रोहिणीके तत्वावधानमें रंधनके सभी कार्य सम्पन्न होते। हाथोंसे सब कुछ करते रहनेपर भी राधाकिशोरीका मन तो प्रियतम नीलसुन्दरके नीले-नीले तनके अप्रतिम सौन्दर्यमें ही डूबा रहता।।।७४४।।

तात्विक विवेचन विस्तार

सखियों द्वारा शृङ्गार हो जानेपर रानी सखियों सहित गुरुजनोंको प्रणाम करती हैं। लज्जासे झुके उनके नेत्र चरणोंमें विजड़ित हैं। अधरोंपर अवश्य मन्द स्मिति है। चञ्चल नेत्र लज्जावनत रहते हुए भी अपनी चापल्य शोभा बिखेरते ही हैं। चलते समय प्रियाके नूपुर झङ्कार कर रहे हैं। किसी प्रत्यक्षदर्शी कविने प्रियाकी शोभाका वर्णन यों किया है –

झूमक सारी हो तन गोरें ।
जगमग रह्यौ जरावको टीको, छविकी उठत झकोरें।।
रतनजटितके तरल तरौना, मानो जात रवि भोरें।
दुलरी कंठ निरखि नक-बेसर पिय-दृग भये चकोरें।।
मंद-मंद पग धरत धरनिपर हँसत लसत चित चोरें।
स्यामदास प्रभु रस बस कीने चपल दृगनकी कोरें।।

"प्रिया अपने गोरे तनपर छोटे-छोटे स्वर्ण-झूमकोंकी किनारीदार नील साड़ी पहने है। उनके जगमगाते हुए जड़ाऊ टीकेसे तो मानो सौन्दर्यकी लहरें उठ रही हैं। रत्नजटित चञ्चल कर्णफूलकी छवि ऐसी लगती है मानो प्रातःकालीन सूर्य पूर्व दिशामें उदय हुआ हो। कण्ठमें धृत दो लड़ोंका मोतियोंका हार एवं नाककी बेसरको देखकर प्रियतम नीलसुन्दरके नेत्र चकोरसे बन गये हैं। वे पृथ्वीपर मन्द गतिसे शनैः-शनैः चरण रखते हुए चल रही हैं, उनकी सस्मित शोभा किसी भी देखनेवालेके चित्तको चुरा लेती है। प्रेमी भक्त श्यामदासजी कहते हैं कि मेरे प्रभुको उनकी प्रियाने अपने चञ्चल नेत्रोंके कटाक्षसे प्रेमाभिभूत कर लिया है।"

श्रीललिता उनके आगे हैं। उनकी छोटी बहिन श्रीमञ्जश्यामा उनका अनुगमन कर रही है। वनवल्लरियाँ ज्यों-ज्यों प्रिया नन्दभवनकी ओर अग्रसर हो रही हैं , उनके पथमें पुष्पवर्षा कर रही हैं। प्रियाको तो ये वनवल्लरियाँ दृष्टिगोचर ही नहीं होतीं। उन्हें तो स्पष्ट यही दृष्टिगोचर होता है कि उनके प्रियतम श्यामसुन्दर ही उनके आगे-आगे चलते हुए उनके पथमें पुष्प बिछा रहे हैं।

अनुपम छविशालिनी, अनुपम रूप-लावण्यवती रानीके अङ्ग-अङ्गसे सौन्दर्य-माधुर्य, सौशल्य, वैदग्ध्यादि गुण सर्वत्र प्रसरित हो रहे हैं। उनके नयनोंसे अपार अनुराग सर्वत्र छलकता है। उनके अङ्ग-अङ्गसे कुन्दनद्युति दमक रही है। बार-बार प्रियदर्शनोंसे उमड़ती भाव-प्रवणतासे वे रोमाञ्चित एवं चमत्कृत होती हैं। उनके कटिप्रदेशसे संलग्न काञ्ची नामक आभूषण ऐसी मधुर ध्वनि कर रहा है, जिससे भ्रम हो जाता है कि पथवर्त्ती यमुनामें असंख्य हंसोंके यूथ काकली कर रहे हों। प्रियाके सभी आभूषण संविन्मय हैं, जड़ताका तो इस रसप्रदेशमें प्रवेश ही संभव नहीं।

प्रासादसे प्रस्थान

सखियों सहित तेजीसे रानी अपने भवनकी सीढ़ियोंसे उतरती महलके पश्चिमकी तरफ उपवनमें जा पहुँचती हैं। रानी उत्कण्ठावश इतनी तीव्र चालसे त्वरापूर्वक प्रासादकी सीढ़ियोंसे उतरती हैं एवं क्षणोंमें ही पश्चिममें स्थित उपवनमें जा पहुँचती हैं। रानीकी उत्कण्ठा इतनी तीव्र है कि वे त्वरावश अपनी रत्नजटित ओढ़नी ही सिरपर डालना विस्मृत कर बैठती हैं। जब ललिताको इसका ज्ञान होता है तो वह रूपमञ्जरीको उनकी नीली ओढ़नी महलसे लाने भेजती हैं। रानी इतनी तेजीसे वनपथ पार कर रही हैं कि कुन्दवल्ली, मञ्जुश्यामा एवं ललितादि सखियोंको दौड़कर ही रानीका साथ देना पड़ता है। रानी उपवनका द्वार लाँघकर ज्योंही राजपथपर चरण रखती है, रूपमञ्जरी रानीको सिरसे पैरतक ओढ़नीसे आवृत कर देती है। यहाँ आगे जाकर पुलसे यमुना पार करनी होती है। एक पथ यहाँसे रविमन्दिरकी ओर जाता है और दूसरा नन्दभवनकी ओर। रानी नन्दभवनकी ओर चरण बढ़ाती हैं।

वनकी प्रफुल्लता

कुन्दवल्ली रानीको लता-पल्लवजाल-समावृत नव-नव सौन्दर्यधाम निकुंजोंके दर्शन कराती है। वृन्दारण्यके कण-कणमें नव-नव शोभा उमड़ रही है। कुन्दवल्ली रानीकी दृष्टि जिधर-जिधर फेरती है, उधर ही समग्र सुरम्यता मूर्त्त हो उठनेकी स्पर्धा करने लगती है। रानीको तो इस शोभाके अन्तरालमें भरे उसके प्रियतम नीलसुन्दर ही उसकी ओर मुसकाते, सङ्केतकरके उसे कुंजोंमें आगमनका आमंत्रण देते, ललित त्रिभङ्ग मुद्रामें खड़े दृष्टिगोचर होते हैं।

चलते-चलते ही ठिठककर रानी प्रीतिभावोद्रेकवश इस प्रकार काँप उठती हैं, मानो किसी नव विद्युल्लतापर दामिनी गिर पड़ी हो, और वह काँप उठी हो। कभी वे रोमाञ्चित हो उठती हैं, कभी उनका सम्पूर्ण शरीर ही स्वेद-प्रवाहवश लथपथ हो उठता है। रानीका वन पार करना ही कठिन हो जाय, यदि ललिता अतिशय सावधानीपूर्वक उसे नहीं सँभाले। ललिता नवीन-नवीन कथा-प्रसङ्ग सुना-सुनाकर रानीका ध्यान बँटाती है एवं किसी न किसी तरह वनपथ पार कराती है।

वनपथ पार करते ही सम्मुख ही रानीको ब्राह्मणी नान्दीमुखी मिल जाती है। यशोदा मैया रानीके नंदभवन पहुँचनेमें विलम्बका अनुभवकर पुनः नान्दीमुखीको उसे लाने भेजती हैं। सभी सखियों सहित रानी उन्हें प्रणाम करती हैं। नान्दीमुखीके साथ आयीं अन्य सखियाँ रानीको कण्ठसे लगाकर सिर सूँघकर आशीर्वाद देती हैं एवं रानीको लेकर नन्दभवनके मुख्य द्वारतक पहुँचाती हैं।

नन्दभवनमें प्रवेश

ललिता रानीके आगे-आगे चल रही हैं। रानीके पीछे उनकी छोटी बहिन मञ्जुश्यामा हैं। कभी पार्श्वमें एवं कभी पीछे गुणमञ्जरी चल रही हैं। रानीके वाम हस्तको कुन्दवल्ली थामे हैं। एक ओर ब्राह्मणी नान्दीमुखी है। मञ्जुश्यामाके अगल-बगलमें अशोकमञ्जरी एवं रतिमञ्जरी हैं। सबसे पीछे विशाखा हैं।

रानी इन सभी सखियोंके साथ नन्दभवनके तोरणद्वारमें प्रवेश करती हैं। नान्दीमुखी रानीको नन्दभवनके उद्यानका परिचय देती हैं। वे कहती हैं – "हे किशोरी रानी देखो! सम्मुख यह 'श्रीकृष्णोद्यान' है। श्रीकृष्ण - मात्र यह नाम सुनते ही किशोरीके अङ्ग-अङ्गमें विद्युल्लहरी दौड़ जाती है। कृष्ण-कृष्ण प्रतिध्वनि उनके रोम-रोमसे होने लगती है। इधर नन्दनन्दन नन्दभवनके अन्तर्द्वारपर खड़े हैं। नान्दीमुखी राधाकिशोरीका ध्यान श्रीकृष्णकी ओर आकृष्ट

करती है। किशोरी देखती हैं – श्रीकृष्ण उन्हींकी ओर देखते हुए मन्द-मन्द मुसका रहे हैं। एक क्षण किशोरीके नयन श्रीकृष्णके नयनोंसे मिलते हैं। जैसे अनादिकालसे सुतप्त हृदयमें शीतल हिमवर्षा हो उठी हो, इस भाँति किशोरी शान्त, सरस हो उठती हैं। लज्जा उन्हें घेर लेती है। मन पुनः दर्शन-लालसासे अकुलाता है। परन्तु लज्जा नयनोंको उठने नहीं देती। चरण स्तंभित हो उठते हैं। मन-प्राण-बुद्धि सभी वृत्तियाँ एकमुखी हुई नयनोंमें ही केन्द्रित हो जाती हैं। मनकी लालसा इस बार लज्जाका आवरण फेंक देती है और नयनोंको ऊपर उठनेको विवश कर देती है। ज्योंही नयन ऊँचे होते हैं, पुनः श्रीकृष्णके नयनोंसे एक हो जाते हैं। अब तो लज्जा-तरंगिणीमें बाढ़ आ जाती है। प्रगाढ़ लज्जा बलपूर्वक नेत्रोंको पुनः झुका देती है। किशोरीके अङ्ग-प्रत्यङ्ग जड़िमाभावसे ग्रस्त हों, इससे पूर्व ही ललिताकी चेतावनी किशोरीके कानोंमें प्रविष्ट होजाती है – ''क्या करती है? यशोदा मैया सम्मुख खड़ी हैं।'' किशोरीके चरण मन्द-मन्द गतिसे चल पड़ते हैं। ।। ७४३।।

रन्धनकार्य

नन्दभवनमें मुकुन्दमाता यशोदा, रोहिणी एवं अन्य गृह-परिजन रानीके स्वागतार्थ नन्दप्रासादके अन्तर्द्वारके बाहर ही खड़े हैं। रानीपर दूरसे दृष्टि पड़ते ही यशोदा मैया आनन्दमें डूबने लग जाती हैं। रोहिणी किसी प्रकार यशोदाको नियंत्रित रखती हैं। यशोदाके पैरोंमें तो मानो पङ्ख लग गये हों इस भाँति वे रोहिणीका हाथ छुड़ाकर आगे बढ़कर रानीके पथमें पुष्प बिखेरकर उसका स्वागत करती हैं। माता यशोदाको अपने पुत्र नन्दनन्दनको आलिङ्गन करनेमें जो सुख मिलता है, उससे सहस्रगुना सुख रानीको गले लगानेमें मिलता है। मुकुन्दमाता अपने रसका आवेग सहन नहीं कर पा रहीं। उनके नयन तो अश्रुवर्षासे भीगे ही हैं, मुखसे केवल यही निकल पाता है - 'राधा, बेटी, वत्से!' वात्सल्यरस जैसे मूर्त्त हो उठा हो, यशोदा मैयाकी यही अनुभूति है कि नील नीरदाभ नन्दनन्दन नामक पदार्थ ही राधा नामधारण करके गौरवर्ण हुआ उसके सम्मुख खड़ा है। किशोरीके रोम-रोम, अणु-अणुसे कोटि-कोटि नन्दनन्दन मुकुन्दमाताको 'माँ-माँ' पुकार उठते हैं। यशोदाके स्तन इस प्रकार दुग्धप्रवाह बहाते हैं मानो वह नारी नहीं होकर कामधेनु गौ हो। सभी सखियों एवं रानीके मस्तकपर यशोदा मैयाके स्नेहदुग्धकी धारा अभिषेक करने लगती है। यशोदा अत्यन्त आश्वस्त हुई रोहिणीसे कहती हैं – '' अब तो मेरी लाडिली आगयी, अब तो एक क्षणमें ही सब हो जायगा।' रोहिणीजी रानीका हाथ पकड़कर सखियों सहित उसे विश्रामकक्षमें ले जाती हैं।

रानीको पथ-सञ्चलनसे श्रमित जान सखियाँ गुनगुने शीतोष्ण जलमें नमक मिश्रणकर उससे रानीके पिण्डलियोंतक चरणोंको डुबो देती हैं। इससे रानीकी श्रान्ति दूर हो जाती है। ललिता रोहिणीजीके निर्देशानुसार सारी भोजन-निर्माण-व्यवस्था हृदयङ्गम कर लेती है। तबतक रानीके चरण मधुमती शनैः-शनैः संवाहन करती रहती है।

प्रियाके नेत्रोंमें नन्दोद्यानमें दृष्टिपथमें आयी अपने प्रियतमकी छवि जीवन्तवत् प्रत्यक्ष है। रानी विचार कर रही है – 'ओह! प्रियतम कितने मनोहर मधुर एवं लावण्यमय हैं! वे सुधाको भी तुच्छ करनेवाली शीतलताके विग्रह हैं, सरसता, माधुर्य एवं प्राणोंको आप्यायित करनेवाली मादकता भी उनमें कूट-कूटकर भरी है। इन्द्रनीलमणिमें ज्योति है, किन्तु उसमें तो जड़ कठोरता है। प्रियतमके अङ्ग-अङ्ग ही नहीं, रोम-रोमतक अनाविल ज्योतिर्मान् हैं। उनमें पद्मदलोंको तुच्छ करनेवाली सुकोमलता भी पूर्णतया निहित है। अन्य स्थानोंमें गुण हैं, परन्तु सभी एक सीमामें हैं। उसके प्रियतम तो माधुर्य, लावण्य, सौन्दर्य, कान्ति, सरसता, मादकता, आकर्षकता – सभीमें अपरिसीम हैं। वे तो विविध क्रीड़ारसके आकर हैं।

किशोरीकी सम्पूर्ण वृत्तियाँ ध्यानमें एकाग्र हो ही रही थीं कि इतनेमें ही यशोदा मैयाकी लाड़भरी शब्दध्वनि उन्हें श्रवणगोचर होती है – 'बेटी राधे! तुम्हारे हाथों निर्मित भोजनसामग्रीकी प्रशंसा सम्पूर्ण गोकुल कर रहा है। बेटी! तुम्हारे द्वारा निर्मित रसमलाई (पीयूष ग्रन्थि पानीय) जो गाढ़े रढ़े दूध एवं छेना (आमिक्षा) के द्वारा निर्माण की जाती है, और अमृतकेलि (मावेकी जलेबी), कर्पूरकेलि (दूधमें मलाईके मोटे लच्छे पड़ी रबड़ी)को मेरा वत्स बहुत ही रुचिसे खाता है।'

यशोदा मैयाकी चेतावनीभरी वाणी सुनकर रानीका ध्यान निवृत्त होता है। वे रोहिणीके साथ रसोईमें चली जाती हैं। रोहिणीमैया प्रत्येक सामग्रीको रानीके हाथोंसे संस्पर्शित भर कराती हैं और तब शेष पाकरचनाका श्रम स्वयं अथवा ललिता-विशाखादि सखियोंपर ही डाल देती है। रानीका दधि एवं केसरिया दूधमें हाथ लगवाकर विशाखा शिखरणी निर्माणमें जुट जाती है। शशिलेखा विशाखाकी सहयोगिनी है। चम्पकलता दुग्धसार (मावा) निर्माण कर रही है। तुङ्गविद्या छैना (आमिक्षा) निर्मित कर रही है। चित्रा मिश्रीखण्ड बना रही है। रङ्गदेवी खण्डमण्ड निर्माण कर रही है। सुदेवी पायस (खीर) बनानेमें जुटी है। मङ्गला कुण्डलिका (जलेबी) निर्माण कर रही है। वासन्ती फीकी मृदु फेनिका (फेनी) बना रही है। कादम्बरी चन्द्रकान्ति (केसरिया रङ्गकी मीठी फेनी) निर्मित कर रही है। कौमुदी शष्कुली (गुझिया) बना रही है। सभी सामग्री गुण, सौरभ, और रसमें एक-से-एक उत्कृष्ट हैं। सखियाँ निर्मित सामग्रीको श्रीराधाके सम्मुख रखती जा रही हैं। रानी मात्र उन्हें अपनी दृष्टि डालकर निरख लेती है किंवा हाथसे संस्पर्शित कर देती हैं।

काञ्चनवल्लीने अति सुमधुर मलाईके लड्डू निर्माण कर लिये। मैया यशोदाने निरे ब्राह्ममुहूर्तमें दधिसे जो नवनीत निकाला था, उसमेंसे कुछ तो श्रीकृष्ण बलरामको उठते ही मिस्सी रोटीके सङ्ग दे दिया था, जो शेष था उसका मञ्जुलीला घृत निर्माण कर रही है। सभी सामग्रियोंमें यही घृत प्रयोग किया जायेगा। ब्रजेन्द्र नन्दराय द्वारा स्वयं निज हाथोंसे जो धवला कामधेनुका दूध दुहा गया था, उसे अम्बिका पर्याप्त रढ़ाकर राम एवं कृष्णके पान के लिये तैयार कर रही है। शशिमुखी एवं रङ्गमाला आम्र, दाड़िम, बदरी, रुचक (सेव), नींबू, कदली (केला), अदरक, सौंठ, खारक (खर्जूर), अमृतफल (अमरूद), आदि फल सुसंस्कृत कर रही हैं।

इधर तो कदली, कन्द (आलू), कूष्माण्ड, तोरी, लौकी, टिण्डे, जमीकन्द आदिके विविध शाक निर्माण हो रहे हैं, जायफल, जावित्री, दालचीनी, धना, जीरा, हल्दी, मिर्च आदिके बघार दिये जा रहे हैं, विविध प्रकारके रायते निर्मित हो रहे हैं, अचार, शाक, पूड़ियाँ, भिन्न-भिन्न प्रकारकी परम सुस्वादु जायकेदार दालें, भात, मिस्सी रोटियाँ बनायी जा रही हैं, उधर यशोदारानी अपने पुत्रके शृङ्गारमें उलझी हैं।

यह सत्य है कि श्रीकृष्ण उन्हीं वस्तुओंको अतिशय रुचिपूर्वक खाते हैं, जिसे रानी अपने हाथों स्पर्श कर लेती है, अथवा स्वयं निर्माण करती हैं। अतः भोजनशालाके सभी कार्य उनके ही निर्देशनमें होते हैं। फिर भी स्वयं रानीका मन तो बारबार इधर-उधर रत्नखचित नन्दप्रासादके अलिन्दमें इस प्रयोजनसे भटकता रहता है कि कहीं उसके प्रियतम दृष्टिपथमें आ जावें। ।।७४४।।

मैया भी उधर जुड़ी रहती, बस, एक नीलमणि से, प्रियतम!
गाथाएँ उसे न जाने थीं कितनी गढ़नी पड़ती, प्रियतम!
वह तभी लगा पाती उबटन, उनको नहला पाती, प्रियतम!
शृङ्गार धरा पाती, भोजनगृह में ले आ पाती, प्रियतम॥७४५॥

उस ओर मैया भी निरन्तर बस, एक नीलमणिकी सँभालमें ही लगी रहतीं। न जाने उन्हें कितनी ही नवीन-नवीन गाथाएँ गढ़नी पड़ती थीं। तभी जाकर वे नीलसुन्दरको उबटन लगा पातीं। उनका स्नान सम्पन्न करा पातीं। शृङ्गार धरा पातीं और इन सबके अनन्तर भोजन-गृहमें नीलसुन्दरको लिये हुए आ पहुँचतीं।।।७४५।।

मैया भी उधर जुड़ी रहती, बस, एक नीलमणिसे, प्रियतम !

इधर स्वर्णकलशीमें समशीतोष्ण परम सुवासित स्वच्छ परमपूत यमुनाजल लेकर जननी अपने पुत्र श्रीकृष्णचन्द्रके चूर्ण कुन्तलमण्डित मस्तकका अभिषेक करनेको आतुर हो रही है। अपने पुत्र कृष्णको स्नान करानेके लिये मैयाको अनेकानेक कथाएँ स्मरण करनी होती हैं। यदि वे कथाएँ मैया अपने पुत्रको नहीं सुनावे तो श्रीकृष्ण अपनी चपल

कृीड़ाओंसे निवृत्त हों ही नहीं। मैया स्नान एवं उबटनकी सामग्री लेकर 'कृष्ण! अहो कृष्ण!' आह्वान कर रही है किन्तु श्रीकृष्ण तो अपने सखाओंसे घिरे नन्दालिंदमें आनन्दमत्त मयूरका नृत्य देखनेमें लगे हैं। उन्हें श्रीदाम, मधुमङ्गल, वरूथप, तोक, भद्र, अनुदाम, दामादि सखागण घेरे हैं। बलराम आदिका स्नान सम्पन्न हो गया है। सखागण भी सभी सज्जित खड़े हैं किन्तु श्रीकृष्णको स्नानकी चिन्ता ही नहीं है। अचानक मैयाको एक उपाय सूझता है। वह बलरामको सम्बोधितकर कहती है – 'बेटा बलराम! देखो तो, मुझे एक बहुत ही सुन्दर कहानी स्मरणमें आयी है। आओ! तुम सभीको वह कहानी सुनाती हूँ। तनिक कृष्णको भी अपने साथ हाथ पकड़कर ले आना।' बस, मैयाकी कहानी सुनानेकी पुकार ज्योंही बलराम एवं सखाओंके श्रवणगोचर होती है, वे सभी दौड़े-दौड़े मैयाके पास चले आते हैं। श्रीकृष्णको भी अब तो अपनी मैयाकी गोदमें आना ही पड़ता है।

मैया अपने लालको गोदमें बैठाये अतिशय तन्मय हुई, कथा सुनाती है - 'वत्स, सुनो। जिस धरापर तू क्रीड़ा कर रहा है, इसे एक दिन असुर हिरण्याक्ष रसातलमें लेकर चला गया था।' अब तो श्रीकृष्णचन्द्रको चिन्ता हो उठी कि फिर तो मेरे प्यारे बछड़े, गौएँ, सभी गोप एवं नन्दबाबा भी समुद्रमें डूब गये होंगे। उन्होंने अत्यन्त उत्सुकतासे मैयाके मुखको उठाकर उसे हिलाते हुए पूछा – "तब तो मेरी सभी गैयाएँ, बछड़े एवं नन्दबाबा भी डूब गये होंगे!" मैयाने हँसते हुए अपने पुत्रके सिरपर जलपात्रसे जल डालकर स्नान करा दिया और कहा - "पूरे डूबे नहीं, इसी प्रकार जलसे सिक्त हो उठे थे। मैयाके द्वारा डाली वारिधारा श्रीकृष्णके भाल, नेत्र, कपोलों, स्कन्ध एवं उदरका अभिषेक करती हुई उनके चरणोंको सिक्त करने लगी थी। मैया कहानी कहती जा रही थी कि 'उस दिवस ही सम्पूर्ण धराका पूर्ण अभिषेक स्नान सम्पन्न हुआ था। किन्तु धरामें रहनेवाले प्राणियोंकी डूब जानेके भयसे आकुल पुकार सुनकर भगवान् नारायणने तत्क्षण ही वाराह विग्रह धारणकर रसातल-निमग्ना धराका उद्धार कर दिया था।' मैयाने कहानी कहते-कहते ही एक अतिशय सुकोमल स्वच्छ वस्त्रसे श्रीकृष्णके अङ्ग लपेट दिये थे, और उनके पुरातन पहने वस्त्र उतारने लगी थी। ब्रजरानीकी समस्त वृत्तियाँ तो अपने पुत्रके मुखारविन्दमें तन्मय हो रही थीं। किन्तु कहानी यदि विस्मृत हो गयी तो श्रीकृष्ण फिर शृङ्गार धारण नहीं करायेंगे - इस चिन्तासे मैया अपनी बार-बार निमग्न होती वृत्तियोंको पुनः सचेत करती जाती हैं।

वे कहानीको पुनः अग्रसर करती हैं – " ओह! भगवान्के उस वाराह विग्रहकी ऐसी शोभा थी कि उसका वर्णन ही असंभव है।.उनके मस्तकपर अनन्त कोटि सूर्य-समप्रभ मुकुट शोभायमान था। उस मुकुटमें जो अनेक रङ्गोंकी मणिमालाएँ विजड़ित थीं, उनकी लड़ें भगवान् वाराहकी कराल भौहोंके ऊपर लटक रही थीं। उस समय ऐसा ही प्रतीत हो रहा था मानो भगवान् वाराहकी भौहोंकी उग्रता देखकर अन्तरिक्षसे शुक्र, बृहस्पति एवं मङ्गल आदि नक्षत्रोंने भयभीत होकर उन भौहोंको ही अपना आवास बना लिया है। भगवान् वाराहके नेत्र तो दीर्घ कर्णावलम्बी थे ही, वे कण्ठमें मोतियोंकी माला धारण किये थे एवं उनके वक्षस्थलपर लक्ष्मीस्वरूपा स्वर्णरेखा दिपदिपा रही थी। हिरण्याक्षके द्वारा सांघातिक गदाकी चोटोंसे उनकी मांसपेशियाँ शिथिल हो रही थीं। ओह! उनकी गदा हिरण्याक्षके वधके कारण रक्तरंजित होगई थी, उनके नेत्र बालरविके समान लाल-लाल हो रहे थे एवं अबतक उनमें कृोधजनित उग्रता एवं चञ्चलता थी। रसातल-निमग्ना धराका उद्धारकर वे लौट रहे थे। उनके सुविशाल वाराह-विग्रहके दंष्ट्राग्रपर पर्वतादि-मण्डित धरा सुशोभित थी। चारों ओर अपरिसीम सागर हिलोरें ले रहा था।"

श्रीकृष्ण निज जननीके मुखकी ओर एकाग्र होकर देखे जा रहे थे। यशोमति मैयाको उन्हें वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित करनेका पर्याप्त अवसर मिल गया था।

मैया अपने शृङ्गारसज्जित पुत्रकी शोभा निरख रही है –

गोरोचनको तिलक निकट ही काजर बिंदुका लाग्यो री।
मनो कमलको पी पराग, अलि-सावक सोइ न जाग्यो री।।

बिधु आनन पर दीरघ लोचन, नासा लटकत मोती री।
मनौ सोमके सँग करि लीने, जानि आपने गोती री।।
सीपज माल श्याम उर सोहै , बिच बघनहँ छवि पावे री।
मनौ द्वैज ससि नखत सहित हैं, उपमा कहत न आवे री।।
सोभा सिन्धु अंग-अंगनि प्रति, बरनत नाहिन औरे री।
जित देखौं मन भयौ तितहिं कौ, मनौ भरे कौ चोरे री।।
बरनौं कहा अंग-अँग सोभा, भरी भाव-जल-रासे री।
लाल गोपाल बाल छवि बरनत, कवि कुल करिहै हासे री।।
जो मेरी अँखियन रसना होती, कहती रूप बनाइ री।
चिर जीवहु जसुदा को ढोटा, सूरदास बलि जाइ री।।

पुत्रका इस प्रकार अङ्गमार्जन एवं शृङ्गार सम्पन्न करके उनका हाथ पकड़े यशोदा रानी भोजनागारकी ओर आ रही हैं। श्रीकृष्णके चतुर्दिक् सखागण हैं। श्रीकृष्णका दक्षिण हाथ मैया पकड़े है एवं मैयाके दक्षिण ओर बलराम है। श्रीकृष्णके आगे मधुमङ्गल अतिशय उत्साहपूर्वक चल रहा है। श्रीकृष्णकी बगलमें श्रीदाम एवं उनके पीछे सुबल है। वरूथप, किङ्किणी आदि सखा बलरामकी ओर हैं। अपने पुत्र नीलमणिको भोजनमें रुचि हो इस उद्देश्यसे मैया विविध पक्वान्नोंका नाम ले-लेकर उनके सुस्वादका भी वर्णन कर रही है। ।।७४५।।

साँवर फिर साथ सखागण के हँस-हँसकर थे खाते, प्रियतम !
भोजनका दृश्य अतुल निधि था बनता सबके दृगका, प्रियतम !
मैयाका स्नेह दबा लेता उसके चञ्चल सुतको, प्रियतम !
विश्राम पचीस-तीस पलतक हँसकर वह कर लेता, प्रियतम।।७४६।।

............सम्पूर्ण सखाओंके साथ नीलसुन्दर हँस-हँसकर कलेवा करते। उनके भोजनका यह दृश्य सबकी आँखोंके लिये एक अप्रतिम निधि बना रहता। मैयाका आन्तरिक स्नेह नीलसुन्दरको दबा लेता और जैसे-तैसे २५-३० पलके लिये हँसकर उन्हें मैयाके आग्रहका आदर करना ही पड़ता-विश्राम लेना ही पड़ता।।। ७४६।।

भोजनका दृश्य अतुल निधि था सबके दृगका बनता, प्रियतम !

पूजागृहसे संलग्न पार्श्वमें एक अतिशय सुन्दर कक्षमें चतुर्दिक् सुन्दर स्वर्ण-पीठ रखे हैं। मनोहर आसनोंपर मध्यमें श्रीकृष्ण एवं बलराम विराजित हैं एवं उनके चतुर्दिक् सभी सखा आसीन हैं। आश्चर्य है कि प्रत्येक सखाको यही अनुभव हो रहा है कि मैं श्रीकृष्णके बगलमें ही विराजित हूँ।

मैया अपने पुत्र श्रीकृष्णको समग्र रचित सामग्री दिखा रही है – "देख वत्स! यह भानुनन्दिनीने अपने हाथों चन्द्रतुल्य पायस (खीर) निर्माण किया है। यह केसरपिष्टक है, यह आमिक्षाकन्द (छेनेकी रबड़ी) है, यह अमृतकेलि (जलेबी) है। यह चन्द्रकान्ति (मीठी फेनी) बहुत ही स्वादिष्ट है। वत्स! देख, ये सभी विविध शाक कन्द, कूष्माण्ड, तोरही, लौकी, टिण्डोंके संयोगसे कीर्त्तिकुमारी द्वारा निर्मित हैं। ये विविध अचार हैं, शाक हैं, पूरियाँ हैं। ये धान्य एवं भिन्न-भिन्न रोचक दालें हैं।

मैयाका भोज्यपदार्थ-वर्णन सुनकर श्रीकृष्ण हँसने लगते हैं, किन्तु मधुमङ्गल चटखारे ले-लेकर सुन रहा है। वह मैयाका आँचल पकड़कर कहता है – "री मैया! कृष्णको तो तुम मात्र स्तनपान कराओ और कण्ठालिङ्गन-दान करो। वह तो बस, इतनेसे ही सुपुष्ट एवं बलवान् हो जायगा। यह तो बहुत ही क्षीणोदर अल्पभोजी है। और सुन, ये सभी सखागण श्रीदामादि अपनी माताओंके द्वारा अपने गृहोंसे पूरा छककर भोजन कर आये हैं। इन सबकी अब तनिक भी

मनुहार करनेकी आवश्यकता नहीं है। माते! क्षुधित ब्राह्मण-बटुक तो केवल मैं हूँ। अतः सम्पूर्ण मिष्ठान्नसामग्री जितनी भी तेरे घरमें निर्माण की गयी हो, वह भानुनन्दिनी द्वारा निर्मित हो अथवा अन्य रसोई बनानेवाली गोपियों द्वारा, मुझे कुछ भी नियम-बन्धन नहीं है। अतः सम्पूर्ण भोजन तू तो निस्सङ्कोच मेरी थालीमें डालती जा। मैं मिष्ठान्नका तो एक कण भी उच्छिष्ट नहीं छोड़ूँगा। हाँ, शाक-दालादि भक्ष्य तू गोग्रासमें डाल देना। तुम, रोहिणी माता, नन्दबाबा आदि शेष सभी परिवारजनोंको तुम तुलसीप्रसाद दे देना। तुम्हें इस प्रकार निराहार उपवासव्रतका उत्तम फल भी मिलेगा और ब्राह्मण-भोजनका पुण्य भी। तुम सबको तो मात्र तप ही वांछित है। इस तपसे श्रीकृष्णकी अनिष्टरक्षा भी होगी। अतः अब विलम्ब मत करो, शीघ्र सम्पूर्ण सामग्री निस्सङ्कोच यहाँ मेरे सम्मुख रखदो।''

अब भोजन प्रारंभ होता है। सखियाँ, स्वयं नन्दरानी एवं रोहिणी माता परोसनेका काम कर रही हैं।

सुठि सरस जलेबी बोरी। जिहिं जेंवत रुचि नहिं थोरी।।
सक्करपारे सदपागे। ते जेंवत परम सुभागे।।
खुरमानी सरस सँवारी। सब परसि धरी है न्यारी।।
मोदक मावे की रबड़ी। देखत ही चित सौं सबड़ी।।
केसर रसगुल्ला मीठे। वे खात न कबहुँ उबीठे।।
गूझा बहु पूरन पूरे। एला केसर रस चूरे।।
सुठि मोती लाडू मीठे। पिश्ता बादाम सजीठे।।
घेवर अति घिरत चमोरे। लै खाँड सरस रस बोरे।।
मृदु मालपुआ मधुसाने । जे तुरत तृपति करि आने।।
पायस मेवा सौं पूरी। केसर घृत सौं है बूरी।।
बासौंदी और मलाई । जिहिं देखत रुचि उपजाई।।

विश्वपति विश्वम्भर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र भी इन मिष्ठान्नोंके दर्शन मात्रसे प्रलुब्ध हो उठते हैं। भले ही वे पुरुषसूक्त मंत्रोंसे सविधि अर्पित नैवेद्य सामग्रीकी ओर दृष्टिपात तक नहीं करें, किन्तु जननी यशोदाकी वात्सल्यभरी मिष्ठान्न परोसनेकी क्रिया और भानुनन्दिनीकी भोजन-निर्माणकला उनके मुखमें सुस्वादु सुधाधारा प्रवाहित कर ही देती है।

रानी पाकनिर्माणशालाके भीतरसे कनखियोंसे अपने प्रियतमकी छवि निरखती हैं। स्वर्णतश्तरियों एवं कटोरोंमें सामग्री सजाते समय उनके हाथ कम्पविकारसे काँपने लगते हैं। ललिता तत्क्षण ही रानीको संवरित करती है। रोहिणी मैया मन्द-मन्द मुसकाने लगती है। श्रीकृष्णका सङ्केत पाकर मञ्जुश्यामा मेवा एवं केसरसे सिक्त चन्द्रवर्णी पायसकी कटोरी रानीके अधरोंसे छुलाती है और तब श्रीकृष्णको परोसने जाती है। मधुमङ्गल इसे देख लेता है। वे श्रीकृष्णकी ओर व्यंग्यभरी मुसकान बिखेरता हुआ कहता है– **''देवी प्रसादम् देवी प्रसादम् ।''** श्रीकृष्ण उसका मुख लड्डू मिष्ठान्नसे भर देते हैं। श्रीकृष्ण नयनकोरसे अकस्मात् रानीकी ओर देखने लगते हैं। उनके हाथमें नवनीत-धवल मलाईका लड्डू ज्यों-का-त्यों स्थिर रह जाता है, वे उसे मुखतक नहीं ले जा पाते। मधुमङ्गल श्रीकृष्णकी प्रेमदशा देखकर व्यंग्यपूर्वक वह लड्डू उनके हाथसे झपट लेता है, और कहता है -'कृष्ण! तुम मात्र चन्द्रमुख-दर्शनसे तृप्त होओ, मैं ही इसे उदरस्थ कर लेता हूँ।'

मिष्ठान्न-तृष्णातुर मधुमङ्गल स्वाद ले-लेकर इस प्रकार जिह्वासे अँगुलियाँ चाटता है कि कृष्ण, बलराम एवं सभी सखा अपनी-अपनी थालियोंमें पड़े अवशिष्ट सभी मिष्ठान्न उसकी थालीमें उँडेल देते हैं। इसके उपरान्त भी वह किसीको भी मनाही नहीं करता, वरं उनका उत्साह बढ़ाता है। वह उच्छिष्ट-दोषकी भी अवहेलना कर जाता है और कहता है – ''निस्सङ्कोच सभी अपने-अपने शेष मिष्ठान्न मुझे परोस दो। दुग्धरचित, घृतपक्व, शर्करासिक्त,

अग्निसंस्कारित कोई मिष्ठान्न कभी उच्छिष्ट होता ही नहीं। फिर ब्राह्मणकी जठराग्नि सर्वभक्षी है। वहाँ देवाग्नि प्रज्वलित रहती है।'' मधुमङ्गल अपनी जंघापर ताल देकर मैया यशोदाको कहता है - 'मैया! तेरे गृहमें निर्मित पायस, मलाई-मोदक, रबड़ी एवं श्रीखण्ड (नवनीत) आदि पदार्थोंकी सुस्वादुता निश्चय ही असमोर्ध्व है। सुधातुल्य इन सब मिष्ट पदार्थोंको. यदि मैं अपने इस लघु उदरमें समाहित नहीं कर लूँ, तो मुझे ब्राह्मण-बालक मत कहना।' मैया उसकी थालीको पर्याप्त पायससे पूर्ण कर देती है, तो वह नवनीत, श्रीखण्ड, मलाईकी रट लगाता जाता है एवं ज्योंही मैया नवनीत लेने जाती है, तबतक वह पायस पी जाता है।

मञ्जुलीलामञ्जरी सभी सखाओंकी मुखारी कराती है। श्रीराधा स्वयं अपने हाथों प्रियतमके लिये ताम्बूल लगाती हैं। कुन्दवल्लीको मञ्जुलीला सङ्केत करती है। कुन्दवल्ली श्रीराधा द्वारा निर्मित युग्म ताम्बूल श्रीकृष्णके मुखमें एकसाथ दे देती है, तत्पश्चात् एक खण्डित ताम्बूलखण्ड वापस ले लेती है। मधुमङ्गल ही-ही हँसता हुआ कहता है – **''देवीप्रसादम् देवार्थम्; देवप्रसादम् देव्यर्थम्।''** जब ललिता मधुमङ्गलको ताम्बूल देने लगती है तो वह कहता है –**'अहं तपोनिष्ठ ब्रह्मचारी बालः। इदं ताम्बूलादि भोगसामग्री अग्रहणीयः। विनिमये यदि घृतसिक्तं लड्डूकं पायसं देहि तदा सर्वे पूर्णानन्देन ग्रहणीयः।'**

नयनोंसे एक बार पुनः श्रीराधारानीपर दृष्टिनिक्षेपकर श्रीकृष्ण नन्दभवनके अपने विश्रामाँगारकी ओर चल पड़ते हैं।

इधर ज्यों-ज्यों वन-प्रस्थानमें विलम्ब हो रहा है, नन्दग्रामकी वात्सल्यवती गोपियोंकी आकुलता बढ़ती जा रही है। जब नन्दनन्दन शिशु थे तो ये गोपियाँ किसी-न-किसी बहाने नन्दभवन जाकर अपने नयन शीतल कर लेती थीं, यदा-कदा यशोदानन्दनको अङ्कमें धारणकर सुख-समाधिमें लीन भी हो जाती थीं। किन्तु जबसे श्रीकृष्ण वत्सचारणकरने वनमें जाने लगे हैं, तबसे इन गोप-गोपाङ्गनाओंकी आकुलता चरम बिन्दुतक बढ़ गयी है। दिनमें तो यशोदानन्दन ब्रजमें रहते नहीं और रात्रिमें ब्रजरानीके शयनागारमें रहते हैं। केवल प्रातःकी कुछ घड़ियोंमें अथवा सायङ्काल वनसे लौटते समय ही ये गोपाङ्गनाएँ अपने प्राणसर्वस्वके मुखचन्द्रका दर्शन कर पाती हैं। इसीलिये यह ऐसा काल है कि इन सभी गोपाङ्गनाओंके मनोरथका सिन्धु इस समय उद्वेलित हो उठा है। शत-सहस्र ऊर्मियोंसे क्षण-क्षणमें यह सिन्धु इस प्रकार रसोच्छलित हो रहा है कि अन्तर्यामी अनन्तैश्वर्यनिकेतन श्रीकृष्णचन्द्र इन गोपियोंके भावोंका प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं। यही कारण है कि वे भोजनोपरान्त एक क्षणके लिये भी नन्दभवन रुकना नहीं चाहते, तत्क्षण ही नन्दभवनसे बृन्दाकाननकी ओर चल पड़ना चाहते हैं। किन्तु मैया यशोदाका सर्वोपरि स्नेह तत्क्षण ही वनगमनके श्रीकृष्णके चञ्चल आग्रहको रोक देता है। जबतक उनका सुत भोजनोपरान्त पच्चीस-तीस पल विश्राम नहीं करले, वे किसी गोपको गोवत्सोंको एकत्रित करनेकी अनुमति ही नहीं देतीं। मैयाके आग्रहके सम्मुख स्वयं श्रीकृष्णकी रुचि भी गौण हो जाती है।।।७४६।।

मुखरित मुरली-रवसे पत्तन होने वह अब लगता, प्रियतम!
धारा-सी तोरणसे बाहर गोश्रेणी-चल पड़ती, प्रियतम!
था नीलदेवता ही चालक उनका, वह भी-चलता, प्रियतम!
बाला आवास-अटारी से अपलक निहारती थी, प्रियतम।।७४७।।

यह सब हो जानेके अनन्तर अब पत्तन मुरली-रवसे मुंखरित होने लगता। तोरणद्वारसे मानों उज्ज्वल धारा निसृत हो रही हो- इस भाँति गो-श्रेणी चल पड़ती। उस अपार गौराशिके एकंमात्र चालक वे नीलदेवता ही थे, इसीलिये वे भी साथ-साथ ही चलते। राधाकिशोरी अटारीसे इस दृश्यको निहारती रहतीं।।।७४७।।

बाला आवास अटारीसे अपलक निहारती थी, प्रियतम !

श्रीकृष्णके दृष्टिसे ओझल होते ही रानी एवं सखियोंमें एक ऐसी व्याकुलता व्यक्त होती है कि कुन्दवल्ली एवं रोहिणी मैया उन सभीको श्रीकृष्णके विश्रामागारके सम्मुखके प्रकोष्ठमें ले जाती हैं। इस प्रकोष्ठमें एक ऐसी विशाल आरसी रक्खी है, जिसपर विश्रामागारमें विश्राम करते व्यक्तिका चित्र स्पष्ट दिखने लगता है। वैसे रानी इस प्रकोष्ठमें द्वारकी ओटमें बिछी रत्नमयी शय्यामें शयन करती हैं, किन्तु इस आरसीके कारण सम्मुख कक्षमें विश्राम करते श्रीकृष्णकी छवि उसे प्रत्यक्ष दिखती रहती है। ठीक यही दशा नन्दनन्दनकी है। उन्हें भी अपनी प्रिया भानुकिशोरीके मुखका दर्शन अपने कक्षमें लगी आरसीमें होने लगता है। प्रिया एवं सखियोंके प्राणोंमें प्रियतम-दर्शनस्वरूप अतिशय आह्लाद जाग उठता है।

श्रीकृष्ण मात्र तीस-पैंतीस पल ही विश्राम कर पाते हैं। इधर गायोंका हम्बारव इतना विकल हो उठता है कि उन्हें अदर्शनजन्य संतापसे मुक्त करानेके लिये श्रीकृष्णको यह विश्राम त्यागना ही पड़ता है।

ब्रजेन्द्रपुरी शकटाकार बसी है। शकटपुरीके पीछे विशाल एवं वैभवमय नगर निर्मित है। सब आवासोंपर नाम अङ्कित हैं। बृहद्वनमें बसा हुआ नन्दग्राम ज्यों-का-त्यों उठकर मानो यहाँ चला आया है। यमुना-पुलिनकी उन्मादी शोभा, गिरिराजके उत्तुङ्ग शिखरोंतक परिव्याप्त बृन्दाटवीकी अप्रतिम सुषमाका जो कोई जितना अधिक पान करे, उतनी ही अधिक मात्रामें उसकी लालसा बढ़ती ही जाती है। तृप्ति होनेका तो प्रश्न ही नहीं।

सभी चौरासी कोसके ब्रजमण्डलके ब्रजवासी ही तो इस ब्रजेन्द्रपुरीमें आवास पाये हैं। इस शकटपुरीके पूर्वभागमें यमुनापार हास्यवनके ब्रजवासियोंके प्रासाद हैं, दक्षिणमें जन्हुवनके ब्रजवासी आवास पाये हैं, पश्चिममें गिरिराज पर्वतकी उपत्यकाएँ हैं, किन्तु वहाँ भी पर्वत-वनके निवासियोंके आवास हैं, उत्तर भागमें सूर्यपत्तन वनके निवासियोंके आवास हैं।

पूर्वभागे स्थितं कोणं वनं हास्याभिधावकम्।।
भागे च दक्षिणे कोणं शुभं जन्हुवनं स्थितम्।
भागे च पश्चिमे कोणे, पर्वताख्य वनं स्थितम्।।
भागे ह्युत्तरकोणस्य सूर्यपत्तन संज्ञकम्।
इत्येता ब्रजमर्यादा चतुष्कोणाभिधायिनी।। (ब्रह्माण्डपुराण)

देखो, देखो न! यहाँ सभी मधुवनवासियोंके आवास हैं। मधुवनवासियोंके पार्श्वमें ही तालवन, कुमुदवन, शान्तनुकुण्डनिवासी अपने-अपने आवासोंमें निवास कर रहे हैं। इनके पार्श्वमें ही बहुलावनके ब्रजवासियोंके आवास हैं। लो, अब राधाकुण्ड, कृष्णकूण्ड एवं कुसुमसरोवरके गोंप-गोपियोंकी वासस्थलियाँ आयीं। ये गिरिराज परिसरके गोपोंके गृह और इधर चन्द्रसरोवरके गोपोंके आवास हैं। अब डीगके ब्रजवासियोंके आवास एवं उनके निकट ही घाटा एवं काम्यवनके निवासियोंके आवास हैं। लो, इधर बृषभानुवंशके सभी राजपरिवारोंके आवास हैं। ये सङ्केतवनके ब्रजवासी एवं यहाँ पुरातन नन्दग्रामके सभी गोपोंके आवास हैं। यहाँ कोटवनके ब्रजवासियोंके आवास हैं, फिर कोसीके, तब बच्छवन, चीरघाटके ब्रजवासियोंके आवास हैं। यहाँसे लोहवनके ब्रजवासियोंके आवास प्रारंभ होते हैं, फिर महावनके सभी गोपावास हैं।

विचित्र वैभवोंसे पूर्ण यहाँ सभी गोपराजोंकी पुरियाँ हैं। ये सभी गोप ब्रजेशसे कई गुने वैभवशाली हैं, इनमें ब्रजेशके प्रति मात्र प्रेमाधीनता है। शेष, सभी गोपोंकी अपनी-अपनी पुरियाँ, अपनी-अपनी असंख्य गोधनराशि है। सबकी पृथक्-पृथक् सुविशाल गोशालाएँ एवं समृद्ध गोपावास हैं। एक-एकको छटा देखते ही बनती है। कितना देखोगे?

देखनेका अन्त जो नहीं आवेगा। इसलिये सबके प्रधानभूत केवल ब्रजेशके आवासको ही देखलो, सो भी उसके अत्यन्त स्वल्पतम अंशको ही देख सकोगे।

लो, इस शकटपुरीके अपने-अपने आवासोंमें मङ्गला, भद्रा, श्यामला, पाली, शैव्या, चन्द्रावली आदि-आदि असंख्य गोपाङ्गनाएँ अपने भवनोंकी छतोंपर, भवनोंके मुख्य द्वारोंपर खड़ी निर्निमेष नयनोंसे अपने प्राणवल्लभ नन्दसुतके वनगमनको देख रही हैं। समग्र ब्रजेन्द्रपुरी ही निर्निमेष राजपथमें नयन बिछाये है। इसी पथसे वेणुमें स्वर भरते नन्दनन्दन ब्रजसे वनको प्रस्थान करेंगे।

मैया यशोदा, राधारानी एवं सखियोंको भोजन करनेका अतिशय आग्रह करती हैं, किन्तु वे सभी सूर्यपूजाव्रती होनेसे भोजनका निषेघ कर देती हैं। यशोदा नान्दीमुखी एवं कुन्दलताको उन्हें अपने ग्रामावासतक पहुँचा आनेकी अभ्यर्थना करती है। मैया रानी एवं सखियोंके लिये बहुत सारी भोज्य सामग्री स्वर्णथालियोंमें सजाकर भेजती है। प्रियतम श्यामसुन्दर जिस थालीमें भोजन करते हैं, सखियाँ उसी थालीमें चतुराईसे मैया यशोदा द्वारा भेजी सामग्री रख लेती हैं। वे प्रियतम श्यामसुन्दरके ताम्बूल एवं उनकी पीकसे संयुक्तकर बहुतसे ताम्बूल निर्माण कर लेती हैं, एवं उन्हें परस्पर आपसमें वितरित कर लेती हैं।

यशोदा मैया भानुकुमारीको विदा करते समय उसकी अनामिका अँगुलीमें इन्द्रनीलमणिरत्नसे जटित एक अँगूठी पहना देती हैं एवं उन्हें कण्ठसे लगाकर कहती हैं – 'बेटी! इसे अस्वीकार मत करना। मैंने इस अँगूठीको कृष्णके लिये बनवाई थी, किन्तु वह तो कुछ ढीली होनेके कारण इसे बार-बार निकाल फेंकता है। आज प्रातःकाल तेरी अँगुली देखकर मुझे यह अनुमान हुआ कि यह तुझे साङ्गोपाङ्ग बैठेगी।'

रानी मैया यशोदाके चरणोंमें झुककर प्रणाम करती हैं। यशोदा मैया भानुकुमारीको हृदयमें भर लेती हैं। वे रानीका मस्तक सूँघती हैं एवं उसकी ठोड़ी पकड़कर कहती हैं –'बेटी! तुम्हें देखकर प्रायः मुझे भ्रम हो जाता है। मैं सोचने लगती हूँ कहीं सुबल श्रीकृष्णको ही नीली साड़ी पहनाकर मुझसे खेल तो नहीं कर रहा है? फिर जब तू निकट आती है तो तेरे गोरे रङ्गको देखकर तुझे पहचान पाती हूँ। ओह! विधाताने श्रीकृष्ण एवं तुझे एकसी ही अङ्ग-आनन-शोभा दी है। मात्र इतना ही अन्तर है कि तुझमें नारीजनित लज्जा, विनय एवं शील है, साथ ही तू गोरी विद्युद्वर्णी है, और वह नीलमेघद्युति पुरुषोचित धार्ष्ट्य, चापल्य एवं स्वच्छन्द प्रवृत्तिका है।' रानी मैया यशोदाकी वार्त्ता सुनकर लजा जाती हैं।

गोपगण वत्सला गायोंको बछड़ोंसे पृथक् करनेमें असमर्थ होरहे हैं। सभी गोपावासोंसे श्वेत, कृष्ण, श्याम, पीत, कबरी, लाल – भिन्न-भिन्न वर्णकी गौएँ नदियोंकी तरह उफनती निकल रही हैं। वत्स भी अपने प्राणसखा श्रीकृष्णको देखकर हम्बारव करके अपना प्रेम-मन्तव्य प्रकट कर दे रहे हैं।

विगत रात्रि विहारके समय श्रीराधारानी प्रियतम श्यामसुन्दरका पीताम्बर शीघ्रतामें पहन गयी थीं, मञ्जुलीला उसे सुबलको लौटाती हैं, ठीक इसी प्रकार प्रियतम श्रीकृष्ण त्वरित वनगमनके कारण प्रिया श्रीराधारानीकी नीली साड़ी अपने अङ्गोंमें लपेट चले थे, उसे सुबलपत्नी कुन्दवल्ली मञ्जुलीलाको लौटाते हैं। किन्तु यह आदान-प्रदान दोनों सखियाँ प्रिया-प्रियतम – दोनोंको दिखाकर इस प्रकार कटाक्षसहित करती हैं कि रानी एवं प्रियतम दोनों ही लजा जाते हैं।

गोचारणके लिये वनगमनको समुत्सुक प्रियतम श्रीकृष्ण अपनी प्रियाको वनमें मिलनस्थलकी सूचनाका गुप्त सन्देश देनेके लिये मञ्जुलीलाको पत्र प्रदान करते हैं, जिसे मञ्जुलीला प्रियाके अञ्चलमें लपेट देती है।

सखियाँ कुन्दवल्ली एवं नान्दीमुखीके साथ श्रीराधारानीको यावट प्रासादकी ओर ले जाती हैं। रानी अपने आवासकी अटारीसे प्राणसारसर्वस्व श्रीकृष्णका वनगमन निहार रही हैं।

ओह! ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णके बिम्बारुण अधरोंपर विराजित वेणुकी महामोहन स्वरलहरीसे सम्पूर्ण ब्रजमण्डल मुखरित हो रहा है। जननी यशोदाका प्रेमावेश ऐसा है कि वाणीकी सामर्थ्य नहीं कि उसका वर्णन कर सके।



राम! प्रागस्य पश्चाद्भव सुबल! युवां श्रीलदामन् सुदामन्।
द्वौ पार्श्वस्थौ भवेतं दिशि-विदिशि परे सन्तु चात्मीय बन्धोः।।
इत्थं हस्ते विधृत्य प्रतिशिशु दिशती तत्र कृष्णस्य माता।
तत्तत्कर्माधिकारश्रियमपि ददती नेत्र नीरैरसिक्ताः।।

जननी पुकारे जा रही है –"हे बलराम! बेटा! तू नीलमणिके सदा आगे रहना। अरे सुबल! तू मेरे पुत्रके पीछे रहना। हे श्रीदाम! सुदाम!! तुम दोनों इसके दायें-बायें आसपास रहना। सभी आत्मीय बन्धुओं, सुनो तुम चतुर्दिक् इसे आवृत करके ही चलना।' इस प्रकार हाथ पकड़कर एक-एक शिशुको अपने पुत्र श्रीकृष्णकी रक्षाका दायित्व सौंपती एवं उन्हें अपने-अपने कर्त्तव्यका उपदेश करती माता यशोदाके नेत्रोंमें अश्रु छलक रहे हैं।

मैया यशोदा आँचल पसारकर देवी-देवता मनाने लगती है। "हे नृसिंह, प्रभो! मेरे बालककी रक्षा कीजियेगा, हे पृथ्वी! हे आकाश! हे अरण्याधिष्ठात्री देवगण! हे दिक्पालों! तुम सभी मेरे कृष्णके प्रति शुभदायक बने रहना।"

लो, महामरकत-श्यामल सुकुमार श्रीअङ्गोंके अन्तरालसे एक अभिनव प्रीतिधारा ब्रजेन्द्रपुरीमें प्रस्फुटित हो उठती है। सर्वत्र अपरिसीम प्रेमकी लहरें परिव्याप्त हैं। इन्हीं प्रीति-ऊर्मियोंके वेगपूर्ण प्रवाहमें ब्रजेन्द्रनन्दनकी गोचारणलीला सिक्त हो रही है।

एक विलक्षण आश्चर्य घटित होता है। श्रीकृष्ण मात्र आधी घड़ीमें ही महर्षि शाण्डिल्यसे लेकर शत-सहस्र ब्राह्मणों एवं असंख्य वयोवृद्ध गोप-गोपियोंके चरणोंमें प्रणिपात कर लेते हैं। सभीको प्रत्यक्ष अनुभव होता है कि यशोदाका नीलमणि उनके चरणोमें सिर रखनेको आया है। सभी उसे गले लगाते हैं, सिर सूँघते हैं, मस्तकपर तिलक करते हैं, निर्निमेष नयनोंसे उसके रूपका पान जीभरकर करते हैं, रुद्धवाणीसे भी आशीर्वादके वचन फूट पड़ते हैं - चिरञ्जीवी रहो, ब्रजमंडलके पालक! सुख-समृद्धिमें सदैव फूलो-फलो। इसी प्रकार प्रत्येक ब्रजतरुणी अपने प्रासादकी अटारीमें बैठी अनुभव करती है – न जाने किस सुगुप्त पथसे एकान्त कक्षमें वे उसके पास मुसकाते पहुँच गये हैं। मधुर मुसकान, तिरछी चितवन, प्रेमभरी कटाक्षमाला देखकर गोपीके सभी अङ्ग-अवयव निश्चेष्ट हो उठते हैं। निर्निमेष नयनोंकी राहसे प्राणोंको उन्होंने वशीभूत कर लिया है। जिस मधुर प्रेमकी शत-सहस्र मन्दाकिनियाँ उस समय गोपीके उरस्थलपर उत्थित होती हैं, उन्हें चित्रित करनेकी सामर्थ्य साक्षात् देवी सरस्वतीमें भी नहीं है।

सखागण समवेत शृङ्गध्वनि कर उठते हैं। ब्रजपुरंध्रियाँ मङ्गलगान कर रही हैं। ब्रजेश नन्द एवं जननी यशोदाको किसी अचिन्त्य शक्तिने ही प्रकृतिस्थ कर रखा है, नहीं तो पुत्रको वनगमनकी अनुमति देते समय जैसी उनकी दशा है, उससे तो आज गोचारण सर्वथा स्थगित ही हो जाना चाहिये। इस समय तो बृन्दाकाननके चर-अचर, स्थावर-जङ्गम समस्त अधिवासी ही प्रेम-विह्वल हो रहे हैं। सभी एक साथ अनिर्वचनीय प्रेमसिन्धुके अतल तलमें समा जाते हैं।

ऊपर आकाशमें सुर-समुदाय आनन्द-मूर्च्छित हो जाता है; उसकी चिरसंगिनी सुरवनिताएँ आनन्दविवश होकर बाह्यचेतनाशून्य हो जाती हैं। अमरोंके विमान नीचेकी ओर ढुलककर गिरने लग जाते हैं। कदाचित् अचिन्त्य लीलामहाशक्ति सबका नियन्त्रण नहीं करती होती, विशुद्ध सख्यरसभावित गोप-बालकोंके साथ श्रीकृष्णचन्द्रके इस निराविल आनन्दविहारमें व्याघात नहीं हो जाय – इस उद्देश्यसे लीलाशक्ति अपने अदृश्य अञ्चलकी छोरपर इन विमानपंक्तियोंको थाम नहीं लेती तो वे सभी धरातलका संस्पर्श करते होते। इधर पुरवासियोंका तो कहना ही क्या है! निर्निमेष नयन, स्पन्दनहीन अवयवयुक्त जो जहाँ अवस्थित है, वह वहाँ वैसे ही रह जाता है। सबके प्राण रुद्ध हैं, वहाँ उसी स्थलपर – जहाँ श्रीकृष्णचन्द्र हैं, श्यामसुन्दरके सचर गोपबालक हैं।

ब्रजदम्पतिकी समस्त वृत्तियाँ सिमटकर उनके नीलमणिके सस्मित मुखकमलपर आ बैठी हैं। वे भी केवल इतना ही निरख पाती हैं – गोपबालकोंसे परिवृत रहकर गौओंके साथ उनका नीलमणि विविध विचित्र प्रेमक्रीड़ामें संलग्न है। नन्दरायके ही नहीं, सम्पूर्ण नन्दपरिवारके – उपनन्द, सनन्द, नन्दन आदि श्रीकृष्णके चाचा-चाची, ताऊ-ताई, के प्रत्येक

रोमसे आनन्द-निर्झर झरने लग जाते हैं। ब्रजकी धराका आनन्दोच्छ्‌वास भी सर्वजन-प्रत्यक्ष है। धराके आन्तरालसे हर्षरूप हरीतिमा फूटी पड़ रही है। नवजलधरसुन्दर कृष्णमेघकी स्निग्ध धारा प्रति प्रभात एवं संध्या प्रवाहित जो हो रही है। प्रियतम श्यामसुन्दरकी स्निग्ध अमल अङ्गकान्तिसे धरा नित्य श्यामल जो रहती है। धराका अणु-अणु इस अङ्गछटाकी छायासे श्याममय हो उठा है। कण-कणमें नव-नव सुकोमलतम तृणाङ्कुर उदय हो जाते हैं। इस प्रकार समस्त ब्रजपुरको सुखसमुद्रमें निमज्जित करते श्रीकृष्णचन्द्र गोचारण करने वनमें जाते हैं।

लो, पुरके राजपथमें लगे वृक्षोंमें असंख्य जातियोंके हंस, मयूर, शुक, पिक, कोकिलादि विविध विहङ्गम आसीन हो गये हैं। विहङ्गमोंके कल कूजनसे पथ मुखरित हो रहा है।

लो, गौएँ जो गोपालों द्वारा संवरित नहीं हो रही हैं – अपने नीलमणिकी पुकार सुनते ही नियंत्रित होकर पंक्तिबद्ध चलने लगती हैं।

'अरी पिशंगि, ओ मणिकस्तनि, री प्रणतशृंगि, अरी ओ पिंगेक्षणी, अरी मृदङ्गमुखी, अरी धूमली, अहो हंसि, री वंशीप्रिये, अरी वत्सले! हीओ, हीओ!' इस प्रकार आह्वान सुनते ही गौएँ स्नेहविवश हुईं ठीक अपने नामको पहचानती अपने गोपालके सङ्केतानुसार व्यवस्थित चालसे वनकी ओर चरण बढ़ाने लगती हैं।

साँवर-जननीके हृत्तलकी निरुपम वत्सलता से, प्रियतम !
होकर अभिषिक्त पुनः बाला वासस्थल पर आती, प्रियतम !
वैसे ही दसों दिशाओं में साँवर दीखते उसे, प्रियतम !
बाहरका ज्ञान नहीं-सा ही उसमें रह जाता था, प्रियतम॥७४८॥।

साँवरकी जननीके हृत्तलकी निर्मल वत्सलता अब राधाकिशोरीको अभिषिक्त करने लगती। उनका कण-कण इस वात्सल्यरससे परिपूरित हो जानेपर मैयाकी अनुमति लेकर किशोरी अपने वासस्थलपर लौट आतीं। पहलेकी ही भाँति दसों दिशाओंमें केवल साँवरको सर्वत्र भरे हुए देखतीं। उस समय राधाकिशोरीमें बाहरका ज्ञान नहीं-सा ही बच रहता था।.........॥७४८॥

वैसे ही दसों दिशाओंमें साँवर दीखते उसे प्रियतम !

नन्दावाससे चलकर किशोरी अपने प्रासादकी ओर जानेके लिये वनपथकी ओर अग्रसर होने लगती हैं। प्रियाजीके आगे पथप्रदर्शन कराती ललिता चलती हैं, ललिताके पार्श्वमें रूपमञ्जरी हैं, बायीं ओर उनकी छोटी बहिन मञ्जुश्यामा हैं, दाहिनी ओर विशाखा हैं। यमुनाके किनारे-किनारे जो पगडंडी दक्षिणकी ओर गयी है, उसीपर वे सभी सखियाँ चल रही हैं। पगडंडीके पूर्वके भागमें मेंहदीकी झाड़ियोंकी कतारें हैं और पश्चिमकी ओर तटके निकट कुछ हटकर वन्य पुष्पोंकी झाड़ियाँ हैं। यमुनाके निर्मल प्रवाहमें रक्तपद्म, नीलपद्म एवं श्वेतपद्म सुविकसित हैं। हंस एवं अन्यान्य जलपक्षी ऊपरसे उड़कर आते हैं, वनगमन करती प्रियाको निरखते हैं और उनके ऊपर होते हुए यमुनाजलमें छपसे कूद पड़ते हैं। वेगपूर्वक जलमें डुबकी लगानेसे उनके पङ्खोंसे सञ्चरित पवनसे यमुनाके निर्मल जलमें हिलोरें उठने लगती हैं। इन हिलोरोंसे पुरइन पत्रोंसहित पूर्ण विकसित कमलदलोंमें जल एकत्रित हो जाता है, जो विशाल मुक्ताओंका भ्रम उत्पन्न कर देता है।

पगडंडीपर चलती प्रिया चौराहेपर आ जाती है। यहाँसे राजमार्ग पूर्वकी ओर मुड़ जाता है। प्रिया पूर्वकी ओर गिरिपर्वत स्थित सुरम्य काननकी ओर बस, एक दृष्टि डालती है, एवं दक्षिणकी ओर ही बढ़ने लगती है। इसी समय प्रियाको पूर्वकी ओरसे एक अत्यन्त सुमधुर नारीकण्ठध्वनि श्रवणगोचर होती है। सुदूर वनप्रान्तमें कोई नारी परम मधुर स्वरोंमें अति विरह विकल एक गीतकी प्रथम पंक्ति भर गा रही है। रानीकी आँखें उस गीतकी स्वरलहरीपर मुग्ध हुई अश्रुओंसे छलछला आती है।



कैसे जाऊँ री बीर घट भरिबे नीर,
ठाढ़ो जमुना तीर साँवरो अहीर ।।
(वस्त्राभूषण-शृंगार-सेवा-निरत सखी श्रीचित्राजी)(पृष्ठ १३५)

गीतके बोल अब स्पष्ट सुनाई पड़ने लगते हैं –

काहे मारे मोहे नयनन बान सौं, साँवरौ
तक-तक तीर चलावत बेधत उर मेरो भौंहन कमान सौं
काहे मारे मोहे नयनन बान सौं, साँवरौ

कोई गायिका एक ही पंक्ति गा-गाकर बस, उसीकी आवृत्ति बार-बार कर रही है।

रानी अब पगडंडी छोड़कर सघन वनमें प्रवेश कर जाती है। परन्तु मन ही मन उनका चित्त इन कानोंमें पड़ी सुमधुर गीत-पंक्तियोंको स्वयं गुनगुनाने लगता है।

हौं तो जात रहि यमुना जल भरन,
चित करष्यौ मेरो मुरलि तान सौं, साँवरौ।।

रानीका हृदय ज्यों-ज्यों गीत-पंक्तियोंकी आवृत्ति करता है, त्यों-त्यों तदनुरूप उनके प्राणप्रियतमकी रूपभङ्गी उन्हें अपने पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण चतुर्दिक् होने लगती है। रानीको प्रत्यक्ष दर्शन होने लगते हैं - उनके प्रियतम कदम्ब वृक्षकी छायामें खड़े नयनबाण चला रहे हैं। उनके मुखपर मन्द-मन्द मुसकान है, अतिशय प्यारभरी तिरछी चितवनसे वे उसकी ओर देख रहे हैं। रानीका हृदय अब अपने वशमें नहीं रहता है। मनकी गुनगुनाहट होठोंसे बाहर निकल पड़ती है। अत्यधिक सुरीली तानमें एक क्षण वनको निनादित करती रानी अतिशय मधुर रागिनीमें आलाप भरने लगती हैं।

रानीकी उन्मादित अवस्था देख ललिता रानीके निकट आकर उसके मुखारविन्दको सम्मुखसे घूरने लगती है। रानी अतिशय त्वरा एवं उत्कण्ठासे ललिताको निर्देश करती हैं – 'ललिते! बहिन! देख न! इधर देख, जामुनके छोटे-छोटे पत्तोंमें भी वे खड़े हैं।' ललिता एक क्षण जामुन वृक्षकी ओर दृष्टि डालती है तथा रानीसे कहती है - 'देख, तू गृह-आवासके निकट ही है, थोड़ी संवरित नहीं रह सकती?'

ललिताका सङ्केत श्रवणगोचर होते ही रानीके मुखपर किञ्चित् विवशता आ जाती है। वे सँभल जाती हैं। वे शीघ्रतासे चरण-सञ्चालन करती पथ पार करने लगती हैं। सम्मुख ही मञ्जरियोंसे लदा आम्रवृक्ष है। उस वृक्षके आलबालपर उसके तनेका सहारा लेकर रानी बैठ जाती हैं। भावावेशमें रानीके श्वास-प्रश्वास तीव्रतर होरहे हैं। वह दक्षिण दिशाकी ओर मुख किये हैं।

आम्रकी मञ्जरियोंपर भ्रमर गुञ्जार कर रहे हैं। एक डालीपर कोयलसे बड़े आकारकी एक पक्षिणी बड़ी ही सुमधुर काकली कर रही है। पक्षीके पङ्ख लाल एवं हलके कृष्णवर्णके हैं, किन्तु उसके नेत्र सर्वथा रक्तवर्णके हैं। वह अपनी पुतलियोंको नयनोंके कोयोंमें नचाती हुई रानीको अतिशय प्रेमविवश निहारती है। रानी भी उस पक्षीके नयनोंसे अपने नयन मिलाती हैं। रानीको प्रथम दृष्टिमें तो वह पक्षी मात्र एक छाया भर दिखता है, किन्तु दूसरे ही क्षण उसे उसकी पुतलियोंमें, उसके पङ्खोंमें तिरछी चितवन किये हुए प्रियतम श्यामसुन्दरकी छवि भरी दिखने लगती है। इस बार उस पक्षीकी कण्ठध्वनि भी रानीको अति सुमधुर स्वरमें एक ही आलाप भरती दृष्टिगोचर होती है –

काहे मारे मोहे नयनन बान सौं, साँवरौ ।

रानीका हृदय इतना अधिक भावावेगसे भरा है कि वे अतिशय सुमधुर स्वरसे पुनः जोरसे आलाप ले उठती हैं।

मानदास प्रभु निज बस कीनी,
मुकुत भई मति लोक-कान सौं।।
काहे मारै मोहे नयनन बान सौं, साँवरौ ।

ललिता पुनः रानीको सचेत करती है। रानी ललिताके आदेशका पालन करती वहीं आम्रवृक्षके नीचे बैठ जाती है। आम्रमञ्जरियोंमें भ्रमरोंका गुञ्जार अधिक होने लगता है। वस्तुतः भ्रमर रानीकी अगगंधसे आकृष्ट होकर कमलवनोंसे उमड़े आते हैं, किन्तु मञ्जरियोंको मुकुलित पाकर उनपर मँडराने लगते हैं। वहाँ उन्हें उस मादक गन्धका स्रोत नहीं मिलता जिससे आकृष्ट हुए वे कमलकोशोंको त्यागकर बहककर इधर आये हैं। उन्हें यह कल्पना नहीं होती कि इस अलौकिक गन्धकी स्रोत नारीदेहमें अवतरित किशोरीरानी हैं। वे तो अबतक गन्धप्रवाहका उद्गम पुष्पमकरन्दको ही समझते रहे हैं। अतः यूथ-के-यूथ भ्रमरदल इतस्ततः बहक रहे हैं। भ्रमरोंकी गुञ्जारको रानी अपने कानोंपर हाथ रखकर ऐसी भावमुद्रासे ध्यान लगाकर सुन रही हैं, मानो कोई उसे उसका नाम लेकर पुकार रहा हो। फिर वह अकस्मात् ही भावाविष्ट हो उठती हैं। वे सम्मुख ही स्थित तमाल वृक्षपर दृष्टि स्थिर करती हुई कहती हैं – "ललिता, ओ ललिता! सुन न! वे मेरा नाम ले-लेकर मेरा आह्वान कर रहे हैं। ओह! कैसी मधुर प्रेमभरी उनकी कण्ठध्वनि है!"

ललिता एक बार तो अवश्य ही कुछ उत्सुकताभरी दृष्टिसे रानीकी ओर देखती हैं। किन्तु कुछ ही क्षणोंमें रानीको उन्मादी मानकर धीरेसे कहती हैं – 'अरी! मैं तो कुछ भी सुन नहीं पा रही। देख न! कुन्दवल्लीने जो पत्र दिया है, उसमें तो चम्पावनमें मिलनका सङ्केत है। वे यहाँ हैं ही नहीं, तू शीघ्र घर चल। वहाँसे सूर्यपूजाकी सामग्री लेकर चम्पावन चलना है, न?"

ललिताकी बात अनसुनी करके रानी त्वरित गतिसे तमाल वृक्षके निकट चली जाती हैं। वे इतने प्रेमसे वार्त्ता करने लगती हैं, मानो उनके पार्श्वमें ही प्रियतम नीलमणि खड़े हों। वे लज्जासे विनम्र मुख किये कहती हैं – "प्रियतम! ललिता मेरा विश्वास ही नहीं करती। तुम मेरी बात मानकर एक बार हँस दो, न!" फिर तत्क्षण ही ऐसा अनुभव करते हुए कि सचमुच ही श्यामसुन्दर हँस पड़े हैं, वे स्वयं खिलखिलाकर हँस पड़ती हैं। अति प्रसन्न मुद्रामें ललितासे प्रिया कहने लगती हैं – "देख, ललिते! वे हैं या नहीं? तू मेरी बातको मेरा भ्रम मान रही थी।"

ललिता अति आश्चर्यभरी मुद्रामें कहती है – 'बहिन! तुझे क्या हो गया है? तू घर चलनेमें विलम्ब क्यों कर रही है? कहीं उधरसे ननद कुटिला नन्दभवन पहुँच गयी तो सब योजना गुड़-गोबर हो जायगी। और कहीं वह रविपूजनमें साथ चलनेको उद्यत हो गयी तो प्रियतम चम्पावनमें तेरी प्रतीक्षामें विहातुर प्राण ही दे देंगे। तेरी माया तू ही जाने। मुझे तो तू स्वयं हँसती दिखती है और मान बैठी है कि प्रियतम श्यामसुन्दर हँस रहे हैं।'

ललिताकी बात सुनकर रानी कुछ अनमनी होजाती हैं। वह तमालसे जाकर लिपट जाती हैं एवं अतिशय करुणाभरे स्वरमें कहती हैं – 'प्रियतम! बोलो, न! मैं क्या करूँ? यह ललिता मेरा विश्वास ही नहीं करती। इसे कैसे समझाऊँ कि तुम मेरे पास ही हो।'

एक-दो क्षण पश्चात् प्रिया ऐसी मुद्रा बनाती हैं मानों श्यामसुन्दर उसकी श्रवणेन्द्रियमें कोई गुप्त बात कहने जा रहे हों। किञ्चित् काल इस मुद्रामें स्थित रहकर फिर अतिशय उल्लासपूर्वक मुसकाती हुई ललिताको सम्बोधित करती हुई कहती है –"सखि! प्रियतम नीलमयङ्कने मुझे तुम्हें विश्वास दिलानेका उपाय बतला दिया है। देख, अब मात्र एक क्षणमें ही मैं तुझे अपना विश्वास कराये देती हूँ।"

रानी इधर-उधर ताककर रूपमञ्जरीको अपने पास बुलाती हैं, फिर उसे हृदयसे लगाकर कहती हैं - 'रूप! उधर तमालके नीचे देख, बता, क्या वहाँ मेरे प्राणवल्लभ खड़े मुसका नहीं रहे हैं? क्या उनका मनोज्ञ पीताम्बर नहीं फहरा रहा है? क्या वे मयूरमुकुट धारण किये, अपनी कमरमें वंशी नहीं खोंसे हैं? फिर यह ललिता मुझे पगली क्यों मानती है?"

रानीके इतना कहते ही रूपमञ्जरी कहती है – "ओह! ललितारानी! सत्य ही, रानी सत्य कह रही हैं। सचमुच ही प्रियतम प्राणवल्लभ यहीं हैं। ललिते! वे मुसकाकर तुम्हारी ही ओर देख रहे हैं।"

रूपमञ्जरी प्रेमावेशवश अधिकाधिक अधीर होती जा रही है। रूपमञ्जरीकी दशा देखकर ललिता असमञ्जसमें पड़ जाती है। वह कहती है – " अच्छा रूप! तू श्यामसुन्दरसे जिज्ञासा तो कर, जब वे रानीको प्रत्यक्ष दिखते हैं, और तुझे भी दृष्टिगोचर हो रहे हैं तो फिर मुझे क्यों नहीं दृष्टि पड़ते?"

रूपमञ्जरी ऐसी मुद्रा बनाती है, मानो सचमुच ही प्रियतमसे जिज्ञासा करती प्रश्न कर रही है। कुछ क्षणोंमें ही वह ललिताकी ओर रुख करके कहती है – ललिता बहिन! प्रियतम तो मेरे प्रश्नपर खिलखिलाकर हँस रहे हैं। वे कहते हैं कि "रानीको तो मैं प्रेमविवश होकर सदैव सर्वत्र ही दिखता रहता हूँ और अभी-अभी रानीकी इच्छासे मुझे तेरे सम्मुख प्रकट होना पड़ा है। हाँ ललिता, विशाखा, चित्रा आदि सखियाँ तो अनेक हैं। यदि मैं सभीको दीखने लगूँ तब तो यहाँ भावविक्षिप्तोंकी भीड़ ही हो जायगी। फिर मेरी प्राणप्यारी राधाकी सँभाल कौन करेगा?"

रूपमञ्जरी यह कहते-कहते प्रेममें मूर्च्छित होने लगती है। ललिताका भी आनन-सरोज प्रेमावेशवश रक्तिम हो उठता है। इधर अचानक ही रानी अति त्वरापूर्वक दक्षिण दिशाकी ओर दौड़ने लगती है। रानीके अङ्गोंसे ओढ़नी गिर जाती है। उसकी नीली साड़ीका अञ्चल भी अब गिरा, तब गिरा होने जा रहा है। रानी तीव्र स्वरमें कह रही हैं - "भागो, कहाँ भागते हो, मैं भी दौड़ना जानती हूँ। अभी पकड़ लेती हूँ।"

रानीकी विक्षिप्त दशा देखकर ललिता रानीको पकड़ती है। रानीका सम्पूर्ण शरीर स्वेदसे लथपथ हो रहा है। ललिता द्वारा पकड़े जानेपर तेज स्वरसे उसे विवर्जित करती हुई रानी कहती हैं – 'ललिता, मुझे छोड़, देख वे बहुत दूर वनमें चले जावेंगे।' फिर रानी अतिशय विनयपूर्वक प्रार्थनाके भावसे कह उठती हैं – 'प्यारे! तनिक ठहर जाओ। मैं अतिशय श्रान्त हो उठी हूँ। बस, दो साँस लेकर तुरन्त ही आरही हूँ।'

रानीको ठीक अनुभव हो रहा है कि उसके प्रियतम नीलमणि ग्राम्यावासकी पगडंडीपर ही दक्षिण दिशामें दौड़ रहे हैं। वे रानीसे सौ-डेढ सौ गजकी दूरीपर उसीकी ओर मुख किये खड़े हैं। रानी ललितासे कहती हैं - 'ओह ललिता! देख, वे मेरे प्राणेश्वर मेरी प्रार्थना सुनकर मुझे श्रान्त देखकर इन पीत झिण्टी पुष्पोंकी कुञ्जमें खड़े हो गये हैं।'

ललिता सचमुच ही पीत झिण्टी पुष्पोंके कुञ्जकी ओर बहुत ध्यानपूर्वक देखती है, किन्तु पुष्पोंसे लदी हुई झाड़ियोंके सिवा उसे और कुछ नहीं दीखता। अब तो रानीकी दृष्टिसे भी प्रियतम नीलसुन्दरकी छवि ओझल हो जाती है। बस, दृष्टिपथसे प्रियतमके ओझल होते ही रानीमें अथाह व्याकुलता-मिश्रित प्राणोंका स्पन्दन प्रारंभ हो जाता है। रानीकी श्वास-प्रश्वास तीव्र हो उठती है एवं वक्षस्थल इस प्रकार धड़कने लगता है कि सखियाँ उसे बचानेके उपाय सोचनेमें लग जाती हैं।

ललिता विशाखाको सङ्केत करती है। विशाखा रानीको झकझोरकर कहती है – 'अरी मूढ! तू तो यहाँ मात्र भावमें डूबी अचल प्रस्तरखण्डकी तरह पड़ी है और प्रियतम तो अबतक चम्पाकाननमें तेरी प्रतीक्षामें अश्रु बहा रहे होंगे।'

सखी विशाखाकी बात सुनते ही प्रिया चेतन हो उठती हैं। वे विशाखासे ही पुनः प्रश्न करती हैं - 'बहिन विशाखा! तू सत्य बतला। क्या ललिता जो कह रही है, वही सत्य है? सचमुच ही मैं बावली ही हूँ क्या? प्रियतम श्यामसुन्दर यहाँ हैं - यह मेरा भ्रम ही है क्या?' रानीको विशाखा तत्क्षण ही उत्तर देती है -'हाँ बहिन! तुझे यह सब भावोद्रेकवश भ्रम ही होता है।'

विशाखाका उत्तर सुनते ही रानी प्रकृतिस्थ हो जाती हैं तथा शनैः-शनैः दक्षिण पगडण्डीसे ग्रामकी राह चल पड़ती हैं। फिर भी किशोरीको सम्पूर्ण मार्ग ही प्रियतममय अनुभव हो रहा है। वे बारंबार यही आवृत्ति कर रही हैं कि उन्हें जो कुछ भी दृष्टिगोचर हो रहा है, वह तथ्य नहीं है। तथ्य वही है जो ललिता एवं विशाखाकी अनुभूति है।

रानी प्रासादमें आकर धमसे अपनी शय्यामें श्रान्त हुई गिर पड़ती हैं। ललिता रानीके सिरको अपनी गोदमें लिये उसके बालोंको सहला रही है। विशाखा चरणोंकी ओर आसीन पङ्खा झल रही है। रानीका मस्तक दक्षिणकी ओर है

एवं चरण उत्तर दिशाकी ओर हैं। रानीके कक्षका मुख्य द्वार तो पूर्व दिशाकी ओर है एवं द्वारके आस-पास दोनों ओर दो सुन्दर गवाक्षिकाएँ हैं। कक्षके उत्तरकी ओर भी एक बड़ी गवाक्षिका है। गवाक्षिका उपवनमें खुलती है। उपवनका दृश्य परम मनोरम है। सामने कदम्ब वृक्ष है जिसपर माधवी लताएँ लिपटी हैं। रानी ज्योंही इस गवाक्षिकाकी ओर दृष्टिपात करती हैं, उसे वहाँ भी प्रियतम श्यामसुन्दर कदम्बकी सर्वोच्च शाखापर आसीन दिखाई पड़ते हैं। वह कुछ क्षण तो मन ही मन भ्रमित होती हैं, फिर ललिताकी बात ही सत्य मान अपनी अनुभूतिको असत्य समझ नयन मूँद लेती हैं। नयनोंके निमीलित होते ही पुनः वह भावलोकमें अपने प्राणवल्लभके समीप ही पहुँच जाती हैं, एवं अतिशय प्रेमभरी मन ही मन वार्त्ता करने लगती हैं।

पगली-सी हुई बैठ जाती आकर बाहर गृह से, प्रियतम !
उठता द्वितीय पट सर-तट पर नूतन रङ्गस्थल का, प्रियतम !
क्रीड़ा वनगमनजनित वियोग हुतभुक् करने आता, प्रियतम !
उद्गमथल था जलने लगता, सखियाँ सँभालती थीं, प्रियतम ॥७४९॥

पगली-सी हुई वे अपने आवाससे बाहर आकर बैठ जातीं। अब नूतन रङ्गस्थलका, सरोवरके तटपरके द्वितीय पटके उद्‌घाटनका समय जो हो चुका था। वनगमन-जनित वियोगकी अग्नि सहसा अपनी क्रीड़ाका विस्तार करने लगती, उसकी लीला आरम्भ होती। उद्गमस्थल – राधाकिशोरीका हृद्देश जलने लगता। जैसे-तैसे सखियाँ उस आगको संयत किये रहतीं।।७४९।।

क्रीड़ा वन गमन जनित वियोग हुतभुक् करने आता, प्रियतम !

वृन्दारण्यके कण-कणमें मानो यह भावना प्रतिध्वनित हो उठती है – 'वनाधिदेवी! माधव आ रहे हैं। उल्लासयुक्त हो जाओ। अपने समग्र रूप, गुणोंका प्रकाश करो।' चतुर्दिक् तत्क्षण ही अलिदल मत्त गुञ्जार करने लगते हैं। वे सभी श्रीकृष्णाङ्ग-सौरभ-घ्राणसे मदान्ध हो रहे हैं। वनाधिदेवीने अपने आपको ऐसी सज्जासे सज्जित किया है कि शोभाधिदेवी स्वयं महालक्ष्मी चकित हो रही है। विमानचारी देववर्ग वृन्दादेवी द्वारा शृङ्गारित इस वनकी सज्जा देखकर नन्दनकाननको कूड़ेदानीमें फेंकने योग्य मान रहा है। समीर समुल्लसित हुआ सर्वत्र एक ही सन्देश प्रसारित कर रहा है – 'हे लतावल्लरियों, सचेतन होओ। हे तरुगण, सुविकसित होओ। हे शुक-पिकादि पक्षीगणों, तुम सभी मधुर पदावली पाठ करो। हे मृगगणों, आनन्दित होकर उछलो। प्रियतम नीलमणि वनमें आनन्दसरिता प्रवाहित करने आ रहे हैं।'

अपने आठ कर्णपुटोंके द्वारा नवीन, नवीनतर होती मधुरास्फुट वेणुध्वनिका रसपान करते ब्रह्माजी विभोर हो रहे हैं। वे हंसपृष्ठपर आसीन हुए प्रेमविवश रोमाञ्चित विह्वल दशाको प्राप्त हो रहे हैं। सुरेन्द्रके रोम-रोममें जो सहस्रों नेत्र हैं, उनसे अश्रुविन्दु झरने लगते हैं। सरलमति श्रीकृष्णके सखा चकित हैं – गगन मेघशून्य है, फिर भी ये जलविन्दुओंकी वर्षा कहाँसे हो रही है? वृन्दावनकी समग्र भूमि ही किसी अभिनव आनन्दवर्षासे सिक्त होरही है।

अपने कक्षमें शयित विश्रान्त किशोरी रानीको भी सुरभि यह संवाद श्रवणगोचर करा ही देती है। रानी रसपीयूषसे सिक्त एकदम शय्यासे उत्थित हो उठती हैं। ललिता रविपूजनकी सामग्री सञ्चित कर रही होती है। रसमय आवेशमें प्रियाको शय्यामें आसीन देखकर ललिता पूजाकी थाली रूपमञ्जरीको सम्हलाकर रानीके पास चली आती है। ललिता देखती है – प्रिया भावोन्मादके सुखमें डूबी अपनी सुधबुध भुलाये भवनके मुख्य द्वारपर बैठ गयी हैं। सच्चिन्मयी जड़िमा रानीके रोम-रोममें व्याप्त है एवं उनके अङ्ग अवश हो रहे हैं।

इतनेमें ही विशाखा अन्य सखियों सहित सभी पूजन सामग्री लेकर द्वारपर रानीके पार्श्वमें ही पहुँच जाती है। वह रानीके कानोंमें अति मन्द स्वरमें कहती है –"गुरुजनोंसे अनुमति ले आयी हूँ, चलो, रविपूजनार्थ चलें।"

ललिता तत्क्षण ही विशाखाको टोकती है – 'तुझमें कुछ भी समझ नहीं है। क्या इसे शृङ्गार-सज्जित नहीं करना है? यह तो पगली ऐसे ही भाग छूटेगी।' ललिताके पार्श्वमें ही गुणमञ्जरी मस्तकपर धारण की जानेवाली नवीन-नवीन स्वर्णिम चूड़ामणि, हाथमें धारण करनेका लीलाकमल, नवीन नीली रत्नजटित साड़ी एवं अन्य शृङ्गार-सामग्री लिये खड़ी है। ललिता तत्क्षण ही रानीको लेकर द्वारदेशके पार्श्वमें ही स्थित एक कक्षमें प्रवेश करती है एवं रानीकी यथायोग्य सज्जा कर देती है। इस कक्षके पार्श्वमें ही कदम्बके पुष्पित वृक्ष हैं। उसके सर्वोपरि भागमें कुछ शुक सुविराजित हैं। अचानक एक शुक पक्षी प्रियाकी ओर दृष्टिपात करता बोल उठता है - 'राधे! धैर्य रखना।' कृष्णकुण्डके मिलन-स्रोतपर ही माधवीकुञ्जमें प्रियतम आसीन हैं। वे तुम्हें लेकर ही चम्पावनकी ओर प्रस्थान करनेवाले हैं। मैं अभी वहींसे उड़कर आया हूँ। ओह! उनके सौन्दर्य-लावण्यका क्या वर्णन करूँ? उनके आनन-सरोजपर अलकावलि विकीर्ण है। कटिप्रदेशमें वंशी खौंसी हुई है। उनके लाल-लाल बिम्बाफल सदृश अधर अस्फुट स्वरमें 'प्रिये-प्रिये' उच्चारण कर रहे हैं। वे सुबलके स्कन्धदेशमें अपना वाम हस्त रखे हैं। वे दक्षिण हस्तसे तुम्हारे स्वागतमें पुष्प बिछानेके लिये अतिशय सुरभित पुष्पोंका चयन कर रहे हैं। अहा! उनके चञ्चल चपल नेत्र तिरछी चितवनसे इधर-उधर ताक-झाँक रहे हैं। उनके चरणोंमें आभूषणरूपमें यशोदामैया द्वारा पहनाये स्वर्ण-घुँघरू रुनझुन-रुनझुन शब्द कर रहे हैं। अरे, अरे, उन्होंने तो अपने पीताम्बरको ही कटितक ऊँचा उठा लिया है, और उसीमें पुष्पराशि सञ्चित हो रही है।''

शुकपक्षी द्वारा निज प्रियतमका प्रतीक्षा-संवाद सुनते ही प्रिया बिना सखियोंकी प्रतीक्षा किये ही तीव्र गतिसे बिना ओढ़नी ओढ़े ही काननकी ओर चल पड़ती हैं। ललितादि सखियाँ प्रियाकी ओढ़नी लेकर पीछे-पीछे तीव्रगतिसे चलती हैं। प्रियाको अपने तनकी स्मृति ही नहीं। अवश्य ही उनका मन तो एक क्षणमें ही वहाँ पहुँच गया है, जहाँ उसके प्रियतम माधवी लताओंसे पुष्पचयन कर रहे हैं। ओह! प्रियाकी नासिका तो डूब गयी है, अपने प्रियतमकी सुवासित अङ्गगंधमें। प्रियाके नेत्र स्पष्ट निरख रहे हैं, अपने प्रियतमकी रूपमाधुरीको। ओह! कितनी मनमोहक है प्रियाकी कुञ्चित कुन्तलराशि। चमकते हुए ललाटपर चन्दन, कस्तूरी एवं केसर-कुङ्कुमकी खौर, उसपर की हुई पत्रावलि-रचना, कामिनियोंका चित्त तो तत्क्षण ही अपहृत होकर उसमें ही फँस जाता है। फिर लीलायुक्त चढ़ी हुई भौहोंका विलास और झूमते हुए कमलोंकी शोभा अपहृत करते नेत्रद्वय - प्रियाका मन डूब गया है इसी चिन्मय माधुर्यराशिमें। प्रिया चरण रखती है कहीं, परन्तु उसके चरण पड़ते हैं कहीं। प्रियतम नीलमणिके प्रेमदूत शुकने न जाने कैसा मंत्र फूँका है कि प्रीतिमंत्रके प्राणोन्मादी प्रभावने प्रियाके सम्मुख अन्य अस्तित्वको रहने ही नहीं दिया है। बस, प्रियाके चित्तपटलसे उसकी लोकधर्मकी मर्यादा, उसके पिता-माता, भाई-बन्धु, सास-ससुर, पति-परिजन, उसका सखी-समाज – जैसे कभी थे ही नहीं, इस प्रकार सदा-सदाके लिये विलुप्त हो जाते हैं। आतुर कलिन्दनन्दिनीका प्रवाह जैसे सुरसरिसे सङ्गमित हो उद्दामरूपसे उद्वेलित हुआ नीलसिन्धुकी ओर अविराम दौड़ पड़ता है, इसी प्रकार शुक द्वारा प्रियतमका प्रेम-सन्देश पाते ही प्रिया अपने प्रियतम नन्दतनूजसे मिलनेको भाग छूटती है।

सखियाँ देखती हैं – प्रिया अपनेको संवरित करनेकी चेष्टा करती हैं, परन्तु अकारण ही उसके नेत्रोंसे अजस्र अश्रुधारा बहने लगती है। उसके चित्तमें प्रियतम-प्रेमका ऐसा अमृतरस प्रवाहित हो उठा है जो सुधाकरसे भी अधिक सुशीतल, सुधाकी मधुरिमासे भी अनन्तगुना सुमधुर, चुम्बकीय शक्तिसे भी अधिक आकर्षक है।

तीव्र गतिसे कुछ क्षण अनवरत चलनेके कारण उठे तीव्र श्वास-प्रश्वाससे प्रियाका वक्षस्थल ऊपर-नीचे हो रहा है। ललिता किसी प्रकार प्रियाको रोकती है एवं कुछ देर विश्रामके लिये पास ही स्थित एक कदलीकुञ्जमें ले जाती है। इस कुञ्जमें स्वाभाविक ही केलेके वृक्ष सटे-सटे लगे हैं। इनके कोमल-कोमल विस्तृत पत्ते ही परस्पर स्वभावतः गुँथकर दीवालका कार्य सम्पादित कर रहे हैं। केलेके पत्तोंकी स्वाभाविक ही छत एवं गुम्बद बन गये हैं। कुञ्जके उत्तर-दक्षिणकी ओर दो द्वार हैं। ये द्वार रक्तकमलके पुष्पोंसे बहुत ही कलात्मकतासे सज्जित किये गये हैं। भीतरसे

निकुञ्जकी लम्बाई-चौड़ाई दस गज है। ठीक मध्यमें एक चन्दनकी चौकी है। चौकीकी रचना भी अतिशय कलापूर्ण है। इसके मध्यमें नीले मखमलका सुनहरे कसीदोंसे चित्रकारी किया मोटा तूलपुष्ट गद्दा बिछा है। पूर्वकी दीवालपर सम्मुख ही प्रियतम श्यामसुन्दरका एक अतिशय सुन्दर पूरा दो गज लम्बा चित्र विजड़ित है। इस चित्रमें श्रीकृष्ण एक वृक्षपर आसीन सारिकासे कुछ वार्त्ता कर रहे हैं। चौकीका सिरहाना पश्चिमकी ओर है।

ललिता प्रियाको चन्दनकी चौकीपर ज्योंही पश्चिमकी ओर सिर करके विश्रामके लिये लेटाती हैं, प्रियाकी दृष्टि पूर्वकी दीवालपर विजड़ित चित्रपर पड़ती है। ललिता चाहती है - प्रिया कुछ काल विश्राम करके फिर चम्पाकुञ्जकी ओर प्रस्थान करे। वह प्रियाको अपनी जाँघोंका उपधान लगाकर थोड़ा लेट जानेको कहती है। प्रिया लेट जाती हैं, मधुमती चरणोंके पास बैठी अपने नीले आँचलसे प्रियाके चरण सहलाने लगती है।

ज्योंही प्रियाकी दृष्टि पूर्व दिशाकी दीवारपर विजड़ित चित्रपर जाती है, वह चित्रको प्रत्यक्ष ही मानने लगती है। वह ललितासे तत्क्षण ही प्रश्न कर बैठती है – "बहिन ललिता! प्रियतम नीलमणि इस सारिकाको किसके लिये क्या सन्देश दे रहे हैं?"

ललिता प्रियासे हँसकर कहती है – 'बहिन! यह बात तो तू सारिकासे ही पूछ। मैं तो तेरे पास तेरी सेवामें संलग्न हूँ, सारिकाके हृदयकी गोपनीय वार्त्ता तुझे कैसे बतलाऊँ? वस्तुतः बहिन! यह प्रियतम श्यामसुन्दरका रङ्गदेवी द्वारा निर्मित चित्र है, यह किसी प्रत्यक्ष सत्य घटनाका अङ्कन थोड़े ही है?"

प्रिया कुछ सोचकर पुनः प्रश्न करती है – 'ललिता! रङ्गदेवी कहाँ है?'

ललिता प्रियाका सिर सहलाती उत्तर देती है –'अवश्य ही रङ्गदेवी अपने कुञ्जमें होगी, यहाँ तो मैं, विशाखा, मञ्जू एवं मधुमती मात्र इतनी ही सखियाँ हैं।'

प्रिया पुनः प्रश्न करती हैं – 'ललिता! इस सारीसे मुझे इसी समय जिज्ञासा करनी है। प्रियतमने उसे सचमुच क्या सन्देश दिया है? अवश्य वह संदेश मेरे ही लिये होगा। तू सारीको तुरन्त बुला ला।'

ललिता बार-बार प्रियाको समझाती है कि वनमें असंख्य सारिकाएँ हैं, वह भला किस सारीको इस समय बुला लावे? अकस्मात् ही एक सारिका उड़ती हुई प्रियाके कदलीकुञ्जमें प्रवेश करती है। सारिकाको देखते ही प्रिया प्रसन्न हो जाती है। सारिका पहले तो उड़ते हुए प्रियाकी चन्दनचौकीकी परिक्रमा करती है, फिर उस चित्रके ऊपर आसीन हो जाती है जो पूर्वकी दीवालपर विजड़ित है। प्रिया भावावेशमें सारिकाकी ओर अतिशय प्रेममुद्रामें निहारती हैं, फिर ललितासे मन्द मुसकाती हुई कहती हैं– 'देख, सारिका आगयी न?'

ललिता हँसकर प्रत्युत्तर देती है – 'अच्छा! अब तू ही इससे जो जिज्ञासा करनी हो, पूछ ले।'

प्रिया अत्यन्त लज्जावनत मस्तक झुकाकर मन्द स्वरमें सारिकासे पूछती है –" सारिका बहिन! बता न, प्रियतम नीलसुन्दरने तुझे क्या सन्देश दिया था?"

सारिका कहती है – "मेरी प्यारी रानी! मैं चित्रमें जो अङ्कित है वह सारिका तो सर्वथा नहीं हूँ। किन्तु निश्चय ही मैं अभी चम्पावनसे ही तीव्र गतिसे उड़ती हुई तुम्हारे पास आ रही हूँ। वहाँ प्रियतम श्यामसुन्दर तुम्हारे विरहमें व्याकुल हुए अपनी विरहव्यथा अपने सखा सुबलको सुना रहे हैं। विगत एक घड़ीसे प्रियतमकी विरहदशा देखकर ही मैं द्रवितचित्त हुई तुम्हें ढूँढती यहाँ आई हूँ।"

सारिका कहती है –"मेरी प्रिय रानी! वनकी हरिणियोंके चञ्चल नेत्र देख-देखकर प्रियतम नीलमणिको तेरी स्मृति हो आई। वे तेरी स्मृतिमें इतने अधिक उद्दीपित हो उठे कि सरोवरोंमें जलपक्षियोंका कलरव उनके लिये तेरे नूपुरोंकी झङ्कार बन गया है। उत्कृष्टतम सौरभ-तिरस्कारी प्रस्फुटित पद्मश्री उन्हें तेरी हसित आननश्रीकी स्मृतिमें बेसुध कर रही है। कमलोंपर आसीन कृष्णभ्रमर उन्हें तेरे कज्ज्लरंजित दीर्घ नयन प्रतीत हो रहे हैं। रस च्यवन करती शाखाओंमें ही

पक्व दाड़िम तेरी दंतछटाकी स्मृतिमें, बिम्बफल तेरे अधरोंकी एवं उन्नत विशाल नारङ्ग तेरे उरोजोंकी स्मृतिमें प्रियतमको बेसुध बना दे रहे हैं।''

''मेरी प्यारी भानुनन्दिनी! यह सम्पूर्ण वृन्दावन ही प्राणवल्लभ नीलसुन्दरके लिये तेरा रूप हो गया है। वे जहाँ भी दृष्टि डालते हैं, वहीं उन्हें तू ही दृष्टिगोचर होती है। प्रिये! एक असीम अनन्त व्याकुलता तेरे विरहमें उनमें सुव्यक्त हो उठी है। प्रिये! मैं जब प्रियतम नीलसुन्दरको लक्ष्य कर रही थी, उस समय मैं एक चम्पक वृक्षकी डालीपर आसीन थी। श्रीदाम एवं सुबल ये दोनों सखा वन एवं पर्वतशोभा दिखा-दिखाकर उनका ध्यान तेरे केन्द्रसे हटानेकी चेष्टामें संलग्न थे। परन्तु मेरे जीवनसर्वस्व नीलमयङ्क तो तेरी स्मृतिमें इतने अधिक तल्लीन हैं कि सुबल एवं श्रीदाम द्वारा वर्णित गिरिपर्वतशोभा उनकी श्रवणेन्द्रियमें प्रवेश ही नहीं कर पा रही है। मयूरोंका केकारव सुनकर वे ऐसा ही अनुभव कर रहे हैं, मानो मयूरियाँ उनसे यही प्रश्न कर रही हैं - प्रिया कहाँ है? प्रिया कहाँ है?''

''मेरी प्यारी रानी! प्रियतम अपने प्रिय आत्मतुल्य नर्मसखा सुबलके सम्मुख अपनी वेदना प्रकट कर रहे हैं - भैया सुबल! ये हंस-हंसिनियाँ मुझ एकाकीको प्रिया-विरहमें दुखी देख मेरी सहानुभूतिमें अपने जोड़ोंको त्यागकर उदास मनसे कमलिनियोंके क्रोड़ोंमें अपनी ग्रीवा डालकर शान्त लेट गये हैं। हे सखे! इन हरिणियोंको भी मेरा प्रिया-वियोगी रहना रुचिकर नहीं है। वे भी अपने कृष्णमृगोंको त्याग अति उदास मनसे मुझे कितनी दयाभरी दृष्टिसे निहार रही हैं। यह कृष्णाकोकिला किशोरी-किशोरी कूजनकी रट लगाये देखो, प्राणोंकी कैसी आकुलतासे इधर-उधर फुदक रही है। इन माधवी लताओंने भी मुझे प्रियाहीन जानकर वृक्षोंका आलिङ्गन त्याग दिया है और ये वृक्ष भी अधोमुख विषादमें कम्पित हो-होकर मेरे प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट कर रहे हैं। ये अलिगण, हे सखे, देखो, मकरन्दपानसे विरत हो रहे हैं और मुझे एकाकी उदास देख प्रियाके गुणगानकर मेरा मनोरञ्जन करनेका प्रयास कर रहे हैं। और इन पुष्पलताओंकी ओर तो दृष्टिपात करो, इन पुष्पलताओंने अपनी विकसित पुष्पसज्जा पथमें गिरा दी है और मुझे संदेश दे रही हैं कि जब प्रिया राधा ही वनमें नहीं है, हम किसके लिये सुसज्जित, शृङ्गारित हों। हमारी समस्त सज्जा प्रिया राधा बिना प्रयोजनशून्य है।''

''मेरी प्यारी रानी, प्रियतम श्यामसुन्दरने अपने सर्वप्रिय श्रीदाम भैयाको तुम्हें शीघ्र लिवा लानेके लिये यह कहकर वनमें भेज दिया है कि यदि तुम मुझे जीवित और प्रसन्न मुसकाता देखना चाहते हो तो शीघ्र मेरी प्रिया राधाको मेरे पास इस चम्पावनमें आनेका सन्देश दे दो। हे सखे श्रीदाम! मेरी प्रिया राधा अपनी सखियों सहित जब अपने नूपुरोंकी झङ्कारसे वन-प्राङ्गणको मुखरित करेंगी, जब मेरी प्रिया अपनी प्रेम-सुधारससनी दृष्टिनिक्षेपसे इन विरहिणी वल्लरियोंको जीवनदान देंगी, अपनी मुसकान-माधुरीसे सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गम ब्रजको चैतन्य प्रदान करेंगी, तभी मेरी भी प्राणाशा करना। मैं परमाकुलचित्त रोम-रोमसे मेरी प्रियाकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ और अपनी प्रियाके पथमें नयन बिछाये बैठा हूँ।''

सारिका पुनः कहती है – ''मेरी प्यारी रानी! अपने प्राणसखा श्रीकृष्णकी सम्हालका सम्पूर्ण दायित्व सुबलपर छोड़कर भैया श्रीदाम जब वनमें तुम्हें ढूँढने चल पड़ा तभी मैं उड़ती हुई तुझे संदेश देने तेरे पास आयी हूँ। प्रिये! सुबल कदलीपत्रसे प्रियतम नीलसुन्दरपर व्यजन कर रहा है। फिर भी उनके रोम-रोमसे स्वेदधारा मानो निर्झरकी तरह झर रही है। प्रिये! प्रियतम अपने सभी आभूषणोंको अपने नील कलेवरसे पृथक् कर चुके हैं। वे विक्षिप्तकी तरह अपने प्रत्येक आभूषणसे भी वार्त्ता करते हैं - हे मयूरमुकुट! तुम्हारी कृतार्थता मेरे शीर्षपर भी विराजित रहनेकी तभी है जब मेरी प्राणप्रिया राधाके चरणतालुओंमें मैं तुम्हें झुकाकर संस्पर्शित कराता हूँ। हे मणिमालाओं! मेरा समग्र शृङ्गार मात्र प्रियाके लिये ही है, जब वही मेरे सङ्ग नहीं है तो मैं तुम सबको हृदयमें धारणकर अपना बोझ ही बढ़ाऊँगा। हे कटिकिङ्किणी! जब मेरी प्रिया मेरे सङ्ग हो तभी मुझे तुम्हारी रुनझुन ध्वनि प्रिय लगती है, अन्यथा तुम्हारी कर्णकटु स्वरलहरीसे मेरे आकुल हृदयको अधिक व्यथित मत करो।''

"हे मेरी प्राणप्यारी राधा! प्रियतमने अपने अङ्गोंमें मात्र तुम्हारे हाथों प्रेषित वनमाला ही धारण कर रक्खी है, उन्होंने शेष सभी शृङ्गार उतारकर वनमें यह कहकर चम्पावृक्षके तले फेंक दिया है कि हे कुण्डल, हे केयूर, हे नूपुर, हे बाजूबन्द एवं हे कण्ठहार! तुम सभीको मैं आकुल हृदयसे विदा दे रहा हूँ। जब मेरी प्रिया मेरा कण्ठहार बने, तभी तुम सब भी मुझे सुशोभित करना।"

"मेरी प्यारी रानी! अब तुम शीघ्र राधाकुण्डकी ओर गमन करो, तुम्हारा श्रीदाम भैया कुञ्जके बाहर वनमें पदार्पण कर चुका है।"

सारिकाकी वार्त्ता सुनते ही प्रिया अतिशय त्वरापूर्वक कदलीकुञ्जसे राधासरोवरकी ओर द्रुतगतिसे चल पड़ती है। रास्तेमें ही उन्हें उनके श्रीदाम भैया मिल जाते हैं एवं वे सखा श्रीकृष्णकी विरहदशाका वैसा ही वर्णन ललिताके सम्मुख करते हैं जैसा सारिका पूर्वतः ही वर्णन कर चुकी होती है। किशोरी अत्यन्त तीव्र गतिसे राधाकुण्डकी ओर प्रस्थान करती हैं।

गिरिवर-परिसर में सुन्दर वन जो आठ कुञ्ज का है, प्रियतम !
उसमें ही किसी कुञ्जमें वे बाला को ले आतीं, प्रियतम !
साँवरकी बाट देखने का पल वह युग-सा बनता, प्रियतम !
वे आ पाते जब दशा इधर दसवीं आने लगती, प्रियतम ॥७५०॥

गिरिराज परिसरका वह सुन्दर वन, जिसमें वे आठ कुञ्जें सुशोभित हैं, उनमेंसे ही किसी कुञ्जमें सहचरियाँ राधाकिशोरीको ले आतीं। वहीं विराजित रहकर राधाकिशोरीको नीलसुन्दरकी प्रतीक्षा करनी पड़ती। परन्तु प्रतीक्षाका एक-एक पल किशोरीको युग-सा प्रतीत होता। सचमुच जब राधाकिशोरीकी दसवीं दशा आने जैसी परिस्थिति बन जाती तब नीलसुन्दर सरोवर तटपर आ पाते थे।..... ....।।७५०।।

साँवरकी बाट देखनेका पल वह युग-सा बनता, प्रियतम!
वे आ पाते जब दशा इधर दसवीं आने लगती, प्रियतम!

प्रिया सखियों सहित राधाकुण्डमें ललिताकुञ्जमें पहुँच जाती है। कटहली चम्पाके एक सघन छायादार वृक्षकी शीतलतामें सखियाँ प्रियाको एक काष्ठनिर्मित कलापूर्ण चौकीपर आसीन करा देती हैं। चौकीपर नीले मखमली रेशमका तूलपुष्ट (सेंवलकी सुकोमल रूईभरा) मोटा गद्दा बिछा है। उसपर स्वर्णतारोंकी कसीदेकी रेशमकी अति सुकोमल चद्दर बिछी है। चतुर्दिक् अतिशय कलापूर्ण कसीदा किये उपधान भी रखे हैं। प्रिया किशोरीके चरणोंके पास रूपमञ्जरी आसीन हैं। वे नीले रेशमी सुकोमल वस्त्रसे प्रियाके चरणोंके तलवे धीरे-धीरे सहला रही हैं। प्रियाके मस्तकपर चूड़ामणि है। ललाटमें सिन्दूरकी अतिशय मनोरम गोल बिन्दी परम सुहावनी लग रही हैं चिबुकपर अति लघु काला तिल है। उनके दाहिने हांथपर डंडी सहित नीलवर्णका लीलाकमल है। कमलको वे फिरकनीकी तरह यदाकदा घुमाती हैं।

प्रियतम नीलसुन्दरकी प्रतीक्षामें प्रिया बार-बार राधाकुण्डके उत्तर एवं पूर्वकी ओर दृष्टि डालती हैं। जिस चम्पा वृक्षके नीचे प्रिया आसीन हैं, उससे थोड़ी ही दूरीपर एक अतिशय सुन्दर सघन आम्रवृक्ष अपनी शाखाएँ फैलाये स्थित है। यह वृक्ष मञ्जरियोंसे लदा है। एक शाखापर कोयल बैठी कुहू-कुहूकी रट लगा रही है। चातककी पिहू-पिहू ध्वनि प्रियामें उद्दीपनका सृजन कर रही है और उन्हें रह-रहकर कम्पविकार होने लगता है। कम्पविकार इतना तीव्र होता है कि प्रियाके अङ्ग झंझामें काँपते हुए कदली वृक्षके समान लगते हैं। कुछ क्षणोंतक यह कम्पन प्रियाके रोम-रोमको कम्पित करता है, और फिर शान्त हो जाता है।

चम्पा वृक्षके पूर्व एवं उत्तरके कोनेपर अत्यन्त सुन्दर हरे बाँसोंके झुंड खड़े हैं। बाँसोंमें भी पुष्प लगे हैं। बाँसोंके शिखरपर अनेक शुक आसीन हैं। ये सभी शुक श्रीकृष्णका यशोगान कर रहे हैं।

इसी समय वृन्दादेवी निकुञ्जमें पश्चिम दिशाकी ओरसे प्रवेश करती हैं। वृन्दाके हाथमें एक स्वर्णपिञ्जर है। उसमेंकी एक स्वर्णडंडीपर एक सारिका विराजित है।

वृन्दाके आते ही श्रीराधारानी उसे उन स्तुतिपाठ करनेवाले शुकोंको पास बुलानेको कहती हैं। वृन्दादेवी शुकोंको पास बुलाती है। कुछ ही क्षणोंमें सभी शुक रानीके आसपास बैठ जाते हैं। राधारानी अपने दाहिने हाथके लीलाकमलको आसनपर ही रख देती हैं। वे अपने बायें हाथपर एक-एककर सभी शुकोंको बैठाती हैं एवं दाहिने हाथसे उनके सिरों एवं पीठपर हाथ फेरती हैं। फिर परम मधुर कण्ठसे अतिशय प्रेमभरी वाणीमें कहती है - 'प्यारे शुकों! तुम सभी मेरे प्रियतमके अनन्त यशका सदैव गान करते रहते हो। बोलो, मैं तुम सभीकी कौनसी प्रिय वस्तु तुम्हें प्रदान करूँ?'

शुक प्रियाके करस्पर्शको पाकर प्रेममें डूब जाते हैं, वे कभी नेत्र निमीलित करते हैं एवं कभी उन्मिषित। इसी समय वृन्दा पिंजरेका द्वार उन्मुक्त कर देती है। पिंजरेमें आसीन सारिका भी रानीके बायें पैरपर बैठ जाती है। सारिका रानीके चरणपर अपनी चौंचका ऊपरी शिरोभाग स्पर्श कराती है। प्रियतमकी स्मृतिमें प्रिया इतनी अधिक तल्लीन है कि उसे ज्ञात ही नहीं होता कि सारी इस प्रकार चरणोंमें अपना मस्तक स्पर्श करा रही है। सारिकाकी अनुकृति करते हुए शुकगण भी प्रियाके चरणोंमें अपना मस्तक स्पर्श कराने लगते हैं। प्रियाकी प्रियतम-स्मृति प्रगाढ़-प्रगाढतर होती जा रही है। प्रियामें अबतक तो कम्पविकार ही उदय हो रहा था, अब उनमें स्वेद, रोमाञ्च, वैवर्ण्य भी प्रकट होने लगे हैं। एक साथ चार सात्विक विकारोंके उदय होनेसे चिन्तित होकर विशाखा ललिताको सूचित करने पहुँचती है।

ललिता विशाखाको सूचित करती है कि प्रियतम नीलसुन्दरको श्रीदाम भैयाके द्वारा यह संदेश भिजवाया जा चुका है कि प्रिया ललिताके कुञ्जमें हैं। अबतक तो प्रियतमको पहुँच जाना ही चाहिये।

इधर सारिका एवं शुक बार-बार प्रियाके चरणोंमें अपने मस्तक रगड़े ही जा रहे हैं। अचानक प्रियाका ध्यान अपने पैरोंमें होते स्पर्शकी ओर जाता है। वे अपने चरणोंकी ओर देखती हैं। भावावेशके कारण उन्हें अपने चरणोंमें मस्तक स्पर्श करातीं शुक-सारिकाके स्थानपर प्रियतम नीलसुन्दर ही खड़े दृष्टिगोचर होते हैं। अकस्मात् प्रियतमको आया देख प्रिया उस चौकीसे खड़ी हो जाती हैं और ललिताके दाहिनी ओर जाकर अतिशय लज्जामिश्रित मुद्रामें मन्द-मन्द मुसकाती हुई हाथसे चौकीकी ओर सङ्केत करते हुए कहने लगती है -'ललिते! देखो, प्रियतम आ गये हैं।'

ललिताको तो प्रियतम दृष्टिगोचर होते नहीं, मात्र दो-तीन शुकपक्षी एवं वृन्दाकी पालित सारिका ही दीखती है। वह प्रियासे पुनः प्रश्न कर बैठती है – 'कहाँ हैं प्राणवल्लभ?'

प्रिया कुछ झुँझलाते हुए उत्तर देती है –'अन्धी हो गयी हो क्या? देखती नहीं? वे वहाँ काष्ठचौकीके पार्श्वमें खड़े हैं।'

अब ललिता समझ जाती है कि प्रिया यह भावभ्रमसे ही कह रही है। वह मुसकाकर चुप हो जाती है। प्रियाका मुखमण्डल भावावेगवश लाल हो रहा है। सभी अङ्गोंमें रह-रहकर कम्प तो हो ही रहा है। वे स्वेदसे इस प्रकार लथपथ हो उठती हैं कि उनका लेंहगा एवं साड़ी चूने लगती है। विशाखा बार-बार स्वेदसे भीगी ओढ़नी बदलती है। प्रियाके स्वेदसे गन्धप्रवाहके ऐसे सुमधुर झोंके उठ रहे हैं कि दल के दल भ्रंमर उनपर मँडराते जा रहे हैं और सखियोंको उनका निवारण करना ही कठिन हो जारहा है।

प्रिया विवर्ण हुई उतावलेपनकी मुद्रामें ललिताके पास चली आती है और उसका चिबुक पकड़कर अश्रु बहाती उसे कहती है – 'बहिन, तू मेरी दशा देख न! मुझसे रुष्ट क्यों होती है? क्या प्रियतम काष्ठचौकीपर आसीन नहीं हैं? क्या यह सब मेरा भावभ्रम है?' यह कहती-कहती प्रिया स्तम्भविकारसे एकदम जड़ हो जाती है। ललिता रूपमञ्जरीको

सङ्केत करती है। रूपमञ्जरी श्रीराधाके हाथ थामकर सिंहासनके नीचे भूमिपर बिछे रेशम एवं ऊनके सुकोमल मिश्रणसे निर्मित मोटे गलीचेपर बैठनेको कहती है। प्रियाके पैरोके जोड़ स्तम्भविकारसे इस प्रकार जड़ हो रहे हैं कि वे बैठ ही नहीं सकतीं, काष्ठवत् रूपमञ्जरीकी गोदमें गिर जाती हैं। विलासमञ्जरी झारीमें केवड़ेका जल लाती हैं। रूपकी गोदमें लेटी प्रियाके मस्तकपर विलास एवं विमला झारीके महीन छिद्रोंसे सुगन्धित जल छिड़कती हैं। प्रियाकी केशराशि बिखर रही है। विशाखा एवं लवङ्ग प्रियाके स्तंभविकारग्रस्त अङ्गोंका मर्दन कर रही हैं। ललिता मधुमतीमञ्जरीको सङ्केत करती हैं। मधुमती वीणाके तारोंको मिलाकर अतिशय मन्द सुरीले स्वरमें गायन प्रारंभ कर देती है।

तू तो है सखि, अति भाग भरी प्रिय प्राण तेरे घर आवत हैं
निज कर सौं गूँथि सुमन हारावलि हरषि-हरषि पहिरावत हैं

तू जब अपनौ शृंगार करति सखि वे दरपन दिखलावत हैं
प्रिय आनँदकन्द चन्द्रमुख तेरौ निरखि-निरखि सचु पावत हैं

जाके गुन गावत सगरौ जग, वे तेरे ही गुन गावत हैं
नारायण बिन दामके चेरे तेरे ही हाथ बिकावत हैं

गीत सुनते-सुनते ही प्रियाके सम्पूर्ण अङ्ग झंझावातमें कदली वृक्षकी तरह काँपने लगते हैं। वे रूपमञ्जरीकी गोदमें लेटी-लेटी ही कुछ बड़बड़ाने लगती हैं। फिर उठकर बैठ जाती हैं। उन्मत्तकी तरह वे इधर-उधर देखती जारही हैं। अन्तमें अति शीघ्रतापूर्वक वहाँ चली आती हैं जहाँ ललिता खड़ी हैं। ललिताके पास उसी प्रकार ग्रीवा मोड़कर खड़ी हो जाती हैं, जिस प्रकार प्रियतम त्रिभङ्गी मुद्रामें खड़े होते हैं। फिर उसी मुद्रामें बोल उठती हैं जिस रीतिसे नीलसुन्दर बोला करते हैं।

प्रिया ललितासे कहती है –'री ललिता, सुन!' ललिता किञ्चित् चिन्तित मुद्रामें प्रियाकी ओर निहारती है। ललिता जब प्रियाके निकट नहीं पहुँचती है तो प्रिया स्वयं उठकर उसके पास खड़ी हो जाती है तथा अत्यन्त विनीत मुद्रामें कहती है – 'ललिते! बता दे न! प्रियाको तूने कहाँ छिपाया है? अभी कुछ क्षणों पूर्व तो वह यहीं थी, अब वह कहाँ चली गयी, री?'

प्रिया इस भाँति ललिताके चरणोंमें गिरकर विनयपूर्वक प्रार्थना कर रही है कि देखकर ललिता आर्द्रकण्ठ, रुँआसी हो जाती है। इसी समय प्रियतम नीलसुन्दर आ जाते हैं। वे अपनी प्रियाकी प्रेमदशा मुग्ध होकर देखने लग जाते हैं।

शुक एवं सारिका भी कक्षकी दीवारोंपर कँगूरोंमें आसीन होकर प्रियाकी भावदशा देख-देखकर उत्फुल्लपङ्ख होकर अपनी मनोदशा व्यक्त कर रहे हैं।

प्रिया सर्वथा व्याकुल है। वह पुनः पुनः ललितासे प्रार्थना कर रही है – 'ललिते, मेरी प्यारी ललिते! थोड़े-से विलम्ब हो जानेके फलस्वरूप मेरी प्रियाको छिपा देना तेरे लिये उचित नहीं है। बता दे न, मेरी प्रिया कहाँ छिपी है?'

ललिता एवं सभी सखियाँ अति चकित हुई प्रियाकी यह प्रेम-भावावस्था देख रही हैं। प्रियतम नीलसुन्दर प्रियाके पूर्व एवं दक्षिण कोनेमें किञ्चित् दूरीपर खड़े अतिशय विस्मय-विमुग्ध हुए प्रियाका भाव देख रहे हैं।

प्रिया वहाँसे उठकर इस प्रकार इधर-उधर घूमती है, मानो वह छिपी हुई अपनी प्रिया राधाको लता-ओटमें अन्वेषण कर रही हो। प्रियतम श्रीकृष्णकी ओर जब प्रियाका मुख होता है तो प्रियतम पासमें ही स्थित झाड़ीमें छिप



राधा प्यारी बात सुनो एक मेरी।
मैं आयो चाहत हों तुम पै बीच लिये उन घेरी ।।
(नृत्यगायन-सेवा-निरत सखी श्रीइन्दुलेखाजी) (पृष्ठ १४५)

जाते हैं। प्रिया सर्वथा प्रेम-प्रमत्त हुई उन्मादिनी-सी कभी उत्तर एवं कभी दक्षिण दिशामें अन्वेषण कर रही है। प्रियतम सङ्केतसे ललिताको बुलाते हैं। प्रियामें आठों सात्विक विकार – स्तंभ, स्वेद, रोमाञ्च, स्वरभङ्ग, कम्प, वैवर्ण्य, अश्रु, मूर्च्छा, एक साथ उदय हो रहे हैं। नौवां विकार उन्माद होता है एवं दसवाँ मृति है। प्रियतमको चिन्ता है कि प्रिया कहीं दसवीं दशाको नहीं पहुँच जाये। इस नौवीं उन्मादावस्थामें ही वह स्वयंको प्रियतम समझकर आचरण कर रही है। प्रियतम ललिताके कानमें प्रियाको होशमें लानेका उपाय बताते हैं। ललिता प्रियाके कानमें अति मन्द स्वरमें कहती है – 'प्राणप्यारे! तुम वंशीमें तान भरो न, प्रिया राधा तो उन्मादिनी-सी दौड़ी आकर तुमसे लिपट जायेगी।'

प्रिया पूर्ण प्रसन्नतापूर्वक ऐसी मुद्रामे कमरमें हाथ रखती हैं मानो वंशीका अन्वेषण कर रही हों। इसी समय पीछेसे आकर प्रियतम अपनी प्रियाके अधरोंपर वेणु रख देते हैं। प्रिया उसमें स्वर भरने लगती हैं। स्वर भरते-भरते ही प्रियाका सात्विक स्निग्ध विकारकी दसवीं दशामें प्रवेश होना प्रारंभ हो जाता है। प्रियतम इसी समय मुसकाते हुए शनैः-शनैः उसे अपनी गोदमें धारण कर लेते हैं। प्रिया यंत्रकी भाँति प्रियतमकी गोदमें बैठ तो जाती हैं किन्तु प्रलयभावमें आविष्ट हुई बैठ नहीं पाती। गहन मूर्च्छामें वे अपने प्राणवल्लभकी क्रोड़में गिर पड़ती हैं। प्रियतम ललिताके हाथसे शीतल केवड़ा जल लेकर प्रियाके मुखपर छींटे देते हैं। प्रियाकी भावदशा इतनी घनी है कि प्रियतम प्राणवल्लभ नीलसुन्दर भी प्रयास करते-करते श्रान्त हो जाते हैं। उनकी श्वासक्रिया भी अतिशय मन्द हो जाती है। सखियाँ केवल इसीलिये धैर्य धारण किये रहती हैं क्योंकि स्वयं प्रियतम वहाँ उपस्थित हैं। यदि प्रियतम नीलसुन्दर इस समय यहाँ उपस्थित नहीं हों तो प्रियाकी ऐसी दशा देखकर तो कोई सखी जीवित बचे ही नहीं।

अब प्रियतम नीलसुन्दर अपनी प्रियाको जीवनदान देने अन्तिम अमोघ उपाय करते हैं। वे बायें हाथसे वंशी बजाते हैं एवं दाहिना हाथ प्रियाके हृदयमें रखते हैं। मधुमती गायन प्रारंभ कर देती है –

श्याम दृगनकी चोट बुरी री।
ज्यों ज्यों लेत नाम ते वाको, मो घायल पै नौन पुरी री
ना जानौं अब सुध बुध मेरी, कौन विपिनमें जाय दुरी री
नारायण नहिं छूटत सजनी, जाकी जासौं प्रीति जुरी री

गीतके मध्य ही प्रियाको होश आनेके लक्षण दीखने लगते हैं। सखियोंमें हर्ष छा जाता है। प्रियाका मस्तक प्रियतमकी गोदमें है। उनका दाहिना हाथ प्रियाकी केशराशि सहला रहा है एवं बायें हाथसे वे बाँसुरीमें तान भर रहे हैं। प्रिया अतिशय सङ्कोचसे सखियोंकी ओर देखती हैं। सखियाँ खिलखिलाकर हँस पड़ती हैं। प्रियतम प्रियासे हँसते हुए प्रश्न करते हैं– 'क्यों प्राणप्रिये! रानी मिली कि नहीं?'

अब प्रिया समझ जाती है कि भावोन्मादवश वे अवश्य कुछ अटपटा कर गयी हैं। वे सकुचा जाती हैं। प्रिया-प्रियतम दोनों परस्पर बाहें जोड़े मखमलजड़ी चौकीपर विराजित हो जाते हैं। सखियाँ उनपर व्यजन डुलाने लगती हैं।

दोनोंके मिल जानेपर अब चढ़ता रस-सागर जो, प्रियतम !
ऊँचापन है कितना उसका, आँका अबतक किसने, प्रियतम !
आँखें सहचरियोंकी डूबी, तट पर उतरा न सकीं, प्रियतम !
कुञ्जोंकी द्रुम-लतिकाएँ हैं जड़िमा-पूरित तबसे, प्रियतम॥७५१॥

सरोवरपर दोनोंका मिलन हो जानेपर अब रसका महासमुद्र जो लहराने लगता, उसका ऊँचापन कितना है – आजतक किसने उसे आँका है? उस रसके महासमुद्रमें सहचरियोंकी आँखें ही डूबती थीं और वे उतराकर कभी तटपर आई ही नहीं। इसीलिये इसका चित्रण कौन करे? उन कुञ्जोंकी द्रुम-लताएँ तो तबसे अभी, आज इस क्षणतक जड़िमा-परिपूरित हैं। वे क्या, कैसे सङ्केतदान करें, भला!।।७५१।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

दोनोंके मिल जानेपर अब, चढ़ता रस-सागर जो, प्रियतम!

यह बात नितान्त सत्य है कि प्रिया-प्रियतम-मिलन-तत्व जीव-समष्टिकी भाषामें समझाया जाना असंभव है। कारणजगत्के सनकादि-जैसे कारक कोटिके पुरुष भी श्रीराधारानी एवं प्रियतम नीलसुन्दर ब्रजेन्द्रनन्दनके सम्मिलन-महिमाकी कल्पित छायाको भी छू नहीं सकते। राधा-माधव-मिलन-महासिन्धु ऐसा ही अथाह एवं गंभीर है। यद्यपि प्रिया-प्रियतम ह्लादिनी-ह्लादात्मामें नित्य पूर्ण एकत्व है; सच्चिदानन्दकन्द-घन-विग्रह अद्वयज्ञानतत्वस्वरूप ब्रजेन्द्रनन्दनका उनकी अपनी ही ह्लादिनीशक्ति श्रीमती राधारानीसे नित्य अविच्छेद्य सम्बन्ध है; ये युगल नित्यमिलित अयुतसिद्ध प्रिया-प्रियतम हैं; फिर भी इनमें वियोगकी दारुण वेदना भी व्यक्त होती है एवं संयोगमें अनन्त असमोर्ध्व आनन्दका परमोच्च उच्छलन भी पल-पलमें पराकाष्ठामें विद्यमान रहता है।

प्रेम-विलासरूप श्रीराधाकृष्णकी विलक्षण स्वरूपभूत लीला अन्य किसी अवतारमें अभिव्यक्त हो ही नहीं सकती, इसलिये इसका अनुभव भी मात्र इस लीलाके सौभाग्यवान् परिकर ही कर पाते हैं। अन्य कोई, चाहे वह कितना ही उच्च कोटिका अथवा भावस्तरका भक्त हो, सन्त हो, यह अनुभव उसे हो ही नहीं सकता। इसीलिये इस लीलासुखमें प्रिया-प्रियतमकी लीला-सहचरियोंकी ही आँखें डूब पाती हैं। उन्हें भी प्रेमसिन्धुका कहीं ओर-छोर अथवा तट नहीं मिल पाता। सखियोंकी तो बात ही क्या, प्रिया-प्रियतमके मिलनस्थल - निकुञ्जकाननके स्थावर द्रुम एवं लतिकाएँतक समरुचि एवं सम वासनावाले होनेके कारण प्रिया-प्रियतमके मिलनके समय अष्ट सात्विक-विकारापन्न हो उठते हैं, लता-वल्लरियाँ स्तम्भविकारापन्न होकर जड़िमा-परिपूरित हो उठती हैं।

पुनः यह कहनेमें कोई सङ्कोच नहीं है कि प्रिया-प्रियतमके संयोग-विलासमें स्वरूपशक्तिमान् शृङ्गाररसघनमूर्त्ति प्रियतम एवं उनकी स्वरूपा ह्लादिनीशक्ति महाभावघनमूर्त्ति श्रीराधाकी जो एकात्मता होती है वह जीव-ब्रह्मके अभेदज्ञानके समान कदापि नहीं है। यहाँ प्रिया-प्रियतम एक आत्मा होनेपर भी दो रहते हैं। रसराज महाभावकी पृथक्ता रहते हुए भी एकात्मता होना ही संयोग है। इसमें परस्पर विलास एवं रसास्वादन है। यों तात्विक एकता अक्षुण्ण है। इस प्रेम-विलासमें प्रियाका अपने प्राणवल्लभके साथ प्रगाढ़ मिलनमें भी वियोग हो जाता है। घरमें सास-ननद आदिके मध्य घिरी वन एवं निकुञ्जका अनुभव करने लगती है और वनमें प्रियतमके साथ क्रीड़ारत होती घरका अनुभव करने लगती है। उन्हें क्षणमें सुदीर्घ विरहका अनुभव होने लगता है, दीर्घकाल क्षणतुल्य लगने लगता है। प्रियतमके मथुरागमनके विरहकालके दीर्घ सौ वर्ष उन्हें क्षणतुल्य लगते हैं। उनकी विलक्षण भावदशा है। प्रायः संयोगकालमें वे अपनेको कान्त(श्रीकृष्ण) समझने लगती हैं और श्रीकृष्ण उन्हें प्रिया राधारूपमें दिखने लगते हैं। वे ठीक तदनुरूप व्यवहार करने लगती हैं। परन्तु सावधान रहें, यह रज्जु-सर्पवत् भ्रमरूप विवर्त नहीं है। यह प्रेमराज्यकी एक विलक्षण वांछनीय प्रेमवैचित्त्य-स्थिति है।

यहाँ ध्यान रहे कि प्रिया श्रीराधाका सम्पूर्ण जीवन ही श्रीकृष्णसुखमय है, स्वसुखमय नहीं है। प्रिया श्रीराधा खानपान, शयन-जागरण, गमन-विश्राम, आशा-आकांक्षा, भोग-त्याग - सब श्रीकृष्णसुखार्थ ही करती हैं। यह परम विलक्षण बात है कि प्रियतमकी भयानक विरहव्यथासे पीड़ित होनेपर वे विरह-ताप-दग्ध देहमें प्राणोंकी रक्षा भी स्वसुखके लिये नहीं करतीं, प्राणोंकी रक्षाके लिये उनका आर्त्त क्रन्दन भी श्रीकृष्णसुखके लिये ही होता है। प्रिया

प्रियतमके वियोगमें परम संतप्ता रहती हैं, प्रिय-मिलनसे उन्हें सुशीतल परमानन्दकी प्राप्ति निश्चय ही होती है, परन्तु अपने इस दुःखनाश और आनन्दलाभके लिये प्रिया न तो रोती हैं, न ही कराहती हैं। जब उनके आर्त्त क्रन्दनमें भी श्रीकृष्ण-सुख ही तात्पर्य है तब यही सिद्ध होता है कि प्रिया-प्रियतमका मिलन एवं वियोग, संभोग एवं विप्रलंभ दोनों ही मात्र प्रेम-रतिके ही रूप हैं। प्रियाकी विलक्षण स्थिति है। उनको प्रिय-वियोगमें अपने भीतर प्रियतमकी प्रगाढ़ सुख-रसमयी सन्निधिका अनुभव होता है। संयोगमें जहाँ समय-स्थान आदिकी निर्बाध स्थिति नहीं होती, बहुतसे प्रतिबन्धक होते हैं, केवल एक ही स्थानमें परस्पर मिलन एवं दर्शन होते हैं, वहाँ वियोगमें समय-स्थानकी कोई बाधा ही नहीं रहती, विरहकालमें प्रियाका अपने प्रियतमसे सर्वत्र निर्बाध मधुर मिलन होता है।

प्रिया स्वमुखसे कहती हैं -

संगम-विरह विकल्पे वरमिह विरहो न संगमस्तस्य।
एकः स एव संगे त्रिभुवनमपि तन्मयं विरहे।।

मिलनके समय तो प्रियतम एक ही स्थानमें दीखते हैं, परन्तु उनके विरहमें तीनों लोक ही प्रियाके लिये प्रियतमरूप हो जाते हैं।

प्रियाका कैसा विलक्षण प्रेम है कि परम वियोगमें सुखद मिलनके लिये होनेवाला उनका क्रन्दन भी स्वसुखके लिये नहीं होकर सर्वथा अपने प्रियतम-सुखके लिये है।

संयोगकालकी परमोच्च स्थितिमें चढ़ते रससागरका यह स्वरूप-अवगाहन करें -

रसमय रसिकेन्द्रशिरोमणि प्रियतम परम रसमयी प्रियाके साथ निकुञ्जमें विराजमान हैं। उनकी परम अन्तरङ्गा छोटी बहिन मञ्जुश्यामा उनके साथ हैं। प्रिया-प्रियतममें अतिशय प्रेमभरा रसालाप हो रहा है। परमानन्दस्वरूपप्रियतम श्यामसुन्दर विशेष सुखानुभव कर रहे हैं - यह जानकर प्रिया राधा आह्लाद-सुधा-सरितामें बही जा रही है। उनमें परम अनिर्वचनीय रसमत्तताका आविर्भाव हो रहा है। प्रियाकी मिलन-रसमत्तता देखते-देखते ही प्रियतम यह इच्छा कर बैठते हैं - प्रियाका विरहजनित तीव्र संताप भी तो देखा जाय। उनका परमोच्च सुख-विलास तो देखा, अब क्रन्दन एवं विरहदग्ध दशाका भी तो आस्वादन करें-

सत्यसङ्कल्प प्रियतमकी ऐसी इच्छा होते ही प्रियाके अनुराग-सागरमें अकस्मात् आत्यन्तिक बाढ़ आ जाती है। प्रियामें संवर्द्धित प्रगाढ़ अनुराग प्रेमोत्कर्षकी उच्चतम स्थितिको प्राप्त हो जाता है। यहाँ ऐसी विलक्षण प्रीतितृष्णाका अभ्युदय होता है कि जिसमें कण्ठमें लिपटे प्रियतम भी अननुभूत, मानो हैं ही नहीं, इस प्रकार लगने लगते हैं। निरन्तर निर्बाध हृदयमें सटे, कण्ठहार बने, प्राणवल्लभ छोड़कर चले गये, कभी मिले ही नहीं, ऐसा अनुभव प्रियाको इस प्रगाढ़ अनुरागजनित प्रबल तृष्णामें होने लगता है। प्रियतम प्राणवल्लभ नीलसुन्दर प्रत्यक्ष हैं, अतिशय निकट हैं, उनसे व्यवधानशून्य आलिङ्गन-मिलन-संस्पर्श हो रहा है, फिर भी प्रियाको वे त्यागकर चले गये, ऐसी अनुभूति हो उठती है।

प्रियस्य संनिकर्षेऽपि प्रेमोत्कर्ष स्वभावतः।
या विश्लेषधियाऽऽर्त्तिस्तत् प्रेमवैचित्यमुच्यते।।

प्रियतमके अति संनिकट रहनेपर भी प्रेमोत्कर्षके कारण उनके नहीं रहनेकी - विरहकी स्फूर्ति होती है और उससे भाँति-भाँतिके विरह-विकल्पोंका विकास होने लगता है।

बस, अपने प्रियतमके आलिङ्गनमें गुँथी भी प्रिया विषम विरहतापसे विकल हो जाती है। प्रियाके शरीरमें प्रेमवैचित्त्यके कारण विविध प्रकारके विरह-विकार उत्पन्न हो जाते हैं एवं प्रेमरसास्वादनपरायण प्रियतम नीलसुन्दर ब्रजेन्द्रनन्दन प्रियाकी विरह-भङ्गिमा - परम अद्भुत प्रेमविकार - प्रेमवैचित्त्यको देख-देखकर मुग्ध होने लगते हैं।

पलकसंयोग, एकवंशीय संयोग, भावसंयोग, कालसंयोग - इन चार प्रकारके संयोगोंमें प्रिया अपने प्रियतमका संभोग करती है, वहीं प्रगाढ़ संयोगमें प्रियतमके आलिङ्गनमें निबद्ध रहकर भी वे भीषण विरह-वियोगका भी अनुभव करने लगती हैं।

अपने प्राणवल्लभके आलिङ्गनमें गुँथी प्रिया ऐसी अलौकिक सौन्दर्यमयी हो उठती है कि उनकी रूपछटाके एक अंशकी छायाकी छायाका संस्पर्श भी सरस्वती, कान्ति, विद्या एवं भगवती गिरिराजकुमारी भी नहीं पा सकतीं। श्रीराधा प्रियतमके अङ्कमें विराजित रहकर ही भावान्तर-वियोगका अनुभव करती हुई, धूम्रके समान मैली, अत्यन्त कृश एवं क्षीण हो जाती हैं। वे मात्र अपने भाव-वियोगमें ही (वस्तुतः प्रियतमसे पूर्णतया संयुक्त, आलिङ्गनबद्ध होते हुए भी) क्रन्दन करती हैं, व्याकुल जलविहीन मछलीकी तरह तड़पने लगती हैं।

महाप्रभु श्रीपोद्दार महाराजके शब्दोंमें देखिये -

कहाँ गये तुम, कहाँ छिपे? हे नाथ! रमण! जीवन-आधार!
विरह-प्रेमवैचित्त्य-विकल राधा कर उठी करुण चीत्कार।।
विषम विरह-दावानलसे हो रहा दग्ध यह दीन शरीर।
प्राण-पखेरू उड़े चाहते; त्याग इसे, हो परम अधीर।

यही दशा प्रियतम नीलसुन्दरकी भी अपनी प्रियाके वियोगकालमें होती है। यद्यपि प्रिया-प्रियतमके संयोग एवं वियोग दोनों ही रस-सागरके मात्र उद्दाम उच्छलन मात्र हैं, प्रीति-महाभावकी ऊँची-से-ऊँची तरंगें मात्र हैं, फिर भी संयोगके कालमें प्रिया-प्रियतम दोनों ही नित्य-नूतन प्रेमके गौरवमें भरे रहते हैं, उनका चित्तपटल नित्य-नवीन सङ्गम-सुखदानके उत्साहमें डूबा रहता है। इसी संयोगकालमें प्रियतम प्रियाके अङ्कमें स्थित रहकर भी एवं प्रिया प्रियतमके अङ्कमें स्थित होकर भी प्रेमकी अतृप्त तृष्णावश कभी जब परस्पर वियुक्त अनुभव करते हैं तो तत्क्षण ही दोनों ही अपने सुन्दर वस्त्र-आभूषण, अङ्गराग एवं शृङ्गारादिकका त्याग कर देते हैं, रात्रि-दिवस अश्रुधारसे वक्षस्थल भिगोते हुए परस्पर एक-दूसरेके लिये - 'हा हृदयवल्लभ! हा जीवनसर्वस्व!! हा मेरी प्राणाधारा!' की करुण पुकार करने लगते हैं।

वह संयोगसुख ऐसा है कि प्रिया-प्रियतम दोनों परस्पर एक क्षण मात्रके लिये भी - जाग्रत्में ही नहीं, स्वप्नमें भी यदि मिलित हो जावें तो सारे अग-जगको आत्यन्तिक विस्मृतिके गर्त्तमें डाल एक दूसरेको अपना सर्वस्व समर्पण कर देते हैं। प्रियतमके एक रोमसे संस्पर्श होते ही प्रियाका अङ्ग-अङ्ग रोमाञ्चित हो उठता है। अपने प्रियतमकी बङ्किम भौहें, उनके विशाल प्रेमभरे कमलदललोचन, उनके नूपुरोंकी झङ्कारमें प्रिया डूब जाती है। संयोगकालमें प्रियाकी आत्मा ही सुधा-सुस्निग्ध रहती है, मन हर्षसे पूर्ण हो जाता है।

विरहभावके उदय होते ही जहाँ प्रियाके अङ्गोंमें इतना ताप बढ़ जाता है कि पुष्पोंकी शय्या उनका स्पर्श होते ही सूखकर जल उठती है, उनके श्वाससे पावकमय पवन निकलता है। क्षण-क्षणमें बार-बार उनके प्राण रुद्ध हो जाते हैं, वह निष्प्राण भूलुण्ठित हो जाती है। वहीं सयोगकालमें अपने प्रियतमके मुखसे प्राणेश्वरी शब्द सुनते ही प्रिया तत्क्षण ही हरी - मुकुलित हो उठती है।

न तो प्रिया राधाके संयोगसुखका ही कोई माप-तौल, ऊँचाई-निचाई है, न ही वियोग-वेदनाकी ही कोई थाह है। निर्मल दिव्य प्रेमकी प्रतिमा श्रीराधा तो मात्र प्रियतम नीलसुन्दरकी रुचि ही हैं।

परमोच्च महाभावकी सीमास्वरूपा होनेसे प्रियाका संयोगसुख एवं विरहदुःख दोनों ही नित्य नव-नववर्धनशील हैं। नित्य नव-नवायमान संयोगसुख एवं विरहवेदनाकी दारुण पीड़ा - दोनोंकी प्रिया राधा अगाध अपरिसीम उदधि हैं। उनमें नित्य-निरन्तर परस्पर विरोधी धर्म एवं भावोंका एक साथ सर्वोच्च विकास होता ही रहता है।।७५१।।

जो हो, बालाको ले साँवर करते परिक्रमा-सी, प्रियतम!
प्रियतमा-स्वरूप-विभावित उन दोनों सरोवरोंकी, प्रियतम!
नौकारोहण कर, हँस-हँसकर, विकसित-सरोज-वनका, प्रियतम!
सौरभमय सुमन-चयन कर-कर, निज सुख वितरण करते, प्रियतम॥७५२॥

जो हो, नीलसुन्दर राधाकिशोरीको लिये हुए उन दोनों सरोवरोंकी परिक्रमा-सी करने लगते। वे सरोवर साधारण तो हैं नहीं। प्रियतमाके स्वरूपसे ही वे नित्य विभावित रहते हैं। उनकी परिक्रमाका सौन्दर्य कितना अप्रतिम अद्भुत होता होगा – कौन कहे? बाह्य चित्रण इतना-सा ही संभव है कि वे गौर-नीलदम्पति नौकारोहणकरके हँस-हँसकर विकसित सरोजवनकी फेरी देने लगते। सौरभसे भरपूर अरविन्दोंका बार-बार चयन करके अपने स्पर्शका उन्हें अप्रतिम सुखदान करते।।७५२।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

जो हो बालाको ले साँवर करते परिक्रमा-सी प्रियतम!

निकुञ्जसे निकलकर प्रिया-प्रियतम राधाकुंड एवं कृष्णकुंडके सङ्गमपर आ जाते हैं। सम्पूर्ण कुंड सूर्य-ज्योत्स्नासे चमचम कर रहा है। प्रिया पश्चिमकी ओर मुख करके मन्द-मन्द मुसका रही है। प्रियतम भी पश्चिम दिशासे अपनी प्रियाके मुखकी ओर देखते हुए उनकी प्रेमशोभासे मुग्ध हो रहे हैं। सखियोंका सङ्कल्प है कि आज प्रिया-प्रियतम कुंडोंके चतुर्दिक् कुञ्जों एवं सरोवर-स्थित प्राकृत शोभाका अवलोकन करें और निशामें जो कुञ्ज प्रिया-प्रियतमको सर्वाधिक शोभासंपन्न लगे वहीं निशाविहारलीला सम्पन्न हो। प्रिया-प्रियतमको आगे-पीछे, दाहिने-बायें सखियोंके यूथ घेरा डाले चल रहे हैं। प्रिया अपने दाहिने हाथसे प्रियतमके बायें कन्धेको पकड़े हुए हैं एवं बायें हाथसे कमलपुष्पको उसकी नालके सहारे घुमाती जा रही हैं। प्रियतम प्रियाकी कटिके दाहिने ओरके अञ्चलके एक छोरको पकड़े हैं। प्रियतम नीलमणिके दक्षिण हाथमें रत्नजटित स्वर्णनिर्मित मुरली है। इस मुरलीमें मुक्त एवं मणियोंके फूँदे लटक रहे हैं।

यह राधाकानन विलक्षण है। यहाँ प्रिया-प्रियतमकी सेवामें छहों ऋतु हाथ जोड़े खड़ी रहती हैं। ज्योंही प्रियतम-प्रिया राधाकुण्डके किनारे-किनारे उत्तर दिशाकी ओर बढ़ते हैं, शरद ऋतु हाथोंमें विकसित कमलोंके उपहार लिये उपस्थित हो जाती है। प्रियतमके सङ्केतसे वह सरोवरोंमें ही निहित रहकर अपनी छटासे प्रिया-प्रियतमका अनुरञ्जन करती है। शरदकी सेवा प्रारंभ होते ही वसन्तश्री मुकुलित आम्रशाखाओंका वितान निर्मितकर मलय मारुतका व्यजन डुलाकर भ्रमरोंके गुञ्जनसे, कोकिलाओंके कुहू-कुहू रवसे नीलसुन्दर एवं उनकी प्राणप्रिया राधाका अभिनन्दन करने समुपस्थित हो जाती है। प्रिया-प्रियतम वसन्तश्रीका अभिनन्दन स्वीकार करते हुए आगे बढ़ते हैं। अनन्त रसैश्वर्यनिकेतन प्रिया-प्रियतम वसन्त एवं शरदकी छटा देखते-देखते मन कर लेते हैं कि राधाकुण्ड एवं कृष्णकुण्डके तटवर्त्ती समग्र वनकी आज परिक्रमाकर उसे प्रेमप्लावित किया जाय। ओह! वनश्रीने भी प्रिया-प्रियतमका रञ्जित करनेकी मनमें ठान ली है। प्रियतम नीलसुन्दर वनश्रीका शृङ्गार देखकर प्रियाकी ओर सतृष्ण दृष्टिसे निहारते हैं। गिरिपर्वतसे अगणित निर्झर राधाकुण्ड-कृष्णकुण्डमें जलस्रोतोंके रूपमें झर-झर रव करते गिर रहे हैं। इन प्रपातोंसे असंख्य जलकण निरन्तर उच्छलित हो रहे हैं। उनसे सिक्त हुई सम्पूर्ण वनस्थली, स्निग्ध हुई तरुश्रेणियाँ - इन तरुश्रेणियोंको आच्छादित किये पुष्पवल्लरियाँ, वल्लरियोंमें विजड़ित असंख्य रङ्ग-बिरंगे पुष्प, उनसे झरती मकरन्दराशि, उसे सर्वत्र प्रसारित करता पवनप्रवाह - वनकी इस असीम शोभाको निरखती प्रिया अपने प्राणवल्लभ श्यामसुन्दरके स्कन्धदेशमें सट जाती हैं।

सरोवरों एवं प्रपातोंकी लहरोंपर बहती हुई वायुमें सवार होकर शिशिर ऋतु भी प्रिया-प्रियतमके चरणोंमें अपनी ऋतुसेवा देनेको समुत्सुक हो उठती है। वह मध्याह्नकालीन रविके तापको चन्द्रज्योत्स्नाके समान सुखद शीतल बना देनेको समातुर है।

प्रियतम अपनी प्रियाको शिशिरसे कँपकँपाती देखकर अपनी कृष्णवर्णी कामरी उढ़ाकर उसे अपने अङ्गोंमें सटा लेते हैं। प्रियतम अपनी प्रियाको कुण्डतीरस्थ वनका दर्शन कराते हुए कहते हैं - 'प्रिये! देखो, कुमुद, पद्म, नीलोत्पल आदि अनेकों पुष्पोंके किञ्जल्कको उपहाररूपमें अपने अञ्चलमें लिये वायु तुम्हारी परिक्रमा कर रही है, वह झुर-झुर शब्द करती तुम्हारी नील साड़ीको उड़ाती तुम्हारे चरणकमलोंपर अपने आपको न्यौछावर कर देना चाहती है।

'देखो प्रिये! वर्तमानमें कराल ग्रीष्म ऋतुकाल होनेपर भी तुम्हारे अङ्गोंकी सुशीतलताका प्रकट प्रभाव इस वनमें प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहा है। इस वनके एक हरित तृणको भी तेरा चरणाश्रयी होनेके फलस्वरूप ग्रीष्मके तापकी अनुभूति है ही नहीं। प्रिये! देखो न! ये ह्रद शुष्क होते ही नहीं, सरोवरोंकी श्री ज्यों-की-त्यों है, यह किञ्चित् भी म्लान होती ही नहीं। सभीमें अगाध जल भरा है। प्रिये! तुम्हारा मुखदर्शनकर इन सरोवरोंमें ऐसा हर्ष-विकार उदय हो रहा है कि इनमें भरे अमृतके समान स्वच्छ सुमधुर जलमें ऊँची-ऊँची लहरें उठ रही हैं। प्रिये! वनभूमिमें भी तुम्हारे प्रति इतना स्नेह उमड़ रहा है कि यह तुम्हारे चरणोंका संस्पर्शकर सात्विक स्वेदविकारसे आर्द्र हो रही है। प्राणप्रिये! यह वनभूमि तुम्हारे आगमनपर कैसी हर्षित हुई हरीतिमा प्रकट कर रही है। समग्र वन ही हर्षसे हरा-भरा है। प्रिये! इस वनकी तरुराजिपर तनिक दृष्टिपात करो। यह अपने कण-कणसे सौन्दर्यका स्रोत प्रसारित कर रही है। लताएँ राशि-राशि कुसुमोंसे लदी इस तरुराजिको तुम्हारे चरणोंमें नमित कर दे रही हैं। प्रिये! ये विविध विचित्र असंख्य विहङ्गम अपने कलरवसे तुम्हारे यशका गायन कर रहे हैं। ये मृग तुम्हारे नयनोंको आनन्दित करनेको तुम्हारे आगे-पीछे सञ्चरण कर रहे हैं। प्रिये! तुमको निरख-निरखकर इन मयूरोंका केकारव करना, भ्रमरोंका सुमधुर गुञ्जन करना, कोकिलोंका, सारसोंका कूजन करना - इन सब रूपोंमें प्राणप्रिये! यह वृन्दाकानन तुम्हारे युगल चरणोंमें अपनी अप्रतिम श्री समर्पित कर रहा है।'

ओह ! किसकी सामर्थ्य है कि जो युगल दम्पतिके इस चिदानन्दमय वनदर्शनके ठीक-ठीक चित्रित कर दे?

कुछ दूरी तक तो प्रियतम नीलमणि पैदल भ्रमण करते अपनी प्रियाको वनशोभाका दर्शन कराते हैं, तत्पश्चात् उसे श्रान्त अनुभवकर राधाकुण्ड-कृष्णकुण्डके चतुर्दिक्का वनदर्शन नौकारोहण द्वारा करानेका सङ्कल्प कर लेते हैं।

नौकाविहार

नौकारोहणकर हँस-हँसकर विकसित सरोजवनका प्रियतम!

तत्क्षण ही हंसोंके आकारकी छः नौकाएँ श्रीराधाकुण्डके चमचमाते जलमें सन्तरण करती उपस्थित हो जाती हैं। प्रत्येक नौकाके मध्यमें एक हंसासन हैं इस हंसासनके हत्थे तो हंसाकृतिके स्वच्छ मुक्तामणि एवं बज्रमणियोंके बने हैं एवं पीठ भी श्वेत शुभ्र स्फटिकमणि-निर्मित है। मध्यमें चौकीपर तूलपुष्ट पीले वर्णका अतिशय बहुमूल्य मखमलका गद्दा बिछा है। चौकी रजतनिर्मित है जिसमें स्वर्णकी मनोरम चित्रकारी है एवं मीनेकी रत्नमयी कलाकृतियाँ हैं। ये हंसासन चतुर्दिक् घुमाये जा सकते हैं और इनमें आसीन व्यक्ति इस आसनमें बैठे-बैठे ही दसों दिशाओंका दृश्य दर्शन कर सकता है। इस नौकाके मध्यमें स्थित हंसासनके चतुर्दिक् सखियोंके लिये अनेक पीठिकाएँ रखी हैं एवं इन पीठिकाओंके आगे इतना पर्याप्त स्थान है कि वहाँ वीणा, मृदङ्ग आदि वाद्य रखे जा

सकें। सभी छहों नौकाओंमें सखियाँ तो पहलेसे ही आसीन हैं, इनमें कुछ नौका-सञ्चालनके लिये डाँड थामे हैं। जैसे सभी नौकाएँ तटपर संलग्न होती हैं, इनके एक भागकी काष्ठ दीवार तटकी भूमिसे इस प्रकार सट जाती है, जिससे प्रिया-प्रियतम एवं उनकी मुख्य सहचरियाँ अति सहजतासे नावमें प्रवेश हो जावें, उन्हें जलमें उतरनेकी तनिक भी असुविधा नहीं हो। यद्यपि प्रिया-प्रियतम तो सबसे बृहदाकार मुख्य नावमें ही मध्य सिंहासनपर आसीन होते हैं किन्तु प्रत्येक नावपर आरूढ़ सखियोंको यही अनुभव होता है कि प्रिया-प्रियतम हमारी ही नावपर आरूढ़ हुए हैं। जैसे ही प्रिया-प्रियतम नौकापर आरूढ होते हैं, नावको जलपक्षी अतिशय मधुर काकली करते घेर लेते हैं। ये जल पक्षी नौकाओंसे सटकर इनके साथ-साथ ही राधाकुण्डमें संतरण करने लगते हैं।

सभी नौकाएँ हंसाकृतिकी हैं और दूरसे देखनेपर ठीक ऐसा अनुभव होता है मानो अति विस्तृत योजनावधिमें फैले इन चिन्मय अगाध जलभरे कुंडोंमें विशाल आकृतिके अप्राकृत शुभ्र हंस पंख फैलाये संतरण कर रहे हैं। प्रिया-प्रियतम एक हंसाकृति नौकाके ग्रीवावाले भागमें दक्षिणकी ओर मुख किये खड़े हैं। राधाकुण्डके पूर्व एवं दक्षिणके कोनेसे संतरण करते कुछ जलपक्षी अतिशय सुमधुर कलरव करते हुए नौकाकी ओर अग्रसर हो रहे हैं। ये कभी अपनी ग्रीवा जलमें डुबा देते हैं और स्वच्छ सुनील जलके भीतर-ही-भीतर संतरण करते हैं, फिर अपनी ग्रीवा एवं शरीरका भाग ऊपर उठा लेते हैं। जब ये अपने शुभ्र श्वेत पंख फड़फड़ाते हैं तो जलकी बूँदें वातावरणमें उच्छलित होने लगती हैं। कुण्डका जल इतना स्वच्छ है कि इन हंसोंके डुबकी लगा लेनेपर भी दर्पणवत् इनकी सभी संतरणक्रिया जलके ऊपरसे भी स्पष्ट देखी जा सकती है। इन जलपक्षियोंका लक्ष्य वह नौका है जिसपर प्रिया-प्रियतम आरूढ हैं। ये उसीको लक्ष्यकर आगे बढ़ रहे हैं।

प्रिया-प्रियतमकी नौकाविहारलीलाके दर्शनार्थ देवगण मेघोंका आश्रय लेकर अपने विमानोंमें बैठकर नभमें आ जाते हैं। इन देवमेघोंका वर्ण बहुत ही मनोरम है। सामान्य प्राकृत मेघोंकी तरह घटाटोप नहीं है। यदाकदा इनमेंसे रिमझिम-रिमझिम बूँदें गिरने लगती हैं मानो हर्षविकारवश देवोंके अश्रु टपक रहे हों। राधाकुण्डके निर्मल जलपर आकाशीय बूँदें गिरनेसे अति लघु बुलबुले उठते हैं और विलीन हो जाते हैं। प्रिया-प्रियतमकी नौकापर एवं अन्य नौकाओंमें भी ऊपर कोई आच्छादन नहीं है, अतः वर्षासे रक्षाके लिये सखियाँ स्वर्णिम डंडियोंकी चित्रकारीसे खचित रेशमी वस्त्रोंकी परम सुन्दर छत्रियाँ तान लेती हैं। इन छत्रियोंकी स्वर्णडण्डियाँ बहुमूल्य रत्नोंसे जटित हैं और इन्हें पकड़े हुए सुसज्जित सखियाँ बहुत ही शोभायुक्त लग रही हैं।

नभमें मेघोंके उमड़नेसे सरोवरके तटवर्त्ती प्रदेशमें मयूर नृत्य कर रहे हें। वे मेघोंके गर्जन करनेपर अपने तीक्ष्ण केकारवसे वनको मुखरित कर दे रहे हैं। प्रिया-प्रियतमके निकट रूपमञ्जरी एक स्वर्णझारी लिये खड़ी है, इसमें अतिशय सुमिष्ट केसरयुक्त स्वादिष्ट दूध भरा है। रूपमञ्जरीके वामभागमें गुणमञ्जरी एक स्वर्णथालीमें बहुत-सी मेवा लिये खड़ी है। दक्षिणपूर्व दिशासे हंस पक्षियोंका झुण्ड ज्योंही नौकाके पास आता है, तबतक तो अन्य दिशाओंसे भी अगणित जलपक्षी, कई काली आकृतिके जलकुक्कुट, कई लाल आकृतिके कारण्डव पक्षी, कई पीली आकृतिकी पिरोइनें नौकाको चतुर्दिक् घेर लेती हैं। प्रिया चारों ओरसे नावको पक्षियोंसे घिरी देख ताली बजा-बजाकर हर्ष प्रकट करती हैं। वे नावकी दीवारके पास ही बैठ जाती हैं एवं अपने निकट जिस किसी पक्षीका मस्तक अथवा पीठ आती है, उसे सहलाती हैं। गुणमञ्जरी प्रियाके हाथोंमें इन पक्षियोंको खिलानेके लिये सूखा मेवा देती हैं, किन्तु प्रियतम प्रियाको हंसोंको मेवाके स्थानपर दूध पिलानेके लिये कहते हैं। तत्क्षण ही विशाखा दुग्ध पिलानेके लिये एकत्र रत्नजटित स्वर्णपात्र प्रियाको सौंपती हैं। रूपमञ्जरी अपनी झारीसे मेवा मिला हुआ केसरिया दूध प्रियाके कटोरेमें डाल देती हैं। प्रिया दूधभरा कटोरा प्रियतम नीलसुन्दरके हाथमें दे देती हैं एवं बायें हाथसे प्रियतम नीलसुन्दरका कन्धा थामकर दाहिने हाथसे एक हंसकी पीठ सहलाने लगती हैं। हंस

आनन्दमें मग्न हुआ अपनी चंचु प्रियतम नीलसुन्दर द्वारा ग्रहीत दुग्धभरे स्वर्णपात्रमें डाल देता है एवं उत्फुल्लपंख होकर दूध पीने लगता है। वह एक बार किञ्चित् दुग्ध पीकर अपना मस्तक ऊपर उठाता है, फिर किञ्चित् मधुर कलरवकरके पुनः दुग्धपान करने लगता है। आश्चर्य है कि सरोवरमें वहाँ उस समय जितने हंस नौकाके चतुर्दिक् सन्तरण कर रहे हैं, सभीको युगपत् यही अनुभूति है कि प्रियतमा श्रीराधा उसके ही पृष्ठदेशको अपने सुकोमल हाथोंसे प्यारभरा संस्पर्श दे रही हैं और प्रियतम नीलसुन्दर उसके ही मुखके आगे दुग्धभरा कटोरा किये हैं एवं सुधा-सुमिष्ट दूध पीकर वह परितृप्त हुआ कभी प्रियतम नीलसुन्दरके प्यारभरे मुखकी ओर निहारता है, कभी प्रिया श्रीराधाकी स्नेहधारामें निमज्जित होता हुआ पुनः चंचु भरकर दूध पीने लगता है। प्रिया श्रीराधारानी एक सरला बालिकाकी तरह ताली बजा-बजाकर हंसोंकी परितृप्ति देख-देखकर प्रसन्न हो रही हैं।

प्रियतम नीलसुन्दरके हाथों हंसोंके द्वारा दुग्धपान कर लेनेपर हंसिनियाँ आगे बढ़ती हैं। प्रियतम नीलसुन्दर सङ्केत करते हैं कि हंसिनियोंको प्रिया स्वयं अपने हाथों दूध पिलावें। राधारानी मुसकाती हुई एक हंसिनीको अपनी गोदमें ले लेती हैं एवं उसकी पीठ सहलाती हुई अतिशय प्रेमसे कहती हैं - 'मेरी प्यारी सखि हंसिनी, इधर आ। मैं तुम्हें मेरे प्राणधन नीलसुन्दरके अधरामृतका पान किया दूध पिलाती हूँ।'

प्रिया विशाखाको सङ्केत करती हैं। विशाखा एक दूसरे रत्नजटित स्वर्णकटोरेमें बहुत ही सुमिष्ट केसरिया दूध प्रियाके हाथोंमें थमा देती है। प्रिया दूधके कटोरेको लेकर प्रियतम श्यामसुन्दरके पास आती हैं एवं उनसे अपने अधरोंसे इसे संलग्न करते हैं, तत्क्षण ही सरोवरके तटसे मधुमङ्गलकी पुकार सुनाई पड़ती है - 'कन्नू रे! ठहरना, ठहर जाना!'

मधुमङ्गल श्रीकृष्णको ठहरनेके लिये कहनेके साथ-साथ ही राधाकुंडके अगाध जलमें छलाँग लगा लेता है। प्रियतम नीलसुन्दर नौकाको मधुमङ्गलकी ओर गतिशील करें इसके पूर्व ही वह तीव्र गतिसे जलको काटता हुआ तैरकर उनकी नौकापर आरूढ़ हो जाता है। हँसता एवं साथ ही रुष्ट भी होता हुआ वह अपने सखा श्रीकृष्णसे कहता है - 'हाँ! मुझे अकेला छोड़कर सुमिष्ट केसरयुक्त दूध पी रहे हो? मुझे वञ्चना दे लो, किन्तु क्या तुझे पता नहीं है कि आज षष्ठीदेवीका पूजन है। जान ले, मैया यशोदाने मुझे निर्देश देकर भेजा है कि जबतक वे षष्ठीपूजन नहीं कर लें, श्रीकृष्णको मेवा-मिष्ठान्न एवं दुग्धपान कुछ भी नहीं करने देना। अब बोल, पीयेगा गुपचुप दूध?'

श्रीकृष्ण मुसकाते हुए प्रिया राधाकी ओर अतिशय प्रेमभरी दृष्टिसे निहारते हैं एवं उसीसे जिज्ञासा करते हैं - 'प्रिये! कहो, अब मैं क्या करूँ?'

विशाखा सारी स्थिति समझ लेती है। वह एक थालीमें बहुत-सी मेवा एवं मावेका केसरिया कलाकन्द मधुमङ्गलके सम्मुख रख देती है। नाटकीय विनय करती हुई वह मधुमङ्गलसे कहती है - 'हे ब्राह्मणदेवता! सारे शास्त्र तो आपके कण्ठपर ही विराजित हैं, कृपया आप ही उपाय बतावें कि जिससे आपके सखा श्रीकृष्ण दूध पी सकें। हमारी सखि राधाने हंसिनीको श्रीकृष्णके अधरामृतसे सना दूध पिलानेका वचन दिया है। भला आपके सिवा राधाके वचनकी रक्षाका उपाय अन्य कौन बतला सकेगा?'

कलाकन्दभरी थाली देखते ही मधुमङ्गलके मुखमें पानी आ जाता है। वह मुसकाता हुआ कहता है - 'बहिन विशाखा! यदि यह कलाकन्द दुगुना करके दो तो अभी उपाय बता दूँगा।' विशाखाके सङ्केतसे तत्क्षण ही लवङ्गमञ्जरी कलाकन्दकी एक और थाली मधुमङ्गलके सम्मुख रख देती है।

मधुमङ्गल थाली देखते ही जीभ चटकारता हुआ कहता है - 'बहिन विशाखा! नारीके शरीरमें सभी देवियोंका निवास होता है। इसलिये यदि श्रीदाम भैयाकी बहिन राधा पहले दुग्धपान कर ले तथा फिर वह दूध

श्रीकृष्ण पियें तो पूजनका नियम अक्षुण्ण ही रहेगा, क्योंकि वह दूध राधाके अधरोंसे संलग्न होनेपर विश्वकी सभी देवियोंका प्रसाद बन जावेगा।' मधुमङ्गल यह कहते हुए तत्क्षण ही थालीमें रखा कलाकन्द दोनों हाथोंसे उदरस्थ करनेमें जुट जाता है।

हँसते हुए श्रीकृष्ण दूधभरा स्वर्णपात्र लेकर प्रिया श्रीराधाके पास पहुँचते हैं एवं कहते हैं - 'लो प्रिये! अब यदि तुम्हें हंसिनीको दुग्धपान कराना हो तो इसे अपने अधरोंसे किञ्चित् संलग्न कर लो।' प्रिया अति सङ्कोचसे स्वर्णपात्रमें से एक घूँट पीती है। प्रियतम नीलसुन्दर भी तत्क्षण ही उसी स्वर्णपात्रसे दो-तीन घूँट पीकर वह स्वर्णपात्र प्रिया राधाको सौंप देते हैं। नौकाको चारों ओरसे घेरे हंसिनियोंकी टोली अपना मस्तक उन्नतकर प्रिया राधाकी ओर इतनी तीव्र उत्कण्ठा एवं लालसासे निहारती हैं मानो कह रही हों - 'श्रीकृष्णप्रिये! आज तो हमें तुम दोनोंके अधरामृतसे सना यह दूध पिलाकर कृतकृत्य ही कर दो।'

प्रियाको अन्तरमें यही सङ्कोच हो रहा है कि बेचारे हंसगण इस प्रसादसे निरर्थक ही वंचित रह गये। विमलामञ्जरी तत्क्षण ही प्रियाकी भावना समझकर एक स्वर्णपात्रमें दूध भरकर पुनः ले आती है। प्रिया प्रथम पात्रके दुग्धमें दूसरे पात्रका दूध संयुक्त कर देती है तथा वह स्वर्णपात्र प्रियतमको सौंप देती है। यद्यपि स्वर्णपात्रोंमें दूध इतनी मात्रामें नहीं है कि जलमें संतरण करते सभी हंस-हंसिनियाँ उससे संतृप्त हो जावें किन्तु प्रिया-प्रियतमके हाथोंका संस्पर्श पाकर उन लघु स्वर्णपात्रोंमें भरा दूध अक्षय हो जाता है तथा सारे जलपक्षी उससे पूर्णतया परितृप्त हो उठते हैं।

सहसा नौका कुंडस्थित पद्मवनमें प्रविष्ट हो जाती है। सरोजवनमें चतुर्दिक् इतने सरोज विकसित हैं कि जलपक्षियोंको नौकाके साथ सन्तरण करनेमें कठिनाई होने लगती है। प्रियतम नीलसुन्दर प्रियाको उस विकसित सरोजवनकी शोभा दिखलाने लगते हैं।

मधुमङ्गल विशाखासे प्रेमकलह करने लगता है। वह कहता है कि उसने दोनों स्वर्ण थालियोंमें थोड़ेसे कलाकन्दको इस प्रकार फैलाकर रखा कि इस मात्रासे उसकी तृप्ति ही नहीं हुई। अतिशय महत्वपूर्ण शास्त्रीय रहस्य विशाखाने उससे अल्प मूल्य देकर ही अवगत कर लिया। अब वह उसके पहुँचनेके पूर्व ही उसके कुञ्जमें सब सखाओंको लेकर जायेगा और वहाँ रखा पूरा मिष्ठान्न-संग्रह चट कर जायेगा। यह कहते-कहते वह नावसे कुण्डके सरोजवनमें कूद पड़ता है और तैरता हुआ उत्तरपूर्वके तटमें निकल जाता है। प्रिया एवं सभी सखियाँ मधुमङ्गलका संतरण-कौशल एवं उसकी मिष्टान्न-लोलुपता देखकर हँसने लगती हैं।

विशाखाकुञ्ज उत्तरपूर्व दिशामें ही स्थित है। प्रिया-प्रियतमकी नौका पूर्वकी ओर अग्रसर हो रही है।

इधर वर्षाकी रिमझिम बूँदें गिरने लगती हैं। आकाशीय मेघ घन-घन गर्जन कर रहे हैं। चातक पिहू-पिहूकी पञ्चम तान छेड़ रहे हैं। राधाकुण्डके निर्मल जलपर, विकसित सरोजोंके पत्रोंपर तथा चतुर्दिक् फैले हरे-हरे पुरैन पत्रोंपर वर्षाकी निर्मल बूँदें गिरती हुईं एकत्रित होकर बड़ी-बड़ी मुक्तामणियोंकी तरह स्थिर हो जाती हैं। प्रियाकी नीली साड़ी, प्रियतम श्यामसुन्दरका पीताम्बर भी वर्षाजलसे भीगकर उनके अङ्गोंसे चिपट जाता है। ऐसी ही दशा सखियोंकी है। आकाशमें और भी घने मेघ घुमड़ रहे हैं। ललिता प्रिया श्रीराधासे जिज्ञासा करती है कि ऐसी सघन वर्षामें नौकाविहार स्थगितकर नौकाओंकी दौड़की प्रतिस्पर्धा की जाये। प्रिया ऊपर नभपर दृष्टिपात करके ललिताको कुञ्जमें चलनेका सङ्केत दे देती है। अपनी प्रिया राधाकी इच्छानुसार प्रियतम नीलसुन्दर सखियोंको नौका उत्तरकी ओर मोड़नेका आदेश दे देते हैं।

मेघ सघन वर्षा करने लगते हैं। प्रिया-प्रियतमको भीगनेसे बचानेके लिये सखियों द्वारा नावपर छत्रनुमा वितान तान दिया जाता है। फिर भी चक्रवाती वायु-प्रवाहके साथ जलकी बौछारें प्रिया-प्रियतम एवं सखियोंकी केशराशिको आर्द्रकर आनन-सरोजोंपर जलधारा प्रवाहित कर ही देती है। यह क्षीण जलरेखा सखियोंके आननपर बहती हुई ऐसे सौन्दर्यका सृजन कर रही है जिसे वाणी द्वारा कहा जाना असंभव है। टपकती चिकुरराशि कपोलों एवं उरोजोंको भिगोती हुई उदर एवं नितम्बोंतकको आर्द्र कर दे रही है। ललिता इसी समय चुपकेसे प्रियतमका आर्द्र उपरैना झटककर खींच लेती है एवं उसे निचोड़कर किञ्चित् शुष्ककर प्रियाके आर्द्र अङ्गोंपर डाल देती है और तब प्रियाकी भीगी ओढ़नी उतारकर उसे निचोड़ने लगती है। प्रियतम नीलसुन्दरका उपरैना हट जानेसे उनका वनमाला-शोभित वक्षस्थल ऐसी मनोरम छटा प्रकाशित करता है कि कोई भी युवती उसे आलिङ्गित करनेकी कामनासे मथित हो जाय। प्रिया लज्जावनत मुख किये सरोवरके सरोजवनपर दृष्टि केन्द्रितकर अपनी उमगती प्रीतिको रोकनेकी चेष्टा करती है। तदपि हृदयका प्रीतिप्रवाह उनके समग्र आननको रक्तिम बना देता है एवं उनके अङ्ग-अङ्ग कम्प-विकारग्रस्त हो उठते हैं। प्रियतम प्रियाके प्रीतिभावको परिलक्षित कर लेते हैं एवं सब सखियोंके सम्मुख ऐसा प्रदर्शन करते हैं मानो प्रियाको शीतकम्प हो रहा है तथा उसे अपने वक्षस्थलसे सटा लेते हैं। प्रियाको लज्जाभान न हो अतः ललिता एक छोर स्वयं पकड़कर तथा सङ्केतसे रूपमञ्जरीको दूसरा छोर पकड़ाकर चतुरतासे एक अवगुण्ठनका निर्माण कर देती है। वह सखियोंके सम्मुख तो ऐसा ही प्रदर्शित करती है मानो प्रियाकी वर्षाजलसे भीगी ओढ़नी शुष्क करनेके लिये फैला रही है, किन्तु सखियाँ उसका चातुर्यपूर्ण मन्तव्य समझकर मन्द-मन्द मुसकाने लगती हैं।

सहसा आकाशमें बिजली तीव्ररूपसे चमकने लगती है एवं घोर मेघगर्जन होने लगता है। प्रिया राधा भयभीत हुई काँपती-सी अपने प्रियतमके वक्षस्थलसे लिपट जाती है। प्रियतम हँसते हुए प्रियासे कहते हैं - 'क्यों, घनगर्जनसे भयभीत हो गयी? देख, तटवर्त्ती वनमें मयूर कैसे नृत्य कर रहे हैं! ये तो घनगर्जनके साथ-साथ स्वयं भी केकारवकरके वनको गुञ्जित कर दे रहे हैं। तू भी मल्हार राग आलाप कर न!'

वर्षा तीव्र गतिसे हो रही है, किन्तु नौकामें ऐसा सुरक्षित वितान तना है कि घनघोर वर्षाका नावपर कोई प्रभाव नहीं हो रहा है। पूर्व दिशाकी ओरसे बतखोंका झुण्ड क्रों-क्रों रव करता हुआ नावकी ओर बढ़ रहा है। प्रिया-प्रियतम पूर्व दिशाकी ओर मुख किये बतखोंका संतरण निरख रहे हैं।

प्रियाके दक्षिण भागमें खड़ी ललिता भी बतखोंकी संतरण-कुशलता निरख-निरखकर उन्हें सराह रही है। बतखें भिन्न-भिन्न वर्णों एवं प्रजातियोंकी हैं। वे अपने वर्णोंके अनुसार यूथ बनाकर संतरण कर रही हैं। घनघोर वर्षाके मध्य वे इतनी मनोरम लग रही हैं कि प्रिया-प्रियतम इस दृश्यपर न्यौछावर हैं। एक ओर सरोजवनकी शोभा, एक ओर जलपक्षियोंका सौन्दर्य एवं तटपर मयूरों एवं कोकिल-चातकोंका कूजन सबको प्रेमोद्दीपनकी चरम सीमापर ले जा रहा है। ललिता सहसा प्रियतम नीलसुन्दरकी ओर तिरछी दृष्टिसे निरखती हुई कहती है - 'बोलो प्रिय, सत्य कहना, क्या तुम मेरी इन सखी बतखोंके समान तैर सकते हो?' ललिताकी बात सुनकर प्रियतम नीलमणि जोरसे अट्टहास करके हँस पड़ते हैं। वे प्रिया श्रीराधाकी ओर मुख करके कहते हैं - 'प्रिये! देखो, तुम न्यायाधीश रहना। जब समग्र मादा स्थलचर, वनचर, नभचर, जलचर आदि पशु-पक्षीगण ललिताकी सखियाँ हो गयीं तो भला, मैं ललितासे किसी भी स्पर्धामें कैसे विजयी हो सकता हूँ? कभी यह कहेगी कि क्या तुम मेरी सखी हरिणीके समान कुलाँचें भर सकते हो? कभी कहेगी कि क्या तुम मेरी सखी हंसिनीके समान नभमें उड़ सकते हो? इसकी मछली सखीके समान जलधारी तो मैं हो ही नहीं सकता। फिर तो यह प्रत्येक स्पर्धामें मुझसे विजयलाभ कर ही लेगी। अतः प्रिये! मैं जीवनपर्यंतका विजयपत्र इसे लिख दे रहा हूँ।'

नौका सञ्चालन स्पर्धा

ललिता प्रियाको कहती है - 'अच्छा सखी! आज प्रियतमसे नौकास्पर्धा हो ही जाय! कलका दाव ये इसलिये जीत गये कि मधुमङ्गलको मिष्ठान्नका प्रलोभन देकर इन्होंने उसे मेरी नावके आगे आ जानेकी चाल चल दी थी। आज मधुमङ्गल विशाखाकुञ्जमें है, आज ये विजयी हो ही नहीं सकते। तू तो इनके ही साथ रहेगी, किन्तु मैं रूप एवं लवङ्गको लेकर दूसरी नावकी डाँड थामती हूँ। देखती हूँ कि ये मुझे विजयपत्र देते हैं कि नहीं।'

नावमें पाल एवं वितान ताननेका जो मणिस्तंभ है, उसपर टँगे स्वर्णपिञ्जरमें एक सारिका आसीन है। वह वहींसे बोल उठती है - 'ललितारानीसे छल किये बिना प्रियतम श्रीकृष्णकी विजय असंभव है। फिर प्रियतमकी बाहुओंको तो प्रिया राधा कल ही अक्षक्रीड़ाके दावमें जीत ही चुकी हैं। जब प्रियतमके बाहुयुगल ही सखी राधाके अधिकारमें हैं, तो क्या वे नौका-सञ्चालन अपने चरणोंसे करेंगे? ललिता तो बिना स्पर्धाके ही विजयी है।'

नौकापर आरूढ़ सभी पक्षीगण सारिकाके निर्णयका समर्थन करने लगते हैं। रानी अतिशय मन्द स्वरमें प्रियतम नीलसुन्दरके कानोंमें कहती है - 'प्रियतम! मैंने तुम्हें अपना जीता दाव लौटा दिया है। तुम सहर्ष ललितासे स्पर्धा करो।' रानीकी अति मन्दस्वरमें कही बात भी सारिका स्पष्ट सुन लेती है एवं उच्च स्वरमें बोल उठती है - 'सखि! घोर पक्षपात हो रहा है। अब यदि प्रियतमके सङ्ग-सङ्ग प्रिया भी तुम्हारे विरुद्ध डाँड थाम लेगी तब तो प्रियतमकी विजय होगी ही।' प्रिया प्रियतमके कानमें पुनः कहती है - 'प्रिय! सारिकाको कह दो, मैं तो त्रिकालमें भी बिना मोलकी कृष्ण-चरणदासी हूँ, उनकी ही थी एवं सदैव उनकी ही चरणकिङ्करी रहूँगी। ललिता चाहे जीते, चाहे हारे।'

सारिका अतिशय उत्तेजित होकर कहती है - 'यह ललिताके साथ पूर्णतया अन्याय है। प्रिया तो सदैवसे ही सखी-परवशा रही हैं। आज तो सब कुछ नवीन हो रहा है। अब यदि प्रिया भी प्रियतमका साथ देंगी तो ये जलचर पक्षी भी प्रियतमकी ओरसे ही नौका-संतरण करने लगेंगे। तब तो ललिताकी विजय असंभव है।'

ललिता सारिकाके कानमें कहती है - 'सारिका! तुम साक्षी रहना, यदि मेरा सखीके साथ सर्वसमर्पणमय प्रेम है तो सखी अपनेको चाहे कितनी ही कृष्णकिङ्करी कहे, उनका मन मेरी ही विजय चाहेगा और उस अवस्थामें मेरी ही विजय निश्चित है। प्रियतम नीलसुन्दर हँसकर कहते हैं - 'चलो, आज ललिताको पराजित ही किया जाय।'

इतनेमें ही नौकापर सारिकाके पिंजरेके ऊपर उड़ता हुआ एक शुक पक्षी आता है और सारिकाको कहता है -'सारिके! स्पर्धा जब हो ही रही है तो दाव तो निर्धारित कर लो।'सारिका भी शुकका अनुमोदन करती है। ललिता कहती है-'जो नन्दतनय दाँव निर्धारित कर दें वही मुझे मान्य है।'श्रीकृष्ण तत्क्षण ही कहते हैं - आज रात्रिमें रासनृत्यके समय यदि ललिता विजयी हुई तो वह जैसे चाहेंगी, मैं नृत्य करूँगा और यदि मैं विजयी हुआ तो जिस प्रकार मैं चाहूँगा वैसा ही ललिताको नृत्य करना होगा।'

सभी सखियाँ 'स्वीकार है, स्वीकार है'की ध्वनि करती हैं।

ललिता मुसकाती हुई रूप एवं लवङ्गको लेकर अन्य सखियों द्वारा सञ्चालित की जाने वाली दूसरे पार्श्वमें सटी-सटी चल रही नौकापर चली जाती है।

प्रिया-प्रियतम पहलेवाली नावकी डाँड थाम लेते हैं। ललिता एवं रूप दूसरी नावपर डाँड थामे हैं। ललिताके सङ्केतसे अन्य सभी नौकाएँ एक पंक्तिमें खड़ी हो जाती हैं। यह निश्चित हो जाता है कि पूरे कुण्डद्वयकी परिक्रमा करके जो भी नौका-आरोहक सर्वप्रथम इन पंक्तिमें खड़ी नावोंके पास अपनी नौका खेकर लावेगा, वही विजयी घोषित किया जावेगा। प्रियतम नीलसुन्दर एवं ललिता दोनों ही नवागंतुक विचक्षण शुकको निर्णायक मान लेते हैं। नवागन्तुक विचक्षण शुक विजयीरेखापर खड़ी नौकाके स्तम्भपर आसीन हो जाता है।

विचक्षणके उड़कर सङ्केत देते ही नौका-सञ्चालन-स्पर्धा प्रारंभ हो जाती है। ओह! महामरकतमय श्यामल सुकुमार श्रीअङ्गोंके अन्तरालसे एक ऐसे अभिनव ओजकी धारा प्रस्फुटित होती है कि कुण्डके प्रथम पड़ाव - ललिताकुञ्जतक प्रिया-प्रियतमके द्वारा सञ्चालित नौका ललिता सखीकी नौकासे बहुत आगे रहती है। किन्तु नारी होकर भी अपनी सञ्चालन-कुशलता और कुण्डकी अनन्त जलधाराको डाँडसे काटनेकी मेधाके फलस्वरूप विशाखाकुञ्जके समीप पहुँचते-पहुँचते ही ललिताकी नौका प्रियतम ब्रजेन्द्रनन्दनकी नौकाको परास्तकर अपने पीछे छोड़ देती है।

'ललिता सखीकी जय!'के घोषके साथ बृन्दाकाननके चर-अचर, स्थावर-जङ्गम समस्त अधिवासियोंमें आनन्द छा जाता है। सभी एक साथ ही किसी अनिर्वचनीय परमानन्द-सिन्धुके अतल तलमें समाये जो हैं। आकाशमें कृपापात्र सुर-समुदाय आनन्द-मूर्च्छित हो उठता है। अपनी चिरसङ्गिनी प्रियाकी बाहुओंमें आलिङ्गित प्रियतम नीलसुन्दर स्पर्धाके आवेशमें चित्राकुञ्जतक पुनः विजयके लिये प्रयास करते हैं, किन्तु चम्पकलताकुञ्जतक ललिताकी नौका इतनी तीव्र गति पकड़ लेती है कि उसे पकड़ना असंभव मानकर प्रियतम अपनी पराजयको निर्विवाद स्वीकार कर लेते हैं। 'प्रियतम नीलमणि नौकासञ्चालन स्थगित कर रहे हैं, वे ललिता सखीके सम्मुख परास्त हो गये हैं।' - प्रिया राधाके लिये यह तथ्य असह्य हो उठता है। वे स्वयं अपने हाथमें डाँड थाम लेती हैं। अति सुकुमारी प्रिया अपनी ही सखी ललितासे नौका-स्पर्धा करे - ललिताको भला यह कैसे सह्य हो? तत्क्षण ही वह अपना नौका-सञ्चालन रोककर तटपर नौका लगा देती है। 'विजयेतां श्रीप्रिया-प्रियतमौ' शुक विचक्षण तीक्ष्ण स्वरमें जय-जयकार कर उठता है।

सारिका विचक्षण शुककी जयध्वनिपर तीव्र रोष प्रकट करती हुई चीख उठती है - 'हमारी सखी ललिताकी स्पर्धा प्रियतम यशोदातनयसे थी। वृषभानुनन्दिनी तो हम सभीकी निर्विवाद ठकुरानी हैं, उनसे किसीकी कैसी स्पर्धा? विचक्षण धर्मात्मा होकर भी उचित न्याय नहीं कर रहे हैं। आज रासमें सञ्चालन-सूत्र सखी ललिता ही अपने नियंत्रणमें सँभालेगी। ललिताके विधानानुसार ही प्रियतम श्यामसुन्दरको आज नृत्य-कौशल दिखाना होगा। जय हो रासमंडल-नियंत्रिका ललिता महारानीकी!'

प्रिया राधाका भावावेग ज्योंही किञ्चित् शिथिल होता है, प्रिया-प्रियतम दोनों ही ललिताके पास जाते हैं। पीछेसे विशाखा धीरेसे प्रियतम नीलसुन्दरका मयूरमुकुट उतारकर ललिताको पहना देती है। 'मयूरमुकुट तो विजयिनी सखीके मस्तकपर ही शोभित होना चाहिये' एकमतसे यह निर्णय सभी सखियाँ-मञ्जरियाँ कर देती हैं। प्रियतम श्यामसुन्दर ललितासे वह मुकुट छीननेकी चेष्टा करते हैं, किन्तु सभी सखियाँ ललिता एवं प्रियतम नीलसुन्दरके मध्य दीवारकी तरह खड़ी हो जाती हैं। प्रियतम परवश होकर प्रियाकी ओर मुकुट दिलानेकी याचना करते हुए देखते हैं। प्रिया प्रियतमके पक्षमें एक शब्द भी उच्चारण करे, इसके पूर्व ही ललिता प्रियतम श्यामसुन्दरको उनका मुकुट पहना देती है।

कुसुमचयन लीला

सौरभमय सुमन चयन कर-कर निज सुख वितरण करते, प्रियतम!

सभी सखियाँ सुखसागरमें निमग्न हैं। 'अब कुसुमवनकी छटा देखी जाय और वहाँसे सुरभित पुष्पचयन कर लावें' - प्रिया-प्रियतम एवं सखियोंका ऐसा सङ्कल्प हो जाता है। वृन्दा सखी प्रियाके कानमें अति मन्दस्वरमें कह रही है - 'किशोरी! क्या श्रीसुन्दरीवनकी ओर प्रस्थान करें?; प्रिया धीरेसे वृन्दाको प्रत्युत्तर देती है - 'जैसी ललिताकी योजना हो, उसीसे अनुमति ले लो न! मुझसे क्यों पूछती हो?' यह कहते-कहते लजा जाती है। प्रिया-प्रियतमके आगे-पीछे, दाहिने एवं बायें यूथोंमें सखियाँ चल रही हैं।

सभी सखियोंकी लहराती हुई सुन्दर वेणियोंमें मल्लिकापुष्प गुम्फित हैं। बृहत् नितम्बभार एवं वक्षस्थलके कारण सभी सखियाँ कृशोदरी हैं। सुन्दर वस्त्रोंसे उनके समस्त अङ्ग आच्छादित हैं। हिलते कर्णकुण्डलोंकी आभासे केशराशि दमक रही है। उनके होठोंमें रम्य मन्द-मन्द मुसकान है। वे अग्रिम पंक्तियोंसे पीछे मुड़कर जब प्रियतमकी ओर निरखती हैं एवं एक हाथसे कमलपुष्प घुमाती स्मित-समन्वित वक्र कटाक्ष-निक्षेपसे प्रियतमकी ओर जब निहारती हैं, तब प्रियतम अपनी प्रियापर ढुलकर ही किसी प्रकार अपना बचाव कर पाते हैं।

किस वनमें, किस पथसे जाना है - यह ललिता द्वारा ही निर्देश हो रहा है। प्रियतम नीलसुन्दर अपनी प्रियापर झुके अधरोंपर वंशीधारण किये विविध रागिनियोंकी तान छेड़नेमें तन्मय-से झूम रहे हैं।

वह देखो, कुसुमवन आ गया। विस्तृत वनखण्डमें वृक्षोंके वितानके नीचे-ऊपर एवं स्वयं वितान रूपमें भी अतिशय सुरभित असंख्य पुष्प विकसित हैं। नव पल्लव झुक-झुककर आह्वान कर रहे हैं कि 'आओ, हमारे प्राण-जीवनसर्वस्व! सौरभ विकरित करते राशि-राशि पुष्पोंको अपनी प्रिया, सखियों एवं अपने अङ्गोंपर सज्जित करके इन्हें कृतार्थ कर दो न! तुम्हारी घ्राणेन्द्रियोंके लिये ये सुखकारी बनें, इससे अधिक इनका सौभाग्य क्या संभव है?' द्रुमोंसे आलिङ्गित वल्लरियोंके हृदयका आह्लाद, आह्लादकी चतुर्दिक् विकीर्ण लहरें न जाने कबकी बाट देख रही हैं। अनादि कालकी अर्जित पुण्यराशि आज फलोन्मुखी होकर इन्हें कृतकृत्य करने जा रही है। वे आरहे हैं - प्रिया-प्रियतम ब्रजेन्द्रनन्दन एवं भानुकिशोरी! ओह! अनन्त पुष्प अपने नेत्रोंसे इन्हें निहारें। अनादिकालीन साधना तप एवं त्यागके हेतुसे अनाविल प्रीति-सौरभसम्पन्न हुए ये सुमन अपनेको इनके युगल पादपद्मोंमें विसर्जित कर दें। असंख्य सुरभित लताओंने वनवीथियों, राजपथों एवं पगडण्डियोंके समीप ही अपना सर्वोच्च सौरभमय विकास किया है। ऐसा करनेका इनका उद्देश्य यही है कि प्रिया-प्रियतमको वनभ्रमणके समय हमें प्राप्त करनेमें किञ्चित् भी श्रम अनुभव नहीं हो।

देखो, प्रियतम प्राणवल्लभ द्वारा याचना किये जानेपर कदम्ब वृक्षसे लिपटी प्रियावर्णी इन पीत झिण्टी लताओंने प्रियतमपर इतने सौरभभरे पुष्प बरसाये हैं कि प्रियतमको आसीन कराने लायक एक अतिशय सुकोमल आसन ही निर्मित हो गया है। इनके प्राणपति नीलसुन्दरने भी इस आसनपर आसीन होनेमें किञ्चित् भी हिचकिचाहट नहीं की है। प्रियतम नीलसुन्दरपर चन्द्रातपका निर्माण सघन पुष्पित कदम्बकी टहनियोंने किया है। भ्रमरोंके यूथ-के-यूथ मँडरावें, यह तो स्वाभाविक ही है। कदम्बसे आठ-आठ हाथतक तो रत्नमयी भूमि है, इसके पश्चात् धूमिल दिखाई देती सुदूरवर्त्ती पर्वतमालाओंतक विकसित पुष्पराशि-ही-पुष्पराशि दृष्टिगोचर हो रही है। सभी पुष्प अप्राकृत एवं असीम सुमनोहर हैं। इनकी गन्ध एवं रूपसे कोई इनकी किसी प्राकृत पुष्पसे तुलना करना चाहेगा तो वह सर्वथा, सर्वकालमें असफल होगा। देवजगत्में भी इन पुष्पोंकी कोटिके पुष्प होने असंभव ही हैं। प्राकृत भाषामें वर्णन करते समय भले ही कोई महापुरुष इनके प्राकृत नाम रखले। इन सभी पुष्पोंके ध्यानकी सुकरताके लिये ही यह कहा जा सकता है कि कदम्बको घेरनेवाली पहली पुष्पोंकी पंक्ति बेलाकी है। किन्तु बेला आकृतिमें गुलाबकी तरह बड़ी-बड़ी है। इनसे कभी तो गुलाबकी-सी मीठी-मीठी, कभी केवड़ेकी-सी तीव्र, कभी कस्तूरीकी-सी मादक, कभी चन्दनकी-सी शीतल, सौम्य सुगन्ध यों फूटी पड़ रही है मानो वे इत्रके फव्वारे हों। इसके पश्चात् मोगरा एवं तब जूही, और तब मल्लिकापुष्पोंकी कतारें दूर-दूरतक फैली हैं। आगे विस्तृत भूखण्डपर अत्यन्त सुगन्धित पुष्पोंकी छोटी-छोटी झाड़ियाँ हैं। एक ओर दूर-दूरतक स्थलकमलोंकी प्रसरित पंक्तियाँ हैं, जो गिरि-पर्वतकी उपत्यकाओंतक विस्तृत हैं। इन सभी पुष्पोंसे सम्मिलित सौरभके ऐसे झौंके आ रहे हैं कि प्रिया-प्रियतम दोनों ही बार-बार नयन मूँदकर इस सौरभप्रवाहके आस्वादनमें डूब जाते हैं।

बेला एवं चमेलीकी पुष्प-क्यारियोंमें कुछ सखियाँ पुष्पयचयन कर रही हैं। फूलोंसे लदी छोटी-छोटी झाड़ियोंके बीच रङ्ग-बिरंगे वस्त्रोंसे लिपटी उनकी देह बहुत ही मनोरम लग रही हैं। वे कभी अतिशय मधुर वाणीमें परस्पर वार्त्ता करती हैं। उनकी हंस-काकलीकी-सी मन्द-मधुर वाणी प्रिया-प्रियतम दोनोंको ही उनकी ओर आकृष्ट कर लेती हैं। अपने कर्ण-विलम्बी हरिणियोंके समान लम्बे-लम्बे नेत्रोंसे कटाक्षमाला फेंकती हुई वे प्रिया-प्रियतम दोनोंको अपनी ओर आकृष्ट पाकर मन्द-मन्द मुसकाने लगती हैं। कुछ क्षणोंतक तो वे प्रिया-प्रियतमकी ओर निहारती हैं, पुनः पुष्पचयन करने लगती हैं। उन्होंने अपने आँचलोंको ही पुष्पचयनके पात्र बना लिया है। जब इनके अञ्चल पुष्पोंसे पूर्ण हो जाते हैं तो ये प्रिया-प्रियतमके सम्मुख रखी बेंतकी टोकरियोंमें इन पुष्पोंकी ढेरियोंको डाल देती हैं। एक सखीको श्रमित देख प्रिया सङ्केतसे उसे अपने पार्श्वमें बैठा लेती है एवं अतिशय प्यारसे उसके स्वेदकणोंसे झलकते आननको अपने आँचलसे पौंछने लगती हैं। उस सखीके सौभाग्य एवं प्रियाके स्नेह बरसाते स्वभावपर विलासमञ्जरी एवं विमलामञ्जरी न्यौछावर हो जाती हैं। इतना ही नहीं, प्रिया उस सखीके द्वारा लाये बेलाके पुष्पोंमेंसे एक अञ्जलि भर पुष्प अपने पास ही आसीन प्रियतमके मस्तकपर भी बिखेर देती हैं। ओह! किसी लीला-प्रत्यक्षदर्शी कविने कैसी मादक रसभरी वाणीमें इस छविका वर्णन किया है-

केलि कला कमनीय किशोर उभय रस पुंजन कुंजन नेरे।
हास विलास कियो बलि आली केतौ सुख होत है दुरि-दुरि हेरे।।
बेलीके फूल प्रिया पिय पै डारे की उपमा होत है जिय मेरे।
नन्ददास मानों साँझ समय बगमाल तमाल कों जात बसेरे ।।

ओह, युगल दम्पतिकी केलि (लीलाविहार) कैसी कमनीय एवं कलात्मक है जिसे वे रसनिधिपुञ्ज कुञ्जके भीतर सम्पादित कर रहे हैं, उन्हें कितना असीम सुख प्राप्त हो रहा है। प्रिया बेलाके फूलोंसे अपनी अञ्जलि भरकर अपने प्रियतमपर डालती है। श्रीनन्ददासजी इस लीलाको प्रत्यक्ष देखते हुए कहते हैं कि इस लीलाको देखनेसे मेरे मनमें यह उपमा देनेकी इच्छा हो उठती है मानो बगुलोंकी पंक्ति सन्ध्याके समय उन्नत तमाल वृक्षपर बसेरा करने चली जा रही हो।

अपने चतुर्दिक् सखियों द्वारा चयनित पुष्पोंके ढेर देखकर प्रिया-प्रियतम मुसकाने लगते हैं। फिर इन्हीं पुष्पोंसे ललिता, विशाखा, चित्रा, चम्पकलता आदि प्रधान अष्ट सखियोंकी प्रतिकृतियाँ निर्माण करने लगते हैं। प्रियतम विनोदमें ललिता सखीकी मुखाकृति क्रोधमें तमतमाती अङ्कित करके हँसते हैं तो प्रिया उसी आकृतिको पुनः सौम्य बनानेमें निरत हो उठती है।

यदा-कदा दोनोंकी अँगुलियोंका परस्पर इतना सुमधुर संस्पर्श हो उठता है कि इस संस्पर्शसे दोनोंके रोम ऊर्ध्व हो उठते हैं एवं कम्पोदयसे दोनों काँपने लगते हैं। प्रियाको वृन्दाकाननके सभी सुमनोंके रूपमें अपने प्राणवल्लभ नीलमणिका निराविल शुचितम मन ही अनुभव होता है एवं प्रियतमको भी वे पुष्प, पत्र, कानन, कुञ्ज आदि सब प्रियाके सन्धिनी स्वरूपका ही विकास दिखाई देते हैं।

सर्वत्र भाँति-भाँतिके उत्कृष्ट गन्धवाले पुष्पोंकी महक छायी है। इधर प्रिया-प्रियतमके अङ्गोंमें सात्विक सुदीप्त प्रेमविकार उत्पन्न हो रहे हैं, स्वेदादि विकारोंके प्रवाहसे उत्पन्न उनकी अङ्ग-गन्ध समग्र वातावरणको अलौकिक, मादक बना दे रही है। इस प्रेमगन्धसे आकर्षित हुआ भ्रमरोंका दल चतुर्दिक् मँडरा रहा है। वृन्दादेवी द्वारा वर्जित किये जानेके कारण यह भ्रमरदल प्रिया-प्रियतमसे किञ्चित् दूरी बनाकर ही मँडराता है। ।।७५२।।

निर्झर निकुञ्ज-तरु-पत्रों से मधु का झरता रहता, प्रियतम!
होता न विराम किसी ऋतु में उसका था जहाँ, वहीं, प्रियतम!

साँवर बालाको ले जाते, द्विगुणित होता झरना, प्रियतम !
दोनोंमें पुरइनके मधुभर वे उसे पिला पीते, प्रियतम।।७५३।।

निकुञ्जके तरुपत्रोंसे मधुके निर्झरका दृश्य देखने योग्य होता। स्थान-स्थानपर नैसर्गिक निर्झर झरते रहते। किसी भी ऋतुमें इस निर्झरका विराम होता ही नहीं। यहीं इनके समीप ही नीलसुन्दर राधाकिशोरीको खींचकर ले जाते। इनके समीप पहुँचते ही झरना द्विगुणित वेगसे झरने लगता। नीलसुन्दर कमलपत्रके दोनेमें प्रकृतिके इस मधुदानका आस्वादन राधाकिशोरीको कराते और स्वयं भी इसका रस लेते।।।७५३।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

दोनोंमें पुरइनके मधु भर वे उसे पिला, पीते, प्रियतम!

वृन्दाका सन्देश सुनकर ललिता उसका दक्षिण हस्त ग्रहण किये-किये निकुञ्जके उत्तर द्वारकी ओर चल पड़ती है। प्रियाके कानोंमें धीरे-से विशाखा सन्देश देती है कि प्रियतम सहित सभी सखियोंको इन दोनों - वृन्दा एवं ललिताके द्वारा निर्दिष्ट पथसे मधुमाधवीकुञ्जकी ओर प्रस्थान करना है। प्रिया-प्रियतम अपने आसनसे उठकर ललिता एवं वृन्दाका अनुगमन करने लगते हैं।

ललिता सखी मयूरपिच्छाभ वर्णकी साड़ी पहने गजगामिनीकी चालसे झूमती चल रही है। वृन्दा पद्माभ वर्णकी साड़ी पहने है। दोनों सखियोंकी मल्लीपुष्पखचित गुम्फित वेणियाँ नागिनकी तरह बल खाती उनके कञ्चनद्युति पृष्ठदेशपर लहरा रही हैं। प्रियतम प्राणवल्लभ नीलमणि द्वारा वेणीमें खौंसे मात्र दो पुष्पोंकी शोभा वेणीके अन्य समग्र शृङ्गारको हतप्रभ कर दे रही है। बृहत् नितम्बभार एवं वक्षस्थलके कारण दोनों ही रमणियाँ कृशोदरी हैं एवं हिलते हुए कर्णकुण्डलोंकी आभासे उनकी केशराशि दमक रही है। आगे-आगे चलती हुई अकस्मात् ही वे प्रिया-प्रियतमको निहारनेको जब अपना मुख मोड़ती हैं, उस समय दमकती कुन्तलराशिसे अलंकृत उन दोनोंका कोटि-कोटि चन्द्रमाओंकी आभाको हतप्रभ कर देनेवाला मुख-सौन्दर्य प्रिया-प्रियतम दोनोंको ही प्रेम-विह्वल कर देता है। होठोंकी रम्य मन्द मुसकानकी प्रभा सर्वत्र प्रसरित करती वे क्रमशः लाल एवं नीलकमल घुमाती हुईं मन्द-मन्थर गतिसे एक सुरम्य पगडण्डीसे वनमें प्रवेश कर जाती हैं।

कविकी यह वाणी -**'मोह न नारि नारिके रूपा'** अर्थात् किसी नारीके रूपपर अन्य नारी मुग्ध नहीं होती - भी इस अप्राकृत लीलाराज्यमें चरितार्थ नहीं होती। ललिता एवं वृन्दाकी मुख मोड़-मोड़कर मुसकाती हुई आनन-छविपर प्रियतमकी अपेक्षा प्रिया भानुनन्दिनी ही अधिक न्यौछावर हो रही हैं।

जिस सुरम्य पगडण्डीसे ये दोनों सखियाँ परस्पर हाथोंको थामे बढ़ रही हैं, उसके दोनों ओर कदम्बके वृक्ष हैं। ये सभी वृक्ष सुविकसित पुष्पोंसे इस प्रकार लदे हैं एवं अलिदल उन पुष्पोंपर इस भाँति मँडरा रहे हैं जिससे इनकी पहचान करना ही कठिन हो जाता है। इसके उपरान्त भी वे सभी वृक्ष वैजयन्ती लताओंकी सुपुष्पित बेलोंसे भी समालिङ्गित हैं। इन सभी बेलोंमें अनेकों वर्णके पुष्प महक रहे हैं। विविध वर्णके वैजयन्ती लताओंके पुष्प समग्र पथको ही दिव्य सौन्दर्यसे अभिभूत कर दे रहे हैं। प्रिया-प्रियतम परस्पर गलबाँही दिये ज्यों-ज्यों गहन वनमें प्रवेश कर रहे हैं उनके पथको ये लताएँ अपने पुष्प बिछाकर इस प्रकार सुकोमल बना दे रही हैं, मानो दम्पति पुष्पशय्यामें ही चरण रखे चल रहे हों। वनमें पगडण्डी ज्योंही किसी दिशामें मोड़ लेती है, प्रिया-प्रियतमके सम्मुख नव-नूतन सौन्दर्य प्रत्यक्ष हो उठता है। इस नव-नवायमान सौन्दर्यके साथ ही उनकी घ्राणेन्द्रियोंमें भी नव-नूतन परिमल-प्रवाह भर उठता है। इस प्रकार वनदेवी प्रिया-प्रियतमको पद-पदपर नव-नूतन सुखदान कर रही है। वनदेवीके इस स्वागतपर प्रिया-प्रियतम कितने रीझ उठे हैं, इसका प्रदर्शन तो उनकी प्रेममें

डगमग बहकती चाल ही कर दे रही है। दम्पतीकी परस्पर प्रेममत्तता उनका अनुगमन करती सखियोंको भी प्रेमोत्साहमें भर रही है।

पुष्पाच्छादित इस वनपथपर शनैः-शनैः चरण रखते हुए प्रिया-प्रियतम कितनी दूर चले आये हैं, इसका अनुमान भला कौन करे। इस यात्रको विराम तो तभी मिलता है जब प्रिया-प्रियतम मधुमाधवीकुञ्जस्थलीकी स्फटिक वेदीपर पहुँच जाते हैं। वेदीपर अतिशय अनमोल मयूरपिच्छाभ वर्णका एक रत्नमय मयूरासन रखा है। इस आसनके नीचे पूरी स्फटिकवेदीको समाच्छादित करता हुआ सुन्दर कलाकृतियोंसे सज्जित एक रेशमी सुकोमल गलीचा बिछा है। गलीचेपर किनारे-किनारे वृत्ताकार तूलपुष्ट उपधान रखे हैं। वेदीपर पहुँचनेके लिये मात्र एक ओर रास्ता छोड़ा गया है।

प्रिया-प्रियतम गलबाँही दिये इसी राहसे गलीचे पर चरण रखते हुए मयूरासनपर आसीन हो जाते हैं। प्रिया-प्रियतमके मयूरासनपर आसीन होते ही प्रियाके पार्श्वमें बायीं ओर क्रमशः ललिता एवं तब चित्रा, चम्पकलता, इन्दुलेखा, रंङ्गदेवी, तुङ्गविद्या एवं सुदेवी अपने-अपने आसनोंको ग्रहण कर लेती हैं। प्रियतमके दक्षिणकी ओर विशाखा विराजित हो जाती हैं, एवं उनके पार्श्वमें मधुमतीमञ्जरी वीणा लिये आसीन हैं। शेष स्थान मञ्जरियोंके आने-जानेके लिये रिक्त रखा गया है।

इस स्फटिकवेदीकी शोभा चतुर्दिक् वृक्षोंकी पंक्तियोंके द्वारा इसके घिरे होनेसे अत्यधिक बढ़ गयी है। जिस वन-पगडण्डीसे प्रिया-प्रियतम इस मधुमाधवीनिकुञ्जतक पहुँचे हैं, उसके दोनों ओर जो वैजयन्तीलतालिङ्गित कदम्ब वृक्षोंकी पंक्तियाँ हैं , वे पंक्तियाँ ही यहाँतक आकर इस स्फटिक वेदीको दोनों ओरसे घेरकर एक सुरम्य दृश्य प्रस्तुत कर रही है। अबतक तो इन कदम्बोंसे लिपटी वैजयन्ती लताएँ ही प्रिया-प्रियतमके पथमें पुष्पराशि बिखेर रही थीं, किन्तु अब यहाँ कदम्बश्रेणीके वृक्षोंके पत्र-पत्र भी अतिशय मादक मधुंके निर्झर हो रहे हैं। पत्र-पत्रसे, पुष्प-पुष्पसे अत्यन्त सुस्वादु मादक मधु च्यवित हो रहा है। वृन्दादेवीकी अनुचरियाँ मञ्जरियाँ इस अतिशय प्रेम-मादक मधुका अत्यन्त कलापूर्ण रीतिसे सञ्चयन करती हैं। इन्होंने प्रत्येक वृक्षके नीचे बाँसकी बनी अगणित टोकरियाँ पुरइन पत्रोंसे आच्छादित कर रख दी हैं। इन टोकरियोंमें वृक्षोंके पत्तोंसे चूता हुआ मधु सञ्चित हो जाता है। मञ्जरियाँ इसे स्फटिककी झारियोंमें सञ्चितकर सखियोंके पास पहुँचा देती हैं।

देखो, देखो, वेदीको घेरे हुए वेदीसे दस गज दूर प्रथम पंक्ति तो वैजयन्तीलतालिङ्गित कदम्ब वृक्षोंकी है ही, किन्तु उसके दस गज पश्चात् उसे घेरे दूसरी पंक्ति पनस एवं कदलीवृक्षोंकी है, जिसे मालती लताएँ स्व-आलिङ्गनमें लपेटे हैं। ओह! अपने व्यजनके समान सुदीर्घाकार पत्रोंको नील आकाशमें उन्नत किये ये पनस एवं कदली वृक्ष मालती लताओंसे शृङ्गारित अपना सज्जित रूप प्रिया-प्रियतमके सम्मुख प्रदर्शित करनेको विशाल कदम्ब वृक्षोंसे भी उच्च हो उठते हैं। इन कदली वृक्षोंके पत्रोंसे ऐसा मादक कदली-मधु प्रवाहित हो रहा है जिसकी सुरभि दूरसे ही प्रिया-प्रियतमको आकृष्ट कर लेती है।

कैसा विलक्षण यह ब्रजप्रदेश है! ज्योंही कदलीवृक्ष अनुभव करते हैं कि तीसरी आम्रवृक्षोंकी पंक्तिकी शोभा भी प्रियतम निरखें, वे एवं कदम्ब दोनों ही वृक्षावलियाँ अपनेको लघु बना लेती हैं और प्रिया-प्रियतमकी दृष्टि मञ्जरियोंसे लदे आम्रवृक्षोंपर तत्क्षण ही ठहर जाती है। इन आम्रवृक्षोंको सेवती पुष्पोंकी लताएँ समाच्छादित किये हुए हैं। आगे अनेकों पंक्तियाँ इसी प्रकार दस-दस गजके अन्तरसे खजूर, नारिकेल, जामुन, पनस, लीची, शहतूत, आँवला एवं इमलीके वृक्षोंकी है। सभी वृक्ष चिन्मय होनेसे वेदीमें आसीन प्रियाप्रियतमके सम्मुख मानो प्रकट हो-होकर अपना शोभादर्शन करा रहे हैं। इस प्रकार वृक्षोंकी सर्वशृङ्गारमयी शोभा प्रिया-प्रियतमके समक्ष स्पष्टतया प्रत्यक्ष हो रही है। देखो न! जिस प्रकार पार्श्ववर्त्ती कदम्बवृक्ष प्रिया-प्रियतमके सम्मुख अपनी शोभा प्रकाशित कर

रहा है, सुदूरवर्त्ती इमली अथवा आँवलेके लिये भी इस देशमें ऐसी ही देशगत निकटता एक क्षणमें ही सृष्ट हो जाती है।

प्रिया-प्रियतम एवं सखियाँ चतुर्दिक् प्रकृतिके विलक्षण सौन्दर्यको निहार-निहारकर चकित हो रही हैं। प्रिया-प्रियतम कहीं वनशोभाके दर्शनमें ही डूबकर प्रेमसमाधि ग्रहण नहीं कर लें, इस शङ्कासे ललिता मधुमती मञ्जरीको गायन करनेका सङ्केत करती है। मधुमती वीणाके तार मिलाने लगती है। ओह! प्रथम स्वरालापमें ही मधुमतीके अतिशय सुरीले कण्ठने प्रिया-प्रियतमको अपनी ओर आकर्षित कर लिया है। मधुमतीके ध्रुवपदके साथ-साथ विशाखा मृदङ्गपर थाप दे रही है।

राग सारङ्ग (ताल ध्रुपद)

रीझि रीझि रहसि रहसि, हँसि हँसि मुसकात उठैं,
साँसें भरि आँसू भरि सिसकत कहैं दई-दई।
चौंकि चौंकि चकि चकि, औचक उचकि देव,
छकि छकि, बकि बकि पूरण बई - बई।।
दोउन को रूप गुन दोऊ सुमिरन करैं,
नयन थिरात नहिं रीति नेह नई - नई।
मोहि - मोहि मोहनको मन भयौ भामिनिमय,
भामिनि मन मोहि भयौ मनमोहन मई - मई।।

मधुमतीके गीतकी मात्र दो पंक्तियाँ ही प्रिया-प्रियतम श्रवण कर पाते हैं। भावावेशवश उनकी नेत्रपुतलियाँ ऊपर-नीचे घूर्णित होने लगती हैं तथा अन्ततः मुँद जाती हैं। प्रियाके सम्मुख गीतके भावानुसार दृश्य आने लगते हैं और वे उस भावप्रवाहकी भाग बनी उसी भावमें लहराने लगती हैं। यही दशा प्रियतम ब्रजेन्द्रनन्दनकी भी है। यद्यपि प्रिया-प्रियतम दोनोंके भाव-चित्र अपने-अपने भावानुसार पृथक्-पृथक् हैं, किन्तु दोनों ही पर्याप्त प्रगाढ़ रूपसे भावाभिभूत हो उठते हैं।

प्रियाके सम्मुख भावदृश्य आ रहा है - वे किसी ग्वालिनीके घर गयी हैं। वे देखती हैं कि ग्वालिनीने ठीक उनके प्रियतम ब्रजेन्द्रनन्दनकी अनुकृति करते हुए ही पीताम्बर धारण किया हुआ है। उस पीताम्बरकी झलकसे प्रियाको अपने प्रियतमकी इतनी प्रगाढ़ स्मृति होती है कि उन्हें उन्माद हो उठता है। उनके वेणी-निबद्ध केश उन्मुक्त हो जाते हैं। वे कभी तो उन्मुक्त अट्टहास करने लगती हैं, कभी प्रमत्तकी तरह अपने मस्तकपर रखा नवनीतभाण्ड पटक देती हैं। अपने नवनीत-भाण्डको फोड़कर वे उस ग्वालिनीके गृहसे दधिभाण्ड लेकर ग्राम-गलीमें भागने लगती हैं। बृषभानुनन्दिनीकी ऐसी दशा देखकर ग्वालिनी अतिशय वात्सल्य प्रदर्शन करने लगती है। उनसे दुलराकर पूछती है - 'बहिन! तुझे हो क्या गया है?' रानी उत्तर देती है - 'सखि! बता न, प्रियतम इतने सुन्दर क्यों हैं? उन्हें इतना मधुर बोलना किसने सिखाया? ओह! क्या ही मादक उनका सौन्दर्य है!'

रानीकी बात सुनकर ग्वालिन उनका हाथ पकड़कर कहती है - 'बहन! चल, मैं तुझे तेरे घर पहुँचा आऊँ, तू अभी पूरी सज्ञान नहीं है।' ग्वालिन रानीका हाथ पकड़े हुए चल रही है। किन्तु अरे! यह क्या हुआ? रानीको तो अपनी देहका आकार ही बदल गया दृष्टिगोचर हो रहा है। उसे अपने देहके स्थानपर अपने प्रियतमकी देह दिखने लगती है। रानी आश्चर्य करती है कि गौरवर्णकी उसकी देह नीलघनश्यामवर्णकी कैसे हो गयी? उसकी कटिमें नीलाम्बर, लहँगेके स्थानपर पीताम्बर वस्त्र एवं चूड़ामणिके स्थानपर मोरमुकुट कैसे आ गया? भावाविष्ट दशामें प्रियाका हाथ पकड़े ग्वालिनी किसी प्रकार उन्हें उसके घर पहुँचानेका प्रयास कर रही है। राहमें प्रियाकी

दशा और भी गंभीर, गंभीरतर हो उठती है। अब तो उन्हें उनका हाथ पकड़े घर ले जाने वाली ग्वालिनी भी प्रियतम ही दिखने लगती है। वह जिधर देखती हैं, उधर ही प्रियतम खड़े हुए दृष्टिगोचर होने लगते हैं।

प्रियाकी भावदशाका तो उपर्लिखित चित्र दे दिया गया है, अब प्रियतम प्राणसर्वस्व ब्रजेन्द्रनन्दनकी भावदशापर भी दृष्टिपात कर लें।

प्रियतमके सम्मुख दूसरा ही दृश्य आ रहा है। लो, वे सखाओंके साथ गाय चराने गोष्ठसे बाहर आये। यमुना-पुलिन पहुँचते-पहुँचते ही उन्हें प्रिया राधा वनपुष्प-सञ्चयन करती दृष्टिगोचर हो जाती है। प्रियाके मस्तकका अञ्चल खिसककर बाहुओंमें आ गया है। सरित्, सरोवर एवं प्रपातोंकी लहरोंपर बहती हुई अत्यन्त शीतल वायु उनकी कुञ्चित उन्मुक्त केशलटोंसे अठखेलियाँ कर रही है। बार-बार कपोलोंपर आती अपनी कृष्ण कुन्तल लटको वे निवारण करती हैं, किन्तु वह उनके कपोलोंपर मँडराना स्थगित नहीं करती। ऊँची लताओंपर विकसित पुष्पोंकी ओर वे निहारती भर हैं और याचनाके स्वरमें अपना अञ्चल फैलाती हैं। इतनेमें विकसित पुष्पोंसे लदी लताएँ उनके आँचलको पुष्पराशिसे भर देती है। उनके मस्तक, स्कन्धदेशपर बिखरी पुष्पोंकी पंखुड़ियाँ उनका एक विलक्षण शृङ्गार कर दे रही हैं। उनकी नागिन-सी वेणी कुन्दनशिला-सी पीठपर लहरा रही है। विकसित सहस्रदल कमल-से उनके उन्नत उभरे उरोज प्रियाके चित्तको बरबस अपनी ओर आकृष्ट कर रहे हैं। प्रियाका ध्यान अपनी ओर समाकर्षित करनेके उद्देश्यसे प्रियतम कुछ पुष्प चयनकर कौशलपूर्वक उनसे एक कन्दुकका निर्माण करते हैं एवं उसे प्रियाकी ओर उछाल देते हैं।

पुष्पकन्दुक ज्योंही प्रियाके पृष्ठदेशसे टकराती है, वे मुड़कर तिरछी चितवनसे कन्दुकके आगमनकी दिशापर दृष्टिनिक्षेप करती हैं। प्रियाकी दृष्टि प्रियतमसे मिलती है। वे लजाती हुई निम्न मुख किये एक पल प्रियतमको निहारती हैं एवं तत्क्षण ही एक पीत झिण्टीपुष्पोंकी झाड़ीमें छिप जाती हैं।

प्रियतमका हृदय बिंध जाता है। वे वहीं कदम्बके नीचे पड़ी स्फटिकचौकीपर बैठ जाते हैं। गोचारणके लिये आगे बढ़ना रुक जाता है। मधुमङ्गल, सुबल, स्तोक, अंश, वरूथप आदि सखागण उन्हें घेर लेते हैं। प्रियतमकी सम्पूर्ण देह स्वेदविकारसे लथपथ देखकर स्तोक हिम्मतकर जिज्ञासा कर बैठता है - 'भैया कन्नू! तुझे हो क्या गया है? इस प्रकार तो तू भीषण असुरोंसे युद्ध करते हुए, उन्हें पछाड़ते समय भी नहीं कराहता है! तू इस प्रकार अपना कलेजा क्यों पकड़े है?'

स्तोककृष्णको प्रसन्न देखनेके लिये प्रियतम मुसकानेकी असफल चेष्टा करते हैं, किन्तु पुनः प्रियाकी स्मृति प्रगाढ़ होनेके कारण उनके अश्रु आवेगवश प्रवाहित हो उठते हैं। जब सुबल तथा अन्य सखा पुनः-पुनः प्रश्न करते हैं तो प्रियतम श्रीकृष्ण उन्हें इतना-सा ही उत्तर दे पाते हैं - 'अरे सुबल! क्या तूने कभी कोटि-कोटि राकाशशि एक साथ उदित होकर शोभा बरसाते देखे हैं? असंख्य राकाशशियोंको भी हेय, तुच्छ बनानेवाली शोभा अभी-अभी उस पीत झिण्टीपुष्पोंकी झाड़ीके पाससे मुसकाती मुझे दृष्टिगोचर हुई थी और तब इस झाड़ीमें ही वह लुप्त हो गयी है। सुबलके द्वारा उस ज्योतिका नाम पूछनेपर वे मात्र 'रा, रा, रा' ही कह पाते हैं, एवं फिर मूर्च्छित हो जाते हैं। यद्यपि मनसे बार-बार वे प्रियाका नाम उच्चारण करना चाहते हैं और यह भी चाहते हैं कि सुबल झाड़ीके पीछे जाकर प्रियाको यहाँ उनके पार्श्वमें ले आवे .... किन्तु उनकी वाणी अपना मन्तव्य प्रकट करनेके पूर्व ही प्रेममें रुद्ध हो उठती है। सुबल श्रीकृष्णको गोदमें सुला लेता है। श्रीकृष्ण चाहते हैं कि सखाओंको अपने हृदयकी प्रीति-पीड़ा समझा पावें किन्तु वे बोलना कुछ और ही चाहते हैं एवं उनके मुखसे वाणी फूटती है - ' **मन-मृग बेध्यो नैन बाणतें, मन-मृग बेध्यौ नैन बाणतें'** श्रीकृष्ण देखते हैं कि उनकी वाणी ज्यों-ज्यों उपरोक्त मंत्र जपती है त्यों-ही-त्यों उनकी देहकी रङ्गत बदलती जाती है। वे नरदेहसे अपनेको नारीदेहके रूपमें देखने लगते हैं।

इस प्रगाढ़ अनुभूतिके मध्य ही प्रियतमको मधुमतीमञ्जरीकी 'गीतध्वनि'की अन्तिम पंक्ति श्रवणगोचर होती है-

मोहि-मोहि मोहनको मन भयौ भामिनिमय।
भामिनि मन मोहि भयौ मनमोहन मई- मई।।

अन्तिम चरणकी आवृत्ति सुनते-सुनते ही दोनों प्रिया-प्रियतम अपनी प्रगाढ़ भाव-समाधिसे उत्थित होने लगते हैं। भावसन्धि उन्हें धीरे-धीरे बाह्यज्ञान कराने लगती है।

प्रियतम स्वप्नदर्शनवत् वृत्तिमें लहराते हुए सोच रहे हैं - प्रियाकी प्रगाढ़ ध्यानवृत्तिके कारण मैं मोहित हो गया हूँ और इसीलिये मुझे मेरा शरीर प्रियाके रूपमें दृष्टिगोचर हो रहा है। ठीक, ऐसी ही बुद्धिवृत्ति प्रियाकी है। वे भी सोच रही हैं कि सत्य-सत्य प्रियतम प्राणवल्लभ नीलमणिने ही मेरी दृग-पुतलियोंपर पूरा अधिकार जमाकर डेरा डाल दिया है। इसीलिये मुझे प्रत्येक आकार प्रियतम ही दिखने लगता है।

प्रिया-प्रियतम दोनोंको भाव-समाधिसे बाह्यावेशमें आते देख विशाखा अपने पार्श्वमें बैठी नेत्र बन्दकर वीणापर तान छेड़ती मधुमतीको उसकी जंघाओंका संस्पर्शकर सङ्केत करती है कि गायन स्थगित करदे, अन्यथा संभव है, प्रिया-प्रियतम पुनः भाव-समाधिस्थ हो जायें। तत्क्षण ही मधुमती गायन समाप्त करके शान्त हो जाती है। समग्र वातावरण विलक्षण प्रेममें डूबा कुछ पल अतिशय प्रगाढ़ शान्तिमें रहता है। अकस्मात् प्रिया-प्रियतम दोनों ही नेत्र उन्मीलित कर देते हैं। वे अकचकाये-से सभी सखियोंकी ओर दृष्टि डालते हैं। सखियाँ प्रिया-प्रियतम दोनोंको इस प्रकार अपनी ओर निरखते पाकर मुसका पड़ती हैं। प्रिया-प्रियतम दोनों ही गायन सुनने मात्रसे हुई अपनी आविष्ट दशाका स्मरणकर नीचा मुख किये मन्द-मन्द मुसकाने लगते हैं।

अचानक प्रियतम नीलमणि सखियोंके सङ्ग हँसने लगते हैं एवं कहते हैं - 'वाह! तुमने तो मुझे खूब छकाया। मधुरस पिलानेका निमन्त्रण देकर मधुमती द्वारा सङ्गीतका ऐसा जादू किया कि मैं तो अपना बाह्य होश ही खो बैठा। इसीलिये शास्त्रोंमें लिखा है कि नारीसमूहमें बैठकर कभी सङ्गीत नहीं सुनना चाहिये। सुन्दरियाँ जादूसे अपने प्रिय जनोंको कुछ-का-कुछ बना देती हैं। सुन्दरियोंसे नेत्र मिले नहीं कि जादू हो जाता है।'

प्रियतम प्राणवल्लभकी बात सुनकर प्रिया मुसकाने लगती हैं। सखियाँ सबसे पहले पनस वृक्षोंकी पंक्तियोंसे झरते मादक मधुरसको, जो पारदर्शी ब्रजमणिकी झारीमें सञ्चित रखा है, पुरइनके पत्रोंके दोनोंमें भरकर प्रिया-प्रियतमके सम्मुख प्रस्तुत कर देती हैं। प्रियतम अपने दोनेको प्रियाके अधरोंके पास ले जाकर कहते हैं - 'देख, तू मुझे पहले ही बहुत मतवाला बना चुकी है, अब यह तो तुझे किञ्चित् पीना ही पड़ेगा।'

प्रिया लज्जासे अवनत-मुखी प्रियतमको कनखियोंसे निहारती हुई कहती है - 'प्रिय! मतवाली तो मैं भी पर्याप्त हो चुकी हूँ। फिर भी थोड़ा चख लेती हूँ।' प्रियतम अपना आग्रह पूरा होते देखकर प्रसन्नतासे भर उठते हैं। इसके पश्चात् प्रिया अपना पूर्ण मधुसे भरा छलकता दोना प्रियतमको पिला देती है।

पनसका मधुरस इतना सुस्वादु है कि प्रियतम अपनी जिह्वासे होठ चाटने लगते हैं। प्रिया-प्रियतम एवं सखियाँ - सभीमें मादक रसपानसे एक विलक्षण प्रेमोल्लास हिलोरें मारने लगता है। इधर प्रियतम लज्जा त्यागकर प्रियाका हाथ थाम लेते हैं एवं प्रियाको मधु झरते आम्रवृक्षोंकी पंक्तिके नीचे ले जाते हैं।

कैसी विलक्षण ये आम्रवृक्षावलियाँ हैं। ये सभी ऋतुओंमें पुष्पोंसे लदी, फलोंसे विनम्र एवं मधुरस छलकाती रहती हैं। इनके पत्तोंसे भी सौरभका घना प्रवाह बहता है, फिर मुकुलित मञ्जरियोंका तो कहना ही क्या?

आम्रवृक्षोंकी पंक्तियों एवं कदलीवृक्षोंके मध्य जो दस फुटका रिक्त स्थान है, उसपर गोलाकार रूपमें सभी सखियाँ बैठी हैं। त्रिविध समीर पुष्पोंका मकरन्द उड़ाती प्रिया-प्रियतम एवं सखियोंकी केशराशिपर सुगन्धिकी वर्षा कर रही है। इसी प्रकार कदम्ब, कदली, पनस, आम्र, आँवला, नारिकेल आदि वृक्षोंका परम सुरभित मधु भी यहाँ

सर्वत्र वायुमें आपूरित हो रहा है। श्वास-प्रश्वासके साथ यह मधु प्रिया-प्रियतम एवं सखियोंके देहोंमें प्रवेश कर रहा है। इस मधुकी यहाँ सर्वत्र अत्यन्त भीनी-भीनी वर्षा हो रही है। यह मधु इतना स्वच्छ, सुमधुर, सुगन्धित, पवित्र एवं प्रेमोन्मादक है कि मधुवर्षामें भीगी सखियाँ प्रेममत्त हो रही हैं।

अनङ्गमञ्जरी, पालिकामञ्जरी, धन्यामञ्जरी, श्यामलामञ्जरी पंक्तिकी चारों दिशाओंमें खड़ी हैं। चारोंके हाथोंमें एक -एक थाल है। इस थालमें पुरइन पत्रोंके हरे-हरे दोने हैं।

प्रिया-प्रियतम एक-एक दोना लिये हैं जिसमें मधुरस भरा है एवं एक-एक तश्तरी भी अपने सम्मुख रखे हैं जिसमें नारिकेलकी गिरी, आम्रके कटे टुकड़े, अंगूर एवं कदलीके पके फल रखे हैं। प्रियतम प्रियाको कहते हैं - 'देख, तू तो यह मधु मात्र हाथोंमें ही लिये है और मैं इतना पी चुका हूँ कि मदमस्त हुए मेरे पैर काँप रहे हैं।' प्रिया अपने प्रियतमकी बात अनसुनी कर दे रही है। प्रियाकी दृष्टि भी मदसे लाल हो रही है एवं कभी-कभी वे स्थिरदृष्टि भी हो जाती हैं। एक क्षणके हजारवें भागमें तो उनका मन सखियोंको पकड़ता है, फिर अपने प्रियतमके अङ्कमें चला जाता है। वे मन-ही-मन सोच रही हैं - 'ओह! यदि मेरे करोड़ नेत्र होते और मेरे नेत्रोंकी पलकें कभी नहीं गिरतीं, तो मैं अपने प्रियतमकी रूपसुधाका कुछ-कुछ आस्वाद ले पाती। ओह क्या करूँ? मेरी अनंतनेत्रा होनेकी प्रार्थना कौन देवता पूरी कर सकता है? क्या मैं भगवती त्रिपुरसुन्दरीसे प्रार्थना करके अपनी कामनानुसार वरदान प्राप्त कर लूँ?' वे प्रार्थना करने लगती हैं - 'हे जगन्माते! हे महादेवी! मैं अपने प्राणवल्लभ जीवनसर्वस्वकी रूपसुधाका तृप्त होकर पान कर सकूँ, ऐसी योग्यताके लिये ....'

सहसा रानीको अन्तरिक्षमें भगवती त्रिपुरसुन्दरी मुसकाती दृष्टिगोचर हो जाती है। त्रिजगन्माताके दर्शन करते ही प्रियाकी भावधारा दूसरी ही हो जाती है। 'माँ! माँ! नहीं, नही, कभी नहीं! हे महादेवी! मैं शपथपूर्वक कहती हूँ कि मैं कभी कोई याचनाका भाव अपने मनमें नहीं लाऊँगी। ओह! इस मधुपानसे मेरी बुद्धि ही कुण्ठित हो गयी, इसीलिये प्रमादवश मैं तेरे सम्मुख हाथ बाँधकर नवीन विधान करनेकी प्रार्थना कर बैठी। अब तो भविष्यमें तूने मेरे लिये जो भी मङ्गलमय विधान किया है, उसे परिवर्त्तित करानेकी भूल मेरे द्वारा कभी नहीं होगी। हाय! यदि मेरी रुचिके अनुसार तेरा विधान बन जाता, तो मेरे प्राणवल्लभ मेरा यह रूप देखकर न जाने कितने संतप्त होते। फिर मेरे जीवनसर्वस्व मुझे हृदयसे लगाकर मेरे कपोलोंपर अपने प्रीतिचिह्न भला, कैसे अङ्कित कर पाते? अभी तो वे मेरी कुन्तलराशिकी सज्जा कितने प्यारपूर्वक किया करते हैं, मेरी वेणी गूँथकर, पैरोंमें पायजेब बाँधकर वे कैसे उत्फुल्ल हो उठते हैं। मैं इतनी अधमा हूँ कि अपने सुखके लिये उनके सुख एवं आनन्दको ही नष्ट करनेकी बात सोचने लगी। भला, मेरे रोम-रोममें यदि असंख्य नेत्र हो जावें तो मैं कैसी कुरुप, विकृत हो जाऊँगी। फिर तो वे मेरे किसी अङ्गको प्रेमसे सहला भी नहीं सकेंगे। फिर उन्हें मुझसे क्या सुख मिलेगा? नहीं, नहीं, कभी नहीं, मुझे तो बस, दो ही आँखें चाहियें।'

अपनी प्रियाको मनही मन अपने आपसे ही वार्त्ता करते हुए प्रियतम ध्यानपूर्वक निरख रहे हैं। वे उसके अति निकट आसीन हो जाते हैं।

दोनों ओरकी तरुपंक्तियोंकी मध्यभूमिपर तरुशाखाओंने परस्पर जुड़कर अपने हरित पत्रोंका ऐसा सुन्दर वितान निर्माण कर दिया है कि उसके नीचे पुष्पोंकी भीनी-भीनी मकरन्द-वर्षा हो रही है। सखियाँ मधुपानसे मत्त हुई बाह्यज्ञानको मात्र आंशिक ही पकड़ पा रही हैं।

सखियोंकी विचित्र दशा है। प्रत्येक सखी एक क्षण तो अपनेको नामरूपात्मक ललिता, विशाखा, चित्रा आदि अनुभव करती है, किन्तु दूसरे ही क्षण उन्हें अनुभव होता है कि वे तो साक्षात् श्रीमती राधा ही हैं। ये सखियाँ जैसे ही अपनेको राधा अनुभव करती हैं, उन्हें प्राणरमण नीलसुन्दर अपने बगलमें ही आसीन अतिशय

प्यारसे निहारते दृष्टिगोचर हो उठते हैं। इधर प्रिया श्रीराधारानीकी भी इससे ही मिलती-जुलती दशा हो रही है। वे ज्योंही ललिताको देखती हैं, दूसरे ही क्षण अपनेको विस्मृतकर ललिता हो जाती हैं। उस काल उनका मन, मस्तिष्क, स्वभाव, रूप तथा वेष सभी ठीक ललिताका हो जाता है। वे पूरी ललिता बनीं अपने प्रियतमसे ललिता वेषमें ही सब व्यवहार करने लगती हैं।

कैसा अभूतपूर्व प्रेममय वातावरण है! सेनापति कामदेव सर्वत्र नर्त्तन कर रहा है। नव तरुओंकी शाखाओंमें, शाखाकी प्रत्येक ग्रन्थिमें विविध वर्णमयी नवाङ्कुरश्रेणी प्रस्फुटित हो रही है। इन नवाङ्कुरोंसे तरुओंका सौन्दर्य अनन्तगुना हो उठा है। चतुर्दिक् प्रसरित प्रकृतिकी ऐसी विलक्षण शोभा भी गोपियोंको अति निकट उनके पार्श्वमें अधलेटे प्रियतम नीलसुन्दरके रोम-रोमसे झरते सौन्दर्यस्रोतकी तुलनामें सर्वथा तुच्छ, निर्मंछनकर फैंक देने योग्य अनुभवमें आ रही है।

देखो तो सही, कैसा असमोर्ध्व लावण्यपूर्ण कैशोरभाव है जो इन गोपरामाओं एवं ब्रजेन्द्रनन्दनके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंमें आनन्दोच्छलन कर रहा है। ओह! ये गोपाङ्गनाएँ ऐसे विकसित पद्मवनकी तरह लग रही हैं जो अपने हृद्देशमें प्रतिक्षण सृष्ट होते हुए प्रीति-मकरन्द एवं आनन्द-परागका उपहार एकत्रकर कृष्ण-मधुकरकी प्रीतिभाजन बनने जा रही हैं।

असंख्य गोपाङ्गनाएँ इस प्रीति-पद्मवनकी असंख्य कुमुदिनी हैं। ओह! अवर्णनीय कान्ति है इनकी। ये सभी सखियाँ अपनी-अपनी भावदशाको अपने प्रियतमके समक्ष कैसा निरूपण कर रही हैं।

प्रिया राधा अपने प्रियतमके आलिङ्गनमें लिपटी आधी मदहोश एवं अर्धजाग्रत अपनी सखी विशाखापर दृष्टि डालती हैं। विशाखा कदलीवृक्षकी सघन छांयामें एकाकिनी मदछकी विराजित है। उसके वस्त्र अस्त-व्यस्त हैं एवं वह कदलीवृक्षको ही प्रियतम समझे है। वृक्षके मूलपर सिर टिकाये लेटी हुई वह प्रेममें मदहोश लड़खड़ाये स्वरोंमें गा रही है। ज्योंही उसपर प्रिया भानुनन्दिनीकी दृष्टि पड़ती है भानुनन्दिनी पूरी-की-पूरी विशाखा बन जाती है। यद्यपि भानुनन्दिनी एवं विशाखाके तन पृथक्-पृथक् दो स्थानोंमें अवस्थित रहते हैं - विशाखा एक सुदूर कदली वृक्षके नीचे है एवं भानुनन्दिनी आम्रवृक्षके नीचे। दोनोंमें लगभग दस फुटका अन्तर है। फिर भी प्रिया राधाको अपने स्वरूपमें विशाखा ही दिख रही है एवं वह पूरी तरह विशाखाके भाववाली हुई उसके ही स्वभाव, प्रकृति एवं स्वरूपको ग्रहण कर चुकी है। प्रिया विशाखाभावमें अपने प्रियतमको संबोधितकर गा रही है -

मेरे तुम मैं नित्य तुम्हारी, तुम मैं, मैं तुम, संग-असंग।
पता नहीं कबसे मैं तुम बन, तुम मैं बने कर रहे रंग।।

प्रिया स्पष्ट अनुभव कर रही हैं कि वे ही स्वाधीनभर्तृका भावमें लहराती विशाखा सखी हैं। प्रियतम उनके पार्श्वमें उनके सर्वथा अनुगत वशीभूत हुए विराजित हैं और वे प्रियतमके सम्मुख अपनी भावानुभूति व्यक्त कर रही हैं। उनकी वाणी मदछकी लड़खड़ा रही है, किन्तु फिर भी कभी वे गीत गाकर एवं कभी गद्यमें निवेदन कर रही है - 'प्राणजीवन! तुम मेरे हो, और मैं पूरी तुम्हारी, एकमात्र तुम्हारी हूँ। मैं तुम हूँ और जब तुम मैं ही हो, तब, मेरी तुमपर पूरी स्वाधीनता तो है ही। पता नहीं, कितने कालसे तुममें एवं मुझमें यह क्रीड़ा हो रही है। वस्तुतः तुममें एवं मुझमें वियोग होता ही नहीं है, किन्तु कभी-कभी मिलनका तीव्र भावोदय होता है और उस समय एक पलका भी अमिलन असह्य हो उठता है। उस समय विह्वल, विकल रससरिता-स्वरूपा मैं तुम्हारी ओर उन्मादिनी-सी उमगती हूँ। उस समय रससमुद्र तुम भी कूल-किनारा त्यागकर मुझे अपनेसे एक करनेके लिये उमड़ उठते हो। वैसे हममें वियोग-विछोह तो होता ही नहीं, फिर भी लीलारस-आस्वादनके लिये हम दोनों ही संयोग-वियोग रूप रख लेते हैं।

विशाखाभावमें पूर्णतया आविष्ट हुई प्रिया आत्मविस्मृत हुई कितने कालमानतक विशाखा बनी रहीं, इसका निर्णय तो कौन करे, क्योंकि वहाँ काल-सत्ता ही चिन्मय है, अप्राकृत है। इसी तरह लहराते-लहराते ही प्रियतम प्राणवल्लभ अपनी प्रियाके मुख-सरोजको एकटक देखने लगते हैं। प्रियाके कपोल मदसे लाल हो उठे हैं, नेत्र प्रेममें छके हैं। वे रोमांचित हैं, उनके वस्त्र अस्त-व्यस्त हो रहे हैं, वेणी अधखुली है, चाल डगमगी है। प्रियतमको अपने पार्श्वमें पाकर वे अङ्गोंका सब भार उनपर डाल देती हैं। वे प्रियतमके सङ्ग इधर-उधर सभी सखियोंकी मधुपानजन्य मत्त दशा निरखने लगती हैं। वे सखी ललिताके पास पहुँचती हैं।

ललिता सखीकी भी वेणी अर्ध उन्मुक्त हो चुकी है। उनकी घुँघराली अलकें ललाटके कुछ अंशको आच्छादितकर कपोलोंपर मँडरा रही है। केशोंमें गुँथे प्रसून रह-रहकर वेणीसे च्युत हो रहे हैं। ललिता सखीके लाल-लाल मदछके नयनोंकी मनोहर चितवन देखते ही बनती है। उनके द्वारा प्रियतम प्राणवल्लभको दिया जानेवाले उपालंभों एवं वक्रोक्तियोंकी तो छटा ही निराली है।

सखियोंको तो ललिता सखी पूरी तरह मदहोश इतस्ततः मधुपानप्रमत्त भ्रमण करती दृष्टिगोचर हो रही है, किन्तु कोई इनकी स्वयंकी अनुभूतिका दर्शन कर पावे, इनकी स्वयंकी आँखसे इनको देख पावे तो उसे विलक्षण ही दृश्य दिखेगा।

अरे, अरे आश्चर्य! प्रिया जो अबतक विशाखाभाव-अभिभूत थीं, ललिताको देखते ही उसकी भावदशाको आत्मसात् कर बैठती हैं। अब प्रिया राधाका तन तो अवश्य अपने प्रियतमके बाहुबन्धनमें बँधा, उनके ही कन्धोंमें हाथ रखे अपनी ललिता सखीके सम्मुख अवस्थित है, किन्तु प्रिया मन-चित्त एवं भावभूमिसे पूरी ललिता ही बन गयी हैं और उनकी आँखें भी विचित्र दृश्य निहार रही हैं।

प्रियतम प्राणसुन्दर नीलमयङ्कदेव अपनी प्रियाके सम्मुख ललिताकुञ्जके द्वारपर खड़े हैं। प्रिया राधा ललिता सखीके खण्डिताभावमें पूरी भावाविष्ट हैं। ब्राह्म मुहूर्तका कालमान है। प्रियतम अतिशय याचनाके स्वरोंमें गीत रूपमें अपना भाव निवेदन कर रहे हैं -

तू तो मेरे प्राणन हू ते प्यारी।
नेकु चितै हँस बोलिये मोसौं हौं तो शरण तिहारी।।
अन्तर दूर करौ अचरा कौ खोल दै घूँघट पट सारी।
कृष्णदास प्रभु गिरिधर नागर भर लीने अँकवारी।।

'मेरी प्यारी ललिते! यह सत्य है कि तू मुझे अपने प्राणोंसे भी अत्यधिक प्यारी है। थोड़ा-सा मेरी ओर प्रेमभरी चितवनसे तू देख भर ले, प्रिये! मैं तेरी शरण हूँ। हे प्रिये! बार-बार अपने उरोजोंपर यह अँचरा क्यों डालती हो? मेरे एवं तेरे हृदयके मध्य इस अञ्चलका अन्तर अब दूर कर दे, न! अब तो अपनी मयूरपिच्छाभ साड़ीसे लगाया अपने मुखके ऊपरका घूँघटपट ही हटा लो न!' यह कहते हुए प्रियतम नीलसुन्दर अपनी प्रिया ललिताको अङ्कमें भर लेते हैं। संतकवि कृष्णदासजी कुञ्जछिद्रसे इस लीलाके प्रत्यक्षद्रष्टा हैं।'

ओह! प्रिया-प्रियतम दोनों ललिताकुञ्जके भीतर विहार-मंदिरमें चले गये हैं। सखियोंने इस शयनमन्दिरमें कैसी विलक्षण कलामयी पुष्पशैया विरचित की है। इस शैयाके पास एक बृहदाकार आरसी इस प्रकार रखी है जिससे शैयासीन दम्पतिके मुखोंका प्रतिंबिम्ब आरसीपर स्पष्ट उजागर होता रहे। प्रियतम नीलमणि शैयापर विराजित होते समय ऐसे कोणसे चतुराईपूर्वक शैयाके किनारे खड़े रहते हैं जिससे उनके मुखका प्रतिबिम्ब आरसीपर नहीं झलक पावे। प्रिया राधा अपने प्रियतमकी इस चतुराईको परिलक्षित कर लेती हैं एवं गीतिछन्दमें अपने भाव निवेदन करती हैं -

क्यों मोहन दरपन नहिं देखौ।
क्यों धरणी पग नखन खनावत, क्यों मो तन नहिं पेखौ।।
क्यों ठाढ़े क्यों बैठत नाहीं, कहा परी हम चूक।
पीताम्बर गहि कह्यौ बैठिये, क्यों जु रहे हौ मूक।।
उघर गयौ उर तैं उपरैना देखियत अङ्ग विभाग।
सूर स्याम लटपटी पाग पर यावक की छवि लाग।।

नख कहाँ लागे, बन बानरा लगाये नख,
चख क्यों राते, प्रात देख्यौ ताते भान कौं।
चन्दन लग्यौ है कहाँ, विघ्नहरन पूजा कीनी,
वन्दन लग्यौ है कहाँ, परस भयौ थान कौ।।
रैन कहाँ रहे, नट नृत्यत रहे जहाँ,
अरबरे क्यों बोलौ मोसों, डर भयौ आन कौ।
गुजरी सो गुजरी अब आगे आय ठाढो 'सूर'
थेगरी कहाँ लौं देत फाटे आसमान कौं।।

'हे मेरे प्राणपति मोहन! तुम शैयामें सहजतापूर्वक क्यों नहीं आसीन हो रहे हो? तुम इस आरसीमें अपना मुख देखने-दिखानेसे क्यों सङ्कोच कर रहे हो? तुम खड़े-खड़े धरतीको अपने चरण-अंगुष्ठसे इस प्रकार क्यों कुरेद रहे हो, तुम्हें क्या कोई अपराध-बोध हो रहा है? तुम शैयापर विराजते क्यों नहीं?'

प्रियाने पीताम्बर खींचकर ज्योंही बैठनेकी विनय की, त्योंही प्रियतमका पीत उपरैना उनके ढँके अङ्गोंसे हट गया। उनके वक्षस्थलमें रतिचिह्न स्पष्ट उजागर हो गये। उनके सिरकी पागपर किसी नायिकाके चरणोंकी यावक लगी स्पष्ट दृष्टिगोचर हो गयी।

ललिताभावमें आविष्ट प्रिया हँसकर अपने प्रियतमसे जिज्ञासा कर रही हैं - 'हे प्रियतम! तुम्हारे वक्षस्थलपर ये नखोंकी खरौंच कैसे लगीं? प्रियतम अत्यन्त चतुराईपूर्वक उत्तर देते हैं - 'प्रिये! मैं वनपथसे होकर आ रहा था, अचानक वानरयूथने मुझे घेर लिया एवं उन्होंने ही मेरे अङ्गोंमें नखोंकी खरौंच लगा दीं।' प्रिया पुनः प्रश्न करती हैं - 'प्रियतम! तुम्हारे नेत्र रतजगे-से लाल-लाल क्यों हो रहे हैं?' पुनः उत्तर मिला -'प्राणेश्वरी! मैं कल प्रातः उदय होते तप्त सूर्यको टकटकी लगाकर देखता रहा था, इसीलिये मेरे नेत्र रक्तिम वर्णके हो गये हैं।'रानीने पुनः प्रश्न किया - 'प्रियतम! तुम्हारे हाथोंमें यह चन्दन कैसे लगा है?' उत्तरमें प्रियतम बोले -' प्राणेश्वरी! मैंने आनेके पूर्व विघ्नहरण गणेशजीका पूजन किया है, इसीसे मेरे हाथोंमें चन्दन लगा है। उनके स्थानपर मस्तक टेककर वन्दन करनेके कारण ही यह रक्तचन्दनकी लालिमा मेरे मस्तकपर अङ्कित है।' प्रिया पुनः पूछती हैं -'प्रियतम! आज तुम मुझसे वार्त्ता करते-करते बीच-बीचमें अटकने क्यों लग जाते हो?' प्रियतम उत्तरमें कहते हैं -'प्रिये! प्रभात हो जानेसे मुझे सन्देह हो उठता है कि कहीं किसीका आगमन तो नहीं हो रहा है?'

श्रीसूरदासजी जो इस लीलाका ललिताकुञ्जके छिद्रोंसे प्रत्यक्ष दर्शन कर रहे हैं, कहते हैं कि गूजरी राधारानीसे तो प्रियतम नीलमणिकी यह बहानेबाजी चल गयी, किन्तु वे फटे हुए आसमानमें इस प्रकार पैबन्द कैसे लगाते रहेंगे? फटा वस्त्र तो टाँका लगाकर भले ही सी लिया जाय, किन्तु क्या फटे आसमानमें भी कभी सिलाई हो सकती है?

ओह! खण्डिता-भावाविष्ट प्रिया राधाके हृदयमें कैसे-कैसे भावचित्र अङ्कित हो रहे हैं। भला कोई लेखक उन भावोंको शब्द दे पावेगा? कदापि नहीं।

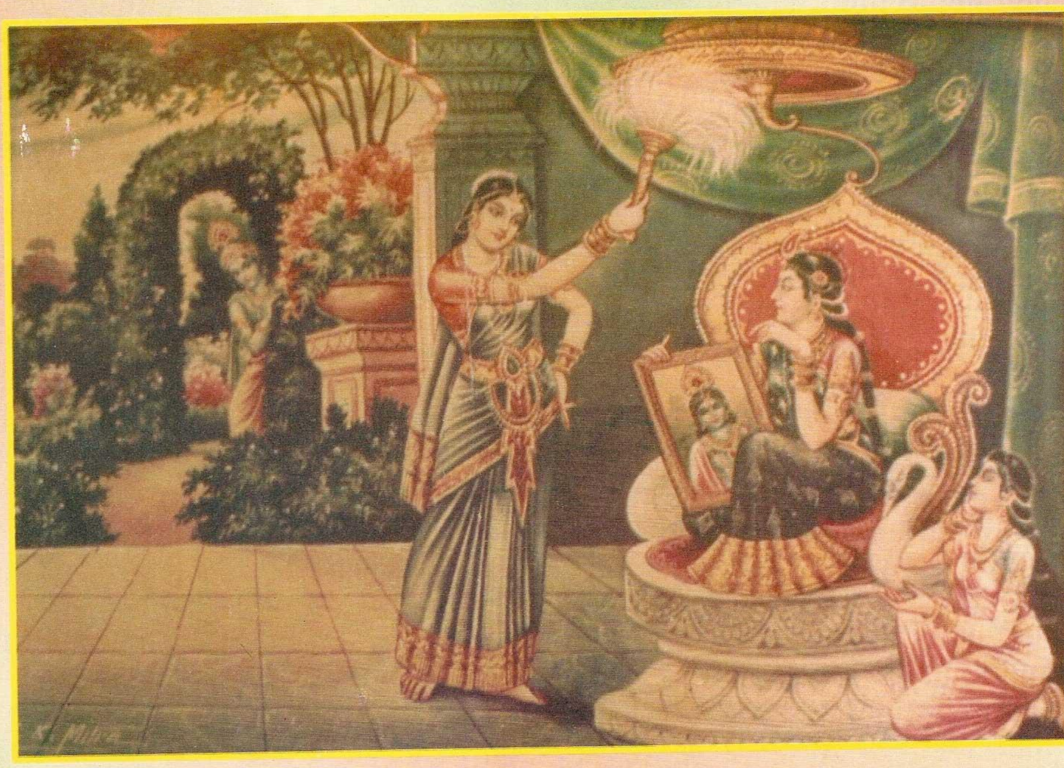
अचानक ही सखी चित्रा प्रियाके दृष्टिपथपर आ जाती है। चित्रा मधुपानसे छकी अपने दिवाभिसारिका भावकी घनीभूत लहरोंमें लहराती कोकिलाकी कुहू-कुहू ध्वनि सुन रही है। वर्त्तमान मधुमाधवीकुञ्जका दृश्य तो चित्राके दृष्टिपटलसे कबका ही विलुप्त हो गया है। उसके स्थानपर उसके कुञ्जके द्वारदेशका कक्ष ही उसके भावपथमें प्रकट है। दिवसका प्रखर मध्याह्न है। अब तो प्रियतम नीलसुन्दर गोष्ठसे वनमें प्रवेश कर ही गये होंगे और उसके कुञ्जमें उससे मिलने अब तो आते ही होंगे - चित्रा सर्वांगसे सजी पथमें नयन बिछाये अपने प्रियतमकी प्रतीक्षा कर रही है। ओह! कुञ्जके सामनेकी सघन कदम्ब वृक्षावलियोंके मध्यपथसे प्रियतम नीलमयङ्कदेवके आगमनकी झाँकी उसे मिल जाती है। तत्क्षण ही उनके स्वागतमें पुष्प बिछानेकी लालसा उसके चित्तमें इतनी तीव्रतासे हिलोरें लेने लगती है कि वह सत्यांशमें ही पुष्पोंकी डलिया लिये सर्वत्र पथमें पुष्प बिछाना प्रारंभ कर देती है।

ओह! प्रियतम प्राणवल्लभ नीलमयङ्क प्रथम दर्शनमें ही चित्राको कितने मनोरम, नयनवल्लभ दृष्टिगोचर होते हैं। चित्राके नेत्रोंसे प्रथम दर्शनके समय अविरल अश्रु प्रवाहित होने लगते हैं। उसके अङ्गोंके वस्त्राभूषण स्खलित हो जाते हैं। उसकी वेणी खुल जाती है एवं एक ऐसी तीव्र आकुलता उसमें व्यक्त होती है जिससे उसका चित्त उत्तरोत्तर क्षण-क्षण विह्वल होने लगता है। इस प्रेमजन्य विह्वल भावदशामें ही प्रियतम प्राणवल्लभ चित्राके निकट-निकटतम होते जाते हैं और अन्ततः उसके बाहुबन्धनमें जकड़ जाते हैं। चित्राकी भावदशा देखते-देखते ही प्रिया प्रिया नहीं रह पाती, तत्क्षण ही चित्रा हो जाती हैं। ओह! अपने प्रियतम प्राणवल्लभके मुखकी ओर प्रिया चित्रा बनी एकटक देखने लगती हैं। प्रियाके आनन-सरोजसे प्रीति-मधुकी राशि-राशि धारा प्रवाहित होने लगती है। प्रियतम प्राणवल्लभके नेत्र एक नहीं, असंख्य रूपोंमें अपनी प्राणप्रिया चित्राकी ओर उस मकरन्दरसका पान करने उड़ चलते हैं। ओह! वह मधुधारा अब प्रियाके उत्तप्त हृदय एवं प्राणोंमें भी झरने लगी है। प्रियतम प्राणसुन्दरको निज बाहुपाशमें बाँधे चित्राभावापन्न प्रिया चित्राकुञ्जके विहारकक्षमें ले आयी है। विहारकक्षमें स्वर्णपिञ्जरमें विराजित सारिका अतिशय मधुर कण्ठसे गा रही है -

सघन कुंजकी छाँह मनोहर सुमन सेज बैठे पिय प्यारी।
अरसि परसि अंसनि भुज दीने, नन्दनँदन बृषभानुदुलारी।।
नख-सिख अङ्ग सिंगार सुहावत, इहि छवि सम नाहिन उपमा री।
रस बस करत प्रेमकी बतियाँ, हँसि हँसि देत परस्पर तारी।।
सन्मुख सकल सहचरी ठाढ़ीं विहरत प्रिय सँग प्राणपियारी।
गोविंददास निरखि दम्पति सुख तन-मन-धन कीनौ बलिहारी।।

चित्राकुञ्जके मनोहर शयनकक्षमें कुसुमशैयापर प्रिया-प्रियतम विराजित हैं। दोनों एक दूसरेके कन्धोंपर अपनी भुजाएँ रखे हैं। दोनोंके अङ्ग-अङ्ग नखसे शिखातक शृङ्गार-सुशोभित हैं। उनके रोम-रोमसे जो छवि तरंगें उठ रही हैं उनकी कोई उपमा संभव ही नहीं है। रसके वशीभूत होकर वे परस्पर प्रेमालाप करते हैं और हँस-हँसकर एक दूसरेके हाथपर ताली दे रहे हैं। विहारिन-विहारीका यह आत्मविहार निरखती सखियाँ दोनोंपर तन-मन न्यौछावर कर दे रही हैं।

देखो, देखो! सखी चंपकलतापर ज्योंही दृष्टि पड़ी तत्क्षण ही इसके भावमें अभिभूत हो उठी हैं। कहाँ तो प्रियाको मध्याह्नकालका अनुभव हो रहा था और अचानक बिना संध्याकाल आये ही दिवसका अवसान हो गया है



ये नैना रिझवार नये री।
एकहि बार बिलोकि स्यामकों तजि घर बार फकीर भये री ।।
(चामर-सेवा-निरत सखी श्रीचम्पकलताजी) (पृष्ठ १६८)

और निशाका प्रथम प्रहर भी व्यतीत हो गया है। कहाँ तो मध्य गगनमें सूर्य जगमगा रहा था एवं कहाँ पूर्व दिशामें राकाचन्द्र की परम शीतल सुस्निग्ध ज्योत्स्ना छिटक रही है। चम्पकलताके वेत्रनिकुञ्जमें चम्पकलताभावमयी प्रिया अपने प्रियतमके सङ्ग शैयाका निर्माण कर रही हैं। चतुर्दिक् कदम्ब मौलिश्री, मालती, चमेली, बेलाके असंख्य पुष्प विकसित हैं। उनके माधुर्यसे आकृष्ट भौंरोंके समूह मृदुल गुञ्जार कर रहे हैं। पुष्पोंके गुच्छोंका संस्पर्श करता अत्यन्त निर्मल पवन बह रहा है। इस पवनके प्रभावसे कदम्ब, आम्र एवं कदली आदि हरे-हरे वृक्ष इस प्रकार अपनी टहनियाँ हिला रहे हैं, जिससे यही अनुभव होता है मानो प्रिया-प्रियतमपर इनके द्वारा चँवर डुलानेकी क्रिया हो रही है। सारिका, शुक, कोकिल, मयूर एवं अनेक पक्षी सुमधुर कलरव कर रहे हैं। नृत्य करते मयूर प्रियाके चित्तको इतना समाकर्षित कर लेते हैं कि प्रिया शैयारचना करती-करती भी इन मयूरोंका नृत्य निरखकर उन्हें अपने आलिङ्गनमें बाँधने इनके पास चली आती हैं। शीतल, मन्द एवं सुगन्धित समीरका ऐसा सञ्चार हो रहा है कि इस त्रिविध पवनकी गति यमुनाकी तरङ्गोंको और अधिक चञ्चल कर देती है। सम्मुख ही श्यामलवर्णा यमुना रजत चाँदनीमें भीगी बह रही है। कल्पप्रसूनोंसे लदे कल्पवृक्षोंकी कतारें यमुनाके किनारे-किनारे परम मनोहर लग रही हैं। यमुनामें विविध प्रकारके कमल, उत्पल, कुशेशय, इन्दीवर आदि विकसित हैं। चक्रवाक, कलहंसोंका समूह मधुर स्वर कर रहा है।

प्रिया-प्रियतमके चतुर्दिक् पुष्पोंकी ढेरियाँ लगी हैं, जिनसे चम्पकवर्णी ललितादि सखियाँ मालाएँ गुम्फितकर प्रिया-प्रियतमको दे रही हैं। प्रिया-प्रियतम पहले तो इन गुम्फित मालाओंसे शैयाका तानाबाना बना रहे हैं और तब विलक्षण कलात्मकतापूर्वक उनसे अनेक सुन्दर चित्र रचना करते समय शैया निर्माण कर रहे हैं। प्रिया-प्रियतमका चित्त शैयारचनामें इतना तल्लीन है कि उन्हें बाह्य सुधि ही नहीं है। लो, शैया निर्मित हो गयी। आनन्दकन्द प्रियतम प्राणवल्लभ रसरङ्गमें पूरे निमग्न होते हुए अपनी प्रिया राधासे आग्रह कर रहे हैं कि सर्वप्रथम वह इस पुष्पशैयामें विराजित होवें, जिससे उनका शैया-निर्माणका श्रम सफल हो जाय। ओह! प्रिया ऐसी सुकुमारी हैं कि उनकी एक-एक रोमकी छविपर वरुणलोक, नागलोक, देवलोककी सम्पूर्ण कुमारियोंकी शोभा न्यौछावर की जा सकती है। प्रिया श्रीराधा भी अपने प्रियतमके अङ्ग-अङ्गकी सुघड़ता एवं रूपको निरख-निरखकर विस्मित, विथकित हो रही है।

ओह! प्रिया-प्रियतम दोनोंको ही पुष्पशैयामें आसीन कर दिया है। अहा! प्रियाके कमलमुखपर प्रियतम प्राणवल्लभके नेत्र भृङ्ग बने मँडरा रहे हैं। रूपलब्ध हुई प्रिया पलकें झपकाना ही बिसार चुकी हैं और प्रियतम स्थिरनेत्र हुए प्रियाकी रूपसुधाका मकरन्दरस पान कर रहे हैं। प्रियतमपर अपनी प्रियाके प्रेमका ऐसा नशा चढ़ा है कि उनका समग्र अन्तःकरण ही प्रमत्त-सा झूम रहा है।

ऐसी ही दशा प्रियाकी स्वयंकी भी है। प्रियतमके मुखचन्द्रको सखियोंकी उपस्थितिमें भी प्रिया अतिशय अनुरक्तिसे चकोरवत् निरख रही है। कभी नारीसुलभ लज्जावश नेत्र नीचे होते हैं तो भी वे मात्र एक क्षणके लिये ही नीचे रह पाते हैं, दूसरे ही क्षण दर्शनोत्कण्ठा इतनी तीव्र हो उठती है कि सुध-बुध खोकर व्याकुल हुए नेत्र पुनः अपने प्रियतमको एकटक निरखने ऊपर उठ आते हैं। प्रियाके नेत्रोंकी ऐसी प्रबल पिपासा है कि वे नित्य अपने प्रियतमके नेत्रोंसे चार रहते हुए भी ऐसा अनुभव करते रहते हैं कि प्राणप्रियतमसे उनका यह मिलन प्रथम बार ही हुआ है, पहले कभी नहीं हुआ।

प्रिया चम्पकलता-स्वरूपमें पूर्णतया निमग्न वासकसज्जाभावमें लहरा रही थी कि उनकी दृष्टि इन्दुलेखापर पड़ती है। चम्पकलता-भावाविष्ट दशामें ही ललिता प्रियाको सुदूर वृक्षावलियोंमें अकेले नृत्य करती इन्दुलेखाको सङ्केतसे दिखलाती हैं।

ओह! इन्दुलेखाको यही अनुभव होता रहता है कि उसके प्रियतम श्रीकृष्ण परदेश चले गये हैं। इन्दुलेखापर दृष्टि पड़ते ही प्रिया चम्पकलताभावसे तत्क्षण ही भावित हो जाती हैं। कैसी महाभावमयी हैं प्रिया! प्रियतम छिपकर कुञ्जछिद्रोंसे अपनी प्रियाकी प्रशस्ति बखान कर रहे हैं -

कैसी अनाविल सुन्दरी है यह इन्दुलेखा! इसके नेत्रोंमें समग्र पद्मश्री अनुरञ्जित है। पति परदेश जा चुके हैं - इस भावमें इसके नेत्रोंमें जो उत्कण्ठाभावकी सघनता प्रकाशित है, वह सघनता इसके नेत्रोंको जैसा विरागी बना दे रही है, उस वैराग्यमें मिलकर इसके नेत्रोंकी पद्मशोभा दर्शनीय हो उठी है। इसी प्रकार अतिशय शोभाशाली इसकी आनन-शोभा है। अनन्त कलङ्कहीन चन्द्रोंके समान प्रफुल्लित राकानना इन्दुलेखामें दूरदेशगामी पतिकी मिलनोत्कण्ठाका भाव एक ऐसी विषादाभा अभिव्यञ्जित करता है जिससे उसकी मुखशोभा अनन्तगुणित हो उठती है।

इन्दुलेखा एकान्तमें भावविभोर हुई नृत्य कर रही है। नृत्यके कारण इन्दुलेखाके कबरीके पुष्प अस्तव्यस्त हो चुके हैं। श्रान्तिजन्य श्वास-प्रश्वासकी गति पर्याप्त तीव्र है। वह गुनगुनाकर गायन भी कर रही है एवं गीतगायनकी भावनानुसार नृत्य भी कर रही है-

पिया तेरी विहरनिकी सुधि आवै।
कमलनयन मनमोहनि मूरति मन मँहि चित्र बनावै।।
एक बार जाहि मिलत प्रीति करि सो कैसें बिसरावै।
मुख मुसकानि बंक अवलोकनि चाल मराल लजावै।।
कबहुँक निविड़ तिमिर आलिंगत, कबहुँक पिक सुर गावै।
कबहुँक संभ्रम क्वासि क्वासि कहि संगहि उठि उठि धावै।।
कबहुँ नैन मूँदि अंतरगति मणि माला पहिरावै।
परमानँद प्रभु श्याम ध्यान करि ऐसे बिरह गमावै।।

ओह! कैसी मनोरम छटा है। एक ही समय एक ही प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्र अगणित स्थानोंमें अगणित पात्रोंके साथ उनके अपने-अपने भावानुसार लीलाविहार कर रहे हैं। कहीं ब्राह्ममुहूर्त्तमें खण्डिता भावापन्न ललितासे भर्त्सना सहन कर रहे हैं, कहीं विशाखाके सङ्ग स्वाधीनभर्तृकाभावमें सुखविभोर हैं, कहीं चित्राके सङ्ग दिवाभिसार-रसानन्दमें लहरा रहे हैं, तो कहीं इन्दुलेखाके भावानुसार उस विरहिणीको असीम उत्कण्ठित ही त्यागकर परदेस चले गये हैं। कहीं चम्पकलताके साथ शैयारचनाकर वहाँ विहार करते हैं तो कहीं विरहिणी रङ्गदेवीके भावका आस्वादन कर रहे हैं।

देखो, विशाखा सङ्केत करके प्रियाको मधुपानमें मत्त रङ्गदेवीके दर्शन कराती हैं और प्रिया तत्क्षण रङ्गदेवी बनकर उत्कण्ठिता भावकी पूर्ण प्रतिनिधि ही हो उठती है। ओह! प्रिया नयन मूँदे कपोलोंको हथेलीपर रखे कमलशैयामें विराजित हैं। प्रियाके रोम-रोममें विरहताप है कि उससे शैयामें गुम्फित पुष्प मुरझा ही नहीं जाते अपितु पूरे शुष्क हो जाते हैं। प्रियाकी श्वास-प्रश्वास इतनी उष्ण है कि कुञ्जकी हरी पत्तियाँ, भित्तियोंमें लटकी चन्दनकी मालाएँ एवं पुष्पवितान जलकर धूम देने लगते हैं। मधुमती वीणामें आलाप भर रही है -

पिया बिन चन्द लग्यौ दुख देन।
तारा गिनत-गिनत हौं हारी पलक न लागे नैन।।
कहाँ वह यमुना पुलिन मनोहर कहाँ वह सुखकी रैन।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस बिनु बिरहिनि कौं नहिं चैन।।



राजत निकुंज धाम ठकुरानी।
कुसुम सेजपर पौढ़ी प्यारी राग सुनत मृदु बानी।।
बैठी ललिता चरन पलोटत लाल दृष्टि ललचानी।
(यावक-समर्पण-सेवा-निरत श्रीरंगदेवीजी) (पृष्ठ १७०)

बाहरसे देखनेवाला कुछ भी अनुमान नहीं कर पाता कि गीतकी ध्वनि प्रियाके कानोंमें प्रवेश कर रही है कि नहीं कर रही। सेवामें रत सखियाँ यही देख रही हैं कि प्रियाके नेत्रोंसे इतना अधिक अश्रुप्रवाह हो रहा है मानो अश्रु बहानेवाले प्रियाके नेत्र नेत्र न होकर दो झरने ही हों। आश्चर्य है कि निमीलित नेत्रोंसे अश्रुजल झर अवश्य रहा है किन्तु वह कपोलोंसे प्रवाहित होता हुआ ज्योंही प्रियाके कण्ठदेशको आर्द्र करता है उनके उरोजोंसे संलग्न होता है, इसके उपरान्त वाष्प बनकर उड़ जा रहा है। वाष्पसे सम्पूर्ण कुञ्जका वातावरण ही धूमायित हो रहा है। इस धूमका प्रभाव ऐसा है कि जितनी भी सखियाँ, मञ्जरियाँ एवं दासियोंके श्वास-प्रश्वाससे यह धूम प्रवेश करता है, वे सभी विलक्षण भावदशामें डूब जाती हैं।

देखो न ! प्रियाकी विरहदशाका कुछ उपाय करने ललिताने तुङ्गविद्याको उनके पास भेजा था, परन्तु इस धूमके प्रभावक्षेत्रमें आते ही स्वयं तुङ्गविद्या ही भावविभोर हुई बाह्यज्ञानरहित दशाको प्राप्त हो उठी हैं। वे प्रियासे ही स्वयं अपने रोगका निदान पूछनेमें प्रवृत्त हो उठती हैं। ओह! उनकी विलक्षण देहदशा है। कभी तीव्र रोमाञ्च, कभी कम्प और कभी स्तम्भादि सात्विक विकार उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गको आक्रान्त कर रहे हैं।

वे गीत गाकर अपने भाव व्यक्त करना चाहती हैं परन्तु उनका स्वर विकृत हो जाता है। फिर भी जो शब्द स्फुटित होते हैं, वे शब्द निम्नलिखित हैं -

मन मृग बेध्यौ री मोहन नयन बान सौं।
गूढ़ भावकी सैन अचानक तकि तान्यौ भृकुटी कमान सौं।।
प्रथम नादबल घेर निकट लई मुरली स्वर सप्तक बँधान सौं।
पाछैं बंक चितै मृदु हँसि कै घात करी उलटी सुठान सौं।।
चतुर्भुजदास पीर यह तनकी मिटत न सखि, औषधी आन सौं।
ह्वैहै सुख तबही उर अन्तर आलिंगन प्रियतम सुजान सौं।।

और वह देखो, सुदेवी अपने प्रियतम प्राणवल्लभ नीलमयङ्कदेवसे कलह कर रही है। ओह! इस कलहमें प्रीतिरसकी, अहङ्कारशून्यताकी, सर्वस्वत्यागकी, तत्सुख-सुखिया भावकी कैसी सान्द्रता है - यह कोई प्रिया-कृपापात्र महापुरुष ही अनुभव कर पावेगा। ओह! मधुररसकी उफनती रस-कालिन्दीरूपा सुदेवीमें कलहान्तरिता भावप्रधान होनेके कारण कठोरता एवं अन्यको परास्त कर देनेका वेग तो अवश्य है, फिर भी उसमें अन्तर्निहित प्रेमजन्य परम सुकोमलता और अपनत्वकी सान्द्रता भी है। वही उसकी शोभा है। सचमुच ही सुदेवीकी तुलना ग्रीष्म ऋतुसे की जा सकती है। जैसे ग्रीष्मके जलते हुए नेत्रोंसे सभीको प्रखर ताप मिलता है, वह उसका अपरिहार्य स्वभाव है, किन्तु जहाँ प्रियतम श्रीकृष्णकी लीला-मन्दाकिनी प्रवाहित है और इस मन्दाकिनीसे स्फुटित अगणित निर्झर-प्रपातोंसे असंख्य जलकण निरन्तर उच्छलित हो रहे हैं, वहाँ उनसे सिक्त हुई वनस्थली जैसे ग्रीष्मके प्रभावके उपरान्त भी स्निग्ध एवं हरी बनी रहती है, ठीक उसी तरह सखी सुदेवीकी कलहप्रियता भी अपने प्रियतमके प्रति ऐसी अतिशय सुकोमलता एवं आत्मीयतासे भरी है कि उसकी शोभाका आस्वादन कोई प्रत्यक्षदर्शी ही कर पाता है।

देखो, कलहान्तरिता भावमें सुदेवी बनी प्रिया राधाकी कैसी भावमयी शोभा है। वे अपने श्यामसुन्दरसे कलह कर रही हैं। प्रियतमका लकुट उन्होंने छीन लिया है। उनका उत्तरीय अस्तव्यस्त हो चुका है, पीताम्बरका एक छोर प्रिया राधाके हाथमें धृत है। प्रियतम बचाव करते हुए अनुनयकी मुद्रा अपनाये हैं, फिर भी प्रियाके नेत्र रोषभरे हैं -

तुम मेरी मोतिन लर क्यों तोरी।
रहो ढोटा तुम नन्दमहरके नित्य करत बरजोरी।।
अब ही नई पहरि हौं आई, चुरियाँ तुम सब फोरी।
जब दैहों हौं लकुट बाँसुरी, बीनौ रतन करोरी।।
हम हू बड़े महरकी बेटी, तुम कारे हम गोरी।
परमानन्द मुसकावत राधा, पूरन चन्द चकोरी।।

प्रिया राधाने प्रियतम नीलमणिकी बाँसुरी एवं लकुटी छीन ली है। उनके चतुर्दिक् अनमोल मुक्ता बिखरे हैं। प्रियतम प्राणसुन्दर उन्हें बीननेकी चेष्टा कर रहे हैं, किन्तु रत्न तो अगणित हैं। अब उन्हें पहले तो रत्न बीनना है, फिर उन्हें पिरोकर रत्नमाला गूँथनी है, तभी मुरली एवं लकुट पानेकी कुछ आशा बनेगी। आज तो प्रियतम पूरे फँस गये हैं। उन्होंने मुक्ताकी मालामें हाथ डालते समय विचार ही नहीं किया था कि प्रिया आज इतना रोष कर बैठेगी।'

प्रिया-प्रियतमके मधुपान करके प्रेममें मत्त होनेकी यह एक अति संक्षिप्त झाँकी है। इसमें अष्टसखियोंके प्रधान भावोंके भी कुछ चित्र हैं। वैसे अनन्त सखियाँ हैं, उनके अनन्त विचित्र भाव हैं, सभी भावोंका उद्दाम प्रकाश प्रतिदिन प्रत्येक लीलामें प्रवाहित होता है। इस प्रकार असीम अनन्त रससमुद्र लहराता रहता है। धन्य हैं वे भाग्यवान् सन्तजन जो इस सिन्धुमें लहराते रहते हैं। यह सब वस्तुतः लेखनका विषय है ही नहीं। यह रसिकजनोंकी आन्तरिक अनुभूतिका विषय है, जिसमें वे दिनरात लहराते रहते हैं।।।७५३।।

चन्दन-कामिनी-जाल निर्मित सन्मुख थी कुञ्ज-कुटी, प्रियतम!
दोनों विभोर हो भावों से उसमें प्रविष्ट होते, प्रियतम।
उत्तर की ओर दीखता था वन एक कल्पतरु का, प्रियतम!
ज्योतिर्मय सित-नीला, उसकी गाथा कहते-सुनते, प्रियतम।।७५४।।

चन्दनकी तरुश्रेणीसे कामिनीके वृक्षोंका जाल निर्मित हो गया था। सामने ही कुञ्जोंकी कुटीर बनी हुई थी। गौर-नीलदम्पति भावविभोर होकर किसी एक कुञ्जकुटीमें प्रविष्ट हो जाते। वहाँसे ठीक उत्तरकी ओर कल्पतरुका वन सुशोभित दीखता। कल्पतरुओंकी शोभा निराली थी। पूरे वनको ज्योतिर्मय तथा उज्ज्वल नील आभासे वे उद्भासित करते रहते; दम्पति उसकी ही गाथा कहते एवं सुनते।।।७५४।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

चन्दन कामिनी-जाल निर्मित सम्मुख थी कुञ्जकुटीप्रियतम!

मधुमाधवीकुञ्जसे प्रिया-प्रियतम भगवती वृन्दाके निर्देशसे काम्यवनकी ओर चल पड़ते हैं। श्रीसुन्दरीसरोवरकी लहरोंपर बहती हुई अत्यन्त सुशीतल हुई वायु प्रिया-प्रियतमको संस्पर्श करने लगती है। इस वायुका तो नियम ही है कि वह श्रीसरोवरके कुमुद, पद्म, नीलोत्पलों एवं अन्य अनेकों पुष्पोंके किञ्जल्कको अपने अञ्चलमें भरकर उस स्थापित नीली चिन्मयी प्रतिमाके ऊपर एवं उसके चतुर्दिक् बिखेरता रहे। आज भी वह यही कर रहा है।

विलक्षण प्रदेश है यह! यहाँ किसी प्रकारके तापकी किसीको कभी भी अनुभूति नहीं होती। कैसा समाश्चर्य है कि काम्यवनकी स्वयंकी श्रीके म्लान होनेका तो प्रश्न ही नहीं, इससे जो प्रदेश सटा हुआ है उसकी श्री भी कभी म्लान नहीं होती। यहाँ सूर्यकी रश्मियोंमें किसी ऋतुमें कभी ऐसी प्रखरता नहीं आती, जिससे इस वनके

आश्र्व-पार्श्वकी धराका भी शोषण संभव हो। पोषण-ही-पोषण इस वनभूमिका अनादिकालीन स्वभाव है। यहाँ नित्य वसन्तके दिन ही रहते हैं। विलक्षण है यहाँकी भूमि जो इस माधुर्यभारको वहन करनेमें समर्थ है।

अभी मध्याह्नकाल है, फिर भी यह चमत्कार ही मानना चाहिये कि यहाँ सूर्य शुभ्र चाँदनीकी तरह जगमग ज्योत्स्ना बिखेर रहा हे। प्रिया एवं सभी सखियाँ चम्पई रङ्गकी साड़ियाँ पहने हैं। सूर्यकी किरणोंका साड़ियोंकी ज्योतिसे संयोग होनेसे एक विचित्र आभा छिटक रही है। प्रियतम प्राणवल्लभ पीत उपरैना धारण किये हैं जिसपर जरीका काम किया हुआ है। यह जरी सूर्यके प्रकाशमें छविभरी चमक रही है।

त्रिविध समीर प्रवाहित हो रहा है। पवनके झौंकोंसे चम्पा, स्थलकमल, भिन्न-भिन्न पुष्पोंके वृक्ष हिल रहे हैं। हिल-हिलकर ये अत्यन्त उतावलीपूर्वक प्रिया-प्रियतमका आह्वान कर रहे हैं। लो, प्रिया-प्रियतम सखियों सहित इन वृक्षोंके आह्वानपर इनके द्वारा आमंत्रित पथ एवं दिशा पकड़कर वनके मध्य प्रवेश कर जाते हैं।

ओह! चारों ओर चन्दन ही चन्दनके सुविशाल वृक्ष हैं। सुना है, चन्दनके वृक्षोंमें तो अहिगण लिपटे रहते हैं। ये अहिगण चन्दनवृक्षकी शीतलताका सेवनकर अपने ही विषके उग्रतापसे किञ्चित् मुक्ति पाते हैं। किन्तु यहाँ तो चन्दनके इन अतिशय शीतल एवं सुवासित तरुओंमें एक भी विषधर सरीसृप लिपटा दृष्टिगोचर नहीं होता। हाँ, परम सुभग सुपुष्पित सुन्दरी कामिनी लताएँ तो अवश्य इन चन्दनकी विशाल टहनियों और तनोंसे लिपटी हैं इन कामिनी लताओंने चन्दनवृक्षोंके विशाल तनोंके सुपुष्ट आधारको खम्भोंके रूपमें परिणत करके, अपने लताजालसे इनकी उन्नत एवं चतुर्दिक् प्रसरित टहनियोंको समावृत करके ऐसा सुन्दर कामिनीकुञ्ज निर्मित किया है कि प्रिया-प्रियतम एवं सखियाँ इसकी छायामें आकर चकित हो उठती हैं। चतुर्दिक् चन्दन वृक्षोंके सुरभित तने, उन तनोंको स्तम्भाकार रूप देकर, सुमनोहर पुष्पित लताओंको गुम्फित करके, उनका जाल , उस जालके मध्य-मध्य पारिजात, स्थलकमलके खिले पुष्प, मोगरा, बेला आदिकी गुम्फित मालाओंसे निर्मित कलाकृतियाँ, कुञ्जकी छत एवं दीवारें इतनी मनोहर बन गयी हैं एवं इस कुञ्जके भीतर इतनी अधिक सुशीतलता है कि प्रिया-प्रियतम ज्योंही इसमें प्रवेश करते हैं, उनका विश्राम करनेका मन हो आता है।

ओह! कामिनी पुष्पोंसे आच्छादित छत है, उसके मध्यमें चमेली पुष्पोंका अतिशय मनोरम फानूस लटक रहा है। इसके भी चतुर्दिक् चारों कोणोंपर एक-एक लघु फानूस है। ओह! इनकी सुन्दरता अवर्णनीय है। छत एकदम सपाट है परन्तु चारों दीवारोंपर छतके मिलनस्थलपर चमेलीके पुष्पोंकी ऐसी कारीगरी है कि चित्त लुब्ध हो उठता है। छोटी-छोटी कलियाँ स्वाभाविक ही गूँथकर मनोरम कलाकृतियाँ निर्मित कर रही हैं।

मुखद्वार भी पुष्पमय है, गवाक्षिकाओंके खुले स्थान भी पुष्पनिर्मित हैं। इन द्वाररहित गवाक्षिकाओं एवं मुख्यद्वारकी चौखटें चन्दन वृक्षोंकी टहनियोंसे स्वाभाविक ही बनी हैं। इन सबमें भृङ्गियों एवं दीमककीटोंने कुरेद-कुरेदकर ऐसी मनोरम चित्रकारी बनाई है कि प्रिया-प्रियतम रीझ उठते हैं। प्रियतम प्रसन्न होकर जब इन चित्रकारियोंकी सराहना करते हैं तो ये भृङ्गी एवं कीट अपने कीट-निवासोंसे बाहर आकर अपनी प्रशस्तिको श्रवण करते हैं और अपने अगले दो पैरोंको हाथोंके समान जोड़कर, अपनी तीखी मूँछोंको ऊँचीकर, अपने दाँत निपोरकर अपनी मुसकान व्यक्त करते हैं।

देखो, इस कामिनी लताकुञ्जके मध्यमें कितनी सुन्दर पुष्पशैया निर्मित की गयी है। बया पक्षियोंने सुपुष्पित कामिनी लताओंको गुम्फितकर अतिशय कला-कौशलसे इस पुष्पशैयाका निर्माण किया है। देखो, ये बया पक्षी अपनी काकलीमें जो कह रहे हैं उसका तनिक श्रवण तो करो -

'हे प्राणवल्लभ ! हे प्राणेश्वरी ! कितनी सुदुर्लभ है आप दोनों युगल दम्पतिकी सन्निधि ! हमारे अनन्त पुण्यार्जित तपके फलस्वरूप आज आपका आगमन इस कुञ्जमें हुआ है। आपको मात्र क्षणभर विश्राम देनेके लिये

ही हम यह परिश्रम प्रतिदिन करते रहे हैं, साथ ही आपके पथपर नयन बिछाये आपके आगमनकी प्रतिदिवस प्रतीक्षा भी करते रहे हैं। ओह! आज आपको हमारे द्वारा निर्मित इस मालती-लता-सङ्कुल शैयामें विश्राम करते देख हमें सागर -समन्वित सम्पूर्ण धराका आधिपत्य प्राप्त कर लेनेसे भी अनन्त गुना अधिक सुख मिल रहा है। बस, हम आपको अपने नेत्रोंसे सुखविहारनिरत निरखते रहें, इस सुखके सम्मुख हमारे लिये मन्वन्तरकाल पर्यन्त भोगने योग्य स्वर्गसुख तुच्छ है। न हमारा मन ब्रह्मपदमें आकृष्ट है, न ही योगसिद्धियोंकी भी हमें कोई कामना है। आप युगल दम्पतिके विहारसुखके साक्षी होनेमें जो सुख है, वह भला, मुक्तिपदमें भी कहाँ है? बस, हमें अपनी चरण-शरणमें ही अब निरवधि काल रखियेगा, यही हमारी आपसे विनीत प्रार्थना है। फिर जो भी आपकी रुचि हो, वही हमारा विधान हो।'

प्रिया-प्रियतम इन बया पक्षियों और मूक कीट-भृङ्गियोंकी भावभीनी प्रार्थना सुनकर भाव-विभोर हो उठते हैं। वे प्रियाको इस कुटीके सौन्दर्यका दर्शन कराते हुए कहते हैं - 'चन्दनकाष्ठके पीत वर्णके तनोंके रूपमें तू ही तो हे जीवनेश्वरी ! मेरे इस निवासकी आधार है।' प्रिया प्रत्युत्तरमें मुसकाती हुई कहती हैं - मुझ आधारको सर्व ओरसे आलिङ्गित किये श्यामवर्णके कामिनीजालके रूपमें तुम ही तो हे प्राणेश्वर! मुझे सज्जित किये विलसित हो रहे हो।'इस प्रकार परस्पर वार्त्तालाप करते दोनों दम्पति उत्तरकी गवाक्षिकासे बाहरके वन-सौन्दर्यको निरखने लगते हैं। प्रिया-प्रियतमको उत्तरकी गवाक्षिकासे कल्पतरु वृक्षोंका विलक्षण सुन्दर वन दृष्टिगोचर होता है। प्रिया सोचती हैं - 'ओह! यह वही तो श्रीसुन्दरीवन है जिसका परम ज्योतिर्मय अर्धभाग तो कञ्चनवर्णी पीतद्युति है एवं जिसका दूसरा शेष बचा आधा भाग नीलद्युतिसंपन्न है। मैं जब मात्र सात वर्षकी बालिका थी, तब इसी वनमें तो पुष्पचयनार्थ आयी थी। अरे! इस कामिनीकुञ्जकी गवाक्षिकासे तो वे सभी दृश्य मेरे दृष्टिपथमें आ रहे हैं, जिन्होंने मेरे जीवनका स्वरूप ही परिवर्त्तित कर दिया था एवं जिन्हें अबतक सर्वथा विस्मरणके अतल तलमें मैं डाल चुकी थी।'

'अरे! कैसा पावन वह प्रभात था जब स्वर्णपुतरी-सी सखियोंके साथ मैं प्रथम दिवस इस वनमें प्रविष्ट हुई थी। आज भी सर्वत्र मखमल-सी वही दूब है, जो प्रथम दिवस प्रवेश करते समय मुझे मिली थी। मैं तितली-सी उड़ती मेंहदीकी झाड़ीके पथसे इस वनके भीतर प्रवेश करती ही चली गयी थी। मुझे सर्वप्रथम खञ्जन पक्षीके दर्शन हुए थे एवं इसके पश्चात् तो कपोतने और तब मयूरने अपने पिच्छकी छतरी तानकर मेरा स्वागत किया था। वह शुक जो मनुष्योंकी-सी वाणी बोलता था, वह तो मेरे जीवनमें पूरा रस ही घोल गया था। वह कीर कितना विनम्र था और उसने ही तो इस वनका मुझे पथ दिखलाया था। वही तो मुझे वायुकोणवाले पथसे प्रथमवार श्रीसुन्दरीसरोवर ले गया था जिसका जल पानकर मैं उस अप्रतिम प्रतिमाके प्रथमतः दर्शन कर पायी थी।

प्रिया मन-ही-मन पुरातन स्मृतियोंमें डूबी जा रही थीं। इसी क्षण प्रियाका ध्यान प्रियतमने निम्नलिखित छन्द बोलकर अपनी ओर कर लिया -

'प्रियतमे! कथा मैं कहता हूँ, तुम सुनो एक मनसे,' प्रियतम !
'है वन अनादि, इसमें पुष्पित जो वे अशोकतरु हैं,' प्रियतम !
'उत्तरमें उनसे ही निर्मित जो वह निकुञ्जथल है,' प्रियतम !
'उसमें ही नित्य, सनातन, अज, वे दम्पति रहते हैं,' प्रियतम !

'अच्छा तो, प्राणाधिके! सुनो, दम्पतिके जीवनमें,' प्रियतम !
'कैसी थी प्रीति परस्परकी, लहरें लेती रहतीं,' प्रियतम !
'दोनों ही एक दूसरेको रहते निहारते ही,' प्रियतम !
'फिर भी अतृप्ति रहती मानो दर्शनका सुख न मिला,' प्रियतम !

उनकी पलकें खुलतीं, सुस्मित अधरोंपर भर आता, प्रियतम !
सुस्थिर वे नयन-पुतरियाँ भी चञ्चल कुछ हो जातीं, प्रियतम !
गलबाहीं दिये हुए ही वे धीरे-धीरे उठते, प्रियतम !
चलते धीरे, सुखमें धरणी जड़िमा धारण करती, प्रियतम !

प्रियतमकी वाणी सुनकर प्रिया आश्चर्यचकित हो उठी थी। इस गवाक्षिकासे श्रीसुन्दरीवनके प्रथम दर्शनसे ही उसे अचानक वे सभी घटनाएँ वर्त्तमानकी तरह स्मृत हो आयी थीं। उपरोक्त छन्द तो उससे उस हंसने कहे थे जब वह इस वनकी अधिदेवीके पास पहुँची थी एवं उसने उससे भोजन करनेका आग्रह किया था। फिर प्रियतम प्राणवल्लभ तो उस कालतक उससे मिले ही नहीं थे। तब इन्होंने ये छन्द ठीक उसी हंसकी साङ्गोपाङ्ग भाषामें उच्चारण कैसे कर लिये ? प्रिया यही विचार करती हुई प्रियतमके मुखकी ओर निहारने लगी।

प्रियतम पुनः कहने लगे –

दोनोंके प्राण एक होकर ऐसी गति धर लेते, प्रियतम !
होने लगती प्रतीति उनको, मानो मैं हूँ न अहो ! प्रियतम !
स्वीकार कालका वे करते, कहनेके लिये तभी, प्रियतम !
वह था उनका स्वरूप ही, फिर आरंभ खेल होता, प्रियतम !

सहसा प्रिया बोल उठी - 'प्राणवल्लभ! क्या तुम ही हंस बनकर उस वनमें मुझे सर्वप्रथम मिले थे ?'

'हाँ, प्राणेश्वरी! उस प्रीतिवनका मैं ही हंस हूँ और तुम ही मेरी प्राणप्रिया वह हंसिनी भी हो। प्राणवल्लभे! उस पद्मरागकी वेदीपर जो पुष्पोंके मध्य नीलमनिर्मित मूर्त्ति तुमने उस वनमें प्राचीकी ओर तमाल तरुओंके कुञ्जमें देखी थी, वह पद्मरागकी वेदी मेरे प्रति तुम्हारा महाप्रेमरागसे भरा हृदय ही था, और तुम्हारे सघन प्रेममें जड़िमाभाव-सम्पन्न हुआ मैं ही नीलम मूर्त्तिके रूपमें परिणत हुआ तुम्हें दृष्टिगोचर हो रहा था। जीवनेश्वरी! वहाँके सभी पुष्प मात्र तुम्हारा सुविकसित प्रीति-प्रफुल्लित मन ही थे।'

'प्रियतमे! जब तुम शिलापर खड़ी मुझे सुस्पष्ट देख रही थी और बुलानेका जो मीठा स्वर तुमने सुना था, वह परम मधुर स्वागत-स्वर मेरा ही था। जीवनकी जीवन! तुम जब मुझे प्रेमभरे नेत्रोंसे निहारती थीं, उस समय मैं जीवन्त, सजीव होकर तुम्हारे सम्मुख व्यक्त होनेको उत्सुक हो उठता था। परन्तु फिर सहसा ही तुम्हारे मूक भावमय, एकाङ्गी, पूर्ण समर्पणका आनन्द लेनेको मैं अपने प्राणोंको रोककर किसी प्रकार प्रतिमा बना रहनेमें ही अपना सौभाग्य समझता रहा था।'

'प्राणेश्वरी! आजतक उस परम मधुर क्षणकी स्मृति मुझे विह्वल कर देती है। उस क्षण प्रेमभरे प्राणोंकी दो सरिताएँ मिलकर एक हो गयी थीं। मधुरे! वह सुखद अनुभूति बतलाना वाणीके वशकी बात ही नहीं है।

बालामें सुनते-सुनते ही आ जाती तन्मयता, प्रियतम !
विस्मरण उसे हो जाता था अपने स्वरूपका भी, प्रियतम।
अपनेही लिये प्रश्न करने लग जाती साँवर से, प्रियतम!
साँवर भी होते भ्रमित, 'अहो ! कैसे क्या समझाऊँ ?' प्रियतम।।७५५।।

राधाकिशोरीमें कल्पतरुके वनकी गाथा सुनते-सुनते ऐसी तन्मयता आ जाती कि उन्हें अपने स्वरूपका भी विस्मरण हो जाता। अपनेको भूली हुई वे अपने ही सम्बन्धमें नीलसुन्दरसे कतिपय प्रश्न करने लग जातीं, जिन्हें सुन-सुनकर साँवर स्वयं भ्रमित हो जाते और सोचने लगते-अहो! प्रियतमाको कैसे क्या समझाऊँ मैं?।।७५५।।

तात्त्विक विवेचन–विस्तार

प्रिया अपने प्राणवल्लभकी प्रीतिवार्त्ता सुन रही थी। सुनते-सुनते ही वह इतनी अधिक तन्मय हो गयी कि उसे अपने स्वरूपका ही विस्मरण हो गया। वह बार-बार अपने प्रियतमसे अपने ही बारेमें प्रश्न करने लग गयी थी।

प्रियाकी वाणी क्या थी, मानो उसके हृदयस्थलकी प्रेमसुधामयी धारा ही उसके मुखसे फूट रही थी – 'प्रियतम! बोलो न! वे सघन लताएँ जो मुझ बालाके पथमें परस्पर जुड़कर जाल बनाकर बाधा बन गयी थीं, उन्होंने अपने ही आप एक पलमें ही अपसारित होना क्यों प्रारंभ कर दिया था? हे प्रियतम! मैं तो भावोंमें विभोर थी, मुझे किसने मुड़ जानेका आदेश दिया था?

प्रिया अपने ही सम्बन्धमें अनेकानेक प्रश्न करती जा रही थी। प्रियतम भी अपनी प्रियाकी भावभीनी पुरातन पूर्वरागभरी मुग्धा छविपर इतने अधिक मुग्ध हो उठे थे कि भ्रमित-से हुए सङ्कोचमें पड़ जाते थे कि प्रियाके प्रश्नोंका वे क्या, कैसे समझाकर उत्तर दें।। ७५५।।

ऐसे अवसर पर पुनः वही घटना घट जाती थी, प्रियतम!
जो महाभाव है, वह बनता रसराज एक पल में, प्रियतम!
होता रसराज उधर परिणत उस महाभाव-वपु में, प्रियतम!
क्या कहूँ अनिर्वचनीय कथा रसमय उस विनिमयकी, प्रियतम।।७५६।।

ऐसे अवसरोंपर पुनः वही घटना घट जाती – जो महाभाव है वह एक पलमें ही रसराज बन जाता, उधर रसराज महाभाव वपुमें अभिनिविष्ट हो जाता। प्राणरमण नीलसुन्दर! उस अनिर्वचनीय रसमय विनिमयकी गाथा क्या कहूँ, कैसे कहूँ?।।७५६।।

तात्त्विक विवेचन–विस्तार

ऐसे अवसरपर तत्क्षण ही महाभावमयी प्रिया राधा रसराज प्रियतम श्यामसुन्दर हो जाती थीं एवं प्रियतम तत्क्षण ही प्रिया हो उठते थे। दोनों प्रणयीजनोंका यह परस्पर एक दूसरेमें विनिमय इस प्रकार रसीला होता था कि उस अनिर्वचनीय रसमयी स्थितिकी बातका वाणी द्वारा कथन अथवा उसका लिखना तो असंभव ही है।।७५६।।

दिनकर की एक किरण सहसा दोनों को छू लेती, प्रियतम!
हो गयी देर है, यह उनमें संकल्प जाग उठता, प्रियतम!
अपने स्वरूप में आकर, वे हँसकर चल पड़ते थे, प्रियतम!
सन्मुख कासार पुनः आता, प्रियतमानामधारी, प्रियतम।।७५७।।

सहसा दिनकरकी एक किरण लता-वल्लरियोंके छिद्रसे झाँककर उन्हें छू लेती। फिर तो तत्क्षण उनमें संकल्प जग उठता-'अहो! बड़ी देर हो गयी।' साथ ही अपने स्वरूपमें वे पुनः लौट आते और हँसते हुए चल पड़ते। सामने ही राधाकिशोरीके नामसें विभूषित कासार पुनः दीखने लगता-मानो वह दम्पतिको निमंत्रित कर रहा हो।।।७५७।।

तात्त्विक विवेचन–विस्तार

दिनकरकी एक किरण सहसा दोनोंको छू लेती, प्रियतम!

इसी रसमयी स्थितिमें चन्दनकामिनीकुञ्जमें प्रिया-प्रियतमको सहसा कालबोध हो जाता है। वे देखते हैं कि सूर्य मध्यावकाशसे पश्चिम गगनमें अवतरण करने लगा है। यद्यपि सूर्य है प्रिया-प्रियतमकी स्वरूपाशक्तिकी परिणति ही,

अतः सूर्यदेवने यह जो पश्चिम गगनकी ओर अवतरण किया है, यह भी उनकी चेष्टा है – प्रिया-प्रियतमकी लीलाको, उनके रमणानन्दको मधुरातिमधुर बनानेके लिये ही। भगवान् सूर्यदेव स्वयंको भी तो अनुभव होने लगता है कि अब विलम्ब हो रहा है। बस, तत्क्षण ही प्रिया-प्रियतम अपने स्वरूपमें आकर चन्दनकामिनीलताकुञ्जसे पुनः राधाकुण्डकी ओर प्रस्थान कर बैठते हैं।

ओह! आश्चर्य है! श्रीसुन्दरीसरोवरसे राधाकुण्डकी दूरी बहुत अधिक है, किन्तु प्रिया-प्रियतमकी इच्छाका अनुसरण करते हुए तत्क्षण ही भूमि इतनी सङ्कुचित हो उठती है कि उन्हें सम्मुख ही राधाकुण्ड– सरोवर दृष्टि–गोचर होने लग जाता है। यह भूमि-सङ्कोचन इस प्रकार अति स्वाभाविक रीतिसे होता है कि न तो भूमिको ही इसका कुछ सङ्केत, अनुभव हो पाता है, और न ही प्रिया-प्रियतमको भी इस परिवर्तनमें कुछ चमत्कारिकता अनुभव होती है।

किन्तु एक बात अवश्य घटित होती है। क्योंकि प्रिया-प्रियतमकी प्रत्येक लीलास्थली नित्य है, विभु है, चिन्मय है, लीलाक्रमके अनुसार अभी-अभी जो असमोर्ध्व वैभव, सौन्दर्य, शोभा चन्दनकामिनीलताकुञ्जमें व्यक्त हुई थी, वह शोभा प्रिया-प्रियतमके वहाँसे पीठ देते ही तिरोहित होती जाती है और राधाकुण्डसरोवरमें जहाँ आगे लीलाका प्रकाश होने जा रहा है, वहाँ वही शोभा पहलेसे अनन्तगुनी अधिक होकर अभिव्यक्त हो उठती है। **'प्रतिक्षण वर्धमानम्'** स्वभाववाली यह शोभा नित्यनूतन तो प्रतीत होती ही है, साथ ही प्रतिक्षण अभिवर्धित होती हुई भी अनुभव होती है। शोभाका एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जाकर प्रकट होना, प्राकृत द्रव्य एवं भावोंके संयोग-वियोग–जैसा नहीं है, सर्वथा अचिन्त्य है। फिर भी इसे समझनेके लिये प्राकृत उपादानोंका सहारा तो लेना ही पड़ता है।

चन्दनकामिनीलताकुञ्जसे प्रस्थान करते ही वहाँकी समग्र श्री अपने आश्रयस्थल प्रिया-प्रियतमके नेत्रोंमें इसी रीतिसे समाहित हो जाती है, जैसे अनन्त रविकिरणें सूर्यदेवके अस्ताचलगामी होते ही सूर्यपिण्डमें समा जाती हैं। वस्तुतः वृन्दाकाननकी सम्पूर्ण श्री प्रिया-प्रियतमको आह्लाद देनेके लिये ही व्यक्त होती है। क्योंकि सौन्दर्य नेत्रेन्द्रियोंका विषय है, इसीलिये यह सम्पूर्ण सौन्दर्य अपने आश्रय प्रिया-प्रियतमकी नेत्रेन्द्रियोंसे ही व्यक्त भी होता है और प्रिया-प्रियतमको सुख देनेके हेतुंकी उपलब्धिकर पुनः उन्हींमें समाहित भी हो जाता है। इसी रीतिसे राधाकुण्डसरोवरका दृश्य समुपस्थित होते ही चन्दनकामिनीकुञ्जकी शोभाश्री, वहाँका अपरिसीम सम्पूर्ण वैभव भी राधाकुण्डको सज्जितकर यहाँ अभिव्यक्त हो जाता है।

वस्तुतः इन तत्वोंका, रहस्योंका विश्लेषण तो वही करता है, जो इन पंक्तियोंके लेखकके समान अभागा तटस्थ होकर ही लीलासुखका चिन्तन करता है। पू. श्रीराधाबाबाकी तरह जो सदा-सदाके लिये लीलामें निमग्न हो गया, वह न तो कुछ भी बोल पाता है, न इंगित ही कर पाता है। जो पूरे-का पूरा डूबा है, पूरा सामञ्जस्य तो उसीको होता है। प्रिया–प्रियतमकी लीला उसे भीतर–बाहरसे अत्यन्त परिशुद्धकर प्रिया–प्रियतमके नखचन्द्रोंकी ज्योतिसे एकमेक कर देती है।

सम्मुख कासार पुनः आता, प्रियतमा नामधारी, प्रियतम!

ओह! देखो न! राधाकुण्ड नामक सरोवरके रूपमें प्रिया-प्रियतम राधा-माधवके स्वरूपानन्दसे परम चिन्मय रसकी कैसी स्रोतस्विनी प्रकट हुई है। जगत्के आत्माराम योगीन्द्र-मुनीन्द्रगण भी उसके एक कणसे सिक्त होनेके लिये लालायित हो उठें - ऐसा विलक्षण इसका सौन्दर्य-माधुर्य है। इस प्रियाकुण्डके तटपर स्थान-स्थानपर 'यत्परो नास्ति' सुन्दर अगणित विहार-मन्दिर हैं। इन विहारमन्दिरोंमें इनकी सेवाके अनुरूप इनके नाम अङ्कित हैं। जैसे एक परम सुन्दर कुञ्जमें नृत्यमन्दिर नाम अङ्कित है तो दूसरे एक परम सुन्दर कुञ्जमें शयनविश्राममन्दिर। किसीमें द्यूतकेलिमन्दिर तो किसीमें शृङ्गारमन्दिर नाम अङ्कित हैं। किसीमें कन्दुकक्रीड़ामन्दिर तो किसीमें जलकेलिमन्दिर नाम अङ्कित हैं।

इन सभी मन्दिरोंमें इनकी सेवाके अनुरूप ही ऋतुएँ हाथ बाँधे खड़ी रहती हैं। शयनमन्दिरमें जहाँ शिशिर ऋतुका नित्य निवास रहता है, तो पुष्पशृङ्गारमन्दिरमें वसन्तका। नृत्यमन्दिरमें जहाँ शरदका स्थायी आवास है तो जलकेलिमन्दिरमें निदाध अपने अनुचरों सहित सेवार्थ सदैव हाथ बाँधे समुपस्थित रहता है। हिन्दोलमन्दिरमें जहाँ वर्षाऋतु नित्य समुपस्थित रहती है तो द्यूतक्रीड़ामन्दिर एवं मधुपानमन्दिरमें हेमन्त।

लो, देखो, काननने अपने कोशकी अपरिसीम सम्पदा प्रिया-प्रियतमके चरणसरोजोंमें समर्पित कर दी है। उसने इतना ही नहीं किया, वह स्वयं भी अपने अधिकृत समस्त चर-अचरको साथ लिये युगल चरणोंमें समर्पित हो गया है। रसमत्त भ्रमरोंने अपनी मधुर गुञ्जारमें 'क्लीं' मन्त्रकी असंख्य आवृत्तियाँकर वेणुवादनके चमत्कारी प्रभावकी सिद्धिको करतलगत करनेकी ठान ली है। राधाकुण्डका निराविल स्वच्छ, शीतल, सुमिष्ट जल प्रियतमको जलकेलिके लिये आकर्षित करने लगता है।। ७५७।।

उसमें अवगाहनकी इच्छा जगती, निदाघ आता, प्रियतम!
दम्पतिकी रुचिकी ही ऋतुएँ अनुसरण वहाँ करतीं, प्रियतम!
पलभर ही पहले जल-थलमें ऋतु जो भी क्यों न रहे, प्रियतम!
तत्क्षण विलीन हो नव सुषमा ले काल नया आता, प्रियतम॥७५८॥

किशोरीमें, नीलसुन्दरमें उसीमें अवगाहन करनेकी इच्छा सहसा जाग उठती। उस ओर निदाघ ऋतुका स्पष्ट अनुभव होने लगता। वृन्दाकाननमें सम्पूर्ण ऋतुएँ दम्पतिकी रुचिका अनुसरण करती रहती हैं। पलभर पहले जलमें, थलमें, कोई भी ऋतु क्यों न हो, वह तत्क्षण विलीन हो ही जाती और नव सुषमासे विभूषित होकर नया काल सबको तदनुरूप क्रीड़ाकी प्रेरणा देने लगता।।।७५८।।

बाला छूती जलको, साँवर तत्काल उछल पड़ते, प्रियतम!
फिर उसे अङ्कमें लेकर वे संतरण-खेल करते, प्रियतम!
कमलोंसे विरचित कन्दुककी क्रीड़ा भी नव होती, प्रियतम!
दम्पति-तनका निरुपम सौरभ झर-झरकर सर भरता, प्रियतम॥७५९॥

किशोरी जलका स्पर्श करने लगतीं। फिर क्या था, नीलसुन्दर तत्क्षण जलमें उछल पड़ते और प्रियतमाको अङ्कमें लिये संतरणकी क्रीड़ा आरम्भ करते। कमलपुष्पोंसे विरचित कन्दुककी भी एक नई अद्भुत क्रीड़ा होती। सम्पूर्ण सरोवर दम्पतिके तनका निरुपम सौरभ अपनेमें लेकर उसे जलपर सर्वत्र बिखेर देता। गौर-नील अङ्गोंका सौरभ सरोवरके कण कणमें परिपूर्ण हो जाता।।।७५९।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

बाला छूती जलको, साँवर तत्काल उछल पडते, प्रियतम!

लो, प्रियतम जलकेलि करनेके लिये प्रिया एवं सखियोके सहित जलकेलिमन्दिरके चमचम करते रत्नजटित स्वर्णिम घाटपर आजाते है। प्रिया षश्चिमकी ओर मुखकर मन्द-मन्द मुसका रही है। उनके सामने राधाकुण्डका अगाध नीला-नीला जल लहरा रहा है। उन्हें कुण्डके सुदूर उस पार गिरिराज पर्वतके दर्शन हो रहे हैं जो रत्नखचित स्वर्णिम उपत्यकाओंका मुकुट, सघन हरेभरे सुविकसित वनोंका सुनील उपरैना, स्वर्णिम शिलाओंके रूपमें पीताम्बर धारण किये है। प्रिया इस दर्शनसे पूर्णतया भावोद्दीपित हो रही है।

प्रियाके निकट ही खड़े प्रियतम नीलसुन्दर भी पूर्व दिशामें प्रसरित वन एवं निकुञ्जोंकी शोभा निरख रहे हैं। वे यदा-कदा प्रियाके भावोल्लसित रक्तिम मुखारविन्दपर भी दृष्टि डाल देते हैं। प्रिया भी कनखियोंसे अपने प्रियतमको ताक रही है एवं जब प्रिया-प्रियतम दोनोंकी दृष्टि एक दूसरेसे टकरा जाती है तो प्रिया लजा जाती है।

प्रियतमका सङ्केत पाकर रूपमञ्जरी प्रियासे शृङ्गार उतारनेकी प्रार्थना करती है, ताकि जलमें स्नानकेलि प्रारंभ हो। प्रिया रूपमञ्जरीसे कहती है कि पहले प्रियतम नीलसुन्दरका शृङ्गार अपसारित किया जाय, वह अपना शृङ्गार उनके पश्चात् ही उतारेंगी। जब रूपमञ्जरी प्रियतमसे मुकुट उतारनेकी बात कहती है तो वे कहते हैं- 'हटो, मैं मुकुटके सहित ही स्नान करूँगा।'

ललिता चाहती है कि प्रियतमका मुकुट पीछेसे उतारकर कहीं गहरे जलमें छिपा दिया जाय, अतः वह पीछेसे धीरे-धीरे जलमेंसे चलकर श्रीकृष्णके निकट आनेकी चेष्टा करती है। प्रिया ललिताकी चेष्टाको ताड़कर नेत्रोंसे ही प्रियतमको सावधान कर देती है।

श्रीराधारानीके सङ्केतको भलीभाँति समझकर भी प्रियतम श्यामसुन्दर इतने भोले बने रहते हैं एवं घाटमें इतने असावधान खड़े रहते हैं जिससे पीछेसे आकर ललिता उनका मुकुट उतार ले। किन्तु जैसे ही ललिता उनके निकट आती है, वे अकस्मात् पीछे मुड़कर ललिताका चूड़ा उसके मस्तकसे छीनकर जलमें कूद पड़ते हैं। ललिता उनके पीछे ही जलमें कूद पड़ती है एवं कमरतक जलमें खड़े प्रियतमसे अपना चूड़ा लेनेको जूझ पड़ती है। प्रियतम कभी ललितका चूड़ा जलमें डुबो देते हैं, कभी उसे निकालकर हाथमें ऊँचा कर देते हैं। ओह! जलमें डूबने-निकलनेसे प्रियतमके मुकुटसे, उनकी अलकावलिसे,ललिताकी चिकुरराशिसे जलकी बूँदें चू-चूकर दोनोंके मुखारविन्दोंपर टपकती हुई ऐसी शोभायुक्त लगती हैं कि देखते ही बनता है। प्रिया श्रीराधा कुछ क्षणोंतक तो दोनोंकी कलह देखती हुई मन्द-मन्द मुसकाती रहती हैं, फिर स्वयं भी जलमें उतर पड़ती हैं।

प्रियतम नीलमणि उदरतक जलमें उत्तरकी ओर मुख किये खड़े हैं एवं ललिता उनके सामने दक्षिणकी ओर मुख किये किञ्चित् कम गहरे जलमें खड़ी है। प्रिया मन्द-मन्द मुसकाती हुई घाटकी सीढी उतरती हुई ललिताके बायीं ओर खड़ी हो जाती हैं। वे ललिताके कन्धेको पकड़कर कहती हैं -'क्यों कलह करती हो ? लो, मैं निर्णय कर देती हूँ।' प्रियतम नीलसुन्दरसे प्रिया ललिताका चूड़ा ले लेती हैं।

प्रियतम नीलसुन्दरसे प्रिया कहती हैं -'मैंने रूपमञ्जरीको कहा था, पहले प्रियतमको निराभरण करो, तब मैं अपने आभूषण उतारूँगी। जब मैं भी सभी आभरण पहने हूँ, और तुम भी मुकुट, वंशी, कण्ठहार आदि सभी आभूषण पहने हो, तो तुम्हारा ललिताका चूड़ा उतारना उचित नहीं था। तुमने उसका चूड़ा छीनकर दण्ड पानेका कार्य किया है। अब पहले तो तुम अपने हाथोंसे ललिताको चूड़ा पहनाओ, दूसरे, अपनी वंशी भी ललिताको दण्डस्वरूपमें दो। आज दिनभर वंशी उसके पास ही रहेगी।'

प्रियाका निर्णय सुनकर प्रियतम एक बार तो उसका पालन करनेमें झिझकते हैं किन्तु फिर अपनेको गुणमञ्जरी, रूपमञ्जरी, विशाखा, अनङ्गमञ्जरी, लवङ्गमञ्जरी एवं अशोकमञ्जरी आदि अनेक सखियोंसे घिरा देखकर प्रियाका आदेश पालन करनेमें ही अपना भला समझते हैं। वे सोचते हैं कि जलकेलिके पश्चात् किसी उपायसे वे ललितासे वंशी वापस ले लेंगे। अभी तो उन्हें वंशीवादन करना है नहीं। वे प्रियाकी आज्ञाका पालन करते हुए ललिताके मस्तकपर चूड़ा पहना देते हैं और वंशीसे उसका चिबुक संस्पर्श करते हुए 'लो, महारानी!' कहते हुए उसे वंशी भी सादर समर्पित कर देते हैं। ललिता वंशीको लेकर लवङ्गमञ्जरीको दे देती है। वह उसे अपनी कटिकी फेंटमें कसकर बाँध लेती है।

अब श्रीकृष्ण दोनों हाथोंमें प्रियाकुण्डका निर्मल जल लेकर मंत्र मढते हैं - 'वर्त्तमाने **स्नानयज्ञसफलीकरण हेतु हे देवि ललिते! अहं त्वां प्रार्थयामि पूजयामि च**।' यों कहकर वे यह जल ललिताके मस्तकपर उलीच देते

हैं। ललिता बदलेमें उनके मुखपर ज्योंही जल उलीचनेको उद्यत होती है, उसी क्षण एक हंस एवं हंसिनी प्रियतम एवं ललिताके मध्य नभसे उतर पड़ते हैं। ललिता द्वारा उलीचा जल हंसके ऊपर गिर जाता है। हंसिनी अपना मस्तक प्रिया राधाके सम्मुख इस प्रकार जलमें डुबोती है, मानो वह उनके चरणोंमें प्रणाम कर रही हो। हंसिनीकी ठीक अनुकृति करता हंस भी प्रियतम नीलसुन्दरके समीप सरोवरके जलमें इस प्रकार अपनी लम्बी ग्रीवा एवं मस्तक डुबोता है, मानो वह प्रियतमके चरणोंमें प्रणाम कर रहा हो।

प्रिया-प्रियतम मन्द मुसकाते हंस-हंसिनीका अभिवादन स्वीकार कर ही रहे होते हैं कि इतनेमें पीछेसे ललिता प्रिया राधाको इस प्रकार धक्का देती है कि वह प्रियतम नीलमणिपर गिर पड़े और प्रियतम भी प्रियाके वेगको न सम्हाल पानेसे जलमें निपतित हो जावें। किन्तु ललिताका मनोरथ अधूरा ही रह जाता है। प्रियतम प्राणरमण सावधानीपूर्वक प्रियाको तो दक्षिण हाथसे सम्हालते ही हैं, साथ ही प्रियाको धकेलकर पलायन करती ललिताकी वेणी भी इस प्रकार बायें हाथसे कठोरतासे पकड़ते हैं कि वह एक कदम भी भाग नहीं पाती। ललिता हँसने लगती है, प्रिया-प्रियतम एवं सभी सखियाँ हँसने लगती हैं।

ललिता अनुनय करके किसी प्रकार अपनी वेणी छुड़ाती है, फिर आँखें तरेरकर प्रिया, प्रियतम एवं सभी सखियोंसे कहती है - 'तुम सभी मिलकर मेरा उपहास करती हो, कर लो, मैं भी अकेली सबको देख लूँगी। अन्ततः जलकेलि तो मेरी योजनानुसार ही होगी।'

प्रिया ललिताके निकट जाकर अनुनय मुद्रामें उसे मनाती हुई कहती है - 'मैंने तो तेरे पक्षमें निर्णय देकर वंशी तुझे दिला दी थी, फिर तूने मुझे जलमें धकेला क्यों?' ललिता हँसने लगती है।

ललिताकी योजनानुसार प्रियतम पश्चिमकी ओर मुख करके खड़े हो जाते हैं। ललिता प्रियाको ठीक पूर्वकी ओर प्रियतमके सम्मुख खड़ी कर देती है। फिर हँसती हुई वह प्रियाके दोनों हाथ प्रियतमको पकड़ा देती है। पहले अष्ट सखियाँ गोलाकार रूपमें अष्टदलकमल बनाती उनको चारों ओर घेरकर खड़ी होती हैं। फिर चौबीस मञ्जरियाँ उन्हें घेरकर चतुर्विंश कमलदलोंके रूपमें खड़ी होती हैं, इसके पश्चात् चौसठ सखियाँ उन्हें घेरकर खड़ी हो जाती हैं।

जो हंस एवं हंसिनी नभसे अवतरणकर प्रिया-प्रियतमको प्रणाम कर चुकी थीं, उनमें हंसिनी मधुमतीमञ्जरीके पार्श्वमें तथा हंस विमलामञ्जरीके पार्श्वमें स्थिर रूपसे स्थित हो जाते हैं। मधुमती हंसिनीकी पीठपर वीणा रखकर केदारा रागमें एक धुन बजाना प्रारंभ करती है। विमला हंसकी पीठपर मृदङ्ग रखकर उसपर ठीक तालक्रमसे थाप देती है।

प्रिया-प्रियतम एवं सभी सखियाँ सरोवरके जलके भीतर खड़े रहकर ही पैरोंसे तालके अनुसार नृत्य कर रहे हैं, बाहर हाथों एवं मुखकी मुद्राओंसे नृत्यके भावोंका सबको दर्शन हो रहा है। सखियाँ भावमुद्रा प्रदर्शित करती हुई उछलकर एक दूसरेके स्थानोंपर स्थित होती हैं, इस प्रकार मंडलाकार रूपमें वे प्रिया-प्रियतमकी परिक्रमा कर रही हैं। आश्चर्य है कि जैसे ही ललिता नृत्यमुद्रामें विशाखाके स्थानपर उछलती है, वह ललिता रहती ही नहीं, तत्क्षण ही विशाखा हो जाती है। इसी प्रकार विशाखा उच्छलनकर जैसे ही चित्राके नियत स्थानपर पहुँचती है, वह चित्रा हो जाती है। इसी प्रकार चित्रा इन्दुलेखामें, इन्दुलेखा चम्पकलतामें, चम्पकलता रङ्गदेवीमें, रङ्गदेवी तुङ्गविद्यामें, तुङ्गविद्या सुदेवीमें एवं सुदेवी ललितामें पर्यवसित होती रहती हैं। परस्पर हाथ थामे प्रिया-प्रियतम भी क्षण-क्षणमें अपना रूप परिवर्त्तन कर लेते हैं - प्रिया प्रियतमके रूपमें एवं प्रियतम प्रियाके रूपमें। इसी प्रकार मञ्जरियाँ एवं चौसठ सखियाँ भी परस्पर एक दूसरेका रूप धारण कर ले रही हैं। यह नृत्य बहुत कालतक चलता रहता है।

अब नृत्यकी दूसरी प्रक्रिया प्रारंभ होती है। नृत्य करते-करते हठात् जितनी सखियाँ होती हैं, उतने ही श्रीकृष्ण बन जाते हैं। प्रत्येक सखी यह अनुभव करने लगती है, मानो श्रीकृष्ण मेरी बगलमें ही मेरा हाथ थामे नृत्य कर रहे हैं।

मधुमती अपनी वीणाकी झङ्कारकी लय शनैः शनैः बढाती चली जाती है। मृदङ्ग भी उसी प्रकार तेज लयमें बजले लगती है। हावभाव एवं भिन्न-भिन्न भावमुद्राओं सहित नृत्य करती एक-एक सखी एक क्षण तो यह अनुभव करती है कि वह प्रियतमके सङ्ग नृत्य कर रही है, दूसरे ही क्षण वह अपनेको प्रियतम नीलसुन्दरके रूपमें एवं नीलसुन्दरको अपने रूपमें देखने लगती है। प्रियतम नीलमणि एवं सखियों, मञ्जरियोंमें यह रूपपरिवर्त्तन इतना सहज एवं स्वाभाविक रूपमें होता है कि वे स्वयं भी इससे अपरिचित रहते हैं। उन्हें तो यही अनुभव होता है कि नृत्य करते-करते ही प्रियतमने भ्रमरी की है, और मेरे स्थानपर वे आ गये हैं और मैं उनके स्थानपर आ गयी हूँ।

ललिताके सङ्केतसे विमला शनैः शनैः मृदङ्गकी लय तीव्रसे मन्द-मन्द करती जाती है। उसी क्रमसे मधुमतीको भी अपनी वीणाकी लय घटानी पड़ती है। वीणाकी झङ्कारके साथ नृत्य भी शनैः शनैः विरमित होता हुआ, एक अद्भुत मुद्रामें स्थगित हो जाता है। नृत्य आरंभ करते समय जहाँ प्रिया-प्रियतम पूर्व-पश्चिम मुख किये थे, अब नृत्य-विरामके समय वे उत्तर-दक्षिणकी ओर मुख किये होते हैं।

प्रिया देखती हैं कि कुण्डके उत्तरी घाटमें हंसके आकारकी तीन-चार विशाल नौकाएँ एक पंक्तिमें खड़ी हैं एवं ललिता हंसिनीकी तरह कुलाचें भरती तैरकर नावकी ओर बढ रही है। वह नावपर पहुँचकर तैरनेकी प्रतिस्पर्धाकी घोषणा करती हुई कहती है कि जो भी हंसाकृति नावोंमें सर्वप्रथम आरूढ होकर उन्हें संस्पर्श करेगा पुरस्कार रूपमें उसे प्रियतमकी वंशी प्रदान कर दी जायगी, दिवस पर्यंत वंशीपर उसीका पूर्ण स्वामित्व रहेगा।

ललिताकी उपरोक्त उक्ति सुनते ही चतुरशिरोमणि प्रियतम श्रीकृष्ण तत्क्षण ही तेज गतिसे तैरकर नावोंकी ओर चल पड़ते हैं। प्रिया राधा उनका पीताम्बर ग्रहणकर तुरन्त ही उनकी गति अवरुद्ध कर लेती है। प्रिया अपने प्राणवल्लभको आश्वस्त करती हुई कहती है – 'एकाकी नहीं, मैं भी तुम्हारे साथ-साथ चलूँगी। विश्वास करो, यदि कोई सखी स्पर्धामें आगे होकर वंशी जीत भी लेगी, तो मैं उससे लेकर तुम्हारी वंशी तुम्हें वापस दिला दूँगी।'

प्रियतम नीलसुन्दर प्रियाको साथ लेकर भी तेजीसे तैर रहे हैं। इधर नृत्य करनेवाली सभी सखियाँ, मञ्जरियाँ एवं वे युगल हंस-हंसिनी भी जो मृदङ्ग एवं वीणाके आधार बन गये थे, तेजीसे तैरकर ललिताकी नौकाकी ओर स्पर्धामें विजयकी लालसा लिये चल पड़ते हैं।

सरोवरका नील जल इतना स्वच्छ है कि वह किन्हीं सखियोंकी श्यामल, किन्हींकी कुन्दलवर्णी एवं किन्हींकी पीत देहद्युतिसे निर्गत विलक्षण प्रकाशरश्मियोंसे चमचमा रहा है। प्रियाको साथ लेनेके कारण एवं प्रिया द्वारा थोड़ेसे श्रमसे ही थककर बार-बार विश्राम लेनेका आग्रह करनेके कारण प्रियतम बहुत चेष्टा करनेपर भी स्पर्धामें आगे नहीं हो पाते। वे प्रियाके साथ सरोवरके मध्यमें ही अद्भुत रत्नमय शिलाखण्डपर आसीन होकर तैरती सखियों एवं सरोवरकी शोभा निहारने लगते हैं।

ओह! मणिक्य एव नीलमके रत्नमय इस शिलाखण्डके चतुर्दिक् लाल, नीले, पीले, श्वेत - चारों वर्णके शतदल कमल विकसित है। उनके चतुर्दिक् विशाल आकारके हरे-हरे पुरैन पत्र जलमें प्रसरित हैं। इन पत्रोंपर लहरोंसे आई जलकी बूँदें विशाल मुक्ताओंकी तरह चमकने लगती हैं। कुछ पत्रोंपर असंख्य छोटे-मोटे ओसविन्दु हैं। वे ऐसे मनोरम लगते हैं मानो इनपर असंख्य हीरककण विजड़ित हों। प्रिया इन पुरैन पत्रोंपर अपने चरणोंसे महीन जलराशि उछालती हैं एवं प्रियतम इन पत्रोंको हिलाकर इनपर संचित जलराशिको पुनः सरोवरमें मग्न कर देते हैं।

सखियाँ कभी पीठके बलपर, कभी हाथोंसे पानी काटती हुईं, कभी पूरी जलके भीतर-ही-भीतर मछलीकी तरह तैर रही हैं। प्रिया ऊँचे शिलाखण्डपर खड़ी होकर कभी विशाखाको, कभी चित्राको, एवं कभी इन्दुलेखाको ललिताकी नौकाका शीघ्र संस्पर्श करनेके लिये उत्साहित करती हैं।

देखो, देखो, पानीको चीरती हुई विशाखा सबसे आगे निकल गयी है। इन्दुलेखा एवं चित्राने बहुत ही तीव्र गतिसे उसे पकड़नेकी चेष्टा की है, किन्तु विशाखाकी संतरणकलाकी तीव्र गतिको वे नहीं पा सकी हैं। ललिताकी नावमें चार कड़ियाँ इस तरफ एवं चार कड़ियाँ उस तरफ लगी हैं। इन कड़ियोंमें स्वर्णकी जञ्जीरें लगी हैं। विशाखा प्रथम कड़ीको पकड़कर प्रथम विजेता घोषित होती है। द्वितीय विजेता इन्दुलेखाको घोषित किया जाता है। तृतीय विजेता चित्रा होती है। फिर क्रमशः रूपमञ्जरी, मधुमतीमञ्जरी, श्यामलामञ्जरी, विमलामञ्जरी एवं गुणमञ्जरी नावकी आठ कड़ियोंको पकड़ पाती हैं। इसी प्रकार चारों हंसाकृति नौकाओंमें लगी बत्तीस कड़ियोंको बत्तीस सखियाँ क्रमशः विजयिनी होकर पकड़ पाती हैं। शेष सखियाँ इनको स्वयंको पकड़कर कमरतक जलमें खड़ी हो जाती हैं। अब चारों नौकाएँ प्रिया-प्रियतम जहाँ आसीन हैं उस शिलाखण्डके समीप आनेके लिये चल पड़ती हैं।

सभी सखियाँ नावोंकी कड़ीमें लगी जंजीरोंको पकड़े तैरती हुई प्रिया-प्रियतमके समीप पहुँच जाती हैं। ललिता अपने वचनानुसार प्रियतमकी वेणु विशाखाको सौंप देती है। प्रियतम श्यामसुन्दर वंशी दिलानेके लिये याचनाभरी मुद्रामें प्रियाकी ओर देखते हैं। प्रिया प्रियतमको धैर्य रखनेका सङ्केत करती है।

कमलोंसे विकसित कन्दुककी क्रीड़ा भी नव होती, प्रियतम!

अब ललिता अपनी नावको प्रिया-प्रियंतम जिस शिलाखण्डपर आसीन हैं उसके पश्चिम एवं उत्तरके कोनेमें खड़ी कर देती है, शेष तीनों नावें भी तीनों दिशाओंके तीनों कोनोंमें खड़ी हो जाती हैं। अब ललिताके सङ्केतसे चारों हंसाकृति नौकाओंसे उनपर सवार होकर उन्हें खेनेवाली सखियाँ फूलोंकी गेंदोंसे भरी टोकरियाँ उतार-उतारकर सरोवरके जलमें तैरा देती हैं। ये टोकरियाँ हलकी बेंतसे निर्मित हैं, अतः डूबती नहीं हैं। इनमें रङ्ग-बिरङ्गी अतिशय सुरभित पुष्पोंकी मालाओंसे गूँथी देंगें भरी हैं। वेत्रकाष्ठकी लचीली पतली डंडियोंसे बुनी इन टोकरियोंपर पुरैन पत्र चतुर्दिक् लपेट दिये गये हैं, अतः इनमें जलका प्रवेश नहीं हो पाता। चारों दिशाओंमें स्थित नावोंसे रङ्ग-बिरंगे पुष्पोंकी गेंदोंसे लदीं ये सैकड़ों टोकरियाँ प्रिया-प्रियतमके चतुर्दिक् तैरने लगती हैं। प्रिया-प्रियतम जिस शिलाखण्डपर आसीन हैं, उसके चतुर्दिक् असंख्य कमलपुष्पोंका विकास तो पहलेसे ही हो रहा है, अब इन पुष्पोंसे लदी टोकरियोंसे इस कमलवनके घिर जानेसे इस स्थलकी शोभा अनन्तगुनी हो उठी है। अब नावोंको छोड़कर सभी सखियाँ तैरती हुई प्रिया-प्रियतमके शिलाखण्डको चारों दिशाओंसे घेर लेती हैं। प्रिया ललिताकी अभिसन्धिको भाँप लेती है, वह विशाखाको जोरसे पुकारकर कहती है - 'अरी विशाखा! ओ चित्रा! ओ इन्दुलेखा! सुनो, तुम अपने यूथकी सभी सखियोंको लेकर प्रियतम श्यामसुन्दरकी ओर हो जाओ। ललिता इन्हें पुष्पकन्दुककी क्रीड़ामें पराजित करना चाहती है। अकेले प्रियतम भला कन्दुकयुद्धमें इतनी सखियोंसे एक साथ कैसे विजयी होंगे? इन्हें एकाकी घेर लेना तो ललिताका अन्याय है।'

प्रियाके आदेशको सुनते ही विशाखा, चित्रा, एवं इन्दुलेखा तत्क्षण ही अपने यूथकी सखियोंको लेकर ललिताकी घेरेबन्दीको छिन्नभिन्नकर प्रियतमके सहायतार्थ उनकी ओर बढ चलती है। कुछ क्षण पश्चात् चम्पकलता अपने मनसे ही प्रियतमकी ओर आ जाती है। अब समान संख्याके दो यूथ हो जाते हैं। सभी सखियाँ प्रियाको निर्णायिकाके पदपर आसीन कर देते हैं। प्रियाके द्वारा अपनी नील ओढनीको फहराकर कन्दुकक्रीड़ाके प्रारंभ करनेका आदेश होते ही सखियाँ तैर-तैरकर कन्दुकोंसे भरी टोकरियोंसे कन्दुक हाथोंमें ले-लेकर एक दूसरेपर प्रहार करने लगती हैं। जलमें संतरण करनेके कारण पर्याप्त दूरीतक कन्दुक नहीं फेंक पानेके कारण कुछ कन्दुक सरोवरमें ही गिर जाती हैं। अगणित कन्दुकोंके सरोवरमें निपतित होनेसे सरोवरकी शोभा ऐसी रङ्ग-बिरङ्गी हो रही है, एवं इन कन्दुकोंपर भ्रमरदलोंकी झङ्कार इतनी सुमधुर ध्वनिमें हो रही है कि चित्त मादक मधुरतामें डूब-डूब जाता है।

अब सखियाँ एक दूसरेके अङ्गोंपर वार करनेके लिये निकट-निकट होती जा रही हैं। प्रियतमने पहली कन्दुकका प्रहार ललिताकी चूड़ापर किया है। प्रियतम द्वारा फेंकी पुष्पकन्दुक ललिताकी चूड़ापर इतनी सटीक प्रहार करती है कि सिरपर बँधी चूड़ा जलमें गिर जाती है। दूसरी एवं तीसरी कन्दुकका वार प्रियतम द्वारा ललिताके दोनों उरोजोंपर होता है। ललिता प्रियतमसे अपनेको बचानेके लिये मुख फेरकर पीठ दे देती है किन्तु पीठ देते ही ललिताके पृष्ठदेशपर प्रियतम इस प्रकार कन्दुकवर्षा करते हैं कि ललिताको सखियोंकी कतारके पीछे होना पड़ता है। इसी समय प्रिया जोरसे बोल पड़ती है कि 'ललिता पराजित हो गयी। विशाखा! अब तू वंशी प्रियतमको लौटा दे।' उसी समय सखियाँ एवं ललिता कुछ निकट होकर प्रियतमपर इतनी तीव्र गतिसे कन्दुक फैंकती हैं कि उन्हें भी प्रियाके पीछे छिपना पड़ता है।

शनैः शनैः पुष्पकन्दुकोंसे भरी सभी टोकरियाँ रिक्त हो जाती हैं एवं सरोवरके जलमें तैरती कन्दुकें भी सखियों द्वारा संचितकर परस्पर एक दूसरेकी ओर फेंक दी जाती हैं। कन्दुकोंके अभाववश विशाखा केलिक्रीड़ामें अपनी विजय उद्घोषित कर देती है। यद्यपि ललिता प्रतिवाद करती है किन्तु फिर भी प्रिया प्रियतमको विजयी घोषितकर विशाखासे उन्हें वेणु दिला देती है।

दम्पति-तनका निरुपम सौरभ झर-झरकर सर भरता, प्रियतम!

ओह! इस जलकेलिमें प्रिया-प्रियतम दोनोंके अङ्गोंसे चू-चूकर जो स्वेद-सौरभ प्रवाहित होता है उस सौरभको पाकर सरोवर अतिशय प्रफुल्लित हो उठता है। उसमें शोभाकी, आनन्दकी ऐसी तरंगें उठती हैं कि अपनी सीमाओंको तोड़ती उसकी लहरें दूर-दूरतकके वनक्षेत्रको प्रिया-प्रियतमकी अङ्ग-सौरभसे आप्यायित कर देती हैं। ये लहरें रत्नमय गिरिराजके चरणोंको पखार-पखारकर जब पुनः परावर्त्तित होती हैं तब अतिशय प्रेमसौरभसे सुरभित वन निहाल हो उठता है।

पुष्पकन्दुकक्रीड़ाके फलस्वरूप प्रिया-प्रियतम एवं सखियोंकी समग्र केशराशि एवं उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग पुष्पोंकी पंखुड़ियोंसे अलंकृत हो उठते हैं। श्रमके कारण निर्गत स्वेदकणोंमें ये पुष्पपंखुड़ियाँ चिपक गयी हैं। अतः सभीका मन प्रिया-प्रियतमको सरोवरमें स्नान करानेका हो उठता है।

जब भीग-भीग दृग बालाके अत्यन्त अरुण होते, प्रियतम!
पावन जल केलि निराविल वह सुखमयी तभी थमती, प्रियतम!
दोनोंके भीगे कुन्तल को, गोरे-नीले तन को, प्रियतम!
जो पोंछ वस्त्र पहनाती हैं, इतिहास गूढ़ उनका, प्रियतम॥७६०॥

जब भीगते-भीगते राधाकिशोरीके दृग अत्यधिक अरुण हो जाते तब कहीं उस पवित्र निराविल अत्यन्त सुखमयी जलकेलिको दम्पति विराम देते। उस समय किशोरीके नीलसुन्दरके आर्द्र कुन्तलोंको, उनके गौर-नील तनको बार-बार मृदुकरसे पोंछ-पोंछकर जब सहचरियाँ उन्हें वस्त्र धारण करातीं, अहा! उस समयका यह दृश्य, उस दृश्यका गूढ़ इतिहास कैसा अप्रतिम है - कौन बतावे? ....॥७६०॥

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

जब भीग-भीग दृग बालाके अत्यन्त अरुण होते, प्रियतम!

प्रिया-प्रियतमको घेरकर सभी सखियाँ गोलाकार रूपमें स्नानके लिये सरोवरमें अवतरण करती हैं। प्रिया-प्रियतम मध्यमें हैं एवं सखियाँ गोलाकार रूपमें इन्हें घेरे हैं।

सर्वप्रथम प्रिया श्रीराधारानी प्रियतम श्रीकृष्णके हाथको पकड़कर सरोवरके निर्मल जलमें डुबकी लगाती हैं। प्रियाकी वेणीबन्धनमुक्त केशराशि जलमें पुरैन पत्रोंकी तरह फैलकर संतरण करने लगती है। प्रियतमको यह फैली कृष्ण कुन्तलराशि इतनी मनोरम लगती है कि वे इसे एकटक निरखने लगते हैं। कुछ क्षणतक जलमें डूबी रहकर मुसकाती प्रिया जलके ऊपर आ जाती है। प्रियाके जलसे ऊपर आनेपर पुरैन पत्रके समान फैली सघन दीर्घ केशराशि प्रियाके मुखको, नेत्रोंको, कानोंको, नासिकाको, पृष्ठदेशको, ग्रीवाको, आगेके कण्ठ एवं वक्षदेशतकको पूरा आच्छादित कर लेती है। इस कृष्ण केशराशिसे आच्छादित हो उठनेके पश्चात् इसके मध्यसे छिटकती प्रियाके आननचन्द्रकी ज्यात्स्ना ऐसी मनोहर प्रतीत होती है कि प्रियतमकी मुग्ध होती छविको एकटक निरख रहे हैं। प्रियतम किञ्चित् काल तो इस छिटकती ज्योत्स्नाकी शोभामें डूबे रहते हैं, तत्पश्चात् अपनी प्रियाकी सर्वत्र फैली केशराशिको घूँघटकी तरह अपनी प्रियाके मुखसे अपसारित करते हैं। वे शनैः शनैः प्रियाकी मुग्ध चन्द्रमुखी छविको निहारते हुए अत्यन्त प्रेमपूर्वक उसकी केशराशिको उसके मस्तकके ऊपर चूड़ाकी तरह बाँध देते हैं।

अब प्रियतमकी बारी आती है। ज्योंही वे डुबकी लगाते हैं, उनकी अलकावलि भी सरोवरके जलमें तैरने लगती है। परन्तु प्रिया तो एक क्षणके करोड़वें अंशके कालमें भी अपने प्रियतमका अदर्शन सह नहीं पावेंगी। लीलामहाशक्ति इसीलिये ऐसी व्यवस्था करती है कि जलके ऊपर तो प्रियतम प्राणसुन्दरकी अलकावलि पुरैन पत्रके समान मनोहर कृष्ण चित्र निर्माण करे, किन्तु साथ ही संरोवरके निर्मल जलमें डूबा प्रियतम नीलमणिका श्याम मुखचन्द्र भी प्रियाको सुष्ठु प्रकारसे दर्शनीय होता रहे। ओह! अपने प्रियतमकी जलमें डूबी परम सुन्दर ज्योत्स्ना छिटकाती नीलमयङ्क छवि देखकर प्रियाको रोमाञ्च हो आता है। उसके रोम-रोम ऊर्ध्व हो उठते हैं। अब प्रियतम जलके बाहर आते हैं और वे अपनी केशराशि इस प्रकार झटककर हिलाते हैं कि चतुर्दिक् जलकी बूँदें बिखर जाती हैं। वे बूँदें प्रियाके मुखकमलपर बड़ी-बड़ी विलक्षण मुक्ताओंकी तरह विज़ड़ित हो जाती हैं।

विलक्षण आश्चर्य है कि तत्क्षण ही प्रिया-प्रियतमको घेरे खड़ी प्रत्येक सखीको यही अनुभव होने लगता है कि प्रियतम नीलमणि तो उसकी बगलमें ही खड़े हो गये हैं एवं अत्यन्त प्रेमसे उससे प्रश्न कर रहे हैं - 'सखि! तू भी जलमें मेरी प्रियाके समान डुबकी लगा तो! मैं तेरी केशराशिको भी पुरैन पत्रकी तरह फैली देखनेको लालायित हूँ।' बस, सखी प्रियतमका हस्तकमल धारणकर ठीक प्रियाकी तरह ही डुबकी लगाती हैं और उसकी केशराशि भी पुरैनपत्रकी तरह ही चतुर्दिक् फैल जाती है। उस केशराशिको देख-देखकर प्रियतम प्रेमविभोर हर्षित हो उठते हैं। ओह! सरोवरमें असंख्य सखियोंकी केशराशि इसी प्रकार फैल रही है और असंख्य प्रियतम उस शोभाको सखियोंका हस्तकमल धारणकर निहार रहे हैं। तब सखियोंका हाथ थामे अगणित संख्यामें प्रियतम डुबकी लगाते हैं और अगणित ही सखियाँ उनकी अलकावलि और डूबी मुखछविको निरख-निरखकर सुख-समुद्रमें डुबकी लगाती हैं।

इस प्रकार बार-बार डुबकी लगाकर अपनी केशराशिकी शोभा प्रियतम प्राणसुन्दरको दिखा-दिखाकर नहाती प्रियाके नेत्र अत्यन्त अरुण हो उठते हैं। प्रियाको तो अपने प्रियतमके सुखमें अपनी देहदशाका भान भी नहीं है। रूपमञ्जरी ज्योंही प्रियाके नेत्रोंकी बढती अरुणाई परिलक्षित करती है, वह तत्क्षण ही ललिताको सङ्केतकर यह जलक्रीड़ा स्थगित कराती है। प्रिया-प्रियतम एवं सभी सखियाँ जलसे बाहर आकर नीलम एवं माणिकके शिलाखण्डपर भिन्न-भिन्न स्थानोंपर खड़ी हो जाती हैं।

यों पोंछ वस्त्र पहनाती हैं, इतिहास गूढ उनका, प्रियतम!

ओह! ललिताके निर्देश करते ही नावें जो चारों दिशाओंमें कोणोंमें खड़ी हैं, उस नीलम एवं माणिकके द्वीपवत् विस्तृत शिलाखण्डपर आकर लग जाती हैं। उसमेंसे अनेकों सखियाँ शुभ्र सुकोमल श्वेत मलमलके वस्त्र लेकर उतर पड़ती हैं। वे प्रिया-प्रियतमके आर्द्र अङ्गोंको इन वस्त्रोंसे लपेटकर उनके गीले वस्त्र उतार देती हैं। सभी अन्य सखियाँ

भी यही अनुभव करती हैं कि नौकाओंसे उतरी परिचारिकाओंने उनको एवं प्रियतम श्यामसुन्दर दोनोंको शुभ्र वस्त्रोंसे लपेटकर उनके सभी गीले वस्त्र उतरवा लिये हैं। जलसे चूती उनकी कुन्तलराशि भी स्वच्छ शुभ्र मलमलके सुकोमल वस्त्रोंसे लपेटकर शुष्क की जा रही है। केशोंको सुखानेके लिये बार-बार सूखे मलमलके वस्त्र लपेटे जाते हैं एवं गीले उतार दिये जाते हैं। सब पुरातन आर्द्र वस्त्रोंको सखियाँ नौकाओंमें ले जाती हैं एवं प्रिया-प्रियतमके लिये पहननेके लिये नवीन वस्त्र एवं अलङ्कार लेकर उस शिलाखण्डमें आ जाती हैं।

सखियाँ प्रियाकी किञ्चित् गीली लम्बी केशराशिको अगुरु, चन्दनचूर्ण, कस्तूरी, केसर एवं विविध अतिशय सुगन्धित काष्ठौषधियोंके धूममें सुखाती हैं। प्रिया-प्रियतमको तब नवीन वस्त्र धारण करा दिये जाते हैं।।७६०।।

आते अब बकुल-कुञ्ज में वे चलकर मन्थर गतिसे, प्रियतम!
शृङ्गार धरानेका उनमें रसमय झगड़ा होता, प्रियतम!
यह कभी अनादिकालसे ही अब तक निर्णय न हुआ, प्रियतम!
भूषित कर सका, सखी पहले सचमुच वह कौन किसे, प्रियतम॥७६१॥

तदनन्तर मन्द-मन्थर गतिसे चलकर वे बकुलकुञ्जमें पधारते। परस्पर शृंगार धारण कराते समय एक रसमयी बतकही छिड़जाती। सच तो यह है कि अनादिकालसे अबतक यह निर्णय नहीं हो सका –किसको किसने पहले विभूषित करनेमें सफलता प्राप्त की? इसका निर्णय कौन बतावे?............।।७६१।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

बकुलकुञ्जकी लीला

देखो, देखो, बकुलनिकुंजमें दक्षिणकी ओर मुख किये नीलमयङ्कदेव कदम्बवृक्षके नीचे उसके रत्नमय आलवालपर पीठ टिकाये पीतझिण्टी पुष्पोंकी ढेरीको ही आसन बनाये विराजित हैं। प्रियतम नीलसुन्दरके ऊपर सघन पुष्पित कदम्बवृक्ष छाया किये हैं। कदम्बवृक्षपर जो कदम्बपुष्प लदे महक रहे हैं, उनके कारण भ्रमरोंके यूथ चतुर्दिक् मँडरा रहे हैं। उनकी गुञ्जार प्रिया-प्रियतम दोनोंको ही बहुत उद्दीपित कर रही है। रत्नमय कदम्बके आलवालके आठ-आठ हाथतक पक्की रत्नमयी भूमि है। इसके पश्चात् गोलाकार रूपमें दूर-दूरतक विकसित पुष्पराशि-ही-पुष्पराशि दृष्टिगोचर हो रही है। सभी पुष्प अप्राकृत और असीम सुमनोहर हैं, प्राकृत नामधारी बेला, मोगरा आदि पुष्पोंसे उनकी आकृति, गन्ध, सुकोमलता आदिसे तुलना हो ही नहीं सकती। अतः उनको प्राकृत नाम देना उनके साथ एक प्रकारसे अन्याय ही है। फिर भी ध्यानके लिये इतना कहा जा सकता है कि कदम्बको घेरे हुए प्रथम पुष्पोंकी पंक्ति बेलेके समान है, उसके पश्चात् मोगरा, और तब तीसरी पंक्ति सघन जूहीकी है। इसके पश्चात् मल्लिका पुष्पोंकी कतारें दूरतक फैली हैं। आगे दूरतक विस्तृत भूखण्डपर अत्यन्त सुगन्धित पुष्पोंकी छोटी-छोटी झाड़ियाँ हैं। एक ओर स्थलकमलोंकी दूर-दूर तक फैली पंक्तियाँ हैं जो गिरि-पर्वतकी उपत्यकाओंतक फैली हैं। सभी पुष्पोंकी सम्मिलित सौरभके ऐसे झौंके आ रहे हैं कि प्रिया-प्रियतम दोनों ही बारबार नयन मूँदकर इस सौरभमें डूब जाते हैं।

जिस रत्नमय आलीवालपर पीठ टिकाये प्रिया-प्रियतम आसीन हैं, उसकी ऊँचाई लगभग डेढ हाथ है। प्रिया-प्रियतमके आगे बहुतसी कदलीपत्रोंसे निर्मित छबड़ीपात्र हैं, जिनमें भिन्न-भिन्न गंध एवं वर्णके पुष्प पूर्ण हैं। दोनों ही प्रिया-प्रियतम इन छबड़ियोंके फूलोंको वृन्तोंसे गूँथ-गूँथकर पुष्पमाला बना रहे हैं। वे वर्ण-वर्णके एवं भिन्न-भिन्न गंधके पुष्पोंसे मालाओंमें नये-नये कलात्मक चित्र बनाते हैं, एक दूसरेकी माला निहारते हैं, तथा एक दूसरेके कौशलपर रीझ-रीझकर स्पर्धामें परस्पर उत्तमोत्तम माला निर्माण करनेमें जुटे हैं। बेले एवं चमेलीकी क्यारियोंमें कुछ सखियाँ

पुष्पचयन कर रही हैं। फूलोंसे लदी छोटी-छोटी झाड़ियोंमें रङ्ग-बिरंगे वस्त्रोंमें लिपटी उनकी देह बहुत ही मनोरम लगती है। वे कभी परस्पर अतिशय मधुर वाणीमें वार्त्ता करती हैं, अपने बड़े-बड़े नेत्रोंसे परस्पर कटाक्षमाला फेंकती मन्द मुसकाती हैं। कभी-कभी कुछ क्षणोंके लिये वे प्रिया-प्रियतमको अतिशय स्नेहदृष्टिसे निहारती हैं और तब पुनः पुष्पचयनमें लग जाती हैं। उन्होंने अपने अञ्चलोंको ही पुष्पचयनके पात्र बना लिये हैं। जब ये अञ्चल पुष्पोंसे पूर्ण हो जाते हैं तो इन फूलोंको प्रिया-प्रियतमके सम्मुख रखे कदलीपत्रोंमें ढेर कर देती हैं।

यद्यपि अत्यन्त शीतल मन्द सुगन्धित पवन प्रवाहित हो रहा है, फिर भी विलासमञ्जरी खसके बने बड़े व्यजनसे प्रिया-प्रियतमपर हवा कर रही है। विमलामञ्जरी उत्तरकी ओर एक चँवर लिये उसे प्रिया-प्रियतमपर डुला रही है। प्रिया-प्रियतम दोनों ही पुष्पाभरण बनाते-बनाते ऐसे मधुर मुसका उठते हैं कि सखियाँ उनकी मुसकानपर न्यौछावर हो उठती हैं। प्रिया कनखियोंसे प्रियतमके मुखको छिप-छिपकर निरखती हैं एवं प्रियतम भी छिपकर तिरछी चितवनसे प्रियाके भोले मुखको निहारने लगते हैं। इसी चेष्टामें दोनोंके नयन परस्पर मिल जाते हैं तो प्रिया लज्जित होकर कभी ललिता एवं कभी विशाखाका नाम लेकर पुकार बैठती हैं।

प्रिया-प्रियतम दोनों ही पुष्पमालाओंकी दीर्घता बार-बार निरखते हैं और जब उन्हें दीर्घता समुचित समझमें आ जाती है तो वे मालाके दोनों छोर जोड़ देते हैं। इस नाप-जोखमें दोनों प्रिया-प्रियतमके हाथोंका, अँगुलियोंका परस्पर संस्पर्श हो उठता है। इस संस्पर्श मात्रसे दोनोंमें इतना प्रेमोद्दीपन होता है कि दोनोंके मुखारविन्द प्रस्वेदकणोंसे आच्छादित हो जाते हैं। ललिता अपनी सखीका मुख स्वच्छ प्रक्षालन वस्त्रसे पौंछती है। प्रियतम प्राणसुन्दरकी ग्रीवासे लेकर कटिपर्यंत दीर्घताका मालाके द्वारा माप करते समय पुनः प्रियामें एवं प्रियाकी कटितक लम्बाई मापते समय प्रियतमके रोम-रोम एवं अङ्गोंमें इतना तीव्र कम्पोदय होता है कि ललिता-विशाखादि सखियोंके द्वारा इन दोनोंको सँभालना ही कठिन हो जाता है। बहुरङ्गी विविध कलाकृतियोंसे युक्त पर्याप्त लम्बाईकी मालाओंके निर्मित हो जानेपर प्रियतम प्रियाको पहनाई जानेवाली मालामें नीचे लटकनेवाला गुच्छ निर्माण करते हैं और प्रिया प्रियतमको पहनाई जानेवाली मालाका गुच्छ निर्माण करती है। पुष्प पिरोनेकी कलात्मकता इसीमें है कि पुष्पको सूचीमुखी (सूई) से विद्ध कदापि नहीं किया जाय। प्रियाको वृन्दावनके सभी सुमन अपने प्राणवल्लभ नीलमणिका ही निराविल सुरभित मन अनुभव होते हैं एवं प्रियतमको इस वृन्दाकाननकुञ्जका पत्र-पत्र, यहाँकी कली-कली प्रियारूप ही दृष्टिगोचर होती है। फिर वे इन्हें माला अथवा पुष्पाभरणके निर्माणके लिये सूचीमुखसे विद्धकरके सूत्रमें भला, कैसे पिरोवें। अतः सभी आभरण एवं मालाओंका निर्माण भले ही वह सखियोंके द्वारा हुआ हो अथवा स्वयं प्रिया-प्रियतमके द्वारा, उनमें सूचीमुख किंवा सूत्रका प्रयोग सर्वथा वर्जित है। पुष्पोंको अपने स्वयंके प्राकृत वृन्तोंसे ही गूँथकर सभी मालाएँ निर्मित होती हैं।

सर्वत्र भाँति-भाँतिके उत्कृष्ट गन्धवाले पुष्पोंके इतस्ततः बिखरे होनेके कारण अतिशय मनोरम गन्ध उत्पन्न हो रही है, फिर कदम्ब वृक्षके पुष्पोंकी सर्वाकर्षक महक उस पुष्पगन्धमें मिलकर उसे और भी अधिक मनोरम बना रही है। इधर सात्विक प्रेमविकारोंके उदय होनेसे प्रिया-प्रियतमके अङ्गोसे भी जो स्वेदप्रवाह हो रहा है, उससे उत्पन्न उनकी सर्वापरि मनोरम अङ्ग-गंध तो समग्र वातावरणको ही अलौकिक मादक प्रीति-प्रवाहमें डुबो रही है। इस प्रेमगन्धसे आकर्षित हुआ भ्रमरोंका दल चतुर्दिक् मँडराता है, किन्तु वृन्दादेवी द्वारा वर्जित किये जानेके कारण यह अलियूथ प्रिया-प्रियतमके अधिक समीप नहीं आता। किञ्चित् दूरीसे ही गन्ध ग्रहण करता हुआ परावर्त्तित हो जाता है।

देखो, देखो! प्रियतम नीलमयङ्कदेव पूर्व दिशाकी ओर मुख करके खड़े हो गये हैं। प्रिया भी पश्चिमकी ओर मुख किये प्रियतम नीलसुन्दरके सम्मुख ही खड़ी हैं। दोनोंके ही हाथोंमें परम सुरभित, सर्वोत्कृष्ट कलापूर्ण, गुम्फित किये हुए पुष्पहार हैं। नीचे भूमिपर डलियाओंमें अनेक पुष्पाभरण निर्मितकर सजाकर रखे हुए हैं। प्रियतम नीलसुन्दरने अपने बायें हाथसे प्रियाका दक्षिण हाथ पकड़ रखा है। प्रियाके दक्षिण हाथमें परम सुरभित वनमाला भूमिसे किञ्चित्

ऊपर लटक रही है। प्रियाने भी प्रियतमके दक्षिण हाथको जिसमें वे स्वनिर्मित पुष्पहार लिये हैं अपने बायें हाथसे पकड़ रखा है। प्रिया-प्रियतम दोनों ही अपने-अपने दाहिने हाथको जिसमें वे गुम्फित वनमालाएँ पकड़े हैं, एक दूसरेसे छुड़ानेकी अति रसमयी चेष्टा कर रहे हैं। दोनों ही परस्पर कलह-सी करते एक दूसरेको ऐसी रसमयी मुद्रामें निहार रहे हैं कि आसपास खड़ी सखियाँ प्रीतिमुग्ध हो जा रही हैं।

प्रियतमका कथन है कि 'प्रतिदिवस तेरे आग्रहको मानकर मैं तेरे द्वारा प्रथमतया अपना शृङ्गार करा लेता हूँ एवं तेरे द्वारा सज्जित होकर तब तुझे स्वयं सजाता हूँ, किन्तु आज प्रथमतः मैं तेरा पुष्पशृङ्गार करूँगा। आज तेरा त्रियाहठ मैं सर्वथा नहीं मानूँगा।' प्रिया अपने प्रियतमके आग्रहको मन-ही-मन माननेको तत्पर हैं किन्तु उन्हें सखियोंके सम्मुख प्रियतम द्वारा शृङ्गार करानेमें लज्जाका अनुभव हो रहा है। इसीलिये वे 'नहीं' कहकर स्वयं उनका शृङ्गार करनेका हठ कर रही हैं।

प्रिया-प्रियतम दोनों एक दूसरेका हाथ पकड़े कलह करें, भला सखियाँ कैसे सहन करें ? अतः वे सभी मिलकर ललिताको मध्यस्थता करनेके लिये उनके पास भेजती हैं। ललिता अतिशय प्रेमपूर्वक प्रियाका बायाँ कंधा झकझोरकर प्यारसे झिड़की देते हुए उनसे कहती हैं - 'अरी! कोई युवती कभी अपने प्रियतमसे इस प्रकार कलह करती है ? कैसी मूढा है तू! चल, मैं निर्णय कर देती हूँ। पर मेरे निर्णयपर तुम दोनों फिर मीन-मेख मत निकालना।'

प्रिया स्वीकृतिमें मस्तक हिला देती है। ललिता पुनः जिज्ञासा करती है -'पहले यह बता, तू मेरे निर्णयको स्वीकार कर लेगी, न ? प्रिया अस्वीकृतिमें सिर हिलाकर कहती है -'ऐसे कैसे अभीसे तेरे निर्णयको स्वीकृति प्रदान कर दूँ? तू पहले मुझे अपने निर्णयकी रूपरेखा तो बता, फिर मैं हाँ या ना करूँ।' प्रियतम नीलसुन्दर दोनों सखियोंकी वार्त्ताके मध्यमें ही बोल उठते हैं - 'मैं तो ललितापर पूरा विश्वास करता हूँ, अतः जो भी निर्णय ललिता देगी, मुझे स्वीकार है।'

प्रियतमके इस कथनपर सभी सखियाँ चकित हो उठती हैं कि आज प्रियतम बिना आनाकानीके ललिताके प्रति इतने विश्वासी कैसे हो रहे हैं। अब तो सभी सखियाँ स्वाभाविक ही राधारानीपर अपना दबाव डालने लगती हैं कि तू भी ललिताका निर्णय स्वीकार कर ले। प्रिया कुछ हिचकती है, किन्तु अन्ततः स्वीकार कर लेती है एवं कह देती है कि ललिताका निर्णय उसे भी मान्य है।

ललिता एक डलियासे श्वेत वर्णके दो स्थलकमल हाथमें चयन कर लेती है एवं उनमें एकको पंखुड़ियोंमें 'राधा' एवं एकको पंखुड़ियोंमें 'कृष्ण'नाम कस्तूरीसे अङ्कित कर देती है। फिर दोनों पुष्पोंको अपनी अञ्जलिमें सम्पुटित करके कहती है कि तुम दोनों नेत्र मूँदलो। ललिताके कथनानुसार दोनों ही नेत्र निमीलित करके परस्पर आस-पास आसीन हो जाते हैं। निमीलितनेत्र आर्श्व-पार्श्वमें विराजित दोनों युगलके आननोंसे उस समय ऐसी प्रेमजन्य सौम्यता, शोभा एवं मुग्धता प्रकट होती है कि सखियाँ तृण तोड़ने लगती हैं। ललिताके रोम-रोममें प्रीतिकी ऐसी धारा फूट पड़ती है कि वह स्वेदसे नख-शिख लथपथ हो जाती है। ललिता किसी प्रकार अपनी हथेलीमें सम्पुटित पुष्पोंको दोनोंके सम्मुख रखकर कह पाती है - 'नेत्र उन्मीलित करो।'

प्रिया अपने कर्णावलम्बी कजरारे कमलके समान नेत्र उन्मीलित कर देती है, प्रियतम भी नेत्र उन्मीलित करते हैं किन्तु मुसकाकर मन्द स्वरमें कह बैठते हैं - 'चाहे नेत्र निमीलित कराओ चाहे उन्मीलित जो मेरे नैनोंमें पुतरीकी तरह वास करती है वह तो भीतर-बाहर भरी दिखती ही है।' इतना कहकर प्रियतम पुनः नेत्र मूँद लेते हैं। प्रियतमको आँख मूँदे देखकर ललिता पुनः कहती है -'हे ध्यानी महात्मन्! नेत्र उन्मीलित करो।'

प्रिया-प्रियतम दोनों नेत्र उन्मीलित कर देते हैं। प्रियाके सम्मुख ललिता दोनों पुष्पोंको रख देती है एवं कहती है कि इनमेंसे एक पुष्प वह उठा ले। प्रिया कुछ काल तो विचार करती है, पश्चात् एक पुष्प चयन कर लेती है। संयोग

ऐसा ही होता है कि उन्हें पुष्पपर प्रियतम नीलसुन्दरका ही नाम कस्तूरीसे अङ्कित दृष्टिगोचर हो जाता है। प्रियाके पुष्प चयन करते ही जो शेष दूसरा पुष्प प्रियतमके भागमें आता है, उसपर राधा नाम अङ्कित मिलता है। प्रियतम यह देखते ही आनन्दमें नृत्य करते हुए हाथमें ली हुई पुष्पमाला प्रियाके गलेमें डाल देते हैं। उन्हें चतुर्दिक् घेरे सखियाँ भी आनन्दमें ताली बजा उठती हैं।

अब प्रियतम द्वारा अपनी प्रियाका शृङ्गार प्रारंभ होता है। भाँति-भाँतिके पुष्पाभरण जो पूर्वतः ही प्रियतम द्वारा निर्माण किये हुए डलियाओंमें रखे हैं उनसे वे प्रियाको सजाते हैं।

देखो, अहा! कैसी सुन्दर पुष्पोंके ही द्वारा निर्मित यह प्रियाकी चन्द्रिका रखी हुई है। प्रियतम सर्वप्रथम प्रियाकी पूर्वतया धारणकी हुई रत्नमणिमुक्ताजटित चन्द्रिका प्रियाके मस्तकसे उतारते हैं और तब अपनी प्रियाके भालपर स्वहस्तकौशल द्वारा निर्माण की हुई पुष्पचन्द्रिका बाँधते हैं। प्रेमावेशवश प्रियतमका हाथ काँपने लगता है। वे बहुत चेष्टा करनेपर भी काँपते हाथोंसे मस्तकपर केशोंकी लटोंसे उस चन्द्रिकाको गूँथकर स्थिर नहीं रख पाते। चन्द्रिका मस्तकपर ठहरती नहीं, ढुलक जाती है। प्रिया मुसकाती हुई चन्द्रिकाको अपने हाथोंसे पकड़ लेती है एवं यथास्थान मस्तकपर स्थिर करके पुनः प्रियतमको उसे लटोंमें कसकर गूँथनेका आग्रह करती है।

प्रियतम अपनेको किञ्चित् सँभालते हुए पुनः उसे बाँधनेकी चेष्टा करते हैं, किन्तु प्रियाकी सुकोमल अलकावलिका संस्पर्श होते ही उन्हें मुग्धताजन्य मूर्च्छा घेरने लगती है। वे किसी प्रकार अपनेको सँभालते हुए कहते हैं - 'प्रिये! मैं क्या करूँ, तू सिर हिला देती है, अतः मुझसे यह बन्धन असंभव है।' प्रियतमके कम्पविकारग्रस्त हाथोंको देखकर प्रिया राधा स्वयं अपनी अलकलटोंमें चन्द्रिका गूँथने लगती हैं। प्रियतम सम्मुख रखी आरसी (दर्पण) को उठाकर प्रियाके मुखके सामने करते हैं। प्रियतमको इतना तीव्र कम्पविकार हो रहा है कि उनके हाथमें धारणकी हुई आरसी भी काँपने लगती है। प्रिया चाहती है कि वह आरसीमें अपनी मुखछवि देखकर यथास्थान यथारूप चन्द्रिकाको लटोंसे बन्धन दे, किन्तु प्रियतमके काँपते हाथ उस आरसीको भी इस प्रकार कम्पित कर दे रहे हैं कि प्रियाको अपनी छबि हिलती आरसीमें स्पष्ट दृष्टिगोचर हो नहीं पाती। अन्ततः वे अपने प्रियतमकी ओर मुसकाकर विशाखाको पुकारती हैं।

विशाखा प्रियाकी चन्द्रिकाको यथास्थान मस्तकपर वेणीलटोंसे गूँथ देती है एवं प्रियतमके कम्पित हाथोंसे आरसी लेकर प्रियाको चन्द्रिकाकी शोभा दर्शन कराना चाहती है। प्रियाको विशाखा द्वारा ग्रहीत आरसीमें अपनी छबि तो दिखती नहीं, अपने प्रियतम नीलसुन्दरका मुसकाता खिला मुख दृष्टिगोचर होता है। प्रिया झुँझलाकर विशाखाको झिड़ककर कहती है -'अरी मूढा! तू बार-बार अपने द्वारा निर्मित उनके मुखका ही चित्र मेरे सम्मुख किस उद्देश्यसे प्रदर्शित कर रही है, आरसीमें मुझे अपनी आननछवि तो देखने दे। यह सत्य है कि तू उत्कृष्ट चित्रकला जानती है, किन्तु अभी तो मुझे मेरी चन्द्रिका देखनी है न ?' ललिता प्रियाकी इस भावमयी स्थितिको समझ जाती है। वह रङ्गदेवी द्वारा रचित प्रियाका पुष्पचन्द्रिका धारण किया चित्र तुरन्त ही लाती है और प्रियाको दिखा देती है। किन्तु उस चित्रमें चन्द्रिकाकी शोभा निरखते प्रियतमकी छवि भी है। प्रिया उस चित्रको देखकर यही समझ बैठती है कि आरसीमें मेरा आनन एवं मस्तककी चन्द्रिकाके साथ ही मेरे पृष्ठदेशमें प्रियतम भी प्रतिबिम्बित हो रहे हैं। प्रिया इस चित्रको आरसीमें अपनी अङ्कित छवि मानकर इतनी प्रेमाविष्ट होती है कि मूर्च्छित होकर वहीं प्रियतम प्राणवल्लभकी गोदमें ढुलक जाती है। प्रियतम नीलसुन्दर उन्हें अपनी गोदमें लिटाकर अपने बायें हाथसे पार्श्वमें खड़ी विलासमञ्जरीसे खसका पंखा लेकर स्वयं व्यजन करने लगते हैं।

प्रियतम अपने दाहिने हाथसे प्रियाके शरीरको शनैः शनैः सहलाने लगते हैं। कुछ कालमें प्रियाकी मूर्च्छा क्रमशः शिथिल होती है। जब वे अपनेको अपने प्रियतमकी क्रोडमें लेटी पाती हैं तो सखियोंको चतुर्दिक् चिन्तित देख तुरन्त ही समझ जाती हैं कि प्रेमाधिक्यवश वे मूर्च्छित हो गयीं थीं। उन्हें मूर्च्छासे चेतन हुई देखकर प्रियतम श्यामसुन्दर

मुसकाने लगते हैं। वे पुनः अत्यन्त मधुर स्वरमें प्रियाके कानमें कहते हैं - 'अभी तो वनमाला एवं चन्द्रिकाका ही शृङ्गार हुआ है। सभी अङ्गोंका शृङ्गार पूरा करना तो अभी शेष ही है।' प्रिया लज्जावनत निम्नमुख कर लेती है।

सखियाँ प्रियाको पुष्पखचित चौकीपर आसीन कर देती हैं। यह शृङ्गारचौकी विशुद्ध सत्वस्वरूपा मलयचन्दनकाष्ठसे निर्मित है एवं सुकोमलतम पुष्पोंकी ही इसपर बिछावट है। चौकीके इतस्ततः भी रङ्ग-बिरंगे सुरभित पुष्प बिखरे हैं। ओह! आश्चर्य है, पुष्पोंमें सुकोमलता गुण तो सर्वप्रकट होता है, परन्तु यहाँ इस निकुञ्जवनके पुष्प तो प्रकाशमय भी हैं। एक मन्द स्निग्ध ज्योत्स्ना इन पुष्पोंसे इतस्ततः विकरित हो रही है। ओह! देखो! प्रिया भानुकिशोरीका निज प्रियतमके प्रति जो परम अनाविल रागभाव है, वही तो यहाँके पद्मोंकी आभा है। शुभ्र प्रियतम-रति ही बेला एवं मोगराके पुष्प हैं। प्रियाके चतुर्दिक् उनके शुद्ध सात्विक भावोंकी एक साथ छटा ही इन सप्तरङ्गी सुमनोंसे शक्रचापकी सी कान्ति सर्वत्र प्रसरित कर रही है। प्रियाके अरुण अधरोंकी कान्तिसे दमकती कुन्दपंक्ति सदृश शुभ्र दन्तछटा इन सम्पूर्ण सुमनदलोंकी शोभाको सर्वथा नगण्य बना दे रही है। इस दन्तछटासे जो शुभ्र स्वच्छ ज्योत्स्ना सर्वत्र प्रसरित हो रही है, वह वस्तुतः सभी सुमन-शोभाओंकी सिरमौर है।

ओह! प्रियतमका हृदय प्रियाकी इस हासछटामें आपाततः डूबने लगता है। उनके अन्य सभी अवयव इस शोभासमुद्रमें डूबते हुए चैतन्यविहीन-से जड़वत् हो उठते हैं। किन्तु नेत्रेन्द्रियोंमें सभी चेतना केन्द्रित हो उठती है। नेत्रेन्द्रियोंमें निहित चेतना उनके हाथोंको प्रेरणा देती है कि प्रियाकी उन्मुक्तवेणीका शृङ्गार प्रारंभ करो।

'ओह! प्रियाकी केशरचना तो मुक्ता-मणि-माणिक्यमालाओंसे पूर्वतया ही संरचित है' - प्रियतम उस संरचनाकी कलात्मकताको निरखकर ही मुग्ध हो उठते हैं। मानो सघन नील मेघराशि दामिनीमालासे बँधी नभके मध्य भागमें लहरा रही हो, प्रियतम पूर्वतया सखियों द्वारा की गयी केशरचनाकी शोभामें डूबने लगते हैं। ओह, इस कृष्ण केशराशिकी एक-एक अलकावलिसे झरती सौन्दर्यसुधाका प्राणवल्लभ कितनी तन्मयतापूर्वक पान करने लगते हैं। किन्तु अरे, इस कृष्ण-भुजङ्गिनी वेणीमें अकस्मात् ही प्रीतिसागरके एकसे-बढकर-एक उच्च असंख्य आवर्त्त उठने लगते हैं, और तब इन आवर्त्तोंके अन्तरालसे उत्थित विलक्षण रसमयी लहरें प्रियाकी पूर्णतया निबद्ध वेणीको, उनकी कुञ्चित केशराशिकी संरचनाको प्रियतम नीलसुन्दरके हाथों ही मिटाकर पुनः नवीन निर्माणकी योजना खड़ी कर देती है। प्रियतम नीलसुन्दरके मनमें सौन्दर्य एवं शोभाकी एक अत्युच्च विलक्षण रसमयी लहर उसी क्षण उत्थित होती है और प्रियतम प्राणसुन्दर अपनी प्रियाकी भावी वेणी-संरचनाका एक विलक्षण सुन्दर रूप अपनी कल्पनामें मूर्त्त कर लेते हैं।

मधुमतीमञ्जरी वीणामें उसी क्षण आलाप भर उठती है -

वेणी गूँथ कहा कोउ जानें, मेरी-सी तेरी सौं प्यारी।
बिच-बिच फूल पीत-सित-राते, को करि सकै ऐरी सौं प्यारी।
बैठे रसिक सँवारत बारन, कोमल कर ककही सौं प्यारी।

प्रियतम प्राणवल्लभ नीलसुन्दरकी कल्पना मायाजगत्के जीवोंकी मात्र मनोगत उड़ान नहीं है। उनकी कल्पना त्रिकालाबाधित सत्य थी, है एवं परम सत्य-की-सत्य ही रहेगी। उन्हें उस अपनी कल्पनाको मूर्त करनेके लिये न कर्मप्रयास, श्रम करनेकी आवश्यकता है, न ही किसी कालावधिकी भी प्रतीक्षा करनेकी। प्रियतम श्रीकृष्ण तो अपनी प्रियाके केशोंको मात्र स्पर्श भर ही करते हैं कि उनकी ऐसी विचित्र दशा हो जाती है कि जिसका वर्णन स्वयं वीणाधारिणी भी नहीं कर सकतीं। यदि कुछ शब्दावली साक्षात् सरस्वतीके मुखसे प्रकट भी होती है तो उसकी अभिव्यञ्जना यही संभव है कि प्रियाकी मनोरम सुस्निग्ध सघन अलकजालकी एक लट मात्रका संस्पर्श ही प्रियतम नीलसुन्दरके मन-प्राण एवं नेत्रेन्द्रियोंमें ही नहीं, उनकी समग्र अस्मितातकमें प्रिया-ही-प्रियाको सम्प्लावित कर देता है। बात यह है कि प्रिया राधाके देहका एक रोम भी पूर्ण राधा है। अतः प्रियतम नीलमणि प्रियाके रोमके भी संस्पर्श मात्रसे अपनी पूर्णतम, पूरी-की-पूरी प्राणप्रियाका समालिङ्गन प्राप्त करते हैं। जैसे ही प्रियाके एक चिकुरका प्रियतम नीलसुन्दरको संस्पर्श होता है, क्योंकि वह चिकुर प्रीति-महाभाव एवं महारसकी अगाध निधिस्वरूपा परम ज्योतिमयी

लड़िल्लहरी है, वह रसकी अगाध निधि उनके रोम-रोममें पूर्णतया परिव्याप्त हो जाती है। ऐसा अगाध रस-संप्लावन होता है कि प्रियतमके समस्त अङ्ग-अवयव पूर्णतया रसनिमग्न, निस्पन्द हो जाते हैं। उनकी वाणी रुद्ध हो उठती है। केवल निर्निमेष नयनोंके पथसे वे उस अप्रतिम रसमयी केशराशिको निरखते ही रह जाते हैं। उनके नयनोंसे परम सुशीतल भाववारिबिन्दु प्रवहमान हो उठते हैं।

हाँ, यह अवश्य है कि प्रियाकी समग्र वेणीरचना प्रियतमके करकमलों द्वारा ही साङ्गोपाङ्ग होती है, किन्तु वह प्रियतम ब्रजेन्द्रनन्दनकी अहंताका कर्म संभव ही नहीं। यंत्रवत् प्रियतमके हाथों द्वारा क्रिया सम्पादित हो जाती है और प्रियतम द्रष्टा बने उस परम रसमयी संरचनाके साक्षी ही होते हैं।

प्रियतम श्यामसुन्दरने अपनी प्रियाकी वेणीरचनामें कलाकी इति ही कर दी है। प्रियतम नीलमणि यह वेणीरचनाकी कला किससे सीखे, कब इस कलाकी पाठशालामें शिक्षासत्र प्रारंभ हुआ, यह तो अचिन्त्य महिमामयी योगमाया ही जानें। वस्तुतः प्रियाको तो अपनी वेणीके रूपमें उनके प्रियतम नीलसुन्दर ही दृष्टिगोचर होते हैं। अतः प्रियाकी दृष्टिमें तो इन प्रियतम नीलमणिका सङ्कल्प ही नित्य नूतन कलाकृतियोंके रूपमें वेणीरचनामें अभिव्यक्त होता रहता है। अवश्य ही सखियाँ दर्शन कर रही हैं कि प्रियतम प्राणसुन्दर नीलमणि एक-एक विकसित सुरभित पुष्पको वृन्तों एवं कुन्तलराशिसे गूँथकर अतिशय कौशलपूर्वक वेणीरचना कर रहे हैं। ललिता–विशाखादि सभी सखियाँ अपने प्राणसुन्दर नीलमणिकी प्रिया-प्रेममयी विचित्र लीला-कुशलताको निरखकर मुग्ध ही नहीं प्रेमसिन्धुके अतल तलमें डूब रही हैं। सखियाँ बाह्यवेशसे पूर्णतया आत्मविस्मृत, निस्पन्द अपने नेत्रोंके सम्मुख प्रकटित होती इस प्रियतम-प्रीतिलीलाको निरख-निरखकर न्यौछावर हो रही हैं। प्रियतम नीलमणिने श्वेत, लाल, पीत पुष्पोंसे प्रियाकी वेणीमें ऐसी अनोखी रसमयी संरचनाएँ की हैं जिसे वस्तुतः सखियाँ तो कर ही नहीं पाती। अब प्रियतम आरसीकी सहायतासे अपनी इस संरचनाके सौन्दर्यका स्वयं प्रियाको भी दिग्दर्शन कराते हैं। प्रिया राधारानी भी अपने प्रियतमकी निर्मिति इस वेणीशोभाको देख मुग्ध हो उठती है।

लो, प्रियामें यह कैसा अभिनय रसोत्कार्ष हुआ। कहाँ तो वे अपने प्रियतमसे प्रेमकलह कर रही थीं कि वे सखियोंके सम्मुख उनसे अपना शृङ्गार नहीं करावेंगी, कहाँ अब वे अपने प्रियतमसे आग्रह कर रही हैं कि प्रियतम उनका सर्वाङ्ग शृङ्गार कर दें।

ओह! प्रियतम प्रियाके नेत्रोंमें काजल लगा रहे हैं। ललाटपर बेंदीके स्थानपर कुङ्कुमवर्णी सुरभित एक पुष्पको ही प्रियाके ललाटपर विजड़ित कर देते हैं। ओह! प्रियतमने प्रियाके ललाटपर, कपोलोंपर पुष्पोंकी छोटी-छोटी पंखुड़ियोंको केसर एवं कस्तूरीपङ्कमें भिगोकर उनसे ही कैसी अपूर्व चित्ररचना कर दी है। वे अपनी प्रियाको पुष्पोंकी ही कण्ठमाला, पुष्पोंका ही चतुष्पाद, पदकहार, कटिमें पुष्पोंकी करधनी, चरणोंमें पुष्पोंके ही नूपुर, हाथोंमें पुष्पोंके ही बाजूबन्द, पुष्पोंकी ही चूड़ियाँ, वलय एवं अंगलीयक पहनाते हैं। रक्तवर्णके पुष्पोंसे ही संग्रहीत रङ्गसे प्रियाके चरणोंमें प्रियतम अभूतपूर्ण चित्रकारी करके महावरकी रचना करते हैं। ओह! अपनी प्रियाका नखशिख पर्यन्त फूलों ही फूलोंसे सम्पूर्ण शृङ्गारकरके प्रियतम अपने अधरामृतसे सनी बीरीसे प्रियाके अधर रञ्जित कर देते हैं।

ओह! प्रियतम नीलसुन्दरकी प्राणप्रिया कैसी सज्जित हुई पुष्पचौकीपर सुविराजित है। मधुमतीमञ्जरी वीणामें गायन कर रही है –

सारी सँवारी है सोनजुहीकी, जुहीकी ही तापै लगाई किनारी।
पंकजके दलकौ लहँगा, अँगिया गुलबाँसकी शोभित न्यारी।।
चमेलीके हार, हमेल गुलाबकी, मोरकी बेंदी दै भाल सँवारी।
आज विचित्र सँवारि कै देखिये, कैसी सिंगारी है प्यारेने प्यारी।।

कोई कह नहीं सकता है कि सोनजुहीका वस्त्र और उससे निर्मित छः गजकी साड़ी एवं कमलोंका लहँगा प्रियतम द्वारा कैसे निर्मित हुआ? प्राकृत मायाराज्यमें पुष्पों द्वारा यह रचना भले ही संभव न हो किन्तु अप्राकृत लीलामहाशक्ति अघटन-घटना-पटीयसी योगमायाके राज्यमें यह सब संभव है। वे प्रियतमकी इच्छाके अनुरूप कमलदलोंको परस्पर जोड़कर लहँगेके रूपमें उन्हें विलक्षण सुभग आकृति दे सकती हैं। भगवती योगमाया महाशक्ति द्वारा जुहीकी कलिकाओंको उस सोनजुहीकी साड़ीमें किनारीके रूपमें विजड़ित कर देना वामहस्तका कार्य है।

प्रियतम प्रियाका शृङ्गार करते समय उन्हें जुहीकी किनारी लगाकर सोनजुहीकी साड़ी पहनाते हैं। कमलोंका लहँगा एवं गुलबाँसकी चोली वक्षस्थलमें धारण कराते हैं। चमेलीके हार पहनाते हैं एवं गुलाबके फूलोंकी हमेल गलेमें भूषणके रूपमें पहनाते हैं। प्रियाके मस्तकपर वे मौलसिरीपुष्पकी बेंदी विजड़ित करते हैं। इस प्रकार प्रियतम नीलमयङ्कदेव जब अपनी प्रियाका सुभग शृङ्गार कर चुके होते हैं तो प्रिया स्वयं अपने हाथों प्रियतमको सजाने लगती है।

दोनों प्रिया-प्रियतमकी परस्पर शृङ्गार-रचना और उसकी शोभाकी एक झाँकीको उसकी वास्तविक अद्भुत श्रीको, उसके असमोर्ध्व सौन्दर्य-वैभवको, उसकी रूपरेखाकी एक अल्प-सी छटाको भी यदि कोई भाग्यवान् उनकी कृपावारिकिणिकाके बलपर देख पावे, तभी वह जान सकता है कि उसका लीलारहस्य क्या है?

दोनों प्रिया-प्रियतम इस शृङ्गारलीलाके कालमें एक अभूतपूर्व प्रेमजन्य परमानन्दमें निमग्न रहते हैं। प्रियतमकी उन्मुक्त केशराशिको कोई भी बन्धन दें, यह प्रियाको सर्वथा रुचिकर नहीं है। प्रियाके लिये प्रियतम नीलसुन्दरकी केशराशि भी उनके प्रियतम प्राणवल्लभका स्वरूपगत एक अङ्ग है - प्रियतम अङ्गी है एवं केशराशि अङ्ग। प्रिया राधा अपने प्रियतमके एक रोमको भी प्रियतमके रूपमें ही देखती हुई उसे निर्बन्ध, पूर्णतया स्वच्छन्द, स्वरुचिविहारी ही देखना पसन्द करती हैं। फिर अपने प्रियतमका पूर्ण शृङ्गार भला वे कैसे करें? शृङ्गारलीलाके रूपमें उन्हें विश्वप्रपञ्चमें अपने महाभावकी एक चिन्मय झाँकी भी प्रस्तुत करनी ही है। इस महाभाव-वितरणलीलाकी एकमात्र सूत्रधार वे ही जो ठहरीं।

देखते-ही-देखते प्रिया श्रीराधा स्वयं ही सोनजुहीकी पाग बनकर अपने प्रियतमके कुञ्चित केशकलापोंको समाच्छादित कर लेती है। प्रियतमके केशोंका अपने स्वयंके आलिङ्गनपाशमें बंधन तो उन्हें अभिप्रेत है ही। अतः इस सोनजुहीकी पागके अन्तरालसे वे अपने प्रियतमके केशकलापोंको अपने समालिङ्गनमें लेकर महारसकी एक विलक्षण स्रोतस्विनी ही प्रकट कर देती हैं।

अपने प्रियतमको पाग पहनाकर प्रिया अति मुग्ध हुईं किञ्चित् काल सोचने लगती हैं कि आगेकी वे क्या रचना करें? उनकी दृष्टिमें विकसित कदम्ब आता है। वे विचारने लगती हैं - 'अरे! उनसे यह कैसी प्रमादक्रिया घटित हो गयी। जो निरन्तर प्रेम-सौरभ सञ्चार करता रहता है, सभी प्रेमीजनोंसे प्रियतमका अपने तले ही मिलन-संयोग करालेवाले कदम्ब वृक्षको वे कैसे विस्मृत कर गयीं? इस विचारके उदय होते ही नित्य बारहों मास पुष्पभारसे नमित कदम्बके दो फूल अपने हाथों चयन करती हैं एवं अपने प्रियतमके कानोंमें कुण्डलके रूपमें संलग्न कर देती हैं। ओह! अपने कुसुमरूप नयनोंसे प्रिया-प्रियतम दोनोंके मुखचन्द्रोंको निहारता कदम्ब कृतकृत्य हो उठता है।

किन्तु अरे, अरे! यह कदम्बसे ही नित्य लिपटी रहनेवाली सेवती लता उदास हो गयी। प्रिया भला, किसको उदास करें? विश्वप्रपञ्चमें एक ही तो ऐसी सत्ता है जो किसीकी भी कभी आशा नहीं तोड़ती। उस सत्ताका नाम ही राधा है। भानुनन्दिनीमें अपनी शृङ्गारलीलाकी मौजमें उदास सेवतीके पुष्पोंकी पूरी डलिया ही उठा ली और उन सेवती पुष्पोंका पूरा घूमघूमारा जामा निर्माणकर अपने प्रियतमको पहना दिया। लो, प्रियतम नीलमणि अपने अनन्त ऐश्वर्यको सर्वथा किनारेकर एक अभिनव मुग्धताके साजसे सज्जित हुए निराविल लीलारससिन्धुमें अवगाहन करते हुए इन सेवती पुष्पोंका घेरदार जामा पहनकर प्रिया एवं उसकी सखियोंको अपने स्वरूपभूत परमानन्दका दान करने लगे। लो, अब

पार्श्वमें ही विकसित नववनतुलसी मानवती होकर रूठ गयी। उसके नयनोंसे झरझर अश्रुपात होने लगा। प्रियतमको उसके रूठनेकी कुछ भी परवाह नहीं थी, किन्तु प्रिया यदि अपने सर्वश्रेष्ठ शालीनतागुणका निदर्शन अपनी तुलसी सखीके सम्मुख न करें यह कैसे संभव है। बस, तत्क्षण ही भानुनन्दिनीने रूठी तुलसीके अश्रु पोंछे और हरीतिका एवं श्यामा दोनों ही तुलसीके पत्र तथा गुलाब, इजार एव नवेली इन पाँचों लताओंके पुष्पोंकी पंखुड़ियोंसे घनश्याम वर्णका पटुका विरचित किया और अपने प्रियतमको उपरैनाके रूपमें धारण करवा दियां। इन विलक्षण सुन्दर आवरण पटोंमें शृङ्गारित प्राणवल्लभ प्रियतम अपनी प्रियाके कण्ठसे जा लगे। उन्हें गलबाहीं दिये उनकी एवं अपनी दोनोंकी शृङ्गारशोभा आरसीमें निहारने लगे।

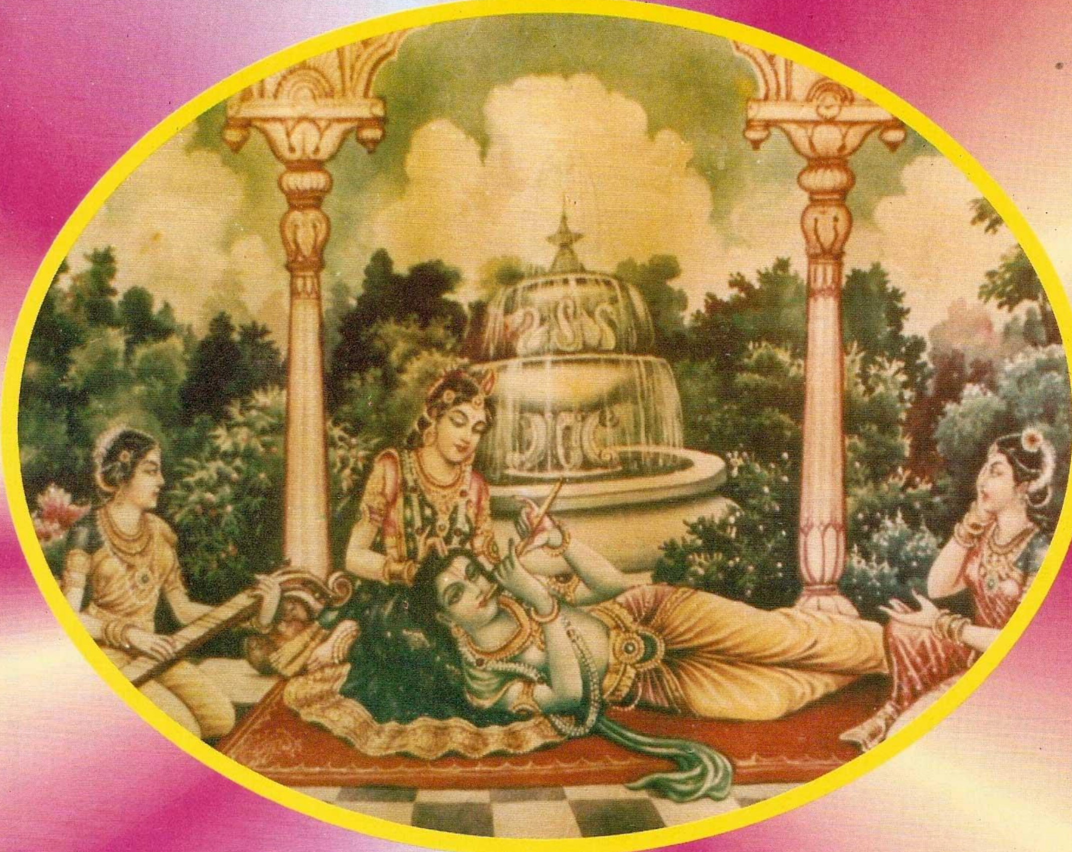
अरे, अरे! आरसीमें प्रियतमको अपना सौन्दर्य अपनी प्रियाके सौन्दर्यसे किञ्चित् हीन दिखने लगता है। एक अप्रतिम सुमधुर हीनताजन्य सङ्कोचकी छाया प्रियतमके आनन-सरोजको आवृत कर लेती है और इस धैर्यका बाँध टूट जाता है। आनन्दपूरित मुक्त मुसकानके रूपमें प्रेमतरङ्गें मुखसे बाहर छलकने लगती हैं। मधुमतीमञ्जरी अपनी वीणामें स्वर देती तान भरने लगती है -

मुख सौं मुख मिलाय निरखत आरसी।
विकसित नीलकमल ढिंग उदित भयौ कैधों पूरण ससी।।
निरखि बदन मुसकाइ परस्पर करत हास गिर जात अंक खसी।
गोविंद प्रभु प्यारी जू परस्पर दम्पति परे प्रेम फँसी।।

ओह! इन युगल दम्पतिकी परस्पर मुख मिलाकर आरसी निरखती छवि कितनी मोहक है! दोनोंकी ही वेणीबद्ध सघन कुन्तलराशि, विशाल कज्जलभरे नेत्र, मन्द-मन्द मृदु मुसकानयुक्त वाणी, मधुस्रावी अधरयुग्मोंपर नाचती प्रेमसरसता, भृकुटि नर्त्तनयुक्त भङ्गिमा, इन्हें जो निहार रही हैं वे परम सौभाग्यवती प्रत्यक्षदर्शी सखियाँ ही जानती हैं कि इस सौन्दर्यमें कैसी विलक्षण मादकता भरी है। अमर्यादित, संभ्रमरहित, स्वरूपभूत विभुरससे छलकता इन सखियोंका जो हृदय है वही ऐसा सरोवर है जहाँ यह कृष्ण नीलनलिन सुविकसित होता है और साथ ही पूर्ण राधा राकाचन्द्र भी उदित होता है। आश्चर्य है, नलिन एवं चन्द्रका तो अनादिकालीन वैर है। किन्तु धन्य है यह गोपी-मानस जहाँ ऐसी प्रेम-मादकता भरी है कि यह वैर तो सर्वथा एवं सदाके लिये निरस्त हो ही जाता है, साथ ही ये राधा–राकाचन्द्र एवं कृष्ण–नीलनलिन दोनों ही परस्पर अखण्ड एवं असीम प्रेमबन्धनमें बँध जाते हैं। ये दोनों परस्पर एक दूसरेका सौन्दर्य निहार-निहारकर रीझते हैं और फिर विहँसते, मुसकाते एक दूसरेके अङ्कमें रसभरे ढुलक जाते हैं। विलक्षण प्रेममय स्वभाव है इनका! मधुमती दूसरा गीत प्रारंभ कर देती है।

मेरो मुख नीको कै तेरो मुख नीको, प्यारी।
दर्पण हाथ लियें नँदनन्दन साँची कहौ बृषभानुदुलारी।।
हम कहा कहैं तुमहिं किन देखौ, हम गोरी तुम श्याम बिहारी।
कृष्णदास प्रभु गिरिधर नागर, चरणकमल पर राधिका वारी।।

अहा! प्राणवल्लभ नीलसुन्दरका अपनी प्रिया राधारानीके सङ्ग मुखसे मुख मिलाकर आरसी देखना और अपने मुख सौन्दर्यसे उनके मुखचन्द्रके रूपकी तुलना करना कितना सरस है। इसका आकलन हम लोगों-जैसे विषयकीचमें सने जीव भला कैसे कर सकते हैं ? उनके इस प्रेममुग्ध लीलाके द्वारा कैसी विलक्षण रसतरङ्गें सृष्ट हो रही हैं, इसकी तो सखियाँ ही अनुभवकर्त्ता हैं, जो निरवधिकाल इन्हें निरखकर प्रस्तर प्रतिमाकी तरह निस्पन्द हो उठती हैं। सखियाँ परस्पर रसालाप करती हैं -



बलि बलि बलि बलि कुँवरि राधिके नंद सुवन जासों रति मानी ।
तू अति चतुर वे चतुर सिरोमनि प्रीति करी कैसे रहत है छानी ।।
(गीत-वाद्यवादन-सेवा-निरत श्रीतुंगविद्याजी) (पृष्ठ १९३)

ललिता - 'प्यारे! हमारी प्यारीको मुख तौ चन्द्रमाके समान उज्ज्वल है और आपकौ आनन अँधेरी रातके समान कारौ है।'

श्रीकृष्ण - 'अजी! चन्द्रमा हू तब ही शोभा देय है जब कारी अँधेरी रात होय।'

मधुमतीमञ्जरी वीणामें आलाप ले रही है -

बात करत रस रंग उछलिता।
फूलन महल विराजित दोऊ, मन्द सुगन्ध निकट बहै सलिता।।
मुख मिलाय हँसि देखत दर्पण सुरत श्रमित उर माल विगलिता।
परमानँद प्रभु प्रेम बिबस कहैं हममें सुन्दर को कह ललिता।।

मधुमतीमञ्जरीका गायन सुनते-सुनते प्रियतम उठकर खड़े हो जाते हैं। प्रिया भी हँसती हुई प्रियतम नीलसुन्दरका हाथ पकड़ लेती है। विलासमञ्जरी इसी समय अत्यन्त सुन्दर पुष्पनिर्मित मुकुट, जिसके मध्यमें एक छोटा-सा मयूरपिच्छ लगा है, प्रियाके हाथमें दे देती है। रानीके मनमें मुकुटकी शोभा देखकर इतनी प्रीति उमड़ती है कि वे दीवानी हो उठती हैं। मुकुटमें विजड़ित प्रत्येक पुष्पमें रानीको अपने प्रियतमकी छवि मुसकाती दिखने लगती है। वे कुछ चकित-सी होकर ललिताके कानमें अपनी भावदशा प्रकट कर देती हैं। यह नियम ही है कि ज्योंही प्रिया किसी भी सखीके सम्मुख अपनी भावदशाका रहस्य प्रकट करती है, उनका उद्दीपन अधिकांशतः कम हो जाता है।

प्रिया ललिताके सम्मुख अपनी भावदशा बहुत मन्द स्वरमें निवेदन करती हैं, फिर भी प्रियतम नीलमणिको प्रियाका समग्र कथन श्रवणगोचर हो जाता है। प्रियतम नीलमयङ्क जोरसे खिलखिलाकर हँस पड़ते हैं।

प्रियतम प्राणसुन्दरकी व्यङ्गभरी उन्मुक्त हँसी सुनकर प्रिया लजा जाती है। इसी समय ललिता प्यारसे कहती है - 'इस पुष्पमुकुटको प्रियतम प्राणवल्लभके मस्तमपर बाँध दे, न! हाथमें लिये रहकर इसके अणु-अणुमें तुझे न जाने क्या-क्या दर्शन होने लगेंगे।'

विलासमञ्जरीने आज मुकुटकी रचना इतनी सूक्ष्म कलात्मकतासे की है कि उसे जिस किसी कोणसे भी कोई देखे उसे उस मुकुटके पुष्प-पुष्पमें राधा-राधा लिखा हुआ ही दृष्टिगोचर होता है। किन्तु आश्चर्य है कि रानीके नयन मुकुटकी इस विचित्रताको परिलक्षित नहीं कर पा रहे हैं। रानी प्रियतम प्राणसुन्दरके पीछे जाकर धीरेसे मस्तकपर मुकुट पहना देती हैं। इसके पश्चात् कटोरियोंमें रखे केशर, कस्तूरी, चन्दन आदिके लेपसे कुन्दपुष्पकी वृन्तिकाको डुबो-डुबोकर रानी अपने प्रियतम प्राणवल्लभके कपोलोंपर अनेकों प्रकारकी अत्यन्त सुन्दर चित्ररचना करती हैं। प्रियतम नीलमणि अपने प्रियाको प्रेमभरे इकटक निहार रहे हैं। चित्ररचना सम्पूर्णकर प्रिया एक छोटी बालिकाके समान ताली बजा-बजाकर उन्मुक्त हँसी हँसने लगती हैं। ललिता हँसती हुई प्रियाको थोड़ी प्रेमभरी झिड़की देती हुई चुप कराती है एवं प्रियतम नीलसुन्दरके वामभागमें उसी आसनपर बैठा देती है एवं ठीक वैसे ही चित्र जैसे प्रियाने प्रियतमके कपोलपर रचे थे, उसके कपोलोंपर भी रच देती है। प्रिया प्रियतमको अपने ठीक मनोरथोंके अनुरूप सजा-सजाकर आनन्द एवं प्रेममें डूबने लग जाती हैं। प्रत्येक सखी एवं मञ्जरीको यह विलक्षण अनुभव होता है कि प्रियतम नीलसुन्दर उसके पार्श्वमें आये हैं एवं उसके कानोंमें अतिशय प्रेमभरी मन्द सुमधुर ध्वनिमें कह रहे हैं कि 'शेष शृङ्गार भले ही तू स्वयं कर लेना किन्तु तेरे नेत्रोंको कज्जल-अनुरंजित तो मैं ही करूँगा।' सखी अपने नेत्रोंको कोमल कर-पल्लवोंसे ढककर मुसकाती अस्वीकार करती है। पर प्रियतम उसके स्कन्धदेशको पकड़कर इतना प्रेमभरा आग्रह करते हैं कि अन्ततः विवश होकर उसे प्रियतमको कज्जल लगानेकी सम्मति देनी ही पड़ती है। अञ्जन लगाकर प्रियतम पुनः कहते हैं - 'अच्छा, बेणीरचना तो तूने फूहड़की तरह अपने हाथों ही कर ली किन्तु देख, मुझे मात्र दो पुष्प भर

तेरी वेणीमें खोंसने दे, तेरी वेणीका शृङ्गार इतना अधिक सुन्दर हो उठेगा कि ललिता ललचा जायेगी।' पहले तो सखियाँ प्रियतमके इस आग्रहको भी अस्वीकार करती हैं किन्तु अन्ततः पूर्ण समर्पण कर बैठती हैं। प्रियतम नीलमणि अतिशय प्यारसे सबकी वेणीमें दो-दो फूल खौंस देते हैं। प्रियतम श्यामसुन्दर प्रत्येक सखी एवं मञ्जरीके साथ यह लीला करते हैं। सखियाँ प्रिया-प्रियतमके मुखारविन्दकी शोभा देख-देखकर विह्वल हो रही हैं।

सुन्दर निकुञ्ज सुमनों का है सम्बद्ध एक उससे, प्रियतम !
उसमें पधार पीयूष भरे वनफल का रस लेते, प्रियतम !
बाला के अधरपल्लवों पर साँवर का, फिर उसका, प्रियतम!
उनके बिम्बाधर पर रखना फल दृगफल हो जाता, प्रियतम॥७६२॥

उस कुञ्जसे सम्बद्ध एक अतिशय सुन्दर निकुञ्ज और भी है-उसीमें दम्पति पधारते और वहीं पीयूषके सदृश रसमय वनफलके रसका आस्वादन करते। किशोरीके अधरपल्लवोंपर साँवरका और फिर साँवरके बिम्बाधरपर किशोरीका फल रखना सहचरियोंके लिये दृगफल हो जाता। ......।।७६२।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

इसी समय निकुञ्जसे सम्बद्ध पार्श्ववर्त्ती रत्नमहलके दक्षिण द्वारसे वृन्दादेवी निकुञ्जमें प्रवेश करती हैं। यहाँकी शोभा देखकर एक क्षण तो वह स्तम्भविकारग्रस्त मूर्त्तिवत् हो उठती हैं फिर कुछ क्षण बाद आनन्दमें भरकर ललितासे आलिङ्गित हो मन्दस्वरमें कहती हैं - 'बहिन! इस बकुलपुष्पनिकुञ्जसे संबद्ध जो पीयूषभरे वलफलोंका कुञ्ज है, वहाँ चलकर उसके सुमधुर फलोंका प्रिया-प्रियतमको आस्वादन करावें।'

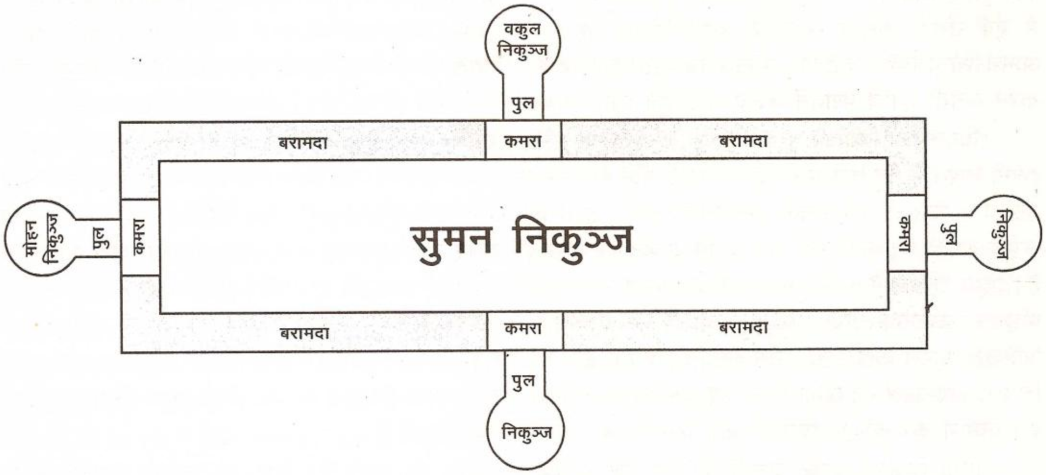
पीयूषभरे वनफलका रस लेते, प्रियतम!

बकुलकुञ्जसे सजधजकर सखी-मण्डलीके सहित प्रिया-प्रियतम परस्पर एक-दूसरेके आनन-सौन्दर्य एवं शृङ्गारको समोद निरखते हुए कुञ्जसे सटे 'सुमननिकुञ्ज' की ओर चल पड़ते हैं।

ओह! वही त्रिभुवनमोहन सौन्दर्य है, वही मधुरातिमधुर प्रेमभङ्गिमाएँ, सौन्दर्य एवं प्रेमसमुद्रकी उच्छलित तरङ्गोंके समान गोपाङ्गनाओंसे चतुर्दिक् आगे-पीछे घिरी परमानन्दमें निमग्न प्रिया हैं। ललिता सखीका संरक्षण है। अपनी बङ्किम चितवनसे वनस्थलकी शोभा निहारते, हँसते-हँसाते, यदा-कदा अपनी वंशीकी मधुर स्वरलहरीसे सब सखियोंको, वनचर, नभचर-सभी जीवोंको रसप्लावित करते, झूमते वे दोनों प्रिया-प्रियतम आगे बढ रहे हैं। प्रियतम अब प्रिया, सखियों एवं मञ्जरियोंकी ओर देख-देखकर हँस रहे हैं, एवं प्रिया राधा, सखियाँ एवं मञ्जरियाँ प्रियतम प्राणवल्लभके मुखारविन्दकी शोभा निरखकर प्रेमविह्वल हो रही हैं। इसी समय सुमननिकुञ्जके दक्षिणी द्वारसे वृन्दादेवी इस मण्डलीमें सम्मिलित होती हैं। वे प्रिया-प्रियतम एवं सभी सखी-मञ्जरियोंका सुभग सुमन शृङ्गार देख सर्वथा प्रस्तर प्रतिमा-सी स्थिर हो जाती हैं।

कुछ क्षण पश्चात् जब वह किञ्चित् भावसंवरित होती हैं तो सभी मण्डलीको अपने पीछे चलनेका सङ्केत करती हैं। बकुलकुञ्जसे सुमननिकुञ्जके मध्यका पथ हरी-हरी बेलोंके आपसमें गुँथ जानेसे एक परम मनोहर पुलके ऊपरसे जाता है। पुलके ऊपर एक पीले वर्णका सुन्दर गलीचा बिछा है। उसके ऊपर चरण रखते हुए प्रिया-प्रियतम सुमननिकुञ्जतक पहुँचते हैं।

नकशा



प्रिया-प्रियतम प्रथम द्वारके कक्षको पारकर मध्यमें स्थित विशाल कक्षमें प्रवेश करते हैं। यह महलनुमा प्रासाद अनिर्वचनीय सुन्दर सज्जाओंसे सज्जित है। प्रासादके पूर्वी भागमें अतिशय कलाकारीयुक्त हस्तिदंतसे खचित एवं अनमोल रत्नोंसे विजड़ित चन्दनकाष्ठके पट्टे एवं लघु पट्टिकाएँ रखी हैं जिसमें बड़ी-बड़ी स्वर्णकी परातोंमें तराशे हुए फल सजा-सजाकर रखे हैं। वृन्दादेवीकी दासियाँ पूर्वी भागमें ही खुलनेवाले द्वारसे पार्श्वके कक्षसे आ-जा रही हैं और फलोंसे निर्मित अनेकों पक्वान्न भी स्वर्णकी थालियोंमें सजा-सजाकर ला रही हैं।

प्रासादके मध्यमें एक रत्नजटित आसन लगा है जिसमें मखमलका गद्दा है। आसनके आगे स्वर्णकी तीन चौकियाँ एक कतारमें रखी हैं। ये चौकियाँ आसनसे तनिक ऊँची हैं। इनकी लम्बाई-चौड़ाई लगभग दो फुट चौड़ी एवं दो फुट लम्बी है। प्रिया-प्रियतम एवं सखियाँ इस विशाल प्रासादके दक्षिण दिशामें दीवारके पास बिछे गलीचेपर आकर खड़े हो जाते हैं।

सहसा ललिता एवं वृन्दा प्रिया-प्रियतमको प्रासादके मध्य स्थित रत्नजटित आसनोंपर विराजनेका आग्रह करती हैं। आसनपर प्रियतम दक्षिणकी ओर मुखकर विराजित हो जाते हैं। ललिता मञ्जरियोंको आदेश देकर पूर्वीभागमें चन्दन-चौकियोंमें रखी फूलाकी परातें एवं छोटी तश्तरियाँ मँगाती है और प्रियतमके आगे रखी चौकियोंपर फलके थाल सजाती जाती है। प्रिया राधारानी प्रियतमके आसनके ठीक सामने एक दूसरी रत्नजटित चौकीपर बैठी मुसका रही हैं और अपने सम्मुख फलके थालोंमेंसे सुन्दर-सुन्दर निज रुचिके सुमिष्ट फल एक तश्तरीमें सजाकर प्रियतमको खिलानेको उनके सम्मुख रख रही हैं। विशाखा प्रियाके वाम भागकी ओर खड़ी है। उसके हाथमें फूलोंका अत्यन्त सुन्दर बना हुआ व्यजन (पंखा) रखा हुआ है। विशाखा प्रिया-प्रियतम दोनोंको ही पंखा झलकर हवा दे रही है। फलोंकी स्वर्ण-परातमेंसे जो-जो फल प्रियतम नीलसुन्दरको अत्यन्त रुचिकर हैं, एवं जिन्हें प्रायः वे खूब सराहकर रुचिपूर्वक माँग-माँगकर खाया करते हैं, उन्हें ही प्रिया पृथक् कर-करके स्वर्ण थालीमें सजाती है एवं उनपर गुलाब अथवा केवड़ाजल छिड़ककर प्रियतमके सम्मुख मन्द-मन्द मुसकाती रहती हैं।

इस समय प्रियतम नीलचन्द्रके हाथोंमें स्वर्णप्यालेके आकारकी एक गिलास है जिसमें वनफलोंका पीले रङ्गका रस भरा है। प्रियाकी मन्द मुसकाती छवि इतनी मनोहर है कि प्रियतमके नेत्र रूपमाधुरीके पानमें ही निरत हो उठते हैं एवं उनके हाथका रसपात्र उनके होठोंसे कुछ ही दूरपर स्थिर रह जाता है। प्रिया प्रियतमको अपने आनन-सौन्दर्यपर टकटकी लगाकर निरखते देखकर लजा जाती हैं और ललिताको पुकारकर किसी फलकी माँग करने लगती हैं। वे परातमें फलके उस टुकड़ेको पृथक् करने लगती हैं, जो उन्हें अतिशय सरस लगता है।

प्रियतमको प्रियाकी मुखछविपर मुग्ध देखकर सखियाँ एवं मञ्जरियाँ हँसने लग जाती हैं। प्रिया फलोंके सञ्चयमें इतनी व्यस्त हैं कि उसे मञ्जरियों एवं सखियोंके हँसनेका कारण ही समझमें नहीं आता। वह बार-बार मञ्जरियोंकी ओर देखती हैं जिससे उसे उनके मुसकानेका कारण ज्ञात हो। प्रिया कुछ-कुछ अनुमान लगा लेती हैं। वह रूपमञ्जरीको सङ्केत करती हैं। रूपमञ्जरी एक हाथमें स्वर्णका कटोरा एवं दूसरे हाथमें जलकी झारी लेकर प्रियाके पास आ जाती है। प्रिया शीघ्रतासे अपने हाथ झारीके जलसे स्वच्छ करती है एवं रूपमञ्जरी द्वारा दिये एक स्वच्छ रूमालसे हाथ पौंछकर प्रियतमके निकट पहुँच जाती है। वे प्रियतमके द्वारा हाथमें लिये रसपात्रको अपने हाथमें ले लेती हैं एवं अतिशय प्यारसे कहती हैं - 'तुम रस नहीं पियोगे और मेरे मुखकी ओर मात्र एकटक देखते रहोगे तो रासनृत्यमें आज चित्रासे हार जाओगे। आज चित्रा एवं चम्पकलता दोनोंसे तुम्हारी स्पर्धा निश्चित हुई है।' चित्रा कुछ दूरीपर फलोंका रस निर्माण कर रही है, प्रियाकी बात कानमें पड़ जानेसे मुसका उठती है।

प्रिया चित्राको सङ्केत करती हैं। वह एक स्वर्णपात्रमें विशेष पेय लाती है। प्रिया वह रसपात्र चित्रासे लेकर प्रियतमके होठोंमें संलग्नकर कहती हैं - 'लो, यह मैंने अपने सम्मुख वनौषधियोंसे संयुक्तकर नये नमूनेका कटहलका रस केसर एवं कस्तूरीकी पुट देकर चित्रा सखीसे निर्माण कराया है। इसे तुम पूरा पान कर जाओ। तुमपर मैं बलिहारी हूँ। इससे तुम्हें रासमें आज अनवरत नृत्यकी विलक्षण शक्ति मिलेगी। अन्यथा थक जाओगे, न?' इसके पश्चात् प्रिया एक वनफलका खण्ड उठाकर प्रियतम नीलसुन्दरके मुखपर रख देती है। प्रिया प्रियतम श्यामसुन्दरसे उस वनफलके खण्डको खानेका इस प्यारभरी भंगिमासे आग्रह करती है कि सभी सखियाँ प्रियाका अपने प्रियतमके प्रति प्रेम देखकर न्यौछावर हो उठती हैं। प्रियाकी ऐसी उत्कण्ठा है कि प्रियतम उस रसभरे पूर्ण स्वर्णपात्रको तत्क्षण ही रिक्त करदें और वे उसे पुनः रससे भर दें। विलासमञ्जरीको सङ्केत करके वे एक पूर्ण रसपात्र पुनः मँगा लेती हैं।

अपनी प्राणप्रियाका प्रेमभाव देखकर प्रियतम भी प्रेममें डूबने लगते हैं, किन्तु उन्हें इतना अधिक रस पीना असंभव प्रतीत होता है। वे आधा पात्र रस पीकर कहते हैं - 'पहले तुम मेरे समान आधा पात्र पिओ, तब मैं दूसरा पिऊँगा। नृत्य तो मेरे समान तुम्हें भी निशापर्यंत करना ही है।'

प्रिया देखती है कि वस्तुतः ही यह अर्धपात्र रस पीना उसके लिये तो दुष्कर ही है। वे कहती हैं कि 'यह आधा रस मधुमङ्गलके लिये रख देते हैं अन्यथा वह आते ही तूफान उठा देगा।' प्रियतम प्रियाकी चतुराई देखकर हँस पड़ते हैं। वे कहते हैं - 'मधुमङ्गल आज नहीं आवेगा। फिर चित्राके द्वारा निर्मित रस तो तुम्हें पीना ही पड़ेगा। इसमें मेरे प्यारे वृन्दाकाननकी वनौषधियाँ भी तो सम्पुटित हैं।' रानी बहुत टालमटोल करती है किन्तु प्रियतम अतिशय चतुराईसे रानीके प्रत्येक तर्कको हँसीमें उड़ा देते हैं। वे प्रियतमसे नयनों-ही-नयनोंमें सङ्केत भी करती हैं कि इतना रस उससे पिया नहीं जायेगा। पहले तो प्रियतम हठ करते हैं किन्तु अन्ततः प्रियाकी वस्तुतः विवशता देख अपना आग्रह त्याग देते हैं। वे उसे थोड़ा रस पिलाकर शेष चित्राको दे देते हैं।

चित्रा इस रसको एक बृहद् पात्रमें संचित रसमें मिला देती है। फिर उसे सभी सखियों एवं मञ्जरियोंमें वितरित कर देती है। अब प्रियतम नीलसुन्दर अपनी प्रियाकी मनुहार कर-करके उसे जामुन, लीची, आम, खरबूजा, तरबूज, अनानास, सिंघाड़ा, शहतूत, अमरूद, सेव, कदली, मीठे-मीठे बेर, अंगूर, अनार आदि सभी फल एक-एककर खिलाते हैं।

ये सभी फल अतिशय विचित्र हैं। प्राकृत जगतमें इनके नामधारी फलोंसे इनकी न तो आकृतिमें ही साम्यता संभव है, न ही गुणोंमें तथा इनके स्वादमें। जैसे ये फल सुस्वादु हैं, वैसा स्वाद प्राकृत भूमिमें संभव ही नहीं है। मात्र लीलाके ध्यानकी सुकरताके लिये ही फलोंके प्राकृत नाम यहाँ दिये गये हैं। अप्राकृत लीलाजगत्के फलोंमें गुठली होती ही नहीं, क्योंकि ये किसी बीजका विकास नहीं हैं। ये तो प्रिया-प्रियतम प्रेमसङ्कल्पका फल हैं। इन फलोंके छिलके भी केवल दृष्टिगोचर भर होते हैं। मुखमें संस्पर्श होते ही इन फलोंका छिलका, गूदा, गुठली सबकुछ घुलकर रस-ही-रस हो जाता है। यह रस भी प्राकृत पदार्थकी तरह पेय नहीं है। बस, फल प्रिया-प्रियतम अथवा सखियोंके मुखमें जाता है और वह एक विलक्षण प्रेमानन्दमय स्वाद रूपमें व्यक्त हो जाता है तथा प्रिया-प्रियतम अथवा सखियोंकी एक विलक्षण प्रेमतृप्तिका रूप होकर उनके रोम-रोममें प्रेमोच्छलन कर देता है।

ये ऐसे मधुर फल हैं जिनमें अत्यन्त मधुर अनिर्वचनीय सुगन्धि भी निःसृत होती है। सम्पूर्ण वातावरण ही इस सुगन्धिसे सुवासित है। प्रियतम नीलसुन्दर अपनी प्रियाके अधरोंमें एक-एक फलखण्ड रखते हैं किन्तु उनके मुखका सौन्दर्य, अधरोंका सौन्दर्य, उनके फलखण्डको खाते समय रसमुग्ध प्रियाके नेत्रोंकी भङ्गिमा, मुखमुद्रादि देखकर वे तत्क्षण ही प्रेममें डूब जाते हैं। इसी प्रकार प्रिया भी प्रियतमको खिलाते समय अपने प्रियतमकी प्रेमरोमाञ्चित दशा देखकर ही प्रेमनिमग्न हो जाती हैं। दोनों ही प्रिया-प्रियतमको यह ज्ञान ही नहीं है कि वे एक दूसरेको क्या खिला रहे हैं, कितना खिला रहे हैं और कबतक खिलाते जावेंगे।

वैसे, दोनोंके हाथ यंत्रकी तरह तश्तरियोंसें फलके खण्ड उठाते हैं एवं एक दूसरेके नेत्रोंमें नेत्र मिलाये ही वे हाथ ठीक यंत्रकी तरह एक दूसरेके मुखकी ओर ही प्रवृत्त होते हैं, वह फलखण्ड अधरोंसे संलग्न होकर ठीक दंतपंक्तियों द्वारा तराशा भी जाता है, जिह्वा उसका रसपान भी करती है, एवं वह फलखण्ड उनके मुखविवरमें समाविष्ट भी होता ही है, किन्तु इतनी सब क्रिया होते हुए भी दोनोंके चित्त एक दूसरेकी मनोहर आनन-छवि निरखनमें ही पूरे डूबे हैं।

दीर्घकालतक अपने प्यारेके मुखमण्डलपर दृष्टि टिकाये रहनेके कारण महाभावस्वरूपा प्रिया अपना देहज्ञान खोने लगती है। उसे यही अनुभव होने लगता है मानो मैं प्रियतम श्यामसुन्दर ही हूँ। प्रिया राधाका मन प्रियतममें इतना तल्लीन हो उठता है कि वे बार-बार फलका टुकड़ा प्रियतम श्यामसुन्दरके मुखकी ओर न ले जाकर अपने मुखकी ओर ले जाने लगती हैं। इधर प्यारे श्यामसुन्दर भी अपनी प्रियाके मुखपर लगातार दृष्टि जमाये रखनेके कारण यह ज्ञान पूरा ही खो बैठते हैं कि वे श्यामसुन्दर हैं। वे समझने लगते हैं कि मैं राधा हूँ। वे प्रिया बने प्रतीक्षा कर रहे हैं कि प्रियतम मुझे खिलावें। भावावेशमें प्रिया फलका खण्ड हाथमें लेकर अपने होठोंके पास रखे हुए जड़िमाभावापन्न हुई मूर्त्तिवत् स्तम्भित हो जाती है एवं प्रियतम अपनी प्रियाकी दाहिनी कलाईके पास अपने दाहिने हाथकी अँगुली रखे हुए पत्थरकी मूर्त्तिसम फलग्रासकी प्रतीक्षामें स्तम्भित हुए आसीन हैं।

प्रिया-प्रियतमकी ऐसी विलक्षण प्रेमदशा देखकर सखियाँ भी मूर्च्छित हो रही हैं। किन्तु सखियोंमें से कुछ मञ्जरियों एवं अनुचरियोंको तो अतिशय कठिनाईपूर्वक ही सही, अपनी भावदशा संवरित करनी ही होती है। ललिता एवं विशाखा इसी समय परस्पर विमर्श करती हैं कि इस भावसमाधिको कैसे भङ्ग की जावे। स्नेहमें स्वजनोंके प्रति अनिष्टकी आशङ्का तो प्रबल होती ही है।

ललिता मधुमतीको सङ्केत करती है। मधुमती शीघ्रतासे वीणा ले आती है एवं मधुर कण्ठसे गायन प्रारंभ कर देती है -

देख चलु सखी दोऊ सुमनकुञ्ज
करें फल अहार अंसन भुज दीये।
परस्पर देत दोउ, कौर मुख मधुर,
हँसत उर लसत रति, रसन पीये।।
फैल रह्यौ मधुर सौरभ सघन कुञ्ज
फूल रहे फूल बहुरंग कीये।
रसिक को दास कहा कहे देखे बने,
रसिक दोउ रस भरे बसहु हीये।।

सङ्गीत प्रारंभ होनेपर उसकी मधुर स्वरलहरी निकुञ्जमें गूँजने लगती है। मधुमतीका कण्ठ आज असीम मधुर हो रहा है। दो पंक्तियाँ गाते ही प्रिया-प्रियतमकी पुतलियाँ जो बिलकुल स्थिर हो गयी थीं, वे चञ्चल हो उठती हैं। शनैः शनैः प्रिया-प्रियतम अकचकाये आँखें पूरी खोल देते हैं। प्रिया-प्रियतमको पुनः जागृत देख सखियाँ हँसने लगती हैं। प्रियतम श्यामसुन्दर भी अट्टहास कर उठते हैं।

जो पीत-हरितमणि विरचित है मोहन-निकुञ्ज उसमें, प्रियतम!
विश्राम फूलकी शय्या पर वे एक दण्ड करते, प्रियतम!
जगकर फिर शीतल जल पीकर शुक-सारीकी रचना, प्रियतम!
वह भावमयी सुनते-सुनते सुख से अचेत होते, प्रियतम ॥७६३॥

पीत हरित् मणियोंसे विरचित जो एक मोहन-निकुञ्ज अत्यन्त सन्निकटमें ही विराजित है, उसीमें एक दण्डके लिये दम्पति पुष्पोंकी शैयापर विश्राम करते। इस निद्रासुखके अनन्तर वे शीतल जलका पान करते और तब शुक सारीकी अद्भुत पाण्डित्यपूर्ण रचना सुननेकी बारी आती। वह रचना इतनी भावमयी होती कि उसे सुनते-सुनते दम्पति सुखसे अचेत हो जाते।।।७६३।।

तात्त्विक विवेचन- विस्तार

मोहननिकुञ्जमें शयन

अब प्रिया-प्रियतम आसनसे उठकर पूर्वकी ओर चार-पाँच कदम चलकर एक चौकीपर आसीन हो जाते हैं। रूपमञ्जरी उसी समय एक झारी लेकर आ जाती है। रतिमञ्जरी अपने हाथोंमें एक सुन्दर स्वर्णपात्र परातके रूपमें लिये है। प्रिया अपने हाथ धोकर रूपमञ्जरीसे झारी लेकर स्वयं प्रियतमके हाथ धुलाती है। उन्हें परम सुरभित जलसे गण्डूष कराके अपने आँचलसे हाथ पौंछती है। इसके पश्चात् अपनी कटिमें खौंसा परम सुगन्धित रेशमी रूमाल लेकर उनका मुख पौंछती हैं। अब प्रिया अपने प्रियतमका हस्त पकड़े उत्तर दिशावाले द्वारकी तरफ बढ चलती है।

यहाँसे वे सुमननिकुञ्जके उत्तरी कमरेमें आती हैं। यहाँसे पुनः पुलनुमा पथसे चलती हुई बिछे हुए सुन्दर सुकोमल गलीचेपर पैर रखती हुई उत्तरकी तरफके पथपर पहुँच जाती हैं। प्रियतम नीलसुन्दर तो मानों प्रियाके सङ्केतपर थिरक रहे हों। वे जहाँ जैसा रुख करती हैं, ठीक उसी निर्देशका अनुगमन कर रहे हैं।

प्रिया प्रियतमको मुख्य पथसे ललिताकुञ्जके उत्तर-पश्चिम कोनेवाले मोहननिकुञ्जमें ले आती है। जिस पथसे प्रिया अपने प्रियतमको लेकर इस कुञ्जमें आती हैं, उस पथके दोनों ओर बेलाके इतने पुष्प विकसित हैं कि उनकी गन्धसे प्रियतम मतवाले हो उठते हैं। बेलाकी पंक्तियोंके पश्चात् मोगरा, फिर चमेली, फिर जूही, फिर कटहलीचम्पा इस प्रकार एक पंक्तिके पश्चात् दूसरी विकसित पुष्पपंक्तियोंसे पथमें सुरभिकी बौछारें, फुहारें आ रही हैं। इस

मोहननिकुञ्जका आकार तो सुमननिकुञ्जकी तरह ही है किन्तु लता-गुल्मों एवं पुष्पोंकी सजावट सर्वाधिक मनोहर दृष्टिगोचर हो रही है।

प्रिया प्रियतमका हाथ पकड़े सीधे मध्य स्थित कक्षमें ले आती हैं। यहाँ उन्हें कमलोंसे निर्मित परम सुन्दर अति सुरभित शय्यापर विराजित कर देती हैं। ओह! प्रिया अपने प्रियतमकी कैसी मनोहर छवि निरख रही हैं। प्रियतम नीलसुन्दर दक्षिणकी ओर मस्तक करके शय्यापर लेटे हैं। प्रिया पैर लटकाकर उसी शय्याके मध्यमें प्रियतमकी ओर मुख करके बैठी हैं। विलासमञ्जरी दो पानकी गिलौरीमें स्वर्णबर्क लगाये प्रियाको समर्पित कर रही है। प्रिया पान लेकर प्रियतमके मुखकी ओर सरक जाती हैं एवं उनके स्कन्धदेशमें हाथ रखकर उनके मुखमें पान दे देती हैं।

इसी समय वृन्दादेवी एक स्वर्णपिंजरा लिये आती हैं। इसमें एक शुक एवं एक सारिका विराजित हैं। शुक पक्षी कमरेमें जैसे ही प्रवेश करता है, स्तुति करने लगता है -

कुसुमसेज पौढौ पिय प्यारी, क्यों न करौ रस बत्तियाँ।
हँसौ परस्पर आनँद हुलसौ लटकि लटकि लपटौ क्यों न छतियाँ।।
अति रस रँग भीने रीझौ दोउ, एक तन मन, एक मति, एक गतियाँ।
रसिक सुजान निर्भय क्रीडहु दोउ अँग प्रतिबिम्ब निरखैं दुरि सखियाँ।।

शुकका पाठ समाप्त ही नहीं होता, इतनेमें ही सारिका अपना पाठ प्रारंभ कर देती है -

पौढौ पिय झीनो पट दै ओट।
संग श्रीबृषभानुतनया सरस रसकी मोट।।
मकर कुण्डल अलक अरुझैं हार गुँज ताटंक।
नील पीत दोउ अदल बदलैं लेत भरि भरि अंक।।
हृदय हृदय सौं अधर अधर सौं नयन नयन मिलाय।
भ्रौंह भ्रौंहन तिलक तिलक सौं भुजन भुज लपटाय।।
मालती अरु जई चम्पा सुभग जाति बकूल।
दास परमानंद सजनी वारैं चुन चुन फूल।।

शुक पुनः पाठ करने लगता है -

मोहन कुंज परम मंगल री।
किसलयदल कमलनकी शय्या तापै बिछई पीत पिछौरी।।
पूरन सकल मनोरथ जियके दम्पति पौढे हैं इकठौरी।
भुज दै सिरहाने अधरामृत पीवत कुँवरि राधिका गोरी।।
तन मन मिले एक दूजे सौं सौभग सीमा दोऊ जोरी।
कहैं श्रीभट्ट ओट है निरखैं ललितादिक सखियाँ दृगचोरी।।

शुक-सारीका पाठ सुनते-सुनते ही प्रिया-प्रियतम दोनोंके ही अङ्ग परस्पर पलटने लगते हैं। क्षणके करोड़वे हिस्सेमें ही राधा प्रियतम श्यामसुन्दर हो जाती हैं और प्रियतम प्रिया राधा हो जाते हैं। इस स्वरूप-परिवर्त्तनलीलाके मध्यमें यदि कभी कुछ क्षण विराम होता है तो दोनों युगल दम्पतिकी शयित छवि ऐसी मनोहारी होती है कि कुञ्जछिद्रोंमेंसे झाँककर देखनेवाली सखियाँ निहाल हो जाती हैं।

प्रिया-प्रियतम दोनोंके मुख एक दूसरेसे मिले हुए हैं। उनकी मिलनशोभा गोपन रहे, अस्तु मंजुश्यामाने उनके ऊपर एक झीनी चादर डाल दी है, फिर भी उस झीनी चादरके अन्तरालसे प्रिया-प्रियतम दोनोंका गौर-नील

मुखारविन्द अधरोंसे अधर सटाये, नयनोंसे नयन उलझाये स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा है। प्रियतम प्राणवल्लभकी अलकावलिके दो गुच्छे प्रियाके कपोलोंपर बिखरे हैं। प्रियाके आन्तर्हृदयकी मुसकानकी झलक उनके पद्मदलसे ओठों एवं अधरोंपर छलक आयी है। दोनोंके नेत्र गहरी निद्रामें शयित हैं। प्रियतमके वक्षस्थलपर प्रियाकी बनमाला पड़ी है एवं प्रियाका अञ्चल खिसककर शय्याके नीचे गिर गया है। प्रियतम श्यामसुन्दर एवं प्रिया दोनोंके ही मुखारविन्दपर छोटे-छोटे रतिश्रम-सीकर मुक्ताओंकी तरह झलमल कर रहे हैं।

निकुञ्जसे आठ हाथ हटकर अतिशय सघन एवं मनोहर झाडूके वृक्षोंकी पंक्तियाँ कुञ्जको चतुर्दिक् घेरे हैं। बस, वृक्षकी पंक्तियाँ ही झाडूकी तरह हैं किन्तु ये वृक्ष इतने सघन एवं हरेभरे हैं कि इनकी शोभा कहते ही नहीं बनती। सभी वृक्षोंकी डालें मोटी-मोटी हैं, किन्तु डालोंमें कहीं खुरदरापन नहीं है। डालका वर्ण भी बहुत सुन्दर स्वर्णिम है। इस स्वर्णिम वर्णकी डालपर हरीतिमाके स्थान-स्थानपर मनोरम छींटे पड़े हैं। इन वृक्षोंकी छोटी-छोटी टहनियोंसे भी शय्यापर शयित प्रिया-प्रियतमके स्पष्ट दर्शन हो जाते हैं।

इस मोहननिकुञ्जके निर्माणकी ही विलक्षण कलाचातुरी है कि इसमें छोटे-छोटे अनेकों छिद्र हैं। वैसे इस निकुञ्जके भीतरसे इन छिद्रोंका कुछ भी आभास नहीं होता, किन्तु बाहरसे पक्षीगण एवं भ्रमरावली इन छिद्रोंके माध्यमसे विहाररत प्रिया-प्रियतमकी शयित छविका दर्शनकर न्यौछावर हो उठते हैं। सखी मञ्जरियाँ भी इन छिद्रोंसे ही प्रिया-प्रियतमकी निगूढ प्रीतिशोभाके दर्शन करती हैं।

आज भी प्रिया-प्रियतमकी शय्याविहारकी शोभा निरखने इस कुञ्जको घेरे चतुर्दिक फैले झाऊ वृक्षोंकी डालियोंपर एक-एककर शनैः शनैः असंख्य पक्षीगण आ रहे हैं एवं मानो उनके अपने-अपने स्थान निर्धारित हों, उनपर आकर बैठ जा रहे हैं। वे अपने स्थानपर एक क्षण आसीन होते हैं, प्रिया-प्रियतमकी छवि अपने सम्मुखके छिद्रसे निरखते हैं एवं तब अपने प्रियजनोंको उस छविका दर्शन कराने पुनः उड़ जाते हैं। कुछ ही क्षणोंमें अपनी मित्रमण्डली सहित लौटते हैं और फिर अपने-अपने निर्धारित स्थानोंमें बैठ जाते हैं। उनकी मित्रमण्डली भी, जो भी स्थान उपलब्ध होता है, वहीं चुपचाप शान्त विराजित हो जाती है।

भिन्न-भिन्न वर्णके, आकृतिके, छोटे-बड़े, भिन्न-भिन्न बोलियोंमें मधुर कलरव करनेवाले असंख्य पक्षी इस कुञ्जको चतुर्दिक् घेरकर झाऊकी तरहके सुरम्य वृक्षोंमें विराजित हैं। ये एक क्षण नयन उन्मीलित करते हैं फिर किसी-न-किसी छिद्रमेंसे प्रिया-प्रियतमकी परस्पर आलिंगित युगल छविका दर्शन करते हैं, उस छविको अपने-अपने सुदीर्घ कर्णविलम्बी नेत्रोंमें भरते हैं एवं उसे फिर अपने हृदयदेशमें लेकर स्थायीरूपमें बसा लेनेके लिये अपने नयन निमीलितकर निस्पन्द ध्यानमें डूब जाते हैं।

इस प्रकार पक्षीगण शान्त निस्पन्द ध्यानस्थ आसीन हैं किन्तु अचानक ही इन पक्षियोंके मध्य एक सारिका उड़ती हुई आती है और एक उन्नत सुमनोहर डालपर बैठ जाती है। डालपर बैठनेके पूर्व यह इस कुञ्ज एवं चतुर्दिक् सभी झाऊ वृक्षोंकी परिक्रमा करती है। सारिकाका ठीक अनुगमन करता हुआ ही शुक भी आता है एवं वह सारिकाके बगलमें बैठनेकी चेष्टा करता है किन्तु जैसे ही वह सारिकाके पास बैठता है, सारिका उड़कर उससे कुछ दूरीपर बैठ जाती है। सारिका एवं शुकके आते ही सभी आसीन पक्षी उच्च स्वरसे उनका अभिनन्दन करनेको जय-जयकार करने लगते हैं।

'जय हो! हमारे प्यारे प्राणपति नीलमयङ्क नन्दनन्दनके प्यारे सखा शुक विचक्षणकी जय हो! जय हो सर्वशास्त्र-निष्णात प्रेमधर्मके पारङ्गत शुक शिरोमणिकी! प्रियतम श्यामसुन्दरकी यशोगाथाका निरन्तर गायन करनेवाले पक्षीकुलभूषणकी जय हो, जय हो!' शुकराज विचक्षण पक्षियोंके जयनादपर किञ्चित् लजाता हुआ कहता है - 'भाई एवं बहिनों! मुझ परम अज्ञानी पक्षी जातिके जीवकी जयजयकार कैसी ? जयजयकार तुम्हें करनी ही है तो कहो -

'ब्रजेन्द्रकुलचन्द्रकी जय हो! ब्रजजीवन-जीवनकी जय हो! चारु दीर्घ चञ्चलनयन श्यामसुन्दरकी जय हो! चिदानन्द सुधारससरोवरके प्रस्फुटित नीलपद्मकी जय हो! न भूतो न भविष्यति निरुपम निरुपाधि अभूतपूर्व यशोदोत्सङ्गलालितकी जय हो! अनिन्द्यसुन्दर श्रीकृष्णचन्द्रकी जय हो! सदा ही जय हो।'

सभी पक्षी उच्चस्वरसे जयजयकार कर उठते हैं। इन पक्षियोंके कोलाहलसे कुञ्जान्तर्गत शयित प्रिया-प्रियतमकी निद्रा खुल जाती है। कुञ्जान्तर्गत पिंजरेमें आसीन सूक्ष्मधी सारिका उच्चस्वरमें बोल उठती है- 'हे शुक! इन दुर्बुद्धि पक्षियोंको जाकर शान्त करो, न! ये न तो स्वयं विश्राम करते हैं, एवं कुञ्जमें शयित प्रिया-प्रियतमके विश्राममें भी अपने कोलाहलसे विघ्न उपस्थित कर देते हैं। जाओ! भाई! इन दुर्बुद्धियोंको सही बुद्धि आनी ही कठिन है।'

सारिकाका सम्बोधन सुनते ही शुक पिंजरेसे उड़कर प्रिया-प्रियतमकी परिक्रमाकर द्वारसे बाहर वनमें निकल जाता है। शुकके बाहर जानेके पश्चात् सभी पक्षियोंका कोलाहल पुनः कुञ्जमें प्रतिध्वनित हो उठता है। इस बार सारिकाके नेतृत्वमें पक्षीगण रानीकी जय-जयकार कर रहे हैं।

प्रियतम शय्यामें बैठे-बैठे ही अपनी प्रियाकी जय-जयकारध्वनि सुनकर उसके मुख-सरोजपर गंभीर प्रेमभरी दृष्टि डालते हैं। प्रिया लज्जासे निम्नमुख कर लेती हैं। इतनेमें ही सारिका भी उड़कर बाहर चली जाती है।

सारिकाके जाते ही वृन्दादेवी निकुञ्जके पूर्वद्वारसे प्रवेश करती हैं। वृन्दा निकुञ्जमें जाकर प्रिया-प्रियतमकी शय्याके पास हँसती हुई खड़ी हो जाती हैं। वे पहले तो दोनोंकी निद्रा भङ्ग हुई देखकर जोरसे हँसने लगती हैं, फिर सँभलकर प्रियतमकी ओर उन्मुख होती हुई कहती हैं - 'प्राणवल्लभ! पक्षियोंकी कलहलीलाका खेल देखोगे ?'

प्रिया-प्रियतम दोनों एक दूसरेकी ओर दृष्टि डालते हैं एवं मुसकाते हुए स्वीकृतिमें अपनी गरदन हिला देते हैं।

वृन्दा - 'अच्छा, देखो! सर्वथा मन्द-मन्द चरण रखते हुए मेरा अनुगमन करना, तनिक भी शब्द नहीं हो, अन्यथा फिर खेल बिगड़ जायेगा।'

वृन्दाके पीछे अनुगमन करते प्रिया-प्रियतम पूर्वी निकुञ्जमें पहुँचते हैं। पूर्वी निकुञ्जमें अतिशय सुकोमल हरी-हरी दूब फैली है। उसी दूर्वाप्राङ्गणकी तीन दिशाओंकी दीवारें लताजालनिर्मित हैं, जिनमें सुन्दर पुष्पोंकी बेलोंके छिद्र एवं झरोखे हैं। इन झरोखोंसे बाहर झाऊके वृक्षोंसे छन-छनकर अतिशय शीतल समीर आ रही है। इन झरोखोंके नीचे सुन्दर स्वर्णकी चौकियाँ हैं, जिनमें अतिशय सुकोमल गलीचे एवं उपधान तकिये लगे हैं। उत्तरकी ओरकी दीवारके सहारे लगी स्वर्णचौकीपर वृन्दा प्रिया-प्रियतमको विराजित कर देती है एवं आदेश देती है कि निश्शब्द उत्तरकी ओर मुखकर आसीन हो जावें एवं झरोखोंसे झाऊ वृक्षकी ओर दृष्टिपात करें। प्रिया-प्रियतमके साथ-साथ सभी सखियाँ चली आयी हैं अतः उत्तर दिशाकी ओर स्थित सभी चौकियोंपर विराजित झरोखों एवं छिद्रोंसे सखियाँ भी झाऊ वृक्षपर दृष्टि डाल रही हैं।

झाऊ वृक्षकी मोटी डालपर जो पश्चिमकी ओर फैली है, एक शुक पक्षी पूर्वकी ओर मुख किये विराजित है, साथ ही कुछ ही दूरीपर एक सारिका पश्चिमकी ओर मुख किये आसीन है।

वृन्दादेवी अति मन्द स्वरमें प्रिया-प्रियतमसे कहती है - 'देखो! इन दो पक्षियोंमें झगड़ा हो रहा है। अन्यान्य पक्षी इन दोनोंके पास बैठे-बैठे इनके पक्ष-विपक्षके तर्क सुन रहे हैं, इनका झगड़ा कैसा विचित्र है, इसका आस्वादन करानेके लिये ही तुम लोगोंको यहाँ ले आयी हूँ।'

वृन्दाकी बात सुनकर झरोखोंपर बैठे प्रिया-प्रियतम एवं सभी सखीसमुदायकी दृष्टि उस शुक एवं सारिका पक्षीपर केन्द्रित हो जाती है। सभी उत्सुकतापूर्वक इनकी कलहका हेतु जाननेको समुत्सुक हो उठते हैं।

इसी समय सारी बोल उठती है - 'अच्छी बात है, परन्तु अब तुम मेरे पास क्यों फुदक-फुदककर आ रहे हो ? मेरा-तुम्हारा सम्बन्ध समाप्त, मैं तो तुमसे बोलना भी नहीं चाहती।'

शुक कहता है - 'देखो! सम्बन्ध रखना – नहीं रखना, बोलना – नहीं बोलना तुम्हारी मर्जीपर है। किन्तु तुम्हीं बताओ, मैं तुम्हारे लिये घोर असत्य बात कैसे कह दूँ?'

सारी - 'नहीं, नहीं! तुम सत्यधर्मका पालन करो, तुम्हारे सर्वस्व वे नन्दतनय भी तुम्हारी दृष्टिमें पूरे सत्यधर्मके प्रतिपालक होंगे, परन्तु मेरी दृष्टि दूषित है। मुझे तो वे पूरे लम्पट, निष्ठुर एवं हृदयहीन दृष्टिगोचर होते हैं। जो ऐसे हृदयहीन लम्पटका पक्षधर हो, उससे मैं कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहती।'

सारीकी उक्ति समाप्त होते ही वृक्षमें आसीन अनेक मादापक्षी 'उचित है, उचित है!' का घोष कर बैठती हैं।

इतनेमें ही कुछ नरपक्षी बोल उठते हैं - 'भाई! प्रथमतया शुकका पक्ष भी तो सुनो। हमारे प्राणवल्लभ सखाके विरुद्ध बिना पक्ष-विपक्षकी दोनों बातें सुने निर्णय दे देना अनुचित है। ये स्त्रीपक्षी इतनी अधीर क्यों होती हैं ?' 'शान्त, शान्त'की ध्वनिके साथ पुनः वातावरण निस्पन्द हो उठता है।

शुक - 'देखो सारिके! इस तरह सम्बन्ध-विच्छेद कर लेना एवं मानिनी होकर रूठ जाना उचित नहीं है। पहले पूरे तथ्योंका अनुसंधान करके सत्य स्थितिका तो ज्ञान करो। मेरा तो दृढ विश्वास है कि कोई भी व्यक्ति एक बार अपनी दृष्टि निष्पक्ष करके मेरे सखा श्यामसुन्दरके निरीह प्रेमी नयनोंकी ओर देख भर ले, फिर वह यह कदापि नहीं कह सकेगा कि मेरे प्राणसखा कैतव, लम्पट एवं निष्ठुर हैं। हाँ, यह सत्य है कि वे सबको निराविल प्रेम करते हैं।'

सारिका कुछ नहीं बोलती किन्तु प्रिया-प्रियतम एवं सखियाँ सबके मुखपर मुसकराहट खिल उठती है। सारिका फिर बोलती है - 'भाषाके छलसे तुम विद्वान् बने दूसरोंके नेत्रोंमें भले ही कोई भी चित्र प्रस्तुत कर दो, किन्तु जो एकको पूरा प्रेम नहीं कर पावे, एकका पूर्णरूपसे नहीं हो सके, वह बहुनायक, लंपट ही होता है। उसे सबको निराविल प्रेम करनेवाला कहना तुम्हारी मात्र शाब्दिक वञ्चना है।'

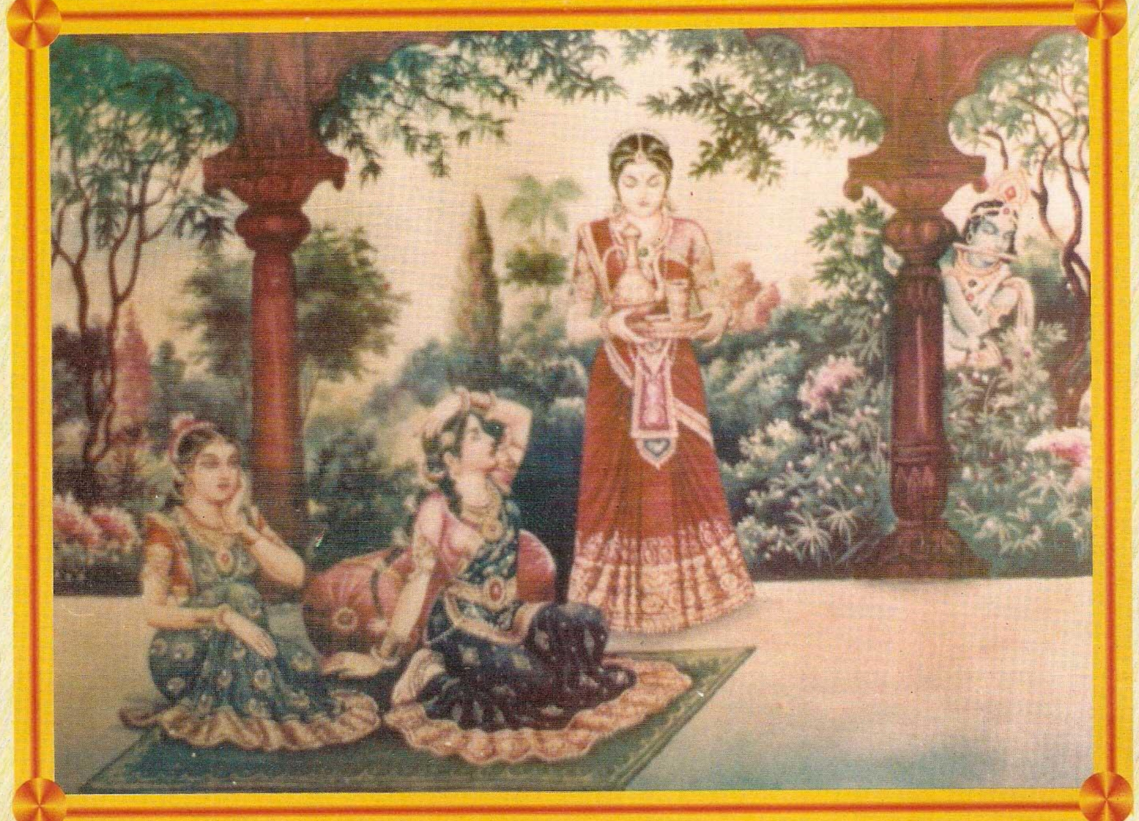
सारिकाकी स्पष्ट उक्ति सुनकर सभी मादापक्षी 'धन्य, धन्य' पुकारकर हर्षित हो उठते हैं।

सारिकाकी कटु किन्तु सत्य उक्ति सुनकर शुक नयनोंको निमीलित कर लेता है एवं ध्यानस्थ होकर अपने सखाका स्मरण करता हुआ - 'प्राणप्यारे श्यामसुन्दर! मेरे प्रियतम श्यामसुन्दर!' कहता हुआ प्रेमपुलकित नृत्य करने लगता है।

शुककी आन्तरिक प्रेमभरी कीर्त्तनध्वनि सर्वत्र सभी पक्षियोंमें प्रियतम श्रीकृष्णके प्रति विशुद्ध गुणदृष्टि करानेमें हेतु हो उठती है। सारिकाका हृदय भी कुछ प्रेमद्रवित हो जाता है एवं वह भी प्रियतम प्राणपति श्रीकृष्णके प्रति रोषको विस्तृत करने लगती है। शुकके विशुद्ध निर्मल एकाङ्गी प्रेमभावका असर उसपर भी होने लगता है। वह प्रियतम प्राणवल्लभकी नाममाधुरीमें आकर्षित हो उठती है।

शुक कुछ कालतक पंख फुलाये रोमाञ्चित नृत्य करता है फिर शान्त गंभीर हुआ पुनः सारिकाको मनाने लगता है। शुक कहता है - 'सत्य सत्य सारिके! तू मेरे हृदयमें झाँककर देख न! मैं कुछ भी कृत्रिम कथा तुझे नहीं कहता। मेरे हृदयमें एक क्षणके लिये भी कभी यह विश्वास नहीं जमता कि मेरे प्राणसखा किञ्चित् भी निष्ठुर हो सकते हैं। अपितु यह भाव तो अवश्य कभी-कभी उदित हो जाता है कि सम्पूर्ण स्त्रीजाति ही अपने मूल स्वभावसे निष्ठुर होती है एवं बृषभानुनन्दिनी श्यामप्रिया भी अपने स्त्री-स्वभावानुसार इसकी अपवाद नहीं है। मेरे सम्मुख इसके अनेक उदाहरण हैं।'

'हाँ! उस पिछली पूर्णिमाकी ही बात है। प्रियतम प्राणवल्लभ सर्वत्र वनमें फैली चन्द्रिकाकी शोभाका वर्णन कर रहे थे कि सुनते-सुनते ही प्रिया रूठ गयी। उनका अकारण आक्षेप था कि प्रियतम तो चन्द्रावलीकी स्तुति कर रहे हैं। बस, प्रिया बृषभानुकिशोरी एक जामुन वृक्षके नीचे बिछी परम शोभन सुकोमल कमलशय्यापर रूठकर विराजित हो



स्याम रूप में तेज अधर रस जलहि मिलाऊँ ।
मुरलि अकास मिलाय प्रान में प्राननि छाऊँ ।।
(जल-सेवा-निरत श्रीसुदेवीजी) (पृष्ठ २०३)

गयीं। ओह! चन्द्रमाकी शुभ्र ज्योत्स्नासे यमुनापुलिनका अणु-अणु भीग रहा था। हाथपर कपोल टेके नयन मूँदे प्रिया रूठी बैठी थी। अद्भुत शोभा थी उसकी। सारिके देख, सत्य कहता हूँ, तुम्हें प्रसन्न करनेके उद्देश्यसे नहीं, रानीका सौन्दर्य तो सर्वजयी है ही। ओह! उसके हाथपर दृष्टि चली जाय तो यही अनुभव हो रहा था कि नवविकसित अनन्त पद्मश्री इसके हाथोंके सौन्दर्यके सम्मुख फीकी है। मुखारविन्दकी ओर दृष्टि जाय तो यही अनुभव होता था कि अनन्त चन्द्रमण्डल इसपर न्यौछावर कर दिये जावें। वस्तुतः सारिके! स्वयं वीणावादिनी वाग्देवीमें भी शक्ति नहीं है कि प्रियाकी शोभाका कोई सही शब्दचित्र प्रस्तुत कर सके। वह वस्तुतः बहुत ही निम्न प्राकृत स्तरका ही कोई शब्दचित्र उपस्थित भले ही कर सके। किन्तु उस वर्णनमें वस्तुतः प्रियाके सौन्दर्यकी सब पवित्रता, उनकी मर्यादा एवं शील ये तीनों ही पूर्णतया विनष्ट हो जाते हैं। सारिके! जो कुछ मैंने उस समय देखा उसका शब्दचित्र किसी कविने अपनी सर्वसामर्थ्य लगाकर कितना सुन्दर समुपस्थित किया है -

पहले तो निहारो लाल मानिनीकी मान-शोभा,
पाछें तो मनाय लीजो प्यारे हो गोविन्दा।
कर पर धरि कपोल बैठी री नयन मूँद,
कमल बिछाय मानो सोयो सुख चन्दा।।
रिस भरी भौंह मानो भौंर बैठे अरबराय,
इन्दु तर आयो मकरन्द अरविन्दा।
नन्ददास प्रभु ऐसी काहेकों रुसैये बलि,
जाके मुख देखे ते मिटत दुख दंदा।।

'ओह! प्रियाकी आनन-शोभा उस समय ऐसी ही थी मानो पूर्ण राकाचन्द्र कमलासनपर शयित हो। रोषके कारण प्रियाकी भौहें कुछ ऊपर उठकर विशेष प्रकारसे टेढी हो गयी थीं। सचमुच मुखपर खिंचीं भौहोंकी ऐसी ही शोभा हो रही थी मानो प्रियाके आननको मकरन्दका भण्डार मानकर अतिदल उसके ऊपर मँडरा रहे हों। ओह सारिके! मैं तो चकित मुग्ध हो गया था। मेरे नयन उस शोभाको निहारते थक ही नहीं रहे थे। उसी समय ललिता प्यारे श्यामसुन्दरकी बाँह पकड़े वहाँ आयी। प्यारे नीलसुन्दर मेरे प्राणसखा अपनी प्रियाके चरणोंके पास शय्याके नीचे ही बैठ गये। मेरे प्राणवल्लभ प्रेममूर्त्ति सखाने अपने हृदयका सम्पूर्ण प्रेम न्यौछावर करते हुए न जाने कितने कालतक उसे मनानेकी चेष्टा की। किन्तु तेरी सखी प्रियाने अपने नयन खोलकर भी उनकी ओर नहीं देखा। मेरे सखाका मुख उदास हो गया, किन्तु तुम्हारी रानी टस-से-मस नहीं हुई। सारिके! तू भी तो वहाँ उपस्थित थी। मेरे सखाका अपराध ही क्या था, उनके मनमें तो किसी चन्द्रावलीका उस काल ध्यान ही नहीं था, वे तो छिटकी चन्द्रिकाकी शोभाका बखान कर रहे थे।'

'अब तू ही बता, मेरे सखा निष्ठुर, कितव हैं कि रानी बृषभानुनन्दिनी ही निष्ठुर हैं - मैं यह निर्णय तेरे ही मुखसे सुनना चाहता हूँ।'

उसी समय सभी नरपक्षी कोलाहल कर उठे - 'नारीजाति स्वभावतः ही निष्ठुर, आत्मकेन्द्रित होती है-यही सत्य है। सारिका स्त्रीपक्षी होनेसे स्त्रीजातिकी पक्षपातिनी है। प्रिया कठोर हैं, मानके समय वे दयाको अपने भीतर प्रविष्ट ही नहीं होने देती हैं।'

शुकके मुखसे रानीके सौन्दर्य एवं रूपका साङ्गोपाङ्ग बखान श्रवणकर सारिका प्रेम-पुलकित हो उठी थी। वह प्रसन्नताकी मुद्रामें बोल उठती है - 'अरे नरजातिके पक्षियों! तुम्हें प्रियाके हृदयकी आन्तरिक प्रीतिका ज्ञान ही कैसे संभव है ? तुम घोर अहङ्कारी हो, अभिमानमें भरे हो, मात्र ऊपरी चाटुकारीकर अपनी कामनापूर्त्ति हेतु नारीजातिको ठगते रहते हो। वस्तुतः नारी कैसी आत्मसमर्पणकी प्रतिमा होती है, इसकी तुम्हें भावगन्ध ही नहीं मिल पाती। कभी विधाता

तुम्हें स्त्री बनावे, तभी तुम समझोगे कि सम्पूर्ण समर्पणरूप मदीयात्मक प्रेममें 'मान' क्यों होता है?' वह निष्ठुरता नहीं, प्रगाढ प्रीतिका मात्र वक्र आचरण है। तुमने तो मात्र ऊपरी व्यवहार देखकर मेरी प्राणप्रियाको निष्ठुर उद्घोषित कर दिया। अब मैं प्रेमके ककहरा - प्राथमिक शब्दज्ञानसे भी अपरिचित, अभिमान एवं गर्वसे फूले तुम्हारे जैसे प्राणियोंके सामने प्रियाके प्रेमकी सुकोमलतम अनुभूति प्रकट भी कैसे करूँ ? मेरी रानीके प्रेममय सदय हृदयकी रूपरेखा तुम्हारी कल्पनामें भी नहीं आ सकती। सारकी बात तो इतनी ही है कि तुम सभीने एवं इन शुक महोदयने भी मेरी प्राणप्रियाको जो निष्ठुर सिद्ध किया है, वह तो मात्र तुम सभीकी नासमझी है। हाँ! अपने हृदयका भीतरी घाव अब यदि मैं तुम सबके सम्मुख दिखलाऊँ तो तुम कहीं भी मुख छिपाने लायक ही नहीं रहोगे। बिना किसी संशयके तुमको यही कहना पड़ेगा कि तुम सभीके आराध्य नीलसुन्दर पूरे कपटी, लम्पट एवं निष्ठुर हैं।'

शुक एवं सभी नरपक्षी सारिकाका पक्षप्रतिपादन सुनकर गंभीर हो जाते हैं। कुछ क्षण मौनके उपरान्त शुक कहता है - हाँ! हाँ! हम सभी तो जो कहते हैं, वह नासमझी है किन्तु जिन्होंने समझका ठेका ले रखा है, वे अपनी पूरी बात कहें तो सही!'

सारिका अतिशय भावुक हुई गदगदाये कण्ठसे वार्त्ता प्रारंभ करती है - 'अहो शुक! यह पुरानी नहीं, बीते कलकी ही बात है। सूर्यमन्दिरकी ओर मैं उड़ती चली गयी थी। वहाँ मेरी रानी बृषभानुकिशोरी एकाकिनी आसीन थीं। रानीके हाथमें तुलसीकाष्ठकी एक माला थी। उनकी अँगुलियोंका हलन-चलन यही प्रकाशित करता था कि वे किसीका नामजप कर रही हैं। मैने इधर-उधर दृष्टि दौड़ाई तो ललितादि सभी सखियोंको उपवनमें अन्य कार्योंमें उलझे पाया। रानीके नेत्र निमीलित थे एवं उनके बड़े-बड़े कमलसे सुन्दर नयनोंसे अश्रुबिन्दु झर रहे थे। ये अश्रुबिन्दु रानीके नेत्रोंसे टपकते उनके कपोलोंपर धारावत् प्रवाहित हो रहे थे एवं उनके उभरे उरोजोंको आर्द्र कर रहे थे। अश्रु—गदगदाये कण्ठसे रह-रहकर मध्यमें एक ही उक्ति निकल रही थी - 'जीवनसर्वस्व! मैं तो सर्वकालमें सभी अवस्थाओंमें सर्वरूपेण तुम्हारी, एकमात्र तुम्हारी ही हूँ।' हे शुक! रानीकी प्रेमावस्था निरख-निरखकर मैं तो गद्गद् हो रही थी, किन्तु इसके आगे जो भी दृश्य मेरे सम्मुख आया, उसे अनुभव करके तो मेरे आश्चर्यकी सीमा ही टूट गयी। देखती हूँ - रानी हठात् खड़ी हो गयी हैं। उनके मुखसे अनर्गल शब्द निकल रहे हैं। पहले तो उनकी शब्दावली अस्पष्ट थी, किन्तु पश्चात् उच्चस्वरसे बोलनेके कारण मुझे उनके शब्द स्पष्ट श्रवणगोचर होने लगे। रानी बोल रही थी -

होठ जीवबन्धु बारौं, हाँसी सुधाकन्द वारौं,
कोटि-कोटि चन्द वारौं राधा - मुखचन्द्र पै।

'रानी बारबार एकमात्र इन्हीं शब्दोंकी आवृत्ति कर रही थी। मैं आश्चर्यचकित होकर यही विचार कर रही थी कि ओह! यह भला कैसी प्रेमदशा है कि आज तो मेरी रानी स्वयं अपने मुखसे ही अपनी शोभाका वर्णन कर रही है। मैं कुछ क्षण तो रानीकी दशा देखती रही, तत्पश्चात् मुझे यह समझमें आ गया कि इस समय रानी अपने आपको ही प्रियतम ब्रजेन्द्रनन्दन माने हुए हैं। इस प्रेमोद्दीपन अवस्थामें मेरी रानीके मुखसे शब्द निस्सृत हो रहे थे - 'ओह! ब्रजका प्रत्येक कुञ्ज छान डाला, निकुञ्जोंके भीतर भी सभी प्रासादोंके कोने-कोने निरख-परख लिये, अन्ततः प्रिया गयी कहाँ ? ओह! कहीं उसने अपने प्राण तो नहीं त्याग दिये? क्या वह यमुनाजलमें प्रवाहित हो गयी? बस, यदि उसने मेरे विरहमें प्राण ही त्याग दिये तो अब मैं जीवित रहकर क्या करूँगा। अपना यह निस्सार जीवन ढोते रहनेसे लाभ ही क्या? किन्तु कहीं वह छिप गयी हो, जीवित हुई तो मेरे बिना तो वह जीवनधारण किये रह ही नहीं पावेगी! तो क्या वह मुझसे रूठ गयी है? उसने उचित ही किया है। मैं इसीके योग्य हूँ किन्तु.....ओह! अब तो मेरा हृदय ही विदीर्ण हो रहा है। एक क्षण भी उसके विहीन मैं अब नहीं रह पाऊँगा। मेरी हृदयेश्वरी! इतना कठोर दण्ड तुम्हारे हाथों मुझे मिले, यह उचित नहीं। ओह प्राणेश्वरि! मुझे क्षमा करो। ओह! क्या करूँ, कौन ऐसा है जो मेरी प्रियाके पास मेरी बात पहुँचा दे। अच्छा, एक पत्र तो लिख ही देता हूँ। पत्रोत्तर आनेतक तो प्राणोंको जीवित रखता हूँ। इस पवनको ही प्रार्थना करता हूँ, वही मेरे सन्देशको मेरी प्राणप्रियाको दे देगा।'

'शुक! यह कहकर रानी बैठ जाती है। प्रियाके पार्श्वमें ही कमलके पुरैन पत्रोंपर कुछ कमलके विकसित पुष्प रखे हुए थे। रानीने उनमेंसे एक बड़ा पत्ता ले लिया एवं उसमें अपने नखसे ही कुरेदकर शब्द अङ्कित करने लगी।

क्षम्यतामपरं कदापि तवेदृशं न करोमि।
देहि सुन्दरि दर्शनं मम मन्मथेन दुनोमि।।(गीतगोविन्द)

'इसे अङ्कित करते-करते ही रानी भावमें इतनी निमग्न हो जाती हैं कि उन्हें तनिक भी बाह्यज्ञानं नहीं रहता। कुछ क्षणोंतक रानीकी ऐसी ही स्थिति रहती है। इसके पश्चात् जब उसके नयन उन्मीलित होते हैं, तो वह उस पत्रको देखकर पुनः बोल पड़ती हैं - 'ओह! मेरे प्राणनाथने पत्र भेजा है। अच्छा, पढ़ूँ तो सही, क्या अङ्कित किया है?'

'पत्र पढकर रानी उसको हृदयसे लगा लेती है। पुनः रानी भावदशामें डूबने लगती हैं - ''प्राणेश्वर! आह, मेरे जीवनधन! तुमने तो कोई अपराध किया ही नहीं। फिर तुमने कैसे मान लिया कि मैं रूठी हूँ। अरी ललिते! विशाखे! अरी रूप, ओ विमले! प्रियतमका यह पत्र मेरे पास कौन लाया है? प्रियतम न जाने कहाँ हैं? उनकी कैसी विचित्र प्रेमदशा है? अरी, तुम सब कहाँ चली गयीं? प्रियतमको ढूँढने तुरन्त जाओ न! अवश्य ही अतिशय व्याकुलताकी अवस्थामें उन्होंने मुझे पत्र दिया है।' यह कहती पत्रको वक्षस्थलसे सटाये रानी पुनः बाह्यज्ञानशून्य हो जाती हैं।

'हे शुक! मैं किङ्कर्त्तव्यविमूढ हुई तत्क्षण ही तुम्हारे प्राणसखा प्रियतम श्यामसुन्दरको उनकी प्राणप्रियाकी दशा बताने दौड़ी किन्तु तुम्हारे निष्ठुर, कपटी सखाकी जो करतूत देखी तो सिरसे पैरतक जल उठी। तबसे अबतक जली ही जा रही हूँ। तुम्हें श्रवण करना ही है तो सुन लो! मैंने प्रत्यक्ष अपनी आँखोंसे देखा कि प्रियतम श्यामसुन्दर एक वृक्षके तले कमलासनपर विराजित हैं, एवं उनके सम्मुख एक नवतरुणी विराजित है। वे उसके कपोलोंपर सुन्दर चित्र-रचना कर रहे हैं।'

'मुझपर तो जैसे वज्रपात ही हो गया। कहाँ तो इनके विरहमें रानीकी ऐसी विषम भावदशा एवं कहाँ इनकी यह विविधनारी-लंपटता! मैं तो विचार मात्रसे ही मूर्च्छित हो गयी। पता नहीं कितने काल पश्चात् मुझे बाह्यज्ञान हुआ। जब मुझे बाह्यज्ञान हुआ तो वहाँसे तुम्हारे सखा गायब थे। उड़कर पुनः मैं रानीको सम्हालने सूर्यमन्दिर आयी। वहाँ देखती हूँ कि सखियाँ कोलाहल कर रही हैं। प्रियतम श्यामसुन्दर रानीको अङ्कमें लिये असीम प्रेम प्रदर्शित कर रहे हैं। तभीसे मैं पगली हुई रट लगा रही हूँ - श्रीकृष्ण कपटी हैं, निष्ठुर हैं, बड़े लम्पट हैं।'

सारिकाकी वाणी सहसा उग्र एवं तीखी हो जाती है - 'शुक! तुम मानो, न मानो, भले ही कपटी-शिरोमणिकी चाटुकारी करो, किन्तु सत्य-की-सत्य बात यही है कि नीलमणि श्रीकृष्ण बहुनारीलम्पट, हृदयहीन, कपटी हैं। मैं तो यह हजार बार, लाख बार कहती जाऊँगी।'

सारीकी वार्त्ता सुनते-सुनते ही निकुञ्जमें दीवारके पार्श्वमें आसीन सखी-समाज, रानी एवं प्रियतम श्यामसुन्दर - सभी खिलखिलाकर हँस पड़ते हैं। वह हँसी इतनी कोलाहलपूर्ण होती है कि पक्षीसमाज चौकन्ना होकर इधर-उधर देखने लगता है। प्रियतम नीलमणि श्रीकृष्ण निकुञ्जके उत्तरी द्वारको धक्का देकर खोल देते हैं। वे प्रियाके स्कन्धदेशपर हाथ रखे पक्षीसमाजके मध्य आ जाते हैं। सखियाँ एवं वृन्दादेवी उनके पीछे-पीछे उसी वनप्रदेशमें आ जाते हैं जहाँ पक्षी समाज जुटा था। श्यामसुन्दर वृन्दाके कानमें वादी-प्रतिवादी शुक एवं सारिकाको आमंत्रण देनेका आदेश देते हैं। वृन्दादेवीकी आज्ञासे दोनों ही शुक एवं सारी आ जाते हैं। ललिता सारिकाकी पीठ सहलाती हुई कहती है - 'सारिका सखी! तू सत्य-सत्य कहती है, ये मात्र मुखके, नामके ही कृष्ण नहीं हैं, इनका हृदय भी सर्वथा सर्वांशमें काला है। ये लम्पट ही नहीं सर्वदोषागार हैं। फिर भी सारिका! क्या करें, हम सबके एवं तेरे भी यही प्राणपति हैं। हम सभीका प्रारब्ध इनसे ही बँधा है।'

सारिका लजा जाती है एवं सखियाँ हँस पड़ती हैं। इधर प्रियतम श्यामसुन्दर एवं प्रिया सारीको अपनी भुजामें बैठानेका सङ्केत करते हैं। सारिका श्रीकृष्णकी भुजामें एवं शुक प्रियाकी भुजामें बैठ जाता है।

वृन्दा शुकसे प्रश्न करती है - 'रे शुक! तू क्या देख रहा है?'

रानीकी भुजाओंमें आसीन शुक कहता है - 'ओह! रानीकी सत्ता ही नहीं है, रानीके रोम-रोममें, अणु-अणुमें मात्र उसके प्रियतम-ही-प्रियतमको भरा देख रहा हूँ।'

अब वृन्दा आनन्दमें भरकर सारिकासे प्रश्न करती है-'बोल सारिके! तू नेत्र मूँदे किस भावदृश्यको देख रही है?'

सारिकाके नेत्रोंसे अश्रुधारा बह उठती है। उसके पंख रोमाञ्चसे उत्फुल्ल हो उठते हैं। उसका कण्ठ भर आता है। वह गद्‌गद् कण्ठसे उच्चस्वरसे पुकार उठती है - 'जय हो! प्यारे प्रियतमकी बलिहारी है। उनके रोम-रोममें, अणु-अणुमें मात्र राधारानी-ही-राधारानी समायी हैं।'

शुक एवं सारिकाकी कण्ठध्वनिमें ध्वनि मिलाकर सभी पक्षीगण बोल उठते हैं - 'जय हो, जय हो, जय हो।'

प्रियतम श्यामसुन्दर एवं रानी मेवा मँगाकर सभी पक्षियोंको खिलाते हैं। शुक एवं सारिकाको तो रानी एवं प्रियतम अपनी भुजामें ही बिठाकर मेवा खिलाते हैं। मेवा खाती हुई भी सारिका बोल उठती है - 'प्रियतम निष्ठुर एवं लम्पट तो हैं ही, प्रेमके जादूगर भी हैं। प्रेमकी जादूगरीसे ही वे अपने सारे दोष छिपा लेते हैं। हमारी भोली रानीको ठगते हैं।'

यह कहती हुई सारिका उड़कर वृक्षपर आसीन हो जाती है। उसके नेत्रोंके गोलक प्रेममें मतवाले हुए इस प्रकार भाव प्रदर्शन कर रहे हैं जिसे देखकर सभी सखियाँ हँस पड़ती हैं। रानी प्रियतमकी ओर सहास दृष्टिपात करती हैं एवं प्रियतम रानीकी ओर। ललिता हँसकर कहती है - 'हाँ सारी! तू सर्वांशमें सत्य बोल रही है।'

आकर तृणकी उस वेदी पर लेकर सोलह कौड़ी, प्रियतम!
फिर दाँव परस्पर अङ्गोंका वे लगा खेलते थे, प्रियतम!
जो दाँव जीत लेता-लेती उसको अनुभव होता, प्रियतम!
मैं हारा, हार गयी, ऐसे रसभरे नियम कुछ थे, प्रियतम!।७६४।।

इसी समय तृणकी एक मनोरम वेदीपर सोलह कौड़ियाँ लेकर दम्पति परस्पर अपने अंगोंका ही दाव लगाकर नवीन क्रीड़ा आरम्भ करते। जो दाव जीत लेता अथवा जीत लेती उसको यही अनुभव होता कि मैं तो हार गया, मैं तो हार गयी। उस कौड़ियोंकी क्रीड़ाके कुछ ऐसे ही रसभरे नियम जो बने हुए थे।.... ....।।७६४।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

·आकर तृणकी उस वेदीपर लेकर सोलह कौड़ी, प्रियतम!

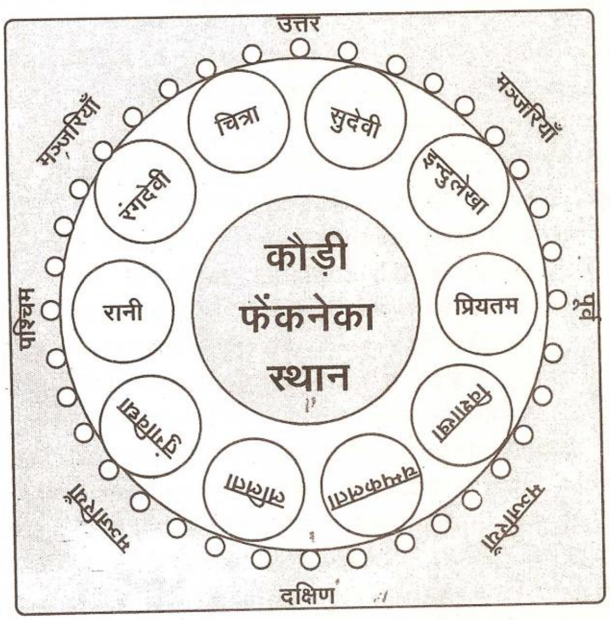
प्रिया-प्रियतम राधा-माधव तृणोंसे बनी हुई अत्यन्त सुन्दर एक वेदीमें विराजित हैं। यह तृणवेदी कटहल वृक्षके बने निकुञ्जके अन्तर्गत है। खम्भोंके रूपमें चार कटहल वृक्ष आठ-आठ गजकी दूरीपर चारों कोनोंमें स्थित हैं। इनकी मोटी-मोटी शाखाएँ आपसमें जुड़कर गुम्बदके आकारकी छत बन गयी है। वृक्षोंको घेरकर अंगूरकी बेलोंने दीवार बनादी है। वैसे ये चारों वृक्ष फलोंसे लदे हैं। छोटे-बड़े पनस फल इनकी डालियोंमें झाड़-फानूससोंकी तरह लटक रहे हैं। पके पनस फलोंसे ऐसी विलक्षण सौरभ निकल रही है कि पूरा निकुञ्ज महक रहा है। अंगूरकी बेलों एवं कटहल वृक्षकी शाखाओंसे बने ढाँचेको वृन्दारानीके निर्देशनसे बया पक्षियोंने तृणोंके जालसे ऐसा गूँथा है कि वर्षा, शीत, घाम-किसी भी ऋतुमें यह कुञ्ज पूर्णतया सुरक्षित है। बया पक्षियोंके सहयोगसे तृणजालनिर्मित होनेसे ही इसे तृणवेदी कहा जाता है।

चारों दिशाओंमें इस वेदीके चार विशाल द्वार हैं। इन द्वारोंके आसपास भी अंगूरके गुच्छे लटक रहे हैं। अंगूर सहित फैली बेलोंकी शोभा ऐसी है मानो झालर लटक रही हों। आकारमें छोटे-छोटे अनेकों वर्णोंके पक्षी इन बेलों, तृणोंकी दीवारों एवं पनसकी डालोंपर इधरसे उधर फुदक रहे हैं। इनकी वाणी ऐसी मधुर है जिससे समस्त कुञ्ज ही एक अनिर्वचनीय मधुर मन्द स्वरलहरीसे गुञ्जित हो रहा है।

निकुञ्जकी चारों दीवारोंके किनारे-किनारे एक विचित्र जातिके छोटे-छोटे तीन-तीन अंगुल ऊँचे नीले रङ्गके पौधे उगे हुए हैं। ये पौधे आपसमें ही एक दूसरेसे गुम्फित हैं। इनकी छोटी-छोटी पत्तियाँ ही पृथक्-पृथक् दृष्टिपथमें आती हैं। जड़ एवं टहनियाँ पूर्णतया ही इन सुकोमल पत्तियोंसे आच्छादित हैं। इन पत्तियोंके अतिरिक्त समग्र निकुञ्जकी फर्श नीले रङ्गके तेजस्वी प्रस्तरसे पटी हुई हैं। फर्श इतना सुचिक्कण है कि झुकते ही उसपर अपने मुखका प्रतिबिम्ब झलमला उठता है।

निकुञ्जके मध्यमें पीले वर्णकी रेशमी मोटी कालीन बिछी है। इसी कालीनपर प्रिया-प्रियतम एवं सखियोंमें अक्षक्रीड़ा हो रही है। रानी पूर्वकी ओर मुख किये हैं एवं प्रियतम श्यामसुन्दर पश्चिमकी ओर मुखकर ठीक इनके सम्मुख विराजित हैं। प्रियाके दक्षिण हाथपर थोड़ी दूरपर ललिता विराजित हैं एवं बायें हाथपर चित्रा विराजित है। प्रियतमके बायीं ओर विशाखा घुटना मोड़े बैठी है एवं दाहिनी ओर दक्षिणकी ओर मुख किये इन्दुलेखा विराजित है। विशाखाके बायीं ओर चम्पकलता अपने दक्षिण हस्तसे विशाखाके बायें स्कन्धदेशको पकड़े हुए बैठी है। तुङ्गविद्या ललिता एवं रानीके मध्यमें कुछ पीछे हटकर विराजित है। रानी एवं चित्राके मध्यमें थोड़ा पीछे हटकर रङ्गदेवी विराजित है। सुंदेवी इन्दुलेखा एवं चित्राके मध्यमे कुछ पीछे हटकर बैठी है। मञ्जरियाँ इन सभीको गोलाकार घेरे खड़ी हैं। खड़ी हुई मञ्जरियोंकी दृष्टि प्रिया-प्रियतम एवं सखियोंपर संलग्न हैं। अब अक्षक्रीड़ाका प्रारंभ होने ही वाला है। निम्नाङ्कित चित्रसे स्पष्ट रूपसे ज्ञात हो जाता है कि प्रिया-प्रियतमके साथ अन्य सखियाँ किस-किस दिशामें कहाँ-कहाँ बैठी हैं।

नकशा



प्रिया-प्रियतमके मध्यमें एक हाथ लम्बा एवं एक हाथ चौड़ा पीला मखमलका टुकड़ा बिछा है। इसमें अत्यन्त सुन्दर जरीकी कारीगरी किनारेपर की गयी है। मध्यमें जरीका कमलका एक पुष्प अङ्कित है। अक्षक्रीड़ाके सभी दाव इसमें विभाग एवं संख्यानुसार अङ्कित हैं। वस्त्रमें सोलह चौकोर विभाजन किये हुए हैं। नीचे इस वस्त्रका भी नक्शा दिया जा रहा है।

नकशा

दक्षिण नेत्र १	वाम नेत्र २	दक्षिण कपोल ३	वाम कपोल ४
अधर ५	ललाट ६	चिबुक ७	ओष्ठ ८
दक्षिण हस्त ९	नासिका १०	हृदय ११	वाम हस्त १२
मुकुट १३	दक्षिण चरण १४	वाम चरण १५	मुरली १६

अक्षक्रीड़ाके प्रारंभ होनेके पूर्वही प्रिया-प्रियतममें विवाद उपस्थित हो जाता है। प्रियाका आग्रह है कि अपना दाव वह पहले तय करेंगी। प्रियतम कहते हैं कि नियमानुसार जिसका दाव आवेगा वही सर्वप्रथम चयन करनेका भी अधिकार पावेगा।

प्रिया कहती है कि 'तुम प्रतिदिन ही प्रथम चयनका अधिकार पाते हो, अवश्य ही तुम कोई चालाकी करते हो, अन्यथा प्रतिदिन ही प्रथम दावका अधिकार तुम्हारा ही क्यों होता है? ना, अब तुम्हारी चालबाजी नहीं चलेगी। आज तो सर्वप्रथम मैं ही दाव चयन करूँगी। फिर तुम्हें चुनना पड़ेगा। आजसे यही नियम होगा। अबतक जितने दिनतक तुमने प्रथम दाव लिया है, पहले उतने ही दिनोंतक मैं दाव लूँगी, तब फिर नियमोंके अनुसार भले ही दाव निश्चित हो।'

प्रियतम श्यामसुन्दर अपनी प्रियाके त्रिया-हठपर हँसने लगते हैं। अन्ततः प्रिया इसी बातपर मानती है कि खेलका प्रारंभ तो यथानियम ही हो, किन्तु श्यामसुन्दरका पहले जो भी दाव आवे, वह प्रियाको मिल जावे और तब प्रियाका जो दाव आवे वह प्रियतमको मिले। प्रिया हँसकर इसे स्वीकार कर लेती हैं।

नियमानुसार खेल प्रारम्भ होता है। वृन्दादेवी दक्षिण दिशासे एक अत्यन्त सुन्दर स्वर्णकी पारातमें कमलके सुरभित फूलोंको लिये आती हैं। वह प्रिया-प्रियतमके मध्य उस पारातको रख देती हैं। पारातमें जितने भी कमलके पुष्प हैं उन सभीके डंठल तो ऊपर एवं पंखुड़ियाँ अधोमुखी रखी हुई हैं। पारात रखकर वृन्दा ललिता एवं चम्पकलताके मध्य जो स्थान हैं वहाँ उत्तरपूर्वकी ओर मुखकरके बैठ जाती है। वह अपने नेत्रोंको हाथोंसे मूँद लेती है एवं प्रिया-प्रियतमको निर्देश देती है, जिससे वे फूलोंको इधर-उधर हटाकर अपनी इच्छानुसार स्थान परिवर्त्तित कर दें। पहले ललिता आकर सभी फूलोंको इधर-उधर करके सभीके स्थान बदल देती है। इसके पश्चात् पुनः प्रियतम एवं तब प्रिया सभी फूलोंको अपने-अपने नियंत स्थानोंसे हटाकर इधर-उधर करती हैं। जबतक यह पुष्पोंका परातमें स्थान-परिवर्त्तन होता है तबतक वृन्दा नेत्र मूँदे शान्त बैठी रहती है। इसके पश्चात् वह उच्च स्वरसे सभीसे पूछती है - 'क्यों, सभीने परातमें फूलोंकी स्थिति बदल दी?' जब सभी स्वीकृति दे देते हैं तो वृन्दा अपने नेत्र उन्मीलित कर देती है। इसके पश्चात् वृन्दा गुणमञ्जरीको सङ्केत करती है। गुण सर्वप्रथम एक पुष्प उस परातसे निकालकर प्रियाको

देती है, इसके पश्चात् एक पुष्प प्रियतम श्यामसुन्दरको एवं तब क्रमशः ललिता, विशाखा, चित्रा, इन्दुलेखा, चम्पकलता, रङ्गदेवी, तुङ्गविद्या एवं सुदेवी - सभीको एक-एक पुष्प उस परातमेंसे निकाल-निकालकर देती है।

प्रियतम नीलसुन्दरको जो फूल मिलता है उसपर सातका अङ्क अङ्कित होता है। प्रियाके कमलपुष्पपर तीनका अङ्क चिह्नित होता है। ललिता आदि आठों सखियोंको क्रमशः छः, आठ, चार, नौ, दो, दस एवं एकके अङ्क चिह्नित पुष्प मिलते हैं। अब यह निर्णय हो जाता है कि एकका अङ्क प्राप्त करनेवाली सुदेवी सर्वप्रथम दाव चुनेगी। इसके पश्चात् रङ्गदेवी एवं तब प्रियाको अवसर मिलेगा। प्रियाके पश्चात् इन्दुलेखा, तब ललिता, विशाखा एवं उसके पश्चात् प्रियतम श्यामसुन्दरको दाव चुननेका अवसर मिल पावेगा। प्रियतम श्यामसुन्दरके पश्चात् चित्रा, चम्पकलता एवं सबके अंतमें तुङ्गविद्या दाव चुनेगी।

सर्वप्रथम सुदेवीको अवसर मिलता है एवं वह ललितासे मंत्रणाकर तीन अङ्कके कोष्ठकको चयन करती है। अब रङ्गदेवी छः अङ्कको, रानी नवम कोष्ठकको, इन्दुलेखा आठवें, ललिता दूसरे, विशाखा चौदहवें कोष्ठकको लेती है। प्रियतम नीलसुन्दर बारहवें कोष्ठकको एवं चित्रा, चम्पकलता एवं तुङ्गविद्या क्रमशः ग्यारहवें, चौथे एवं पाँचवें कोष्ठकका चयन करती हैं।

वृन्दा बहुत सुन्दर नीली रत्नजटित एक लघु मंजूषासे सोलह कौड़ियाँ निकालती हैं। ये कौड़ियाँ कुन्दनके वर्णकी पीत हैं एवं इनमेंसे पीतज्योति छिटक रही है। कौड़ियाँ इतनी चिकनी, इतनी सुन्दर हैं कि देखते ही चकित हो जाना पड़ता है। प्रत्येक कौड़ीपर गलबाँही डाले युगल प्रिया-प्रियतमकी अतिशय मनोहर छवि अङ्कित है। यह छवि इतनी कलात्मकतासे निर्मित एवं जीवन्त है कि देखकर सबका मन प्रफुल्ल हो उठता है।

अब वृन्दा सभी सखियोंके सम्मुख खेलके नियम वर्णन करती है। वह उद्घोषित करती है -

(१) जिस-जिस सखीने जो-जो दाव चुन लिया है, उसकी पारी आनेपर उसे इन कौड़ियोंको उछालकर इस रेशमी वस्त्रपर गिराना होगा। कौड़ियाँ दावकी संख्याके अनुरूप चित या पट होनी चाहिये। यदि दावकी संख्याके अनुरूप कौड़ियाँ नहीं गिरतीं तो वह सखी दाव हारी हुई मानी जायेगी। यदि सखी हारेगी तो उस संख्याके दावकोष्ठपर जिस अङ्गका नामं अङ्कित है उस सखीके उस अङ्गपर प्रियतम श्यामसुन्दरका अधिकार हो जायगा। इसी प्रकार यदि प्रियतम श्यामसुन्दर हार गये तो उनके दावकोष्ठमें अङ्कित अङ्गपर सखीका अधिकार होगा।

(२) यदि उतनी कौड़ियाँ किसीने चित गिरा दी तो दावकी जीत उसकी समझी आयेगी तथा उस कोष्ठपर जिस भी अङ्गका नाम अङ्कित है उस अङ्गपर उसका अधिकार समझा जावेगा। (सखीके जीतनेपर प्रियतमके अङ्गपर सखीका एवं प्रियतमके जीतनेपर सखीके उस अङ्गपर प्रियतमका अधिकार होगा।)

(३) प्रत्येक सखीके दाव खेलनेके बाद प्रियतम श्यामसुन्दरका दाव होगा। दावका क्रम रहेगा -सखी एवं तब प्रियतम श्यामसुन्दर, तब दूसरी सखी तथा फिर प्रियतम श्यामसुन्दर।

(४) प्रत्येक हारी हुई सखीके बाद प्रियतम श्यामसुन्दरको दाव फैंकनेका अधिकार होगा।

(५) यदि किसीने सोलहों कौड़ियाँ चित गिरादीं तो उसके दावकी जीत तो हो ही जायेगी, साथ ही कोष्ठ संख्यामें जो अङ्ग है प्रतिद्वन्द्वीके उस अङ्गपर भी उसका अधिकार हो जायेगा। दूसरी बार दाव फैंकनेका भी उसे अधिकार होगा।

(६) लगातार कई बार सोलह कौड़ियाँ चित गिरानेपर गिरानेवालेका यथायोग्य अधिकार प्रतिद्वन्द्वीके किन-किन अङ्गोंपर (अर्थात कोष्ठ संख्या १.२.३ आदिमें निर्दिष्ट अङ्गोंपर किस क्रमसे) होगा यह मैं (वृन्दादेवी) उसी समय घोषित करूँगी।

वृन्दाके द्वारा नियमोंकी घोषणाकर दिये जानेके पश्चात् खेल प्रारंभ हो जाता है। सर्वप्रथम सुदेवी कौड़ियोंको उछालती है। सुदेवीका दाव संख्या ३ का है किन्तु कौड़ियाँ २ ही चित गिरती हैं। प्रियतम नीलसुन्दर खिलखिलाकर

हँस पड़ते हैं। नियमानुसार सुदेवी हार जाती है किन्तु वृन्दाका निर्णय होता है कि यह पहला ही दाव है। यद्यपि सुदेवी हार गयी है फिर भी पहला दाव होनेके कारण मैं निर्णयकर्त्रीके विशेष अधिकारसे यह सुविधा सुदेवीको दे रही हूँ कि अब प्रियतम श्यामसुन्दर भी दावमें हार गये तो सुदेवीकी हार रद समझी जावेगी। किन्तु यदि वे जीत गये तो सुदेवीकी हार तो रहेगी ही, साथ ही कोष्ठ संख्या १पर जो अङ्क अङ्कित है, सुदेवीके उस अङ्गपर बिना दूसरी बार दाव जीते प्रियतम नीलमणिका अधिकार हो गया - यही माना जायगा।

वृन्दाकी बात सुनकर सुदेवी विचारमें पड़ जाती है। यद्यपि सुदेवीका प्रेमपूर्ण हृदय तो हार या जीत, दोनों अवस्थाओंमें प्रेमसे नाच रहा ही होता है, किन्तु गम्भीर-सी-मुद्रा बनाकर वह कहती है - 'बहन ललिता! बता, मैं क्या करूँ?'

ललिता यही राय देती है - 'एक बार तू मान ले सुदेवी! फिर मैं सब देख लूँगी।' सुदेवी स्वीकृतिमें हँस देती है। अब प्रियतम श्यामसुन्दर इस चतुराईसे कौड़ी उछालते हैं कि सोलहों कौड़ियाँ चित गिरती हैं। सुदेवी लजा जाती है। प्रियतम कहते हैं - 'वृन्दे! पहलेसे दावकी स्पष्ट घोषणा करती चली जाना, नहीं तो क्या पता, ये सब पीछेसे बेईमानी करेंगी।'

वृन्दा प्यारमें भरकर कुछ देर सोचकर कहती है - 'श्यामसुन्दरका सुदेवीके बायें कपोलपर, बायें नेत्रपर, बायें हाथपर एवं दाहिने नेत्रपर भी अधिकार हो गया। नियमके अनुसार श्यामसुन्दरको दुबारा दाव फैंकनेका अधिकार भी प्राप्त हो गया है।'

प्रियतम श्यामसुन्दर पुनः दाव फैंकते हैं, किन्तु इस बार तेरह कौड़ियाँ ही चित गिरती हैं। प्रियतम लजा-से जाते हैं। सुदेवी प्रसन्न हो जाती है। वृन्दा कहती है - 'इस बार दाव श्यामसुन्दर हार गये हैं, इसलिये श्यामसुन्दरके बायें हाथपर सुदेवीका अधिकार हो गया। अब इसके पश्चात् रङ्गदेवीकी पारी है। वह दाव फैंकेगी।'

वृन्दाकी बात सुनकर रङ्गदेवी कौड़ियाँ उछालती है तथा छः कौड़ियाँ चित गिराती है। वृन्दा कहती है - 'रङ्गदेवी दाव जीत गयी हैं इसलिये प्रियतम श्यामसुन्दरके ललाटपर रङ्गदेवीका अधिकार हो गया है। अब मेरी प्यारी राधारानी दाव फैंकेगी।'

रानीकी बारी आते ही प्रियतम श्यामसुन्दर एवं सभी सखियों-मञ्जरियोंका मन उत्कण्ठासे भर जाता है। रानी अतिशय उत्कण्ठासे कौड़ियोंको हाथमें लेती है। प्यारे श्यामसुन्दरके मुखारविन्दकी ओर ताकती हुई वह कौड़ियाँ उछाल देती है। इस बार आठ कौड़ियाँ चित तथा शेष कौड़ियोंमें एक कौड़ी दूसरी दो कौड़ियोंपर चढी हुई अर्थात् आधी चित गिरती है। ललिता तत्क्षण ही बोल उठती है - 'यह आधी कौड़ी भी पूरी समझी जायेगी, इसलिये मेरी प्यारी सखीकी जीत हो चुकी है।'

प्रियतम श्यामसुन्दर इसका प्रतिवाद करते हैं - 'वाह! सब कुछ मनमानी करनेसे ही बात बन जायेगी क्या? कौड़ियाँ आठ ही चित गिरी हैं। तुम्हारी सखी हार गयी है। उसे नौ कौड़ियाँ चित गिरानी आवश्यक थीं।' श्यामसुन्दर एवं अन्य सखियोंमें कलह होने लगती है। सखियोंका पक्ष है - 'नहीं, हमारी प्यारी सखी राधाकी जीत हुई है।' प्रियतम श्यामसुन्दर रानीसे कहते हैं - 'नहीं! नहीं! तू हार गयी है।'

वृन्दापर तो निर्णयका भार होता ही है। अतः वह सब सखियों एवं श्यामसुन्दरको झगड़नेसे रोकती है। वृन्दा कुछ सोचकर कहती है - 'देखो, जीत तो रानीकी हुई प्रतीत होती है पर प्यारे श्यामसुन्दरका सन्देह मिटानेके लिये मैं यह आज्ञा दे रही हूँ कि रानी उन तीनों कौड़ियोंको फिरसे उछाल दें। यदि तीनों चित गिरेंगी तो बिना दूसरा दाँव फैंके ही रानीका श्यामसुन्दरके दाहिने हाथपर अधिकार हो जायेगा। किन्तु कहीं एक चित गिरी तो किसीकी हार-जीत नहीं मानी जाकर रानीको फिरसे दाव फैंकना पड़ेगा। क्यों प्यारे श्यामसुन्दर! मंजूर है?' प्रियतम श्यामसुन्दर कुछ मुसकुराते हुए प्रियाकी ओर देखकर धीरेसे कहते हैं - 'ठीक है! यही सही।'

रानी कौड़ियाँ उछालती हैं। तीनों कौड़ियाँ चित गिरती हैं। सखियोंमें हँसीका प्रवाह बह उठता है। श्यामसुन्दर भी हँसने लगते हैं। वृन्दा कहती है - 'श्यामसुन्दरके दोनों हाथोंपर रानीका अधिकार हो गया।'

अब क्रमशः सखियाँ दाव फैंकती हैं। इन्दुलेखाके द्वारा दाव फैंके जानेपर दस कौड़ियाँ चित गिरती हैं। वृन्दा कहती है - 'इन्दुलेखा दाव हार गयी। इसलिये इन्दुलेखाके ओष्ठपर श्यामसुन्दरका अधिकार हो गया। प्रियतम! अब तुम दाव फैंको।'

प्रियतम श्यामसुन्दर दाव फैंकते हैं। बारह कौड़ियाँ चित गिरती हैं। वृन्दा कहती है - 'इन्दुलेखाके बायें हाथपर प्रियतम श्यामसुन्दरका अधिकार हो गया।'

अब ललिताकी बारी आती है। इस बार सभी कौड़ियाँ उठाकर श्यामसुन्दर ललिताके हाथमें दे देते हैं। ललिता हँसती हुई कौड़ियोंको पकड़ लेती है तथा कहती है - 'तुम्हारी स्पर्शकी हुई कौड़ी हैं। पता नहीं तुमने कोई जादू-टोना कर दिया हो। देवी कात्यायनी मेरी सहायता करें, रक्षा करें।'

देवीका स्मरण करके ललिता कौड़ियाँ उछाल देती है। इस बार भी सोलहों कौड़ियाँ चित गिरती हैं। सखियोंमें मानो हँसीका तूफान-सा उठने लगता है। रानी प्यारमें भरकर ललिताको अपने दाहिने हाथसे खींचकर आलिङ्गनमें भर लेती है। ललिता पुनः कौड़ियोंको उछालती है। इस बार तीन कौड़ियाँ चित गिरती हैं। श्यामसुन्दर हँस पड़ते हैं। वृन्दा कहती है - 'दो दावके अनुसार श्यामसुन्दरके दोनों नेत्रोंपर, दोनों कपोलोंपर ललिताका अधिकार हुआ। तीसरा दाव ललिता हार गयी, इसलिये ललिताके अधरपर श्यामसुन्दरका अधिकार हुआ।'

ललिता बहुत शीघ्रतासे कहती है - 'वाह वृन्दे! तुम्हें नियम भी विस्मृत हो गये। मेरे स्वयंका दाव तो मेरा दाहिना नेत्र है।' वृन्दा कहती है - 'ठीक, ठीक! भूल हो गयी। अधरके बदले तुम्हारे दाहिने नेत्रपर श्यामसुन्दरका अधिकार रहा।'

वृन्दाकी बात सुनकर सभी सखियाँ हँसने लगती हैं। अब पुनः श्यामसुन्दर कौड़ियाँ फैंकते हैं। बारह कौड़ियाँ चित गिरती हैं। वृन्दा कहती है - 'ललिताके बायें हाथपर श्यामसुन्दरका अधिकार।' अब विशाखा दाव फैंकती है। पन्द्रह कौड़ियाँ चित गिरती हैं। वृन्दा कहती है - 'विशाखाके बायें चरणपर श्यामसुन्दरका अधिकार।' श्यामसुन्दर पुनः कौड़ियाँ फैंकते हैं। चौदह कौड़ियाँ चित गिरती हैं। वृन्दा घोषणा करती है - 'श्यामसुन्दरके बायें हाथपर विशाखाका अधिकार।'

चित्राका दाव आता है। इस बार ठीक ग्यारह कौड़ियाँ चित गिरती हैं। पर श्यामसुन्दर जल्दीसे गिननेका बहाना करके एक कौड़ी और भी चित कर देते हैं तथा कहते हैं - 'ना! बारह कौड़ियाँ चित गिरी हैं। यह तो दाव हार गयी।' बात यह हुई कि वृन्दाकी एक दासी उसके कानमें कुछ धीरेसे कहने लग गयी थी, इसीसे वृन्दाका ध्यान उधर बँट गया था। इसी कारण वह प्रियतम श्यामसुन्दरकी इस चतुराईको देख नहीं पाई थी। अब तो प्रेमकलह होने लग गयी। ललिता-चित्रा आदि कहने लगीं - 'तुमने एक कौड़ी और चित करके बेईमानी की है। दाव चित्राने जीता है।'

श्यामसुन्दर कहने लगते हैं - 'वाह! जब मैंने पूरे खेलमें किसी सखीके साथ बेईमानी नहीं की, तो चित्रासे मेरा क्या वैर है जो मैं बेईमानी करूँगा?'

वृन्दा कुछ शरमा जाती है क्योंकि भूल उससे हुई थी। उसने ठीकसे देखा नहीं। वृन्दा कहती है - 'देखो झगड़ो मत! दूसरी बार दाव फैंक देते हैं।' इस प्रस्तावको अस्वीकार करते हुए चित्रा कहती है - 'मैं अपना जीता हुआ दाव छोड़कर जोखिम क्यों उठाऊँ? प्रियतम श्यामसुन्दर कहते हैं - 'चित्रा अवश्य ही हार गयी है।'

वृन्दा प्रार्थनाकी मुद्रामें रानीकी ओर देखती हुई कहती है - 'मेरी रानी! किसी प्रकार चित्राको मना लो। यह मेरी भूल थी कि मैं ठीकसे देख नही पायी।' रानी विचारने लगती है तथा कहती है - 'अच्छा, देख चित्रे! वृन्दाकी भूलसे

यह गड़बड़ी हो गयी है। इसलिये फिरसे दाव लगा ले। यदि तू जीत गयी तब तो कोई प्रश्न ही नहीं है। यदि तू हार गयी तो वह दाव मैं ले लूँगी। तुम्हारे बदले प्रियतम वह दाव मुझसे प्राप्त करेंगे। इस बार जब श्यामसुन्दर कौड़ियाँ उछालेंगे तो उन्हें ग्यारहवीं संख्याका दाव लगाना पड़ेगा। यदि श्यामसुन्दर हार गये तब तो तुम्हारा दाव आ ही जायेगा। पर कहीं जीत गये तो उतनी जोखिम तू उठा लेना। और तो क्या हो सकता है?'

रानीके इस निर्णयपर सभी सखियाँ एकमतसे सहमति दे देती हैं। चित्रा मुसकुराती हुई कौड़ियाँ पुनः उछालती है पर इस बार दस कौड़ियाँ ही चित आती हैं। श्यामसुन्दर हँस पड़ते हैं। वृन्दा भी कुछ मुसकराकर कहती है - 'क्या बताऊँ?'

श्यामसुन्दर हँसते हुए कौड़ियाँ उछालते हैं। सोलहों कौड़ियाँ चित गिरती हैं। फिर उछालते हैं, फिर सोलहों चित गिरती हैं। फिर उछालते हैं, फिर सोलहों चित गिरती हैं। इसके बाद तीन बार और उछालते हैं और तीनों ही बार सोलहों चित गिरती हैं। सारी सखियाँ देखकर लजा जाती हैं। रानी इस बार कौड़ियोंको श्यामसुन्दरके हाथसे हँसती हुई छीन लेती है। श्यामसुन्दर कौड़ियोंके लिये छीना-झपटी करते हुए कहते हैं - 'वाह, वाह! अभी तो मेरा दाव चलना बाकी है।' रानी कौड़ियोंको दोनों मुट्ठियोंमें कसकर पकड़ लेती है। श्यामसुन्दर कौड़ियाँ लेना चाहते हैं। रानी उन्हें नहीं छोड़ती। श्यामसुन्दर वृन्दासे कहते हैं - 'देख वृन्दे! तू चुपचाप बैठी रहेगी, क्यों?'

वृन्दा कहती है - 'रानी! दाव श्यामसुन्दरका है, कौड़ियाँ उन्हें दे दो।' ललिता कहती है - 'यह सब गड़बड़ तुमने ही तो मचाई है। अब श्यामसुन्दरका पक्ष करने चली हो?'

वृन्दा हँसने लगती है। रानी कौड़ियाँ पकड़े उठ पड़ती है। प्रियतम भी तुरन्त ही उठ पड़ते हैं। प्रियतम एक चतुराई कर बैठते हैं। वे रानीका अञ्चल पकड़ लेते हैं। अञ्चल पकड़ते ही कौड़ियोंको छोड़कर रानी उसे सँभालने लग जाती हैं। कौड़ियाँ सर-सर करती हुई धरातलपर स्खलित हो जाती हैं। प्रियतम हँसते हुए बैठ जाते हैं एवं कौड़ियाँ उठाने लगते हैं। रानी भी हँसती हुई पुनः आसनपर पूर्ववत् बैठ जाती है। श्यामसुन्दर कौड़ियाँ उछालते हैं पर इस बार पन्द्रह कौड़ियाँ चित गिरती हैं। वृन्दा कुछ क्षण कोष्ठकको देखकर तथा अँगुलीपर दाव गिनकर कहती है - 'चित्राके दावको रानीने ले लिया था। चित्रा दाव हारी, इसलिये रानीके हृदय, दोनों नेत्र, दोनों कपोल, अधर, ललाट, ठोढी, ओष्ठ, दोनों हाथ एवं नासिकापर प्रियतम श्यामसुन्दरका अधिकार हो गया है। अन्तिम दाव श्यामसुन्दर हार गये इसलिये श्यामसुन्दरके हृदयपर चित्राका अधिकार हुआ।'

इस समय सभी हँस रहे हैं। अब चम्पकलता कौड़ियाँ उछालती है। चार कौड़ियाँ चित गिरती हैं। वृन्दा कहती हैं - 'श्यामसुन्दरके दाहिने कपोलपर चम्पकलताका अधिकार।' इसके बाद तुङ्गविद्या कौड़ियाँ उछालती है पर चार कौड़ियाँ इस बार भी चित पड़ती हैं। वृन्दा कहती है - 'प्रियतम श्यामसुन्दरके बायें हाथपर तुङ्गविद्याका अधिकार।'

वृन्दाके यह कहते ही चित्रा कोष्ठवाले कपड़ेको उलट देती है तथा उठकर भागने लगती है। अन्य सखियाँ भी चटपट उठने लगती है। श्यामसुन्दर पहले दौड़कर चित्राको पकड़ लेते हैं। चित्रा हँसने लगती है। श्यामसुन्दर चित्राको लाकर वहीं पुनः बैठा देते हैं।

(पाठकोंको इन लीलाओं को पढते समय यह सदैव सजग रहकर ध्यानमें रखना चाहिये कि वस्तुतः एक ही परिपूर्ण नित्य सच्चिदानन्दमय परम प्रेमतत्व श्रीकृष्ण ही आस्वाद्य, आस्वादक एवं आस्वादन बनकर ब्रजलीलामें लीलारत है। इसीलिये जब श्रीराधा अथवा कोई गोपी – ललिता, विशाखा, चित्रा आदि श्रीकृष्णके अङ्गोंको दावमें जीत लेती हैं या श्रीकृष्ण उनके कपोल, अधर, ओष्ठ, हाथ, चिबुक एवं हृदय आदि अङ्गोंको विजय कर लेते हैं तो इसे जड़ प्रकृतिसे संयुक्त जीवोंकी जड़ इन्द्रियों अथवा जड़ शरीरके अङ्गोंका विजित होना अथवा समर्पण होना नहीं मानना-जानना चाहिये। इस चिन्मय लीलामें जड़

प्राकृत भाव करना तो घोर रौरवादि नरकोंमें जानेका उपक्रम है। राधामुख्या सभी गोपियाँ, उनकी दासियाँ, मञ्जरियाँ, वृन्दादेवी आदि सम्पूर्ण लीलापात्र प्रियतम श्रीकृष्णके दिव्यस्वरूपमें विलीन होकर उनके हृत्पद्मपर विराजित हों, अथवा प्रेमकी पराकाष्ठा प्रियतम श्यामसुन्दर, सर्वात्मसमर्पणकी मूर्त्ति प्रियतम-समाराधिका एवं उनकी निरन्तर सेवामें संलग्न उनको सुख देनेमें ही अपना परम एवं चरम सौभाग्य मानने वाली प्रिया राधा गोपियोंके अङ्ग-अङ्गमें विलय प्राप्तकर उनके नेत्र, कपोल, अधर, उरोजरूप हो जावें- यही तो इस अक्षक्रीड़ाका उद्देश्य है। ब्रजलीला यही तो है कि प्रियतम श्रीकृष्ण क्षणमें ही राधा हो जावें, श्रीराधा श्रीकृष्ण हो जावे, वे एक होकर नित्य दो हों और दो होकर अगणित, असंख्य गोपियाँ होकर लीलाविहार करें। गोपियोंकी समस्त इन्द्रियाँ, उनका शरीर नित्य-निरन्तर वस्तुतः श्रीकृष्ण-प्रेम परिभावित होनेसे श्रीकृष्णकी निज शक्तियाँ हैं। गोपियोंका अस्तित्व ही प्रियतमसेवाकी सुसम्पन्नताके लिये है। गोपियाँ एवं श्रीकृष्ण अन्योन्यविलासमय हैं। अतः श्रीकृष्णके सर्वाङ्गमें गोपियोंका एवं गोपियोंके सर्वाङ्गोंपर उनके प्रियतम प्राणपति श्यामसुन्दरका स्वाभाविक ही नित्य अधिकार है। इस परम तत्त्वरूप सत्यका स्थूल प्रकाश ही अक्षक्रीड़ा-लीलाका अतिशय सरस हेतु है। इस सत्यको भली प्रकार मन-मस्तिष्कमें स्थापित करके ही इस लीलाका रसास्वादन करेंगे, तभी इसका सत्य रहस्य हृदयङ्गम होगा। - साधु कृष्णप्रेम)

पश्चिमकी ओर अंशुमाली ढल पड़े दीख जाते, प्रियतम!
वे तब हीरक रविमन्दिरमें अर्चन करने आते, प्रियतम!
साँवरका स्वरचित मन्त्रोंसे रवि पूजन करवाना, प्रियतम!
बालाके दृग-मनमें नव-नव सुखकी आशा भरता, प्रियतम॥७६५॥

अब इस समय प्रतीचीके गगनमें अंशुमाली ढले हुए दीखने लग जाते। फिर तो अविलम्ब दम्पति हीरक रविमन्दिरमें अर्चना करने आ जाते। नीलसुन्दर अतिशय मनोहर शैलीसे अपने ही द्वारा विरचित मंत्रोंका पाठ करके रविदेवकी अर्चना करवाते। उनकी दिनकरकी यह पूजा सम्पन्न होते देखकर किशोरीकी आँखोंमें, मनमें नवीन-नवीन सुखकी आशा भरने लगती।।।७६५।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

नभकी पश्चिम दिशाकी ओर अंशुमालीको ढलते देखकर रानीका मुख उदास हो जाता है। श्यामसुन्दर भी गंभीर हो जाते हैं किन्तु रानीकी दशा देखकर अपनी गंभीरता छिपाते हुए उठ पड़ते हैं। सभी सखियाँ भी गंभीर हो जाती हैं। श्यामसुन्दर रानीको अपने हृदयमें लगा लेते हैं। रानी गंभीर श्वासें लेने लगती है। वृन्दा ललितासे कहती है - 'समय कम है, शीघ्रता करनी चाहिये। अब तो सूर्य पश्चिमकी ओर ढलने लगा है।' ललिता गंभीर मुद्रामें प्रियतम श्यामसुन्दरको कुछ सङ्केत करती हैं तथा रानीका हाथ थाम लेती है। अब धीरे-धीरे प्रिया-प्रियतम निकुञ्जके पूर्वी द्वारसे निकलकर पगदण्डीसे पूर्वकी ओर चलने लगते हैं। प्रियतम श्यामसुन्दर प्रियाको सँभाले हुए चल रहे हैं। प्यारे श्यामसुन्दरसे अब कुछ देरके लिये अलग होना पड़ेगा - इस विचारमात्रसे प्रियाके प्राण छटपटाने लगते हैं। प्रियतम श्यामसुन्दरके प्राण भी व्याकुल हैं, किन्तु वे अपनी व्याकुलता छिपाये हुए चल रहे हैं। कहीं उन्हें व्याकुल देखकर प्रिया और भी अधिक व्याकुल न हो जाये इस आशङ्कासे वे लगातार हँस रहे हैं। पूर्वकी ओर कुछ देर चलकर फिर वे दक्षिणकी ओर मुड़ जाते हैं तथा उसी दिशाकी ओर कुछ देर चलते रहते हैं। चलते-चलते ललिताकुञ्जकी दक्षिणी सीमाकी चारदिवारी आ जाती है। यहाँ एक छोटा द्वार है, उससे निकलकर फिर पूर्वकी ओर कुछ दूर चलते हैं। अब ललिताकुञ्ज एवं विशाखाकुञ्जके बीचसे उत्तर-दक्षिणकी ओर जो राह जाती है, उसपर सभी आ पहुँचते हैं। प्रियतम

श्यामसुन्दर पुनः प्रियाको हृदयसे लगा लेते हैं तथा कुछ क्षण वे उनके मुखारविन्दकी ओर देखते हुए गम्भीर मुद्रामें प्रियासे कुछ दूर पृथक् हटकर खड़े हो जाते हैं। फिर उत्तरकी ओर चलने लगते हैं। रानी एवं सखियाँ शान्त खड़ी रहकर निर्निमेष नयनोंसे उधर ही देखती रहती हैं। प्रियतम श्यामसुन्दर बार-बार ग्रीवा घुमा-घुमाकर रानीकी ओर प्रेमभरी दृष्टिसे देखते जा रहे हैं। करीब एक फर्लांग उत्तरकी ओर जाकर एक फाटकसे वे विशाखाकुञ्जमें प्रवेश करके आँखोंसे ओझल हो जाते हैं। रानी कुछ क्षण एकटक उसी दिशाकी ओर देखती रहती है, फिर ललिताके स्कन्धदेशको पकड़कर दक्षिणकी ओर सूर्यमन्दिरमें जानेके उद्देश्यसे चल पड़ती है।

रविपूजन लीला

ओह! कैसा विलक्षण यह सूर्यमन्दिर है। बज्रमणि (हीरक) की परम तेजोमय मूर्त्ति है। वस्तुतः इस रविविग्रहकी ओर टकटकी लगाकर देखनेवाला आगन्तुक कोई विरला ही होता है। चतुर्दिक् दूरस्थ ग्रामोंके वनवासी ही पारी-पारीसे इसका पूजन करते हैं। मन्दिरके अग्रभागपर सूर्यकुण्ड नामसे अभिहित एक परम निर्मल जलकुण्ड है जिसमें अथाह जल है। इसका स्रोत भूमिसे ही है एवं इसकी गहराईकी थाह आजतक किसीको प्राप्त नहीं हो सकी है। आश्चर्य है कि इतने अथाह पङ्कहीन जलमें भी सहस्रदल सरोज विकसित रहते हैं। ये सरोज सभी ऋतुओंमें समान रूपसे खिले रहकर इस कुण्डकी शोभाश्री मुकुलित करते रहते हैं। मन्दिरकी रचना इस कौशलसे हुई है कि इसके चतुर्दिक् स्थित द्वादश आदित्यमन्दिरोंमें षड् ऋतु नित्य ही मूर्त्तिमान् रहती है। ये द्वादश आदित्योंके मन्दिर निर्माणकलामें इस प्रकार समान आकार-प्रकारके हैं कि कोई भले कितना ही सजग रहे, उसे विभ्रम हो ही जाता है।

मुख्य रविमन्दिरकी विशेषता यही है कि प्रतिदिन जबतक नभमें दिनकर मध्यगगनकी ओर उठते रहते हैं, तबतक मुख्य प्रतिमाकी नखश्रेणियोंसे पुखराजराशि निर्झरवत् झरती रहती है। ज्योंही सूर्य पश्चिम गगनमें ढलने लगता है, ये सभी रत्न जलमें परिणत होने लगते हैं और यह रत्नजल प्रतिमाके चरणोंसे प्रवाहित होता मन्दिर प्राङ्गणमें स्थित कुण्डमें समाविष्ट हो जाता है।

आराधनाके समय भी इस मन्दिरकी यह विशेषता रहती है कि आराधनाकर्त्ता जितने काल इस मन्दिरमें आराधना करता रहता है, उसके प्राण, देह, बुद्धि एवं मन पूर्ण तेजोमय रहते हैं एवं उसकी इस कालमें सदैव तुरीय अवस्था ही रहती है। यह अनुभूति भेद-भावरहित उन सभीको होती है जो यहाँ आकर सूर्योपासना करते हैं।

इस रविमन्दिरके चतुर्दिक् परम सुरम्य विस्तृत उद्यान है। मन्दिरका मुख्य द्वार पूर्वाभिमुख है। मन्दिर शुभ्र श्वेत तेजोमय स्फटिक शिलासे निर्मित है सुदूरसे ही इसकी झलमल करती ज्योतिर्मय छवि देखकर सभीको यही अनुमान होता है, मानो समग्र मन्दिरका निर्माण ही हीरक मणियोंसे हुआ हो। उद्यानमें तमाल, मौलिश्री, आम्र, कदम्ब आदि अनेक जातियोंके विशाल वृक्ष किनारे-किनारे पंक्तियोंमें लगे हैं। कहीं तमाल है तो फिर झुंडोंमें तमाल-ही-तमाल हैं, फिर आम्रपंक्ति प्रारंभ होती है तो दूरतक झुंड-के-झुंड आम्र-ही-आम्रके वृक्ष हैं। इसी प्रकार कदम्ब एवं मौलिश्री, जामुन, आमलिकी आदि वृक्षोंकी स्थिति है। सभी वृक्षोंके नीचे लताएँ प्रसरित हैं एवं उनमें सौरभसमन्वित रङ्ग-बिरंगे पुष्प सुविकसित हैं। अलिदल गुञ्जार करते इनपर मँडरा रहे हैं।

उद्यान पक्षियोंके सुमधुर कलरवसे गुञ्जित हो रहा है। एक पक्षी अतिशय सुरीले कंठसे अविराम बोल रहा है गो-गोपीनाथ, गो-गोपीनाथ, गो-गोपीनाथ। इसका प्रत्युत्तर देता दूसरा पक्षी उससे भी अधिक सुमधुर स्वरोंमें उच्चारण करता है- श्रीकृष्ण, श्रीकृष्ण, श्रीकृष्ण। तीसरा पक्षीसमूह तीखी ध्वनिमें राधा-राधा राघा-राधाकी रट लगा रहा है।

मन्दिरसे पूर्व दिशाकी ओर सीधा एक पथ उद्यानके पूर्वी मुख्य द्वारतक गया है। उससे कम चौड़े पथ दक्षिणी एवं उत्तरी द्वारोंतक गये हैं। मन्दिरके सम्मुख पूर्वी पथके किनारे-किनारे सूर्यमुखी पुष्पोंकी एक पंक्ति लगी हुई है। यद्यपि इन पुष्पोंके वृक्ष तो कायामें लघु हैं किन्तु सूर्यमुखी पुष्पोंका आकार इतना बड़ा है जिससे देखनेमें यही अनुभूति होती है कि पुष्पोंकी छोटी-छोटी थालियाँ ही वृक्षोंपर जड़ी हुई हैं।

उत्तरी एवं दक्षिणी द्वारोंतक जो पथ गया है उसके दोनों ओर किनारे-किनारे मल्लिका एवं कुन्द पुष्पोंकी क्यारियाँ हैं।

मन्दिरके बाह्य मंडपकी सुन्दर संगमरमरकी सीढ़ियोंपर राधारानी सखी-मंडली सहित विराजमान हैं। सभीका मुख पूर्व एवं दक्षिण कोनेकी ओर है, जिससे इनकी पीठ सूर्य-प्रतिमाकी ओर नहीं हो। सीढ़ियोंके दोनों ओर संगमरमरकी ही जालीदार दीवार है जिसपर ये सभी सखियाँ अपनी पीठ टिकाये हैं। इनके चरण सीढ़ियोंपर लटके हुए हैं। रानीके मुखारविन्दपर गंभीरता छायी हुई है। उसके कपोलोंपर छोटे-छोटे प्रस्वेदकण उभर रहे हैं। रानीके चरणोंके पास आसीन विलासमञ्जरी पुष्पोंसे बने हुए व्यजनसे उनपर शनैः-शनैः वायु कर रही है। उद्यानके पूर्वी द्वारपर रानीसे दूरीपर रूपमञ्जरी गुणमञ्जरीके स्कंधदेशपर अपना हाथ रखे हैं। ये दोनों मञ्जरियां आकुलतापूर्वक कभी उत्तरकी ओर एवं कभी दक्षिणकी ओर जो वनपथ गये है, उनपर दृष्टि जमाये हैं। रविमन्दिरसे कुछ ही दूरीपर वनमें ऋषियोंके आश्रम हैं। इनका उद्देश्य यही है कि इस राहसे कोई ब्रह्मचारी ऋषि बटुक दृष्टिपथमें सम्पन्न करा दें। ब्राह्मणकुमारके अभावमें तो बाध्य होकर अपने आप ही पूजा करनी होगी। अवश्य ही वह पूजा पूर्णतया शास्त्रविधिसम्मत नहीं होगी।

प्रियतम नीलमणिके वियोगमें, चाहे वह अल्प कालके लिए ही हो, रानीकी भावावस्थाको संवरित रखना कठिन ही नहीं, दुष्कर हो जाता है, अतः सखियाँ यह भी चाहती हैं कि दिवसका शेष समय यहाँ रविमन्दिरमें ही व्यतीत हो जाए। वनमें परिवारजनोंके मध्य नहीं रहनेसे रानीके सुदीप्त भावोंको संवरित रखनेमें सखियोंको सुविधा रहती है।

रूपमञ्जरी एवं गुणमञ्जरी वनमें सुदूर देख ही रही होती हैं कि उन्हें उत्तरकी ओरसे एक ऋषिकुमार रविमन्दिरकी ओर ही अग्रसर होता दृष्टिगोचर हो जाता है। शनैः-शनैः ऋषिकुमार दोनों सखियोंके समीप आ जाता है।

ऋषिकुमारके मधुर मनोहर मुस्कारते आननको देखकर तो रूपमञ्जरी एवं गुणमञ्जरी दोनोंकी ही टकटकी लग जाती है। उसका सजल जलधरके समान श्यामल वर्ण उसकी विकसित सरोजके समान सरस मुखमुद्रा, कुंचित स्कंधदेशतक लटकती केशराशि, ललाटपर सुन्दर तिलक, ब्रह्मतेजसे दिपदिपाता मुख, बड़े-बड़े सरल नयन, सुन्दर ठोड़ी, प्रस्फुटित स्थलपद्मके समान अरुणिम उभय करतल - यद्यपि ऋषिकुमार सोलह वर्षकी किशोर आयुका है, किन्तु उसे देखनेमें ऐसा ही लगता है मानो पांच वर्षका भोला-भाला अबोध शिशु हो।

शनैः शनैः वह ऋषिकुमार रूपमञ्जरीके सर्वथा निकट आकर रुक जाता है एवं अपनी ओर चकित हरिणी-सी निरखती रूपममञ्जरीसे निस्सङ्कोच जिज्ञासा कर बैठता है – 'देवि ! क्या तुम मेरा पथनिर्देश कर सकती हो? महर्षि शाण्डिल्यका आश्रम इस स्थानसे किस दिशाकी ओर है एवं क्या कोई वहाँ जानेका यहाँसे सीधा पथ होगा?'

रूपमञ्जरीने इतना सुमधुर पुरुषस्वर मानो अबतक कभी सुना ही नहीं हो; उसकी श्रवणेन्द्रियाँ तो मानो पूरी सुधा-आपूरित ही हो उठी। मंत्रमुग्ध-सी हुई वह अति कठिनाईपूर्वक अत्यंत मन्दस्वरमें उस ब्रह्मचारीसे इतना ही पूछ पाई - 'बन्धु ! आप कौन हैं?

सुधास्यन्दी मधुर वाणीमें ऋषिकुमारने किञ्चित् मुसकाकर रूपमञ्जरीसे अपना इतना ही परिचय दिया कि वह महर्षि शाण्डिल्यका शिष्य है, निरे प्रातः उसे उसके गुरुदेवने आश्रमसे वनमें पीतवर्णके सुवासित पुष्पचयनके लिए भेजा था। वह उनकी आज्ञानुसार सुदूर वनमें प्रविष्ट भी हो गया। यद्यपि उसे पुष्प तो उपलब्ध हो गये किन्तु वह राह भटक गया है। उसे दिशाबोध नहीं हो रहा है। दिग्भम्रके कारण वह यही अनुभव कर रहा है कि आज रवि पश्चिमसे पूर्वकी ओर गतिमान हो रहे हैं। प्रातःसे वह अबतक निराहार है; न तो जलपान ही कर पाया है, न ही फलाहार। पुष्पोंको अञ्चलमें लिये वह वनमें यहाँ-से-वहाँ भटक रहा है। जिस स्थानसे वह चलता है घूम-फिरकर कुछ कालमें पुनः वहीं लौट आता है।

ऋषिकुमारकी मधुर वाणीसे अमृत झर रहा था। रूपमञ्जरी तो ऋषिकुमारके प्रति अनिर्वचनीय सरसताका मन-ही-मन अनुभव करने लगी। उसने ऋषिकुमार से निवेदन किया - 'बन्धु ! आप कहते हैं कि मैं महर्षि शाण्डिल्यका शिष्य हूँ किन्तु मैंने तो उनके आश्रममें आपको कभी नहीं देखा। महर्षिके आश्रममें तो हम प्रायः प्रतिदिन ही आती-जाती हैं। उनके अनेक शिष्योंसे भी मेरा निकटका परिचय है। आपको तो मैंने उनके मध्य कभी नहीं पाया। उन लोगोंने आपका कोई उल्लेख भी कभी नहीं किया।'

ऋषिकुमार रूपमञ्जरीकी वार्ता सुनकर मुसकाने लगा – 'देवि ! इसीलिए तो आज मैं राह भटक गया हूँ। न जाने क्यों महर्षि मुझसे आत्यन्तिक पुत्रोपम वात्सल्य करते हैं। वे मुझे अपने आश्रमसे कभी बाहर नहीं जाने देते हैं। आश्रमके चतुर्दिक् जो परम रमणीय उद्यान है, वह उद्यान ही मेरे आवागमनकी परिधि है। महर्षि प्रति दिवस ही प्रायः गोपराज नन्दरायके भवनमें आते-जाते हैं किन्तु मेरे द्वारा अनेक वार उनके साथ चलनेका हठ करनेपर भी वे मुझे वहाँ नहीं ले जाते। वे कहते हैं कि 'वहाँ जानेपर तू गोपराज ब्रजेन्द्रनन्दन कृष्णचन्द्रका सङ्गी हो जायगा, फिर तो मेरा आश्रम ही तेरे बिना सूना हो जाएगा।'

'कल रात्रिको पू. गुरुदेवको विशेष पूजनका कोई स्वप्नादेश हुआ था, उसीके फलस्वरूप उन्होंने आज मुझे प्रथम बार हृदयसे लगाकर निरे ब्राह्म मुहूर्तमें ही पुष्पचयनके लिये वनमें भेज दिया था। बस, मैं वनमें भटक गया। मुझे तो अपनेसे अधिक अब पू. गुरुदेवकी चिन्ता सता रही है। वे मेरे बिना न जाने कितने व्याकुल हो रहे होंगे।'

रूपमञ्जरी दीर्घकालतक ऋषिकुमारसे वार्ता करनेमें इस प्रकार एकाग्रतासे संलग्न है कि उसे ललिताके आकर पार्श्वमें खड़ी हो जाने एवं उन दोनोंकी वार्ता सुनते रहनेका भी ज्ञान नहीं होता। अवश्य ही ऋषिकुमारकी दृष्टि ललितापर पड़ जाती है। रूपमञ्जरीका ध्यान तो तभी टूटता है, जब वह ललिताको ऋषिकुमारको प्रणाम करती देखती है। ललिताके आगमन एवं उसके द्वारा संपूर्ण वार्ता श्रवण कर लेनेका ध्यान आनेसे रूपमञ्जरी लजा जाती है।

ललिता प्रणाम करके मुसकाती हुई ऋषिकुमारसे निवेदन करती है - 'ब्राह्मणकुमार ! मैंने आपकी संपूर्ण वार्ता सुनकर यही निश्चय किया है कि मैं आपको महर्षिके आश्रमतक पहुँचानेके लिए आपके साथ अपनी किसी विश्वस्त दासीको भेज दूँ, अन्यथा आपके पुनः वनमें दिग्भ्रमित हो जानेकी संभावना है। आश्रम यहाँसे पर्याप्त दूरीपर है। किन्तु इसके पूर्व कृपया आप कुछ जलपान शाकाहार कर लें। आपका मुख शुष्क पड़ गया है। आपको किञ्चित् विश्रामकी आवश्यकता है।'

ऋषिकुमार - 'देवि ! भला गुरुदेवकी आज्ञाके बिना मैं अन्नजल कैसे ग्रहण कर सकता हूँ ? यह तो मर्यादाहीनता ही होगी।'

ब्रह्मचारीकी धर्मसम्मत बात सुनकर ललिता हतप्रभ हो जाती है, किन्तु ऋषिकुमारके सरल मुखमें ऐसा आकर्षण है कि वह उसे अपनेसे शीघ्र पृथक् करना भी नहीं चाहती। अन्ततः मन-ही-मन वह यही निर्णय करती है कि इन्हें सखी राधाके पास ले जाया जाय। यह निश्चयकर वह ऋषिकुमारसे कहती है - 'ब्रह्मण्य! आपकी जैसी रुचि हो वही करें। किन्तु यहाँ रविमन्दिरके मंडपमें ही मेरी अनेक सखियाँ आसीन हैं। कृपया आप उनके समीप मेरे साथ चलें, मैं उनमेंसे किसी एकको आपके साथ भेजकर आपको महर्षिके आश्रमतक पहुँचानेकी व्यवस्था कर देती हूँ। वैसे आश्रमकी राह भी मन्दिरके पश्चिमकी ओर ही होकर जाती है।'

ललिताकी उक्तिसे सम्मत होता हुआ ऋषिकुमार उसका अनुगमन करने लगता है। रूपमञ्जरी एवं गुणमञ्जरी भी ऋषिकुमारके पीछे चल पड़ती हैं। सभी मन्दिरके मंडपपर पहुँचती हैं।

जैसे ही ऋषिकुमार प्राङ्गणमें पहुँचता है, उसके आभामंडलसे जैसे मंडप उद्भासित हो उठता है। रानी भी इस अपूर्व सुन्दर ऋषिकुमारको एकटक निरखने लगती हैं। रह-रहकर रानीको यही अनुभव होता है मानो इस

ऋषिकुमारके स्थानपर उसके प्राणप्रियतम नीलसुन्दर ही वेष-परिवर्तनकर आये हैं। इस विचारसे ही रानीको उस क्षण इतना तीव्र कम्पविकार हो उठता है जिससे उसके अङ्ग-अङ्ग काँप उठते हैं। ललिता किसी प्रकार रानीको संवरित करती है। पुनः रानी सोचने लगती हैं उसे इसी प्रकार कभी-कभी लता-पत्रावलिमें भी तो प्रियतमकी अवस्थितिका आभास होता है – यह भाव भी उसी तरहका होगा।

सूर्यमन्दिरका गर्भगृह गुलाबी रङ्गकी किसी अत्यंत प्रकाशमान् तैजस् धातुसे निर्मित है। गर्भगृहके ठीक मध्यमें ज्योतिर्मयी गुलाबी रङ्गकी ही एक विशाल वेदी है। उसीपर भगवान् सूर्यदेवकी वज्रमणिकी ज्योतिर्मयी श्वेत सप्त अश्वोंके सहित रथारूढ प्रतिमा स्थापित है। प्रतिमाका मुख पूर्वकी ओर है एवं प्रतिमासे अतिशय तेज़स्वी प्रकाश झलमला रहा है। ज्यों-ज्यों सूर्य पूर्व गगनसे मध्य आकाशमें प्रस्थान करता है, यह प्रकाश अधिक-अधिकतर तेजोमय होता जाता है। फिर ज्यों-ज्यों सूर्य अस्ताचलगामी होता है, यह प्रकाश मन्द-मन्दतर होता चला जाता है। जिस वेदीके मध्यमें वह सप्त अश्वों सहित रथारूढ़ सूर्यप्रतिमा स्थापित है उसके दो-दो हाथ पश्चिम, उत्तर, दक्षिण एवं चार पूर्वका सम्पूर्ण भाग सुन्दर वज्रमणिकी परिधिसे आवृत किया हुआ है। यह वज्रमणिका घेरा तीन हाथ ऊँचा है किन्तु इसमें प्रवेशके लिए पूर्वकी ओर द्वार छोड़ा गया है।

ऋषिकुमार मन्दिरके गर्भगृहमें प्रवेश करनेके पूर्व अपने चरण धोनेके लिए स्वच्छ जलकी माँग करता है। रूपमञ्जरी तत्क्षण ही जलभरी झारी लेकर समुपस्थित हो जाती है। ललिता राधारानीको चरण धोनेका सङ्केत करती है। रानी ज्योंही ऋषिकुमारके चरण धोनेके लिए झुकती है, उसे ऋषिकुमारके स्थानपर उसके प्रियतम ब्रजेन्द्रनन्दन ही खड़े दृष्टिगोचर होते हैं। रानीके नेत्रोंमें एक साथ अतीव तीव्र उत्कण्ठाकी लहर उत्थित होती है। ऋषिकुमार ठीक इसी समय यह कहकर अपने चरण हटा लेता है कि वह स्त्रीस्पर्श नहीं करता। किन्तु रानीको तो यही अनुभव होता है कि उसके प्रियतमके चरण उसके हृदयमें विराजित होनेके पूर्व ही ओझल हो गये। बस, रानी मूर्च्छित हो जाती हैं। ललिता तत्क्षण ही ऋषिकुमारसे निवेदन करती है कि 'ब्रह्मन् ! मेरी सखीको उन्माद रोग है। वह अधिकांशतया इसी प्रकार मूर्च्छित हो जाती है। आप कोई विचार नहीं करें।'

ऋषिकुमार मुसकाने लगता है। रूपमञ्जरी जलकी झारी नीचे एक संगमरमरकी चौकीपर रख देती है। ऋषिकुमार स्वतः ही अपने हाथ-पैर धोकर आचमन-प्राणायाम करता है एवं मन्दिरके गर्भगृहमें प्रवेश कर जाता है। ऋषिकुमार ब्रज्रमणिके घेरेके भीतर खड़ा हो जाता है। रानी घेरेके बाहर दक्षिणकी तरफ मुख किये खड़ी हैं। घेरेके बाहरके स्थानमें सखियाँ संगमरमरकी चौकियोंमें विविध पूजा-सामग्री ला-लाकर रख देती हैं।

रानी अपने हाथमें जल, अक्षत, सुपारी एवं लाल वर्णका पुष्प ऋषिकुमारके हाथमें देती हैं। ऋषिकुमार सङ्कल्प पाठ करता है। पूजा कराते-कराते ऋषिकुमारके अधरोंसे ऐसी हासछटा विकरित होती है कि सभी सखियाँ ऋषिकुमारके मुखकी ओर निर्निमेष देखने लगती है। सङ्कल्पके अंतमें वह विनोदकी भाषामें यह सम्पुट अवश्य लगाता है - **श्रीराधायाः दासस्य कृष्णस्य सकल कामनासिद्ध्यर्थं श्रीसूर्यदेवस्य पूजनमहं करिष्यामि।** (श्रीराधाके दास कृष्णकी सर्व कामनाओंकी पूर्तिके लिए मैं सूर्यपूजन करूँगा।)

ललिता एवं रानी ऋषिकुमारकी संस्कृत भाषाकी उक्तिको भली प्रकारसे समझ लेती हैं एवं रानी ऋषिकुमारकी ओर तीक्ष्ण दृष्टिसे देखती हुई ललिताके कानमें अति मन्द स्वरसे कहती हैं - 'ललिते ! ऋषिकुमारके रूपमें कहीं प्रियतम ही तो नहीं हैं, अन्यथा यह इस प्रकार इस उक्तिको - **राधायाः दासस्य कृष्णस्य** को बारंबार क्यों उच्चारण करता है ? यह उनकी ही तरह मुसकाता भी है। कहीं वे तो इसका रूप रखकर नहीं आये हैं ?' कहते-कहते रानी पूजा करना स्थगित कर देती हैं। ललिताको भी यत्किञ्चित् संदेह तो अवश्य होता है किन्तु ऋषिकुमारके मुखकी अत्यधिक सरलता देखकर किसीके लिए भी यह कल्पना करना असंभव होता है कि प्रियतम ब्रजेन्द्रनन्दन इतने

भोलेपन एवं सरलपनेका नाट्य भी कर सकते हैं। ललिता रानीका संदेह निवारण करती हुई यही कहती है कि ऐसी निश्छल मुखाकृति कृत्रिम हो, यह भी संभव नहीं दीखता। इसी समय चित्रा ललिताके कानमें कहती है - 'मैं निश्चयसहित कहती हूँ कि प्रियतम नीलमणि ही ऋषिकुमार बनकर छल कर रहे हैं।'

सखियोंको पूजा स्थगितकर कानाफूसी करते देखकर ऋषिकुमार पुनः सरल हँसी हँसता हुआ कहता है - 'देवि ! विलम्ब हो रहा है, पूजाकी अन्यान्य सामग्री शीघ्र प्रदान करें।' ऋषिकुमारकी वार्ता सुनकर रानी अन्यान्य सामग्री परिधिमें रखती जाती हैं एवं ऋषिकुमार स्वचरित मंत्र पढ-पढकर पूजा करवाता जा रहा है। ऋषिकुमार मंत्रोच्चारण कर रहा है -

ॐ अलकदृगञ्चलललितं रङ्गतरङ्गसललितम्।
संविद्गगनसमुदितं भज मुखविधुमकलुषितम्।।

ॐ चिन्मयलोकालोकाविर्भूत कनकवल्लरिकाङ्ग परिसरोद्वेल्लित निस्सीममधुसौन्दर्यसंदर्शनसंशनरूपध्यानमहं समर्पयामि मम प्राणेश्वरी राधारूप सूर्याय नमः।

इस मंत्रोच्चारणके पश्चात् ऋषिकुमार श्रीराधाको अक्षत एवं जल देकर मंत्रोच्चारण कराता है -

ॐ नीलसरोरुहवरणं नियुतरमामतिहरणं।
स्मरविरहोदधितरणं मुखमर्बुदरतिशरणं।।

ॐ चिदप्रतिम मरकतशैलश्यामलाङ्गसंस्थाननिस्सरित सहस्रायुतसुधातरङ्गिणीसौन्दर्यकण समवलोकन सङ्कलनरूप ध्यानं समर्पयामि मम प्राणवल्लभरूप सूर्याय नमः।

कठिनाई यही है कि ऋषिकुमारके प्रत्येक मंत्रोच्चारणसे रानीका ह्रदय उद्वेलित होकर वे भावाविष्ट होने लगती हैं। चित्रा ऋषिकुमार द्वारा उच्चारित सम्मोहनमंत्र सुन-सुनकर उनका कुछ-कुछ अर्थानुमान करती हुई ललिताके कानमें कहती हैं - 'बहिन ! मैं ठीक कहती हूँ कि प्रियतम श्यामसुन्दरके अतिरिक्त यह कोई अन्य ऋषि बालक नहीं है। मैं ठीक जानती हूँ बहिन, ये अपने सखाओंके सहयोग तथा चतुराईसे ऐसा वेष एवं मुखाकृति बदलते हैं कि इन्हें एवं इनके सखाओंको कोई पहचान नहीं सकता है। मैं अनेक बार इनके छद्मरूपोंके चक्करमें आ चुकी हूँ। ये ऐसे-ऐसे विचित्र आचरण करते हैं कि कोई स्वप्नमें भी कल्पना नहीं कर सकता कि ये श्यामसुन्दर हैं। देख, इनके द्वारा उच्चारित मंत्रोंमें कहीं शास्त्रप्रयुक्त शब्द नहीं हैं। इनके सभी मंत्र स्वरचित हैं। तनिक इनका अर्थ भी मुझसे सुन ले। ये बहुत चतुराई करके समझते हैं कि हम गाँवकी भोली अहीर कन्याएँ संस्कृत नहीं जानती होंगी। किन्तु मैं तो मेरे पिता द्वारा सम्पूर्ण व्याकरणज्ञान कर चुकी हूँ।'

'इनके ध्यानमंत्रका भावार्थ है - चञ्चल अलकावलिसे बारंबार आवृत होनेके कारण जिनका नयन-अवलोकन इतना चञ्चल एवं सुललित है मानो रसरङ्गकी तरङ्ग उछल रही हों, जो अपने स्वयंके आत्मज्ञानसे सम्यक् प्रकारसे उदित होती है, रे मन! उस निष्कंलक चन्द्रके समान प्रिया राधाके मुखका ध्यान कर।'

'इसी प्रकार इनके सम्पूर्ण मंत्र भी केवल प्रियाका गुणगान हैं एवं प्रियासे ये मात्र अपनी प्रेममयी स्तुति करा रहे हैं। इनके सूर्यदेवता भी इनकी प्राणेश्वरी राधाके ही स्वरूप हैं। अब बोल, ऐसी पूजा क्या कोई ऋषिकुमार करा पावेगा ?'

ललिता मुसकाती हुई चित्राको लिये एक किनारे खड़ी हो जाती है। पूजा हो रही है, ऋषिकुमार संस्कृतमें अर्चनाके श्लोक बोल रहा है -

विगलितवसनं परिहृतरशनं घटय जघनमपिधानम्।
किसलयशयने पङ्कजनयने निधिमिव हर्षनिधानम्।।
मम प्राणेश्वरी राधास्वरूप आदित्याय नमः आसनम् समर्पयामि।

किसलयशयनतले कुरु कामिनि चरणनलिन विनिवेशम्।
तव पदपल्लव वैरिपराभवमिदमनुभवतु सुवेशम्।।
मम प्राणवल्लभा राधास्वरूप रवयेः नमः पादयोः पाद्यं समर्पयामि।

गोपीपीनपयोधरमर्दन चलित चपलकरशाली।
मम प्राणेश्वरीस्वरूप भानवे नमः हस्तयोः अर्घ्यं समर्पयामि।

अधरसुधारसमुपनय भामिनि जीवय मृतमिव दासम्।
मम प्राणवल्लभास्वरूप यथा पुत्री तथा पिता भास्कराय नमः मुखे आचमनीयं समर्पयामि।

वदनसुधानिधि गलितममृतमिव स्वीयवचनमनुकूलम्।
विरहमिवापनयामि पयोधररोधकमुरसि दुकूलम्।
मम प्राणवल्लभा भानुनन्दिनी स्वरूप भानवे नमः स्नानं समर्पयामि।

अधरसुधारसमुपनय भामिनि जीवय मृतमिव दासम्।
ऊँ सूर्याय नमः स्नानान्ते आचमनीयं समर्पयामि।

चन्दनचर्चित नीलकलेवर पीतवसन वनमाली।
केलि चलन्मणिकुण्डलमण्डित गुण्डयुगस्मितशाली।।
मम प्राणेश्वरी राधास्वरूप सूर्याय नमः चन्दनं विलेपयामि।

रतिसुखसारे गतमभिसारे मदनमनोहरवेशम्।
न कुरु विलम्बिनि गमनविलम्बनमनुसर तं हृदयेशम्।
मम प्राणवल्लभा प्रिया राधास्वरूप आदित्याय नमः धूपं आघ्रापयामि।

शशिमुखि मुखरय मणिरसनागुणमनुगुण कंठनिनादं।
मम प्राणप्रिया राधास्वरूपा भानवे नमः दीपं दर्शयामि।

प्रियपरिरंभणरभसललितमिव पुलकितमन्यदुरापम्।
मदुरसि कुचकलशं विनिवेशय शोषय मनसिजतापम्।।
मम प्राणप्रिया राधास्वरूप सूर्याय नमः नैवेद्यं अर्पयामि।

अधरसुधानिधिमुपनय भामिनि जीवयमृतमिवदासम्।
ऊँ रवयेः नमः आचमनीयं समर्पयामि।

करकमलेन करोमि चरणमहमागमितासि विदूरम्।
क्षणमुपकुरु शयनोपरिमामिव नूपुरमनुगति शूरम्।।
मम प्राणेश्वरी राधास्वरूप आदित्याय नमः पुष्पाञ्जलि समर्पयामि।

अब पूजा समाप्तप्राय है। अतः विशेषार्घ्य देनेके लिए ऋषिकुमार मन्मथमोहन ऋतुफल एवं नारिकेलकी कामना करता है। विशाखा एक बड़ी स्वर्णकी परातमें पीतवर्णके अतिशय सुन्दर फल रख देती है। ये फल आकृतिमें सन्तरेसे बड़े हैं एवं सन्तरेकी तरह रसीले खट्टे मिट्टे होते हुए भी आम्रकी तरह सुवासित एवं सुस्वादु हैं। इनके सौरभकी महकसे समग्र रविमन्दिर सुरभित हो उठता है। ऋषिकुमार मंत्रपाठ करता है :-

तालफलादपि गुरुमतिसरसं किं विफली कुरुषे कुचकलशम्।
मम प्राणेश्वरी राधास्वरूप भानवे नमः विशेषार्घ्यं समर्पयामि।

रतिसुखसारे गतमभिसारे मदन मनोहरवेशम्।
न कुरु नितम्बिनि गमनविलम्बनमनुसरतं हृदयेशम्।
धीर समीरे यमुनातीरे वसति वने वनमाली।
गोपीपीनपयोधरमर्दन चलित चपल करशाली।
ॐ भास्कराय नमः स्तुतिं समर्पयामि।

अबतक रानी मन्द मुसकाती हुई सभी पूजाकार्य जैसे-जैसे ऋषिकुमार कह रहा था, वैसे-वैसे करती जा रही थी। किन्तु अब वह तीक्ष्ण दृष्टिसे ऋषिकुमारकी ओर देखती हुई उन्मादग्रस्तकी तरह अट्टहास कर बैठती है। रानीको इस बार निश्चय हो गया कि मेरे प्राणनाथ प्रियतम श्यामसुन्दर ही ऋषिकुमार बनकर आये हैं। इस रहस्यसे परिचित हो जानेके कारण वे इतनी अधीर हो उठती हैं कि उनके लिए अब संयत रहना असंभव हो जाता है। वे तत्क्षण ही वहीं सूर्यमन्दिरमें वेदीपर पूजा करातेहुए ऋषिकुमारके चरणोंमें लिपट जाती हैं। प्रेमविह्वल हो उठनेके कारण उनके मुखसे यही निकल रहा है- 'मेरे जीवनसर्वस्व! मैं तो सब प्रकारसे तुम्हारी ही हूँ। **मम प्राणवल्लभरूप प्रेमसूर्याय नमः सर्वस्वं समर्पयामि।**

ऋषिकुमार भी अपने चरणोंमें लिपटी प्राणप्रिया राधाको —ब्रह्मचारीके लिये नारी-संस्पर्श वर्जित है कहकर किसी प्रकार निषेध अथवा वर्जना नहीं करता। प्रेमावेशमें वह भी प्रेममूर्च्छासे मूर्च्छित, चरणोंसे लिपटी अपनी प्रियाका मस्तक सहलाने लगता है।

अब तो सखियोंका रहा-सहा सन्देह भी निवृत्त हो जाता है। चित्राके हाथमें जलकी झारी है। वह पूरा ही जल ऋषिकुमारके मुख पर फेंक देती है। ऋषिकुमार अपने आर्द्र मुखको अपने उत्तरीय वस्त्रसे पौंछता है। मुख पौंछते ही प्रियतम नीलमणिकी अनिन्द्य मुखशोभा स्पष्ट प्रकट हो उठती है। इन्दुलेखा तो इतनी अधीर हो उठती है कि प्रियतमके पृष्ठदेशसे लिपट जाती है। ललिता हाथ बढ़ाकर प्रियतम नीलसुन्दरको बाहर खींच लेती है एवं अत्यंत प्रेमभरी दृष्टिसे देखने लगती है। सर्वत्र आनन्द एवं प्रेम छा जाता है। सखीमंडली प्यारे श्यामसुन्दरको मन्दिरके पीछे एक सुन्दर कुञ्जमें ले जाती है। सभी सखियाँ मिलकर अत्यंत प्रेमसे अपने प्रियतमका शृङ्गार करती हैं।

इसी समय रानीके चरणतलसे प्रकटित सारिका उड़कर वृक्षपर बैठ जाती है एवं अतिशय मधुर कंठसे गाने लगती है –

बने (आज) नंदलाल सखि प्रेममादिक पियें संग ललना लियें यमुना तीरें।
फूली केसर कमल मालती सघन वन मंद सीतल समीरें।।

नीलमणि बरन तन कनकमण्डित वसन परम सुन्दर चरण परस माला।
मधुर मृदु हास प्रकास दसनावली छवि भरे इतरात दृग विसाला।।

कियें चन्दन खौर वदनारविन्द मकरन्दपर लुब्ध भ्रमर कुटिल अलकें।
हलत कुण्डल लटक चलत जब श्यामघन मणिनकी कांति कल गण्ड झलकें।।

एक चम्पकतनी कृष्ण रसमाती करे पंचम संग लागि सोहै। *(चम्पकलता)* *(तुङ्गविद्या)*
एक हरिमुख निरखि धर रही मन मॉहि चित्र सम भई हरि हियें मोहै।। *(चित्रा)*
एक दामिनी सी भुज मेलि ग्रीवा बात कहन मिस मुख सौं मुख मिलायो। *(विशाखा)*
एक नव कुंजमें खेंच रही कटिबन्ध आपनो लाल गिरिधरन पायो।। *(इन्दुलेखा)*
एक श्यामहिं हेर सुभग लोचन फेर विहँसि बोली भलें कान्ह कपटी। *(ललिता)*
एक सौंधै भरी छुटे बारन खरी एक बिनु कंचुकी रीझि लपटी।। *(रङ्गदेवी)* *(सुदेवी)*
एक स्यामा कनक कंजवदनी प्रेम मकरन्द भरी हरि निरख विकसी। *(प्रिया राधा)*
ताके रसलुब्ध रहे लिपट सॉंवर भ्रमर प्राणप्यारी भुजन बीच जू लसी।।
रसिकमणि रँगभरे विहरत वृन्दाविपिन संग सखिमण्डली प्रेमपागी।
कहत भगवान हित रामराय प्रभु माई सोई जाने जाहि लगन लागी।।

इसी समय उड़ता हुआ एक शुक आता है एवं तीक्ष्ण कण्ठसे बोलने लगता है - 'सूर्यदेव ! सचमुच आपने प्रतिज्ञा ही कर ली है कि मैं जो कहूँगा उससे ठीक विपरीत करोगे ? प्रातःकाल मैं हृदयसे कह रहा था कि आप देरसे उदय होना, तो शीघ्र उदय हो गये। इस समय हृदयसे पुनः प्रार्थना कर रहा हूँ कि थोड़ा ठहरो, किञ्चित मन्द मन्थर गतिसे चलो। विश्रान्त हो अतः विश्राम कर लो, तो पश्चिम गगनकी ओर भागे ही जा रहे हो। क्या कहूँ ?'

शुककी बात सुनकर सभीकी दृष्टि सूर्यकी ओर चली जाती है। सभीको ध्यान हो आता है कि दिन ढलने जा रहा है। इस स्मृतिसे रानीका मुख पुनः गंभीर हो उठता है। वे उठकर खड़ी हो जाती हैं। रानीको हृदयसे लगाकर प्रियतम श्यामसुन्दर कहते हैं - 'प्रिये ! मैं शीघ्र गायोंके सङ्ग आ रहा हूँ।' ।।७६५।।

इसके पश्चात् बिछुड़नेकी जल पड़ती आग वही, प्रियतम !
साँवर सँभालने-चल पड़ते गो-सखा-समूहोंको, प्रियतम !
रजनीमें पुनर्मिलनकी उस आशाको लिये हुए, प्रियतम !
बाला मुरझायी माला-सी घर आकर पड़ रहती, प्रियतम।।७६६।।

इसके पश्चात् परस्पर बिछुड़नेकी वही आग धक् धक् करके जलने लग जाती। नीलसुन्दर अपनी गायोंको, सखासमूहोंको सँभालनेके उदेश्यसे उस ओर चल पड़ते। अन्तर्हृदयमें रजनीके आनेपर पुनर्मिलनकी उस आशाको लिये हुए राधाकिशोरी एक मुरझायी माला-सी अपने घर आकर शैयापर निमीलित नेत्रोंसे ढल पड़तीं।............ .....।।७६६।।

तात्विक विवेचन-विस्तार

इसके पश्चात् बिछड़नेकी जल पड़ती आग वही, प्रियतम !

प्रीतिकी अतिशयतासे प्रियतमका कण्ठ अवरुद्ध हो जाता है। सभी सखियोंके कपोल अश्रुवर्षासे आर्द्र हो रहे हैं। प्रियाकी तो आकुलतावश देहकी सुधि छूटती-सी जा रही है। उनका चित्त उत्तरोत्तर विह्वल होता जा रहा है। स्वयं ललिताके ही वस्त्राभूषण स्खलित हैं, वेणी खुल गयी है। यद्यपि सखियाँ भावी विरहसे निराश हैं, फिर भी सखियोंकी मन-बुद्धि-प्राणेन्द्रियोंमें एक ज्योति रह-रहकर जग उठती है कि 'चारों ओर गायोंसे घिरे ब्रजेन्द्रनन्दन अधरोंपर वंशी रक्खे स्वर भर रहे हैं। ओह ! उनका यह स्वर कितना उन्मादी है, इसे ब्रजके कीट-पतङ्ग-भृङ्गतक जानते हैं। नीलसुन्दरकी ग्रीवासे झूल-झूलकर स्नेह प्रदर्शित करने सखागण अपने प्राणप्रिय कन्नूकी उन्मादी वंशीध्वनिमें अपना

सुरीला मधुर कंठ मिला दे रहे हैं। ओह ! वंशीका स्वर एवं उनके गीतकी स्वरलहरी दोनोंका संयोग अद्भुत ही है। एक ओर प्रत्येक गायका नाम नीलसुन्दरके वंशीछिद्रोंसे अत्यंत स्पष्ट झरता जा रहा है - वे गायें भी उसी क्रमसे अपने प्रिय गोपके सङ्केतसे सञ्चालित हो रही हैं तथा दूसरी ओर गोपशिशुओंके सङ्गीतमें प्रलम्ब, बक, तृणावर्त आदिके विनाश, दावानलपान तथा कालियमर्दनका सुयश, नीलसुन्दरकी अद्भुत महिमा एवं भूरि-भूरि प्रशंसा व्यक्त हो रही है।''

सभी सखियाँ रानीको धैर्य दिला रही हैं - 'बहिन ! शीघ्र चलें। प्रासादकी अटरीसे अपने प्राणपतिको नन्दभवन-आगमनके समय नेत्रभर निहारेंगे।' ओह ! रानीका महाभावरूपी पुष्प-पल्लवमय मनोहर उद्यान इस समय अपने प्राणवल्लभके अदर्शनसे उत्पन्न विरहाग्निकी भीषण ज्वालासे कैसा धक् धक् जल रहा है। इसकी कल्पना कोई विरही रसिक ही कर सकता है। अपने प्रियतमके एक क्षणका अदर्शन मात्र रानी एवं उसकी सखियोंके हृदयोंको शत-सहस्र युगोंका व्यवधान लगता है। रानी एवं सभी सखियाँ इस अल्पकालिक बिछोहके समय भी कितनी भावविह्वल हैं, वाग्वादिनी इसको देख भले ही लें, इसके एक अंशका भी चित्रण करनेमें तो वे असमर्थ ही हैं, असमर्थ ही रहेंगी। अवश्य ही वाग्देवीके अन्तस्तलकी वह रसमय अनुभूति तरलित होकर प्रतिफलनके रूपमें मधुमतीमञ्जरीके इस गायनकी ओटसे किञ्चित्मात्र झलमल-सी कर उठी है। प्रियतम प्रियाके कण्ठसे लगे उसे वाम भागमें सटाये उत्तरकी ओर प्रस्थान कर रहे हैं। पीछे-पीछे सखियोंके यूथमें मधुमती वीणामें स्वर भर रही है।

श्रीगोवर्धनवासी साँवरे लाल, तुम बिन रह्यौ न जाय।
ब्रजराज लडैंते लाडिले लाल, तुम बिन रह्यौ न जाय।।
बंक चितै मुसकाय कै लाल, सुन्दर वदन दिखाय।
लोचन तलफैं मीन ज्यों लाल, पल-छिन कल्प बिहाय ।।१।।
सप्तक स्वर बन्धान सौं लाल, मोहन वेणु बजाय।
सुरत सुहाई बाँधि कैं नैकु मधुर-मधुरे गाय।।२।।
रसिक रसीली बोलनी लाल, गिरि चढ गैयाँ बुलाय।
गाँग बुलाई धूमरी नैंकु ऊँची टेर सुनाय ।।३।।
दृष्टि परे जा दिवस तैं लाल, तब ते रुचै न आन।
रजनी नींद न आवही मोय बिसर्‍यौ भोजन-पान।।४।।
दरसनकौं नयना तपैं लाल, बचन सुनन कौं कान।
मिलिबे कौं हियरा तपै मेरे जियके जीवन प्रान।।५।।
पूरन ससि मुख देखिकैं लाल, चित चौंट्यौ वाही ओर।
रूप सुधारस पान कैं लाल, सादर कुमुद चकोर।।६।।
मन अभिलाषा है रही लाल, लगत न नयन निमेष।
इकटक देखूँ भाँवतो प्यारो नागर नटवर भेष।।७।।
लोकलाज कुल वेदकी लाल, छाँड्यो सकल विवेक।
कमल कली रवि ज्यों बढै लाल, छिन-छिन प्रीति विशेष।।८।।
कोटिक मन्थन वारने लाल, देखत डगमगी चाल।
युवतीजन-मन-फन्दना लाल, अम्बुज नयन विशाल।।९।।
कुंजभवन क्रीड़ा करौ लाल, सुखनिधि मदनगोपाल।
हम वृन्दावन मालती तुम भोगी भ्रमर भूपाल।।१०।।

यह रट लागी लाडिले लाल, जैसे चातक मोर।
प्रेम नीर बरखा करौ लाल, नव घन नन्दकिशोर।।११।।
युग-युग अविचल राखिये लाल, यह सुख शैल निवास।
श्रीगोवर्धनधर रूप पै बलि जाय चतुर्भुजदास।।१२।।

ओह ! अपनी प्राणप्रियाके कण्ठसे गुँथे प्रियतमके नयन भी अश्रुवर्षा करते हुए रानीके मस्तकको भिगो रहे हैं। किसी प्रकार ह्रदयको व्रजके समान कठोर करके वे रानीसे पृथक् होते हैं। गायन करती मधुमतीके वीणाके तार झन-से टूट जाते हैं। उसका कण्ठ भी अवरुद्ध है। 'हा प्राणवल्लभ !' कहती रानी भूमिमें धम-से बैठ जाती हैं। वह खड़ी नहीं रह पातीं। रानी द्वारपर बैठी निर्निमेष नयनोंसे प्रियतमकी ओर दृष्टि जमाये हैं। प्रियतम कुछ दूर चलकर इन्दुलेखाकुञ्जके पूर्वी सीमाके पास गिरिवरस्रोतके पुलको पारकर उत्तरकी ओर चले जाते हैं। जब उसके प्राणवल्लभ दृष्टिपथसे ओझल हो जाते हैं तो रानी एक कटे वृक्षके समान गिर पड़ती हैं। ललिता रुँधे कण्ठ, बिखरे बाल, कपोलोंपर बहते अश्रुओंसे भीगी होते हुए भी किसी प्रकार अपनी सखीको सँभाल लेती है।

किञ्चित् काल सभी सखियाँ वहीं स्तब्ध बैठी रहती हैं। फिर जब भावसन्धि होती है, ललिता सहारा देकर रानीको किसी प्रकार खड़ी करती है। रानी ललिताका कंधा पकड़े धीरे-धीरे अपने राजप्रासादमें जानेके लिए पश्चिमकी ओर राजपथमें चलने लगती हैं। रानीकी इस समयकी मुखमंडलकी आभा ऐसी है, मानो एक मुरझाई पुष्पमाला हो। वह किसी प्रकार अपने प्रासादतक सखियोंके सहारे पहुँच पाती हैं। अपने प्रियतम नीलमणिकी अखण्ड स्मृतिमें मग्न रानी कदाचित् वन-विछोहके अनन्तर सायङ्कालतक भी जीवन धारण कर सकेंगी कि नहीं, यह निर्णय कर लेना ललितादि सखियोंके लिये सहज नहीं है। अतः जैसे ही रानीकी ह्रदय-बेली एक सीमातक मुरझाती है, ललिता उसे तुरंत गोचारणकर लौट रहे प्रियतमकी स्मृति दिला देती है। ललिता द्वारा प्रिया राधाकी भावनाको उद्दीपित कर देनेकी बार–बार की गई यह क्रिया ही उन्हें सुसज्जित होने एवं अटारीपर चढ़कर वनचारणसे लौटते एवं राजपथसे नन्दभवनमें प्रवेश करते हुए अपने प्राण-प्रियतमके दर्शनोंके लिए जाग्रत रखे रहती है। ।।७६६।।

सहचरी नवीन वेष भूषा उसकी रच देती थी, प्रियतम !
उस ओर वेणुरव से वनका कण-कण पूरित होता, प्रियतम !
घर अतुल नीलमणि साँझ समय मैया के घे आते, प्रियतम !
दर्शन फिर तनिक दूर से ही कुछ पल बाला पाती, प्रियतम ।।७६७।।

सहचरियाँ राधाकिशोरीकी नवीन वेशभूषाका निर्माण करतीं। इतनेमें ही वेणुरवसे वनका कण-कण पूरित होने लगता। नीलमणि संध्याके समय मैयाके पास जानेके उद्देश्यसे नन्दप्रासादकी ओर अग्रसर होते। कुछ पलोंके लिए दूरसे ही राधाकिशोरी नीलसुन्दरका दर्शन करके कृतार्थ होतीं।।७६७।।

तात्विक विवेचन-विस्तार

सहचरी नवीन वेषभूषा उसकी रच देती थी, प्रियतम !

ललितादि सखियाँ प्रियाका शृङ्गार कर रही हैं। पश्चिम गगनसे संध्यासुन्दरी उस शृङ्गारका दर्शनकर स्वयंको भी प्रियाके विद्युद्वर्णी रूपमें प्रकट करनेकी चेष्टामें निरत हो उठती है। वह प्रिया राधाको देख-देखकर स्वयं उसकी अनुकृति करने जा रही हैं। परन्तु प्रिया इतनी मनोहर हैं कि संध्या लजाकर अस्ताञ्चलमें मुख छिपानेको विवश हो जाती है। संध्या अपनी अनुचरियों -रविकिरणोंके संयोगसे भले ही प्रियाके कुन्दनप्रभ विद्युद्वर्णको अपना ले, किन्तु प्रियाके रोम-रोमसे जो नेहगत सुधा-सम शीतलता झरती है, प्राणोंको आप्यायित करने वाली अतिशय रसमयी

भावभीनी मादकता छलकती है, उसे वह बेचारी कहाँसे पायेगी। प्रियाकी लावण्यमयी अपरिसीम मधुरताके दर्शनकर लज्जामें डूबी संध्या अपनेको कृतकृत्य अनुभव करती हुई अस्ताचलगामी रविके सङ्ग-सङ्ग प्रस्थान कर जाती है।

ओह ! सखियोंने प्रियाको क्षौमका लँहगा पहनाया है जो नीलकमलकी सुकोमलता लिये नवोदित मेघमालाके वर्णका है। इसमें ताराप्रभ वज्रमणियाँ खचित हैं। प्रियाकी सुकोमलतम कटिमें इस लँहगेको बाँधनेसे तनिक भी बन्धनजन्य खरौंच नहीं लगे, इसलिए इसकी नीवीग्रन्थि नवतमालपत्रोंसे भी अधिक सुकोमल रची गयी है। किन्तु आश्चर्य है कि मरकतमणियोंकी आभाको भी तुच्छ बनानेवाले इस लहँगेके अन्तरालसे प्रियाके पृथुल चक्राकार नितम्बों, उनकी कदलीसम गोलाकार जंघाओंकी ऐसी तेजोमयी स्वर्णिम कान्ति स्फुटित हो रही है जिससे इस अनन्त सौन्दर्यके आकार लहँगेकी भी संपूर्ण कलात्मकता तुच्छ एवं हेय प्रतीत हो रही है।

प्रियाके उरोजोंको आच्छादित करनेके लिए सखियोंने लाल रङ्गकी आठ बन्धोंवाली कञ्चुकी पहनाई है। प्रियाकी कम्बुसम ग्रीवा एवं वक्षस्थलपर कनकहारावली शोभित है, उसके ऊपर माणिक्य, वज्रमणि एवं तब अनमोल मुक्तावलीके हार झूल रहे हैं। इन सभीके ऊपर रङ्गबिरंगी गुञ्जा एवं तब वनमालाने तो सभीकी निर्माणकलाको तुच्छ बना दिया है। प्रियाके अङ्ग-अङ्गमें रत्नजटित आभूषण शोभा पा रहे है। सखियों द्वारा गुम्फित प्रियाकी वेणी क्रीड़ाकेलिरसकी अनुपम आकार है। लम्बी घुँघराली अलकावली अनमोल फुलेल एवं पुष्पसारोंसे सिञ्चित है, जिससे विविध प्रकारके सुवासके झौंके आ रहे हैं। केशपाश विभिन्न पुष्पमालाओंसे जटित हैं। चमकते हुए ललाट एवं कपोलोंपर सखियोंने कस्तूरी एवं केशरसे ऐसी चित्रकारी की है कि द्रष्टा मात्र अनिर्वचनीय कहकर शान्त हो जायगा। लीला-विलासमय भौहोंके विलाससे प्रियाकी शोभा अपूर्व हो रही है। प्रियाके प्रीतिमदसे झूमते हुए कमनीय नेत्रमध्य तो नीलकमलकी एवं नेत्रप्रान्त रक्तपद्मकी छटा धारण किये हैं। शुकचंचुकी तरह प्रियाकी नासिकाके अग्रभागमें सखियोंने ऐसी सुन्दर नीलमकी बेसर पहनाई है जो प्रियाके रक्ताभ अधरोंको कृष्णवर्णसे रञ्जित कर रही है। प्रियाके दोनों कान स्वभावसे ही अतिशय मनोहर हैं, उनपर तरल मणिजटित तरौने शोभायान हैं। इन तरौनोंमें जटित रत्नोंकी कान्ति कपोलोंको दर्पणकी तरह दमका रही है। प्रियाके कण्ठमें मानो लावण्यसिन्धु लहरा रहा है। अपनी कजरारी अपाङ्ग दृष्टिसे प्रिया त्रिभुवनको मोहित कर रही है। प्रियाके ग्रीवाकी मरोड़ इतनी मधुर एवं आकर्षक है कि अपनी सखीकी सुन्दरता निरख-निरखकर सखियाँ निहाल हो रही हैं। कमलनाल-सी सुकोमलतम प्रियाकी भुजाओंमें सखियोंने बाजूबन्द, कंगन एवं रत्नचूड़ियाँ पहनाई हैं। प्रियाकी अँगुलियोंमें अँगूठियाँ शोभित हैं एवं चरणकमल परम मनोहर रत्नजटित नूपुरोंसे मण्डित हैं। प्रियाके रोम-रोमकी छवि विलक्षण प्रेम एवं आनन्दकी वर्षा कर रही है।

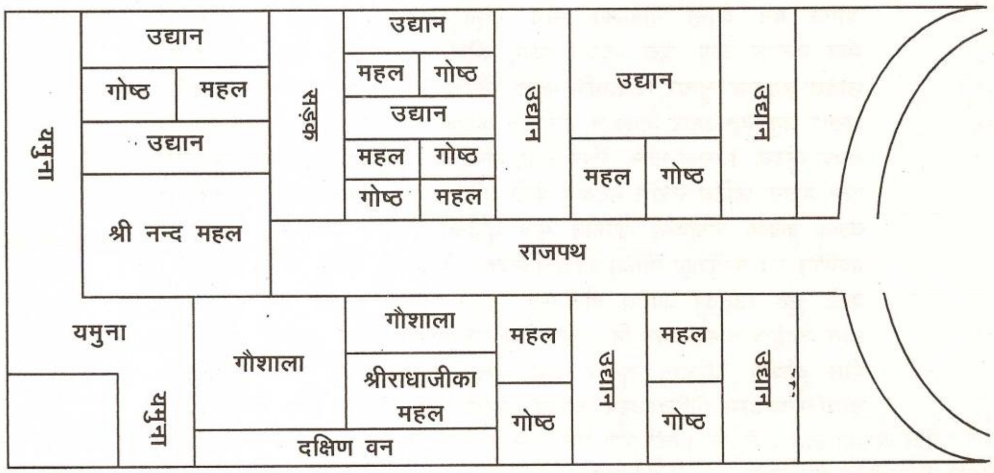
इस प्रकार सुसज्जित प्रिया सभी सखियोंके झुण्डसे घिरी प्रियतम ब्रजेन्द्रनन्दनके आगमनकी प्रतीक्षामें अपने महलकी सबसे ऊँची अटारीपर विराजित हैं।

दर्शन फिर तनिक दूरसे ही कुछ पल बाला पाती, प्रियतम !

सूर्य पश्चिम दिशामें ढल चुका है। नन्दबाबाके प्रासादके सम्मुख अब धूप सर्वथा नहीं है। प्रासादका सिंहद्वार पूर्वकी ओर है। प्रासादके सम्मुख स्वच्छ स्फटिकका एक अतिशय चौड़ा राजपथ पूर्व दिशाकी ओर जा रहा है। नन्दमहलसे पूर्वकी ओर लगभग दो सौ पच्चीस गज चलनेपर श्रीराधारानीका प्रासाद है। महावनसे श्रीनन्दरायजीके वृन्दावन चले आनेपर ब्रजमण्डलके सभी गोपराजा अपनी गौओंको लेकर वृन्दावन ही आ गये थे। देवशिल्पी विश्वकर्माने इन सभी गोपोंके लिये उपयुक्त आवास एवं गोशालाएँ निर्मित कर दी थीं। अतः ब्रजमण्डल, वृषभानुपर, जावटग्राम आदि गोपराजाओंकी अधिकांश सभी बस्तियाँ वृन्दावनमें ही आकर बस गयी थीं। देवशिल्पी विश्वकर्माने भी सभीकी समृद्धि, पद, एवं गौओंके अनुरूप बृहद् एवं उपयुक्त आवास निर्माणकर इन सभी गोपोंके उनपर नाम भी अङ्कित कर दिये थे। राजपथके दोनों किनारोंपर इन्हीं गोपोंके समृद्ध आवास, उद्यान एवं विशाल गोशालाएँ हैं जिनमें लाखों

गौएँ एवं बछड़े रहते हैं। अवश्य ही इन गोपराजाओंकी गोचरभूमियाँ यहाँसे अन्यत्र दूर-दूर हैं एवं इनके कृषिक्षेत्र दूरस्थ ग्रामोंमें हैं जिन्हें सँभालनेके लिए ये आते-जाते रहते हैं।

नकशा



राजपथके किनारे-किनारे विशाल अशोकके वृक्ष लगे हैं। ये अलौकिक वृक्ष हैं तथा इनके फल आम्र सरीखे मीठे होते हैं। सभी वृक्ष परस्पर दस-दस हाथकी दूरीपर हैं एवं इनके दो-दो हाथमें चारों ओर गोलाकार आलवाल बने हैं। ये आलवाल ज्योतिर्मान् गुलाबी वर्णके किसी चमकीले पत्थरके बने हैं। इन वृक्षोंके हरे-हरे पत्ते सायङ्कालीन वायुके तेज झौंकोंसे हिल रहे हैं। आज संध्या समय वायु पश्चिमकी ओरसे कुछ तेज गतिसे चल रही है। वायुकी गति तेज है। अवश्य ही गगनमें रूईके समान शुभ्र श्वेत बादल तैर रहे हैं।

पश्चिम गगनमें वनसे लौटती गायोंके पैरोंसे उडी हुई धूलि दूरसे आँधीकी तरह उमड़ी दृष्टिगोचर हो रही है। यह गोधूलि ज्यों-ज्यों निकट आ रही है ब्रजके लोग नीलमणिके स्वागतार्थ राजपथमें इकट्ठे हो रहे हैं। राजपथके दोनों किनारोंपर वृक्षोंके आलवालोंके पास गोपियोंकी भीड़ लगी है। महलोंकी अटारियों तथा खिड़कियोंपर जहाँसे भी खड़े होकर कोई राजपथको देख सकता है, वहाँ-वहाँ गोपियाँ खड़ी दिखाई पड़ रही हैं। सभी गोपियाँ जिनके पास जितना एवं जैसा शृङ्गार उपलब्ध है, उससे सज्जित हैं। उनके मुखारविन्दोंसे असीम अनुरागजन्य दर्शनोत्कण्ठा झलक रही है। बड़ी उत्सुकतासे सभी पूर्वकी ओर दृष्टि जमाये हैं।

अपने राजाप्रासादकी सर्वाधिक उन्नत छतपर एक दीवारसे सटी चौकीपर प्रिया मखमली गद्देदार गलीचेपर आसीन हैं। चौकी छतकी पूर्वी दीवारसे किञ्चित् नीची है। इस चौकीपर सुखासीन हुई गोपियाँ राजपथका सब दृश्य सुस्पष्ट देख पाती हैं। इस चौकीपर प्रिया पैर लटकाये आसीन हैं। ललिता प्रियाके दक्षिण ओर प्रियाके पास ही बैठी है, प्रियाका दाहिना हाथ ललिताके बायें कन्धेपर है। इस चौकीके पीछे प्रियाकी पीठके पास अनेक सखियाँ खड़ी हैं। रूपमञ्जरी प्रियाके चरणोंके पास नीचे छतकी संगमरमरकी धरापर एक गलीचेमें बैठी है एवं प्रियाके चरणोंको दबाती हुई तलुओंको नीले रङ्गके रूमालसे सहला रही है। रूपमञ्जरीके एक किनारे पार्श्वमें आसीन लवङ्गमञ्जरी स्वर्णके

पनबट्टेमेंसे पान निकालकर उन्हें कत्था-चूनेके लेपसे सिक्तकर अति सुगन्धित, रोचक, स्वादवर्धक, भिन्न-भिन्न मसालोंसे संयुक्तकर ताम्बूलवटिकाएँ तैयार कर रही है। मञ्जुश्यामा नीले रेशमी वस्त्रका व्यजन हाथमें लिये प्रियाके पार्श्वमें ही खड़ी है। वायु आज स्वाभाविक ही शीतल है एवं तीव्र गतिसे बह रही है। लवङ्गमञ्जरीसे उत्तरकी ओर मधुमतीमञ्जरी दक्षिण दिशाकी ओर मुख किये प्रियाजीके सङ्केतसे वीणापर अतिशय सुमधुर स्वरोंमें आलाप ले रही है-

आवत बने कान्ह गोबालक संग नैचुकी खुररेणु छुरित अलकावली।
भौंह मनमथ चाप, वक्र लोचन बाण, सीस सोभित मत्त मयूर चन्द्रावली।।
उदित उडुराज सुन्दर शिरोमणि वदन, निरख फूली नवल युवति कुमुदावली।
अरुण सकुचित अधर बिंबफल उपहसत कछुक प्रकटित होत कुंद दसनावली।।
श्रवण कुंडल, तिलक भाल, बेसर नाक, कण्ठ कौस्तुभ मणी, सुभग त्रिवलावली।
रत्न हाटक जटित उरसि पदकन पाँति, बीच राजत सुभग झलक मुक्तावली।।
वलय कंकण बाजूबन्द आजानु भुज मुद्रिका करतल विराजित नखावली।
क्वणित कर मुरलिका मोहित अखिल विश्व गोपिकाजन मनसि ग्रथित प्रेमावली।।
कटि क्षुद्र घंटिका जटित हीरामणी, नाभि अम्बुज वलित भृंग रोमावली।
धाय कबहुँक चलत भक्त हित जान प्रिय गंड मंडित रुचिर श्रमजल कणावली।।
पीत कौशेय परिधान सुन्दर अंग चलत नूपुर बजत गीत शब्दावली।
हृदय कृष्णदास गिरिवरधरन लालकी चरण नख चन्द्रिका हरत तिमिरावली।।

गीत समाप्त होते-होते दूर पूर्वकी ओर अत्यंत मधुर स्वरमें मुरलीध्वनि सुनाई पड़ने लगती है। और लो, अब तो प्यारे नीलमणिका मेघ गंभीर स्वर भी श्रवणगोचर होने लगा है। पथके ठीक मध्य ओर जो फुलवारी है, उसपर गौएँ अपना मार्ग नहीं बनायें अतः नन्दनन्दन एवं उनके सखा इसी रूपमें गायोंके समूहोंको नियंत्रण कर रहे हैं। ओह ! नन्दतनूजके आगे गाये हैं, पीछे गायें-ही-गायें हैं। दाहिने और बायें भी गायें है। वे श्रीदामके कन्धेपर दाहिना हाथ रखे हैं एवं बायें हाथसे अधरोंपर वंशी रखकर वंशीसे अत्यन्त कलात्मकतासे प्रत्येक गायका नाम ध्वनितकर उसे अपने नियंत्रणमें कर रहे हैं। वंशीनिनादमें प्रत्येक गौ अपना नाम सुन रही है - 'अरी पिशंङ्गि ! मेरे सम्मुख रह; ओ मणिकस्तनि ! मध्यमें चल; अरी प्रणतशृङ्गि! पिङ्गेक्षणे ! तुम दोनों अत्यधिक चञ्चला हो, उछलो मत, नियंत्रित चालसे चलो; अरी मृदङ्गमुखी, धूमले, हंसि, वंशीप्रिये, आजा, आ, मेरे निकट ही रह।' वंशीमें ही सखाओंकी 'हीओ-हीओ' ध्वनिका नीलमणि ऐसी अनुकृति करते हैं कि यह नाद सभी गौपशिशुओंके कर्णपुटोंमें अनिर्वचनीय पीयूषस्रोतका सृजन कर देता है। बड़े-बड़े लकुट लिये गोपबालक असंख्य गोराशिको राजपथके मध्यमें ही नियंत्रित रखनेके उद्देश्यसे गायोंको चारों ओरसे घेरे हैं।

कबहूँ छितर जाय जब गाय। मुरली ध्वनिमें टेर लगाइ।।
हे गंगे हे हे गोदावरि! प्रणतशृंगि पिंगेक्षणि भावरि।।
हे मृंदगमुखि मंजरि कुंजरि! हे हे धौरी धूमरि पीयरि।।
नन्दतनयकी सुन्दर टेरनि। इत उत हेरि-हेरि पट फेरनि।।

स्रवन नाद सुनि तृन तजी चितवन सीस उठाइ।
प्रेम विवस है हूक भरि चहुँ दिसि सिमटी आइ।।

ओह ! प्राणसारसर्वस्व नन्दतनूजकी प्रेमाधीनताकी जय हो ! सभी गायें आनन्दविह्वल हुईं नन्दतनयके ही आसपास पूर्णतया अनुशासित, पूर्णतया नियंत्रित सिमट आयी हैं। गौओंका वह अनादिरक्षक गोपाल अपने पीताम्बरसे गायोंकी धूलिधूसरित पीठको पौंछ रहा है।

चत्रभुज प्रभु पट पीत लियें कर आनँद उर न समाय।
पौंछत रेनु धेनु की बलि बलि गिरि गोवर्धन राय।।

प्रिया अपने महलकी सबसे ऊँची अटारीपर उत्सुकतावश खड़ी हो गई हैं। रानीको अपने प्रासादसे लगभग तीन फर्लांग दूर पूर्व दिशामें गौओंसे धिरे प्रियतम नीलमयङ्कदेव मन्द-मन्द मुसकाते आते दृष्टिगोचर हो जाते हैं।

ओह ! प्रियतम प्राणवल्लभ नीलसुन्दरने अटारीपर चढी, उत्सुकतासे अपलक, एकटक उन्हें ही निहारती अपनी प्राणप्रियाको देख लिया है। दोनोंके नेत्र भी परस्पर मिल जाते हैं। प्रियाके उन्मादी सुन्दर प्रीति छलकाते आननपर दृष्टि पड़ते ही प्रियतम आत्मविस्मृत हो उठते हैं। सुबल एवं श्रीदाम जो अपने सखाके आसपास दायें-बायें चल रहे है, सावधान हो उठते हैं कि कहीं उनका सखा अपनी सुध-बुध ही नहीं खो बैठे। वे अपने सखाका ध्यान तत्क्षण ही एक गोपीकी ओर आकृष्ट कर देते हैं जो उन्मत्तवत् गा रही है -

देखन देत न बैरिन पलकें।
सुन्दर बदन लाल गिरिधरको बीच परत मानो बज्रकी सलकें।
बन तैं आवत वेणु बजावत गोरज मंडित राजत अलकैं।
माथैं मुकुट श्रवण मणिकुण्ड़ल ललित कपोलन झाँई झलकैं।
ऐसे मुख देखन कौं सजनी कहा कियो यह पूत कमल कैं।
नन्ददास सब जड़न की यह गति मीन मरत भायें नहिं जल कैं।

ओह! गोपीके मृदुलतम प्रीतिभरे कण्ठसे पञ्चम स्वरोंमें आलाप किये इस गीतको सुनकर नन्दनिकेतनकी ओर अग्रसर होती गौएँ सचमुच ही ठिठक जाती हैं। गीतके उन्मादी भावमें डूबे बड़े-बड़े लकुट लिये गोपाल अपनी सुधबुध खो बैठते हैं। राजपथके दोनों ओर लगे अशोकके वृक्षोंमें बैठे विहङ्गम शान्त स्थिर होकर अपनी प्रतिद्वन्द्वी गायिकाकी ओर देखने लगते हैं। कोकिलाएँ उस मधुर पञ्चम स्वरकी तानको सुनकर उसकी अपेक्षा भी मृदुलतर कण्ठसे अपने कूजन द्वारा वैसे ही रागको भरनेकी चेष्टा अवश्य करती हैं, किन्तु कुछ ही क्षणोंमें अपनी पराजय स्वीकारकर हतप्रभ मौन हुई दूसरे वृक्षकी ओर उड चलती हैं।

सखाओं द्वारा उस उन्मत्त गोपीकी प्रेमदशा दिखाये जानेपर प्रियतम प्राणवल्लभ श्रीकृष्णको पुनः अपनी प्रियाकी स्मृति प्रबलतर हो उठती है। वे अकस्मात् ही अपने आनन्दोल्लाससे विरत हो जाते हैं। उनके नित्य नवसुन्दर मुखारविन्दपर एक विचित्रसी व्याकुलताका चिह्न प्रकट होने लगता है। सुबलकी चतुर आँखें यह सब परिलक्षित कर लेती हैं। वह श्रीकृष्णका ध्यान हटाता हुआ कहता है - 'अरे भैया कृष्ण ! देखो तो सही, गायें कहाँ-से-कहाँ चली गयीं? अपने नर्मसखाके भयको निवारण करते नीलसुन्दरके बिम्बारुण अधरपल्लवोंपर पुनः पूर्वका स्मित व्यक्त हो उठता है।

ओह ! अविलम्ब ही ब्रजेन्द्रनन्दन अपनी मुरली कटिसे निकालकर पुनः होंठोंपर रख लेते हैं। उनका उसमें स्वर भरना आरम्भ हो जाता है। ब्रज बृन्दावनकी इस शकटपुरीके अणु-अणु, कोने-कोनेमें एक साथही ध्वनि प्रसरित होने लगती है। फिर इसके दिव्योन्मादमय प्रभावको कोई सह ले, यह संभव ही कहाँ है। सम्पूर्ण शकटपुरी ही अपने गृह-आवास त्यागकर मुरलीवालेको ह्रदयमें भर लेनेको उमड़ उठती है। अब तो वृद्ध वृद्ध नहीं रहते एवं युवतियाँ युवतियाँ नहीं रहतीं। अपने आपेका भान ही जब नहीं तो कौन तो नर एवं कहाँ नारी ? सभीके कर्णपुटोंके पथसे उनके ह्रत्तलोंको एक अनिर्वचनीय सुधा-कल्लोलिनी आप्यायित करने लगती है। उस मुरलीवादककी महामरकत श्यामल छविसे उनके सभीके दृगाञ्चल भर रहे हैं। सभीके नेत्र या तो मुँदे हैं या उनकी पलकें गिरती ही नहीं, जड़िमाग्रस्त हुईं स्थिर हो उठी हैं। सभी गोपाङ्गनाएँ उन्मादिनी हो उठी है। जैसे-जैसे गायें आगे बढ़ती हैं गोपावासकी स्त्रियाँ सभी लोकलाज, कुल-व्यवहार त्यागकर अपने प्राणधन नन्दनन्दनके पीछे हो लेती हैं। राजपथके दोनां छोरोंपर गोपियोंके

असंख्य यूथ खड़े हैं। छतोंपर, गवाक्षिकाओंपर, छज्जों एवं बारादरियोंपरसे गोपियाँ पुष्पवर्षा कर रही हैं। आकाशसे अमरवृन्द पुष्प बरसा रहे हैं। पीछेसे गोपाङ्गनाओंका इतना तीव्र रेला आता है कि सखागण एवं गौएँ आगे ठेल दी जाती हैं। अपने प्रियतमको घेरकर चारों ओर गोपियाँ-ही-गोपियाँ दृष्टिगोचर हो रही हैं। गोपियोंकी भीड़ द्वारा सखागण भी श्रीकृष्णसे इस प्रकार दूर कर दिये जाते हैं। वे अपने हाथों अपने सामनेसे गोपियोंको हटानेकी चेष्टा करते हैं एवं मुसकाकर आगे खड़ी गोपियोंसे कहते हैं - 'अरी, तुम्हारे श्वसुर नन्दबाबाकी भी लाज तुम्हें नहीं है ? वे दूरसे तुम्हारी सब करतूतें देखकर लाजसे गड़े जा रहे हैं। अरी बावलियों ! तनिक राहसे हट जाओ, न !'

समुन्नत उरोजोंवाली किशोर वयकी एक उन्मादिनी गोपी, जिसकी ओढनी सिरसे नीचे खिसक गयी है एवं जो अपनी ओढनीको कटिफेंटकी तरह कसकर श्रीकृष्णके आगे राह रोककर खड़ी हँस रही है, मुसकाकर नेत्रोंसे कटाक्ष फेंकती हुई कहती है- 'प्राणवल्लभ ! आज तो सब पथ बन्द हैं। भागोगे कहाँ ?'

प्रियतम उसके कानोंमें कहते हैं - 'देख, फिर गाली तो नहीं देगी ? राह निकालना तो मुझे आता है।' उसके साथ खड़ा गोपियोंका झुण्ड श्रीकृष्णका पीताम्बर पकड़ लेता है। सभी हँसती हुई कहती हैं - 'स्त्रियोंकी तरह बहुत नाचते हो, नयन नचाते हो, भौहोंसे तीर चलाते हो ! आज हम तुम्हें लहँगा-ओढनी पहनाकर ही छोड़ेंगी।'

गोपियाँ मिलकर गाने लगती हैं -

रसिया कौं नारि बनावौ री।
कटि लेंहगा उर माँहि कंचुकी, चूनर सीस उढावो री।।
बाँह बरा बाजूबन्द सोहै, नकबेसर पहिरावौ री।
गाल गुलाल दृगन बिच काजर, बेंदी भाल लगावौ री।।
आरसी छल्ला और खँगवारी, अनवट बिछुआ पहिरावौ री।
नारायण तारी बजाय कै जसुमति निकट नचावौ री।।

प्रिया राधा प्रासादकी अटारीसे नीचे उतर आती हैं। वह एक अशोकसे सटकर दूर खड़ी गोपियोंका खेल देख रही हैं। प्रियतम श्रीकृष्णकी दृष्टि उनपर जाती है। वे नयनोंके सङ्केतसे प्रार्थना करते हैं - 'क्या करूँ, आज रक्षा करो, न !' प्रिया सङ्केतसे ही उत्तर देती हैं - 'गोपियाँ पीताम्बर ही तो चाह रही हैं। इन्हें दे दो। इनके द्वारा दी गई लहँगा-चोली-ओढनी पहन लो। तुम्हारा क्या बिगड़ेगा ?'

अब प्रियतम मन्द-मन्द मुसकाने लगते हैं। तरुशाखाएँ परस्पर जुड़कर हरित पत्रोंका एक सुन्दर वितान निर्माण कर देती हैं। जिससे यह लीला वृद्ध गोपोंकी दृष्टिसे ओझल रहे। शकटपुरीकी इस रङ्गभूमिकी नायिकाएँ गोपियाँ अपने प्रधान नायक प्रियतम नीलसुन्दरको स्त्रीवेषमें सुसज्जित करनेके लिए मल्लक्रीड़ा करनेतकको तत्पर हो उठती हैं। श्रीकृष्णका आनन उज्ज्वल हास्यसे रञ्जित है। वे अपने सखाओंको, अपने सभी क्रीड़ापरायण प्राणसहचरोंको ललकार रहे हैं- 'अरे मेरे त्रिलोकविजयी भाई बलराम! वरूथप, सुबल, श्रीदाम, सुदाम, किङ्कणी, महाबली मधुमङ्गल, सुभद्र आदि गोपालों ! तुम इन गोपियोंके समक्ष भाग क्यों खड़े हुए ? अरे भैयाओ ! कसो कमर और कूद पड़ो इन स्त्रियोंसे लड़नेको समराङ्गणमें !' श्रीकृष्णकी पुकार सुनते ही मधुमङ्गल तो मात्र अपने पेटको थपथपाते हुए गोपियोंको यही संदेश देते - 'मुझे मात्र शताधिक बृहद मलाईके लड्डू खिला देना, फिर भले ही श्रीकृष्णको गोपीवेश धारण कराओ, मुझे कोई आपत्ति नहीं। मैं दूर खड़ा-खड़ा साक्षी बना रहूँगा। किन्तु यदि असत्य आश्वासन देकर लड्डू नहीं खिलाये तो मैं तुम्हें ब्रह्महत्याके पापका श्राप दे दूँगा।' सुबलादि अन्य सखाओंको तो गोपियाँ श्रीकृष्णके पासतक नहीं फटकने देतीं। असंख्य गोपियोंसे वे अकेले लड़ें भी कैसे ?

अब इन गोपीजनमनचोरका वेष तो देखो ! रक्षार्थ इन्होंने अपने उत्तरीय अम्बरको तो कसकर फेंटकी तरह बाँध लिया है, अधोवस्त्रको दोनों जानुओंके ऊपर उठाकर उसे कसे पीताम्बरके ऊपर खौंस लिया है। वे हँस-हँसकर अतिशय निश्चिन्ततासे अपनी सुन्दर काली घुँघराली बिखरी अलकोंको समेट चुके हैं। इतना करके भी वे अति सावधान हुए रङ्गस्थलमें युद्धके लिए सन्नद्ध लक्ष्यकर पैंतरा तानकर खड़े हो गये हैं। ओह! किसकी सामर्थ्य है जो इस समय उनके अधिकांश श्यामल चञ्चल श्रीअङ्गोंकी छविको शब्दोंमें चित्रित कर सके ? जो हो, गोपीनायक, प्रीतिलीलासंपादक श्रीकृष्णचन्द्रका यह मल्लयुद्ध किसी एक गोपीके साथ नहीं अपितु असंख्य प्रेमोन्मत्त गोपियोंके साथ आरंभ होता है। प्राकृत मन तो इसका समाधान करनेसे रहा, परन्तु घटना घटित होती है ठीक ऐसी ही। सभी गोपियोंको यह सत्य अनुभव होता है कि मेरे प्रियतम नीलसुन्दर मुझसे ही भिड़े हैं। किसी गोपीको ऐसा अनुभव होता है कि एकसे भिड़कर, उससे पछाड़े जाकर, वे हारकर रक्षाके लिए हाथ जोड़कर प्रार्थना कर रहे हैं। किन्तु जीतनेवाली गोपीको तनिक भी दया-सङ्कोच नहीं है। अपनी दृष्टिमें अपने प्राणपति नीलसुन्दरसे वह अपनेको कम बली थोड़े ही मानती है ? अतः वह उस मध्यस्थ बनी बीच-बचाव करनेवाली गोपीको किनारे धकेलकर अपने प्राणपति नीलमणिसे लिपट ही जाती है। उनके फेंटके रूपमें कसे पीताम्बरको छीननेके लिए अपनी एक सहयोगिनीको पुकारती है एवं अपने प्रियतमके दोनों हाथ अपनी बाहुओंमें यों जकड़ लेती है जैसे उसने मत्त गजेंदको अपने पराक्रमसे वशमें कर लिया हो। श्रीकृष्ण गोपीके बाहुबन्धनसे छूटनेके लिए बहुत जोर लगाते हैं किन्तु विवश टस-से-मस नहीं हो पाते। इधर श्रीकृष्णके सखा स्तोककृष्णको गोपियोंका यह खेल असह्य हो उठता है। वह और उसके कतिपय साथी सखागण अपने कन्नू भैयाके सुकोमलतम श्रीअङ्गोंके प्रति इस क्रीड़ाको भयानक अत्याचार मान बैठते हैं। किन्तु वे सभी करें भी तो क्या ? विवश होकर वे कतिपय शिशु सकरुण दृष्टिसे अपने प्राणाधार कन्हैयाकी ओर तथा खीझभरे नेत्रोंसे इस उद्धत युवती गोपीसमाजकी ओर देखते हुए सीधे दौड़ लगाते हैं नन्दसदनकी ओर, जहाँ अपने तनयकी प्रतीक्षा करती मैया यशोदा आरती सजा रही हैं। मुख फैलाये हुए, नेत्रोंमें अश्रु भरकर वे सभी यशोदा मैयाके सम्मुख अल्हड़ गोपियों द्वारा अपने कन्नूको घेर लिये जानेकी सब कथा कह देते हैं। उनके प्राण तो अपने सखा श्रीकृष्णमें ही समाये होते हैं। मैयामें अपने पुत्रको इन अल्हड़ युवतियोंके घेरेसे निकालनेकी भावना इतनी प्रबल हो उठती है कि वे हाथमें लकुटी लिये दौड़ती हुई गोपियोंकी भीड़में प्रविष्ट हो जाती हैं। अपने पुत्रके लिए विह्वल हुई मैयापर दृष्टि पड़ते ही सभी गोपियाँ राह दे देती हैं।

अब तो यशोदानन्दन भी सेर-पर-सवासेर हो जाते हैं। वे उस हाथ पकड़नेवाली गोपीको, जो मैयाको दूरसे आती हुई देख लज्जासे उनका हाथ छोड़ घूँघट देकर किनारे खड़ी हुई है, डपटकर कहते हैं - 'अन्ततः हार गयी न ?' घूँघट दिये वह गोपी नयनों-ही-नयनोंमें उत्तर दे देती है कि पनघटपर अकेले मिलोगे तब देखूँगी। आज बच गये तो क्या है ? मैया यशोदाके सहारे विजयकी हँसी हँस रहे हो ? मैया यशोदा उस घूँघट दिये हँसती गोपीको बड़े जोरसे डाँटती हुई कहती है - 'री गँवारिनों ! मेरे लल्लासे अन्ततः तुम सब चाहती क्या हो ?'

यह सत्य है कि मैया इस बातसे पूर्णतया परिचित हैं कि उनके वात्सल्यसे भी उनके लालके प्रति इन गोपियोंकी सुखदानकी लालसा असीम प्रबलतर ही है। किन्तु यह आवश्यक तो नहीं कि एक ही रसकी धारा सर्वत्र समान रूपसे परिलक्षित हो। आलम्बनके रूपमें ही यह रसधारा ऋजु या वक्र प्रसरित होती है। इस रसधाराकी सान्द्रता भी आलम्बनके अनुरूप ही विकसित होती है। इस समय लीलाका उपक्रम ही ऐसा है कि वात्सल्यकी रसमयी सान्द्रता माधुर्यकी अपेक्षा अधिक विकसित हो उठे।

अब तो नन्दनन्दनके सब सखागण भी मैयाका सहारा लेकर युवतियोंकी भीड़को ठेलने लगते हैं। मधुमङ्गल मैयासे कहने लगता है - 'मैया ! अन्ततः इस बुभुक्षु क्षीणकाय दुर्बल ब्राह्मणने ही तेरे पुत्रकी रक्षा की है। एकमात्र यही

इन दुर्दान्त गोपाङ्गनाओंसे जूझ रहा था। मैया ! तू मुझे सीधे भवनमें जाकर भण्डारमें रखे सारे मिष्ठान्न परोस देना। भविष्यमें देखूँगा कि ये गोपियाँ कैसे सखाके पास भी फटकती हैं!' मधुमङ्गलकी बात सुनकर मैया हँस पड़ती है।

अब तो रोहिणी मैया भी नन्दप्रासादकी दासियोंके साथ मैयाको बैठानेके लिये सुन्दर आसन, वायु करनेके लिए व्यजन तथा जलकी झारी लेकर उपस्थित हो जाती हैं। अवश्य ही न तो मैया यशोदामें, न सखाओं एवं गोपाङ्गनाओंमें ही अब किञ्चित्मात्र भी संस्कार हैं कि कोई उद्वेगकारी घटना घटित हुई है। यह भान रहे तो फिर आनन्द ही जाता रहे। रोहिणी मैया यशोदाकी ओर देख-देखकर मन्द मुसका रही है। उधर बलराम भी अपने अनुज नन्दनन्दनका हाथ थामे हँस रहें हैं। गोपियाँ भी मैयाके आसपास बैठ गयी हैं, यद्यपि उनकी संख्या अवश्य अति न्यून हो गई है। किन्तु, गोपियाँ चाहे यशोदा मैयाके पास आसीन हों, अथवा अपने घरोंमें प्रवेश कर गयी हों, सभी यही अनुभव कर रही हैं कि उनको आनन्ददान करनेके लिए ही नीलसुन्दर नित्य-नयी-नयी अभिनव योजनाएँ बनाते रहते हैं। आज जो कुछ भी हुआ है वह भी उस अनिर्वचनीय सुखदानलीलाका ही एक उपक्रम है।

प्रिया राधारानी अपने प्रासादके कक्षमें सुखद पर्यङ्कमें विराजित हैं। गुणमञ्जरी उनपर व्यजन डुला रही है। रूपमञ्जरी चुपचाप एक रेशमी नीले रूमालसे उनके चरण सहला रही है। ललितादि सखियाँ प्रासादमें ही प्रियतम श्यामसुन्दरका सायङ्कालका भोजन (ब्यारू) जिसमें भाँति–भाँति मलाई, मोतीचूर आदिके लड्डू, पूरी, एवं अनेक प्रकार की कचौरियाँ, शाक आदि सम्मिलित होते हैं– निर्माण करनेमें जुटी हैं। सखियाँ सायङ्कालीन ब्यारूकी यह सब सामग्री प्रिया द्वारा संस्पर्शित कराके नन्दभवन ले जावेंगी।

शैयामें लेटी प्रियाके अर्धनिमीलित नयनसरोरुहोंमें अपने प्रियतमकी मनोहर छवि भरी है। मधुमतिकी सङ्गीतबद्ध प्रियतम यशकी मधुधारा उनके श्रुतिपथमें झर रही है। अतीत एवं अनागत विश्वके कण-कणमें यह ध्वनि अद्भुत प्रीति-सुरधुनीकी धारा बिखेरती हुई कह रही है - 'आओ-आओ ! त्रितापतप्त भवसागरके प्रवाही जीवों! जितना चाहो पी-पीकर अपने प्राणोंकी पिपासा शान्त कर लो।'

जय कृष्णचन्द्र करुणानिधान! ब्रजजनपंकजवनसुखद भान!
नव-नव जलधर सम अंग श्याम ! लावण्यधाम छवि कोटि काम।।
जन प्रीति-दैन ठाढे त्रिभंग । अधरन मुरली तरुवर कदम्ब।।
मद छके असित-सित अरुन नैन। मृदु हँसनि सुधा बरसत सुबैन।।
कुण्डल मण्डित श्रुति द्युति अतोल। परि छलक गण्ड शोभित कपोल।।
मुख मुरलि सुधा बरसत उछंद। निज जन जीवन आनन्दकन्द।।

मुकुटकी चटक, लटक बिबि कुण्डलकी,
भौंहकी मटक नैकु नयनन दिखाउ रे।
ए हो बनवारी! बलिहारी जाऊँ तेरी, मेरी
गैल किन आइ नैकु गाइन चराइ रे ।।
'आदिल' सुजान रूप गुनके निधान कान्ह!
बाँसुरी बजाइ तन तपन बुझाउ रे।
नन्दके किसोर चितचोर मोर पंखवारे
बंसीवारे साँवरे पियारे इत आउ रे।

माथे पै मुकट देखि, चन्द्रिका चटक पेखि,
छविकी छटक देखि, रूप रस पीजिये।
लोचन विसाल देखि, गरें गुंजमाल देखि,
अधर रसाल देखि चित्त चुप कीजिये।।
कुण्डल हलनि देखि, पलकन चलनि देखि,
अलकन वलन देखि सरबस दीजिये।
पीताम्बर छोर देखि, मुरलीकी घोर देखि,
साँवरेकी ओर देखि देखिबोई कीजिये।।

यह है - परम मनोहर अरण्यसे श्रीकृष्णचन्द्रकी दिव्यातिदिव्य आवनीलीलाका एक अत्यंत संक्षिप्त प्रतिचित्र। अनन्तैश्वर्यनिकेतन ब्रजेन्द्रनन्दन अपने तत्वरूप-स्वरूपपर अपनी अघटन-घटना-पटीयसी योगमायाका आवरण डाले रहते हैं। वे लीलारसपान करने ही आये हैं अतः सर्वथा प्राकृत नरगोपोंकी तरह युवतीलम्पटताकी लीला कर रहे हैं। उनके विहारको ठीक-ठीक तत्व एवं रहस्य सहित पहचान लेनेकी क्षमता ब्रह्म-रुद्र-नारदादिमें भी नहीं है। यद्यपि वैकुण्ठमें रमा उनके चरण-सरोजोंकी परिचर्यामें नित्य संलग्न है, असमोर्ध्व ऐश्वर्य उनका नित्य सहचर है, फिर भी श्रीकृष्ण अपनी सखियोंके साथ विविध विचित्र रसमयी क्रीड़ाओंमें - कैशोरलीलाविहारमें जैसे तन्मय हो उठते हैं उस तन्मयताकी शोभा अनिर्वचनीय है! जय हो, लीला-रसपानमत्त नीलसुन्दरकी।

एवं निगूढात्मगतिः स्वमायया गोपात्मजत्वं चरितैर्विडम्बयन्।
रेमे रमालालितपादपल्लवो ग्राम्यैः समं ग्राम्यवदीशचेष्टितः।। (श्रीमद्भागवत. १०/१५/१६)

प्रत्येक वस्तुमें प्राणोंका रस भरकर ही मैया, प्रियतम!
उससे अपने सुतका लालन करके सुखिनी होती, प्रियतम!
पूरा करके प्रदोषका क्रम, साँवर सो जाते थे, प्रियतम!
त्रिभुवन-मोहन-मोहिनी शक्ति जननीको भी ढकती, प्रियतम।।७६८।।

प्रत्येक वस्तुमें अपने प्राणोंका रस भर-भरकर यशोदा मैया अपने प्राणोपम पुत्रका उन वस्तुओंसे संलालन करतीं और सुखमें निमग्न होती रहतीं। इस प्रकार प्रदोषका क्रम पूरा करके नीलसुन्दर सो जाते तथा उस ओर त्रिभुवन-मोहन-मोहनी शक्ति जननी यशोदाको भी आवृत कर लेती।।।७६८।।

प्रदोष क्रम

पूरा करके प्रदोषका क्रम साँवर सो जाते थे, प्रियतम !

पुर-सुन्दरियोंकी भीड़से ब्रजरानी यशोदा एवं माता रोहिणी अपने पुत्रों -राम एवं श्यामको नन्दभवन ले तो आयीं, किन्तु अपने नीलमणिके प्रति इन गोपाङ्गनाओंका प्रेमिल भाव देखकर यशोदा एवं रोहिणीका अन्तःकरण क्षण-क्षण परितप्त एवं पश्चात्तापसे भर जाता है। दोनोंके ही नेत्र आर्द्र हैं। अधिकांशतया यशोदा इन गोपाङ्गनाओंको ऐसे अवसर देना चाहती है जिससे अपने तनय अनिष्टाशङ्कासे बरबस अनावश्यक हस्तक्षेप करना पड़ा है। इसीके फलस्वरूप गोपाङ्गनाओंके दल उनके तनयके साथ मनचाही प्रीतिलीला सम्पन्न नहीं कर पाये हैं।

अब तो सूर्यास्त ही होने जा रहा है। सन्ध्यासुन्दरी सर्वांङ्ग शृङ्गार करके नीलसुन्दरके दर्शनार्थ पश्चिम गगनमें उत्सुकतापूर्वक झाँक रही है। बेचारी संध्या सशङ्कित है कि कहीं ब्रजेन्द्रनन्दनको मैया यशोदा नन्दभवनके ही स्नानागारमें स्नान करा देंगी तो वह उनके पावन दर्शनोंसे ही वञ्चित रह जायगी। लीलामहाशक्ति मात्र अल्प घटिकाओंके लिये ही उसका अवतरण सांध्य गगनमें करती है। वह मन-ही-मन मैयाके श्रीचरणोंमें नन्दभवनके प्राङ्गणमें

लालिमा बिखेर-बिखेरकर प्रार्थना करती है कि नन्दतनय यमुना-स्नानार्थ ही नन्दभवनसे निर्गत हों। अस्तु, मैया मानो विकल संध्याकी प्रार्थना सुन लेती हैं। जननी अपने लड़ैते लालको मधुमङ्गल, सुबल, स्तोक, वरूथप आदि सखाओंके सहित यमुना-स्नानार्थ भवनके पिछवाड़ेके घाटपर भेज देती है। संध्याको अपने प्राणवल्लभके चिर प्रतीक्षित दर्शन मिल जाते हैं। वहं प्रसन्नतासे खिली-खिली सान्ध्यगगनको अनुरञ्जित करती अपने आवासके लिये प्रस्थान कर जाती है।

इधर प्रिया राधारानी अपने प्रासादकी सबसे ऊँची अटारीपर पश्चिम दिशाकी ओर मुख करके खड़ी हैं। प्रिया जैसे ही प्रियतम प्राणधनको यमुनाघाटमें मुख-प्रक्षालन, गात्र-परिमार्जन करते निरखती है, वे रूपमञ्जरीको लेकर यमुनातटपर पहुँचती हैं एवं निकटस्थ पुलसे यमुनापार चली जाती हैं। उनका अनुगमन करती गुणमञ्जरी भी उनके यथावश्यक वस्त्रालङ्कार लेकर यमुनापार उनके पार्श्वमें पहुँच जाती है। प्रियाके सहित सखियाँ यमुनाके उस घाटपर पहुँचती हैं जो नन्दभवनके घाटके ठीक सम्मुख है।

ओह ! जैसे ही प्रियतम नीलसुन्दरकी दृष्टि यमुनाके उस पार स्नानके लिये सन्नद्ध प्रियापर पड़ती है एवं प्रियाकी प्रियतमपर, प्रिया-प्रियतम दोनोंके ही गौर-नील सुकुमार श्रीअङ्गोंसे एक अभिनव प्रेममयी प्रभा उद्भावित हो उठती है। दोनोंके ही उल्लासकी कोई सीमा नहीं रहती और इसी प्रेमोल्लासके आवेशमें दोनोंकी ही भ्रू-भङ्गिमाएँ कमानकी तरह खिंचकर परस्पर एक-दूसरेपर प्रेम-कटाक्षोंकी वर्षा करने लगती हैं। आश्चर्य है - प्रिया-प्रियतम, दोनोंके मध्य यद्यपि लगभग दो सौ गजका यमुनाघाट है, किन्तु दोनोंको यही परिलक्षित हो रहा है, मानो दोनों ठीक एक दूसरेके सम्मुख ही स्नान कर रहे हों। प्रिया-प्रियतम दोनों ही परस्पर एक दूसरेको मानो अति निकटतासे निरख रहे हों, एक दूसरेके प्रेमसे आप्यायित हुए क्षणभरके लिए अपने नयन निमीलित कर लेते हैं। उन्हें अपने हृदयदेशमें भी वही बाह्य छवि ज्यों-की-त्यों प्रतिबिंबित अनुभव होने लगती है। अब तो वे सिर डुबोकर यमुनाजलमें डुबकी लगा लेते हैं। किन्तु आश्चर्य है, प्रियाके लिये यमुना मानो उनका अपना सदन ही बन जाती है – जैसे सदनकी अनेकों भित्तियोंमें प्रियतमकी चित्रछवि दृष्टिगोचर हो रही हो। प्रिया ज्योंही यमुनाजलके भीतर अपने नयन उन्मीलित करती है, यमुनाजल ही निकुञ्ज बन जाता है। यमुनाजल ही पर्यंककी आकृति ग्रहण कर लेता है और उस पर्यंकपर विराजित अपने प्रियतमके प्राण-मन्मथकारी रूपको निरखकर प्रिया भावविभोर हो उठती है। ओह ! जलमें तो अधिक समयतक रहनेपर प्राणावरोध होने लगता है। किन्तु आश्चर्य है इस यमुना-प्रवाहमें दीर्घावधितक डूबे रहनेपर भी प्रिया-प्रियतमका न तो श्वासावरोध ही होता है, न ही उनको वहाँ कुछ अस्वाभाविक ही प्रतीत होता है। जैसे वे सहज पृथ्वीके ऊपर वन-निकुञ्जोंमें अपने प्रियतमकी नयनाभिराम छवि निरख रही हों, ठीक उसी प्रकार अति सहज यमुनाकी लहरोंमें भी उन्हें अपने प्राणधनकी अतिशय नयन-सुकुमार छवि दृष्टिगोचर होती है।

ठीक, यही दशा प्रियतम नीलसुन्दरकी है। वे चकित हैं यह देखकर कि चतुर्दिक् जल-प्रवाह होने पर भी वहाँ तनिक भी प्राणावरोध नहीं है, नित्य जीवनसुधाका ही प्रसरण है। उनकी प्रिया जलविवरमें उनके सम्मुख ही खड़ी है। उसका आनन-सरोज कितना प्रफुल्लित है। सुरभित श्वास-प्रश्वाससे मानो मधुर मकरन्द झर रहा हो। प्रियतमके नयन-मिलिन्द एकटक चकित हुए अपनी प्रियाकी छवि यमुनाजलमें नित्य अतृप्त-से निरख रहे है। मधुर सुधारससे भरित उसके बिम्बाधर, शुचि एवं अनाविल सुन्दर गोल कपोल, कज्जल-अनुरञ्जित रसभरे ललाम नयन, आह्लादिनी प्रिया उनके सम्मुख खड़ी मन्द मुसका रही होती है।

नन्दभवनसे साथ आये श्रीकृष्णके सुबल, स्तोक, वरूथप आदि भ्रातागण जब बहुत कालतक श्रीकृष्णका यमुनासे निर्गमन नहीं देखते, तो विह्वल हो उठते हैं। उधर ललितादि सखियोंकी भी विह्वलता सीमोल्लंघन कर जाती है। स्तोक तो अल्प वयका होनेसे रुदन कर उठता है। उसके तो प्राण ही कण्ठमें आ जाते हैं। वह जोर-जोर से 'कन्नू-कन्नू' चिल्लाने लगता है।

क्या प्रिया-प्रियतम दोनों ही अपनी सखियों एवं सखाओंकी आर्त्तिसे अनभिज्ञ रह सकते हैं? ललितादि सखियोंकी अमृतमयी प्रेमासक्ति 'रानी, सखी' आदि आह्वानध्वनि प्रियाके कर्णविवरोंमें प्रविष्ट हो जाती है और रानी अपनी सखियोंको विह्वल देखकर तत्क्षण ही जलके ऊपर आ जाती हैं। इसी प्रकार प्रियतम नीलसुन्दर भी जलके ऊपर उठ आते है। सखाओं एवं सखियोंमें अब तो पुनः उल्लास व्याप्त हो जाता है और सखागण अपने प्राणसखा नन्दतनूजके सङ्ग और उधर वृषभानुराजनन्दिनी अपनी सखियोंके सङ्ग-सङ्ग जलकेलि करने लगती हैं।

इसी जलकेलिके मध्य जब प्रिया श्रीराधारानी डुबकी लगाती हैं, उनके कम्बुकण्ठमें झूलती वनमाला यमुनाकी पावन लहरियोंमें प्रवाहित हो उठती है। ठीक, इसी प्रकार ज्योंही सखााओंके सङ्ग जलकेलि करते प्रियतम नीलसुन्दर डुबकी लगाते हैं, उनकी वनमाला भी यमुनाकी लहरों में बह जाती है। यमुनाकी चञ्चल लहरें प्रिया-प्रियतम दोनोंकी अतिशय सुरभित वनमालाओंको विपरीत तटोंकी ओर ले जाती हैं अर्थात् श्रीमती राधारानीकी वनमालाको प्रियतम नीलसुन्दरकी ओर एवं नीलसुन्दरकी वनमालाको प्रिया श्रीराधारानीके तटकी ओर बहा ले जाती हैं।

ओह ! जैसे वनमाला भी पहचानती हों कि प्रियाके प्रियतम एवं प्रियतमकी प्राणप्रिया कहाँ हैं? कलिन्दकन्याकी लहरियोंमें सुभग नर्त्तन करती हुई वे दोनों वनमालाएँ इस भाँति दोनों तटोंकी ओर अग्रसर होती हैं कि उनकी शोभाका वर्णन साक्षात् वाणीदेवी भी करना चाहें तो नहीं कर सकती। स्वयं कालिन्दी भी इन वनमालाओंका नर्त्तन देखती हुई मानो स्तंभित हो जाती है, उसका प्रवाह स्थिर हो जाता है। कालिन्दी कहाँ तो उत्तर दिशासे दक्षिणकी ओर प्रवाहित हो रही थी, अब तो वह पूर्वसे पश्चिम और पश्चिमसे पूर्वकी ओर लहराने लगती है। दोनों वनमालाओंके सङ्केतसे ही मानो कालिन्दीकी समग्र गति इस समय सुनियन्त्रित हो उठी हो। और आश्चर्य, प्रियाने सखियोंके साथ पुनः डुबकी लगाकर यमुनाजलसे जहाँ अपना विकसित कुमुद-सरीखा मुख ऊपर निकाला, प्रियतमकी नीलसुन्दरकी माला उनके कण्ठमें समलंकृत हो जाती है। इसी प्रकार सखाओंके साथ यमुनामें डूबने एवं निकलनेकी क्रीड़ा करते हुए ज्योंही प्रियतम डुबकी लगाकर पुनः अपना कमलमुख जलसे बाहर उठाते हैं, ठीक उसी समय प्रियाकी माला बहती हुई आकर उनके कंठका सुमनहार बन जाती है। क्रीड़ारसका मूर्त्तिमान् स्वरूप विदूषक मधुमङ्गल तो प्रिया राधाकी वनमालाकी जय-जयकार ही कर उठता है।

ओह ! प्रिया-प्रियतम अपरिसीम माधुर्य एवं लावण्यके सागर हैं। प्रियतमकी मात्र कटिमें ही पीताम्बर झलमला रहा है, उनके शेष सभी अङ्ग, उदर, वक्ष, कण्ठ, बाहु आदि अंलकारविहीन हैं। खुले देहकी सौन्दर्यशोभा अनिर्वचनीय है। ओह ! लम्बी घुँघराली भीगी जलसिक्त अलकें जिनसे विविध सुवासके फव्वारे छूट रहे हैं, उनके कुण्डलहीन कानोंको आवृतकर उनके कण्ठदेश, कपोलों, एवं ललाटपर बिखरी-चिपकी हैं।

प्रियाकी केशराशि तो विभिन्न पुष्पमालाओंसे सुशोभित है। यमुनाजलसे पूरी तरह भीगी प्रियाकी वेणीकी कान्ति कितनी मनमोहक लग रही है। मात्र युवतियोंके लिये ही सुरक्षित निर्जन घाट होनेसे वहाँ सभी सखियाँ केवल कटिपर लहँगा ही धारण किये हैं, उनके शेष सभी अङ्ग अलङ्कारविहीन निर्वस्त्र हैं। प्रियाके अङ्गोंसे स्नान करनेके उपरान्त भी चन्दन, केसर, कस्तूरी आदिका लेप पूर्णतया विमुक्त नहीं हुआ है। अतः चन्दन एवं कस्तूरीकी चित्रकारी ललाट, कपोल एवं उरोजोंपर अत्यंत शोभा दे रही हैं। प्रियाकी वेणी-निर्मुक्त घन जलसंसिक्त केशराशि उनके सम्पूर्ण देहको आवृत कर रही है। प्रियाकी स्नानसे लाल हुई रक्तकमल-सी झूमती कर्णावलम्बी सुदीर्घ तीखी नेत्रलक्ष्मी जो मध्यमें नीली झाँई दे रही है एवं प्रान्तोंमें लाल टेसूके फूलकी तरह लग रही है, सखियोंका चित्त अपहरण कर रही है। प्रियाके तरौना-रहित दोनों कान एवं नुकीली गरुड़-चञ्चुसी नासिका स्वभावसे ही अतिशय मधुर है एवं उनकी कुन्दनवर्णी आभासे प्रियाके कपोल दमक रहे हैं। प्रियाका लावण्ययुक्त मुखारविन्द कोटि-कोटि शशधरोंकी कान्ति बिखेर रहा है। प्रियाकी ठोढ़ी विविध हास्यरसकी छटासे अतिशय प्रकाशयुक्त प्रतीत हो रही है। ऐसी त्रिभुवनजयी शोभाशालिनी प्रियाने

यमुनाजलमें डूबा अपना आनन्दचन्द्र ज्योंही जलसे ऊपर उठाया, त्योंही प्रियाके कण्ठदेशमें वह माला झूल जाती है। प्रिया अपनी ग्रीवा मरोड़कर सखियोंकी ओर देखने लगती हैं। उत्कण्ठातुर उसके नयन ललिता-विशाखासे बार-बार जिज्ञासा कर रहे हैं कि प्रियतम नीलसुन्दरकी यह शतरङ्गी वनमाला मेरे कण्ठमें किसने डाली ? सखियाँ तो इस मालाके आगमनके रहस्यसे सुपरिचित हैं ही। प्रियाने जब डुबकी लगायी थी नन्दनन्दनकी वनमाला सखियोंकी सम्मुख ही जलमें डुबकी लगायी प्रियाके शिरोभागपर उनकी केशराशि द्वारा निर्मित पुरैनपत्रकी तरह बिखरी आकृतिको सजाकर तबतक नृत्य करती रही थी, जबतक प्रियाका मुख जलसे ऊपर निर्गत नहीं हुआ था। उस मालाको अनेक बार सखियोंने पकड़नेकी भी चेष्टा की थी, किन्तु जैसे ही वे उस मालाको पकड़नेको हाथ बढ़ातीं, वह माला यमुनाके गर्त्त अथाह जलकी ओर बढ़ जाती थी, किन्तु फिर प्रियाके डुबकी लगानेपर पुरैन पत्रकी तरह जलमें तैरती उनकी केशराशिको चारों ओरसे घेरकर लहरोंमें नृत्य करने लगती थी।

अतः ज्यों ही प्रियाने ग्रीवा मरोड़कर सखियोंसे उस मालाके सम्बन्धमें जिज्ञासा की, सखियाँ सम्मुख तटपर नहाते प्रियतमको लक्ष्यकर जोरसे अट्टहास कर उठती हैं।

ओह ! प्रिया सम्मुख नहाते अपने प्रियतमकी ओर निहारती हैं। प्रियतमके कण्ठमें भी घुटनोंतक झूलती प्रियाकी पुष्पमाला उसे दृष्टिगोचर हो उठती है। जैसे कोटि-कोटि राकाशशि मुसकुरा उठे हों, इस भाँति त्रिलोकीको मोहित करता, मन्द-मन्द मुसकान बिखेरता, उसके प्रियतमका मुख प्रियाको ऐसा समाकर्षित करता है कि वह संपूर्ण लज्जाको त्यागकर एकटक उसे ही निहारने लगती हैं। ओह ! कितना लावण्य भरा है उसके प्रियतमके चिबुक एवं कण्ठदेशमें ! रक्तकमलके समान उसके प्रियतमके लाल-लाल करतल उसे इतने मनोहर लगते हैं, मानो त्रिलोकीकी संपूर्ण मनोहरता वहीं एकत्रित हो गयी हो। प्रियतमके उदरपर तो लावण्य अहर्निश ही क्रीड़ा करता रहता है। प्रियाको प्रियतमके पृष्ठदेश और पार्श्वभाग भी अमृतके समान ही मधुर प्रतीत होते हैं। ओह ! वर्तुल नितम्ब भागको प्रिया देखती-देखती ही महाभावमें बह उठती है। प्रियाकी ऐसी दशा देखकर सखियाँ उसे सहारा देकर किसी प्रकार यमुनाके घाटपर लाती हैं और तब ललिता विविध उपचारकर उसे अर्धमूर्च्छित दशामें ही किसी प्रकार उसके प्रासादमें ले आकर पर्यंकपर लिटा देती है।

प्रियतम भी अपनी प्रियाको स्नानघाटसे प्रासादकी ओर जाते देख, अपने सखाओंके साथ-साथ नन्दभवन लौट जाते हैं।

गोदोहन लीला

प्रिया अर्धमूर्च्छित अवस्थामें अपने प्रासादकी ऊपरी अटारीमें पर्यंकपर शयित है। रूपमञ्जरी प्रियाके ऊपर शनैः-शनैः व्यजन झल रही है। गुणमञ्जरी प्रियाके चरणतल रेशमी रूमालसे मल रही है। ओह! प्रियाकी शैयामें शयित छवि ललिता-विशाखादि सखियोंको इतनी सुखद सुन्दर लग रही है कि वे मुखमें तृण लेकर तोड़ने लगती हैं। प्रियाके कनकगौर वर्णपर रत्नजटित नीला लहँगा, लाल कञ्चुकी, एवं पिरोजिया रङ्गकी ओढनी ऐसी फब रही है कि देखनेवाली दृष्टि ही अपलक स्थिर हो उठती है। प्रियाका मुख-सरोज अपने प्रियतमके भावदर्शनमें मुग्ध अत्यंत प्रफुल्लित है एवं उसके अङ्ग-अङ्ग प्रीति-सुषमासे भरे हैं।

सहसा सखियोंकी श्रवणेन्द्रियोंमें वंशीकी स्वरलहरी गूँज उठती है। वह वंशीध्वनि 'भाव-मूर्च्छामें शयित प्रियाके कर्णविवरोंमें प्रवेश कर जाती है। प्रियाको तो वंशीनिनादमें अपने प्रियतमके गीतशब्द भी श्रवणगोचर होते हैं। प्रिया स्पष्ट अनुभव कर रही हैं मानो उनके प्रियतम प्राणवल्लभ अपने हृदयकी समस्त प्रीति लेकर मधुरतम कण्ठसे गा रहे हों -

त्वमसि मम भूषणं त्वमसि मम जीवनं
त्वमसि मम भवजलधिरत्नम्।
भवतु भवतीह मयि सततमनुरोधिनी
तत्र मम हृदयमति यत्नम्।।

"हे प्राणप्रिये ! तू ही मेरा जीवन है; नहीं, नहीं, प्रिये ! देख, प्राणोंके अणु-अणुके रूपमें तू ही मेरे पूरे अन्तःकरणको समावृत कर चुकी है। प्रिये ! तू मेरे शरीरके अणु-अणुमें आभूषण बनकर संलग्न भी है। मेरे-जैसे सब प्रकारसे दीन-दरिद्र व्यक्तिके लिये तू अनमोल रत्नस्वरूपा है। मैं इस भवसागरमें तेरे जैसे अनमोल रत्नकी लालसामें ही थपेड़े खा रहा हूँ। मेरे हृदयकी रानी ! मैं असत्य कह रहा हूँ या सत्य, यह तू स्वयं ही जानती है। मेरे हृदयका कोना-कोना मात्र एक ही याचना कर रहा है कि तेरे सुकोमलतम हृदयकी समग्र प्रीति निरन्तर मेरी ओर प्रवाहित होती रहे एवं मैं कृतकृत्य होता रहूँ।"

प्रियतम श्यामसुन्दरकी इस स्वरलहरीका प्रभाव प्रियाके ऊपर इतना गम्भीररूपमें प्रकट होता है कि उनकी मूर्च्छा टूट जाती है। प्रियाके समग्र अङ्गोंमें कंपन प्रारंभ हो जाता है। प्रिया स्वेदसे लथपथ हो उठती है। रूपमञ्जरी, गुण, अशोक आदि मञ्जरियाँ उन्हें सहारा देकर प्रासादकी सर्वोच्च मंजिलपर ले जाती हैं। प्रियाके प्रासादकी यह मंजिल नन्दग्रामके शकटावासमें सबसे उन्नत छत है। सभी नन्दावास एवं अन्य शकटपुरी–गोशालाएँ यहाँसे दृष्टिगोचर होती हैं। प्रियाके सभी अङ्गोंमें अतिशय कम्पोदय हो रहा है। अतः मञ्जरियाँ अपनी भुजाओंसे प्रियाको पकड़े हैं। वे प्रियाको इस छतमें उत्तरकी ओर बनी एक पीठिकामें आसीन कर देती हैं। प्रियाके हृदयमें भावोंकी तरङ्गों-पर-तरङ्गें उठ रही हैं। प्रिया यहाँसे उठकर पश्चिमकी दीवारके पास खड़ी हो जाती हैं। इस दीवारसे पूर्व दिशामें नन्दप्रासादकी गोशाला अविस्थित है। इसी गोशालामें पूर्वी सीमाके पास एक अत्यंत उन्नत स्फटिकशिला है। यह भूमिसे लगभग दो गज ऊँची है। इसमें आरूढ़ होनेके लिये सीढियाँ निर्मित हैं। प्रिया देखती है कि उसके प्रियतम नीलमयङ्कदेव इसी शिलापर पैर नीचे लटकाये दक्षिणकी ओर मुख करके आसीन हैं। यहाँसे प्रियाको अपने प्रियतमकी एवं प्रियतमको प्रियाकी स्पष्ट छवि दृष्टिगोचर हो रही है। सुबल, मधुमङ्गल, वरूथप, किङ्कणी, सुभद्र आदि सखागण भी अपने नीलमणि सखाकी ओर मुख करके उसे घेरे बैठे हैं। नीलसुन्दर वहीं बैठे-बैठे वंशीमें स्वर भर रहे हैं। उनकी मधुरतम स्वरलहरी समस्त गोशालामें गुञ्जरित हो रही है। यही स्वरलहरी पूर्वमें प्रियाके हृदयमें गीत-शब्दावली प्रसरित कर रही थी। प्रिया देखती है कि इसी समय नन्दरायजी तीव्र गति से चलते हुए वहाँ आ जाते हैं। अपने पिताको आया देख नीलमणि झेंपते हुए-से वंशीनिनाद स्थगित कर देते हैं एवं उस शिलासे नीचे चञ्चलतापूर्वक कूद पड़ते हैं। नन्दबाबा अपने लालाको कण्ठसे लगा लेते हैं। अपने पिताके साथ श्रीकृष्ण गोशालाके पास उस भागपर पहुँच जाते हैं, जहाँ गायोंको घास खिलानेके लिये एक गज ऊँची एक गज चौड़ी एवं दो सौ गज लम्बी ग्यारह वेदियाँ पूर्व एवं पश्चिम दिशामें बनी हुई हैं। ये वेदियाँ किसी चमकीली पीली धातुसे निर्मित हैं। लगभग एक-एक गजके अन्तरपर इन सुदीर्घाकार वेदियोंमें धँसाकर लम्बे-चौड़े बर्त्तन रखे हुए हैं। इनमें घास एवं दाना भरपूर भरा है। इन वेदियोंके दोनों ओर गायें खड़ी होकर इन बर्त्तनोंमें रक्खा घास एवं पौष्टिक दाना खा रही हैं।

सखियों सहित प्रिया अपनी छतसे ही नन्दतनयकी सभी चेष्टा देख रही हैं। बहुतसे गोप एवं नन्दरानीकी दासियाँ गौओंकी सेवामें निरत हैं। नन्दनन्दनको लेकर जैसे ही नन्दराय गौओंके मध्य जाते हैं, सभी दास-दासियों एवं गौओं और बछड़ोंके हृदयमें आनन्दकी बाढ़ आ जाती है। बछड़े जो अभी गौओंका स्तनपान कर रहे हैं, स्तन छोड़कर मुखमें दुग्धफेन भरे इधर-उधर उछलने लगते हैं। अनेक गायें भी अपने गोपालको देखकर घास एवं दाना खाना छोड़कर पूँछ उठाकर अपने हृदयका आनन्द प्रकट करने उछलने लगती हैं। गायें जब अपने नीलमणिको देखकर

अधिक ही उछलने लगती हैं एवं गोपोंके सम्हाले नहीं सँभलती तो गोप उनसे इतना ही कहते हैं - 'देख ! तू दाना खाकर पूरा उदर नहीं भरेगी तो श्यामसुन्दरको पर्याप्त दूध ही नहीं मिलेगा। आज वे तेरा ही दूध पीनेका सङ्केत जो कर गये हैं।' बस, इतना कहते ही गायें इतनी शान्त हो जाती हैं मानो वह चञ्चल होना जानती ही नहीं हों।

नन्दबाबाका हाथ पकड़े-पकड़े नन्दतनय गायोंकी कतारके पास पहुँचते हैं। फिर वे अपने बाबासे कहते हैं -'बाबा ! ताऊसे कह दो न, आज मैं दूध दुहूँगा।' नन्दरायजीकी गोशालामें गोदोहनका कार्य एक वृद्ध गोपके निरीक्षणमें सम्पन्न होता है। यह गोप नन्दरायजीका बालसखा है। विवाह इसने किया नहीं। आजीवन नन्दरायजीके साथ ही इसके जीवनके दिन व्यतीत हुए हैं। ब्रजेशने भी इससे आदर्श प्रेम निभाया है। वे सदा इसे अपना ज्येष्ठ भ्राता ही मानते रहे हैं। नन्दभवनमें यशोदारानी भी इसे अपने ज्येष्ठके समान ही मर्यादायुक्त सम्मान देती रही हैं एवं इसकी आवश्यकताओंको उसी आदरसे प्राथमिकता दी जाती रही है। नन्दनन्दनके जन्मकालसे ही यह अर्धविक्षिप्त-सा रहता है। गोसेवाका कार्य तो यह किसी प्रकार ज्यों-का-त्यों सम्पन्न कर लेता है, किन्तु इसके अतिरिक्त उसे प्रायः अपने शरीरका भान ही नहीं रहता। अस्तु,

आज नन्दनन्दन अपने बाबासे इसी गोपको निर्देश देनेका आग्रह कर रहे हैं। वृद्धके कर्णपुटोंमें श्रीकृष्णचन्द्रके मधुभरे कण्ठस्वरका उन्मादी प्रभाव होता है। उसके नयनोंसे पीयूषकी धारा बह चलती है। श्रीकृष्णचन्द्र उस गोपकी अश्रुपूर्ण आँखें अपनी सुकोमल हथेलियोंसे पौंछते हुए कहते हैं -'ताऊ, अब तुम बहुत वृद्ध हो चले हो, न ? मैं सयाना हो गया हूँ। अतः अब मैं गायें स्वयं दुह सकता हूँ।'

नन्दराय एवं गोप दोनोंपर ही नन्दनन्दनके मधुभरे आग्रहका ऐसा प्रभाव पड़ता है कि प्रेमविवश दोनोंकी ही आँखें झर-झर झरने लगती हैं। गद्गद कण्ठसे वृद्धगोप मात्र इतना ही कह पाता है - 'मेरे लाल! कल दुह लेना।' इतना कहते-कहते ही गोपकी वाणी अश्रुके आवेगमें रुद्ध हो जाती है। नन्दनन्दनको धैर्य कहाँ ? वे तो सुबलके हाथसे दोहनी लेकर गायके थनके पास जा बैठते हैं। ज्योंही श्रीकृष्णचन्द्र गायके समीप आकर बैठते हैं एवं अपनी सुकोमल अँगुलियोंसे गायके थनको स्पर्श भर करते हैं कि दूधकी धारा अपने-आप बड़े वेगपूर्वक निकलने लगती है।

श्रीराधारानी एवं सखियाँ प्रासादके सर्वोच्च शिखरकी छतसे अपने प्रियतमका गाय दुहना निरख रही हैं। नीलसुन्दर भी अपने बाबाकी दृष्टि बचाकर छतपर खड़ी प्रियापर अपनी दृष्टि फेंक ही देते हैं। नन्दतनयकी दृष्टि ज्योंही अपनी प्रिया राधाकी दृष्टिसे मिलती है, दूधकी धारा जो अतिशय वेगसे निकल रही थी, दोहनीमें नहीं गिरकर कभी नीलसुन्दरके उदरदेशपर एवं कभी पृथ्वीपर गिरने लगती है। नन्दतनय अतिशय तत्परतापूर्वक धाराको संवरित करनेको कभी दोहनीको पृथ्वीपर रखते हैं, कभी घुटनोंमें दबाते हैं, किन्तु इस चञ्चल प्रयाससे उनकी दोहनी ही लुढ़ककर नीलसुन्दरके श्रीअङ्गोंका अभिषेक कर देती है। सभी दूध धरतीपर बिखर जाता है।

सखियाँ छतसे अपने प्रियतमकी गौदोहन-चेष्टा देख-देखकर हँसने लगती हैं। सखियोंकी खिलखिलाहट जैसे ही नीलसुन्दरके कानोंमें पड़ती है, उस खिलखिलाहटमें अपनी प्रियाका स्वराभास पाते ही यशोदानन्दनके मुखपर स्वेदकण झलमला आते हैं। वे अपने उत्तरीयसे उस स्वेदधाराको पौंछने लगते हैं। दूध इतनी तेजीसे झर रहा है कि दोहनीसे अनेकों बार छलकने-गिरनेके उपरान्त भी दोहनीमें दूध जमा होकर घर्र-घर्र शब्द करने लगता है। कुछ ही देरमें दोहनीपात्रमें दूध पूरा भर जाता है। अब तो नन्दतनयके हर्षका पार ही नहीं रहता। वे दोहनी लेकर उठ खड़े हो जाते हैं एवं नन्दबाबा तथा अपने ताऊ गोपको दिखा-दिखाकर नाचने लगते हैं। दुग्धसे पूर्ण भरे दोहनीपात्रको लेकर उनको नृत्य करते देखकर नन्दबाबा एवं गोशालास्थित सभी गोपोंके चित्तकी अनिर्वचनीय स्थिति हो उठती है। ओह ! लावण्यनिधि नीलसुन्दरके नृत्य करनेके कारण उनके मुकुटमें संलग्न उनका मूयरपिच्छ कभी तो नृत्य निरखते नन्दबाबाको परिलक्षितकर दक्षिण दिशाकी ओर एवं कभी अपने प्रासादकी अट्टालिकापर खड़ी प्रिया राधाकी दिशाको

परिलक्षित करता वाम भागकी ओर झुक-झुक जा रहा है। मानो इसी मिससे अपने पिता नन्दराय एवं प्रिया राधारानी दोनोंकी ही पारी-पारीसे वन्दना करके कह रहा हो - 'बाबा ! निश्चय ही मान लेना कि मैं ही तेरे हृदयान्तरालमें साक्षी रूपमें सदैव स्थित रहा हूँ। आज महारसानन्दरूपमें तुझ गोपके बालकके रूपमें तुझे दृष्टिगोचर हो रहा हूँ। मेरा तेरे चरणोंमें प्रणाम स्वीकार कर लेना।' अपनी प्रियाकी ओर झुककर मानो उन्हें सम्बोधितकर यह कह रहा हो - 'प्रिये! तेरी दिशा (पथ) उन्हें ही परिलक्षित होती है जिनकी चित्तवृति तेरे सुकोमलतम अरविन्दतुल्य चरणोंकी ओर उन्मेष एवं निमेषहीन होकर नित्य निर्बाध प्रवाहित होती रहती है। तेरे चरणोंमें ही तो हे प्राणप्रिये ! निरोध एवं उन्मेष दोनोंकी ही चरम सीमाओंका अपूर्व मिलन है। हे प्राणप्रिये ! तेरा वसनाञ्चल विश्वकी विशिष्ट चिन्मय सत्ताको कृतकृत्य करता हुआ निरवधि खेलता रहता है। उस वसनाञ्चलसे स्पर्शित धन्यातिधन्य पवन अपनी लहरियोंसे जो मेरे मुकुटके मयूरपिच्छको स्पर्शकर बरबस तेरी ओर झुका रहा है, इसका यही रहस्य मान लेना कि मैं सदैव-सदैव तेरा बिना मोलका दासमात्र हूँ।'

नन्दतनय नीलमणिके नृत्यमें विराम तभी आता है जब कि श्यामली गाय अश्रुसिक्त मुखसे उन्हें चाटने लगती है। नीलसुन्दर नृत्य स्थगितकर मधुमङ्गलको दूधसे भरा दोहनपात्र सम्हलाकर उसकी ग्रीवासे झूल जाते हैं एवं उसके दीर्घ खड़े किये हुए कानोंमें कहते हैं - 'मेरी प्यारी श्यामली ! क्या तू चाहती है कि मैं तेरा शेष दूध भी दुह लूँ ? किन्तु फिर समझ न ! मेरा प्यारा मोहना - तेरा बछड़ा क्षुधित ही रह जायगा। अतः जा, अब नहीं। कल प्रातः तुझे दुहने बाबाके सङ्ग पुनः आऊँगा।'

इसके पश्चात् नीलमणि उसके छोटे बछड़े मोहनाका मुख पकड़कर श्यामलीके थनसे संलग्न कर देते हैं। आश्चर्य है कि बछड़ा मोहना दूध पीनेका निषेध करता हुआ अपनी गर्दन अपने कन्हैयाके अङ्गोंमें ही घिसने लगता है। श्रीकृष्ण हँसने लगते हैं।

इसी समय मधुमङ्गल हाथमें दुग्धसे भरी छलकती स्वर्णकलशी (दोहनी) लिये अपने सखा कृष्णका पीताम्बर खींचकर उसे कहता है - 'देख कन्नू ! तू जबतक इस स्वर्णपात्रका सारा दूध पर्याप्त औंटाकर, मिश्री एवं कन्द मिलाकर मुझ बुभुक्षित तपस्वी ब्रह्मचारी ब्राह्मण बालकके उदरमें नहीं डाल देगा, तबतक न तो तेरी श्यामली घास खायेगी, न ही यह मोहना दूध पियेगा। ये सभी पशु तुझ गँवार गोपपुत्रसे ज्यादा धर्मपरायण हैं। अतः शीघ्रता कर। हाँ, तू यदि इस दुग्धको मेरी नित्य प्रज्वलित क्षुधाकी पूर्तिके लिए अपर्याप्त मान रहा हो, तो चल, अब उस कजरारी गायको दुह लें। मैं शीघ्रतासे दूसरी दोहनी (स्वर्णपात्र) तुझे सम्हलाता हूँ।'

यह कहता हुआ मधुमङ्गल अपने सखा नीलसुन्दरको पूर्वकी तरफ कर्षित करता हुआ ले चलता है। सखा मधुमङ्गल द्वारा पीताम्बरका छोर पकड़कर खींचे जाने पर भी नीलमणि नन्दनन्दन स्वयं अडिग ही रहते हैं एवं श्यामलीके उन्नत कर्णविवरमें धीरेसे कहते हैं - 'मेरी प्यारी श्यामली ! देख, चञ्चल होकर उछलकूद मत करना। तू घास खा ले। देख, इस सभी तृणराशिको मैंने अपने हाथों काटा है। अब मैं शैफालिकाको दुहकर आता हूँ।'

श्यामली अपने नीलसुन्दरकी वाणी सुनकर परम आज्ञाकारिणीकी तरह घास चरने लगती है। आश्चर्य है नन्दभवनकी गोशालामें कोटयवधि गायोंमें से जितनी भी दुह जाने वाली (दुधारू) गायें हैं, सभी एक साथ यह अनुभव करती हैं – 'मानो नीलसुन्दर नन्दनन्दनने मेरी पीठ थपथपाई है एवं मेरा दूध दुहने दोहनी लेकर मेरे थनोंके पार्श्वमें विराजित हो गये हैं। मैंने सर्वाधिक वेगसे दूध देकर उनका पात्र तत्क्षण ही भर दिया है।'

इन गौओंमें जो बिना दूध देनेवाली गायें हैं, वे सभी अनुभव करती हैं कि उनके प्यारे श्यामसुन्दर उनकी पीठपर हाथ फेरकर उन्हें थपकी दे रहे हैं एवं फिर अपने हाथसे उन्होंने उन्हें दाना खिलाया है। सभी भाग्यवान् बछड़े अनुभव करते हैं कि नीलमणिने पहले कण्ठसे लगाकर उनका चुम्बन किया है एवं तब उनके गलेमें उन्होंने अपनी पुष्पमाला

पहना दी है। नन्दभवनके सद्योजात शिशु बछड़ोंसे लेकर वयस्क बछड़े एवं नेचुकी गायें – सभी यह अनुभव करती हैं कि नीलसुन्दर उनके पास आकर उन्हें भरपूर प्यार करते हैं एवं उन्हें आनन्दमें सराबोर कर देते हैं। सभी गोवत्सोंको यही अनुभव होता है कि नन्दतनय प्रत्येक गोवत्सको व्यक्तिशः अपने प्राणोंका रस देकर आप्यायित कर रहे हैं। वे प्रत्येक गोवत्सके फेनिल मुखका प्रक्षालनकर उसपर शत-शत चुम्बन अङ्कित करते हैं। किसी गोवत्सका कण्ठ उन्होंने अपनी सुन्दर भुजाओंमें आवेष्टित कर लिया है एवं तब उसके मस्तकपर अपने चूर्ण कुन्तलमण्डित सिरको वे रख देते हैं। गोवत्स, नेचुकियाँ गायें – सभी उनका अप्रतिम स्नेह पाकर समग्र चञ्चलता त्यागकर किसी अनिर्वचनीय प्रेमानन्दमें विभोर हैं एवं उनके सङ्केतसे परिचालित यंत्र बन गये हैं। नीलमणि गोवत्सोंके, गौओंके अङ्गोंपर लगे धूलिकणोंको अपने सुकोमलतम करपल्लवसे अपसारित करते हैं, उनके चरणोंका सम्मर्दन करते हैं तथा उनके लिये सुकोमल हरित तृणराशि सञ्चय करनेमें निरत हो जाते हैं। वे गोशालामें लगे क्षुप, तृण, वीरुधोंके समीप जाकर पहले उसका एक-एक पत्र लेकर सूँघते हैं, फिर मुखमें रखकर उसके सुस्वादु होनेकी स्वयं परीक्षा करते हैं और उनमेंसे जो भी सुरभित सुमधुर घास होती है, उसे सञ्चयकर, अपने हाथों उठाकर गौओंको खिलाते हैं। वे राशि-राशि वन्य पुष्पोंसे बनी मालाओंसे सबको आभूषित करते हैं। उनकी इन प्रेमभरी चेष्टाओंसे अभिभूत गौएँ प्यारसे उन्हें चाटने लगती हैं।

प्रिया राधा अपनी छतसे ही खड़ी-खड़ी अपने प्रियतमकी इन सभी प्रीति-चेष्टाओंको देखती हुई आर्द्रचित्त हो उठती हैं। यही दशा ललितादि सखियोंकी भी है। प्रियाके हृदयमें भावोंकी तरङ्गों-पर-तरङ्गें उठ रही हैं। प्रियाके प्रासादकी अट्टालिकासे एक सुविशाल कदम्बकी शाखाएँ स्पर्श कर रही हैं। प्रिया इस कदम्ब वृक्षकी एक टहनीको झुकाकर उससे एक पत्र तोड़ लेती हैं। प्रिया उस कदम्बपत्रको अपनी कञ्चुकीमें रख लेती हैं। प्रिया राधाके नयन प्रेमसे छलक रहे हैं। किन्तु वे अपनी दृष्टि अपने प्रियतमकी सूक्ष्म-से-सूक्ष्म गतिविधिको केन्द्रित किये हैं। वे कुछ क्षण तो गुनगुनाने लगती हैं –

त्वमसि मम जीवनं त्वमसि मम भूषणं
त्वमसि मम नवजलधिरत्नम्।

उनकी शब्दावली इतनी अस्पष्ट है कि सखियाँ उसे समझ नहीं कर पातीं कि प्रिया क्या गुनगुना रही हैं। अचानक ही प्रिया एक मञ्जरीको ताम्बूलपेटिका लानेका आदेश देती हैं। लवङ्गमञ्जरी तत्क्षण ही ताम्बूलपेटिका लेकर प्रियाके सम्मुख उपस्थित होती है। प्रिया उसमेंसे एक लवङ्ग लेकर उसे ताम्बूलपेटिकामें निहित कत्थेके लाल रंगसे रञ्जित कर लेती हैं एवं तब उसी लवङ्गसे अपनी कञ्चुकीमें निहित कदम्बपत्रपर गुनगुनाती हुई लिखने लगती हैं –

रहसि संविदं हृच्छयोदयं
प्रहसिताननं प्रेमवीक्षणम्।
बृहदुरः श्रियो वीक्ष्य धाम ते
मुहुरति स्पृहा मुह्यते मनः।।

'प्राणप्यारे ! निरे एकान्तमें तुम हमसे मिलनकी आकांक्षा एवं प्रेमभावको जगानेवाली बातें कहा करते थे। ठिठोली कर-करके तुम हमें छेड़नेकी चेष्टा करते थे। तुम प्रेमभरी चितवनसे हमारी ओर देख-देखकर मुसकाते रहते थे। उस समय हमारी दृष्टि तुम्हारे उस विशाल वक्षस्थलपर केन्द्रित रहती थी जो लक्ष्मीजीका नित्य धाम है। तबसे अबतक हमारी तुमसे मिलनकी लालसा नित्य-निरन्तर बढ़ती ही जा रही है। हमारा मन तुमपर अधिकाधिक मुग्ध होता जा रहा है।'

कदम्बपत्रपर अपना यह निवेदन लिखकर प्रिया अपने प्रियतमको निहारती हुई प्रवाहित होते पवनको सम्बोधित करके कहने लगती है –

'हे पवन! जिस तरह तू मेरे प्राणनाथका अङ्गसौरभ अपने हृदयमें छिपाकर रखता है एवं मेरे सम्मुख उस सौरभको उँडेल देता है, ठीक उसी प्रकार मेरे इस पत्रको भी तू अपने हृदयमें छिपाकर रख लेना एवं अति एकान्त पाकर उन्हें प्रदान कर देना।'

यह निवेदन करती प्रिया उस पत्तेको विस्तृत नभमें उछाल देती है एवं तत्पश्चात् अपने नेत्र कुछ क्षणोंके लिये मूँद लेती हैं। रानी द्वारा पवनमें उछाला कदम्बपत्र कुछ क्षण नभमें मँडराता है एवं तब नन्दभवनकी गोशालामें प्रियतम नीलमणिके पास गिर जाता है। रानीका अणु-अणु इस विचारसे प्रसन्नतासे पुलक़ित हो जाता है कि सचमुच ही पवन मेरा पत्र प्रियतम नीलसुन्दरको प्रदान कर आया। अब प्रिया चाहती हैं कि प्रियतम उसे पढ भी लें।

मधुमङ्गलकी तीक्ष्ण दृष्टि यह सब देख लेती है कि अपने प्रासादकी अटालिकापर खड़ी राधारानीने कदम्बके पत्रपर कुछ लिखकर उसे नभमें उड़ा दिया है एवं वह कदम्बपत्र गोशालामें उसके सखा कन्नूके पास ही गिरा है। मधुमङ्गल वह कदम्बपत्र उठाकर अपने आँचलमें रख लेता है। वह सीधा गौओंकी परिचर्यामें संलग्न अपने सखाको वह पत्र दिखलाता हुआ कहता है - 'अरे मेरे प्यारे प्राणसखा ! आज यदि तू पूर्ण निराहार एकादशी व्रत करे, मैया द्वारा औंटाकर रढ़ाया केसर-कन्द-मिश्रित समस्त दुग्ध मुझे अर्पित कर दे तो मैं तुझे तेरी महादेवीका यह प्रीति-संदेशपत्र प्रदान कर सकता हूँ।'

श्रीकृष्ण मुसकाते हुए अतिशय चतुराईपूर्वक पहले तो मधुमङ्गलका वचन पालन कर लेंगे– ऐसी मुद्रा बनाते हैं किन्तु एक क्षणमें ही उछलकर उस कदम्बपत्रको उसके हाथोंसे छीन लेते हैं। मधुमङ्गल उनके पास पहुँचे, तबतक तो वे उस पर लिखे संदेशको पढ़कर उस पत्रको अरुन्धती गौके मुखमें देकर उसका ग्रास ही बना देते हैं।

मधुमङ्गल कुछ समझे तबतक तो श्रीकृष्ण हँसने लगते हैं। मधुमङ्गल रुआँसा हो उठता है। इतनेमें ही मधुमङ्गलको मैया यशोदा पूर्वकी ओरसे नन्दभवनसे गोशालाकी ओर तेज गतिसे आती हुई दृष्टिगोचर हो जाती है। मधुमङ्गल दौड़कर मैया यशोदाके पास पहुँचता है एवं सक्रोध कहता है - 'माता यशोदे ! तेरा पुत्र अपराधी है। तू धर्मभीरु है अतः तुझे सूचित कर देता हूँ। आजसे इसकी रक्षाका भार तू मुझ बाल ब्रह्मचारी वटुकपर छोड़कर कदापि निश्चिन्त मत रहना। मैं अपने ब्रह्मबलसे अब इसकी रक्षा सर्वथा नही करूँगा। आज इसने महादेवी-संदेशको अरुन्धती गौको खिला दिया, किन्तु मुझ ब्राह्मणको मिष्ट दुग्ध भी पिलानेका वचन नहीं दिया। मिष्टान्नका आश्वासन तो यह कंजूस दे ही नहीं सकता।'

मधुमङ्गलकी बात सुनकर मैया हँसने लगती है। वह श्रीकृष्णको अपने हृदयसे सटाकरं उनका सिर सूँघने लगती है, साथ ही मधुमङ्गलको भी आश्वस्त करती है कि वह उसे उत्तमोत्तम दूध, नवनीत एवं जितना मिष्ठान्न वह चाहेगा, सब भरपेट खिला देगी। श्रीकृष्ण मैयाका आग्रह टाल नहीं पाते एवं उसके साथ-साथ ही नन्दभवनकी ओर चल पड़ते हैं।

रानी अपने प्रासादकी अट्टालिकासे ही यह भली प्रकार देख लेती है कि मधुमङ्गलसे छीनकर उसके प्राणपतिने उसका पत्र पढ़ लिया एवं तब उसे गोपनीय रखनेके लिए ही गौके मुखमें दे दिया। अपने प्रियतमका अतिशय प्रेमपूर्ण. व्यवहार देखकर रानी मूर्च्छित हो जाती हैं। मञ्जरियाँ सम्हालकर उसे नीचे ले जाती हैं तथा प्रासादमें शैयामें लेटा देती हैं। मधुमतीमञ्जरी प्रियाको भावाविष्ट अवस्थामें देखकर वीणामें राग आलापने लगती है -

ऐसो पिया जाने न दीजै हो।
चलो री सखी मिल राखिये नैनन छविरस पीजिये हो।
श्याम सलोनो साँवरो मुख देखत जीजिये हो।
जोइ-जोइ भेष सौं हरि मिलैं सोइ-सोइ कीजिये हो।
मीराके प्रभु गिरिधर नागर बड़भागन रीझिये हो।

नन्दभवनकी संध्याकालीन शोभा

विहङ्गम मधुर कलरव करते हुए आकाशपथसे अपने आवास-नीड़की ओर उड़े जा रहे हैं। मयूर आदि पक्षी ऊँची-ऊँची शाखाओंवाले वृक्षोंपर यथास्थान निविष्ट हो चुके हैं। मृगोंके दल मण्डलाकार हुए, सब दिशाओंकी ओर मुख किये शान्त बैठे मन्द-मन्द रोमन्थन (पागुर) करनेमें तल्लीन हैं। अतिशय मधुपानसे मुग्ध मधुकर-वृन्द कमलकोश निमीलित हो जानेके कारण वहीं बन्दी बन चुके हैं। कुमुदिनी अपनी अभिलषित बेलाका समागम देखकर प्रफुल्लित हो रही है, हँस उठी है। नन्दभवनमें एवं इस शकटग्रामके प्रत्येक गोपगृहके अभ्यन्तर दीप प्रज्वलित हो चुके हैं। इन दीपोंकी ज्योति बाहर भी स्पष्ट परिलक्षित होने लगी है। प्रत्येक पथमें प्रहरीगण अपने-अपने स्थान ग्रहण कर चुके हैं। इस भाँति अपने अभिनव शासनका विस्तार करती प्रदोषलक्ष्मी मानो अपने प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्रकी परिचर्या करनेके उदेश्यसे वहाँ पधारी हैं। इस प्रकार वह उस यमुना–तरङ्ग-मुखरित शकटप्रदेश नन्दग्रामको आच्छादित कर लेती है।

वनचारणसे लौटनेपर तो नन्दनन्दनको अपने आपको यशोदारानीके वात्सल्यसिन्धुकी चञ्चल लहरोंको ही समर्पित करना पड़ता है। सप्त स्वर्ग, सप्त पाताल-समन्वित अनन्त ब्रह्माण्ड श्रेणियोंके स्वामीको जब यशोदानन्दन रूपमें प्रकट होना पड़ता है, तब उनकी समस्त दिनचर्या उसके अनुरूप ही हो जाती है। यहाँ दिवसके विरामपर यशोदा उनकी मंत्रोच्चारणपूर्वक स्तुतियोंसे अभ्यर्थना नहीं करती, अपितु जननी तो उन्हें देखते ही आत्मविस्मृत होने लगती है। यहाँ सन्ध्याकालमें उनका संलालन उन्हें भुजापाशमें बाँधकर स्फुट कण्ठसे मनमाना गीत गाती हुई यशोदारानी करती है। उस समय माताके स्तनोंसे झरता दूध ही साँझका नैवेद्योपहार होता है एवं पाद्य, अर्घ्य होता है मैयाका प्रेमाश्रुर्षण। यशोदानन्दनन्दनकी इन सभी उपासनाओंके मंत्र होते हैं - यशोदा मैया द्वारा स्वयं रचित गीतावली जिनकी वे स्वयं ही ऋषि भी होती हैं। देखो, मैया गा रही है -

आगें गाय पाछें गाय इत गाय उत गाय,
गोविन्दकों गायनमें बसिबो ई भावै।
गायनके संग धावै गायनमें सचु पावै,
गायनकी खुररेणु अंग लपटावै।
गायन सों ब्रज छायो, बैकुण्ठ हू बिसरायो,
गायनके हेत कर गिरि लै उठावै।
छीतस्वामी गिरिधारी विट्ठलेश वपुधारी,
ग्वारियाको भेस धरै गायनमें आवै।

यशोदानन्दनके साथ–ही–साथ रोहिणीनन्दन भी तो इस वात्सल्यरसके ग्राहक होते ही हैं। दोनों पुत्रोंको भुजापाशमें बाँधे-बाँधे ही मैया उन्मत्तवत् मनमाना गीत गाती रहती है -

आओ, मेरे गोविन्द गोकुलके चन्द।
भई बड़ी बार खेलत यमुनातट बदन दिखाय देहु आनन्द।
गाय आवनकी भई है बिरियाँ दिनमणि किरण होत अति मन्द।
आये मेरे तात मात छतियाँ लागो, गोविन्द प्रभु ब्रजजन सुखकन्द।

मैयाके द्वारा गीतोंके बोल सुन-सुनकर बलराम एवं श्रीकृष्णके श्रीअङ्गोंपर लावण्यकी लहरें उठती रहती है। इनके श्रीअङ्गोंमें मलिनताकी तो छाया ही नहीं रहती। चाहे वनमें कितनी ही गोरज क्यों न उडती हो, इनके श्रीअङ्गोंकी शोभा उससे सहस्रगुणित भले ही बढ़ जाये वह रज इनके श्रीअङ्गोंको मलिन तो नहीं ही कर पाती। जहाँ मालिन्य स्पर्श ही नहीं कर पाता वहाँ कैसी संस्कार-परिस्कृति ? नित्य नव सुन्दरता जब नयनोंमें आपूरित हो रही है, वहाँ स्नान एवं

शृङ्गारकी बात मन-मस्तिष्कमें आवे भी कैसे ? अतः इस ब्रजमें सर्वलोकैकपाल राम-श्यामकी अभ्यर्थना जननी द्वारा निराले ढंगसे ही होती है। यहाँ विधि-विधान कुछ नहीं है - यहाँ तो जननीके, नन्दबाबाके अन्तस्तलमें प्रवाहित अनाविल प्रेमसिन्धुकी ऊर्मियोंपर ही राम-श्यामको निरन्तर अवगाहन करना होता है। लहरें जिस ओर, जैसे बहा ले जाती हैं, वहाँ ही, उसी ओर, वैसे ही दोनों प्रवाहित हो जाते हैं।

नन्दप्रासादके अलिन्दमें अपने हाथोंमें नीलमणि एवं बलरामके करपल्लव धारण किये ब्रजेश्वरी खड़ी हैं तथा आज वनमें क्या-क्या कौतुक खेल हुए, इसका विवरण वे अपने लालासे पूछ रही हैं -

कहाँ-कहाँ खेले हो लालन बात कहो मोसों बनकी।
आओ उछंग साँवरे मोहन गोरज पौंछूँ बदनकी।।
सुन्दर बदन कमल कुम्हलानो कैसी दशा भई या तनकी।
रसिक प्रीतम सौं कहत नँदरानी बलि बलि छगन मगनकी।।

वनसे लौटे हुए अपने नीलमणिकी शोभा निहारनेमें भी मैया तन्मय है, साथ-ही-साथ स्नेहजनित अनिष्टाशंकाने मैयाकी सभी भावावेश-दशा एवं तज्जनित एकाग्रता हर ली; उसके प्राणोंमें स्पन्दन प्रारंभ हो गया। पता नहीं - वनमें क्या घटना हुई होगी, जननी पूरे मनोयोगसे अपने लालकी वार्त्ता सुननेमें निरत हो उठती है।

'देख मैया ! क्षीरसिन्धुकी उच्छलित तरङ्गोंके समान गोवत्सराशि मेरे आगे-आगे बढ़ रही थी, मैं उन्हें निरखता परमानन्दमें निमग्न अपने दाऊ भैयाके कंधेपर हाथ रखे हुए, हाथमें लकुट लिये उनके पीछे-पीछे अनुगमन करता आगे बढ़ रहा था। अरी मैया, आश्चर्य था कि ज्योंही मैं वंशीको अपने अधरोंसे सटाता कि वृन्दाकानन झूमने लगता। मैया ! चलते-चलते नवतृणास्तीर्ण वनभूमि आगयी तो गायें वहाँ चरने लगीं। मैया, वहाँ एक परम रमणीय श्रीसरोवर है। सरोवरके सन्निकट मनोहर नव नवाङ्कुरित तृणराजि है जो जलका सान्निध्य पाकर सान्द्र स्निग्ध बन गयी है। मैया, यहाँ मैं अपने असंख्य वत्स-समुदायको सरोवरमें जल पिलाकर तृप्त करने जा ही रहा था, इतनेमें ही मैंने देखा कि इस श्रीसुन्दरी सरोवरके पूर्वीतटपर चार अति अद्भुत स्वर्णकमल खिले हैं। अरी मैया, इन सभी स्वर्णकमलोंकी ऐसी शोभा एवं श्री थी कि तुझे क्या कहूँ? वैसे स्वर्णकमल मैंने अबतक कभी नहीं देखे थे। आश्चर्य था कि इन स्वर्णकमलोंके पुरैन पत्र लम्बे-लम्बे शैवाल-से थे एवं वे पत्र इनके शिरोभागसे निकल रहे थे। वे पुरैन पत्र जलमें गोल आकृति तभी बनाते जब ये कमल डुबकी लगाते थे। मैया, इन कमलोंकी शोभा देखकर मेरा मन इनके पार्श्वमें पहुँचनेको इतना उत्कण्ठातुर हो उठा था कि मैंने तत्क्षण ही जलमें छलाँग लगायी और तैरकर इनके पार्श्वमें पहुँच गया। अरी मैया! वे कमल तो मुसकाते थे और कोकिलकण्ठी स्वरमें बोलते भी थे।'

'अरी मैया.............' श्रीकृष्ण अपना वाक्य पूरा करें, इसके पूर्व ही वहाँ पार्श्वमें खड़ा मधुमङ्गल बोल उठता है – 'अरी मैया ! वहाँ कोई कमल नहीं था, वे तो श्रीदाम भैयाकी बहनें एवं उनकी सखियाँ थीं। यह उन्हींको स्वर्णकमल कह रहा है। मैया ! इसका तू शीघ्र ही विवाह कर दे तो यह मुझ वटुकको यावज्जीवन मिष्ठान्न खिलाता रहेगा।'

मधुमङ्गलकी बात सुनकर मैया हँस-हँसकर लोटपोट हो उठती है। ब्रजेश्वर जो नारायण-मन्दिरके पार्श्वमें सायं सन्ध्योपक्रम कर रहे हैं एवं जिनका पहले अपने पुत्र एवं उसकी माताके मध्य होनेवाली किसी भी वार्त्ताकी ओर सर्वथा ध्यान नहीं था, वे भी मधुमङ्गलकी उक्ति सुनकर हँस पड़ते हैं। मैयाकी गोदमें आसीन नीलमणि अपने बाबा नन्दरायको मुसकाता देखकर लजा जाता है।

मैया भी अपने कन्हैयाको लजा गया देख उसे सान्ध्य भोजनके लिये रसोईघरके पास बने चन्दनभवनकी ओर ले जाती है। वहाँ वे एक छोटी-सी कञ्चन थालीमें ब्यारू परोसकर लाती है। ब्यारूमें राधारानीके प्रासादसे तुलसीमञ्जरी द्वारा लाये गये लड्डू भी हैं। हँस-हँसकर नन्दरानी अपने पुत्रके हाथमें सर्वप्रथम वे ही लड्डू रखती हैं। नन्दनन्दन लड्डू भोग अति स्वादसे खाते हैं।

हँस हँस ब्यारू करत गोपाल।
खटरस बिंजन करत रोहिनी लाय धरत तुलसी ब्रजपाल।।
बीच धरी कंचनकी थारी लाय परोस्यो भात।
प्रभु कल्यान बलराम श्यामकों जिमावत यशोदा मात।।
यशुमति गोद बैठाय श्यामकों कौर देत अपने कर मुख में।
रोहिनी बीजन करत परोसत मेवा देत दोउनके भुजमें।।
करत बियारू हँसत परस्पर निरखत नन्दराय अति मुख में।
कह भगवानहित रामराय प्रभु यह सुख भयो न कौनहिं युगमें।।

यशोदानन्दन अतिशय रुचिपूर्वक हँस-हँसकर अपनी मैयाकी गोदमें बैठ ब्यारू कर रहे हैं। छहों रसके व्यञ्जन रोहिणीजी निर्माण कर रही हैं एवं तुलसीमञ्जरी उनसे वे व्यञ्जन ले-लेकर मैयाके सम्मुख परोस रही है। मध्यमें स्वर्णथाल सजाया हुआ है। यशोमति अपने हाथसे कभी तो दधि-ओदनका, कभी अन्य व्यञ्जनोंका कौर दे रही हैं। रोहिणी व्यञ्जन निर्माण करती-करती भी राम-श्याम दोनोंके हाथोंमें मेवा देती है। दोनों राम-श्याम ब्यारू {सायंकालीन भोजन} करते-करते मुसका रहे हैं। इस सुखको देख रहे हैं और अनुभव कर रहे हैं कि किसी भी जन्ममें, कालके अंशमें ऐसा सुख उन्हें कहीं नहीं मिला है। नन्दराय दूरसे ही अपने पुत्रकी शोभा निहार रहे हैं - 'ओह ! कैसा त्रिभुवनमोहन सौन्दर्य है ! कैसी मधुरातिमधुर बाल्य भङ्गिमा है। यशोदाकी क्रोड़के दक्षिण भागमें बलराम बैठे हैं एवं वाम भागमें श्रीकृष्ण। अपनी बङ्किम चितवनसे कभी-कभी वे बलभैयाको देखते हैं। फिर ऐसी भोली हँसी-हँसते हैं कि समग्र नन्दभवन ही रसप्लावित हो उठता है। नन्दराय देखते हैं - उनके आराध्य नारायण भी सुन्दरतम शोभावान् हैं किन्तु उनका यह पुत्र तो सबसे ही विलक्षण अपूर्व है। यह ऐसा चन्द्र है जिसमें जड़ अमृतकी शीतलता नहीं, अपितु चिन्मय वत्सलताको छलकानेकी सामर्थ्य है। इसकी स्नेहोत्पादक कान्ति नित्य प्रति नित नूतन वेगसे बढ़ती ही रहती है। इसपर एक बार भी दृष्टि पड़ जानेके पश्चात् फिर अन्य कुछ भी देखने-जाननेकी सामर्थ्य ही समाप्त हो जाती है।

ओह ! यशोदाके अङ्कसे अचानक ही श्रीकृष्ण उठ पड़ते हैं। वे जूठे मुख ही नन्दबाबाके पास चले आते हैं। वे अपनी दोनों भुजाएँ अपने बाबाकी ग्रीवामें लपेट देते हैं। वे इस प्रीतिसे अपने बाबाके नेत्रोंमें नेत्र डालकर देखते हैं और ऐसी मुद्रा बनाकर उनके गलेमें लिपटते हैं कि उस मात्र लिपटानपर ही अनन्त कोटि मुक्तिपद ठुकरा दिये जावें। ओह! नन्दबाबा तो अपने पुत्रकी रूपमाधुरीपर न्यौछावर हो जाते हैं। वे अपने पुत्रकी नखसे शिखातककी सुकुमारता, बिना काजर लगाये ही नयनोंकी कृष्णता, बिना तेल-फुलेलके चिकुरोंकी स्निग्धता, बिना ताम्बूलके अधरोंकी गहन लालिमा, दसनोंकी उज्ज्वल छटा, अङ्गों एवं जूठे मुखसे निकलती तीव्र सुवास, वात्सल्योत्पादक भङ्गिमाएँ, हाथमें दधि-ओदन लेकर उसे अपने हाथों बाबाको खिलानेकी विलक्षण प्रेममयी मुद्रा, देखकर ठगे–से चकित हो जाते हैं। उनके रोम ऊर्ध्व हो उठते हैं। नेत्रोंसे अश्रुप्रवाह चल पड़ता है। कण्ठ प्रेमरुद्ध हो जाता है। नन्दबाबाकी दशा तो और भी अधिक उद्दीप्त हो उठती, यदि इसी बीच उपनन्दजी उन्हें राज्यसभामें ले जानेके लिए नहीं आ जाते।

अस्तु, अब तो एक प्रहर निशा व्यतीत हो चुकी है। नन्दनन्दनको निद्रा आ रही है। फिर भी वे मैयाको कहानी सुनानेका आग्रह कर रहे हैं। मैया किसी प्रकार उनके हाथ-पैर धुलाकर उन्हें शयनमन्दिर ले जाती है। इधर ब्रजेश्वर भी गोपसभामें अपने राम-श्यामकी ही चर्चा करने एवं सुननेमें तन्मय हैं। अब तो अतिकाल हो रहा है। नारायणमन्दिरमें शयन-नीराजनका काल हो चुका है। परिचारिकाके द्वारा स्मरण दिलानेपर ब्रजेश्वर सभा विसर्जित कर देते हैं एवं मन्दिरकी ओर पड़ते है। सभी गोपसमाज उनका अनुगमन करता मन्दिरकी ओर प्रस्थान कर रहा है। सभी श्रीकृष्ण-चरित्र-श्रवणसुखकी अमिट स्मृति साथ लिये जा रहे हैं। एक गोप भिक्षुकका वेष धरे नारायणमन्दिरके आगे

हाथमें इकतारा लेकर गा रहा है -

जो सुख होत गुपालहिं गायें।
सो न होत जप-तप-ब्रत संयम कोटिक तीरथ न्हायें।
दियें लेत नहिं चार पदारथ चरणकमल चित लायें।
तीन लोक तृन सम करि लेखत नन्दनँदन उर आयें।
बंशीवट वृन्दावन यमुना तजि वैकुण्ठ को जाये।
सूरदास हरिको सुमिरन करि बहुरि न भव चलि आये।

अब तो त्रिभुवनमोहिनी लीलामहाशक्तिको अतिशय नवीन रसमय लीलामञ्चका उद्घाटन करना है। अतः नन्दनन्दनके नेत्र निमीलितकर शयन करते ही मैयाको भी घोर श्रान्तिका अनुभव होने लगता है। इधर भगवती पौर्णमासीके निर्देशानुसार मैयाको नन्दनन्दनको एकान्त कक्षमें ही शयन कराना है। अब तो सूर्योदयकी अरुणाईके प्रकट होनेतक जननीका अपने पुत्रके शयनकक्षमें प्रवेश ही वर्जित है। अतः यशोदा अपने शयन करते पुत्रकी छवि अपने हृदयमें भरकर नन्दनन्दनके शयनकक्षका पट उढ़काकर उसके बाहर आ जाती है। नन्दबाबाके भी शयनका समय हो गया है। नन्ददम्पतिको रात्रिके तृतीय प्रहरमें ही पुनः जागृत् हो जाना है। मात्र एक प्रहर ही दम्पति शयन करते हैं। शेष समय तो उनका नन्दनन्दनकी सेवामें ही व्यतीत होता है। अतः योगमाया उन्हें भी निद्रित हो जानेको बाध्य कर ही देती है। ।।७६८।।

निस्तब्ध निशा हो जाने पर साँवर उठ पड़ते थे, प्रियतम !
नीली-सरिताके तटके उस वटके समीप आते, प्रियतम।
उस संकेतस्थल पर बाला पहले ही आ जाती, प्रियतम !
अभिसार निराला यह उसका अज्ञात सभी को था, प्रियतम।।७६९।।

जब निस्तब्ध निशाका आरम्भ हो जाता तो अचानक नीलसुन्दर उठ पड़ते और बड़ी सावधानीसे कलिन्दनन्दिनीके तटके उस वटके समीप आ जाते। उसी सङ्केतस्थलपर राधाकिशोरी पहलेसे ही आयी रहतीं। किशोरीका यह निराला अभिसार सभीको अज्ञात ही रहता, किसीको इसकी गन्धतक नहीं लग पाती।।।७६९।।

उस सङ्केतस्थलपर बाला पहले ही आ जाती, प्रियतम !

नन्दभवनसे सुदूर वनमें यमुनासे जो स्रोत प्रवाहित होकर गिरिपरसरमें जाता है, उसपर निर्मित जो सेतु है, इस सेतुपर दक्षिणकी ओर मुख किये प्रिया खड़ी हैं। वैसे सेतु काष्ठनिर्मित है, किन्तु वनकी सुरभित पुष्पवती लताओंने इसे इस प्रकार समाच्छादित कर लिया है कि दूरसे देखनेपर यह सुनील वर्णका ही दृष्टिगोचर होता है। इन लताओंमें पुष्प भी इन्द्रनीलवर्णके ही विकसित हैं। इसी पुलपर हाथ रखे दक्षिण दिशाकी ओर मुख किये प्रिया खड़ी हैं।

ओह ! प्रियाकी सुनील साड़ी एवं नील ओढ़नीमें उसके समाच्छादित अङ्ग इस पुलके वर्णसे इतने एकाकार हो गये हैं कि दूरसे मात्र प्रियाका चन्द्रमुखी विद्युद्वर्णी मुख ही दृष्टिगोचर होता है। रात्रि प्रहरभर व्यतीत हो चुकी है। आज कृष्णपक्षकी प्रतिपदा है। चन्द्रदेव पूर्वदिशामें पर्याप्त ऊपर दिखने लगे हैं। इधर तो पूर्व दिशामें उदित चन्द्रदेवका बिम्ब स्रोतमें प्रतिबिम्बित हो रहा है, एवं इधर प्रियाका चन्द्रमुख भी स्रोतके जलमें अपूर्व ज्योति छिटकाता ज्योतित हो रहा है। रानीकी दृष्टिमें तो उसके प्रियतम नीलमयङ्क ही पूरे भरे हैं, अतः उसे अपने एवं चन्द्रदेव – दोनोंके झलमलाते प्रतिबिम्बोंमें प्राणपति नीलसुन्दर ही ललित त्रिभङ्ग मुद्रामें नृत्य करते दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

रानीके पार्श्वमें विशाखा खड़ी है। रानी विशाखाका दाहिना हाथ थामे उससे हँसकर प्रश्न करती हैं – 'बहिन विशाखे! क्या तू मुझे बता सकती है कि प्रियतम नीलसुन्दरको इतना कलात्मक नृत्य करना किसने सिखाया?' विशाखा मुसकाकर उत्तर देती है – 'तुम्हारी मनोहर चञ्चल चितवनने!' रानी विशाखाका हाथ पकड़कर झुँझलाकर पुनः कहती है –' मैं तुमसे सचमुचकी नृत्यशिक्षाकी वार्त्ता पूछ रही हूँ एवं तू विनोद कर रही है।' विशाखा अपने दक्षिण हस्तसे रानीके कंधेको हिलाकर कहती है–' मेरी प्राणप्यारी सखी! मैं सच ही कह रही हूँ, प्रियतमका नित्य वास तेरे नयनोंमें ही है एवं तेरी चञ्चल चितवनने ही उन्हें नृत्य सिखाया है।'

सुनकर रानी कुछ काल मौन हो जाती है एवं तब पुनः गगनस्थित चन्द्रको देखने लगती है। किन्तु रानीको दोनों ही स्थानोंमें वही चिरपरिचित सुमन्द मुसकान बिखेरता अपने प्रियतमका मुख दृष्टिगोचर होता है। अब रानी पुनः विशाखाकी ओर उन्मुख होकर कहती है – 'अच्छा, विशाखा! मै बताऊँ मेरे प्राणवल्लभको किसने नृत्य करना सिखाया?' रानी जलके प्रतिबिम्बकी ओर सङ्केत करती हुई कहती है – 'उधर देख!'

विशाखा रानीके सङ्केतपर उधर ही दृष्टि डालती है। रानी भी दृष्टि स्थिर करके उधर ही निहारती है और तत्क्षण ही बोल उठती है – 'अरे ! प्रियतम नीलमणि तो आ ही गये!'

रानीकी बात सुनकर पुनः विशाखा खिलखिलाकर हँस पड़ती है। उसे इस प्रकार विहँसती देख रानी समझ जाती है कि वस्तुतः प्रियतम आये नहीं हैं। वह भावभ्रमित हुई ही उनकी उपस्थितिका उल्लेख कर गयी है।

यमुनाकी फेनिल धारा स्रोतकी राहसे प्रवाहित हो रही है। रानीकी दृष्टि फेनपर पड़ती है, उसे इस फेनमें भी प्रियतमकी छवि दृष्टिगोचर होती है। रानीका मन भावोंकी तरङ्गोंमें प्रवहमान हुआ सुदूर, किसी एकाकी शान्त निकुञ्जमें चला जाता है, जहाँ प्राणवल्लभ नीलमणि उससे अतिशय रसीले विनोद कर रहे हैं। रानीके नेत्रोंकी स्थिरता और रसमत्तताका अनुभवकर विशाखा चिन्तित हो जाती है। वह उसे भावोंकी प्रगाढ़तामें डूबी नहीं देखना चाहती। इसीलिये उसकी ठोढ़ीको हिलाकर कहती है -'क्यों, चुप कैसे हो गयी, नृत्यशिक्षाकी बात कह रही थी, न?'

रानी प्रगाढ़ भावस्तरसे नीचे आ जाती है तथा आत्मगोपन वृत्तिसे हँसने लगती है। फिर किञ्चित् विचारकर कहती है – 'चल, पुलके नीचे चलें।'

अब रानी विशाखाका हाथ थामे पश्चिम दिशाकी ओर मन्थर गतिसे गमन करती है। पुलके नीचे भी अतिशय कलात्मक सुन्दर घाट हैं एवं उसपर सुन्दर सोपान हैं। घाट जिन प्रस्तरखण्डोंसे निर्मित हैं, वे सभी प्रस्तर निशाके अन्धकारमें अंत्यन्त मनोहर दिव्य प्रकाश सर्वत्र प्रसरित कर रहे हैं। अतः बिना किन्हीं दीपस्तम्भोंके भी प्रियाको वनदृश्य स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा है। चन्द्रमाकी किरणें अतिशय मन्द, परम स्निग्ध, सुशीतल हैं। यमुनाजलमें पर्याप्त आलोड़न होनेके कारण फेन है। प्रवाहके पुलके नीचेसे आनेके कारण धारा मँडराकर कभी-कभी भँवरका आकार धारण कर लेती है। फेनके बुलबुले वायुसे स्पन्दित जलमें थिरकते-नृत्य करते घाटके सबसे निम्न सोपानसे टकराते हैं एवं कुछ ही क्षणोंमें विलीन हो जाते हैं। अब तो रानी जलस्तरके सोपानसे एक सोपान ऊपर आकर विशाखाके कन्धेपर हाथ रखकर वहीं बैठ जाती है। रानी अपने भावकी अतिशय गंभीर दशामें सर्वत्र अपने प्रियतम नीलसुन्दरको ही अपने सम्मुख ललित त्रिभङ्गी मुद्रामें खड़ा देख रही है। उसे अपने प्रियतम प्रत्यक्षवत् दृष्टिगोचर हो रहे हैं। परन्तु विशाखा अट्टहासकरके उसकी हँसी उड़ायेगी, इसी सङ्कोचवश वह अपने सत्यवत् प्रत्यक्ष दर्शनको भी अपनी भावुकता मानकर प्रकट नहीं कर रही है। रानीको जलमें, जलकी लघु-लघु लहरियोंमें, फेनके बुद्‌बुदोंमें भी अपने प्यारे नीलसुन्दरकी छवि ही दृष्टिगोचर होती है। रानीका प्यारभरा हृदय भोली बालिकाके तुल्य बन गया है। इसीलिये वह फेनके बुलबुलोंको अपने हाथमें उठानेके लिये बारबार अपने नलिनसदृश हाथ बढ़ा रही है।

विशाखा कभी तो रानीके सुन्दरतम आननपर अठखेलियाँ करती चन्द्रमाकी दूधिया चन्द्रिकाको देखने लगती है एवं प्रियाके लोकोत्तर अनुपम सौन्दर्यपर न्यौछावर होती है, कभी रानीकी यमुनाजलके साथ छेड़छाड़ करती नलिनदलों-सी सुकोमल सुन्दर हथेलियोंको निहारने लगती है। रानीके हाथ बारबार चन्द्रमाकी चाँदनीमें चमचमाती नीली यमुनाकी जलधारामेंसे फेनके बुलबुले उठानेका अथक एवं अनवरत प्रयास कर रहे हैं, किन्तु हर बार वे असफल ही होते हैं। बुलबुले रानीके हाथमें आते ही फूट जाते हैं, और उनमें झलमलाती प्रियतमकी छवि विलीन हो जाती है। वे बुलबुले कुछ क्षण भी रानीके हाथोंमें टिकते नहीं।

इस असफलतासे झुँझलाई रानी विशाखासे कहती है – 'क्या तू बुलबुले अपने हाथोंपर उठा सकती है ?' विशाखा अपनी सखीके हृदयके उमड़ते प्रेमभावको अनुमानित करके कहती है - 'यदि मेरे हाथमें बुलबुले आ जावें तो क्या दोगी ?' रानी चटपट बोल उठती है – 'तू जो माँगेगी, वही वस्तु दूँगी।'

विशाखा हँसती हुई अपने दोनों हाथोंकी अञ्जलिमें फेनका जल उठा लेती है। दोनों हाथोंमें जल सहित फेनको उठानेसे बुदबुदे कुछ काल विशाखाकी अञ्जलिमें बने रहते हैं। रानी विशाखाकी अञ्जलिमें स्थित बुदबुदोंमें अपने प्रियतम नीलमणिकी छवि स्पष्ट देखकर आनन्दमें निमग्न हो जाती है। कुछ क्षण जल अपनी अञ्जलिमें स्थिर रखकर विशाखा बुदबुदोंके अवसानपर जलको भूमिमें गिरा देती है। रानी प्रेममें भरकर विशाखाको हृदयसे लगा लेती है।

इसी समय अशोक, गुण, रति, रस एवं लवङ्गादि मञ्जरियाँ अपनी खिलखिलाहटसे वातावरणको मुखरित करती रानीको घेरकर गोलाकार आसीन हो जाती हैं। इनका अनुकरण करती तुङ्गविद्या, इंदुलेखा, चम्पकलता, आदि सखियाँ भी वहाँ आ जाती हैं तथा रानीके आस-पास बैठ जाती है। चित्रा रानीके पृष्ठदेशकी ओर, विशाखा दक्षिण बगलमें, तुङ्ग वाम पार्श्वमें इंदुलेखा विशाखासे सटकर बैठी है। रानी एक बार ग्रीवा मोड़कर चित्राको देखती है, तथा कहती है – चित्रा! जबतक प्रियतम नीलसुन्दर नहीं आवें, तबतक तू कल जो हमारे पीछेसे लवङ्गसे कथा सुन रही थी, उसे ही सुना दे न!'

लवङ्ग घाटकी ऊपरी छतरीपर बैठी पुष्पोंकी माला गूँथ रही होती है। चित्रा हँसकर रानीसे कहती है – 'बहिन! लवङ्ग यहीं तो है, उसके स्वयंके ही मुखसे हम सभी वह वार्ता सुन लें।' रानी स्वीकृतिमें मुख हिला देती है।

चित्रा लवङ्गको पुकारती है। पुकार सुनते ही पुष्पोंकी डलिया हाथमें लिये लवङ्ग घाटकी सबसे ऊपरी सीढ़ीतक आकर पूछती है – 'क्यों चित्रारानी! मुझे पुकारा है क्या ?' उसका स्वर सुनते ही राधारानी अतिशय प्रीतिपूर्वक कहती है– 'हाँ! तुझे ही मैंने बुलाया है, इधर मेरे समीप आ।'

लवङ्गके सम्मुख होते ही रानी उसे हाथ पकड़कर अपने पास बैठा लेती है। रानी कुछ क्षणोंतक उसके मुखको प्रेमातिरेकसे देखती-देखती प्यारमें इतनी भर उठती है कि उसके होंठोंको चूम लेती है। लवङ्गमञ्जरी रानीके प्रेममें इतनी सराबोर हो उठती है कि उसकी आँखोंसे प्रेमके अश्रु बहने लगते हैं। रानी अपने अञ्चलसे उसकी आँखें पौंछने लगती है। कुछ क्षण वहाँ भावपूर्ण नीरवता छा जाती है। अब रानी अतिशय उत्कण्ठाके स्वरमें लवङ्गको कहती है – 'हां, लवङ्ग! तेरी शेष कथा सुना दे।'

लवङ्ग अपना बायाँ हाथ प्रियाके दाहिने कंधेपर रख देती है तथा प्रियाके मुखारविंदकी ओर देखती हुई कहना प्रारंभ करती है – 'बहिन ! मैं फिरसे साहस करके उद्यानके भीतर प्रवेश कर जाती हूँ। कुछ दूर दक्षिणकी ओर बढ़ती ही चली जाती हूँ। आगे बढ़नेपर देखती हूँ कि चतुर्दिक् मल्लिका पुष्पोंकी अतिशय सुन्दर क्यारियाँ लगी हैं। सभी टहनियाँ पुष्पोंसे लद रही हैं। मैं आनन्दमें भर जाती हूँ। मैं तत्क्षण ही अपने अञ्चलको झोलीका आकार देकर दाहिने हाथसे पुष्पोंको तोड़ती अपने अञ्चलमें रखने लगती हूँ। उस समय न जाने क्यों मेरा मन किसी अनिर्वचनीय सरसतासे उत्तरोत्तर भरता जाता है। हृदयमें एक विलक्षण मधुर स्पन्दन होता है। मेरे रोम-रोमको वह सरसता आक्रान्त कर रही

होती है। मैं अपने हृदयमें उमड़ते भावोंको संवरित रखनेमें असमर्थ हो जाती हूँ। भावोंके वेगको किसी प्रकार मंद करनेके उद्देश्यसे मैं मधुर मंद स्वरमें गुनगुनाने लगती हूँ –

चलु सखि, चलु, व्रज पैठ लगी है तहाँ बिकात हरि प्रेम।
सुठि सौंघो प्राणनिके पलटे उलटि धर्‍यो यह नेम।
आन भाँति पाइबौ सुदुर्लभ कोटिक खर्चो हेम।
रामदास प्रभु रत्न अमोलक सखि पइयत है एम।

मैं बार-बार आवृत्ति करती हूँ – 'चल सखि, चल, व्रज पैठ लगी है' एवं साथ-ही-साथ पुष्प भी चयन करती जाती हूँ। उसी समय मेरी दृष्टि पश्चिम एवं दक्षिणकी ओर चली जाती है, मैं देखती हूँ कि मुझसे केवल दस-बारह हाथ दूर एक वन्य वृक्षके तले प्यारे प्राणसुंदर खडे हैं। वे अतिशय प्यारभरी दृष्टिसे मेरी ओर निहार रहे हैं। प्राणप्रियतमको अपनी ओर एकटक निहारते देखकर मैं लज्जित हो जाती हूँ। प्रियतम नीलसुंदरसे एकान्त निर्जन स्थानमें आज प्रथम बार ही यह मेरा मिलन होता है।

वे शनै शनै मेरे निकट आ जाते हैं और मेरा हाथ पकड़कर अतिशय मधुर कंठसे बोलते हैं - 'री! तू तो बहुत सुंदर गाती है !'

अब तो अतिशय लज्जासे मैं पानी-पानी हो उठती हूँ। उनको दृष्टिभर निरखनेका भी साहस मैं नहीं जुटा पाती। पैरोंके अंगुष्ठसे धरा कुरेदती अति मंद स्वरमें मेरे मुखसे किसी प्रकार मात्र दो बोल ही स्फुटित हो पाते हैं – 'रानीने पुष्पचयन करनेका आदेश दिया था, इसीलिए वनमें आयी थी। मैं गायन तो सर्वथा नहीं जानती, गुनगुनाकर रानीके मुखसे सुने गीतोंकी अनुकृति भर कर रही थी।''

'रानी' – इतना भर सुनते ही तो प्रियतम नीलमणिके नेत्रोंसे अश्रुओंकी झड़ी लग गयी। यद्यपि वे अपने भावोंको मेरे सम्मुख प्रकट करते बहुत सकुचा रहे थे, बार-बार वे अपनेको संवरित करनेकी असफल चेष्टा कर रहे थे, फिर भी अनचाहे ही उनके मुखसे 'राधा, राधा' बोल फूटे जा रहे थे। किसी प्रकार पीताम्बरसे अपना मुख कुछ काल ढाँपकर बैठे रहे। फिर अत्यंत मंद-मधुर एवं भरे कंठसे गदगदाते स्वरमें वे मुझसे बोले – 'लवङ्ग ! इधर आ, मेरी बात सुन!'

'प्यारे नीलसुंदरके स्वरमें ऐसी अद्भुत प्रीति छलक रही थी कि बहिन! मैं तो अपनी सुध-बुध ही खो बैठी। मैं अपनेको सँभाल ही नहीं सकी। भूमिपर गिरकर वहीं मूर्च्छित हो गयी। कुछ काल पश्चात् जब मुझे चेतना आयी, मैंने देखा कि वे मेरे निकट खडे मंद-मंद मुसका रहे थे। मेरा अञ्चल सुंदरतम वनपुष्पोंसे महक रहा था। मैं आश्चर्यसे अपने अञ्चलमें निहित पुष्पोंकी सुवास एवं उनकी सुन्दरताको देख-देखकर आश्चर्यमें डूबी जा रही थी। इतनेमें ही मेरी कर्णेन्द्रियोंमें अतिशय सुमधुर जलद-गंभीर प्रेमध्वनि गूँज उठी – 'अरी! यह कानन तेरा शयनमंदिर थोडे ही है? तू तो बात करते-करते ही सो जाती है। मैंने तुझे शांत-शयित देख, तेरे अञ्चलमें वनके सर्वातिशय सुन्दर सुमन चयनकर सञ्चित कर दिये हैं। अब तुझे मेरी रानीका उपालंभ भी नहीं मिलेगा।' मैंने अपने अर्ध-निमीलित नेत्र जैसे ही ऊपर उठाये, उनकी मंद-सुमन्द मुस्कान बिखेरती सरल मूर्त्ति दृष्टिपथमें आ गयी। मैं कुछ काल निस्सङ्कोच उनकी ओर एकटक देखती रही। फिर इच्छा नहीं करनेपर भी बोली –'तो अब मैं जाऊँ ?'

वे बोले– 'अरी तू मेरी प्रियाकी अनुचरी होकर भी इतनी कृतघ्न है!'

अब तो मैं खिलखिलाकर हँस पड़ी। पुनः बोली – 'पुष्पचयनका पारिश्रमिक चाहते हो? वह तो मेरी स्वामिनी स्वतः ही दे देंगी।'

प्रियतम नीलसुन्दर बोले – 'किन्तु ....मुझे तो तुमसे एक वस्तु लेनी है।'

मैं कुछ विचारमें पड़ गयी – 'न जाने ये क्या वस्तु चाह कर रहे हैं ? फिर मन-ही-मन समाधान कर लिया कि मेरा सर्वस्व तो राधारानीका होनेके नाते इनका है ही, अब ये जो भी माँग करना हो, करें।'

प्राणवल्लभ मुझे मौन देख पुनः बोल उठे – मैं तुमसे उस अँगूठीका दान माँग रहा हूँ जिसके नगमें रानीका चित्र झलमलाता व्यक्त हो जाता है।'

'बहुत अच्छा, मैं वह अँगूठी तुम्हें दे दूँगी, किन्तु तुम उसका करोगे क्या ?' – अभी भी मुझे उनसे तर्क करनेमें आनन्द आ रहा था। वस्तुतः मेरे पास एक अँगूठी है जिसमें राधारानीका चित्र इस ढंगसे विजड़ित है कि उसे नेत्रोंके निकट ले जाकर एक कोणसे निरखनेपर वस्तुतः साक्षात् राधारानी ही सम्मुख खड़ी दृष्टिपथमें आ जाती हैं।

मेरे यह प्रश्न करते ही प्रियतमके नेत्र छलछला आते हैं। वे गला रुँध जानेसे चाहनेपर भी उत्तर दे नहीं पाते। कुछ क्षणों पश्चात् ही वे कुछ कहनेमें समर्थ होते हैं – 'देख लवङ्ग! तेरी स्वामिनी जितने काल मेरे निकट रहती है, उतने काल तो मैं सम्पूर्ण विश्वको ही नहीं, अपने आपको भी भूला रहता हूँ, किन्तु मेरी प्रियाके पृथक् होते ही मेरा मन विक्षिप्त हो जाता है। मेरे नेत्र इस विरहकालमें सर्वत्र प्रिया-ही-प्रियाका दर्शन करते रहते हैं। किन्तु इस कालमें ज्योंही आवेशवश मैं अपनी प्राणप्रियाको कंठसे गूँथने आगे बढ़ता हूँ, मेरी प्रियाकी छवि उतनी ही दूर आगे खड़ी दिखती है। इस प्रकार उन्मत्तवत् अनेकों बार ऐसा व्यवहार करनेपर ही समझमें आता है कि वस्तुतः यह मेरा निरा भ्रम मात्र है। प्रिया वस्तुतः वहाँ है ही नहीं। यदि वस्तुतः प्रियाकी सत्ता वहाँ होती, तो मुझे भला, इस प्रकार क्यों व्याकुल करती ? मैं हताश होकर ऐसी स्थितिमें बैठ जाता हूँ। किन्तु मेरे प्राणोंकी विरहव्यथा तो क्षण-क्षण तीव्र-तीव्रतर होती ही जाती है। उसे शमन करनेका मुझे कोई उपाय ही नहीं सूझता। आज रूपमञ्जरीने उस अँगूठीकी चर्चा की थी। वह अँगूठी वस्तुतः मेरी यशोदा मैयाने ही निर्माण करायी थी, और मेरे जन्म दिवसपर मेरी प्रियाकी अँगुलीमें पहना दी थी। मैंने तो रूपसे वह अँगूठी प्रियासे लाकर देनेका आग्रह किया था। किन्तु रूपने ही यह रहस्य बताया कि प्रियाके पास वह अँगूठी है ही नहीं। वह तो तू उससे उपहाररूपमें प्राप्त कर चुकी है। उससे यह सुनकर मैंने यह निश्चय किया कि यदि वह अँगूठी तू मुझे दे देगी तो मैं उसे हृदयसे लगाकर अपनी विरह-व्यथा शमन करता रहूँगा।'

'बहिन! प्रियतम प्राणवल्लभकी वार्ता सुनकर उनका तेरे प्रति प्रेम देखकर मैं तो निहाल हो गयी। तत्क्षण ही मैंने अपनी अँगुलीसे वह अँगूठी उतारकर प्रियतमको पहना दी। जैसे ही वह प्रियतमको मिली, वे उन्मत्तवत् मुझे कण्ठसे लगा-लगाकर मेरे रोम-रोमको चूमने लगे। वे बार-बार यही उच्चारित कर रहे थे - 'लवङ्ग! तूने मुझे आज खरीद लिया। मैं तेरा जन्म-जन्मका दास हो गया हूँ।' मैं मन-ही-मन लज्जासे पिघली जा रही थी। मेरे रोम-रोमसे इस प्रकार स्वेद झर रहा था, मानो मेरी देह न होकर कोई जलकुण्डका स्रोत हो। मैं यही सोच रही थी कि मैं तो रानीकी एक अदनी-सी चरणकिङ्करी हूँ। जब मेरी जन्म-जन्मकी स्वामिनीपर ही उनका अनादिसिद्ध अधिकार है, फिर रानी द्वारा भेंटमें पायीगयी एक तुच्छ -सी अँगूठीके लिए मेरे जीवनसर्वस्वको इतना सङ्कोच क्यों हो रहा है?'

'बहिन! यह सोचते-सोचते मैं इतनी अधीर हो उठी कि मेरे लिए खड़ा रहना असम्भव हो गया। मैं मूर्च्छित होकर लुढ़क पड़ूँ, इसके पूर्व ही उन्होंने मुझे अपनी बाहुओंका सहारा देकर सँभाल लिया। वे पीताम्बरसे मेरे अनवरत प्रवाहित अश्रु पोंछ रहे थे। मैं सुबकी ले-लेकर एक ही वाक्यकी आवृत्ति कर रही थी - 'मेरे जीवन सर्वस्व! मैं तो सर्वतोभावेन तुम्हारी क्रीतदासी हूँ। एक अँगूठीकी क्या बिसात, मेरा सर्वस्व भी तुम्हारा है।'

इस प्रकार कितने ही काल पश्चात् जब मुझमें भावसन्धि आयी, तो मुझसे प्रियतम नीलसुन्दरने मुसकाकर कहा– 'अरे! तुझे तो कालका ज्ञान ही नहीं है, दिन तो ढल चुका है। तेरी स्वामिनी तेरी प्रतीक्षामें अन्न-जल त्यागकर बैठी होगी। अब शीघ्र जाकर उन्हें ये पुष्प समर्पित कर।'

'बहिन! प्रियतमके जगानेसे ही मुझे चेत हुआ। मैं तत्क्षण ही वनसे लौटनेको उद्यत हो उठी। किन्तु प्रियतमने मुझे पुनः सचेत किया – 'अरे! तू तो इस समय पूरी भावविभ्रान्त है। तुझे वनपथका ठीक ज्ञान ही नहीं रहेगा। इधर-उधर निश्चय ही भटक जायेगी। मेरा अनुगमन कर। मैं तुझे यमुना-तटतक पहुँचा देता हूँ।' यह कहकर वे मुझे पथनिर्देश करते मेरे आगे-आगे चल रहे थे। मैं यथासमय यमुनातटपर पहुँच गयी। वहाँ पहुँचकर भी वे पुनः-पुनः मेरी ओर ऐसी प्रेमभरी दृष्टिसे निरख रहे थे कि मेरे चरण उनसे दूर होनेको उठ ही नहीं पा रहे थे। मेरी विवश दशाको निहारकर वे हँसते हुए एक झाड़ीके पीछे जाकर वनपथमें ओझल हो गये। कुछ क्षणोंतक तो मैं विमूढ़-सी अपलक उसी दिशाकी ओर टकटकी लगाये देखती रही, जिस दिशामें वे ओझल हो गये थे। फिर रोम-रोममें अतिशय आनन्द-पुलकित मैं शीघ्रतासे ललिताकुञ्जके प्रासादके निकट पहुँची। द्वारपर ही मुझे रूपमञ्जरी मिल गयी। वह चकित-सी मेरी ओर देखती हुई बोली – 'अरी! आज तूने ठीक, रानीके समान ही शृङ्गार कैसे कर लिया ? मैं तो तुझे पहचान ही नहीं पा रही हूँ।' वह मेरी ओर सचकित देखती जा रही थी और बार-बार मुझे हृदयसे लगा रही थी। अचानक उसकी दृष्टि मेरी गुँथी वेणीपर पड़ गयी। वह आश्चर्य-स्तंभित-सी मेरी वेणीको निरखने लगी – 'अरे! तू इतनी सुन्दर वेणीरचना कर लेती है ? तू तो हम सभीके पर कतरने लगी।'

'अब तो बहिन, मैं स्वयं भी विचारमें पड़ गयी। वस्तुतः मैं तो स्नानकरके केशोंको भी भीगे छोड़कर उन्हें पीठपर बिखेरे ही वनमें पुष्पचयन करने निकल गयी थी। कंचुकी भी मैंने पथमें ही कसी थी। फिर यह मेरी वेणीरचना कैसे हो गयी? अन्ततः मुझे यही समाधान मिला कि जब मैं मूर्च्छित हो गयी थी, उसी समय निश्चय ही प्रियतम नीलसुन्दरने मेरे केश सँवारे होंगे और मेरे अङ्ग-प्रत्यङ्गोंका शृङ्गार भी किया होगा।'

रूपके सम्मुख जब मैंने वनकी सब घटना सुनायी तो वही मुझे तेरे पास ले आयी एवं कहने लगी कि 'तू आज प्रथम प्रहर निशाके समय रानीको यह सब घटना सुना देना।' रूपमञ्जरीके साथ ही मैं तेरे पास आयी थी, एवं मुझे देखते ही तुम्हें मेरे रोम-रोममें प्यारे नीलसुन्दरकी अङ्गगन्ध मिली और तुम मूर्च्छित...........लवङ्गमञ्जरीकी कथा सुनते-सुनते ही रानी अपने दोनों हाथ बढ़ाकर उसे अपने हृदयके पास खींच लेती है। उच्छलित प्रेमावेशसे रानीकी विचित्र दशा हो रही है। लवङ्ग भी रानीके हृदयसे सटकर प्रेममें इतनी तल्लीन हो उठी है कि उसकी वाणी रुद्ध हो गयी है। अन्य सभी सखियाँ एवं मञ्जरियाँ भी लवङ्गकी कथा सुनती-सुनती प्रियतम नीलसुन्दरके ध्यानमें इतनी तल्लीन हो उठती हैं कि सभी बाह्यज्ञान-शून्य दशाको प्राप्त हो जाती हैं।

इसी समय ललिता एवं अन्यान्य मञ्जरियोंके साथ प्राणवल्लभ नीलमयङ्कदेव घाटपर आ पहुँचते हैं। वे दबे पाँव घाटकी सीढ़ियाँ उतरते हैं। शनैः-शनैः वे चित्राके पार्श्वमें खड़े होकर रानीके नेत्र पीछेसे मूँद लेते हैं। रानी अपने प्राणवल्लभका करस्पर्श पाकर एक बार तो चकित हो उठती है। फिर उनका हाथ पकड़कर खड़ी हो जाती है। सभी मञ्जरियोंमें उल्लासकी लहर आ जाती है। नीलमणि प्रियाको हृदयसे लगाये, गलबाँही दिये सीढ़ियोंपर पैर रखते-रखते स्रोतके घाटके ऊपरी भागमें आ जाते हैं। वृन्दाने घाटके ऊपर निर्मित वेदीपर एक मयूरासन लगा दिया है। वेदीकी पुष्पसज्जा भी अतिशय मनोरम है। प्रिया-प्रियतम मयूरासनपर पैर-लटकाकर विराजित हो जाते हैं। मधुमती सुधास्यंदी कोकिलकण्ठी स्वरोंमें गा रही है -

नन्द-कुलचन्द्र वृषभानुकुल-कौमुदी, उदित वृन्दाविपिन-विमल आकाशे।
निकट वेष्टित सखीवृन्दवर-तारिका लोचन-चकोर तिन रूप रस प्यासे।।
रसिक जन अनुराग उदित तजि मरजाद भाव अगणित कुमुदिनीगण विकासे।
कहें गदाधर सकल विश्व असुरनि बिना भाव भवताप-अज्ञान-तिमिर नासे।।

भावोंका था आवेश एक उनमें विचित्र होता, प्रियतम !
प्रत्यक्ष परस्पर रहकर भी दोनों न देख पाते, प्रियतम !
हो आकुल एक दूसरेको निरुपाय ढूंढते थे, प्रियतम !
दोनोंके लिये ध्येयमय था यह अखिल दृश्य बनता, प्रियतम ॥७७०॥

अचानक दोनोंमें ही भावोंका एक विचित्र आवेश हो जाता। परस्पर प्रत्यक्ष सामने ही विराजित रहनेपर भी दोनों एक दूसरेको देख नहीं पाते। फिर तो अत्यन्त व्याकुल होकर निरुपाय हुए एक दूसरेको ढूँढ़ने लगते। अहा ! दोनोंके लिये ही यह अखिल दृश्यजगत् ध्येयमय बन जाता था।।।७७०।।

यह लहर शमित होते-होते लग जाती एक घड़ी, प्रियतम!
जाकर तब कहीं भुजाओंका बन्धन लग पाता था, प्रियतम!
जो भी बड़भागिन खड़ी-खड़ी अवगाहन कर पायी, प्रियतम!
उन खोज-मिलनकी लहरोंमें, उसने समझा रसको, प्रियतम ॥७७१॥

भावकी यह लहर प्रशमित होते-होते एक घड़ीका समय लग ही जाता। फिर परस्पर भुजबन्धनमें दम्पति बँध पाते। जो भी बड़भागिनी सहचरी खड़ी-खड़ी उस खोज-मिलनकी लहरोंमें अवगाहन करती हुई डूब पायी, वही रस क्या वस्तु है - इसको समझ सकेगी भला !.... ...... ।।७७१।।

प्रत्यक्ष परस्पर रहकर भी दोनों न देख पाते, प्रियतम !

मधुमतीमञ्जरीका गायन समाप्त होते-होते प्रियतम प्रिया को यमुना-स्रोतके किनारे-किनारे यमुनाकी मुख्यधाराकी ओर ले चलते हैं। सखियोंकी टोली प्रिया-प्रियतमके आगे-आगे दाहिने-बाँये चल रही है। प्रियतम अपने बायें हाथसे प्रियाकी कटिको सहारा देते हुए उनके दक्षिण अञ्चलके एक छोरको पकड़े हैं। इसी प्रकार प्रियाने भी अपने प्रियतमके वाम स्कंधको दक्षिण बाहुसे पकड़ रखा है। प्रियाके वाम हस्तमें शतदत कमलकी डंडी है। वे उस डंडीसे कमलको घुमा रही हैं। प्रियतम नीलसुन्दरके हाथमें स्वर्णकी मुरली है। मुरलीके अन्तिम छोरमें अनमोल मुक्ताओंकी झालर लटक रही है। इस झालरके मुक्ता एवं रत्न चन्द्रिकामें रह-रहकर दमक उठते है। दोनों युगल दम्पति परस्पर अतिशय प्रेममें पुलकित हैं एवं एक दूसरेपर स्नेहसे झुकते, वनकी शोभा निहारते हुए वनपथमें यमुनाप्रवाहकी ओर शनैः-शनैः मन्द-मंथर गतिसे बढ़ रहे है। मुख्य रूपसे उनकी राह पूर्व दिशाकी ओर है, किन्तु पुष्पचयन करते हुए कभी वे पथ छोड़कर उत्तरकी ओर एवं कभी दक्षिणकी ओर मुड़ जाते हैं।

आज पूर्णिमा है। पूर्ण चन्द्रकी शुभ ज्योत्स्नासे वन जगमग-जगमग कर रहा है। प्रिया एवं सभी सखियाँ चम्पई वर्णका शृङ्गार किये हैं। प्रिया एवं सखियोंकी सम्पूर्ण कृष्ण कुन्तलराशि भी चम्पाके पुष्पोंसे इस प्रकार शृङ्गारित है कि केशोंके कृष्णत्वकी रञ्चक-सी झाँई भी बाहर स्फुटित नहीं हो पा रही है। प्रियाकी कंचुकी भी चन्द्रवर्णी क्षौम वस्त्रकी है। प्रियाकी कञ्चनद्युति पीठपर कंचुकीके बंदोंके ऊपर होती हुई, यद्यपि नागिन-सी वेणी लहरा रही है, किन्तु वह कृष्ण नागिन आज चम्पई पुष्पोंकी मालाओंसे इस प्रकार गुँथी-बँधी है कि प्रियाकी पीठके वर्णसे पूरी एकात्म हो उठी है। प्रियाको पीछेसे देखनेपर किञ्चित् भी ऐसा प्रतीत नहीं होता कि प्रियाकी पीठपर वेणी लहरा रही है। ऐसा ही अनुभव होता है मानो प्रियाके पृष्ठके वर्णके आकारकी शोभाकी तरङ्गें ही उसके पृष्ठदेशमें लहरा रही हैं। चम्पई वर्णके सभी आभूषण प्रियाके अङ्गोंपर इस प्रकार जगमगा रहे हैं मानो राकाशशिके प्रकाशमें जुगनू जगमगा रहे हों। प्रियाके आभूषणों, प्रियाकी वस्त्रसज्जा एवं प्रियाके अङ्गवर्णके चंदनादि-लेपसे चन्द्रमाकी किरणोंका संयोग होनेपर एक ऐसी विचित्र आभाका अभ्युदय होता है जो चन्द्रकिरणोंसे एकमेक हो जाती है। अब वृक्षोंकी छायामें आसीन व्यक्तिके लिए

प्रियाका अनुसंधान ही असंभव हो उठता है। पूरी-की-पूरी सखीमंडली एवं प्रिया चन्द्रमाकी चाँदनीसे एकरूप होकर मानो चन्द्रप्रकाशमें लुप्त हो गईं, यही अनुभव होता है। ऐसा ही शृङ्गार सखियोंका है। इन सखियोंको भी चन्द्रमाकी चाँदनीमें ढूँढ़ना, चन्द्रिकामें उनको पृथक्-पृथक् पहचानना असम्भव ही हो रहा है। इन्होंने अङ्गलेप भी इसी वर्णका किया है एवं सभीका शृङ्गार एक ही वर्णका है। प्रियाके तनपर ओढ़नी चन्द्रिकाके वर्णकी है, उसपर कुन्दनद्युति जरीकी कारीगरी की गयी है। यह भी चाँदनीमें ऐसी चमचमाती है मानो चाँदनी कहीं-कहीं घनीभूत शोभामय होकर विशेष प्रकाश प्रकट कर रही हो। प्रियाके अङ्गोंसे कोटि-कोटि चन्द्रोंकी-सी द्युति निकल रही है। यह पीतपुटित शुभ्र ज्योति दूरसे ऐसा ही दृश्य सृजन करती है मानो कलङ्कहीन चन्द्रमा ही विशिष्ट नारी-आकृतिमें वनशोभा निरखने धरापर अवतरित हो उठा हो। सखियों एवं प्रियाके रोम-रोमसे अत्यंत मनोमोहक सुगन्धिका प्रवाह निःसृत हो रहा है, जो वन्य पुष्पोंकी गन्धसे मिलकर उसे अनन्तगुनी कर दे रहा है।

सर्वत्र शीतल मन्द सुगन्धित पवन प्रवाहित हो रहा है। पवनके झौंकोंसे स्थलकमल, चम्पा, चमेली, मोगरा, बेलाकी लताएँ ऐसी हिल रही हैं, मानों प्रिया-प्रियतमको सङ्केत कर-करके अपने पास बुला रही हों और प्रार्थना कर रही हों – 'आओ जीवन सर्वस्व ! तुम्हारे लिये ही हमारी सत्ता एवं यह सब विकास है। अपने हाथोंसे हमारे पुष्प तोड़ो, न ! यह हमारे जो सुमन हैं, तुम दोनों दम्पतिके लिए ही विकसित हैं एवं तुम दोनोंको ही समर्पित हैं।'

प्रिया-प्रियतम दोनों ही वृक्षोंकी मूक भाषा सुनते हैं एवं पुलिनपथकी पुष्पलताओंके पास चले जाते हैं। वे दो-चार पुष्प तोड़ते है, उनका सुवास आघ्राण करते हैं एवं गुणमञ्जरीकी डलियामें धीरे-से उन्हें रख देते हैं।

कभी प्रियतम प्राणवल्लभ अपनी प्रियाको किसी सुमनोहर पुष्पित वृक्षकी ओर कर्षित करते ले जाते हैं और तब उस वृक्षकी किसी टहनीको जोरसे हिलाकर प्रियाके मस्तकपर उसके विकसित सुवासित पुष्पोंकी वर्षाकरके ताली बजा-बजाकर प्रसन्न होते हैं। कभी प्रिया अपने प्रियतमका हस्तधारण करके उन्हें खींचती है और खींचते-खींचते किसी लता-समालिङ्गित पुष्पाभरणाभरित वृक्षके नीचे ले जाकर खिल-खिलाकर अट्टहास कर उठती है। प्रियाकी यह खिलखिलाहट इतनी सुमधुर प्रेमभरी होती है कि सम्पूर्ण प्रकृति पुलकित हुई झूम-झूम उठती है। इससे अविकसित कलियाँ तत्क्षण ही विकसित होकर पुष्प बन जाती हैं एवं विकसित पुष्पराशि स्वभावतः ही झरकर प्रिया-प्रियतमके चतुर्दिक् वर्षाके रूपमें अपनेको न्यौछावर कर देती है। प्रिया-प्रियतम इन झरेहुए पुष्पोंसे परस्पर एक दूसरेके मस्तक, कन्धों एवं अलकावलिको अलंकृत निरखकर पुनः प्रसन्नतापूर्वक ताली दे-देकर नाच उठते हैं। इस प्रकार सखियों सहित पूर्व दिशामें अपने गन्तव्यकी ओर बढ़ते हुए प्रिया-प्रियतम ऐसे स्थलपर चले आते हैं जहाँ आगे अतिशय सघन तमालवन है। इस वनमें एक दूसरेसे पाँच -पाँच गजकी दूरीपर असंख्य तमाल वृक्ष खड़े हैं। इन सभी तमाल वृक्षोंके मध्यमें जो पाँच गजकी पीत सैकत भूमि है, उसपर शुभ्र चन्द्र -ज्योत्स्ना छिटक रही है। प्रिया दूरसे ही इस शोभाको देखकर एक बार तो चकित-मुग्ध हो जाती है। तमाल वृक्षोंका घन नील तना तो प्रियाको अपने प्रियतमका श्यामल अङ्ग दृष्टिगोचर होता है, एवं तमालके सूखे पीताभ पत्र उसे उनके कंधोंपर लटकता गाढ़े पीले वर्णका रेशमी वस्त्र दृष्टिगोचर होता है। प्रियाको नीले वर्णकी तमालकी टहनियाँ अपने प्रियतमकी युगल भुजाएँ दृष्टिगोचर होती हैं। तमाल पुष्पोंका सौरभ प्रियाको ऐसा अनुभव होता है मानो उसके प्रियतमकी अङ्गगंध उड़-उड़कर सारे वनको महका रही है। इन सभी तमाल वृक्षोंके रूपमें प्रिया स्पष्ट अनुभव करने लगती है, मानो एक नहीं, दो नहीं, अनगिनत रूप धरे उसके प्रियतम अनन्त वृजाङ्गनाओंको प्रीतिदान करनेको उत्सुक खड़े हैं। एक तमाल वृक्षसे दूसरे तमाल वृक्षके मध्य जो पाँच वर्ग गजका रिक्त स्थान है, उसपर पीतपुटित जो चन्द्र-ज्योत्स्ना छिटक रही है, वह प्रियाको अपने प्रियतमके अङ्गोंसे लिपटी कोई अप्रतिम सुन्दरी वृजाङ्गना अनुभूत होती है। बस, प्रियामें भावोंका ऐसा विचित्र आवेश होता है कि प्रिया पार्श्वमें अपने प्रियतमका प्रत्यक्ष सङ्ग होनेपर भी उन्हें विस्मृत कर जाती है, एवं तीखे उच्चातिउच्च स्वरमें

'प्रियतम! मैं आई' कहती हुई वनमें दौड़ पड़ती है। प्रिया-प्रियतम इस समय जिस स्थलपर खड़े होते हैं, वह तो यमुनाके सैकत तटपर स्थित रासस्थलीकी ओर बढ़ता पथ होता है।

इस पथके दोनों ओर सघन पुष्पाच्छादित वृक्षावली है। इस पथको आच्छादित किये सघन वृक्षोंकी टहनियों और पत्रोंका ऐसा घना जाल है कि उससे छनकर चन्द्रमाकी पीत ज्योत्स्ना उन्मुक्त रूपसे प्रिया-प्रियतमतक नहीं पहुँच पाती। यद्यपि प्रिया एवं सखियोंका शृङ्गार ठीक चन्द्रमाकी चाँदनीके वर्णका है, फिर भी इन सघन वृक्षोंकी छायामें सभीका वैसा शृङ्गार प्रियतम नीलसुन्दरके नयनोंको अत्यंत मनोरम एवं सुखद लगता है। प्रिया वृक्षोंसे रिक्त मैदानको पारकर तमाल वृक्षोंकी ओर धावित होती है। उस मैदानमें तो शुभ्र स्वच्छ चाँदनी एवं चन्द्रप्रकाश पूर्ण रूपसे ज्योतिर्मान् हो रहा है। अतः प्रिया अपने चन्द्रिका तुल्य शृङ्गारके कारण उस चाँदनीके घन प्रवाहमें ऐसी घुल जाती है कि दूरसे उसका अनुसंधान ही न तो सखियाँ कर पाती हैं, न ही प्रियतम नीलसुन्दर ही। बस, प्रियाके पैरों एवं कटिकिङ्किणीका निनाद अथवा वनमें प्रतिध्वनित होती उसकी तीक्ष्ण 'प्रियतम! मैं आई' की पुकार तो सभीको श्रवणगोचर होती है, किन्तु इस कोसों विस्तृत वृक्षहीन भूमिमें छिटकी चन्द्रिकासे एकात्म एकाकार हुई प्रिया कहाँ चली गई, इसका अनुसंधान किसीको भी नहीं हो पाता। अपनी प्राणसखीका इस प्रकार चन्द्रमाकी चाँदनीमें एकाकार होकर अदृश्य हो जाना सखियोंके लिए इतना असह्य हो उठता है कि वे सभी 'रानी! तुम कहाँ हो ?' कहती उसी छिटकती चन्द्रिकामें दौड़ पड़ती हैं। उस विस्तृत चन्द्रिकोदधिमें सखियाँ भी कुछ दूरीतक तो चन्द्रिका-तरङ्गोंकी तरह दृष्टिगोचर होती हैं एवं तब वे भी अपने चम्पई शृङ्गारके कारण एकात्म हुई ज्योत्स्ना-उदधिमें एकाकार हो उठती हैं।

प्रियतम नीलसुन्दर एक क्षण तो स्तब्ध-से इस विलक्षण घटनाको देखते हैं एवं तब किङ्कर्त्तव्य-विमूढ़ हो जाते हैं। उन्हें न तो सखियोंका अनुसंधान हो पाता है, न ही अपनी प्रियाका। वे विस्तृत तमालवनके मध्यका सैकतस्थल सूनी-सूनी आँखोंसे देखते स्तब्ध रह जाते हैं। प्रियाका इस प्रकार अकस्मात् ओझल हो जाना उनके प्रीतिभावोंको इस प्रकार उद्रिक्त कर देता है कि उन्हें उस विशद चन्द्र-ज्योत्स्नासे जगमगाती धरामें प्रिया-ही-प्रिया खड़ी अपने बाहु फैलाए उन्हें अतिशय प्रेमसे पुकारती हुई दृष्टिगोचर होती है। वे 'प्राणवल्लभे, प्राणेश्वरी, प्राणेश्वरी' की रट लगाये उन्मत्त-से हुए उस छिटकी चन्द्रिकामें नृत्य करने लगते हैं। वे अपनी प्रियतमाकी भावमूर्तिको आलिङ्गन करनेके लिए अपनी भुजाएँ फैला लेते हैं और करुण स्वरमें 'हे प्राण- जीवने! हे प्राणौषधि ! मुझ दासपर कृपा करो' उच्चारित करते कभी एक स्थलकी ओर, कभी दूसरे स्थलकी ओर धावित होते हैं।

अब गोपियोंकी दशापर विचार करें। प्रियाके चन्द्रिकासिन्धुमें विलीन होते ही व्याकुल हुई गोपियाँ तमाल वृक्षोंकी ओर भागती हैं। प्रिया राधाकी कायव्यूहरूपा होनेसे उन सभीके अन्तःकरणोंमें प्रियाके महाभावकी हिलोरें तो लहरा ही रही थीं। अतः उन सभीको तमाल वृक्ष प्रियतमरूपमें ही आभासित होते हैं। साथ-ही-साथ उन्हें यह भी दृष्टिगोचर होता है कि उनकी प्राणप्रिया रानी भी चाँदनीके रूपमें अपने प्रियतमसे लिपटी सम्मुख ही खड़ी हैं। अतः वे सभी गोपियाँ उन वृक्षोंको घेरकर चाँदनीमें ही आसीन हो जाती हैं। प्रिया एवं गोपियोंको चाँदनीमें रहनेसे प्रियतम देख नहीं पाते हैं। प्रियतमकी 'प्राणेश्वरी', प्राणवल्लभा' — नामोच्चारण-ध्वनि वनमें तमाल वृक्षोंसे टकराकर इस प्रकार प्रतिध्वनित हो रही है, जिससे प्रियाको यही श्रवणगोचर होता है मानो वृक्षरूपमें खड़े उसके प्रियतम ही उसे पाकर अतिशय प्रेम-प्रफुल्लित हुए उसे पुकार रहे हैं। इधर प्रियाकी दशा विचित्र है। अपने प्रियतमकी 'प्राणेश्वरी' 'प्राणेश्वरी' गुञ्जित ध्वनिसे वह कभी किसी एक तमालसे लिपटती है, एवं कभी किसी दूसरेसे।

कैसी विलक्षण भाव दशा है प्रिया की ! उस प्रेमोन्मादिनीको तमालका कठोर तना भी अपने प्रियतमका सुकोमलतम अङ्ग-संस्थान ही अनुभव होता है। वह कभी किसी एक तमालसे गुँथ जाती है, एवं कभी अन्य किसीसे। प्रियाका सम्पूर्ण दृश्य निज प्रियतममय युगलस्वरूप हो रहा है, एवं प्रियतमके लिए फैली सघन चाँदनीभरा मैदान

प्रियास्वरूप हो रहा है। प्रियतम अपने आगे-पीछे, ऊपर-नीचे, दाहिने-बायें सर्वत्र अपनी प्रिया-ही-प्रियाकी मुस्काती छविको देखते हुए प्रेममुग्ध हैं। जब नीलसुन्दरकी दृष्टि ऊपर नभकी ओर जाती है तो उन्हें अनुभव होता है, उनका वक्षस्थल ही विस्तृत नभ है एवं चन्द्रमुखी प्रिया अपने आनन-सौन्दर्यसे उनके ह्रदयको ही जगमगा रही हैं। जब नीलसुन्दरकी दृष्टि निम्न धरापर जाती है तो उन्हें अनुभव होता है कि उनका ह्रदय ही वह चिन्मय आश्रयभूमि है, जहाँ शीतल प्रेमचन्द्रिकाके रूपमें प्रिया विलस रही है। वे जब दाहिनी ओर मुख करते हैं तो उनके दक्षिण स्कंधसे सटी प्रियाका खिला मुस्काता मुख उन्हें प्रेमानन्दपूरित कर देता है एवं जब वे वाम भागकी ओर देखते हैं तो वहाँ भी वही प्रियाकी प्रीति-चितवनी देखकर वे मुग्ध हो उठते हैं।

प्रियतम प्राणवल्लभ नीलसुन्दरकी इस समय कैसी विचित्र भावदशा है, इसका साक्षी होना तो कोई गोपीह्रदय महापुरुषके लिये भले ही संभव हो, साक्षात् वाग्देवीके तो सामर्थ्यकी बात यह है नहीं कि उसे शब्दचित्र दे सके।

अचिन्त्य लीलामहाशक्ति इस महाभाव-सिन्धुकी सर्वोच्च ऊर्मिसे पूरी एक घड़ीतक प्रिया-प्रियतम एवं सखियोंको परिस्नात करती है, तब जाकर ऐसा संयोग होता है कि पूर्व गगनसे उमड़ा नभमें एक बादल राकाचन्द्रको कुछ कालके लिए अच्छादित कर लेता है। चन्द्रिकाके मंद होते ही प्रियाको मध्य मैदानमें ध्यानस्थ विराजित अपने प्रियतम दीख पड़ते हैं। सखियाँ भी उसी समय अपनीं प्राणप्रिया रानीका प्रत्यक्ष अनुसंधान कर पाती हैं। प्रियतम भी तभी अपनी प्रियाको आलिङ्गनबद्ध कर पाते हैं।

सभी पुनः परस्पर बाहुबन्धन दिये हँसते यमुनाके सैकत रासस्थलीके पथपर आते हैं। प्रेमानन्द-उदधिके इस उच्छलनसे किसीको कोई विक्षेप हुआ हो, ऐसा सर्वथा अनुभव नहीं होता। यदि अवान्तरसे विक्षेप अनुभव हो तो फिर लीलाका स्वारस्य ही न रहे। अतः पूर्ण-पूर्णतर आनन्दानुभव करते वे सभी पुनः रासस्थलीकी ओर हँसते-खिलते बढ़ चलते हैं।।।७७१।।

अब शुभ्र चाँदनी मैं उनका धीरे-धीरे चलना, प्रियतम !
सरिताका नीर गुल्फपरिमित होकर पथ दे देना, प्रियतम!
हँसते-हँसते दोनोंका फिर उस पार उतर जाना, प्रियतम!
कहने जाकर यह खो दूँगी इसकी सुन्दरताको, प्रियतम ॥७७२॥

अब शुभ्र चाँदनीमें गौर-नील दम्पतिका धीरे-धीरे चलना, कलिन्दनन्दिनीका जल गुल्फपरिमित होकर उन्हें पथ दे देना, दोनोंका ही हँसते-हँसते उस पार चले जाना, इसका विस्तृत विवरण देने जाकर मैं इसकी सुन्दरताको भी खो दूँगी -ऐसा अद्भुत है यह !।।७७२।।

अब शुभ्र चाँदनीमें उनका धीरे-धीरे चलना, प्रियतम!

चन्द्रमाको जिस नीलघनने कुछ काल आवृत किया था, वह चन्द्रपथसे सुदूर उत्तर दिशाकी ओर बढ़ जाता है। त्रिविध पवन दक्षिणसे उत्तरकी ओर प्रवाहित हो रहा है। प्रिया पुनः खिली हुई चन्द्रिकामें दृग्पथसे विलुप्त नहीं हो जाय, इस आशङ्कासे प्रियतम नीलमणि उसे अपने ह्रदयसे सटाये चल रहे हैं। खोयी अनमोल निधि पुनः पाकर जैसे लोभी व्यक्ति अत्यंत जागरूक एवं सावधान हो उठता है, ऐसी ही दशा प्रियतम प्राणसुन्दर नीलमणिकी है। उन्होंने अपना उपरैना वस्त्र प्रियाके चतुर्दिक् लपेटकर उसका एक छोर अपने कमरसे कस लिया है। उनका वस्त्र-विरहित सुनील वक्षस्थल प्रिया एवं सखियोंको अत्यंत मनोरम लग रहा है। दक्षिण दिशासे तीव्र गतिसे प्रवाहित होता सुरभित पवनका प्रवाह प्रियतमके कण्ठदेश एवं वक्षस्थलमें सुविराजित वनमालाको इस प्रकार हिला रहा है मानो उसे झूला मानकर झौंटा दे रहा हो। पथके वृक्षोंपर स्थान-स्थानपर मयूरदल विराजित हैं। इन मयूरोंमें से एक मयूर-मयूरीका जोड़ा प्रियतम नीलसुन्दरके मनोज्ञ वक्षस्थलको निरखता हुआ उन्हें चलता-फिरता नवघन मेघ मानकर केहाँ, केहाँ रव

उच्चारण करता उनकी प्रदक्षिणा करने लगता है। प्रिया इन मयूर-दम्पति द्वारा अपने प्रियतमकी प्रदक्षिणा होती देख वृक्षकी फूलोंसे लदी एक शाखाको झुका लेती हैं एवं उस शाखामें से दो-पाँच विकसित सौरभभरे पुष्पोंको तोड़कर इन मयूर-दम्पतिकी कलंगीपर सजा देती हैं। मयूरोंके मस्तककी कलंगीपर सज्जित ये पुष्प प्रिया-प्रियतम एवं सखियों - सभीको इतने सुन्दर लगते हैं कि सभी ताली बजा-बजाकर हँसने लगते हैं। अब तो आर्श्व-पार्श्वके वृक्षोंपर बैठी, प्रिया-प्रियतमकी रूप-छवि निहारती मुग्ध हुई मयूरोंकी टोलियाँ भी आनन्दमें भरी अपने सुनील पंख फैला-फैलाकर प्रिया-प्रियतमको नृत्य दिखानेमें प्रवृत्त हो जाती हैं। अपने प्रियतम नीलसुन्दरको खींचती हुई प्रिया कभी किसी टोली एवं कभी किसी टोलीके पास चली जाती हैं। प्रिया-प्रियतमको अपने पास आया देख मयूरोंका दल आनन्दसे भरकर केका रव करता मत्त होकर झूम-झूमकर अति उत्साहसे नृत्य कर उठता है।

अचानक ही अति उत्साहसे नृत्य करते एक मयूरदम्पतिको अतिशय प्रीतिपूर्वक सहलाती प्रिया कह उठती है - 'मयूरों ! क्या तुम मेरे प्रियतमकी तरह रासनृत्य कर सकते हो ? लजाओ मत, चेष्टा करो।' प्रियाके इतना कहते ही वे मयूर -दम्पति परस्पर ग्रीवा-से-ग्रीवा मिलाकर ललित त्रिभङ्ग मुद्रामें अपने चरणोंको टेढ़ा करके नृत्यमुद्रामें खड़ा हो जाते हैं। उस युगल मयूरदम्पतिको सभी मयूरोंके झुंड गोलाकार घेरकर खड़े हो जाते हैं। मध्यमें स्थित मयूर अब प्रियतमको एवं मयूरी प्रियाको मस्तक झुका-झुकाकर प्रणाम करती है। प्रणाम करते-करते ही मयूर प्रियतम नीलसुन्दरसे ऐसा सङ्केत करते हैं कि प्रियतम हँस पड़ते हैं। वे कहते हैं - 'हाँ, हाँ भाई ! तुम नृत्य प्रारंभ तो करो, मैं वंशी बजाता हूँ।'

प्रियतम नीलसुन्दर मुरली होंठोंपर रखकर तान छेड़ते हैं। तानके चढ़ाव-उतारकी गतिपर मयूरी-मयूरोंका दल पैरोंको ठीक प्रकारसे नचाते हुए मध्य-स्थित मयूर-मयूरीके हाव-भावोंका अनुकरण करता हुआ उनके चतुर्दिक् घूमने लगता है। मध्य-स्थित मयूर एवं मयूरी दोनों अपनी चोंचोंको मिलाकर अपने स्थान-केन्द्रपर ही मुरलीके स्वरों एवं तालके अनुसार थिरकते घूमते हैं। पथ तो पश्चिमसे पूर्वकी ओर है किन्तु मयूर दक्षिणके चाँदनीभरे मैदानमें नृत्य कर रहे हैं। प्रिया-प्रियतम पथमें ही वृक्षोंके तले खड़े-खड़े दक्षिण मुख करके मयूरोंका नृत्य देख रहे हैं, सखियाँ प्रिया-प्रियतमको अर्धचन्द्राकार रूपमें घेरे खड़ी हैं। प्रिया मयूरोंकी अति स्वाभाविक ही की जानेवाली रासानुकृतिको देख-देखकर पुनः खिल-खिलाकर हँस पड़ती हैं। गुणमञ्जरीके पास पुष्पोंसे भरी डलियाँ हैं, उसमेंसे रानी अञ्जलि भर-भरकर इस प्रकार पुष्प मयूरोंपर बिखेरती हैं कि सभी मयूरियों एवं मयूरोंके मस्तककी चन्द्रिकापर एक-एक पुष्प अवश्य अलंकृत होकर अटक जाते हैं। पुष्पोंसे प्रिया द्वारा अपना अभिनंदन हुआ मानकर मयूरोंका दल आनंदमें विह्वल हुआ केकारव करने लगता है। प्रिया एवं सखियाँ पुनः हँसने लगती हैं, समग्र वन आनन्दमें पुलकित हो उठता है।

सखियाँ एवं प्रिया भी मयूरोंके आनन्द-केकारवका अनुभवकर ताली बजा-बजाकर हँसने लगती हैं। समग्र वन आनन्द -कोलाहलमें गूँज उठता है। प्रिया तो आनन्दमें इतनी विह्वल हो उठती हैं कि अपने अङ्गोंमें लिपटे अपने प्रियतमके पीत उपरैनाको झटककर उन्मुक्त हो जाती हैं और उनके चरणोंमें लोटपोट होने लगती हैं। प्रियाके धरापर ही बैठ जानेपर प्रियतम नीलसुन्दर धीरेसे वहीं बैठ जाते हैं किन्तु वे अपना मुरलीवादन स्थगित नहीं करते। इसपर प्रिया दाहिने हाथसे अपने प्राणवल्लभका वाम स्कंध पकड़कर अपने वाम हस्तसे मुरलीको उनके होठोंसे हटा देती है। मुरलीनिनाद स्थगित होते ही, मयूरोंके दल नृत्यँ स्थगित कर देते हैं। श्यामसुन्दर हँसकर प्रियाको कहते हैं — 'प्रिये ! मयूरोंको उनके नृत्यका पुरस्कार तो दो।' प्रिया गुणमञ्जरीको सङ्केत करती हैं। गुणमञ्जरी दक्षिण दिशाकी ओर दौड़ती चली ज़ाती है। मयूरोंका दल अब शान्त खड़ा है। वह कभी अपने पंखोंको फैलाता है, कभी समेटता है एवं पूर्वकी ओर मुख किये पंक्तिमें शान्त स्थित है। गुणमञ्जरीके साथ वृन्दाकी दासियाँ स्वर्णकी अनेक परातोंमें मेवा भरकर लाती हैं। प्रियतमके बाँयी ओर प्रिया खड़ी हैं। प्रियाकी बगलमें गुणमञ्जरी परात लिये खड़ी हो जाती है। प्रियतम

गुणमञ्जरीके हाथसे परात लेकर मयूरोंके सम्मुख रख देते हैं। मयूरोंका एक दल एक परातमें, फिर दूसरा दल दूसरी परातमें, इस प्रकार सभी दल भिन्न-भिन्न परातोंसे सुस्वादु मेवा चुन-चुनकर खाने लगते हैं। वे मेवा खाते-खाते बारबार कृतज्ञतासे प्रिया-प्रियतमकी ओर मुख उठाकर देख लेते हैं। प्रिया एवं प्रियतम दोनों ही मेवा खाते मयूरोंकी ग्रीवा एवं पृष्ठदेशको निकट जाकर अतिशय प्रेमपूर्वक सहलाते हैं। सभी परातें जब मेवासे रिक्त हो जाती हैं एवं मयूर भी पूरे तृप्त दिखने लगते हैं तब गुणमञ्जरी उन्हीं रिक्त परातोंमें जलकी झारीसे जल डालती हैं। मयूर अत्यन्त तृप्तिपूर्वक जल पान करते हैं। अब प्रियतम अपने पीताम्बरसे मयूरोंकी चोंच पौंछते हैं। मयूरोंकी संख्या अनगिनत है, किन्तु सभी मयूरोंको यही अनुभव होता है कि प्रियतम नीलसुन्दर एवं प्रिया सर्वप्रथम मेरे ही सम्मुख आयी हैं एवं उन्होंने अपने पीत एवं नील आँचलसे मेरा मुख पौंछा है।

मयूरोंको पूर्णतया खिला-पिलाकर तृप्तकरके प्रिया-प्रियतम एवं सखियोंकी टोली पूर्वकी ओर जा रहे पथसे पुनः रासवेदीकी ओर बढ़ने लगती है। प्रिया प्रियतमके वामाङ्गसे सटी हुई हैं। जिस समय ऊँचे-ऊँचे वृक्षोंकी फैली टहनियोंके नीचेसे प्रिया-प्रियतम निकलते हैं, वृक्ष उनपर अपने लता-जालोंमें विजड़ित विकसित पुष्प गिराते हैं। भौंरे गुन-गुन करते हुए चारों ओर मँडरा रहे हैं। इस प्रकार प्रेममें विभोर पुष्पोंके उपहार ग्रहण करते हुए दोनों प्रिया-प्रियतम यमुनाके तटपर पहुँच जाते हैं।

सरिताका नीर गुल्फ-परिमित होकर पथ दे देना प्रियतम!

प्रिया-प्रियतम चन्द्रमाकी शुभ्र चाँदनीमें यमुना-पुलिनपर खड़े हो जाते हैं। यहाँ यमुनाका प्रवाह पुलिनको संस्पर्श करता प्रवाहित हो रहा है। शुभ्र चाँदनीमें पुलिनकी बालुका अतिशय चमचम कर रही है। श्रीयमुनाके जलको संस्पर्श करता शीतल पवन मंद-मंद प्रवाहित हो रहा है। पवन वृन्दाकाननके सुरम्य पुष्पोंकी सुरभिसे सुगन्धित तो था ही, प्रिया-प्रियतमकी अङ्ग-गन्धसे युक्त होकर तो यह अनन्त गुना सुगन्धित हो उठता है।

वैसे महारासके लिये यमुना पारकर उस पार पहुँचनेका लक्ष्य निर्धारित है, किन्तु यमुनाका तेज प्रवाह एवं जलकी गंभीरताको देखते हुए प्रियतम नीलसुन्दर एवं सखियाँ यमुना संतरण करनेका साहस नहीं कर रही हैं।

प्रियतम नीलसुन्दरने स्वर्ण तारोंसे खचित अपने उपरैना वस्त्रको कमरमें कस लिया है। इससे उनका कमरके ऊपरका भाग पूर्णतः खुला हुआ है। उनके एक हाथमें वंशी है। अतिशय मतवाली भङ्गिमासे वे यमुनाकी थाह लेने किनारे-किनारे चलने लगते हैं। वे मंद-मंद मुस्कुरा रहे हैं। प्रिया-प्रियतम नीलसुन्दरके पास ही उनसे सटी यमुनाप्रवाहके किञ्चित् शिथिल होनेकी प्रतीक्षा कर रही हैं। कुछ कालतक प्रतीक्षा करनेके उपरान्त भी जब यमुनाका वेग कम नहीं होता तो रानी झुककर अपनी अञ्जलिमें थोड़ा यमुनाजल भर लेती हैं तथा एक श्लोक पढ़कर उस जलको पुनः यमुनामें विसर्जित कर देती हैं। रानीने जो श्लोक पढ़ा है, उसका भावार्थ यह है कि 'आज रासयज्ञकी निर्विघ्न सम्पन्नताके लिये हे यमुना महारानी! आप हम सभीको सहयोग करें एवं राह प्रदान करें।' बस, श्रीराधारानीके द्वारा प्रार्थनामय मंत्रपूत जलके यमुनामें विसर्जन होते ही एक चमत्कार घटित होता है। यमुनाका तरङ्गें लेता, उफनता जल शांत-स्थिर होकर इतना नीचे चला जाता है, मानो भूमिमें विलीन ही हो उठा हो। प्रिया-प्रियतमके गुल्फ-परिमित जल होनेतक यमुना घटती जाती है। प्रियतम नीलसुन्दर तो यमुनाजलका घटना देख ताली बजाकर हँसने लगते हैं। अब तो सभी सखियाँ एवं प्रियतम नीलसुन्दर यमुनामें पैदल चलते उस पार पहुँचनेको अपने वस्त्र घुटनोंतक ऊँचे करके जलमें प्रवेश कर जाते हैं। प्रिया अपने प्रियतमके पीछे-पीछे चल रही हैं। प्रियतम नीलसुन्दर कुछ ठहरकर प्रियाको अपनी बगलमें लेकर उनके दाहिने कंधेपर हाथ रखकर तब यमुना पार करने लगते हैं।

रासस्थलकी स्वर्णिम वेदी, स्वर्णिम वट मञ्च बड़ा, प्रियतम!
स्वर्णिम दण्डों से जुड़ी हुई स्वर्णिम बल्लरियाँ वे, प्रियतम!

स्वर्णिम वितान वह फूलोंका स्वर्णिम खगकी श्रेणी, प्रियतम!
ये बरबस साँवर बालाको आकर्षित कर लेते, प्रियतम ॥७७३॥

आगे रासस्थलकी स्वर्णिम वेदी, स्वर्णिम वह विशाल मञ्च, स्वर्णिम दण्डोंसे जुड़ी हुई वे स्वर्णिम वल्लरियाँ, वह पुष्पोंसे निर्मित स्वर्णिम वितान, स्वर्णिम विहङ्गोंकी श्रेणी- यह सब गौर-नीलदम्पतिको अपनी ओर बरबस आकर्षित कर लेते !।।७७३।।

रासस्थलकी स्वर्णिम वेदी, स्वर्णिम वह मञ्च बड़ा, प्रियतम !

यमुना पार करके सभी सखीमंडली जब यमुनाके सैकततटपर पहुँचती है तो उन्हें दूरसे रासवेदी दिखने लगती है। यहाँसे रासवेदी ऐसी दिखती है मानो यमुनाके प्रवाहमें कोई कमलका वन हो एवं उसपर स्वाभाविक ही अत्यंत सुन्दर कलात्मक कमलका सिंहासन बन गया हो। यमुनापुलिनपर त्रिविध शीतल, मंद, सुगन्धित वायुके झौंके आ रहे हैं। इससे प्रिया एवं सखियोंके चम्पई वस्त्र उड़-उड़कर उनके परम सुशोभन अङ्गोंकी झलक प्रियतम नीलसुन्दरको हो रही है। रासवेदीसे लगभग चालीस हाथ दक्षिणकी ओर एवं बीस हाथ उत्तरकी ओर भी दोनों ओरसे यमुनाकी धारा प्रवाहित हो रही है। दोनों धाराओंसे वेदीकी तरफ जानेके लिए वेदीसे सटाकर तीन हाथ चौड़ा पथ बनाया गया है। पथके दोनों ओर गमलोंमें रजनीगन्धाके वृक्ष लगे हैं।

वेदीके पश्चिमी किनारेपर ठीक मध्यमें स्थलसे आठ हाथ ऊँचाईपर पुष्पोंका एक हंसासन बना हुआ है। हंसासनपर चढ़नेकी जो सीढ़ियाँ हैं, उन सीढ़ियों सहित हंसासनको चारों ओरसे श्वेत कमलोंसे खचित कर दिया गया है। उसके चारों ओरके एक-एक हाथके स्थानको कमलके पत्रोंसे एवं अन्य वृक्षोंकी सुकोमलतम पत्तियोंसे सजा दिया गया है। हंसासन एवं सीढ़ियोंके चारों ओर नीले रङ्गका रेशमी वस्त्र अत्यंत कलात्मकतासे विजड़ित है एवं उसपर मणियोंका प्रकाश एवं चन्द्रमाकी शुभ्र किरणोंके पड़नेसे ही सखियोंको दूरसे यमुनाके प्रवाहमें पद्मवनकी भ्रांति होती है। उन्हें एक विलक्षण मनोरम दृश्य दिख रहा है।

देखनेपर ऐसा ही लगता है मानो वेदी स्वर्ण धातुकी बनायी गयी है। किन्तु यह अप्राकृत राज्यकी धातु होनेसे इसमें पीत चन्दनकाष्ठका भी भ्रम हो जाता है। स्वर्ण धातुमें किसी प्रकारकी सुगन्धि नहीं होती, किन्तु वेदी जिस धातुसे निर्मित है उसमेंसे विलक्षण सौरभ प्रसरित हो रही है। वेदीकी धातुकी पट्टी एक हाथ चौड़ी है, जिसे जोड़-जोड़कर गोलाकार विस्तृत वेदी निर्मित है। वेदीका व्यास लगभग सौ गज है। मध्य भागमें बालू भरकर गोलाकार स्थलको समतल कर दिया गया है। इस रेतीले भागपर पीतवर्णकी अतिशय सुन्दर रेशमी कालीन बिछी है। स्वर्णवेदीके चतुर्दिक् दो-दो हाथकी दूरीपर उसी धातुके, जिसकी वेदी बनी है, विशाल आलवाल हैं। इन आलवालोंके भीतर दो-दो हाथ उन्नत वृक्ष लगे हैं। ये वृक्ष हरे-भरे हैं एवं ये हरी लताओंसे पूरे अच्छादित हैं। इन लताओंमें कुन्दके समान पीले वर्णके पुष्प सुविकसित हैं। ये वृक्ष पुष्पोंसे इस प्रकार घने समाच्छादित हैं जिससे यही अनुमान होता है कि ये पौधे पुष्पमय ही हों। इन कुन्दपुष्पोंकी सौरभ भी विलक्षण है। यह सौरभ समग्र पुलिनको ही अतिशय सुवासित कर रही है। इन स्वर्णिम आलवालोंकी एक कतारके पश्चात् दो हाथ छोड़कर एक स्वर्णिम आलवालोंकी और कतार है, इनमें एक-एक हाथ ऊँचे बहुत ही सघन एवं महीन पंक्तियोंके कोई वृक्ष-विशेष लगे हैं। इनमें गुलाबके समान वर्ण एवं आकारके छोटे-छोटे पुष्प विकसित हैं, इन वृक्षोंमें एक विलक्षणता यह है कि इनके पुष्पोंका सौरभ तो अद्वितीय है ही, इनकी पत्तियोंसे भी अतिशय भीनी मधुर सुगन्धि प्रसरित हो रही है।

वेदीके किनारे-किनारे तीन-तीन हाथके अन्तरपर स्वर्णके स्तम्भ वेदीसे सटे हुए हैं और लगभग सोलह हाथ उन्नत हैं। ये सभी उसी धातुसे निर्मित हैं, जिससे वेदी एवं गमले निर्मित हैं। इन्हें कमलके पुष्पोंकी मालाओंसे इस प्रकार आच्छादित किया हुआ है जिससे ऐसा प्रतीत होता है मानो कमलके पुष्पोंके ही स्तम्भ हों। इन सभीको स्वर्णकी

पतली-पतली छड़ियोंसे परस्पर जोड़ दिया गया है। इन छड़ियोंमें भी कमलकी मालाएँ लपेटी हुई हैं। इन छड़ियोंमें तीन हाथके अन्तरपर मध्यमें एक-एक स्वर्णका गमला, जो स्वर्ण-जंजीरोंसे बद्ध है, लटक रहा है। ये गमले भी कमलकी मालाओंसे समाच्छादित हैं। इन गमलोंमें अत्यंत सुमनोहर भिन्न-भिन्न वर्णके छोटे-छोटे पुष्पोंके पौधे लगे हैं। ये पुष्प भी पूरे विकसित हैं। एक स्तम्भको दूसरे स्तम्भसे ऊपरसे जोड़कर कमलके पुष्पोंका ही परम सुमनोहर मेहराब निर्मित है। इस मेहराब एवं स्तम्भोंपर स्थान-स्थानपर अत्यन्त विलक्षण मणियाँ पिरोई हुई हैं। ये मणियाँ भिन्न-भिन्न वर्णकी हैं एवं इनसे ऐसा दिव्य प्रकाश चतुर्दिक् प्रसरित है, जिससे वेदीका कोना-कोना सुप्रकाशित हो रहा है। भिन्न-भिन्न वर्णकी मणियोंसे निकलते भिन्न-भिन्न वर्णके प्रकाशसे वेदी अति विलक्षण रूपसे जगमगा रही है। वेदीसे नीचे उतरनेपर कुंछ विशाल रजनीगन्धाके वृक्ष लगे हैं, इनमें सर्वत्र पुष्पोंके विशाल गुच्छ लटक रहे हैं। यहाँ कमलोंसे गुम्फित मेहराबों एवं वृक्षोंपर फूलोंके गमलोंपर स्वर्णके ही असंख्य कृत्रिम पक्षी आसीन हैं। ये कृत्रिम स्वर्णपक्षी अत्यंत सुमधुर भिन्न-भिन्न प्रकारकी जीवन्त काकली करते हैं। मनुष्यकी वाणी भी हूबहू अनुकृति करके बोलते हैं। कोई पक्षी ललिता, विशाखा आदिकी बोली बोलेगा तो यथार्थमें ऐसा ही अनुभव होगा, मानो ललिता-विशाखा ही बोल रही हैं।

वेदीके मध्यका स्थल रासनृत्यके लिए निर्धारित है। प्रियतम नीलसुन्दर और सखियाँ पूर्वकी ओरसे यमुना पारकर वेदीपर पहुँचती हैं और वेदीकी अपूर्व शोभाको सराहती सिंहासनकी ओर अग्रसर होती हैं। वृन्दासखी इनका आगमन देख प्रियतमके निकट पहुँचनेके पूर्व ही इनके स्वागतार्थ पहुँच जाती हैं। वे प्रिया राधाका हाथ पकड़कर उसे वेदीपर चढ़ाती हैं। विशाखा प्रियतम नीलसुन्दरके दाहिने हाथकी कलाई पकड़कर उन्हें वेदीपर आरूढ़ करती हैं।

रानीका दाहिना हाथ प्रियतम श्यामसुन्दरके बायें स्कंधदेशपर है। वृन्दाको प्रियतम इसी मध्य कुछ सङ्केत करते हैं। वृन्दा रुककर ललिताको पुकारती है। ललिता वहाँ कुछ दूरपर खड़ी मञ्जरियोंको निर्देश दे रही हैं कि कौन किस वाद्य यंत्रको आज बजायेगी एवं कौन कहाँपर खड़ी होगी एवं किस अवसरपर कब, कैसा नृत्य करेगी। जैसे ही वृन्दाकी ध्वनि "ललिता रानी ! प्रियतम तुम्हें बुलाते हैं" – ललिताके कर्णगोचर होती है, वह तुरन्त वहाँ पहुँचती है एवं कहती है – 'क्यों, क्या बात है ?'

प्रियतम ललिताको निर्देश देते हैं कि 'आज विशाखा ही नृत्यके समय उनके दक्षिणमें रहेगी। अब वे किसीके भी प्रस्तावसे कोई फेरबदल नहीं करने वाले हैं।

वेदीके पश्चिमकी ओर रेशमी वस्त्रोंसे निर्मित अत्यंत सुसज्जित एक कुञ्ज है। यह कुञ्ज वृन्दादेवीका कोषागार है। इसमें शीतल जलकी अनेक झारियाँ, गण्डूष करनेके सुन्दर आकारके भाँति-भाँतिके पीकदान, गुलाबपाश, इत्र छिड़कनेकी पिचकारियाँ, छोटी-छोटी इत्र रखनेकी सोनेकी प्यालियाँ, अनेक थालियाँ, गिलासें, असंख्य बरतन हैं। यहींपर सभी प्रकारके अनेक वाद्य हैं। कितनी ही वीणाएँ, कितने ही मृदङ्ग, सारंगियाँ, अनेकों घुँघरू, अनेक प्रकारकी ढपलियाँ, झाँझें, करताल सभी प्रकारके यांत्रिक उपकरण भी हैं, जो प्रिया-प्रियतमका आश्चर्यजनक रूपसे मनोरञ्जन करनेमें सहयोगी होते हैं।

प्रिया-प्रियतम उस हंसासनपर विराजित हो जाते हैं। प्रिया-प्रियतम वृन्दाद्वारा सुनिर्मित यह रासस्थली अत्यधिक मनोरञ्जक अनुभव होती है। प्रतिरात्रि ही रास होता है। प्रतिरात्रि ही वृन्दादेवी रासवेदीकी सज्जा करती है। किन्तु प्रतिरात्रि सज्जामें ऐसा नवीन सौन्दर्य, चातुर्य वृन्दादेवीकी सखियों द्वारा विकास किया जाता है कि प्रिया-प्रियतम चकित होकर वाह-वाह कर बैठते हैं। ७७३

आकर इनको छू-छूकर, वे दोनों खिल पड़ते थे, प्रियतम !
प्रस्तुत सब कुछ करके रखतीं सहचरियाँ पहले से, प्रियतम !
थे स्वयं आप साँवर करते अर्पित तमोल उनको, प्रियतम !
आरम्भ नृत्य फिर हो जाता बालाका, साँवर का, प्रियतम ॥७७४॥

दम्पति इनके समीप आ जाते। इनको छू-छूकर वे दोनों खिल उठते। सहचरियाँ पहलेसे ही सब-कुछ प्रस्तुत करके रखतीं। नीलसुन्दर वहाँ आकर अपने कर-सरोजसे सबको ताम्बूल अर्पित करते और फिर कुछ ही क्षणोंमें गौर-नीलदम्पतिका नृत्य आरम्भ हो जाता।।।७७४।।

आकर, इनको छू-छूकर वे दोनों, खिल पड़ते थे प्रियतम !

ललिता, विशाखा, वृन्दा एवं अन्यान्य मञ्जरियाँ मिलकर प्रिया-प्रियतमकी सेवा प्रारंभ करती हैं। वृन्दादेवीके आदेशसे सखियाँ झारियोंमें सुस्वादु, सुमिष्ट, सुशीतल यमुनाजल प्रिया-प्रियतमको पान कराती हैं। कोई सखी हंसासनकी सीढ़ियोंमें आसीन है, कोई प्रिया-प्रियतमके पार्श्वमें खड़ी है। कोई प्रिया-प्रियतमका चन्द्रानन अतिशय तृष्णापूर्वक पान करने लगती है। यद्यपि हंसासनकी सीढ़ियाँ असंख्य नहीं है और वृन्दाकी सेविकायें, मञ्जरियाँ तो अनगिनत हैं, फिर भी प्रत्येकको यही अनुभव हो रहा है कि प्रिया-प्रियतमकी सेवामें सर्वप्रथम मुझीको प्रमुख अवसर प्राप्त हुआ है।

मधुर जल पीकर एवं ललिता द्वारा मुखमें दिये पानको आधा खाकर आधा प्रियाको देकर नीलसुन्दर सभी सखियोंको पान खिलाने उठ पड़ते हैं। रानी अत्यंत प्यारसे वृन्दाको अपने पास बुलाकर उसे आदेश देती हैं कि "मेरे प्राणपति आज अपने हाथोंसे तुम्हारी दासियोंको पान खिलाना चाहते हैं अतः तुम उन सभीको मेरी ओरसे अनुरोध कर दो कि मेरी प्रार्थना मानकर मेरे प्रियतमके हाथसे पानका बीड़ा खानेमें कोई सङ्कोच नहीं करें।'

रानीकी बात सुनकर वृन्दा मुस्कुरा देती है तथा कहती है – 'अच्छी बात है।'

वृन्दादेवी पुनः दासियोंको सम्बोधितकर कहती है– 'बहिनों! रानीकी आज्ञा है, इसलिए सङ्कोच छोड़कर हम सभीको प्रियतम नीलमणि नन्दतनयके हाथसे पानका बीड़ा खा ही लेना है।'

वृन्दाके ऐसा कहते ही प्रिया-प्रियतम दोनों पहले वृन्दाकी दासियोंको फिर सभी मञ्जरियोंको पानका बीड़ा खिलाते हैं। सभीको यही अनुभव होता है कि सर्वप्रथम प्रियतम उसके ही पास पान लेकर आते हैं। प्रियतम जैसे ही पानका बीड़ा सखीके मुखकी ओर बढ़ाते हैं, सखी वह पान उनके हाथसे छीनकर उनके ही मुखमें भर देती है, तत्पश्चात् आधा बीड़ा उनके मुखसे छीनकर प्रियाके मुखमें दे देती है, व स्वयं खाती है।

वेदीके मेहराबोंपर मणिस्तम्भों एवं पुष्पवृक्षोंकी टहनियोंपर बैठे जो यंत्रमय अप्राकृत जीवन्त भिन्न-भिन्न जातिके असंख्य सुन्दर पक्षी कलरव कर रहे हैं, प्रिया-प्रियतम सभीको मेवा एवं पानका बीड़ा खिलाते हैं। यंत्रमय पक्षियोंमेंसे कुछ पक्षी जब ठीक प्रियाकी वाणी अथवा प्रियतमकी वाणी, किंवा ललितादि सखियोंकी वाणीकी सही-सही अनुकृति करके प्रिया-प्रियतमको श्रवणगोचर कराते हैं, तब तो प्रिया-प्रियतम आश्चर्यसे हँस-हँसकर लोट-पोट हो जाते हैं। सखियाँ भी खिल-खिलाकर मुस्करा उठती हैं। श्रीयमुनाजीकी धारापर जलजातीय पक्षियों एवं हंसोंका समूह तैरता हुआ अपनी सुमधुर काकलीसे वन एवं पुलिनको निनादित कर रहा है। पुलिनकी बालुकापर मयूरों एवं मयूरियोंका दल विचरण कर रहा है। प्रियतम प्रियाके साथ-साथ इनके पास जाकर इनकी पीठ सहलाते हुए जब इनको अपना अधखाया पानका बीड़ा खिलाते हैं, तब तो इनकी प्रसन्नताका ठिकाना ही नहीं रहता। इसी मध्य इन सभी पक्षियोंकी प्रतिनिधि बनी वृन्दादेवी प्रिया-प्रियतमके सम्मुख उपस्थित हो जाती हैं। वे हँसती हुई निवेदन करती हैं – 'हे हमारी प्राणेश्वरी सखी राधा एवं प्रियतम नीलसुन्दर! इस मेरे वनके समस्त चर-अचर प्राणियोंकी ओरसे प्रतिनिधिके रूपमें मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ कि अपनी सखियोंके सहित महारास-नृत्य करके आप हम लोगोंके नयनोंको शीतल करो। प्यारे ! अनादि कालसे मैं आपका यह रासनृत्य देख रही हूँ किन्तु नित्य प्रतिरात्रि यह नव-नव नूतन रसकी वर्षा करता है। मेरी प्रिय सहेलियाँ अत्यंत उत्साहसे प्रतिदिवस ही रास सजाती हैं, आज भी उनकी सेवाको आप युगल चरण-स्पर्शदान करके सफल कर दें।

प्रियतम नीलसुन्दर अत्यंत प्यारभरी दृष्टि वृन्दा एवं उसकी सखियोंपर डालते हैं। वृन्दाकी सभी सखियाँ उस दृष्टि मात्रसे प्रेमानन्दमें बेसुध होने लगती हैं। प्रिया निर्निमेष नयनोंसे प्रियतम नीलसुन्दरके मुखारविन्दकी शोभा निहार रही हैं। श्रीश्यामसुन्दर प्रियाकी ओर हँसते हुए देखकर रासमंडलमें चलनेकी अनुमति माँगते हैं। प्रिया अपने प्रियतमका कंधा पकड़कर खड़ी हो जाती हैं। उन्हें साथ लेकर अत्यंत मदभरी चालसे चलते हुए प्रियतम वेदीके मध्यमें बालुकावाले भागमें खड़े हो जाते हैं।

प्रिया राधा अपने प्रियतमके बायीं ओर खड़ी होती हैं। विशाखा उनके दाहिनी ओर, ललिता राधाके बायीं ओर खड़ी हो जाती है। चित्रा विशाखाके वामभागमें खड़ी हो जाती हैं। इन पाँचोंका मुख दक्षिणकी ओर है। इनको मध्यमें करके शेष सखियों एवं मञ्जरियोंकी मण्डली गोलाकाररूपमें इनके चतुर्दिक् खड़ी हो जाती है। उनके इस प्रकार खड़े हो जानेपर चारों दिशाओंमें अर्धचन्द्राकाररूपमें वृन्दाद्वारा निर्धारित वाद्यवादक मञ्जरियोंका एक-एक दल अपने-अपने वाद्य-यंत्रोंको लेकर खड़ा हो जाता है। ये सभी मञ्जरियाँ अपने-अपने वाद्योंकी वादनकलामें पूर्ण पारङ्गत हैं। नृत्यमण्डलको छोड़कर वेदीका शेष अंश दर्शक सखियों, मञ्जरियोंसे ठसाठस भर जाता है। सभी सखियाँ चम्पई वस्त्रालङ्कार पहने हुई हैं। सभीके मस्तकपर एक-से-बढ़कर एक अनमोल चन्द्रिकाएँ शोभा पा रही हैं। मणियोंके लाल-पीले प्रकाशसे ही ये चिह्नित हो रही हैं, अन्यथा तो ये सभी चन्द्रमुखियाँ चन्द्रमाके शुभ प्रकाशमें एकमेक हो उठतीं। रासमण्डलकी चमक-दमक एवं शोभा अवर्णनीय है। श्रीप्रिया-प्रियतम, सखियों, मञ्जरियोंके अङ्गोंसे ज्योति एवं सुगन्धिके इस प्रकार झोंके उठ रहे है, उनके रूप-सौन्दर्यकी एकसे बढ़कर एक ऊँची तरङ्गोंके उठनेसे वातावरण परिपूरित हो रहा है।

प्रियतम नीलसुन्दरके दाहिने हाथमें मुरली है। बायें हाथसे वे प्रियाके दाहिने कंधेको पकड़े हुए हैं। सर्वत्र आनन्द एवं अनुरागकी धारा बह रही है। सर्वप्रथम प्रियतम नीलसुन्दर मुरलीमें स्वर भरते है। उनके सुर भरते ही वाद्ययंत्र बजानेवाली मञ्जरियोंके चारों दल कभी किसी वाद्यसे मुरलीमें छेड़ी हुई रागिनीके स्थायी एवं आलापपर अपनी कला दिखाना प्रारंभ कर देती हैं। पुलिनका शान्त एवं एकान्त परम रम्य वातावरण वाद्ययंत्रोंकी मधुरिमासे सुसज्जित हो उठता है।

प्रियतम नीलसुन्दर मुरली बजाते-बजाते कुछ क्षणोंके लिए रुक जाते हैं। मुरलीके स्वर जैसे ही थमते हैं, मजरियों द्वारा वाद्य-सङ्गम भी रुक जाता है। इन दो-तीन क्षणोंमें संपूर्ण पुलिनस्थल ही अत्यधिक शांत, निस्पन्द हो उठता है। अब प्रियतम सर्वप्रथम अपने बँधे घुँघरूओंमेंसे अत्यंत मन्द मात्र एक घुँघरूकी झङ्कार करते हैं। इस झङ्कारके होते ही प्रियाके दो, फिर विशाखाके तीन घुँघरुओंके अत्यंत मधुर ठुमके लग जाते हैं। अब तो सभी मञ्जरियाँ, सखियाँ मिलकर एक साथ ही अपने-अपने पैरोंको इस चतुराईसे किञ्चित् हिलाती हैं कि सभीके घुँघरू एक स्वरमें बज उठते हैं। इस समवेत घुँघरुओंका अनिर्वचनीय मधुरिम स्वर समस्त पुलिनको रसमें डुबोता हुआ सर्वत्र बिखर जाता है। यह ध्वनि कुछ समयतक अनवरत गूँजती रहती है। ऐसा प्रतीत होता हैं, मानो यमुनाके प्रवाहके अंतरालमें बालुकाके कणों-कणोंके हृदयमें, पुष्पवृक्षोंके अंतरतममें सर्वत्र घुँघरू निनादित हो उठे हैं। घुँघरूकी ध्वनि ज्योंही रुकती है दूसरे क्षण पुनः मुरली एवं वाद्ययंत्रोंका सुमधुरतम स्वर गूँजने लगता है। इस प्रकार कभी घुँघरू, कभी मुरली एवं कभी वाद्ययंत्रोंका परस्पर संयुक्त प्रयास इस प्रकार मधुरताका साम्राज्य स्थापित कर देते हैं कि उसकी सरसता मात्र अनुभवगम्य ही हो सकती है, कथनका विषय ही नहीं है।

अब प्रिया अपने बायें हाथको उठाकर सभी मञ्जरियों एवं प्रियतमको भी स्वरोंके आरोह-अवरोहका निर्देश देने लगती है। ऐसा अनुभव होता है मानो प्रियाकी बायें हाथकी अंगुलियोंमें अवश्य कोई ऐसी छिपी हुई शक्ति है, जो उनके हिलने मात्रसे प्रियतमकी मुरली एवं सभी सखियोंका वाद्यवादन यथेच्छ सञ्चालित करनेमें लगी है। प्रियाके बायें हाथकी अँगुलीका सञ्चालन ही सबके स्वरोंको ऊँचा-नीचा, लम्बा-लघु करनेमें हेतु हो रहा है। जब प्रियतम नीलमणिकी मुरलीके स्वर भी प्रियाकी अँगुलीके सङ्केतसे नियंत्रित होते उन्हें अनुभवमें आते है तो वे उसे अपने होंठोंसे पृथक्

करनेकी चेष्टा करते हैं, परन्तु मुरली अब उनके वशमें ही नहीं। प्रियाके सङ्केत नहीं मिलनेसे वह प्रियतमके होंठोंपर विजड़ित हो जाती है। अब तो प्रियतमके मुखारविन्दपर मन्द-मन्द मुस्कान छा जाती है। प्रियतम अब अपना बायाँ हाथ प्रियाकी दाहिनी बाँहके भीतरसे ले जाकर प्रियाके दाहिने हाथकी सभी अँगुलियोंको इस उद्देश्यसे पकड़ लेते हैं कि जिससे मुरलीवादन उनकी स्वयंकी इच्छासे हो, उसपर प्रियाका सङ्केत एवं सङ्कल्प हावी नहीं हो।

अब जब प्रियतम प्रियाकी दाहिने हाथकी अँगुलियाँ अपने हाथमें भर लेते हैं तो प्रिया अपने नेत्रोंके कोयोंसे उनके नेत्रोंकी पुतलियोंको दायें-बायें, ऊपर-नीचे नचाकर ऐसा हाव-भाव प्रदर्शित करती हैं कि सखियाँ एवं मञ्जरियोंकी आँखें प्रेमसे झूमने लगती हैं। प्रियाके नेत्र-नर्त्तन मात्रसे सभी वाद्य एवं प्रियतमकी मुरलीकी स्वरलहरी इस माधुर्यसे अनुरञ्जित होकर बजती है। मात्र श्रोता-मण्डली ही नहीं, सर्ववादन-निष्णात प्रियतम नीलसुन्दर एवं अन्य वाद्य बजानेवाली मञ्जरियाँ भी बेसुध हो उठती हैं।

अब प्रियाका सङ्केत होता है कि मञ्जरियोंके चार दल मधुर कक्षसे गायन भी प्रारम्भ करें। बस, सङ्केत मिलते ही कान्हरा राग प्रारंभ हो जाता है -

बन्यौ मोर मुकुट नटवरवपु श्यामसुन्दर कमलनयन
बाँकी भौहें टेढ़ी पाग घुँघरवारी अलकैं।।बन्यौ।।
पीत वसन मोतीमाल, हिये पदिक, कण्ठ लाल,
हँसनि बोलनि गावनि गंडन श्रवण कुण्डल झलकैं।।बन्यौ।।
कर पद भूषण अनूप, कोटि मदन मोहन रूप
अद्भुत वदन चन्द्र देख गोपी भूली पलकैं।।बन्यौ।।
कहैं भगवान हित राम राम प्रभु ठाढे (रासमण्डल मधि)
राधासौं बाँह जोटी कियें हियें प्रेम ललकैं।।बन्यौ।।

मुरलीवादनके मञ्जरियों द्वारा गाये गीतसे सभी वातावरणमें प्रिया-प्रियतम की रास-मध्य छवि भर जाती है। दर्शकमण्डली जिधर दृष्टि उठाती है, वहीं मोरमुकुट पीताम्बरधारी टेढी पाग धारणकर अलकावली बिख़राते प्रियतम अपनी प्रियासे बाँह जोड़े प्रेम पुलकित खड़े दृष्टिगोचर होते हैं।

गायन स्थगित होनेपर एक क्षण पूर्ण नीरवता छा जाती है। पुनः तुरन्त ही प्रिया अपने घुँघरूकी झंनकार कर देती है। प्रियाके घुँघरू बजानेसे सभी सखियाँ इस सङ्केतको अवगत कर लेती हैं कि अब रासनृत्य प्रारंभ हो।

बस, विश्वविमोहन नृत्य प्रारंभ हो जाता है। प्रियाके घुँधरू बजानेका सङ्केत अवगत करते ही सखियाँ जो घेरकर गोलाकार खड़ी थीं, अपने पैरोंसे ठुमकार देती चतुर्दिक् घूमने लगती हैं। ललिता, विशाखा एवं चित्रादि भी प्रिया-प्रियतमके सहित अपने अपने स्थानपर खड़े रहकर नृत्य करने लगती हैं।

प्रिया-प्रियतम जहाँ दक्षिण मुख खड़े है, वहीं नृत्य करनेवाली सखियाँ पूर्वसे पश्चिमकी ओर घूम रही हैं।

इसी समय एक विलक्षण चमत्कार होता है। प्रियतम नीलसुन्दर प्रत्येक सखीको अपनी बगलमें ही उसके साथ नृत्यावेशमें खड़े दिखने लगते हैं। प्रत्येक सखी यही अनुभव करती है कि मेरा हाथ पकड़कर प्रियतम नृत्य कर रहे हैं। श्रीप्रिया एवं सखियाँ स्वरके क्षणिक लय और सामयिक परिवर्तनके अवसरपर 'तत् थेई थेई। तत् थेई थेई' आदि शब्दोंका इतने मधुरतम स्वरमें उच्चारण करती हैं कि समस्त दर्शक सखीमण्डली आनन्दमें विभोर हो उठती है। सखियाँ अपने-अपने उमड़ते भावके वेगको सँभाल नहीं पातीं और तद्भावाविष्ट होकर थेई, थेई उच्च स्वरमें बोल उठती हैं। अब नृत्य तीव्र गति ले उठता है। मञ्जरियोंके चारों दल नृत्यकी लय-में-लय मिलाकर मधुर कण्ठसे गायन करने लगते हैं। गीतके शब्द हैं –

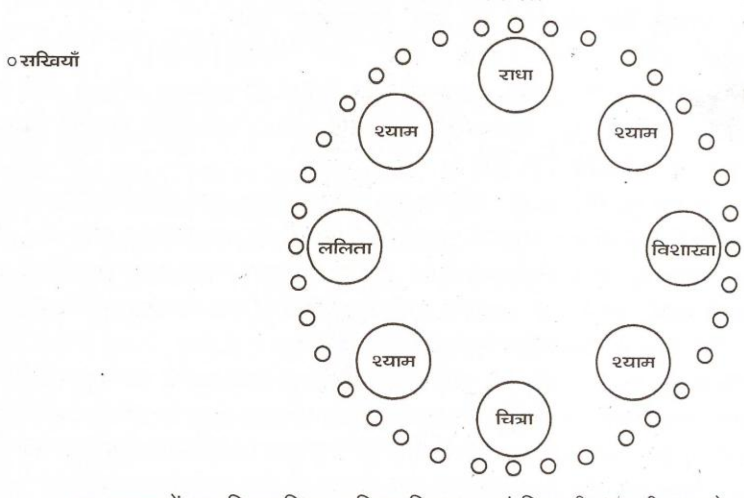
देखो, देखो री नागर नट निर्त्तत कालिन्दी तट
गोपिनके मध्य राजैं मुकुट लटक।।देखो, देखो।।
काछिनी किंकनी कटि पीताम्बरकी चटक
कुण्डल किरन रवि रथकी अटक।।देखो, देखो।।
तत् थेई तत् थेई, सबद सकल घट
उरप तिरप गति पगकी पटक।।देखो, देखो।।
रासमें श्री राधे राधे मुरलीमें एक रट
नन्ददास गावैं तहाँ निपट निकट।।देखो, देखो।।

नृत्यकी गति और तीव्र हो उठती है। मञ्जरियोंका दल इस पदको नृत्यकी लयमें स्वर-में-स्वर मिलाकर गाता है। अब सखियाँ परस्पर प्रियतमके हाथ छोड़कर अपने-अपने दोनों हाथोंसे भाव बताना प्रारंभ करते हैं। समस्त सखियोंके अङ्ग-अङ्ग नृत्यके साथ विचित्र-विचित्र भङ्गिमाका प्रकाश करते हुए सबको आश्चर्यमें डाल रहे हैं। नृत्यके समय अङ्गोंको झुकाने, मोड़ने आदिके ढंगको देखकर यही अनुभव होता है, मानो इन सखियोंकी अस्थियाँ किसी अतिशय लचीले अटूट पदार्थकी बनी हैं जिसे इच्छानुसार जहाँ, जब, जिधर, जिस रूपमें मोड़ा जा सके, जो टूटना तो जाने ही नहीं, एवं मुड़कर पुनः यथास्थान सही स्थितिमें स्थिर हो जाये।

नृत्य करते-करते सखियोंका अञ्चल बार-बार अङ्गोंसे हट जाता है। प्रियतम उनके अञ्चल एवं वस्त्रोंको यथारूप यथास्थान कर देते हैं।

अब नृत्यके आवेशमें प्रिया राधा, ललिता एवं विशाखा भी बेसुध होने लगती हैं। अब विलक्षण सुन्दर मण्डल बन रहे हैं। प्रथम मण्डल इस प्रकार बनता है –

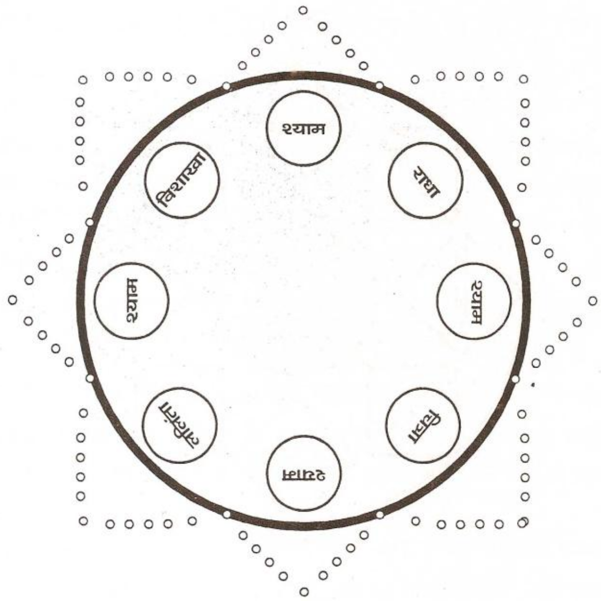
नकशा



इस मण्डलमें मध्यस्थित प्रिया, ललिता विशाखा एवं चित्राकी मण्डली नृत्यके आवेशमें अपने ही स्थानपर स्थिर घूम रही है किन्तु बाहरकी मण्डली उनके चतुर्दिक् उनकी पूर्वसे पश्चिमकी ओर परिक्रमा कर रही है।

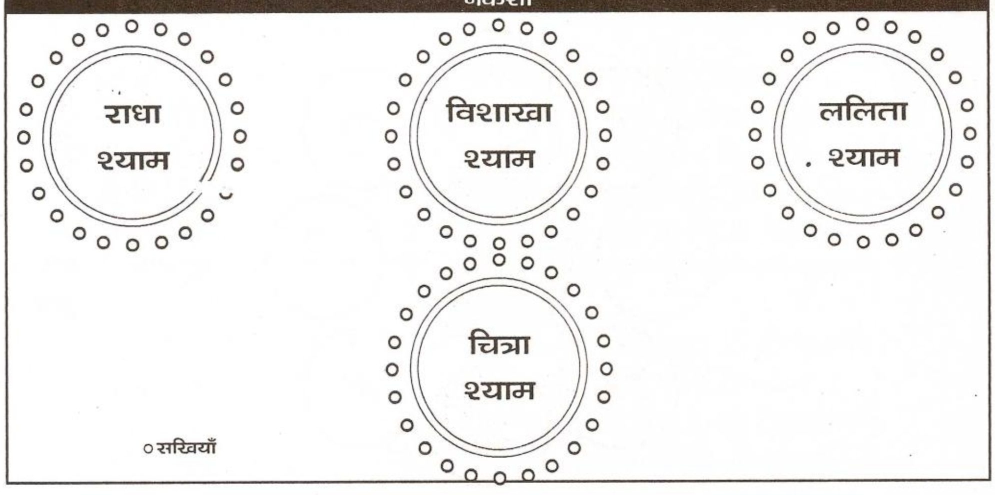
अब दूसरा मण्डल बनता है। उसका आकार इस प्रकार बनता है कि भीतर तो विशाखा-प्रियतम, प्रिया-प्रियतम, ललिता-प्रियतम एवं चित्रा-प्रियतम अपने ही स्थानोंपर रहते है किन्तु उनके चतुर्दिक् परिक्रमा करनेँवाली गोपियाँ कमलपत्रवत् आठ आकार बनाकर नृत्य करती हैं।

नकशा



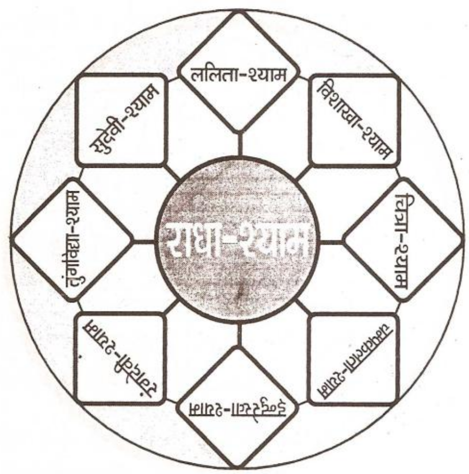
इसके पश्चात् मण्डली तीसरा आकार बनाती है।

नकशा



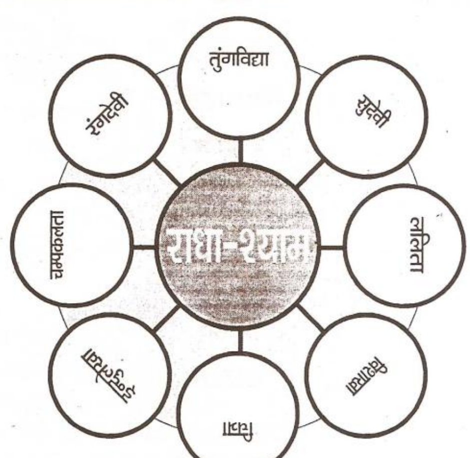
अब आठों सखियोंके चारों ओर अष्टकोण आकार बनाकर सखियाँ नृत्य करने लगती हैं।

नकशा



कुछ देर पश्चात् इस प्रकार आकृति बनाकर नृत्य प्रारंभ होता है।

नकशा



कबतक चलता वह नृत्य, अहो! कैसे बतलाऊँ मैं, प्रियतम।
आँखों में है अबतक पूरित हल्लीसक-मुद्राएँ, प्रियतम!
शशधर है ठीक मध्य नभ में वैसे ही गति भूले, प्रियतम!
वे मुग्ध देखते हैं साँवर, बाला है नाच रही, प्रियतम ॥७७५॥

यह नृत्य कबतक चलता अहो! मैं कैसे बतलाऊँ? अभीतक आँखोंमें हल्लीसक मुद्राएँ ज्यों-की-त्यों परिपूरित हैं। निर्मल मध्य नभके बीचमें शशधर गति-भूले वैसे ही अवस्थित हैं। मुग्ध होकर सब देख रहे हैं, सबकी आँखें केन्द्रित हैं - गौर-नीलदम्पतिके मनोहर नृत्यपर। ....।।७७५।।

वैसे ही कटि झुक जाती है बाला की पल-पल में, प्रियतम!
अम्बर वक्षःस्थल का भी वह वैसे ही चञ्चल है, प्रियतम!
वे कुण्डल भी वैसे ही हैं हो रहे चपल दोनों, प्रियतम!
आनन-सरोज पर वैसे ही प्रस्वेदकणावलि है, प्रियतम॥७७६॥

पल-पलमें राधाकिशोरीकी कटि उस भाँति ही झुक जाती है। वक्षस्थलका अम्बर भी वैसे ही चञ्चल हो रहा है। दोनों कर्णकुण्डल भी वैसे ही चञ्चल हो रहे हैं, और आननसरोजपर वैसे ही प्रस्वेदकण झलमल कर रहे हैं।।।७७६।।

गिर रहे फूल वैसे ही हैं झर-झरकर अलकों से, प्रियतम!
साँवर अपने दुकूल में हैं कर रहे चयन उनको, प्रियतम!
वैसे ही नाच-नाच करके साँवर भी बाला की, प्रियतम!
कर रहे सरस अनुमोदन हैं उन नृत्यभङ्गियों का, प्रियतम॥७७७॥

अलकोंसे सुमन झर-झरकर वैसे ही रासस्थलको आभूषित कर रहे हैं। नीलसुन्दर अपने दुकूलमें उन सुमनोंको चयन करते जा रहे हैं। उस भाँति ही नाच-नाचकर साँवर भी बालाकी नृत्यभङ्गिमाका सरस अनुमोदन कर रहे हैं।.... ....।।७७७।।

रसमय तन्त्रों के तार सभी वैसे ही झंकृत हैं, प्रियतम!
वैसे ही नूपुर का रुन-झुन सहयोग दे रहा है, प्रियतम!
वैसे ही तालबन्ध भी है पल-पल नवीन होता, प्रियतम!
वैसे ही बज उठती है वह साँवर की करताली, प्रियतम॥७७८॥

रसमय तन्त्रोंके तार वैसे ही झंकृत हो रहे है। नूपुरका रुनझुन रव वैसे ही सहयोग दे रहा है। तालबंध उस भाँति ही पल-पलमें नवीन होता जा रहा है, और वैसे ही रह-रहकर नीलसुन्दरकी करताली भी बज उठती है। अस्तु ....।।७७८।।

इसपर मैं किंतु सरस झीना आवरण डालकर ही, प्रियतम!
आगे चलती हूँ बाला को, साँवर को ले दृग में, प्रियतम!
उस ओर नृत्य उन दोनों का अविराम चल रहा है, प्रियतम!
वे उधर उसी क्षण हैं निकुञ्जपथ में भी चल पड़ते, प्रियतम॥७७९॥

इसपर मैं एक सरस झीना आवरण डालकर ही आगे चल रही हूँ। साँवरको, राधाकिशोरीको अपनी आँखोंमें लिये हुए ही आगे बढ़ रही हूँ। उस ओर उन दोनोंका नृत्य भी अविराम चल ही रहा है। साथ ही उधर देखो, उसी क्षण वे निकुञ्जपथमें भी अग्रसर हो रहे हैं।।७७९।।

कब तक चलता वह नृत्य अहो! कैसे बतलाऊँ, मैं प्रियतम !

केवल लेखन मात्रके लिए यहाँ पाँच आकार दर्शाये गये हैं। वस्तुतः यह अनादि कालसे होता महारास न जाने किन-किन नर्त्तनशैलियोंमें अपनेको अभिव्यक्त करता है, कुछ भी नहीं कहा जा सकता। इसको इदमित्थं रूपमें समझना ही मूर्खता एवं अविद्याकी पराकाष्ठा है। अनादि कालसे अनन्त कालतक इसमें जो नृत्य एवं सङ्गीतरसका प्रवाह बहता है उसकी छायाके करोड़वें अंश मात्रको लेकर त्रिभुवनमें तुम्बुरू आदि देवगन्धर्व सङ्गीत-रसिक कहलाते हैं। वैसे लीलाप्रवाहके लिए समयावधि तो निश्चित करनी ही होती है।

अब रात्रिका समय अढाई प्रहरसे अधिक हो जाता है। किन्तु काल-प्रवाहकी किसीको भी सुधि नहीं है। प्रिया राधा एवं सखियोंकी वेणियाँ खुल गयी हैं। उनमेंसे पुष्प झर-झरकर भूमिपर निपतित हो रहे हैं। मुखारविन्दोंपरसे प्रस्वेदकण मोतीकी तरह झलमल कर रहे हैं। प्रियतम बार-बार प्रिया एवं सखियोंके प्रस्वेदकण अपने उत्तरीय वस्त्रसे पौंछते हैं। इस स्वेदराशिसे प्रियतमका उत्तरीय वस्त्र इतना सुवासित हो उठता है, मानो वह अनमोल इत्रसे सिक्त हो उठा हो। फिर भी प्रियाकी नृत्यजन्य हल्लीसक मुद्राएँ रुकती ही नहीं। प्रियाके नृत्यको देखते-देखते निशानाथ अपना चलना भूलकर शांत स्थिर हो उठते हैं। वे इच्छा करके भी एक कदम आगे नहीं रख नहीं पाते। विश्वनाथको प्रिया-प्रियतमका ऐसा अपूर्व नृत्यदर्शन भला कहाँ देखनेको मिलता। वे अपने भाग्यको सराहते धन्य-धन्य उच्चारण करते हुए भावाभिभूत स्थिर, जड़िमा भावग्रस्त गतिरहित हो जाते हैं। ओह! वे स्थिरनेत्र निहारते ही रहते हैं - मानो भानुनंदिनी सौदामिनी हैं और श्रीकृष्णचन्द्र नवजलधर। श्याम-वारिधर उमड़-घुमड़कर रसकी वर्षा कर रहे हैं। देव-दुन्दुभियाँ बज रही हैं। देववृन्द आकाशसे पुष्पोंकी वर्षा कर रहे हैं।

रासके तालपर नृत्य करती हुई बनाधिदेवी वृन्दा गा रही हैं। उन्हींके स्वर-में-स्वर मिलाकर गगनस्थ देवांगनाएँ भी गा रही हैं –

आज गोपाल रास रस खेलत पुलिन कल्पतरु तीर री, सजनी।
सरद विमल नभ चन्द्र विराजत रोचक त्रिविध समीर री, सजनी।।
चम्पक बकुल मालती मुकुलित मत्त मुदित पिक कीर री, सजनी।
देखि सुधंग राग रंग नीको व्रज युवतिनकी भीर री, सजनी।।

{श्रीकृष्णकी लीलाओंके सिन्धु इस पू. गुरुदेवरचित समाधिकाव्यके अष्टम शतकके पठन-पाठन एवं अध्ययनके समय सदैव सावधान रहें कि अपनी पूर्व वासनाओंके अनुसार जड़ राज्यकी धारणाओं, कल्पनाओं एवं क्रियाओंको इस दिव्य लीलामें आरोपित नहीं करें। यह रास वस्तुतः परमोज्ज्वल आनन्दरसका दिव्य प्रकाश है। जड़ जगत्की बात तो दूर रही, यह ज्ञान-विज्ञान-प्रधान मन-मस्तिष्कमें भी अवतरित नहीं होता। साक्षात् चिन्मयतत्वमें भी इस परम दिव्य उज्ज्वल रसका लेशमात्र नहीं देखा जाता। इस परमरसकी स्फूर्ति परमप्रेम-महाभावमयी प्रियतम-प्रेम-स्वरूपा गोपीजनोंके मधुर हृदयमें ही होती है। यह बात सत्य, सत्य, परम सत्य है कि इस रासलीलाका यथार्थ स्वरूप और इसके परम माधुर्यका आस्वाद उन्हींको मिलता है। हमारे जैसे विषयीजन तो इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते।

श्रीशुकदेवजी महाराज जैसे परम विरागी मुनियों एवं पू. गुरुदेवके समान महासिद्ध संतोंने इन लीलाओंका उल्लेख अपने काव्योंमें इसी हेतुसे किया है कि लीला-प्रसङ्गोंका अपूर्व माहात्म्य है - इनके पारायणसे हृदयरोग – कामका समूल विनाश होगा।

यथार्थमें भगवान्‌की इन परम दिव्य लीलाओंके विस्तारपूर्वक वर्णनका प्रयोजन भी यही है कि जिस अहैतुक, स्वसुख-वांछासे रहित, केवल श्रीकृष्णसुखैक-तात्पर्यमय प्रेमका अनुभव पू. पोद्दार महाराज एवं पू.गुरुदेवने किया एवं यावज्जीवन इस प्रेमानुभवमें वे भावाभिभूत रहे, पाठकगणोंमें भी इस सदिच्छाका अभ्युदय हो, एवं वे सभी भगवान्‌के रसमय दिव्य लीलालोकमें भगवान्‌के अनन्त प्रेमका अनुभव करें। - साधु कृष्णप्रेम}

दक्षिण-उत्तर-विभाग युगपत् बन जाता क्रीड़ाका, प्रियतम!
दोनों ही ओर खेलते थे दोनों ही केवल वे, प्रियतम!
उत्तरकी ओर चलें पर हम, है देर घड़ी दो की, प्रियतम!
है उषा सखी आनेवाली मिलने हम दोनों से, प्रियतम॥७८०॥

इस प्रकार युगपत् एक ही कालमें, एक ही साथ उत्तरविभाग, दक्षिणविभाग क्रीड़ाका स्थल बन जा रहा है। दोनों ही ओर केवल वे ही दोनों खेल रहे हैं। किन्तु हम तो अब उत्तरकी ओर चलें। अब केवल दो घड़ीकी देर है। वह देखो उषा सखी हम दोनोंसे मिलने आनेवाली ही है।।।७८०।।

दक्षिण-उत्तर-विभाग युगपत् बन जाता क्रीड़ाका, प्रियतम!

उपरोक्त पंक्तियाँ ही प्रकट करती हैं कि इस दिव्य विभूतियुक्त चिन्मय लीलामें जड़त्वजन्य परिच्छिन्नताके लेशकी गन्ध भी नहीं है। यह विभूतियुक्त दिव्य चिन्मय पूर्णशक्ति श्रीराधा एवं उनकी कायव्यूहरूपा गोपाङ्गनाओंके साथ सच्चिदानन्दघन परिपूर्णतम भगवान्‌का अप्राकृत एवं अचिन्त्य पवित्रतम प्रेमरसका महास्वादन मात्र है। इसीसे इस क्रीड़ाके युगपत् एक ही साथ दक्षिण-उत्तर – दो विभाग बन जाते हैं। एक ओर तो दक्षिण विभागमें रासनिशा दीर्घकालीन छः मासकी हो जाती है, एवं अविराम गापाङ्गनाएँ एवं श्रीराधारानी अपने प्रियतम नीलमयङ्कके साथ इस नृत्यमें अथक अविराम महारासमें डूबी ही रहती हैं। किन्तु दूसरी ओर जो उत्तर विभाग बनता है, उसमें प्रिया आनन्दमें मूर्च्छित होकर गिरने लगती हैं। इसी समय प्रियतम नीलमणि अपना नृत्य स्थगितकर अपने अधरोंसे सटी मुरलीके वादनको स्थगितकर प्रियाको हृदयसे लगा लेते हैं। मुरलीवादनके स्थगित होनेके साथ ही जो-जो वाद्ययंत्र मञ्जरियों द्वारा बजाये जा रहे थे, वे सभी बजने स्थगित हो जाते हैं। इन प्रत्येक चिन्मय गोपीके साथ नीलसुन्दर स्वयं अपनेको अगणित संख्यामें अभिव्यक्त कर लेते हैं, अतः प्रत्येक सखीको यही अनुभव होता है कि प्रियतम नीलसुन्दर मात्र प्रिया राधाको ही नहीं, उसे भी अपने हृदयसे लगा रहे हैं एवं अपने पीताम्बरसे उसका भी प्रस्वेदभरा मुख पौंछ रहे हैं। प्रिया एवं सखियाँ आनन्द-मूर्छामें डूबी हैं। जो सखियाँ अर्द्ध-बाह्यज्ञानकी दशामें हैं, उनको अनुभव होता है कि अब निशा विगत होने जा रही है और मात्र दो घड़ी पश्चात् ही ऊषासखी प्रिया-प्रियतमसे मिलने आने ही वाली है। ओह! प्रत्येक सखीको अनुभव हो रहा है कि प्रियतम निरतिशय प्रीतिभरी दृष्टिसे उसके रोम-रोमको निरख रहे हैं एवं उसे अपने हृदयसे सटाये-सटाये उसका रास-नृत्यजन्य श्रम हरनेके लिए अपने पीताम्बरसे वायु कर रहे हैं। शनैः शनैः सखियाँ पूर्णतः प्रकृतिस्थ हो जाती हैं। सखियोंके प्रकृतिस्थ होते ही प्रियतम प्रत्येक सखीके साथ पृथक्-पृथक् व्यक्त अपने सभी रूपोंको छिपा लेते हैं। सखियाँ अनुभव करती हैं कि प्रियतम तो अकेले ही हैं। वे प्रिया राधाको ही अपने अङ्कमें धारणकर उन्हें ही मूर्च्छाविमुक्त करनेकी चेष्टामें संलग्न हैं। किञ्चित् काल पश्चात् रानी भी प्रकृतिस्थ हो जाती हैं। रानी हँसती हुई अपने प्रियतमकी गोदमें लजायी-सी पृथक् होती हैं एवं अपने अस्त-व्यस्त वस्त्र एवं अञ्चल सँभालने लगती हैं।

वृन्दा आनन्दमें डूबती-उतराती हुई श्रीप्रियाका हाथ थाम लेती है। वृन्दाकी दासियाँ सुन्दर शीतल गुलाबजल प्रिया सभी सखियोंपर शनैः शनैः छिड़कने लगती हैं। यद्यपि यमुनामें सुषुप्त पद्मोंको जगाता-छेड़ता शीतल-मंद-सुगन्धित त्रिविध पवन रासस्थलीमें पर्याप्त वेगसे प्रवाहित हो रहा है, फिर भी वृन्दाकी दासियाँ पंखोंको

जिनमें अतिशय सुरभित पुष्प पिरोये हुए हैं, शनैः शनैः झल रही हैं। वृन्दादेवी प्रियतम एवं नृत्यकी थकानसे अलसायी सभी सखियोंके वस्त्रोंमें अत्यंत सुरभित पुष्पसार लगाती है। वृन्दाके पास आनेपर रानी उसके हाथसे पूरा पुष्पसार-पात्र ले लेती हैं और उस पूरे पुष्पसारपात्रको प्रियतमके तनपर उड़ेल देती हैं। प्रियाके ऐसा करते ही वृन्दाकी सभी दासियोंको यही अनुभूति होती है कि हमने ही हमारी स्वामिनी वृन्दासे पूरा इत्रसारपात्र ले लिया है एवं प्यारे प्राणवल्लभ नीलसुन्दरके तनको इत्रसारसे सुरभित कर दिया है। प्रियतम भी बदलेमें प्रिया एवं सभी सखियोंके अङ्गोंमें इत्रसार मल देते हैं। प्रियतम नीलसुन्दरका संस्पर्श पाकर सभी सखियाँ आनन्दमें बेसुध-सी हो रही हैं।

सर्वत्र आनन्द-ही -आनन्द उमड़ रहा है। इस समय प्रिया-प्रियतमका मुख पूर्व दिशाकी ओर है। प्रिया-प्रियतम दोनों निर्निमेष नयनोंसे एक-दूसरेके मुखारविन्दको निरख रहे हैं। दोनों प्रेममें इतने डूबे हैं कि चित्रलेख सरीखे सुस्थिरअङ्ग हो रहे हैं। ललितादि सभी सखियाँ भी इनकी प्रेमदशा देखकर उन्मादिनी हो रही हैं। ललिताकी दृष्टि पूर्व गगनकी ओर जाती है। पूर्वमें निशाकी बिदाई एवं ऊषाका झाँकना उसे स्पष्ट दृष्टिगोचर हो उठता है।

वह देखती है कि पूर्व गगनके नक्षत्र शनैः शनैः निष्प्रभ हो रहे हैं। प्रभाती नक्षत्र उदय हो चुका है। इस समय अपनी सखी रानीकी भावदशा कहीं गंभीर नहीं हो जाये, इस भयसे ललिता अपने हाथोंमें कुछ मिष्ठान्न अथवा मेवा लेकर आती है। वह प्रिया-प्रियतमके मुखपर मिठाई देती है। प्रिया-प्रियतम दोनों ही यंत्रकी भाँति शनैः शनैः मिष्ठान्न निगल लेते हैं। किन्तु उनकी दृष्टि एक-दूसरेके रूपसुधापानमें ही पूरी तरहसे संलग्न है। कुछ मिष्ठान्न खिलाकर ललिता दोनोंके होंठोंमें शीतल सुवासित जलका पात्र संस्पर्शित कर देती है। प्रिया जलके कुछ घूँट ले लेती है। ललिता रानीका मुख पौंछना चाहती है, प्रियतम नीलमणि अपने पीत उपरैनाका छोर ललिताके हाथमें दे देते हैं।

अब रात्रि लगभग तीन पहर पूर्ण होनेको है। प्रिया-प्रियतमके नेत्रोंमें आलस्य झलकने लगता है। ललिता एवं वृन्दा परस्पर सलाहकर दोनों प्रिया-प्रियतमको विश्रामकुञ्जकी ओर ले चलते हैं।

यमुनाके उत्तरी तटपर कुञ्जोंकी अनेक पंक्तियाँ हैं। आज जिस कुञ्जमें विश्राम करना है, वृन्दा उसी कुञ्जकी ओर पथ निर्देश करती आगे चल रही है। वृन्दाके साथ-साथ ललिता चल रही है। इनके पीछे प्रिया-प्रियतम एवं तब शेष सखियाँ चल रही हैं। बालुकामय रास-पुलिन एवं कुञ्जोंके तटके मध्य यमुनाकी धारापर नावोंको परस्पर जोड़कर उनपर चन्दनकाष्ठका अतिशय सुन्दर सेतु निर्मित है। प्रिया-प्रियतम इसी सेतुसे यमुना पार करते हैं। मार्गमें सखियाँ प्रिया-प्रियतमसे अत्यंत प्रेममय विनोद कर रही हैं। सभी सखीमण्डली सघन वनश्रेणीको पार करती है। आश्चर्य है कि वनके वृक्षोंकी डालियोंमें इस प्रकार प्रकाशयुक्त मणियाँ विजड़ित हैं कि पथ सुस्पष्ट परिलक्षित हो रहा है। मणियोंके प्रकाशमें चम-चम करते पुष्पमय पथपर चरण रखते प्रिया-प्रियतम रत्नमय निकुञ्जभवनमें आ पहुँचते हैं।

जिस निकुञ्जभवनमें प्रिया-प्रियतम पदार्पण करते हैं, उसकी शोभा परम एवं चरम अनुपम है। इसमें प्रत्येक सखी, दासी, एवं मञ्जरीके विश्रामके लिए पृथक्-पृथक् स्थान बने हुए हैं।

निकुञ्जभवनके मध्यमें अत्यंत सुसज्जित एक विशाल कक्ष है, इसमें सेवोपयोगी सभी सामग्रियाँ सञ्चित हैं। सुन्दर चन्दनकाष्ठकी मखमली शैया बिछी है। कक्षमें शान्त आनन्दोल्लास जैसे भरा हुआ है। वृन्दा एवं ललिता प्रिया-प्रियतमका हस्त ग्रहणकर उन्हें इस शैयामें विराजित कर देते हैं। प्रियतम मन्द-मन्द मुस्कुराने लगते हैं। प्रिया लजायी निम्नमुख किये अपने प्रियतमके पार्श्वमें आसीन हैं। कुछ देर परस्पर विशुद्ध विनोद चलता है, तब ललिता एवं वृन्दा दोनों ही खड़ी होकर कहती हैं कि हमें निद्रा आ रही है, अब हम शयन करेंगी। ललिताके इतना कहते ही सभी सखियाँ शीघ्रतापूर्वक कक्षके बाहर निर्गत हो जाती हैं। सबसे पीछे रूपमञ्जरी बाहर आती है एवं द्वार बंद कर देती है।

द्वारके पार्श्वमें ही दो पंक्तियोंमें छः इस ओर, एवं छः उस ओर मखमली शैया लगी हैं। द्वादश चार-चार मञ्जरियोंकी टोली पारी-पारीसे सेवार्थ जगती हैं जिससे कहीं कुछ सेवाकी आवश्यकता होनेपर प्रिया-प्रियतमको असुविधा नहीं हो।

वृन्दा सभी सखियोंके कक्षोंके द्वारपर जाती हैं। वह छिद्रसे भीतर दृष्टि डालती है। मणियोंके सुशीतल प्रकाशसे जगमगाते कक्षोंमें अपनी-अपनी शैयाओंमें सभी सखियोंको शयित देखकर तब वह समीपस्थ महलमें अपनी दासियोंके साथ विश्राम करती हैं।

शीतल-मन्द-सुगन्धित पवन प्रवाहित हो रहा है। यमुना कल-कल घ्वनिसे शनैः शनैः प्रवाहित हो रही है। सर्वत्र एक अनिर्वचनीय प्रेमजन्य शान्ति फैली हुई है। अवश्य ही ध्यान देकर श्रवण करनेपर ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो वन एवं यमुना पुलिनका अणु-अणु शनैः शनैः अति मन्द सुरीली ध्वनिमें उच्चारण कर रहा है - 'प्रिया-प्रियतम, प्रिया-प्रियतम, प्रिया-प्रियतम'।

जो हो, निकुञ्ज में जब दोनों आकर विराजते थे, प्रियतम !
कौतुक विचित्र-सा वह उनमें होता रहस्यमय था, प्रियतम !
बाला कुछ सरस पहेली थी रखती समक्ष उनके, प्रियतम !
साँवर भी तनिक सोच, हँसकर उत्तर देते जाते, प्रियतम ॥७८१॥

जो हो, निकुञ्जभवनमें जब दम्पति आकर विराज जाते, तब उन दोनोंमें रहस्यमय कौतुक – अत्यन्त विचित्र-सा पहेलियोंका कौतुक आरम्भ होता। राधाकिशोरी नीलसुन्दरके समक्ष कुछ सरस पहेलियाँ रख देतीं और नीलसुन्दर किञ्चित् सोचकर हँस-हँसकर उन पहेलियोंका उत्तर देते जाते।।।७८१।।

बाला कुछ सरस पहेली थी रखती समक्ष उनके, प्रियतम!

श्रीमद्भागवतमें, जो भगवान् श्रीकृष्णकी व्रजलीला-वर्णनका प्रतिनिधि ग्रन्थ है, उल्लेख है - **'रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभिर्यथार्भकः स्व प्रतिबिम्बविभ्रमः'** अर्थात् जैसे नन्हा शिशु दर्पण अथवा जलमें पड़े हुए अपने प्रतिबिम्बके साथ खेलता हैं, वैसे ही भगवान् रमेश, रसराज श्रीकृष्णने ब्रजसुन्दरियोंके साथ रमण किया।

यहाँ स्पष्टतया राधामुख्या गोपाङ्गनाओंको भगवान् ह्लादात्मा रसराज श्रीकृष्णका प्रतिबिम्ब ही बताया गया है। रसराज रमेश भगवान् आनन्द-चिन्मय-रस-सिन्धु हैं। वे अपने असमोर्ध्व नित्य परिव'र्द्धनशील रसमें स्वयं मुग्ध हैं - **विस्मापनं स्वस्य च सौभगर्द्धेः परं पदं भूषण भूषणांगम्।** (श्रीमद्भा. ३।२।१२) अपने इस नित्य परिवर्धनशील सौन्दर्य-माधुर्य-रसका आस्वादन करनेके लिए ही वे स्वयं अपने आनन्दस्वरूपका आश्रयालम्बन एवं विषयालम्बन दो भागोंमें विभाग करते हैं। वे ह्लादात्मा स्वयं ही आश्रयालम्बन भावसे प्रथमतः महाभावस्वरूपा ह्लादिनीशक्ति श्रीराधारूपमें प्रकट होते है और तब इसी महाभावरूपके अनन्त अवान्तर भावोंसे पृथक्-पृथक् प्रत्येक भावकी प्रतिनिधि गोपाङ्गनाओंके रूपमें प्रकट हो जाते हैं। इस प्रकार वे स्वयं ही अपने प्रतिबिम्ब राधा और तब गोपाङ्गनाओंके रूपमें अपने आपसे ही अपने आपमें विषयालम्बन रूपमें अनन्त विलास रूपोंका विधान करते हैं। लीलाभावनानुसार मात्र गोष्ठ एवं कुञ्जमें तो अनन्त गोपियों एवं मञ्जरियोंकी सत्ता पृथक्-पृथक् स्वभाव, नाम, एवं रूपोंमें रहती है, किन्तु रासोपरान्त निभृत निकुञ्जमें ज्योंही राधा-माधव एकान्तमें शयन करते हैं सभी मञ्जरियाँ एवं अष्ट सखियाँ श्रीराधाके ही भिन्न-भिन्न अङ्गोंमें जहाँ-जहाँसे उनका उद्भव होता है विलीन हो जाती हैं। तब ह्लादिनी श्रीराधा ह्लादात्मा श्रीकृष्णमें एवं श्रीकृष्ण राधामें एकात्म होते रहते हैं। श्रीकृष्ण क्षणके करोड़वें हिस्सेमें श्रीराधा हो जाते हैं एवं श्रीराधा श्रीकृष्ण हो जाती हैं। इस प्रकार शेष रहता है मात्र सच्चिदानन्द-महासिन्धु।

जैसा कि पूर्वमें वर्णन है कि रासोपरान्त यमुना पार स्थित अनेकों कुञ्जोंमें से किसी एक कुञ्जमें पदार्पणकर वृन्दादेवी प्रिया-प्रियतमको उस कुञ्जके मध्य भागमें स्थित शयनकक्षमें शय्यामें शयन कराके द्वार अवरुद्धकर पार्श्वमें ही स्थित अपने कुञ्जमें चली जाती हैं। सखियाँ भी प्रिया-प्रियतमके कक्षके चतुर्दिक् अपने-अपने नामाङ्कित कक्षोंमें शयन



भालमें मणिजटित चन्द्रिकामें नित्यस्थित इन्दुलेखा-यूथकी **श्रीसौदामिनीमञ्जरी**
मोतियोंके भाल-आभरणमें नित्यस्थित रङ्गदेवी-यूथकी **श्रीविद्युन्मालामञ्जरी**

केशोंकी कुञ्चिततामें नित्यस्थित चित्रा-यूथकी **श्रीसुकेशी**
केशोंकी स्निग्धतामें नित्यस्थित **श्रीविशाखा**
केशसौरभमें नित्यस्थित विशाखा-यूथकी **श्रीचन्दनमञ्जरी**

पलकोंके केशोंमें नित्यस्थित तुङ्गविद्या-यूथकी **श्रीपद्ममञ्जरी**
कटाक्षमें नित्यस्थित चम्पकलता-यूथकी **श्रीसुलोचनामञ्जरी**
प्रेमाश्रुओंमें नित्यस्थित ललिता-यूथकी **श्रीमोदिनीमञ्जरी**
नेत्रोंके शीलमें नित्यस्थित श्रीरङ्गदेवी-यूथकी **श्रीभद्रा**

नकबेसरमें नित्यस्थित ललिता-यूथकी **श्रीमञ्जुश्यामा**
नासिकाके नथमें नित्यस्थित सुदेवी-यूथकी **श्रीअशोकमञ्जरी**
कपोलोंके स्वेदविन्दुमें नित्यस्थित चम्पकलता-यूथकी **श्रीप्रेममञ्जरी**
वाम कपोलके मसिविन्दुमें नित्यस्थित रङ्गदेवी-यूथकी **श्रीमञ्जुलीलामञ्जरी**
कर्णकुण्डलोंमें नित्यस्थित **श्रीचित्रा**

अधरोंकी लालिमामें नित्यस्थित **श्रीललिता**
मुखसौरभमें नित्यस्थित ललिता–यूथकी **श्रीलवङ्गमञ्जरी**
अधरस्मितिमें नित्यस्थित विशाखा-यूथकी **श्रीशशिरेखामञ्जरी**
अधरामृतमें नित्यस्थित सुदेवी-यूथकी **श्रीसुधामञ्जरी**
दंतपंक्ति तथा दंतकान्तिमें नित्यस्थित रङ्गदेवी-यूथकी **श्रीकुन्दमञ्जरी**
स्वरमाधुर्यमें नित्यस्थित **श्रीचम्पकलताजी**
स्वर-माधुर्यमें नित्यस्थित विशाखा-यूथकी **श्रीमधुमती**
जँभाईमें नित्यस्थित तुङ्गविद्या-यूथकी **श्रीमदनालसामञ्जरी**

पञ्चहारमें नित्यस्थित विशाखा–यूथकी **श्रीहारहीरामञ्जरी**
कण्ठमें मोतियोंके पदकमें नित्यस्थित रङ्गदेवी–यूथकी **श्रीचारुशीलामञ्जरी**
कलेवरके गौरवर्णमें नित्यस्थित चित्रा-यूथकी **श्रीविमला**
अङ्ग-विलेपनसौरभमें नित्यस्थित विशाखा-यूथकी **श्रीकर्पूरमञ्जरी**
लावण्यमें नित्यस्थित ललिता-यूथकी **श्रीरूपमञ्जरी**

अरुण कंचुकीमें नित्यस्थित **श्रीसुदेवी**
पयोधरोंकी पीनतामें नित्यस्थित चम्पकलता–यूथकी **श्रीपालिका**
कृष्णवर्णीय स्तनाग्रोंमें नित्यस्थित इन्दुलेखा–यूथकी **श्रीश्यामला**
पयोधरोंपर हुई चित्ररचनामें नित्यस्थित सुदेवी–यूथकी **श्रीतारका**
पयोधरमध्यकी चित्ररचनामें नित्यस्थित चम्पकलता–यूथकी **श्रीमञ्जुलामञ्जरी**
पयोधरोंपर अङ्कित कंचुकीबन्दके चिह्नोंमें नित्यस्थित ललिता–यूथकी **श्रीमाधवीमञ्जरी**
पद्मराग–नखचिह्नोंमें नित्यस्थित **श्रीइन्दुलेखा**

झब्बासहित भुजबंदोंमें नित्यस्थित सुदेवी-यूथकी **श्रीमनोहरामञ्जरी**
करकंकणोंमें नित्यस्थित **श्रीतुङ्गविद्याजी**
कर-चरणोंके तथा अङ्गोंके कम्पनमें नित्यस्थित तुङ्गविद्या-यूथकी **श्रीधन्या**
हाथोंमें पहने चार वलयोंमें नित्यस्थित चित्रा-यूथकी **श्रीकुंदलतामञ्जरी**
वाम करकी अनामिकामें पहनी अँगूठीमें नित्यस्थित इन्दुलेखा-यूथकी **श्रीकेलिमञ्जरी**
दाहिने हाथकी अँगूठियोंमें नित्यस्थित चम्पकलता–यूथकी **श्रीलासिकामञ्जरी**

कटिमेखला एवं मेखलाध्वनिमें नित्यस्थित चित्रा-यूथकी **श्रीगुणमञ्जरी**
नाभिसे वक्षस्थलतककी रोमावलिमें नित्यस्थित तुङ्गविद्या-यूथकी **श्रीमदनसुन्दरीमञ्जरी**
नीवीग्रन्थिमें नित्यस्थित **श्रीरङ्गदेवी**

नूपुरों एवं नूपुरध्वनिमें नित्यस्थित चित्रा–यूथकी **श्रीरतिमञ्जरी**
वामपदतलके ऊर्ध्वरेखाचिह्नमें नित्यस्थित सुदेवी-यूथकी **श्रीइंदिरामञ्जरी**
पदतलके सरोवर-चिह्नमें नित्यस्थित तुङ्गविद्या-यूथकी **श्रीसरोजिनीमञ्जरी**
चरणोंकी मध्यमा अँगुलियोंमें पहनी बिछियामें नित्यस्थित इन्दुलेखा–यूथकी **श्रीविलासमञ्जरी**
चरणोंकी अँगूठियोंमें नित्यस्थित इन्दुलेखा-यूथकी **श्रीहंसिनीमञ्जरी**

कर जाती हैं। वस्तुतः लीला क्रमानुसार ऐसा ही होता है। किन्तु सत्य यह होता है कि वृन्दादेवी एवं सभी सखियाँ किसी प्राकृत तमोगुणरूपा निद्रामें लीन नहीं होतीं, अपितु महाभाव ब्रह्मशक्ति प्रिया श्रीराधाके भिन्न-भिन्न अङ्गों एवं आभूषणोंमें समाहित हो जाती हैं। रस परब्रह्म रसामृतविग्रह प्रिया-प्रियतमकी कायव्यूहरूपा सखियों एवं मञ्जरियोंमें अचित् अज्ञानमयी निद्राके समावेश होनेका तो प्रश्न नहीं उठता। स्वयं वृन्दादेवी भी जो सच्चिदानन्दकन्द ह्लादात्मा भगवान्की सन्धिनीरूपा महाशक्ति है, भला घोर अज्ञानरूपा निद्रामें कैसे समाविष्ट होगी? अतः वे भी सच्चिदानन्द-सान्द्राङ्गविग्रह प्रियतम श्रीकृष्णमें उनके तनके नीले प्रकाशमें विलीन हो जाती हैं। वस्तुतः लीला एवं लीलाकर्ता दो भिन्न स्वरूप थोड़े ही हैं। रसविलासके लिए ही सच्चिदानन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपनी सन्धिनीशक्तिका आश्रय लेकर स्वयं ही तो वृन्दावनधामके रूपमें प्रकट होते हैं और इस धामकी लीलोपयोगी साज-सज्जाके लिए उनकी धामस्वरूपा चिन्मयी सन्धिनीशक्ति ही वृन्दा नाम, रूप एवं स्वभाववाली सखी बनती है। इस सन्धिनीशक्तिकी असंख्य अवान्तर शक्तियाँ इनके निर्देशमें इनकी दासियाँ बनी धामसेवा करती रहती हैं। भगवान् सच्चिदानन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रकी सन्धिनीशक्ति जहाँ धामरूपमें अभिव्यक्त होती है, ठीक इसी प्रकार उनकी ही चित्शक्ति लीलाविधात्रीरूपमें महादेवी त्रिपुरसुन्दरीका रूप रखकर अघटन-घटना-पटीयसी योगमाया बनकर लीला-रचनाकर्त्री पदको सुशोभित करती हैं। इसी प्रकार उन ह्लादात्मा रसराजका ही ह्लादिनी-महाभावस्वरूप श्रीमती राधा बनकर उनके वामाङ्गसे पृथक् हो जाता है। इस प्रकार पूर्ण परब्रह्म सनातन रसस्वरूप रसराज रसिकशेखर रसपरब्रह्म अखिलरसामृतविग्रह श्रीकृष्ण ही अपने स्वरूप प्रतिबिम्बोंसे समग्र चिदानन्दमयी लीला सम्पादन करते हैं - यही ब्रजलीलाका परम मधुर सत्य है। इसी तत्वको और अधिक सुस्पष्ट करनेके लिए ही रासोपरान्त निभृत निकुञ्जमें एकान्त-शयित प्रिया राधा अपने प्राणवल्लभ नीलमयङ्कदेवसे पहेलीके रूपमें जिज्ञासा करती हैं। उनका यह अति विचित्र कौतुक रसजगत्के परम विशुद्ध प्रीति रहस्योंको प्रकट करनेवाला होता है।

है प्रथम कौन, जो स्निग्ध बनी? फिर कौन सुशीतल है? प्रियतम!
तीसरी तरल सुरभित जो है, चौथी सुस्मित वाली, प्रियतम!
पञ्चम उज्ज्वलमणिमाला है, वह छठी अमित मीठी, प्रियतम!
मिल गयी? अनुग्रहमयी साथ तुम हो, निहाल मैं हूं, प्रियतम॥७८२॥

राधाकिशोरी पूछतीं –'पहली कौन है, जो स्निग्ध बनी है'
'फिर कौन हैं, जो अत्यन्त शीतल है?'
'तीसरीको बतलाओ, जो तरल एवं सुरभित है!'– किशोरी पूछतीं।
'वही सुस्मित वाली, अब चौथी कौन?'– किशोरीका प्रश्न होता।
'उज्ज्वल मणिमाला जो है वह पञ्चम कौन? बतलाओ प्रियतम!'
'अच्छा, छठी कौन जो असीम मधुर है?'
किशोरी – 'मिल गयी?'
नीलसुन्दर – 'अनुग्रहमयी! तुम साथ जो हो। इसीलिये मैं नित्य निहाल हूँ।'।।७८२।।

वस्तुतः रसलीलामें सर्वप्रधान भाव – स्वाधीनभर्तृका ही होता हैं। प्रियतम प्राणनाथ मेरे हैं – यह मदीयात्मक रति ही व्रजप्रीतिकी मुख्य प्राणधारा है। प्रिया अपने भर्त्ता प्राणवल्लभ नीलसुन्दरकी एकछत्र स्वामिनी हैं, अपने प्रियतमपर उनका पूर्ण वर्चस्व एवं स्वाधिकार है, वे उनके पूर्णतया स्वाधीन हैं – यही मदीयात्मक रतिकी चरितार्थता है। महाभावमयी होनेसे प्रिया राधामें तो अनन्त भावलहरोंका अनन्त तटोंसे क्षण-क्षण अपूर्व उच्छलन होता ही रहता है। किन्तु इस राधा-महाभाव-सिन्धुमें ईशान कोणसे जो परमोच्च स्वाधीनभर्तृका भावकी लहर उठती है, उसकी प्रतिनिधि

उनकी प्राणसखी विशाखा हैं। वस्तुतः गोष्ठ एवं कुञ्जलीलामें तो सखी विशाखाका प्रिया राधासे पृथक् नाम, रूप, गुण एवं स्वभाव हैं। उनके पृथक् माता-पिता हैं। किन्तु निकुञ्जमहाभावमें ये विशाखा प्रिया राधाकी केशराशिकी स्निग्धतामें ही विलीन हो जाती हैं। उत्थानकालमें इनका भावमय प्राकट्य भी इस स्निग्धतासे होता है।

प्रिया राधाको अपनी लहराती सघन कृष्ण केशराशि सदैव अपने प्रियतमके रूपमें ही अनुभूत होती है। इस घन कृष्ण कुंतलराशिकी जो स्निग्धता है, वही तो प्रिया राधाका अपने प्रियतमके प्रति स्नेह है। और जैसे उनके केशराशि इस स्निग्धताके सदा वशवर्त्ती हैं उसी तरह प्रियतम प्राणवल्लभ नीलमणि भी अपने प्रियाके विशाखाभावमें पूर्ण वशवर्त्ती हैं। इस कूटतत्वात्मक प्रीतिरहस्यको उजागर करनेके लिए ही एकान्त रसवार्त्तामें प्रिया अपने प्रियतमसे पहेलीके रूपमें प्रथम प्रश्न करती हैं - **''है प्रथम कौन? जो स्निग्ध बनी;'** अर्थात् अपने सर्वात्मसमर्पणरूप स्नेहसे तुम्हें अपना पूर्णतया वशवर्त्ती बना लेनेवाली मेरी प्रथम मुख्य सखी कौन है? इस पहेलीका एक क्षणमें ही प्रियतम नीलसुन्दर तात्पर्य समझ लेते हैं। वे उसका यद्यपि प्रकटमें तो कोई उत्तर नहीं देते किन्तु समाधानजन्य मुस्कानसे प्रियतमका आनन-सरोज विकसित हो उठता है। वे जानते हैं कि प्रियाकी पहेलीका अभिप्राय विशाखा सखीसे है।

अब प्रिया दूसरी कूट पहेली पूछती हैं। **फिर कौन सुशीतल है, प्रियतम?** – इस पहेलीको सुनते ही एक क्षण नीलमणि व्रजेन्द्रनन्दन विचार करते हैं, किन्तु दूसरे ही क्षण उन्हें इस पहेलीका भी समाधान मिल जाता है। वस्ततुः प्रेम जगत्के नायकको अपने पूर्णतया अधीन रखनेके लिए नायिकाओंको उसे सुगन्ध, मधुर रस, सुरूप, सुस्पर्श एवं मीठी मुस्कान, सुरीली वाणीसे भी रिझाकर रखना होता है। स्वाधीनभर्तृका भावसिन्धुकी ये छः एकसे-बढ़कर-एक उच्छलित तरङ्गें हैं। प्रिया इन्हीं भाव-तरङ्गोंका ही प्रकाश अपनी पहेलियोंमें कर रही हैं। सुशीतल शब्दको श्रवण करते ही प्रियतम अवगत कर लेते हैं कि प्रियाका सङ्केत चन्दनमञ्जरीसे है। विशाखा सखी जहाँ प्रियाके केशोंकी स्निग्धतामें निवास करती हैं, वहीं चन्दनमञ्जरीकी उत्पत्ति प्रियाके केशोंके सौरभसे होती है। केशराशि चाहे कितनी ही सुस्निग्ध हो किन्तु यदि उसमें सौरभका अमित आकर्षक प्रवाह नहीं हो तो शृङ्गाररसमें उद्दीपित उच्छलन नहीं होता है। चन्दन चित्तको सुशीतल भी करता ही है। बस, प्रियतमको समाधान हो जाता है और वे मन्द मुस्कान बिखेर देते हैं।

अब प्रिया तीसरी पहेलीका प्रश्न कर बैठती हैं – **'तीसरी तरल सुरभित जो है'** – प्रियतम विचार करते हैं, चन्दनसे अधिक सुरभित पदार्थ कर्पूर होता है। कर्पूरमञ्जरी प्रिया राधारानीके अङ्ग-विलेपनमें स्थित है। अङ्ग-विलेपन सुरभित तो होता ही है, साथ ही तरल भी होता है। अतः तत्क्षण ही प्रियतम नीलमणिको अपनी प्रियाकी तीसरी कूट पहेलीका उत्तर मिल जाता है। प्रियतम प्रियाकी ओर अतिशय प्रेमभरी दृष्टि डालते हैं एवं मन्द मुस्कानसे हँसने लगते हैं।

अब प्रिया चौथी प्रहेलिका पूछ बैठती हैं – **'चौथी, सुस्मितवाली, प्रियतम!'** – प्रियतम विचार करने लगते हैं – रानीकी सुस्मित मुस्कानमें शशिरेखाकी नित्यस्थिति है। प्रिया राधा ही शशि हैं और उनकी प्रियतम-आकर्षिणी मुस्कान ही शशिरेखा सखी है। प्रियतम समाधान पाकर पुनः हँसने लगते हैं।

अब प्रिया पाँचवी एवं छठी पहेलीका अर्थ पूछती हैं – **'पञ्चम, उज्ज्वल मणिमाला है; वह छठी अमित मीठी, प्रियतम!'** – इस पहेलीको सुनते ही प्रियतमकी दृष्टि अपनी प्रियाके कण्ठमें लटकनेवाले पञ्चहारमें चली जाती है। प्रियाके कण्ठमें हीरेका, मुक्ताका, रत्नोंका, स्वर्णका एवं गुञ्जाका – इस प्रकार पञ्चहार सुशोभित है। प्रियतम हीरेका हार परिलक्षितकर मुस्कान बिखेर देते हैं। प्रियाकी हारहीरा सखीका नित्य वास प्रियाकी हीरक हारावलीमें ही है। प्रियाकी छठी पहेलीका भी उत्तर प्रियतमको तत्क्षण ही इस रूपमें मिल जाता है, क्योंकि प्रियाके स्वरकी मधुरतामें ही मधुमतीमञ्जरीका नित्य निवास होता है। प्रियाके स्वरकी मिठाससे अधिक मीठेपनकी उपलब्धि तो प्राकृत-अप्राकृत सृजनमें कहीं किसी भी पदार्थमें उपलब्ध होनी संभव ही नहीं है। बस, प्रियतम प्राणवल्लभ नीलसुन्दर इतना ही कहकर कि 'हे अनुग्रहमयी! तुम मेरे साथ हो, तुमको पाकर मैं निहाल हूँ एवं तुम्हारे स्वयंके अङ्गोंमें ही तुम्हारी सभी पहेलियोंके

उत्तर निहित हैं' - अपनी प्रियाके अङ्गसे लिपट जाते हैं।

अब पहली ? नित्य अरुण है; फिर ? जीवन का जीवन है, प्रियतम!
तीसरी ? लवणता निधि है; अब है बसी हुई मुख में, प्रियतम!
पाँचवी ? अमल बूँदोंवाली, वह छठी सुचिह्नित है, प्रियतम।
मिल गयी ? अनुग्रहमयी साथ तुम हो, निहाल मैं हूँ, प्रियतम ॥७८३॥

किशोरी – 'अब पहली जो नित्य अरुण है?'

किशोरी – 'फिर जो जीवनका जीवन है?'

किशोरी – 'तीसरी जो लावण्यताकी निधि है?'

किशोरी – 'अब जो मुखमें बसी हुई है?'

किशोरी – 'पाँचवीं जो अमल बूँदोंवाली है?'

किशोरी – 'छठी जो सुचिह्नित है?'

किशोरी – 'मिल गयी?'

नीलसुन्दर – 'अनुग्रहमयी! तुम साथ जो हो, इसीलिये मैं नित्य निहाल हूँ।'।।७८३।।

यह अखण्ड नित्य सत्य है कि नित्यनिकुञ्जेश्वरी महाभावस्वरूपा श्रीराधारानीका महाप्रेमसिन्धु नित्यनिकुञ्जेश्वर रसराज प्रियतम श्रीकृष्णको अनन्त असीम सुखदानके हेतुसे अनवरत लहराता ही रहता है। इस नित्योच्छलित महाभावसिन्धुमें स्वाधीनभर्तृका भावके उपरान्त खण्डिता महाभावकी तरङ्ग उमड़ उठती है। ऐसा कोई नियम नहीं है कि स्वाधीनभर्तृका भावके पश्चात् खण्डिता भावकी ही लहर उत्थित हो। प्रियाका भावपूर्ण हृदय सर्वनियम-विनिर्मुक्त है। राधा-महाभावसिन्धु सर्वतंत्र-स्वतंत्र है। फिर भी, यही कहा जा सकता है कि सङ्केतका अतिक्रमण उसीके द्वारा होता है जो सर्वप्रथम शत-प्रतिशत सङ्केतानुसार ही चलता है। स्वाधीनभर्तृका भावमें नायक अपनी नायिकाके सङ्केतका शत-प्रतिशत अनुगामी होता है। वह जब प्रियतमा संदेश देती है, अविलम्ब उसके पास पहुँच जाता है।

वही प्रियतम कान्त जब सङ्केतका अतिक्रमण करने लगता है, एवं नायिकाके पास अतिशय विलम्ब करके पहुँचता है, तो प्रियतमा कान्ता रोषाकुला दीर्घनिश्वास-त्यागिनी हो उठती है। वहीं उस कान्ताको खण्डिता भावकी मूर्ति कहा जाता है। अब प्रिया राधा इसी भाव लहरमें आविष्ट हुई, अपने प्रियतमसे पहेली पूछने लगती हैं। उनकी प्रथम पहेली होती है – **'अब पहली नित्य अरुण है; फिर जीवनका जीवन है प्रियतम!'**

वस्तुतः खण्डिता भावमें रोषाकुला नायिका नायकको देखते ही रोषमें अपने अधर चबाने लगती है। सुदीर्घ निश्वास-त्यागिनी होनेसे उसके अधर फड़फड़ाने लगते हैं। रोषसे वाणी बाहर फूटना चाहती है, किन्तु लज्जा एवं प्रीति वाणीको रुद्ध कर देती है। अरुणाधर-विलासिनी रोषाकुला नायिकाके अधर इससे और अधिक अरुण हो उठते हैं। अतः ज्योंही प्रिया नित्य अरुण – कहकर पहेली प्रारंभ करती है; प्रियतम समझ जाते हैं कि प्रिया अपने सच्चिदानन्दमय दिव्य वपुमें अधरोंकी लालिमाके रूपमें नित्य विराजित खण्डिता भावकी मूर्तिमान् स्वरूपा ललितारानीको ही इस रूपमें सङ्केतित कर रही हैं। प्रियतम नीलमणि अपनी नित्यनिकुञ्जेश्वरी प्रियाके मञ्जुल अधरोंकी अनुपम अरुणिमा निरखते लीलोल्लासमें मुसका उठते हैं।

अब प्रियतम अपनी प्रिया द्वारा उच्चारित **'जीवनका जीवन है'** –इस वाक्यपर विचार करने लगते हैं। वस्तुतः प्रिया-प्रियतम दोनों ही सदैव श्रीमञ्जुश्यामाके माध्यमसे ही एक दूसरेको सुख प्रदान करनेका विधान रचते हैं। श्रीमञ्जुश्यामामें दोनों प्रिया-प्रियतमको अपनी-अपनी विवशताका एक सुन्दर समाधान दिखलाई देता है। महाभावस्वरूपा वृषभानुनन्दिनी प्रियाके हृदयमें अपार व्यथा नित्य समायी रहती है कि मैं अपने प्राण-प्रियतम नीलमणिको किञ्चित् भी

सुख नहीं दे पाती। यद्यपि श्रीराधाके जीवनका एक-एक श्वास, उनके हृदयका एक-एक स्पन्दन, उनकी वाणीका एक-एक शब्द, उनकी क्रिया और व्यवहारका एक-एक व्यापार सर्वत्र एवं सर्वदा ही अपने हृदयाराध्य प्राणवल्लभ नीलसुन्दरके लिए ही होता है, इसके उपरान्त भी वे अहर्निश यही सोचती रहती हैं कि मुझ अकिञ्चनाके द्वारा हाय! मेरे प्राणवल्लभका सुख-विधान कैसे और कब हो पावेगा?

श्रीवृषभानुनन्दिनी परम खिन्नताकी दारुण भावनासे नित्य-निरन्तर भावित रही हैं कि मेरे द्वारा प्रियतमकी सेवा कभी नहीं बन पायी। यह खिन्नता उनके आंतरिक क्रन्दनमें कभी विराम नहीं आने देती।

ठीक, ऐसी ही व्यथा प्रियतम व्रजेन्द्रनन्दनके हृदयमें भी परिव्याप्त रहती है। यद्यपि राधा-प्राणवल्लभ महामहेश्वर हैं, फिर भी प्रेमपरवश हुआ उनका व्यथित हृदय यही चीत्कार करता रहता है कि मैं अपनी प्राणप्रियको तनिक भी सुख नहीं दे पाया। हृदयकी व्यथाकी इस पराकाष्ठाका एक बिन्दु ऐसा भी आ जाता है, जब दोनों प्रेमी हृदयोंके दारुण हाहाकारका स्वरूप प्राणान्तक सीमाका संस्पर्श करने लगता है और तब दोनोंके करुण हाहाकारके मिलनबिन्दुपर अघटन-घटना-पटीयसी योगमाया लीलामहाशक्तिके विधानसे एक नवीन परिस्थितिका निर्माण हो जाता है। दोनोंके ही दृष्टिपथमें राधाकी सहोदरा भगिनी मञ्जुश्यामा आ जाती है। उसे देखते ही दोनोंके हृदयोंमें एक आशाकी किरण उद्भासित हो उठती है कि संभव है हम दोनों इसके माध्यमसे परस्पर एक-दूसरेको सुखदान कर सकें। बस, दोनोंके ही प्रीतिविगलित हृदयोंमें बलवती आशाका सञ्चार हो उठता है। जब बीज पल्लवित होता है तो फल तो लगते ही हैं। फिर तो दोनोंमें सुखदानकी दिव्य लीलाका मधुर विलास आरंभ हो जाता है। दोनों ओर सुखदानकी होड़ मच जाती है। श्रीमञ्जुरानीके माध्यमसे ही दोनों एक दूसरेको सुखदान कर पाते हैं। ऐसा इसलिए संभव होता है क्योंकि श्यामवर्णा मञ्जुरानी प्रिया भानुदुलारी एवं प्रियतम व्रजेन्द्रतनय दोनोंका ही युगलित रूप है।

प्रियतम व्रजेन्द्रनन्दनके स्मरणमें **'जीवनका जीवन है'** यह वाक्य आते ही मञ्जुरानीका ध्यान आ जाता है। बस, वे मुसका उठते हैं।

प्रिया समझ लेती हैं कि प्रियतमने पहेलीका अर्थ अवगत कर लिया। वे तत्क्षण ही बोल उठती हैं – **'तीसरी लवणतानिधि है; अब? है बसी हुई मुखमें, प्रियतम!'** – प्रियतम अपने मस्तिष्कपर थोड़ासा जोर डालते हैं। प्रिया राधाके ही लावण्यसे रूपमञ्जरीका प्राकट्य होता है। प्रियतम जान लेते हैं कि प्रियाका अभिप्राय रूपमञ्जरीसे ही है। किन्तु चौथी पहेली – **'बसी हुई मुखमें, प्रियतम!'** अबतक अनसुलझी ही रह जाती है।

अचानक ही प्रियतमको प्रियाके मुखकी सुवासका ध्यान आ जाता है। प्रियाके मुखकी सुवाससे लवङ्गमञ्जरीका प्राकट्य होता है। प्रियतमके हृदयमें यह विचार आते ही उनका आनन पुनः मुसकानसे खिल उठता है। प्रिया पाँचवी एवं छठी जिज्ञासा कर देती है।

पाँचवी ? अमल बूँदोंवाली, वह छठी ? सुचिह्नित है, प्रियतम !

प्रियाकी दोनों जिज्ञासाओंपर कुछ काल तो प्रियतम नीलमणिको विचार करना ही पड़ता है। किन्तु कुछ ही कालमें उनको ध्यान आ जाता है। अमल बूँदें तो प्रेमाश्रुओंकी ही होना संभव है, शेष सब तो जड़ कामनाजन्य रुदनके अश्रु ही होते हैं। बस, प्रियतम समझ जाते हैं कि लवङ्गके निभृत कुञ्जकाननका लीलामें परिष्कृत स्वरूप मोदिनीमञ्जरी ही होता है, जिनका निवास प्रिया राधाकी प्रेमाश्रु-बूँदें ही हैं। अब छठी जिज्ञासाका हल कठिन नहीं होता। कारण, खण्डिता भावका सर्वोच्च विकसित स्वरूप माधवीमञ्जरी ही अब शेष रहती है। इन माधवीका प्रादुर्भाव प्रिया राधाकी कंचुकी-बंधोंके चिह्नोंके रूपमें ही होता है। बस, प्रियतम अपनी प्रियाको आलिङ्गन करके यह कह बैठते हैं –'हे अनुग्रहमयी! तुम मेरे सङ्ग नित्य बनी रहो, मैं तो सदैव कृतकृत्य एवं निहाल हूँ।'

अब पहली? काली ताली है; फिर पद्मरागरेखा, प्रियतम!
तीसरी? निराविल, पोली है; फिर? दीना पदवाली, प्रियतम!
अब? शशिका गुण धरनेवाली, फिर? पद-अँगुरीमें है, प्रियतम!
मिल गयी? अनुग्रहमयी साथ तुम हो, निहाल मैं हूँ, प्रियतम॥७८४॥

किशोरी – 'अब पहली जो काली ताली है?'
किशोरी – 'फिर जो पद्मराग रेखा है?'
किशोरी – 'तीसरी जो निराविल और पोली है?'
किशोरी – 'फिर जो दीना पदवाली है?'
किशोरी – 'अब जो शशिके गुणसे विभूषित है?'
किशोरी – 'फिर जो पदकी अँगुलीमें है?'
किशोरी – 'मिल गयी?'
नीलसुन्दर – 'अनुग्रहमयी! तुम साथ जो हो, इसीलिये मैं नित्य निहाल हूँ।'।।७८४।।

इधर प्रिया सावधान हो जाती है। अबतक उन्होंने उनकी जिन सखियोंके संबंधमें पहेली पूछी हैं, वे सखियाँ विशाखा एवं ललिता-यूथकी थीं। अब प्रिया इस सखी-क्रमको उलट-पुलट देती हैं। अब क्रमानुसार तो प्रियाको चित्रा सखीके यूथके संबंधमें पहेली पूछनी चाहिए थी, किन्तु वे सीधे चित्रा एवं चम्पकलताको लाँघकर इन्दुलेखायूथपर पहुँच जाती हैं।

श्रीइंदुलेखा प्रोषितभर्तृका भावकी मूर्तिमान् स्वरूपा हैं। श्रीराधाकुण्ड एवं कृष्णकुण्डके आग्नेय कोणमें उनका कुञ्ज है। जिसका प्रियतम दूर देशमें हो, उस वियुक्ता कान्ताको प्रोषितभर्तृका कहते हैं। प्रिया प्रथम पहेलीकी अवधारणा इन्दुलेखाके रूपमें भी नहीं करती, अपितु उन इन्दुलेखा भावधाराके उच्छलित स्वरूप श्रीश्यामलामञ्जरीको पहेलीका प्रथम स्थान दे बैठती हैं।

वे पूछती हैं – **'अब पहली? काली ताली है; फिर पद्मरागरेखा, प्रियतम!'**

प्रियतम इस काली–ताली शब्दपर बहुत मननशील हो उठते हैं। वे स्वाभाविक ही ललिताके पश्चात् क्रमशः चित्रा सखीके संबन्धमें विचारने लगते हैं, किन्तु चित्राके स्वरूपमें काली–ताली पहेलीका अर्थ–संयोजन होता ही नहीं, अब शेष पाँचों सखियों – चम्पकलता, इन्दुलेखा, रङ्गदेवी, तुङ्गविद्या, सुदेवी सभीके स्वरूपस्थलियोंपर वे अपना मस्तिष्क दौड़ाते हैं, उन्हें काली-तालीका सामञ्जस्य नहीं मिलता। हारकर प्रियतम भगवती सर्वज्ञानाधिष्ठातृ महादेवीका ध्यान करते हैं। प्रियतमके अन्तःकरणमें श्यामला-श्यामला शब्द ध्वनित होने लगता है। तत्क्षण ही उनकी बुद्धि श्यामलामञ्जरीके उत्पत्तिस्थलपर मँडराने लगती है। श्रीश्यामलामञ्जरीकी उत्पत्ति प्रिया वृषभानुनन्दिनीके कृष्णवर्णीय स्तनाग्रभागसे हुई है।

यहाँ एक बात पुनः पाठकोंके सम्मुख व्यक्त करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ – यह प्रिया-प्रियतम ह्लादिनी-ह्लादात्माकी लोकातीत मधुर लीला है। इस मधुरातिमधुर लोकोत्तर लीलामें प्रकर्ष-रसोत्कर्षके लिए शृङ्गाररस एवं कामक्रीड़ाका झीना-सा आवरण अवश्य है। लीलाविहारके वर्णनोंमें नारी-अङ्गोंकी शब्दावलीका आना अति स्वाभाविक ही होता है। अतः पाठकोंको उसमें निहित प्राकृत अर्थ ग्रहण नहीं करना चाहिए। शब्द तो प्राकृत हैं, अतः उनका अर्थ ग्रहण करनेवाले प्राकृत अर्थ ही ग्रहण करेंगे। जहां स्तन, आलिङ्गन, चुम्बन आदि शब्द होंगे पाठक स्वभावतः प्राकृत अर्थ ही ग्रहण करेंगे। परन्तु प्राकृत नरलीलामें वे ही अङ्ग, वही क्रिया जहाँ पापमूलक भोगासक्ति

बढ़ानेवाली, नरकगामिनी है, वहीं दिव्य अप्राकृत व्रजलीलामें वे ही नारीअङ्ग, वे ही शृङ्गारमूलक क्रियाएँ अत्यंत निर्दोष, नित्य अभिनव पूर्ण सुन्दर, पूर्ण पवित्र हैं। श्रीराधारानीके पयोधर कोई मांसल विकार नहीं है। जैसे श्रीकृष्णके चरण अध-ओघ विनाशक हैं, ठीक उसी प्रकार राधारानीके नितम्ब द्वय, उनका स्तनमंडल भी पूर्ण ज्ञानस्वरूप, ज्ञान, वैराग्य एवं धर्मके प्रतीक एवं प्रेमेश्वर्य-प्रदाता हैं। ये स्तनमण्डल, नितम्ब, जंघाएँ, कुत्सित विलास-सामग्री नहीं है, यथार्थ यहाँ सर्वथा अलौकिक है। ये प्रियाके अङ्ग भागवती विग्रह हैं, ये सच्चिदानन्दकन्द होनेसे विशुद्ध घन आनन्द- स्वरूप हैं। ये चिन्मय हैं, विभु हैं, गुणातीत, दोषातीत, नियमातीत, लोकातीत हैं। इनमें रक्त-मांस, मल-मूत्र, कफ-पित्त, अस्थि-मज्जा-वीर्य नहीं हैं। इनमें जन्म-मृत्यु जरा-व्याधि नहीं हैं।

अतः कृष्णागतप्राणा प्रिया राधाके पयोधरोंको साक्षात् सच्चिदानन्दकन्द भगवत्स्वरूप ही मानना चाहिए एवं वे हैं भी सच्चिदानन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र-मनाकर्षी परम विशुद्ध आह्लादसारस्वरूप ही। श्रीराधारानीके पयोधरोंके रूपमें भगवती श्रीराधारानीके अंतरका प्रगाढ़तम, पावनतम, कृष्णानुराग ही बाहर उभर आया है। वस्तुतः सत्य-सत्य इन्हें देखनेके लिए तो भावचक्षु ही अपेक्षित हैं जो मात्र प्रियतम श्रीकृष्णकी कृपासे ही प्राप्त होने संभव हैं।

कहनेका यही प्रयोजन है कि श्रीराधारानीके पयोधर सच्चिदानन्दकन्द अपने प्रियतम प्राणाराम श्रीकृष्णचन्द्रकी परम विशुद्ध प्रीतिके कोषागारोंकी काली ताली ही उनकी दो श्यामल कुच-कर्णिकाएं हैं। श्रीश्यामलामञ्जरीका स्वरूपगत नित्य निवास इन्हीं कुच कर्णिकाओंमें है। यही **'काली ताली'** रूप पहेलीका अर्थ है। भगवती महादेवीके सङ्केतको पाते ही प्रियतम प्रियाके स्तन-मंडलपर साङ्केतिक दृष्टि डालते हैं और निश्छल मुस्कानसे उनका मुखमंडल झलमला उठता है। श्यामलामञ्जरीके रूपमें प्रियाके स्तनमण्डलपर दृष्टि जाते ही प्रियतमको वहाँ ठीक पद्मरागरेखाओंके-से उभरे स्वयंके नखक्षत-चिह्नोंके दर्शन हो जाते हैं। प्रियतम उनका दर्शन पाकर ही निहाल हो जाते हैं। प्रेमपुत्तलिका भगवती श्रीमती राधारानीके अंतरका प्रगाढ़तम पावनतम श्रीकृष्ण-अनुराग ही इन चिह्नोंके रूपमें बाहर उभर आया है। प्रियतम मन-ही-मन यह जानकर कि ओह! उनकी विशुद्ध प्रेमाकर्षणजन्य क्रिया ही उनकी प्रियाकी प्राणसखी इन्दुलेखाके भावविग्रहकी शाश्वत निवासस्थली हो गयी है – मुसकाकर, सिर झुकाकर उन पद्मरागरेखाओंको जो प्रिया राधारानीके उरोजोंमें चिह्नित हैं, प्रणाम करते हैं। प्रिया राधारानी समझ जाती हैं कि प्रियतमको उनकी पहेलीकी प्रथम पंक्तिका सन्निहित भाव अवगत हो गया है। वे तत्क्षण ही दूसरी पंक्ति बोल उठती हैं – **'तीसरी? निराविल पोली है, फिर? दीना पदवाली प्रियतम!'**

प्रियतम श्यामसुन्दर पुनः विचार करने लगते हैं। विश्वमें सबसे निराविल क्रिया तो प्रियतमकी केलि ही है। बस, केलि शब्दपर ध्यान आते ही प्रियतम अवगत कर लेते हैं कि केलिमञ्जरी ही प्रियाकी अनामिका अँगुलीमें अँगूठी आभूषणके रूपमें विघृत हैं। अँगूठी पोली होती ही है। अब उनका ध्यान **'दीना पदवाली'** शब्दपर जाता है। केलिमञ्जरीका ही उच्छलित स्वरूप विलासमञ्जरी हैं जो प्रियाके चरणोंके दोनों अंगुष्ठके पार्श्वकी अँगुलीमें स्थित बिछिंया नामक आभूषणके रूपमें नित्य विलसित हैं। प्रियतमके चित्तमें समाधानका संतोष अभ्युदय हो उठता है और वे अपनी प्रियतमाके चरणोंमें दृष्टि उलझाकर मुसका उठते हैं। अब प्रिया पुनः प्रश्न कर बैठती हैं – **'अब शशिका गुण धरने वाली, फिर? पद-अँगुरीमें है, प्रियतम?**

प्रियतम 'शशिका गुण धरने वाली' शब्दावलीपर पुनः उलझ जाते हैं। शशिको शिरोभूषण बनाने वाली **'अष्टमीचन्द्र विभ्राजदलिकस्थलशोभिता'** जगन्मातासे ही प्रियतम पुनः इस पहेलीका भी अर्थ पूछ बैठते हैं। महादेवी शशिशेखरा प्रियाके शिरोभूषणकी ओर सङ्केत कर देती हैं। प्रियतम समझ जाते हैं कि महादेवी प्रियाके भालपर स्थित चूड़ामणि-चन्द्रिकासे नित्य संयुक्त सौदामिनी सखीके लिए सङ्केत कर रही हैं। अब तो प्रियतम नीलसुन्दरको प्रियाकी छठी पहेलीका रहस्य भी अवगत हो ही जाता है। पदअँगुरीमें तो श्रीसौदामिनीमञ्जरीका उच्छलित स्वरूप हंसिनी ही

विलसित है जो बिछियावाली दोनों अँगुलियोंको छोड़ शेष सभी चरणांगुलियोंके रूपमें विलस रही हैं। प्रियतम अपनी प्रिया प्राणेश्वरीके चरणोंमें अँगुलियोंपर दृष्टिपात करते हैं। उन्हें वहाँ विधृत प्रत्येक अँगुलीपर हंसिनीकी आकृति विजड़ित दृष्टिपथमें आ जाती है। प्रियतम मुसकाकर अपनी प्रियाके कंठसे संलग्न हो उठते हैं एवं कह बैठते हैं – 'हे अनुग्रहमयी! तुम मेरे साथ हो, तुम्हें पाकर मैं सत्य-सत्य पूर्णतया निहाल हूँ। मुझे सभी रहस्य तुम्हारे भीतर ही प्राप्त हैं।'

अब प्रिंया चौथी पहेली पूछती है :

अब कौन? सरसती रहती है, फिर? रस-कलसीवाली, प्रियतम!
अब कौन? छाप छपनेवाली, आगे? प्रस्वेदभरी, प्रियतम!
फिर? वह तिरछी चितवन में है, अब? तोरणलतिका है, प्रियतम!
मिलगयी? अनुग्रहमयी साथ तुम हो, निहाल मैं हूं, प्रियतम ॥७८५॥

किशोरी – 'अब कौन जो सरसती रहती है?
किशोरी – 'फिर जो रसकलसीवाली है?'
किशोरी – 'अब कौन जो छाप छपनेवाली है?'
किशोरी – 'आगे जो प्रस्वेदभरी है?'
किशोरी – 'फिर जो तिरछी चितवनमें है?'
किशोरी – 'अब जो तोरण लतिका है?'
किशोरी – 'मिल गयी?'
नीलसुन्दर – 'अनुग्रहमयी! तुम साथ जो हो, इसीलिये तो मै नित्य निहाल हूँ।'।।७८५।।

'अब कौन सरसती रहती है' – प्रियतम नीलसुन्दर इसे सुनकर ही पुनः विचारमें पड़ जाते हैं। सहसा ही उनके दृश्य-पटलपर अपनी प्रियाका एक पुरातन स्मृतिचित्र आ जाता है।

मध्याह्नका काल है। किसी कारणवश वे वनमें रहकर भी प्रियाको भेजे सङ्केतस्थलपर नहीं पहुँच पाये थे। मधुमङ्गलने ऐसा हुड़दंग खड़ा कर दिया था कि उसे मनानेमें उन्हें पर्याप्त काल व्यतीत हो गया था और वे यथासमय प्रतीक्षारत प्रियाके निकट चेष्टा करने एवं नीयत रखते हुए भी नहीं पहुँच सके थे। वे किञ्चित् विलम्बसे जब अपने प्राणसखा सुबलके कंधेपर हाथ रखे निकुञ्जस्थलीपर पहुँचे तो उन्होंने देखा सखियोंकी सजायी अतिशय सुखद नीलपद्म-शैयाकी ओर निहारती प्रिया उदासमना एक पीठपर आसीन हैं। हाथोंमें वे एक नीलपद्मोंकी अतिशय सुन्दर पिरोयी माला लिये हैं जिसे हथेलीपर रखकर कपोलोंसे छुलाये वे ध्यानस्थ हैं। उनके निमीलित नेत्रोंमें अपने प्रियतमकी मानस ध्यानछवि विजड़ित ु आर उनके अतिशय सुरीले सरस कंठसे अति मधुर स्वर-लहरी निस्सृत हो रही है।

सघन कुंज की छाँह मनोहर सुमन सेज बैठे पिय-प्यारी ।।
अरसि-परसि अंसनि भुज दीने नंदनंदन वृषभानुदुलारी ।।
नख-सिख अंग सिँगार सुहावत इहि छवि सम नाहिन उपमा री ।।
रस बस करत प्रेम की बतियाँ हँसि हँसि देत परस्पर तारी ।
सनमुख सकल सहचरी ठाढीं विहरत श्रीराधा गिरधारी ।
गोविन्ददास निरख दम्पति सुख तन-मन-धन कीन्यौ बलिहारी ।।

प्रियतम अपनेको निकुञ्जके खंभेके पीछे छुपाये बहुत कालतक चुपचाप शान्त अपनी प्रियाके कंठस्वरकी अति सरसतासे भीगी काव्यरचनाको सुनते रहते हैं। वासकसज्जाकी अतिशय भावप्रवणतावश उनके कण्ठकी सरसता

मादक-मादकतर होती जा रही थी। ज्यों-ज्यों भावोत्कर्ष और अधिक उछाल लेता था कण्ठकी सरसताके साथ-ही-साथ प्रियाके उरोजोंकी पीनता भी बढ़ जाती थी। महाभावमयी प्रियाका भावोत्कर्ष तो असीम था ही। बस, उनके कपोलोंपर स्वेदबिन्दु छलक उठे थे, उनकी चितवन तिरछी हो उठी। प्रियतम आश्चर्यसे निहारते रहे। प्रत्येक भावोकर्षके साथ प्रियाका स्वरूप ही परिवर्तित हो रहा था। अचानक ही उन्होंने देखा कि प्रियाके स्वरकी मिठाससे चम्पकलता सखीका प्रादुर्भाव हो गया है। उनके पयोधरोंकी पीनतासे पालिकामञ्जरीकी उत्पत्ति हो जाती है एवं उनकी चितवनके तिरछे कटाक्षमें सुलोचनाका प्राकट्य हो जाता है। प्रियतम जान जाते हैं कि भगवती योगमाया उन्हें यह सभी दृश्यरचना दिखाकर प्रियाकी कूट पहेलीका समाधान करा रही हैं। किन्तु अभीतक प्रियतम नीलमणि छाप छलनेवाली एवं तोरणलतिका शब्दरचनाका भाव अवगत नहीं कर पाते हैं। उन्हें यह तो ज्ञात है कि पालिकामञ्जरीका उत्कृष्ट स्वरूप लासिकामञ्जरीमें ही है। किन्तु लासिका प्रियाके अँगूठियोंमें निवास करती हैं; फिर यह छाप छलना शब्द क्या अर्थ रखता है? भोले प्रियतम यह कूटशब्द समझ नहीं पा रहे हैं। प्रियतम ज्योंही जिज्ञासाकी गहनतामें उतरते हैं, पुनः एक पुरातन लीलादृश्य उनकी भावभूमिमें छा जाता है - 'प्रिया निकुञ्जके भीतरी कक्षमें विश्राम कर रही हैं। प्रियतमको आनेमें कुछ विलम्ब हो गया। वस्तुतः कुछ दिवस पहले प्रियाकी एक रत्नजड़ित अंगूठी प्रियतमने पहन ली थी। जिसमें प्रियाकी स्पष्ट छवि एक विशेष कोणसे दिखती थी। कुछ विशेष सखियोंको यह बात ज्ञात थी; एवं वे सखियाँ नीलमणिसे वह अँगूठी किसी हेतुसे झटकना चाहती थीं। सखियोंने एक छलनामयी चाल की एवं निकुञ्जके द्वारपर लासिकामञ्जरीको द्वारपालिका नियुक्त कर दी। लासिकाको यही आदेश था कि प्रियतमको निकुञ्जके भीतर किसी भी हालतमें प्रवेश नहीं करने दे। वे प्रवेश करें तो उनसे यही प्रश्न करे कि पहले प्रमाण दो कि तुम सचमुचमें ही हमारे प्राणपति व्रजेन्द्रंनन्दन हो। हमें सूचना मिली है कि व्रजेन्द्रनन्दनका हूबहू वेश बनाए एवं रूप रखकर बहुतसे छलकर्ता वनमें विचरण कर सकते हैं। अतः पहले हमें तुम्हारी कोई छाप दो जिससे हम समझें कि तुम छलिया नहीं हो। इस प्रकार यदि प्रमाणस्वरूप प्रियतम वह अँगूठी सखीको प्रदान कर दें तो बस, फिर वह अँगूठी प्रियतमको नहीं लौटाई जाए। सखियोंकी चाल सफल भी हो गई एवं कुछ ही कालमें सखियोंको पक्षियों द्वारा सूचना मिल गयी कि प्रियतम नीलसुन्दर निकुञ्जकी ओर आ रहे हैं। सभी सखियाँ सावधान हो गयीं। प्रियतम यथासमय कुञ्जमें पहुँचे। वे द्वारपालके रूपमें एक सखीको पहरेदार देखकर सशङ्कित तो हो ही गये, किन्तु उनको इस गंभीरताका ज्ञान नहीं था कि आज उनको स्वयंके होनेका भी कोई प्रमाणपत्र प्रस्तुत करना पड़ेगा। वे तो यही मान रहे थे कि विलम्बसे आनेके कारण प्रियाके विरह-संतापसे संतप्त ललिता रुष्ट हो गयी होगी। वे सोच रहे थे कि इस द्वारपालिकाको किसी प्रकार अनुनय-विनय करके वे मना लें फिर तो निकुञ्जमें रानीके सम्मुख पहुँचते-पहुँचते ललिताका रोष रानी स्वयं ही दूर कर देंगी।

किन्तु उन्हें तब अतिशय आश्चर्य हुआ जब द्वारपालिका सखीने बहुत ही रूखेपनसे उन्हें संबोधितकर कहा– 'ऐ भाई! कौन हो, कहाँ जा रहे हो?' अब तो नीलसुन्दरके पैरोंकी जमीन ही खिसक गयी। वे हतप्रभ-से सखीकी ओर देखने लगे। सखीने और अधिक रूखेपनसे कहा– 'अरे भाई!तुम इस ब्रजमें कहाँसे ऐसे लम्पट पुरुष आ गये हो जो वनमें एकान्तमें खड़ी किसी युवती गोपरमणीको इस प्रकार घूरकर देख रहे हो। जाओ, अपना काम करो अथवा रास्ता नापो।' अब तो प्रियतम नीलसुन्दर और भी चकित हो गये। उनसे अपने कण्ठका थूक भी नहीं निगला गया। किसी प्रकार इतना-सा बोल पाये - 'मैं व्रजेन्द्रनन्दन राधा-प्राणनाथ हूँ'।

लासिकाने प्रियतम नीलसुन्दरकी बात ऐसे अनसुनी कर दी कि जैसे उसे नन्दनन्दनसे कोई प्रयोजन ही नहीं हो। वह अत्यन्त ही उपेक्षासे उनकी ओर देखती हुई बोली – 'अजी! ऐसा तो हमारी संती साध्वी प्राणसखी रानीके सम्बन्धमें केवल नन्दकुल-भूषण, गोपीचितचोर ही कह सकते हैं। वे सबकी आत्माओंके आत्मा हैं, ऋषि-मुनि-वन्दित

चरण हैं। मात्र मोर-पखौआ सिरपर जड़ लेनेसे एवं बाँसकी एक टहनी हाथमें ले-लेनेसे अघ-बक-कालिय-गर्वमर्दक गिरधारी नहीं बना जाता। यदि तुम नन्दनन्दन हो तो अपनी कोई छाप हमें दो, जिससे हमारी सखियाँ तुम्हें सत्यापित कर सकें।'

बिचारे नीलसुन्दर तो बहुत ही कठिनाईमें पड़ गये। उस सखीसे वे इतना ही कह सके कि 'मैं अपने सुबल, श्रीदाम एवं मधुमङ्गल सखासे साक्षी दिला सकता हूँ। तेरी सखियाँ मान जायें तो मैं मधुमङ्गल भैयाको बुला लाऊँ। वह ब्राह्मण बालक कभी असत्य नहीं बोलता।'

'मधुमङ्गल' ....नाम सुनकर तो वह द्वारपालिका ऐसे अट्टहास कर उठी कि समग्रवन ही उसकी उन्मुक्त हँसीसे निनादित हो उठा। मधुमङ्गलका नाम सुनकर तो कुञ्जके भीतरकी सेवारत सखियाँ भी जोरसे हँस पड़ीं। सखियोंके भीतरसे उठी तीव्र अट्टहासकी ध्वनिसे तो नन्दनन्दन सहम ही गये। हँसते-हँसते बल खाती, लोट-पोट होती वह द्वारपालिका किसी प्रकारसे दो शब्द बोल सकी – ' अरे, अरे! वह पेटू ब्राह्मण बालक! वह तो दो मोदकोंके लोभमें किसीको भी नीलमणि कह देगा! अरे! वह असत्य- भाषणको तो पाप मानता ही नहीं है। वह तो तर्क देता है कि वुभुक्षित ब्राह्मण मोदक मिष्ठान्न पानेके लिए जिस भी वाणीका आश्रय लेता है वही वाणी सत्य होती है। क्योंकि उस वाणीके द्वारा तैंतीस कोटि देवगण ब्राह्मणमुखसे यज्ञान्न पाकर तृप्त होते हैं। ब्राह्मणकी प्रज्ज्वलित जठराग्नि ही वस्तुतः अनादिकालीन देव- यज्ञाग्नि है। इस यज्ञाग्निसे साक्षात् पञ्चदेव – ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य एवं इन्द्र संतृप्त होते हैं। उस मिष्ठान्नलोलुप, सदैव वुभुक्षित ब्राह्मणकी साक्षी?' – गोपी पुनः हँसती-हँसती बल खाने लगती है।

नीलमणिने द्वारपालिकाकी मधुमङ्गल सम्बन्धी उक्तिको यथार्थ माना। उन्हें यह पश्चात्ताप हो रहा था कि उनके मुखसे अंततः सचमुच ही पेटू व्यक्तिका नामोल्लेख साक्षीके रूपमें होना ही नहीं चाहिए था। अब वे सोचने लगे सुबल एवं श्रीदामके सम्बन्धमें यह क्या कहेगी? वे तो दोनों ही पर्याप्त गंभीर, राजपुत्रोंकी गरिमाका पालन करनेवाले हैं। अतः इस बार बहुत ही सोच-समझकर उन्होंने अपने स्वरको संयत किया एवं अतिशय मिठास घोलते हुए कहा - 'श्रीदाम भैयाकी साक्षी भी तू नहीं मानेगी? वे तो तेरी स्वामिनीके बड़े भैया एवं राजपुत्र हैं।'

इस बार सखी कुछ गंभीर हो जाती है। वह कहती है –'हाँ! वृषभानु-राजपुत्र कहेंगे तो हमें उनकी आज्ञा अवश्य माननी होगी। किन्तु तुमपर विश्वास जो नहीं है। जैसे तुम ठीक हू-ब-हू व्रजेन्द्रतनयकी अनुकृति उतारकर आये हो, उन्हीं-जैसा रूप-रङ्ग बनाकर भोली-भोली बातें कर रहे हो; उसी प्रकार तुम कहीं वृषभानु-राजपुत्रका भी नकली स्वाँग बना लाओ। जाओ, भाई! तुम आगे रास्ता नापो, तुम्हारी जादूगरी का क्या भरोसा, कहीं कोई धोखा हो जाय।'

अब तो व्रजेन्द्रनन्दनके पास कोई उपाय ही शेष नहीं रहा। उन्होंने अंतिम उपाय यही सोचा कि किसी प्रकार इस सखीको यशोदा मैयाके [illegible] ले चलूँ और उनसे साक्षी दिला दूँ। उन्होंने अपनी वाणीमें जितनी कोमलता वे ला सकते थे, घोलकर बहुत ही अनुनयपूर्वक कहा, –'मैं यशोदा मैयासे साक्षी करा दूँ कि मैं ही उनका पुत्र हूँ?' अब तो वह सखी पुनः खिलखिलाकर हँस पड़ी। तुम यशोदा मैया एवं नंदबाबा ही नहीं, स्वयं रानी वृषभानुकिशोरीकी साक्षी दिलाओ, तब भी हम बिना छाप देखे तुम्हें कुञ्जमें प्रवेश नहीं करने देंगी। तुम सर्वथा स्वाँगधारी हो, तभी ऐसी बातें कर रहे हो। स्वाँगधारीको व्रजके भोले लोगोंके स्वभावका भला कैसे पता चलेगा? यदि यशोदा मैया सर्वथा भोली नहीं होती, तो पूतना स्वाँग बनाकर नंदभवनके भीतर अन्तःपुरतक कैसे पहुँच पाती? श्रीधर ब्राह्मण, तृणावर्त्त, काकासुर, शकटासुर सभीको तो अवसर मिल गया! जैसी यशोदा नन्दरानी भोली, वैसी ही हमारी स्वामिनी महाभोली। हमारी स्वामिनी तो तमाम तरुओंको ही नन्दनन्दन मानकर लिपटी पड़ी रहती हैं। उसे मयूर, हरिण आदि वनचर भी प्रियतम प्राणपति दिखते हैं। अतः तुम अन्य किसीपर यह स्वाँग आजमाओ, मैं तो तुम्हें बिना छाप दिखाये कुञ्जके भीतर जाने दूँगी नहीं।'

प्रियतम नीलमणि एकदम निराश हो गये। अचानक ही उनके अन्तर्मनमें एक प्रेरणा जगी – 'उनकी अनामिका अँगुलीमें प्रदान की गई अँगूठी जब वे पहने ही हैं, फिर इतनी शङ्कालु होनेकी आवश्यकता ही क्या है? इस छापको तो यह सखी लासिका असत्य कह ही नहीं सकती। इस अँगूठीको एक कोणसे देखनेपर तो साक्षात् प्रिया मुस्काती दिखती ही हैं, अतः इस तथ्यात्मक साक्ष्यको तो इस सखीको मानना ही पड़ेगा' – यह मानकर प्रियतम नीलसुन्दर आत्मविश्वाससे भरे बोल उठे – 'सखि लासिके! तूने मुझे आज बहुत छल लिया, किन्तु ध्यान रखना मैं तेरी शैतानीका ब्याज समेत बदला ले लूँगा। अभी तो मेरी प्राणप्रियाके पास मुझे तू जाने दे, वह मेरे विरहमें अतिशय व्याकुल हो रही है। प्रमाणके रूपमें यह प्रियाकी दी हुई अँगूठी तुझे सम्हला दे रहा हूँ।' – यह कहते हुए प्रियतमने द्वारपालिकाको वह अँगूठी जो उन्होंने चित्रा सखीसे ली थी, दे दी। लासिकाने भी मुस्कुराते हुए उन्हें कुञ्जके भीतर प्रवेश करनेकी अनुमति प्रदान कर दी।

सखियोंने द्वारपर प्रियतमको कुछ क्षण खेल-खेलमें रोक तो लिया किन्तु उन्हें इसका आभास ही नहीं था कि द्वारपर प्रियतमकी उपस्थिति एवं प्रियाको उनके अदर्शनसे प्रियाका भावोद्दीपन तीव्र हो उठेगा। हुआ यही, एवं प्रिया उत्कट विरहदशामें प्रविष्ट हो गयी। प्रियतमने कुञ्जके भीतर ज्योंही प्रवेश किया उन्होंने देखा कि वासकसज्जा-महाभावमें भावान्वित प्रिया राधा विरहमें प्रियतमकी स्मृति करती इतनी उत्तप्त हैं कि नीलपद्मोंकी शैया उनके अङ्गतापसे मुरझाकर सूख गयी है। सखियोंने प्रियाके कटिसे ऊपरके सभी वस्त्र हटा दिये हैं एवं प्रियाके कुन्दनद्युति उभरेहुए उरोज तेजस्वी ज्योतिर्लिङ्गोंके समान शोभित दर्शनीय हो रहे हैं। उसके हृदयको बार-बार शीतलता देनेके लिए सखियाँ प्रियाके उरोजोंके ऊपर बड़े-बड़े शीतल चन्दन- पिण्डोंको रखती हैं, हटाती हैं एवं नया लेप-पिण्ड प्रस्तुतकर पुनः उसके उरोजोंपर रख दे रही हैं। एक क्षणमें ही वे पिण्ड भी पुनः शुष्क हो जाते हैं। सखियाँ चतुर्दिक् शीतल केवड़ा एवं गुलाबजल बार-बार छिड़क रही हैं। प्रियाके विद्युद्वर्णीय उरोज चन्दन एवं कस्तूरी-पिण्डोंसे आवृत होनेपर ऐसी शोभा दे रहे हैं, मानो प्रियाके हृदय-महलमें प्रवेश पानेके लिए पहले दो उन्नत उरोजों रूपी तोरणोंके मध्यमें दोनों उरोजोंकी मध्यरेखा में कस्तूरीकी एक ऐसी सुशीतल सुरभित धारा बह रही है, जो ऐसा प्रकट कर रही है मानों दोनों तोरणोंके मध्यसे कोई तोरणलतिका बंदनवारकी तरह शोभा पा रही हो। प्रियतम नीलसुन्दर अपनी प्राणप्रियतमाकी ऐसी शोभा एवं प्रेमदशा देखकर एक क्षणमें ही अँगूठीवाला सब प्रसङ्ग विस्मरण कर जाते हैं। प्रियाकी निर्मल प्रेमभरी दृष्टि जैसे ही प्रियतमपर पड़ती है वह कह उठती है – 'आओ! प्राणवल्लभ, आओ! मेरे हृदय-मन्दिरमें प्रवेश करो। देखो, मेरे इस हृदय-प्रासादमें प्रवेशके पूर्व इन तोरणोंके मध्य जो यह कस्तूरी वर्णकी वर्तिका है इसे अत्यंत मृदुलतासे अपसारित करना। प्रियतम! यह प्रेमबेलि है। क्षणमें ही छुई-मुईकी तरह मुरझानेवाली है। इस भावमयी वेलिको अति सुकोमल भावसे स्पर्श करना भला!' प्रियतमने देखा – प्रिया नयनों-ही-नयनोंमें मुसका उठी हैं। 'प्राणवल्लभे!' – कहकर प्रियतम तत्क्षण ही प्रियाके कण्ठसे लग जाते हैं।

इस भावदृश्यके आते ही प्रियतम समझ जाते हैं कि भगवती त्रिपुरसुन्दरीने ही उन्हें सङ्केतसे छाप छलनेवाली लासिकामञ्जरी एवं रानीके पयोधरद्वयके मध्य भागमें की हुई चित्ररचनामें नित्य निवास करनेवाली मञ्जुला सखीका सङ्केत किया है।

प्रियतम प्रियाके वक्षस्थलकी ओर निहारते हुए हँस उठते हैं, एवं शब्दोंमें इतना ही कहते हैं – 'हे प्राणवल्लभे! तुम्हारे भीतर ही सभी पहेलियोंका अर्थ मुझे मिल गया। हे अनुग्रहमयी! तुम मेरे साथ हो, सत्य, सत्य मैं पूर्णतया निहाल हूँ।'

अब पहली? बँधी हुई है जो; फिर? दृग निवासवाली, प्रियतम!
आगे? वह निर्मल हासमयी; फिर? असित बिन्दुवाली, प्रियतम!
पञ्चम? आवरण कण्ठमें है, हे छत्री? माँग भरती, प्रियतम!
मिल गयी? अनुग्रहमयी साथ तुम हो, निहाल मैं हूँ, प्रियतम ॥७८६॥

किशोरी – 'अब पहली जो बँधी हुई है ?'
किशोरी – 'फिर जो दृगमें निवास करनेवाली है ?'
किशोरी – 'आगे जो निर्मल हास्यमयी है ?'
किशोरी – 'फिर जो असित विन्दुवाली है ?'
किशोरी – 'पञ्चम जो आवरण कण्ठमें है ?'
किशोरी – 'छठी जो माँग भरती है ?'
किशोरी – 'मिल गयी ?'
नीलसुन्दर – 'अनुग्रहमयी! तुम नित्य साथ जो हो, अतएव मैं नित्य निहाल हूँ।'।।७८६।।

आगेकी पहेलियोंमें प्रियतमको समझनेमें कहीं दुरूहता नहीं आयी। चम्पकलताके पश्चात् प्रियाने रङ्गदेवीके उत्कण्ठिता महाभावपर पहेलियाँ जिज्ञासा की थीं। उत्कण्ठिताभावकी प्रतिमूर्ति श्रीरङ्गदेवी प्रियाकी नीवीडोर एवं उनकी नीवीगाँठमें नित्य निवास करती हैं। अतः प्रियाने जैसे ही –**'अब पहली बंधी हुई जो है;** वाक्यका प्रयोग किया, प्रियतम समझ गये कि प्रिया रङ्गदेवी सखीके सम्बन्धमें जिज्ञासा कर रही हैं। इसके पश्चात् प्रियाने **'दृगनिवासवाली'** शब्दका जैसे ही प्रयोग किया प्रियतम समझ गये कि प्रिया उत्कण्ठिता भावके ही उत्तरोत्तर विकसित रूपोंकी प्रतिनिधि सखियोंके बारेमें पहेली पूछ रही हैं। भद्रा सखी रानीके नयनोंके शीलमें निवास करती हैं, अतः स्वाभाविक ही दृगनिवासवाली ही हैं। इसी प्रकार कुन्दमञ्जरी रानीकी दंतपंक्तिमें विलसित रहती हैं अतः निर्मल हासमयी स्वाभाविक ही हैं। मञ्जुलीलामञ्जरी रानीके कपोलस्थित मसिबिन्दुसे प्रकट होती हैं अतः उनका आवरण कंठमें ही है। छठी, विद्युन्माला वन्दनी मोतियोंसे बने भालके आभूषणमें निवास करती हैं अतः प्रियाकी उक्ति **'है छठी माँग भरती'** को चरितार्थ कर रही है। बस, प्रियतम मुस्कुराकर कह बैठते हैं – 'हे अनुग्रहंमयी! तुम मेरे साथ हो, बस मैं निहाल हूँ। तुम एकको पानेसे मुझे सबकुछ मिल गया।'

अब पहली? कर धरनेवाली, फिर? कर-पद-गतिवाली, प्रियतम!
अब? काली रेखा है; आगे? पलकोंसे जुड़ी हुई, प्रियतम!
पञ्चम? पद-कंज-विभूषित है; फिर? है आलस्यभरी, प्रियतम!
मिल गयी? अनुग्रहमयी साथ तुम हो, निहाल मैं हूँ, प्रियतम।।७८७।।

किशोरी – 'अब पहली जो कर धरनेवाली है ?'
किशोरी – 'फिर जो कर एवं पदगतिवाली है ?'
किशोरी – 'अब जो काली रेखा है ?'
किशोरी – 'आगे जो पलकोंसे जुड़ी हुई है ?'
किशोरी – 'पञ्चम जो पदकञ्ज विभूषित है ?'
किशोरी – 'फिर ज़ो आलस्यभरी है ?'
किशोरी – 'मिल गयी ?'

नीलसुन्दर – 'अनुग्रहमयी! तुम नित्य साथ जो हो, इसीलिये तो मैं नित्य निहाल हूँ।'।।७८७।।
स्वाभाविक ही आगेकी प्रियाकी पहेली विप्रलब्धा भावको ही सङ्केतित करनेवाली थी। अतः जैसे ही प्रिया ने जब

'अब पहली? कर धरने वाली' शब्दोच्चारित किया प्रियतम तत्क्षण ही समझ गये कि प्रिया अपने 'करकङ्कण''को ही सङ्केतित कर रही हैं जो वासकसज्जा भावप्रधान तुङ्गविद्याकी नित्य निवासस्थली है। दूसरा शब्द-प्रयोग प्रिया **कर-पद-गतिवाली** कहकर करती हैं। प्रियतम इस पहेलीका भी अर्थ जान लेते हैं। उत्कण्ठिता भावकी प्रधान सखी तुङ्गविद्याका ही विकसित रूप धन्यामञ्जरी है जो प्रियाके कर-चरणके कम्पनसे प्रकट होती है। प्रिया आगे क्रमशः जो पहेली पूछती हैं, उनमें काली रेखा, पलकोंसे जुड़ी हुई, पदकञ्ज-विभूषित, एवं आलस्यभरी ये चार शब्दावलियाँ आती हैं।

काली रेखासे प्रियतम समझ जाते हैं कि प्रियाका मंतव्य मदनसुन्दरीसे है जो रानीकी नाभिसे वक्षस्थलतककी रोमावलीसे प्रकट होती है। इसी प्रकार पलकोंसे जुड़ी हुईसे प्रियतम अर्थ निकाल लेते हैं कि प्रिया पद्ममञ्जरीका उल्लेख कर रही हैं, जिनका प्राकट्य प्रियाकी दोनों पलकोंके केशोंमें है; पद-कञ्ज -विभूषितसे प्रियाका अर्थ सरोजिनी सखीसे है जो प्रियाके पदतलके चिह्नोंसे प्रकट होती हैं। इसी प्रकार आलस्यभरी शब्दावलीसे भी प्रियतम जान लेते हैं कि प्रिया मदनालसा सखीके बारेमें ही पहेलीमें सङ्केतित कर रही हैं क्योंकि ये ही सखी प्रियाकी आलस्यभरी जँभाईमेंसे प्रकट होती हैं। बस, प्रियाको आलिङ्गित करके वे कह बैठते हैं – 'प्रिये! तुम्हारी पहेलीकी सभी सखियोंकी पहचान मुझे मिल गयी। हे अनुग्रहमयी! तुम मेरे साथ हो, फिर मैं सब प्रकारसे पूर्णतया निहाल हूँ।'

अब पहली? लाल सलौं वाली; फिर? उरपर रहती है, प्रियतम!
फिर? पीली-नीली, पोली है; अब? बसी होठमें है, प्रियतम!
पञ्चम? पद रेखा वाली है; वह छठी? भुजा में है, प्रियतम!
मिल गयी? अनुग्रहमयी साथ तुम हो, निहाल मैं हूँ, प्रियतम॥७८८॥

किशोरी – 'अब पहली जो लाल सलोंवाली है?'
किशोरी – 'फिर जो उरपर रहती है?'
किशोरी – 'फिर जो पीली, नीली और पोली है?'
किशोरी – 'अब जो होठोंमें बसी है?'
किशोरी – 'पञ्चम जो पदरेखावाली है?'
किशोरी – 'वह छठी जो भुजामें है।'
किशोरी – 'मिल गयी?'
नीलसुन्दर – 'अनुग्रहमयी! तुम नित्य साथ जो हो इसीलिये मैं नित्य निहाल हूँ।'॥७८८॥

अब प्रियाकी आगेकी पहेली कलहान्तरिता भावकी प्रतीक श्रीसुदेवीजी एवं उनके ही उत्तरोत्तर विकसित स्वरूपोंके सम्बन्धमें हैं। कलहान्तरिता भावका लक्षण ही यह है कि अनुनय-विनयरत कान्तका रोषवशात् पहले तो नायिका सम्मान नहीं करे एवं फिर जब वह कान्त-वियुक्ता हो जाये तो अत्यंतानुतापसे संतप्त होती रहे। श्रीसुदेवीजी रानीकी अरुण कंचुकी-स्वरूपा हैं, जिन्हें पहेलीमें प्रिया **लाल सलोंवाली** कहती है। दूसरी पहेलीसे प्रिया जिन्हें **'उरपर रहती'** इस शब्दावलीसे सङ्केतित कर रही हैं, वे 'तारकामञ्जरी' हैं। प्रियाके पयोधरोंपर जो चित्ररचना की जाती है; उसमें तारकामञ्जरीका ही नित्य निवास रहता है। आगे प्रिया अपनी नासिकाके नथको **'पीली-नीली, पोली है'**, कहकर पहेलीमें उल्लेख करती हैं। इसमें उनका आशय अशोकमञ्जरीसे ही होता है जो उनके नथमें नित्य निवास कस्ती हैं।

अब आगे प्रिया सुधामञ्जरीको **'बसी होठमें है'** कहकर सङ्केतित कर रही हैं। सुधामञ्जरीका प्रियाके अधरामृतरसमें नित्य निवास है। प्रियाकी पाँचवी पहेली **'पदरेखा वाली'** है जिसका अभिप्राय प्रियाके वाम पदतलकी

अर्धरेखासे है एवं जिसमें इन्दिरा सखीका नित्य निवास है। अब छठी पहेली प्रिया 'भुजामें है' करके पूछती हैं जिसका अर्थ मनोहरा सखीसे है जो प्रियाके गुच्छों सहित भुजबंधमें नित्य निवास करती है।

अब पहली? कुण्डलवाली; फिर? तनके कण-कणमें है, प्रियतम!
अब? पद-पदपर जो मुखरा है; चौथी? है कटि थामे, प्रियतम!
पञ्चम? कुञ्चित कचमें है; फिर? कर धरकर पीन बनी, प्रियतम!
मिल गयी? अनुग्रहमयी साथ तुम हो, निहाल मैं हूँ, प्रियतम॥७८९॥

किशोरी – 'अब कुण्डलवाली पहली कौन?'
किशोरी – 'फिर जो तनके कण-कणमें है?'
किशोरी – 'अब जो पद-पदपर मुखरा है?'
किशोरी – 'चौथी जो कटि थामे है?'
किशोरी – 'पञ्चम जो कुञ्चित कचमें है?'
किशोरी – 'फिर जो कर धारणकर पीन बनी हुई है?'
किशोरी – 'मिल गयी?'
नीलसुन्दर – 'अनुग्रहमयी! तुम नित्य साथ जो हो, इसीलिये मैं नित्य निहाल हूँ।'।।७८९।।

प्रियतम समझ रहे है कि इन सातों प्रधान सखियोंके उत्तरोत्तर सभी स्वरूपोंका उल्लेख हो जानेपर अब मात्र चित्रा सखी ही शेष रहती हैं अथवा उनके ही दिवाभिसारिका भावके विकसित स्वरूपोंकी सखियोंका उल्लेख शेष रह जाता है। अतः अब सबके अंतमें प्रिया अपने प्रियतमके सम्मुख उनका ही पहेलीके रूपमें उल्लेख करती हैं।

चित्रा सखीके विषयमें प्रिया कुण्डलवाली कहकर पहेलीकी प्रथम पंक्तिमें ही पूछती हैं। वस्तुतः चित्रा सखीका नित्य निवास प्रियाके कर्ण-कुण्डलोंमें ही रहता है। इनका उत्तरोत्तर उच्छलन ही क्रमशः विमलाके रूपमें होता है। विमलाका नित्य निवास प्रिया राधाके **'तनके कण-कणमें है'**– कहकर वे उसके सम्बन्धमें पूछती हैं। विमलामञ्जरी अपने विकाससे रतिमञ्जरीमें पर्यवसित हो उठती है। रतिमञ्जरी प्रियाके नुपूर और उनकी ध्वनिमें निवास करती है जिसे रानी **'पद-पदपर जो मुखरा है'** कहकर जिज्ञासा करती हैं। रतिमञ्जरी अपने विकसित रूपमें गुणमञ्जरी भावमें समाविष्ट हो जाती है। गुणमञ्जरीका नित्य निवास रानीकी कटिमेखला एवं मेखलाकी ध्वनिमें है। इन्हें प्रिया अपनी पहेलीमें प्रियतमसे **'अब चौथी? कटि थामे प्रियतम!'** कहकर उल्लेख करती हैं। पाँचवी पहेलीमें जिसे **पञ्चम कुञ्चित कचमें है** कहकर प्रिया उल्लेख कर रही हैं, प्रियतम समझ जाते हैं कि वे सखी सुकेशी हैं। **'फिर? कर धरकर पीन बनी'** इस वाक्यसे प्रिया जिन्हें संङ्केतित कर रही हैं, प्रियतम उन्हें भी समझ जाते हैं कि दिवाभिसारिका स्वरूपका सर्वोच्च उच्छलन कुन्दवल्ली रूपमें होता है, जो प्रियाके हाथकी कलाईकी चूड़ियोंके दोनों ओरके वलय रूपमें प्रकट होती हैं।

बस, प्रियतम अपनी प्रियाकी बलिहारी करते हुए कह बैठते हैं – 'हे प्रिये! मुझे तुम्हारी पहेलियोंके शब्दार्थमें निहित सभी सखियोंकी पहचान मिल गयी। हे अनुग्रहमयी! तुम्हें पाकर मैं सत्यांशमें निहाल हूँ।'

'अब अन्तिम कौन? उसे तो मैं छूकर बतलाऊँगा।' प्रियतम!
कहकर यह, साँवर पहनाते कर-माला बालाको, प्रियतम!
तदनन्तर वे लहरें उठतीं जो उस रस-वारिधिमें, प्रियतम!
उनमें स्वरूपसे ही मज्जन करनेकी पद्धति है, प्रियतम॥७९०॥

किशोरी – अब अन्तिम कौन है? नीलसुन्दर – उसे तो मैं छूकर बतलाऊँगा – यह कहकर साँवर

राधाकिशोरीको अपनी करमाला पहना देते हैं। तदनन्तर उस रससमुद्रमें जो लहरें उठती हैं उनमें तो स्वरूपसे ही मज्जन करनेकी पद्धति है भला!।।७९०।।

वस्तुतः इन उपरोक्त स्वाधीनभर्तृका, खण्डिता, प्रोषितभर्तृका, वासकसज्जा, उत्कण्ठिता, विप्रलब्धा, कलहान्तरिता एवं दिवाभिसारिका – आठ भावों एवं इनके अन्तरालसे उठती विलक्षण विशुद्ध उत्कर्षमयी और छः छः तरङ्गों – इस प्रकार कुल अड़तालीस ऊर्मियोंमें प्रियाने अपने ही स्वरूपका परिचय अपने प्रियतमको दिया है। श्रीरूप गोस्वामी आदि गौड़ीयबन्धुओं एवं पद्म पुराणादि पुराण ग्रंथोंमें कहीं-कहीं एक सौ आठ भाव-विभेद दर्शाये गये हैं। अतः पू. गुरुदेवने उनचासवीं ऊर्मिमें उन सभी सखियों, यूथेश्वरियोंका समावेश कर लिया है जो इनके अतिरिक्त कहीं भी, कुछ भी अन्य हैं। ये सभी सखियाँ क्योंकि राधारानीकी ही कायव्यूहरूपा, स्वरूपभूता, उनसे ही सर्वथा अभिन्न, उनमें ही समलंकृत हैं, अतः प्रिया अब पहेलीके रूपमें उनचासवीं भाव ऊर्मिके सम्बन्धमें स्वयं अपने आपके लिये अपने प्रियतमसे जिज्ञासा करती हैं। वे कहती हैं - **अब अंतिम कौन?** इस अंतिम कौन? के उत्तरमें प्रियतम मुखर हो उठते हैं। अबतक तो वे प्रत्येक पहेलीपर मात्र मुस्कुरा ही देते थे। किन्तु अन्तिम कौन? प्रश्नपर वे मुस्कानके साथ प्रत्युत्तर भी मुखर होकर दे देते हैं। प्रियतम यही उत्तर देते हैं कि उसे तो स्पर्शित करके ही बतलाऊँगा। यह कहकर प्रियाके कण्ठमें अपनी बाहुमाला समर्पित कर देते हैं। तदनंतर जो भी प्रेमकी लहरें उठती हैं, पू. गुरुदेव कहते हैं कि उस रसवारिधिका वर्णन वाणीसे नहीं किया जा सकता। उसमें तो डूबकर महासिन्धु बनकर ही आप्यायित हुआ जा सकता है। उसमें स्नान करनेकी पद्धति ही यही है कि उसमें स्वरूपसे घुल-मिलकर एकात्म हो जाया जाये।

अपने ऊपर, अपने से ही, अपने को ही आगे, प्रियतम !
वे लहर दान करतीं रसमय वह रूप कूल का-सा, प्रियतम !
जिस पर उतरा आते साँवर, उतरा आती बाला, प्रियतम !
कुछ पल के लिये, और उनमें बातें होने लगतीं, प्रियतम ॥७९१॥

अपने ऊपर, अपनेसे ही, अपनेको ही, अब आगे वे लहरें रसमय कूलका रूप दान करती हैं, जिसपर साँवर उतराते हैं, राधाकिशोरी उतराती हैं। कुछ पलके लिये यह आनन्द लेकर उनमें बातें होने लगती हैं।।।७९१।।

कोई प्रश्न करेगा कि इस महासिन्धुका कूल, अथवा तट कहाँ है? क्योंकि तटके बिना तो यह लीला कहाँ हो रही है, प्रिया-प्रियतममें परस्पर वार्त्ता ही कैसे संभव है?

इसके उत्तरमें कवि कहता है कि यह अखण्ड नित्य सत्य है कि नित्यनिकुञ्जेश्वरी महाभाव-सिन्धु-स्वरूपा राधा असीमान्त है, उनका कोई तट संभव ही नहीं। इसी प्रकार महारससिन्धु रसराज प्राणप्रियतम नित्यनिकुञ्जेश्वर भी अपरिच्छिन्न अनन्त हैं, ये नित्योच्छलित हैं। इनका पार अथवा गभीरता भी किसीसे आजतक नहीं नापी जा सकी है। फिर भी यह प्रिया-प्रियतमरूप महारससिन्धु अपने ऊपर, अपनेसे ही, अपने ही आगे, कूलका-सा रसमय रूप प्रकट कर लेता है, जिस तटपर प्रिया-प्रियतम साँवर एवं बाला आकर खड़े हो जाते हैं। यह खेल मात्र कुछ पलके लिए ही होता है कि अनन्तोदधि किनारा बन जाता है एवं प्रिया-प्रियतममें पुनः अतिशय सरसीली वार्त्ता होने लगती है।

'प्रियतमे ! कहानी एक कहो, तुम बहुत जानती हो;' प्रियतम !
'प्राणाधिक ! मैं सब भूल गयी, तुम तो कह सकते हो।' प्रियतम !
'हे प्राणवल्लभे ! नहीं, नहीं, मेरी रुचि यह रख दो;' प्रियतम !
'अच्छा तो, सुनो; हुँकारी पर सुनकर देते रहना।' प्रियतम ॥७९२॥

नीलसुन्दर कहते है – 'प्रियतमे! एक कहानी कहो। तुम तो बहुत-सी कहानी जानती हो।

प्रियतमा राधाकिशोरी तुरन्त उत्तर देती हैं – 'प्राणाधिक! मैं सब भूल गयी। तुम तो कहानी कह सकते हो!'

नीलसुन्दर बोल उठते हैं – 'हे प्राणवल्लभे! नहीं, नहीं, तुम मेरी यह रुचि रख ही दो।' राधाकिशोरी एक क्षणके लिये कुछ सोचती हैं और फिर कहती हैं - 'अच्छा तो सुनो, पर सुनकर हुँकारी अवश्य देते रहना।।।७९२।।

वस्तुतः ये बातें भी रससिन्धुकी ही उच्छलित तरङ्गोंकी गर्जनाएँ हैं, किन्तु कुछ महाभाग्यशाली रसिकोंके हृदय एवं इन्द्रियोंमें इन तरङ्गोंकी गड़गड़ाहट शब्दोंका रूप ग्रहण कर लेती हैं और वे महारसिक सिद्ध संत उन अपने हृदयस्थ प्रिया-प्रियतमकी यह सरसीली वार्त्ता शब्दशः सुनते हैं। उन्हें प्रतीत होता है मानो प्रियतम नीलसुन्दर कह रहे हों – 'हे प्रियतमे! तुम तो सर्वज्ञ, सर्वरसज्ञाननिधि हो! एक कहानी कहो न!'

इस रसमय प्रश्नका प्रिया समुत्तर देती है – 'प्राणाधिक! मैं तो तुम्हें पाकर अपना सब कुछ ही विस्मृत कर गयी हूँ। अच्छा! तुम तो होशमें हो, कह सकते हो, तुम्हीं वह कहानी कह दो।'

पुनः प्रियतम बोलते हैं – 'हे प्राणवल्लभे! नहीं, नहीं, मैं मानता हूँ तुम मुझमें डूबी हुई सबकुछ विस्मृत कर गयी हो फिर भी मेरी रुचि रखकर ही तुम अपने ज्ञानको पुनः अपनेमें आरोपित कर लो, वह तुममें है, तुमसे था, अतः कहीं विनष्ट थोड़े ही हो गया है!'

प्रिया कहती है – 'अच्छा तो सुनो, मैं तुम्हारी रुचि रखकर एक कथा स्मरण करके कह रही हूँ। किन्तु तुम भी सावधान रहना। मुझसे आलिङ्गित कहीं मेरे रसमें डूब मत जाना। अतः सुनकर हुँकारी देते रहना। हुँकारी नहीं दोगे, तो फिर मैं भी डूब जाऊँगी। तुम जगे रहोगे, तो मैं भी जगी रहूँगी।' विशुद्ध रसकी यही परिपाटी है। ऐसा नहीं हो सकता कि एक डूब जाय एवं दूसरा जगा रहे। या तो दोनों डूबेंगे अथवा दोनों ही केलितटपर जाग्रत विचरण करेंगे।।।७९२।।

'बस्ती थी एक अहीरों की, उनका अधिपति भी था;' प्रियतम!
'उसका था एक तनूज-चपल, जिसका तन था काला;' प्रियतम!
'त्रिभुवन-जन-मन-मोहक उसने पायी थी, सुन्दरता;' प्रियतम!
'उसपर थीं बिना मोलके ही बिक गयी सभी तरुणी;' प्रियतम।।७९३।।

'सुनो!' किशोरीकी कहानी प्रारम्भ होती है। 'अहीरोंकी एक बस्ती थी। उनका एक अधिपति भी था। उसका एक पुत्र था। बड़ा ही चञ्चल था वह। उस पुत्रका गात्र काले रङ्गका था। त्रिभुवनके समस्त प्राणियोंका मन मोहित कर देनेकी शक्ति जिस सुन्दरतामें है, ऐसी सुन्दरता उस चपल बालकने पायी थी। वहाँकी सभी तरुणियाँ उस छोरेपर बिना मोलके ही बिकी हुई थीं।।।७९३।।

'कुछ देर अभी पहले की ही घटना बतलाती हूँ;' प्रियतम!
'उस काले बालक ने ऐसी वंशी में तान भरी;' प्रियतम!
'सुनते ही जिसे अङ्गनाएँ मोहित हो रुक न सकीं;' प्रियतम!
'तत्क्षण सब परित्याग करके उसके समीप आयीं;' प्रियतम।।७९४।।

'अभी कुछ देर पहलेकी ही घटना बतलाती हूँ। उस काले बालकने अपनी वंशीमें एक ऐसी तान भरी कि जिसे सुनते ही वहाँकी सभी तरुणियाँ मोहित हो गयीं और क्षणभरके लिये भी रुक न सकीं। आधा क्षण बीतते-न-बीतते सब कुछ परित्याग करके उस काले बालकके समीप आ गयीं।।।७९४।।

'स्वागत करके पहले उसने की कड़ी जाँच उनकी'; प्रियतम !
'डर दिखलाया, बहकाया भी, धर्मोचित दी शिक्षा'; प्रियतम !
'फिर पाठ पढ़ाया बढ़नेका उसके प्रति भाव, भला'; प्रियतम !
'प्राणोंमें टीस लगी चलने सुन-सुनकर उन सबके'; प्रियतम ।।७९५।।

'उस कृष्णवर्ण बालकने पहले उनका स्वागत किया। फिर उसने उनकी एक कड़ी परीक्षा ली। काले बालकने उन सबको पहले तो भय दिखलाया, फिर खूब बहकाया। इसके पश्चात् धर्मोचित शिक्षा भी उसने दी। फिर बालकने अपने प्रति भाव बढ़नेका उन सबोंको एक नूतन पाठ पढ़ाया। बालककी बातें सुन-सुनकर उन सब तरुणियोंके प्राणोंमें टीस-सी चलने लगी।।।७९५।।

'रो-रोकर उत्तर दे-देकर वे खरी उतर आयीं'; प्रियतम !
'करुणाकी ऊर्मि उठी रसमय हृत्तल में बालकके'; प्रियतम !
'उनके जीवनकी साध सभी उसने पूरी कर दी'; प्रियतम !
'है किंतु निराली प्रीति-रीति, बालक छिप गया कहीं'; प्रियतम ।।७९६।।

'वे तरुणियाँ रो-रोकर उस बालकको उत्तर दे-देकर उस परीक्षामें खरी उतर आयीं। फिर तो उस बालकके रसमय हृत्तलमें करुणाकी ऊर्मियाँ उठने लगीं। तरुणियोंके जीवनकी सभी साधें उसने उसी क्षण पूरी कर दीं। किन्तु प्रीतिकी रीति बड़ी निराली होती है। बालक तुरन्त कहीं वहीं छिप गया।।।७९६।।

'अच्छा-सा एक बहाना भी उसको मिल गया अहो!' प्रियतम !
'छोरी थी एक, उसीमें था मन फँसा हुआ उसका'; प्रियतम !
'गोरी थी वह, बेटी थी उस नृपकी, जिसके तन में'; प्रियतम !
'वे देव दिवाकर पूरित थे होकर हरदम रहते'; प्रियतम ।।७९७।।

'अहो! उस बालकको एक अच्छा सा बहाना भी मिल गया। एक छोरी थी, उसीमें उस बालकका मन फँसा हुआ था। वह छोरी गौरवर्णा थी। उस राजाकी बेटी थी, जिस नृपतिके तनमें वे देवदिवाकर नित्य निरन्तर पूरित होकर सदा निवास करते थे। अस्तु,।।७९७।।

'उस छोरीको ही साथ लिये भागा वह बालक था'; प्रियतम !
'दीखा था म्लान हुआ-सा मुख छोरीका बालकको'; प्रियतम !
'अतएव अमित सुन्दरियोंके उस नेह-जालमें भी'; प्रियतम !
'सामर्थ्य रही न उसे अब जो उलझाकर रोक सके'; प्रियतम ।।७९८।।

'उस छोरीको अपने साथ लिये वह बालक सबको छोड़कर भागा था। अचानक उस बालकको उस छोरीका मुख म्लान दीखने लगा। इसीलिये असंख्य सुन्दरियोंका स्नेहजाल व्यर्थ सिद्ध हुआ। उस जालमें अब सामर्थ्य नहीं रही थी, जो उस बालकको उलझाकर रोक सके।।।७९८।।

'इस ओर मचलनेका स्वभाव पल-पल छोरीका था'; प्रियतम !
'हो भ्रमित, समझ बैठी बालक मुझको भी छोड़ गया'; प्रियतम !
'उस ओर सत्य ही रसके उन नियमोंमें बँधा हुआ'; प्रियतम !
'बालक उन तरुणी-गणके था दृग-पथ से हटा हुआ'; प्रियतम ।।७९९।।

'उधर उस छोरीमें पल-पलमें सभी बातोंको भूलनेका स्वभाव निसर्गदत्त था। छोरी बालकके अङ्कमें ही विराजित थी किन्तु छोरी भ्रमित होकर समझ बैठी कि वह बालक मुझे भी छोड़कर चला गया। इस ओर तो छोरी भ्रमवश ऐसा समझ बैठी, उधर रसके नियमोंमें बँधा हुआ बालक उन तरुणीगणके दृगपथसे सचमुच ही हट गया था।।।७९९।।

'उमड़ी वियोगकी दो सरिता दो भिन्न दिशाओं से; प्रियतम!
'संगमित हुई पथमें, तटपर बालक था खड़ा वहीं'; प्रियतम!
'कानों में उसके गूँज रही ध्वनि थी प्रवाहिणीकी; प्रियतम!
'हो रहे चित्र हृत्पटपर थे अङ्कित सब लहरों के; प्रियतम।।८००।।

'इस प्रकार वियोगकी दो सरिताएँ दो विभिन्न दिशाओंसे उमड़ चलीं। दोनों सरिताएँ पथमें आकर सङ्गमित भी हो गयीं। वहीं उसी तटपर बालक खड़ा भी था। उसके कानोंमें प्रवाहिणीकी ध्वनि गूँज रही थी और उसके हृत्पटपर सभी लहरोंके चित्र ज्यों-के-त्यों अङ्कित हो रहे थे।'.......।।८००।।

'मोहन-सुजात-पद-नीरजको क्षत लग न जाय कोई,' प्रियतम!
'लेकर इस भय को ही अपने कर्कश उरपर रखतीं'; प्रियतम!
'रे हाय! हो रही क्या होगी दयनीय दशा उसकी'; प्रियतम!
'काँटों से, पत्थर के कणसे, इस घोर अँधेरे में।' प्रियतम।।८०१।।

'हाय रे! उस महामोहन सुन्दरातिसुन्दर पद-सरोजको किञ्चित् भी कोई-सा क्षत न लग जाये-इस भयसे नित्य भयभीत हुई हम सभी उस पद-कञ्जको अपने कर्कश हृदयपर धारण करतीं। किन्तु हाय रे! हाय! उस पदसरोजकी इस समय कैसी दयनीय दशा हो रही होगी, क्योंकि सर्वत्र काँटे बिखरे हुए हैं। पत्थरके तीक्ष्ण कणोंसे भूमि परिपूरित है और सर्वत्र घोर अँधेरा भरा हुआ है।।।८०१।।

'जैसे प्रतिचित्रित यह लहरी करुणा से सिक्त हुई'; प्रियतम!
'बालक उनके दृग के आगे हँसकर हो गया खड़ा,' प्रियतम!
'कोई अर्गला न अब रसके लेने-देने में थी'; प्रियतम!
'अनुभूति उस समयकी उनकी कोई न कह सकेगी,' प्रियतम।।८०२।।

'जैसे ही करुणासे सिक्त हुई यह लहरी उस बालकके हृद्देशपर प्रतिचित्रित हुई कि बस, उसी क्षण वह श्यामवर्ण बालक उनके दृगके आगे हँसता हुआ खड़ा हो गया। अब रसके आदान-प्रदानमें कोई अर्गला न रही। उन असंख्य सुन्दरियोंको उस समय क्या, कैसा अनुभव हुआ, इसे कोई भी चित्रित कर ही नहीं सकता।।।८०२।।

'इसके पश्चात् नाचने का आयोजन बृहत् हुआ,' प्रियतम!
'छोरी नाची, बालक नाचा, सब-की-सब वे नाचीं,' प्रियतम!
'उनकी इस नृत्य-कहानी का अब एक अंश-भर है,' प्रियतम!
'मेरे मानस-पटपर अङ्कित, बाकी मैं भूल गयी,' प्रियतम।।८०३।।

'इसके पश्चात् परम मनोहर नृत्यका बृहत् आयोजन हुआ। गौरवर्णा छोरी नाची, फिर उस बालकका नृत्य

हुआ। सब-की-सब तरुणियाँ अपना-अपना नृत्य दिखाकर आनन्दके समुद्रको तरङ्गित करने लगीं। उनकी इस नृत्यकहानीका एक अंश मात्र अब मेरे मानस पटपर अङ्कित है भला! शेष सभी मैं सर्वथा भूल गयी हूँ।।।८०३।।

जिज्ञासा

कृपया छन्द संख्या ७९३ से ८०३ तक जो प्रिया श्रीराधारानीने अपने प्रियतम नीलसुन्दरको कहानी कही है, उस कहानीको विस्तारसे कह दीजिये।

समाधान

प्रिया श्रीराधा अपने प्रियतमके अङ्कसे लिपटी उन्हें कहानी सुनाना प्रारंभ करती हैं -

'प्रियतम! किसी प्रदेशमें ऐसे अहीरों (गोपों) की बस्ती थी, जिन अहीरोंकी चरणधूलिकी ब्रह्मा एवं महेश्वर भी वांछा करते हैं। ये अहीर इतने पवित्रात्मा थे कि स्वयं भगवान् नारायण भी अपने मुखसे उनकी भक्तिसेवाकी प्रशंसा करते स्वीकार करते थे कि 'हे अहीरों! तुमने घर-परिवारकी बड़ी कठिन बेड़ियोंको तोड़कर मेरी भक्तिसेवा की है। तुम्हारे इस सेवाकार्यका मैं देवताओंके समान आयुमें सर्वस्व तुम्हें देकर भी बदला नहीं चुका सकता। तुम ही अपनी उदारतासे भले ही मुझे उऋण करना। मैं अपने प्रयाससे तुम्हारा ऋण कभी चुका नहीं सकता।' ऐसे अहीरोंकी बस्तीमें अधिपति थे महाराज नंदराय और उनकी धर्मपत्नी थीं — सती-साध्वी यशोदा। ये यशोदा भी ऐसी वात्सल्यमयी थीं कि देवर्षि नारदतक उनकी स्तुतिकर कहते थे -

कि ब्रूमस्त्वां यशोदे कति कति सुकृत क्षेत्र वृन्दानि पूर्वं
गत्वा कीदृग् विधानैः कति कति सुकृतान्यर्जितानि त्वयैव।
नो शक्रो न स्वयम्भूर्न च मदनरिपुर्यस्य लेभे प्रसादम्
तत्पूर्णं ब्रह्म भूमौ विलुठति विलपत् क्रोड़मारोढुकामम्।।

'हे यशोदे! तेरा सौभाग्य महान् है। क्या कहें, न जाने तूने पिछले जन्मोंमें तीर्थोंमें जाकर कितने महान् पुण्य किये हैं। अरी! जिस विश्वपति, विश्वसृष्टा, विश्वरूप, विश्वाधार भगवान्की कृपाको इन्द्र, ब्रह्मा और शिव भी नहीं प्राप्त कर सकते, वही पूर्णब्रह्म आज तेरी गोद चढ़नेको जमीनपर लोट रहा है।'

नन्द-यशोदा व्रजदम्पतिके एक अतिशय चपल पुत्र था। इस श्यामवर्णके बालककी सुन्दरता त्रिभुवन-जन-मन-मोहक सर्वजयी थी। वह एक बार भी जिसकी ओर प्रेमकी दृष्टिसे देख लेता उसीपर प्रेमसुधा बरसाकर उसे अपने वशमें कर लेता था। उसकी सम्पूर्ण विषयासक्ति नष्ट हो जाती एवं वह मुग्ध, उसका अनन्य प्रेमी बन जाता था। उसे फिर उस काले-कलूटे नंदसुतके सिवा माता-पिता, भाई-बंधु, पति-परिवार अन्य कुछ भी नहीं सुहाता था। अच्छे-भले परस्पर एक-दूसरेको सलाह देते थे - 'अरे भाई! तुम्हारे हितके लिए सावधान किये देता हूँ - उस नंदगोपतनय नव नीलमेघके समान काले-कलूटे छैला, बालकको अपना बंधु कहीं भूलकर भी मत बना लेना; वह अमृत बरसानेवाली अपनी मुस्कानसे तुम्हें मोहित कर ही लेगा और फिर तुम्हारा सर्वस्व हरण करनेमें उसे क्षण भी नहीं लगेंगे।'

बड़े-बड़े ज्ञानी विचारक, अद्वैतमार्गके अनुयायियों द्वारा पूज्य एवं स्वाराज्यरूपी सिंहासनपर प्रतिष्ठित होनेका अधिकार प्राप्त किये हुए दुर्वासादि महापुरुषोंको भी यह बालक जबर्दस्ती, इच्छा नहीं रहनेपर भी हठपूर्वक अपना प्रेम ही नहीं, चरणोंका गुलाम बना लेनेमें समर्थ था।

फिर बिचारी व्रजमें रहनेवाली तरुणी गोपाङ्गनाओंकी क्या बिसात जो उस नंदतनयके प्रेमजालमें नहीं फँस जातीं। इन सभी व्रजवासिनी तरुणियोंका राग भुक्ति-मुक्तिके दुर्लभ प्रलोभन-पर्वतोंको लाँघकर बस, उस काले

व्रजेन्द्रनन्दन यशोदासुतको अर्पित हो गया। ये गोपाङ्गनाएँ - छोटी-छोटी बालिकाओंसे लेकर तरुणी पति-पुत्र-परिवारवाली गृहस्थ स्त्रियोंतक उस अहीरसुतको अपने मन-प्राण - सबकुछ समर्पित कर बैठीं। वे सभी ऐसी दीवानी बनीं कि उनका जगना-सोना, खाना-पीना, चलना-फिरना, शृङ्गार-सज्जा करना, बातचीत करना - सबकुछ मात्र उस काले कृष्णको सुख पहुँचानेके लिए होने लगा। वे अपने शरीरकी रक्षा भी मात्र अपने शरीरोंको श्रीकृष्णकी सुख-सामग्री मानकर ही करती थीं। वे अहीर युवतियाँ उस बालककी इतनी प्रेमपात्राएँ बन गयीं कि उन-जैसा प्रेम प्राप्त करनेकी इच्छा देवाङ्गनाओंतकमें जग उठी।

उन अहीरनियोंकी सबसे बड़ी यही विशेषता थी कि उनमें निज सुखकी कामना लेशमात्र भी नहीं थी। वस्तुतः होता यही है कि सभी लोग अपने सुखके लिए दूसरेको प्रेम करते हैं, किन्तु उन अहीरबालाओंका चित्त अपने सुखका कभी विचार-सङ्कल्प नहीं करता था। वे तो उस काले-कलूटे नन्दतनूजको हँसता-मुस्काता सुखी देखकर दिनरात उसके ही सुखसे सुखी हुईं आत्मानन्दमें डूबी रहतीं। इन अहीरनियोंका प्रेम काम-कालिमा-शून्य था, वह निर्मल भास्करवत् जाज्वल्यमान्, निर्मल, अलौकिक था।

हम विषय-विमोहित जीव कामको ही प्रेम मानकर पाप-पङ्कमें फँस जाते हैं। काम जहर मिला हुआ मधु है। काम कुछ ही क्षणोंमें दुःखके रूपमें बदल जाता है। काममें इन्द्रियतृप्ति, इन्द्रिय-चरितार्थता है; प्रेममें तन्मयता, प्रियतम-सुखकी नित्य प्रबल आकांक्षा है। काममें इन्द्रियतृप्तिरूप सुख है, किन्तु उसका परिणाम घोर दुःख है। प्रेम सदा अतृप्त होनेपर भी नित्य परम सुखस्वरूप होता है। काम खण्ड है; आज है, कल नहीं है। प्रेम नित्य, अविनाशी, अखण्ड होता है। प्रेम नित्यवर्धनशील है, काम क्षण-विनाशी है। प्रेमका विषय पूर्ण त्याग है, चरम आत्मविस्मृति है, कामका विषय विषयभोग है एवं आत्मतृप्ति है।

उन अहीर तरुणियोंमें अवश्य मधुर रस कान्ताभावकी प्रधानता थी। अतः वे अपने प्रेमास्पद नन्दतनयको तन-मन-धन, रूप-यौवन, लोक-परलोक सबकुछ समर्पितकर सुख पहुँचानेकी इच्छाको अपनी कामना ही मानती थीं। इस अपनी कामपूर्तिके लिए कात्यायनी आदि देवीका व्रत-अनुष्ठान भी करती थी किन्तु सत्यांशमें समस्त इन्द्रियों, मन और बुद्धिके द्वारा एकमात्र प्रियतमके सुखी होनेसे उनका कान्ता-भावयुक्त काम भी यथार्थमें विशुद्ध प्रेम ही था। इसका मूल कारण यही था कि गोपियोंमें से किसी एकमें भी निजेन्द्रिय-सुखकी इच्छा थी ही नहीं। वे सभी अहीर तरुणियाँ नन्दतनयके हाथों बिना मोलकी बिकी दासियाँ थीं।

प्रियतम! कुछ देर पहले अभीकी ही घटना बतलाती हूँ, उस काले बालकने ऐसी वंशीकी तान भरी कि उस अनङ्गवर्धक (श्रीकृष्ण-मिलनकी कामनाको बढ़ाने वाले) निनादके कानोंमें पड़नेसे समस्त अहीरवनिताओंका मन श्रीकृष्णमय हो गया। वे उसी समय तत्क्षण ही सबकुछ छोड़कर अपने प्रियतम श्रीकृष्णके पास चली गयीं। उतावलीके कारण किसी भी अहीरनीने अन्य किसीको साथ लेनेका प्रयत्न नहीं किया। सब अलग–अलग ही जो जिस अवस्था में थी, उसी अवस्थामें सबकुछ भूलकर उस काले बालकको लक्ष्यकर दौड़ पड़ीं।

कोई प्रश्न कर सकता है कि अनङ्गवर्धक उस मुरली निनादको सुनकर उन्हें अपने पतियोंके पास जाना चाहिए था। वे तो सती-साध्वी पतिव्रता स्त्रियाँ थीं, फिर वे नन्दतनयके पास क्यों गयीं? इसका कारण यही था कि गोपियोंका अनङ्ग लौकिक देहेन्द्रियगत कामविकार नहीं था, वह तो योगिजन-दुर्लभ श्रीकृष्णमिलनकी कामना थी, जो किसी अङ्गवाली नहीं होनेपर भी अतिशय प्रबल थी और उसने उन अहीरबालाओंको बरबस अपने प्रियतम – उस काले बालककी ओर दौड़नेको विवश कर दिया था। वंशीध्वनि उन अहीरबालाओंको अखण्ड आनन्द प्रदान करनेके लिए उस काले-बालकका अनिवार्य निमंत्रण था, उसे वे कैसे टाल सकती थीं?

वंशीका यह पवित्र सङ्गीत अपनी सुधामयी स्वर-लहरीसे समस्त वृन्दावनको आप्लावित करता हुआ, आकाशमें

पहुँचा एवं वहाँ उसने जलदसमूहोंको स्तंभित कर दिया; स्वर्गमें देवगन्धर्व-गायक तुम्बुरूको पुनः-पुनः चकित करता हुआ, ब्रह्मलोकमें सनन्दनादि महामुनियोंकी निर्गुण ब्रह्मविषयक निर्बीज समाधिको भंग करता हुआ, स्वयं प्रजापति ब्रह्माको विस्मित करता हुआ - यों ऊर्ध्वलोकमें अपनी विजय-पताका फहराकर नीचे पातालकी ओर चला। वहाँ राजा बलिको चौंकाकर नागराज शेषके सहस्र फणोंको कँपाकर, अखिल ब्रह्माण्डकटाहको भेदकर वह वंशी-सङ्गीत सर्व ओर फैल गया।

परन्तु इतनेपर भी इस आवाहन–सङ्गीतको सुना मात्र उन अहीरनियोंने ही।

सुनत चलीं व्रज-वधू गीत-धुनि कौ मारग गहि।
भवन भीति द्रुम कुंज पुंज कित हूँ अटकीं नहिं।
नाद अमृत कौ पंथ रँगीलौ सूछम भारी।
तिहिं व्रजतिय ले चलीं, आन कोउ नहिं अधिकारी।

वे अहीरबालाएँ मुरलीध्वनिको लक्ष्य करके उन्मत्तकी तरह भाग चलीं और उस काले बालकके चरण-प्रान्तोंमें आ पहुँचीं। अहीरबालाओंकी सदैव उस काले बालकमें ही बुद्धि एकाग्र थी। वे शरीरसे निरन्तर गृहकार्योंमें लगी रहतीं, किन्तु उनके मन एवं वाणी विषयोंसे आत्यंतिकरूपसे विमुख रहते थे, घर-परिवार आदि किसी भी भोग पदार्थमें उनका राग नहीं था। उन्हें खान-पानकी भी सुधि नहीं रहती थी। वे काले बालकके ही ध्यानमें संलग्न, उसीकी दृढ़ धारणासे अपने अन्तःकरणको उसमें तन्मय बनाये रखतीं। वे सदैव उसीसे मिलनेको व्याकुल रहतीं। इन परमोच्च साधकोचित गुणोंवाली होनेसे ही उन्हें उस बालकका आवाहन–सङ्गीत सुनायी पड़ा था, और वे निर्बाध उस बालकके पास पहुँच पायी थीं। वहाँ फिर उनके प्रेमकी परीक्षा हुई।

पहले-पहले तो उस काले बालकने उनका स्वागत किया। वह बोला –

स्वागतं वो महाभागाः प्रियं किं करवाणि वः।
व्रजस्यानामयं कच्चिद् ब्रूतागमन कारणम्।। (श्रीमद्भा १०।२८।९७।)

'हे महाभागाओं! तुम्हारा स्वागत है। कहो, मैं तुम्हारा क्या प्रिय कार्य करूँ? व्रजमें सब कुशल तो है? इस समय यहाँ आनेका आप लोगोंका क्या प्रयोजन है, इसे बतलाओ।'

हे प्रियतम! उस काले बालककी उपरोक्त वाणी सुनकर वे अहीरबालाएँ मुस्कुरा भर दीं, कुछ बोली नहीं। वह काला बालक उन गोपियोंसे पुनः बोला –

'सुन्दरियों! देखो रात्रि बड़ी घोर है। इस समय बहुतसे भयानक जीव इधर-उधर विचरण कर रहे हैं। इसलिए तुम लोग तुरन्त व्रजको लौट जाओ। यहाँ स्त्रियोंका अधिक काल ठहरना उचित नहीं। तुम्हें घरमें न देखकर तुम्हारे माता-पिता, पुत्र, भाई एवं पति आदि तुम्हें ढूँढते फिर रहे होंगे। तुम यहाँ ठहरकर उन्हें व्यर्थ घबड़ाहटमें मत डालो।'

उस काले बालकने सांसारिक संबन्धियोंकी बात याद दिलाकर यह जानना चाहा कि देखें, गोपियोंके मनमें उनके प्रति मोह या उनसे भय है या नहीं। परन्तु गोपियाँ इस परीक्षामें उत्तीर्ण हो गयीं। उन अहीरबालाओंके मनमें संसारकी आत्मीयताकां कुछ भी मोह नहीं था। वे उस काले बालकके प्रेममें डूबी रहीं।

हे प्रियतम! वह काला बालक उन्हें पुनः बहकाने लगा – 'हे गोपियों! तुम रजनीशकी रश्मियोंसे रञ्जित और यमुनाजलके स्पर्शसे शीतल मंद-मंद पवनकी गतिसे हिलते हुए नव पल्लवोंसे सुशोभित एवं कुमुद-कुसुम-मंडित, इस मनोहर वृन्दावनकी शोभा निरख चुकीं। अब हे सतियों! विलम्ब मत करो, तुरन्त ही व्रज लौट जाओ और अपने-अपने पतियोंकी सेवा करो। देखो, बालक और तुम्हारी गायोंके बछड़े रो रहे होंगे, जाकर उन्हें दूध पिलाओ। जाओ, गायें भी तुम्हें दुहनी शेष हैं।'

हे प्रियतम! उस काले बालकने 'सती' सम्बोधन करके गोपियोंको पतियोंकी स्मृति करायी। सती स्त्रीके लिए पति-सेवासे बढ़कर और कौन-सा महत्वका कार्य हो सकता था। माताको पुत्र और ग्वालिनोंको गौ-बछड़े अतिशय प्रिय होते हैं। उस काले बालकने उनका भी करुण शब्दोंमें स्मरण कराया। वह काला बालक यही परीक्षा कर रहा था कि इनका मन पति-पुत्रोंमें उलझा है या सबसे विरक्त होकर ये केवल मुझे ही चाहती हैं। गोपियाँ इस परीक्षामें भी पूरी उत्तीर्ण हो गयीं।

अब वह काला बालक उनसे पुनः पूछने लगा – 'हे अहीरबालाओं! तुम यदि मेरे स्नेहके कारण आसक्तचित्त होकर मुझे ही देखने आयी हो तो भी कोई दोषकी बात नहीं है, क्योंकि परमात्माने मुझे ऐसा ही सौन्दर्य दिया है कि मुझको देखकर सभी प्राणी प्रसन्न होते हैं। किन्तु हे कल्याणियों! पति और उसके बंधुओंकी निष्कपट भावसे सेवा करना एवं संतानका पालन-पोषण करना ही स्त्रियोंका परम धर्म है। जिन स्त्रियोंको शुभ गति पानेकी इच्छा हो वे अपने पातकी पतिका भी त्याग नहीं करें – यही शास्त्र एवं धर्मसङ्गत है। पति चाहे बुरे स्वभाववाला, अभागा, वृद्ध, मूर्ख, रोगी या निर्धन ही क्यों न हो, कुलस्त्रियोंके लिये उसीकी सेवा करना उत्तम धर्म-कर्म है। उपपतिकी सेवा करना तो नारी जातिके लिए महापाप है।'

उस काले बालकने उन अहीरबालाओंके सामने पूर्ण धर्मोचित कर्त्तव्यपथ खोलकर रख दिया। यदि वे अहीरबालाएँ उसको सुन्दर युवक मानकर कामाभिलाषासे आयी हों तो वे निश्चय ही नरकगामिनी होंगी।

इस धर्मोचित शिक्षाके पश्चात् भी जब गोपियाँ उस बालकके पाससे एक कदम भी नहीं हटीं तो वह बालक पुनः कहने लगा – 'हे अहीरबालाओं! यदि मुझमें तुम कुछ ईश्वरीय श्रद्धा एवं आत्मभाव रखकर प्रेमवश आयी हो तो भी तुम्हें मेरे गुण-श्रवण, दर्शन, ध्यान और कीर्त्तनका ही आश्रय लेना चाहिए। पास रहनेसे वैसी प्रीति एवं श्रद्धा कदापि नहीं होती, जैसी दूर रहनेसे होती है। इसलिए तुम अपने घरोंको लौट जाओ।'

हे प्रियतम! उस काले बालकका यह अप्रिय भाषण सुनकर वे अहीरबालाएँ उदास एवं खिन्न हो गयीं। उनके मुख नीचे लटक गये एवं वे पैरोंके नखोंसे धरा कुरेदने लगीं। उनके नेत्रोंसे दुःखके आँसू बह-बहकर काजलके साथ वक्षःस्थलपर गिरने लगे और वहाँ लगी केसरको धोने लगे।

हे प्रियतम! उन अहीरबालाओंका उस काले बालकसे अनन्त अनुराग, परम प्रेम था। उन्होंने इस काले बालकके स्नेहके पीछे संपूर्ण कामनाएँ एवं भोग छोड़ दिये थे। जब उन्होंने अपने प्रियतमसे ऐसी निष्ठुरताभरी बातें सुनी तो उनकी आँखें रोते-रोते लाल हो गयीं। फिर वे गद्गद् वाणीसे अपने प्रियतमसे कहने लगीं –

'हे कृष्ण! तुम हमारे ह्रदयकी सब बात जानते हो। तुम्हें इस प्रकार निष्ठुरताभरे वचन नहीं कहने चाहिए। हम सर्वस्व त्यागकर केवल तुम्हारे चरणोंमें ही प्रेम करती हैं। इसमें संदेह नहीं कि तुम स्वतंत्र एवं हठीले हो। तुमपर हमारा कोई वश नहीं है। फिर तुम अपनी ओर देखकर, जैसे आदिपुरुष भगवान् नारायण कृपा करके अपने मुमुक्षु भक्तोंसे प्रेम करते हैं, वैसे ही हमें स्वीकार कर लो। हमारा त्याग मत करो।'

'प्यारे श्यामसुन्दर! तुम सब धर्मोंका रहस्य जानते हो! तुम्हारा यह कहना यथोचित है कि स्त्रियोंका पति, पुत्र एवं भाई-बंधुओंकी सेवा करना ही स्वधर्म है। किन्तु इस उपदेशके अनुसार भी हमें तुम्हारी ही सेवा करनी चाहिए। क्योंकि तुम्हीं सब उपदेशोंके पद, समस्त जीवधारियोंके सुह्रद, आत्मा एवं परम प्रियतम हो। तुम्हीं नित्य प्रिय एवं अपने आत्मा हो, जबकि पति-पुत्रादि अनित्य एवं दुःखदायी हैं। कृपा करो। कमल नयन! चिर कालसे तुम्हारे प्रति पाली-पोसी अभिलाषाकी लहलहाती लताका छेदन मत करो।'

'हे मनमोहन! अब तो हमारी विचित्र दशा है। हमारी इन्द्रियाँ ही विद्रोहिणी होकर तुमपर अनुरक्त हो चुकी हैं। हमारे ये पैर तुम्हारे चरणकमलोंको छोड़कर एक कदम भी हटनेको उत्सुक नहीं हैं। जबतक हमारा चित्त घरके

काम-धंधोंमें लगता था, हमारे हाथ भी उस गृहकार्यमें लगे रहते थे। परन्तु जब तुमने हमारा चित्त ही चुरा लिया, तो हमारे हाथ तुम्हारी सेवाके सिवा कुछ भी अन्य कार्य करनेके प्रति विद्रोही हो उठे हैं।'

'हमारे प्यारे सखा! तुम्हारी मन्द-मन्द मधुर मुस्कान, प्रेमभरी चितवनने हमारे ह्रदयमें तुमसे मिलनेकी आग धधका दी है। तुम उसे अपनी अधरोंकी रसधारासे बुझा दो न! अन्यथा हम सच कहती हैं, तुम्हारी विरहव्यथाकी आगसे हम अपने शरीरोंको जला देंगी और ध्यानके द्वारा तुम्हारे चरणकमलोंको प्राप्त करेंगी।'

'पुरुषभूषण! तुम्हारी मधुर मुस्कान और चारु-चितवनने हमारे ह्रदयमें प्रेमकी - मिलनकी आकांक्षाकी आग धधका दी है; हमारा रोम-रोम उससे जल रहा है। तुम्हारा सुन्दर मुखकमल, जिसपर घुँघराली अलकें झलक रही हैं, तुम्हारे ये कमनीय कपोल, जिनपर सुन्दर-सुन्दर कुंडल अपना अनन्त सौंदर्य बिखेर रहे हैं; तुम्हारे ये मधुर अधर जिनकी सुधा अमृतको भी तुच्छ कर दे रही है, तुम्हारी यह नयन-मनोहारी चितवन जो मन्द-मन्द मुस्कानसे उल्लसित हो रही है, तुम्हारी ये सुदीर्घ भुजाएँ, तुम्हारा यह वक्षःस्थल देखकर हम सभी तुम्हारी बिना मोलकी दासी हो गयी हैं।'

'प्यारे श्यामसुन्दर! तीनों लोकोंमें ऐसी कौनसी स्त्री है, जो तुम्हारी वंशीकी तान सुनकर कुलकान एवं लोकलज्जाको त्यागकर तुमसे अनुरक्त नहीं हो जाये। तुम्हारी त्रिलोकसुन्दर मोहिनी मूर्त्ति - जो अपनी एक बूँद सौंदर्यकी छायासे त्रिलोकीको सुन्दरता दान करती है एवं जिस तुम्हारे सौंदर्यको देखकर गो आदि पशु, पक्षी, वृक्ष एवं जड़ पहाड़ोंके प्रस्तर, इस वृन्दावनकी धराके खण्ड भी रोमाञ्चित, पुलकित हो जाते हैं, उस तुम्हारी मुनिमोहिनी छविको नेत्रोंसे निहारकर भला कोई भी युवती स्त्री क्या आर्य-मर्यादासे विचलित नहीं होगी, क्या वह कुलकान और लोकलज्जाको त्यागकर तुममें अनुरक्त नहीं हो जायेगी?'

'प्रियतम! हम भी तुम्हारे मिलनकी आकांक्षासे बहुत ही दुःखी हैं, हमारा वक्षस्थल जल रहा है। तुम अपनी हम दासियोंके वक्षःस्थल और सिरपर अपने कोमल कर-कमल रखकर इन्हें अपना लो; हमें जीवनदान दो।'

हे प्रियतम नीलसुन्दर! जब गोपियाँ सब प्रकारसे प्रेमकी परीक्षामें उत्तीर्ण हो गयी एवं रो-रोकर उस नीरद-वर्ण काले बालकसे प्रेमभरी प्रार्थना करने लगीं तो उस कृष्ण बालकका ह्रदय दया एवं प्रेमसे भर आया एवं उसने अपनी भावभङ्गी एवं चेष्टाएँ गोपियोंके अनुकूल कर दीं।

जैसे बालक अपने प्रतिबिम्बके साथ खेलता है इसी भाँति उस बालकने हँसकर उन अहीरबालाओंके साथ क्रीड़ा प्रारंभ की। यद्यपि वह काला बालक आत्माराम था, उसे अपने अतिरिक्त और किसी भी बाह्य वस्तुकी अपेक्षा नहीं थी। फिर भी उसने अपने स्वरूपमें ज्यों-की-त्यों एकरस अच्युत स्थित रहकर उन अहीरबालाओंके साथ हँसकर प्रीति-क्रीड़ा प्रारंभ कर दी। प्रियतम! जब वह बालक खुलकर मुस्कुराता तब उसके उज्ज्वल-उज्ज्वल दाँत कुन्दकलीके समान जान पड़ते थे। उस बालककी प्रेमभरी चितवनके दर्शनके आनन्दसे उन अहीरबालाओंका मुखकमल प्रफुल्लित होकर खिल उठा। वे रमणियाँ उस बालकको चतुर्दिक् घेरकर खड़ी हो गयीं। उस समय उस बालककी ऐसी शोभा थी मानो अपनी प्रेयसी तारिकाओंके साथ चन्द्रमा हो। वह काला बालक वैजयन्तीमाला पहनकर वृन्दावनमें विचरण करने लगा। कभी गोपियाँ उस बालकके गुण और लीलाओंके गीत गातीं, कभी वह बालक उन गोपियोंकी प्रीति एवं सुन्दरताके गीत गाने लगता।

हे प्रियतम! इसके पश्चात् जैसे गजराज असंख्य हथिनियोंके साथ वनमें विचरण करता है,उसी भाँति उस कृष्ण बालकने उन अहीर युवतियोंके साथ यमुनाके पावन पुलिनपर, जो कपूरके समान चमकीली बालुकासे जगमग-जगमग कर रहा था, पदार्पण किया। वह पुलिन यमुनाकी तरल तरङ्गोंके संस्पर्शसे सुवासित वायुके द्वारा सुसेवित हो रहा था। उस आनन्दप्रद पुलिनपर भगवान्ने गोपियोंके साथ क्रीड़ा की।।।७९६।।

उन अहीरबालाओंमें उस नृपकी पुत्री भी सम्मिलित थी, जिस नृपमें मूर्त्तिमान् सूर्यदेव सदैव विराजित रहते थे।

उस बालिकाका उस कृष्ण बालकके प्रति अचिन्त्य एवं अनिर्वचनीय अनुराग था। वह प्रेम परम विशुद्ध एवं परमोज्ज्वल था। वह बालिका उस काले किशोरसे निरतिशय प्रेम करती हुई भी अपने आपको सदा-सर्वदा सर्वथा ही प्रेमशून्य मानती थी। वह परम सुन्दरी, सर्वगुणनिधि होनेपर भी अपनेको सर्वथा हीन-मलीन मानती थी। वह पल-पलमें, पद-पदपर अपने प्रियतमके प्रेमकी प्रशंसा करती, किन्तु स्वयंकी कुरूपता और भोलेपनपर दुःख प्रकट करती रहती थी।

उस सूर्यपुत्रीकी निष्कपट, निश्छल, निरभिमान प्रीतिके कारण वह काला बालक मन-ही-मन उस किशोरी गोरीपर पूरा न्यौछावर था। उस किशोरीमें नित्यवर्धनशील प्रेमजन्य उत्कंठा थी। उसकी एकान्त मिलनजन्य उत्कंठाको वह नीलसुन्दर किशोर चुपचाप निरख रहा था। इधर उन शेष अहीरबालाओंमें उस किशोरके अनुकूल प्रेमके कारण सौभाग्यमद उदय हो गया एवं वे गर्ववती हो उठी थीं। उस किशोरने भानुकन्याकी नित्यवर्धनशील प्रेममयी उत्कण्ठा एवं तज्जन्य उसकी भाव-मधुरिमा और खिन्न मुख देख उसे तो चुपचाप अपने साथ ले लिया और उन अहीरबालाओंके मध्यसे अन्तर्धान हो गया। वह नीलसुन्दर उन गोपाङ्गनाओंको प्रेमभावजन्य दैन्यकी शिक्षा देना चाहता था। हे प्रियतम! उस नीलसुन्दरको अपने मध्यसे अंतर्धान देखकर उन व्रजयुवतियोंकी ऐसी ही दशा हो गयी जैसे मणि छिन जानेपर गजराजकी होती है। उन सभीका हृदय विरहकी ज्वालासे जलने लगा।

उस काले बालककी मदोन्मत्त गजराजकी-सी चाल, प्रेमभरी मुस्कान, विलासभरी चितवन, मनोरम प्रेमालाप, शृङ्गाररसयुक्त भावभंङ्गिमाओंने उनके चित्तको चुरा लिया था। वे मतवाली गोपियाँ कृष्णमय हो उठीं। वे सब परस्पर मिलकर ऊँचे स्वरसे उस कृष्णके गुणोंका गान करने लगीं। वे वनस्पतियोंसे, पेड़-पौधोंसे उसका पता पूछने लगीं -

है गइँ विरह विकल तब बूझत द्रुम बेली वन।
को जड़, को चैतन्य, कछु न जानत विरही जन।।
हे मालति! हे जाति! यूथिके! सुनि हित दै चित।
मान-हरन मन-हरन गिरिधरन लाल लखे इत।।
हे केतकि! इत तैं चितए कितहूँ पिय रूसे।
कै नँदनंदन मंद मुसकि तुमरे मन मूसे।।
हे मुकताफल बेलि! धरैं मुकतामनि माला।
निरखे नैन विसाल मोहने नँद के लाला।।
हे मंदार उदार, वीर करवीर महामति।
देखे कहुँ बलवीर वीर मनहरन धीर-गति।।
हे चंदन! दुख कंदन! सब कहुँ जरत सिरावहु।
नंदनँदन जगबन्दन! चंदन हमहिं मिलावहु।।
बूझहु री इन लतनि फूलि रहि फूलनि सोहीं।
सुन्दर पिय कर परस बिना अस फूल न होहीं।।
हे सखि, ये मृगबधू इनहि किन बूझहु अनुसरि।
डहडहे इनके नैन, अबहिं कितहूँ चितये हरि।।
अहो कंदब! अहो अंब, निंब, क्यों रहे मौन गहि।
अहो बट, तुंग सुरंग वीर कहुँ इत उलहे लहि।।
जमुन निकट के विटप पूछि भईं निपट उदासी।
क्यों कहिहैं सखि! महा कठिन ये तीरथवासी।।

हे अवनी, नवनीतचोर चितचोर हमारे।
राखे कितै दुराइ बतावहु प्रानपियारे।।
अहो तुलसि कल्यानि! सदा गोविंद-पद-प्यारी।
क्यों न कहति तू नंदनंदन सौं बिथा हमारी।।
अपने मुख चांदने चलैं सुन्दरि तिन माहीं।
जहँ आवै तम पुंज कुंज गहवर तरु छाँही।।(नन्ददासजी)

वे अहीरकन्याएँ इस प्रकार कहकर कभी ब्रजरजमें लोटने लगतीं, एवं कभी उस काले बालककी-सी लीलाएँ करने लगतीं। उन्हें यह भी भली प्रकार ज्ञात हो गया था कि हम अहीरबालाओंकी सखी भानुकुमारी उस नीलसुन्दरके साथ अकेली गयी हैं। वे हरिनियोंसे पूछतीं – 'अरी सखी हरिनियों! हमारे प्यारे श्यामसुन्दरके अङ्ग-सङ्गसे सुषमा-सौंदर्यकी धाराएँ बहती हैं। वे अपनी प्राणप्रियाके साथ तुम्हारे नयनोंको परमानन्दका दान करते हुए इधरसे तो नहीं गये हैं? देखो, देखो, यहाँ गोपेन्द्र-युवराज श्रीकृष्णकी कुन्दकलीकी मालाकी मनोहर गन्ध आ रही है, जो उनकी परम प्रेयसीके अङ्ग-सङ्गसे लगे हुए कुच-कुंकुमसे अनुरञ्जित रहती है।

पुनः वे तरुवरोंसे अनुसंधान करती हैं– 'हे तरुओं! हमारे प्रियतमकी मालाकी तुलसीमें ऐसी सुगन्ध है कि उसकी गन्धके लोभी मतवाले भ्रमर प्रत्येक क्षण उसपर मँडराते रहते हैं। उनके एक हाथमें लीलाकमल होगा एवं वे दूसरा हाथ अपनी प्रेयसीके स्कंधदेशपर रखे होंगे। हमारे श्यामसुन्दर इधरसे विचरते हुए अवश्य गये होंगे। जान पड़ता है तुम लोग उन्हें प्रणाम करनेके लिए ही झुके हो। परन्तु उन्होंने अपनी प्रेमभरी चितवनसे भी तुम्हारी वन्दनाका अभिनन्दन किया है या नहीं? अरी सखी! इन लताओंसे पूछो। अवश्य ही ये अपने पति वृक्षोंको भुजपाशमें बाँधकर आलिङ्गन किये हुए हैं, किन्तु इससे क्या हुआ? इनके शरीरमें जो पुलक एवं रोमाञ्च हैं वह तो हमारे नीलसुन्दरके नखोंके स्पर्शसे ही हैं। अहो! इनका कैसा सौभाग्य है?'

हे प्रियतम! इस प्रकार मतवाली गोपियाँ प्रलाप करती हुईं उस कृष्ण किशोरको ढूँढती-ढूँढती कातर हो रही थीं। शनैः शनैः उनका भावावेग और प्रगाढ़ हो उठा और वे कृष्णकिशोरमय होकर उसकी विभिन्न लीलाओंका अनुकरण करने लगीं। एक अहीरबाला पूतना बन गयी, तो दूसरी कृष्ण बनकर उसका स्तन पीने लगी। कोई गोपी तृणावर्त दैत्यका रूप रखकर कृष्ण बनी गोपीको कन्धेपर डालकर उड़नेका अभिनय करने लगी। एक गोपी कृष्ण बन गयी तो दूसरी बलराम, तो अनेक ग्वालबाल बन गयीं। अब कोई गोपी कभी बकासुर बनकर आती, कोई वत्सासुर बनी यथानुरूप खेल करती। एक गोपी अपनेको श्रीकृष्ण समझकर दूसरी सखीके गलेमें बाँह डालकर चलती और गोपियोंसे कहने लगती – 'मित्रों! मैं श्रीकृष्ण हूँ। तुम लोग मेरी यह मनोहर चाल देखो।'

प्रियतम! वे अहीरबालाएँ इस प्रकार लीला करते-करते लता-पत्रादिसे पुनः उस कृष्णकिशोरका पता पूछने लगीं। इसी समय उन अहीरबालाओंने एक स्थानपर उभरे हुए उस काले बालकके चरणचिह्न देखे। वे परस्पर कहने लगीं – 'अवश्य ही ये चरणचिह्न उदारशिरोमणि उस गोपराजकुमार नीलसुन्दरके ही हैं, क्योंकि इनमें उस काले बालकके ध्वजा, कमल, वज्र, अंकुशादि चिह्न स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहे हैं।' इन चरणचिह्नोंका अनुसरण करती जब वे अहीरबालाएँ आगे अग्रसर हुईं तो उन्हें उस ब्रजयुवतीके चरणचिह्न भी दृष्टिगोचर हो गये जिसे साथ लेकर वह बालक भागा था। इन चरणचिह्नोंको देखकर अहीरबालाओंकी व्याकुलता और भी बढ़ गयी। वे अहीरबालाएँ कहने लगीं – 'अरी सखियों! यह जो सखी हमारे सर्वस्व उस नीलमणिको ले जाकर अकेले ही उसकी अधर-सुधाका रस पी रही है, ओह! यह कैसी सौभाग्यशालिनी है! अरे! यहाँ इस गोपीके चरणचिह्न लुप्त हो गये हैं। इसका स्पष्ट अर्थ है कि हमारे प्यारे श्यामसुन्दरने अवश्य अनुभव किया होगा कि मेरी प्रेयसीके सुकुमार चरणकमलोंमें तीखे घासकी नोकें गड़ती होंगी।

इसलिये हमारे प्यारेने अवश्य ही अपनी प्रेयसीको अपने कन्धेमें आरूढ़ कर लिया होगा। देखो बहिनों! यहाँ हमारे प्यारेके चरण बालुकामें धँसे हुए हैं। इससे यही सूचित होता है कि वे अपनी प्रेयसीके शरीरका भारी बोझ उठाकर ही ले चले हैं। देखो, देखो! यहाँ पुनः उस श्याम-प्रेयसीके चरणचिह्न उभरे हैं, इससे यही अनुमान होता है कि यहाँ प्रियतमने अपनी प्रेयसीको नीचे उतारकर उसके लिए पुष्प चयन किये हैं। देखो! यह चिह्न यही प्रकाशित कर रहा है कि कामी पुरुषकी तरह यहाँ नीलसुन्दरने अपनी प्रेयसीके केश सँवारे हैं।'

प्रियतम! इधर तो मतवाली हुई वे अहीरबालाएँ परस्पर एक दूसरीको अपने प्रियतम श्यामसुन्दरके चरणचिह्न दिखलाती यमुनापथमें आगे बढ़ रही हैं, उधर उस अहीरनृपकी छोरी भानुतनया जिसे वह बालक उन अहीरबालाओंसे पृथक्कर अकेले ले भागा था, उसका भावुक स्वभाव अत्यंत ही विचित्र था। वह दारुण वियोगमें तो मिलनसुखका महान् आनन्द अनुभव करने लगती थी एवं कभी-कभी प्रत्यक्ष रसमय संयोगके अति एकान्त क्षणोंमें अपने प्रियतमकी गोदमें आसीन हुई वियोगका अनुभवकर 'हा श्यामसुन्दर! हा प्राणवल्लभ!' कहकर विकल विलाप करने लगती।

कभी-कभी वह स्वयं अपनेको ही विस्मृत कर जाती और स्वयंको अपना प्रियतम नीलसुन्दर मानकर 'हा राधे! हा राधे! की करुण ध्वनि करने लगती।

प्रियतम! उस भानुकुमारीका उस किशोरके प्रति प्रेम 'तत्वज्ञान' से भी उच्च स्तरकी भूमिकाका था। वह किशोरी प्रेमकी उस भूमिकामें नित्य प्रतिष्ठित थी जहाँ प्रिया-प्रियतम रूपमें उस परात्परकी परम मधुर अचिन्त्य अमल लीलाका संतत विहार होता रहता है। भानुनन्दिनी छोरीका वह कृष्ण छोरा भी कोई साधारण कर्मजगत्का प्राकृत जीव नहीं था, वरन् सगुण साकार परम ब्रह्मतत्व था, जिसकी पद-नख-आभा अक्षरब्रह्म एवं ब्रह्मकी भी आधार है। इसीलिए उस छोरीका प्रेमसागर अनन्तानन्त भावोंकी उद्दाम लहरोंमें सदैव उछलता ही रहता था। वह मनोहर कृष्ण छोरा भी उन विविध भाव-लहरोंसे स्वयं रसराज रसिकशेखर बनकर खेलता रहता था।

यहाँ भी ऐसा ही हुआ। वनके एकान्तमें जब वह कृष्ण किशोर उस भानुकुमारी छोरीके केश श्रृङ्गार कर रहा था एवं अतिशय प्रेमसहित अपने हाथों चुने हुए फूलोंसे अपनी प्रेयसी उस छोरीकी वेणी गूँथ रहा था, उसी समय वह भानुकुमारी महाभाव-परिनिष्ठित 'प्रेमवैचित्य' भाव-भावित हुई निरतिशय विरह-वियोगकी उद्दाम लहरियोंमें लहराने लगी। बस, वह अपने प्रियतमके प्रेमालिङ्गनमें बँधी हुई ही उससे वियुक्त अनुभवकर भीषण विरहाग्निमें जलने लगी। वह विलाप करने लगी 'हा नाथ ! हा रमण !! हा प्रेष्ठ ! हा महाभुज ! तुम कहाँ हो ? कहाँ हो, मेरे सखा ! मैं तुम्हारी दीन-हीन दासी हूँ, शीघ्र ही मुझे दर्शन दो!'

उस काले बालककी विचित्र दशा हो गयी। इधर तो भानुनन्दिनी महाभावावेगमें विलाप कर रही थी, उधर वे अहीरबालाएँ भी बालकके चरणचिह्नोंके सहारे मार्ग ढूँढ़ती उसी स्थलके निकट आ पहुँची थीं, जहाँपर कृष्ण किशोर भावाविष्ट बालाके किसी [illegible]की बात सोच रहा था। उन अहीर युवतियोंको आया देख पुनः उस बालकको अपनेको वनभागमें छुपाना पड़ा। उन अहीरबालाओंने देखा कि उनकी वह सखी जिसे वे प्रियतमके साथ अकेली वनमें गई मान रही थीं, अपने प्राणनाथके वियोगमें विलाप करती अचेत, भूमिलुंठित पड़ी है। किसी प्रकार उपचार करके वे सब सखियाँ उसे होशमें लाईं।

इस प्रकार वह बालक वहीं वनमें छुपा खड़ा भिन्न-भिन्न दो दिशाओंसे वियोग-महाभावकी दो सरिताओंका सङ्गमित होना देख रहा था। निश्चय ही इन दो विरह-सरिताओंमें भेद था। एक विरह-महाभावसिन्धुकी ऊर्मि नित्यमिलनमें प्रेमवैचित्यकी विलक्षण भावधारा थी एवं दूसरी वस्तुतः साधनगत आरोपित विरहदान थी जिसमें अभिमानगत मालिन्यको जलानेका सद्भाव निहित था। बिना अभिमानके जले कुन्दनद्युति विशुद्ध प्रेमजन्य दैन्य-भावोदय भला कैसे संभव होता ? वह बालक इन दोनों भावोर्मियोंका साक्षी बना वहीं उनके पार्श्वमें ही वनमें छुपा खड़ा था।

इसके पश्चात् जहाँतक चन्द्रदेवकी चाँदनी छिटक रही थी, वे अहीरबालाएँ अपनी सखी भानुनन्दिनीको लेकर उस बालकको ढूँढ़ती रहीं। ।।८००।।

प्रियतम! भानुनन्दिनीने सहसा उन अहीरबालाओंको समझाया कि 'बहनों! आगे घोर अन्धकार है। यदि हम घोर वनमें कृष्ण किशोरको ढूँढ़ने जायेंगी तो श्रीकृष्ण वनके आन्तरिक भागमें और भी भीतर घुस जायेंगे। कहीं प्रियतमके कोमल चरणोंमें अन्धकारमें कोई कण्टक चुभ गया तो उन्हें कितना कष्ट होगा ?' बस, यह विचार आते ही सभी बालाएँ यमुनाके पावन पुलिनपर रमणरेतीमें लौट आईं।

प्रियतम! उन अहीर युवतियोंका मन कृष्ण किशोरमय हो उठा था। उनकी वाणीसे अपने प्रियतमकी चर्चाके अतिरिक्त और कोई बात ही नहीं निकलती थी। उनके शरीरसे कृष्णके लिए कृष्णकी ही चेष्टाएँ हो रही थीं। उनका रोम-रोम, उनकी आत्मा श्रीकृष्णमय हो रही थी। वे इतनी तन्मय थीं कि उन्हें अपने शरीरकी भी सुधि नहीं थी। गोपियाँ तीव्र उत्कण्ठातुर थीं कि शीघ्र ही कृष्ण किशोर उनके मध्य आ गये।

वे विरहावेशमें गीत गाने लगीं। प्रियतम! प्रेमीकी दृष्टि ही विलक्षण सौन्दर्य बिखेरती है। वस्तुतः उसको वैकुण्ठ भी उस स्थानके सम्मुख हेय, नीरस, एवं शोभाहीन अनुभव होता है, जहाँ उसका प्रेमास्पद निवास करता है। प्रेमीके लिए सारी शोभाएँ, सर्व सम्पदाएँ अपना प्रियतम ही होती हैं।

प्रियतम! वे अहीरबालाएँ अपनी प्रेमजनित सुकोमलतम भावनाएँ अभिव्यक्त करती हुई गा रही थीं-

कहन लगीं अहो! कुँअर कान्ह प्रकटे व्रज जब तें।
अवधिभूत इन्दिरा अलंकृत है रहि तब तें।।
अतिशय सुख सरसावत ससि ज्यौं बढ़त बिहारी।
पुनि पुनि प्यारे गोपवधू प्रिय निपट तिहारी।।
नैन कटाक्षन महा अस्त्र लै हाँसी-फाँसी।
कित मारत हौ सुरतनाथ बिनु मोल की दासी।।
विष तैं, जल तैं, व्याल अनल तैं दामिनि झर तैं।
क्यों राखी नहिं मरन दई नागर नगधर तैं।।
जनु यसुदा तैं प्रकट भये पिय अति इतराने।
विश्व कुसल कारन विधना विनती करि आने।।
अहो मित्र! अहो प्राननाथ इहि अचरज भारी।
अपने जनकौं मारि करहु काकी रखवारी।।
जब पसु चारन चलत चरन कोमल धर बन में।
सिल तृन कंटक अटकत कसकत हमरे मन में।।
प्रनत मनोरथ करन चरन सरसीरुह पिय के।
का घटि जैहे नाथ हरत दुख हमरे जिय के।।
कहाँ हमारी प्रीति कहाँ प्रिय तुअ निठुराई।
मनि पखान सौं खचै दई तैं कछु न बस्याई।।

जब तुम कानन जात सहस जुग सम बीतत छिनु।
दिन बीतत जिहिं भाँति हमहि जानत पिय तुम बिनु।।
पुनि कानन तैं आवत सुन्दर आनन देखैं।
तहँ बिधना अति क्रूर करीं पिय नैन निमिष तैं।।
बुध जन मनहरनी बानी बिनु जरत सबै तिय।
अधर सुधा आसव तन कै प्यावहु ज्यावहु पिय।।
जदपि तिहारी कथा अमृत सम ताप सिरावै।
अमरन अमरा तुच्छ करै ब्रह्मादिक गावैं।।
जिन वह प्रेम सुधाधर तुम्हरौ मुख निरख्यौ पिय।
तिनकी जरन न मिटै रसिक संविद कोविद हिय।।
संतत भै तैं अभय करन करकमल तिहारो।
का घटि जैहै नाथ तनक सिर छुअत हमारो।।
अजहूँ नाहिन कछु बिगरयौ रंचक पिय आवौ।
मुरली को जूठौ अधरामृत हमहिं पियावौ।।
फनी फनन पै अरपे डरपे नैकु नहीं तब।
छतियनु पै पग धरत डरत कित कुँअर कान्ह अब।।
जानत हो तुम हम जु डरत ब्रजराजदुलारे।
कोमल चरन सरोज उरोज कठोर हमारे।।
सनै सनै पग धरिये पिय अहो निपट पियारे।
कित अटवी महँ अटत गड़त तृन कूर्प अन्यारे।।
जदपि परम सुखधाम स्याम पिय कौ लीलारस।
तदपि तिनहिं अवलोकन बिनु अकुलाइ गईं अस।।
ज्यों चन्दन चन्द्रमा तपन तैं सीतल करहीं।
पिय बिरही जे लोग तिनहिं लगि आग बितरहीं।।
छिन बैठत छिन उठत सुलोटत अति रज माहीं।
थोरे जल ज्यौं दीन मीन आतुर अकुलाहीं।।

हे नन्दगोपराज-कुँअर! जबसे तुमने व्रजमें जन्म लिया है, तबसे सौन्दर्य एवं मधुरताकी देवी लक्ष्मीजी अवधिकी सीमाएँ त्यागकर निरन्तर ही इस व्रजभूमिकी सेवा करने यहीं वास कर रही हैं।

हे अतिशय सुखस्वरूप लीलाविहारी! जैसे चन्द्रमा प्रतिपदासे पूर्णिमातक प्रतिक्षण बढ़ता रहता है, वैसे ही तुम नन्दकुल-चन्द्रमाको जन्मसे अबतक सुखमें प्रतिपल अभिवृद्ध हुआ देखती हम अहीरबालाएँ निश्छल सदैव तुम्हारी ही रही हैं।

हमारे प्रेम मनोरथोंको पूर्ण करने वाले स्वामी! क्या नेत्रोंके कटाक्षोंसे मारना वध नहीं है ? मात्र अस्त्रोंसे ही मारना क्या वध करना है? तुम हम बिना मोलकी दासियोंको फाँसी देकर क्यों मार डाल रहे हो ?

हे नागर (पुरुषश्रेष्ठ)! यमुनाजीके विषैले जलसे होने वाली मृत्युसे, अजगर रूपमें निगलने वाले अघासुरसे, इन्द्रकी वर्षा, आँधी-बिजलीमें गिरिराज उठाकर एवं दावानल आदिसे साथ ही भिन्न-भिन्न अवसरोंपर सब प्रकारके भयोंसे तुमने बार-बार हम लोगोंकी रक्षा क्यों की ? हमें मरने क्यों नहीं दिया?

हे सखे! तुम केवल यशोदाकी कोखसे उत्पन्न होने वाले साधारण बालक मात्र नहीं हो; हम यह रहस्य भली प्रकार जानती हैं कि तुम ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे विश्वकी रक्षाके लिए अवतार लिये, समस्त शरीरधारियोंके हृदय, अन्तर्यामी, सर्वसाक्षी हो।

अहो प्राणपति! हमें यही महान् आश्चर्य है कि आपकी आत्यंतिक निजजन गोपाङ्गनाओंको मारकर तुम किनकी रक्षा करोगे?

हमारे प्यारे स्वामी! जब तुम गौओंको चरानेके लिए घरसे वनमें निकलते हो, तो यह सोचकर कि तुम्हारे ये युगल चरण कंकड़, तिनके और कुश-काँटोंके गड़ जानेसे बहुत ही कष्ट पाते होंगे, हमारा मन बेचैन हो जाता है।

हे प्रियतम! एकमात्र तुम्हारे चरणकमल ही शरणागत भक्तोंके समस्त अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाले हैं। स्वयं लक्ष्मीजी उनकी सेवा करती हैं और भूदेवीके तो वे भूषण ही हैं। हे कुञ्जबिहारी! आपका क्या घट जाएगा यदि आप उन चरणोंको हमारे वक्षस्थलपर रख दोगे और हमारी प्राणोंकी सब व्यथा हर लोगे?

हे प्राणधन! कहाँ तो हमारी तुम्हारे प्रति सर्वसमर्पणमयी प्रीति एवं कहाँ तुम्हारी निठुराई? मानो मणि पत्थरमें जड़ी गई हो। वस्तुतः विधिका विधान सर्वोपरि है, उसपर किसीका वश नहीं है।

हे प्यारे! दिनके समय जब तुम वनमें गोचारण एवं विहारके लिए चले जाते हो, उस समय हमारा एक-एक क्षण युगोंके समान व्यतीत होता है।

पुनः दिनके अवसान होनेपर तुम वनसे जब लौटकर आते हो, तो हम तुम्हारा घुँघराली अलकोंसे आवृत परम सुन्दर मुखारविन्द देखती हैं। तुम्हारे मुखदर्शनके समय पलकोंका गिरना हमारे लिए असह्य हो उठता है। उस समय हम विधाताको कोसती हैं कि 'तुमने हमारे नयनोंको पलकोंसे युक्त क्यों बनाया; तुम वस्तुतः मूर्ख हो।'

कमलनयन! तुम्हारी वाणीका एक-एक पद, एक-एक शब्द, एक-एक अक्षर मधुर है। बड़े-बड़े विद्वान् उसमें रम जाते हैं, उसपर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देते हैं। अब तुम अपना दिव्य अधरामृत उसमें मिलाकर हमें उस वाणीका रस पिलाओ एवं हमें छका दो, जीवनदान दो।

प्यारे! तुम्हारी लीलाकथा प्रेमामृत-स्वरूप है, वह विरहसे सताये हुए लोगोंके लिए तो जीवनसर्वस्व ही है। बड़े-बड़े ज्ञानी-महात्माओं, शुकदेवादि भक्त कवियोंने उसका ऐसा माहात्म्य समझा है कि देवगण यदि उसके विनिमयमें अमृतघट भी प्रदान करें तब भी वे उन देवताओंको पासमें फटकने ही नहीं देते हैं।

हे प्रियतम! तुम्हारा यह प्रेमामृत छलकाता मुख जबतक कोई देख न ले, चाहे वह कितना ही बड़ा ज्ञानी; कवि अथवा रसिक क्यों न कहलावे, उसके हृदयकी जलन मिट ही नहीं सकती।

हे नाथ! तुम्हारे करकमल अपनी छत्रछायामें लेकर उन सभीको तत्क्षण ही अभय करते हैं, जो लोग जन्म-मृत्युरूप संसारके चक्रसे भयभीत हैं। प्रियतम! आपका इसमें क्या घट जाएगा यदि आप तनिक उन करकमलोंसे हमारे सिरोंको भी छू लोगे।

हे प्रियतम! आप अविलम्ब अब भी आ जाओ तो रञ्चक भी बिगाड़ नहीं हुआ है। हमें तो अपनी मुरलीका उच्छिष्ट अधरामृतरस ही पिला जाओ।

हे कुँअर! भीषण विषधर कालियके गरल उगलते फनोंपर भी जब आप अपने चरणोंको रखते नहीं सकुचाये तो आज हमारे सुकोमल वक्षस्थलों (उरोजों) पर चरण रखते क्यों डर रहे हो?

हे व्रजराजदुलारे! हम जानती हैं तुम्हारे चरण कमलोंसे भी अधिक सुकोमल हैं एवं हमारी कुचकर्णिकाएँ कठोर

हैं, इसीलिये तुम अपने चरणोंको उनपर रखते डर रहे हो।

हे प्रियतम! तुम अपने सुकोमल नंगे पैरोंको धीरे-धीरे रखते हमारे निकट चले आओ। पैरोंमें चुभनेवाले तीखे कंटकाकीर्ण एवं सूखे तृणोंसे भरी इस वनस्थलीमें क्यों प्रवेश कर रहे हो?

हे प्राणवल्लभ! यद्यपि उस काले बालककी लीलाओंका रस परम सुखोंकी रवानि था, फिर भी वे अहीरबालाएँ अब उसके दर्शन बिना अत्यंत अकुला गयीं। चन्द्रमा एवं चन्दनकाष्ठ, दोनों ही का गुण तापको शीतल करने वाला है, फिर भी विरही प्रेमीजनोंको ये दोनों ही अग्निकी दाहकता ही वितरित करते हैं। वे अहीरबालाएँ क्षण भर तो बैठती, फिर खड़ी हो जातीं, फिर उस व्रजकी रजमें लोटने लगतीं। जैसे छिछले जलमें मछलियाँ दीन हुई अकुलाती हैं, उन अहीर किशोरियोंकी उस काले बालकके अदर्शनसे ऐसी ही दशा हो रही थी।

हे प्रियतम! उस काले बालककी प्यारी अहीरबालाएँ इस प्रकार उसके विरह-आवेशमें प्रलाप कर रही थीं। वे अब फूट-फूटकर रोने लगीं। उस विरह-तापसे उनका अभिमानजनित सभी कालुष्य जल गया एवं उन सभीमें महाभावगत दैन्यका प्रादुर्भाव हो गया। वह काला बालक उन अपनी प्राणप्रियाओंसे दूर तो था ही नहीं। तत्क्षण ही वह उनके मध्यमें प्रकट हो गया।

उस कृष्ण किशोरका मुखकमल मन्द-मन्द मुस्कानसे खिला हुआ, प्रफुल्लित था। उसकी ग्रीवामें मनोरम वन-प्रसूनोंकी माला झूल रही थी। वह अति मनोज्ञ पीताम्बर कटिपर धारण किये था। कोटि-कोटि कामदेवोंको भी लजानेवाला उसका परम मनोहर रूप था। अपने प्राणवल्लभको आया देख उन अहीरबालाओंके नेत्र आनन्दमें खिल उठे। वे सभी एक साथ उसके सुस्वागतमें इस प्रकार अचानक खड़ी हो गयीं मानो किसीके प्राणहीन शरीरमें नवीन चेतना, नूतन स्फूर्ति आ गयी हो।

प्रियतम! अब तो योगमायाका आवरण सर्वथा हट ही गया था। अतः अब उन अहीरबालाओंका अपने प्रियतम काले बालकसे व्यवधान-रहित मिलन हो गया। उनके मध्य अब कोई अर्गला नहीं थी। अब वे अहीर किशोरियाँ परम चिन्मय दिव्य रसके अलौकिक अप्राकृत मधुके अनन्त समुद्रमें डूबने-उतराने लगीं। वे अहीरबालाएँ अब कितनी अप्राकृत रसात्मक हो गयी थीं, वे कैसी कृष्णमय बन गयी थीं, इसका अनुमान भला कौन लगा सकता है? उन अहीरबालाओंकी उस कालकी जो अमृतमयी विशुद्ध आनन्दसे छलकती, प्रीतिरससे परिपूर्ण अनुभूति थी, उसे वाग्देवी भी व्यक्त करनेमें सदैव असमर्थ रहेंगी।

प्रत्यक्षदर्शी श्रीशुकदेवने एवं अन्य रसिक वैष्णवोंने उनके प्रियतमके मिलनका एक चित्र अवश्य खींचा है, हे प्रियतम! उसे भाषामें तुम्हारे मनोरंजनके लिए तुम्हें श्रवण अवश्य करा देती हूँ।

एक गोपीने बड़े प्रेम एवं आनन्दसे उस काले बालकके करकमलको अपने दोनों हाथोंमें ले लिया और वह धीरे-धीरे उसे सहलाने लगी। दूसरी गोपीने उसके चन्दनचर्चित भुजदंडको अपने कंधेपर रख लिया। तीसरी सुन्दरीने उस काले बालकका चबाया हुआ पान अपने हाथोंमें ले लिया और उसे अपनी सहेलियोंको वितरण करने लगी। चौथी, जिसके ह्रदयमें विरहकी अतिशय पीड़ा थी, उस बालकके चरणोंमें बैठ गयी और उसके चरणकमलको उसने अपने वक्षस्थलपर रख लिया। पाँचवी, जो प्रणयकोपसे विह्ल थी, भौंहें चढ़ाकर, दाँतोंसे होंठ दबाती, अपने नयनोंसे कटाक्षबाण चलाती, उसकी ओर ताकने लगी। एक गोपी निर्निमेष नयनोंसे उसके मुखकमलका मकरन्दरस पान करने लगी, परन्तु मुखमधुका निरन्तर पान करनेपर भी उसे तृप्ति मिल ही नहीं रही थी। सातवीं, नेत्रोंके मार्गसे उस कृष्ण किशोर प्रियतमको अपने ह्रदयमें ले गयी और फिर उसने अपने नेत्र मूँद लिये। अब मन-ही-मन वह उसका आलिङ्गन करने लगी। उसका शरीर पुलकित हो उठा, रोम-रोम खिल गया एवं वह सिद्ध योगियोंकी भाँति परमानन्दमें मग्न हो गयी।

फिर उस काले बालकने उन व्रजसुन्दरियोंके साथ यमुनाजीके पुलिनमें प्रवेश किया। उस समय खिलेहुए कुन्द एवं अरविन्दके पुष्पोंकी सुगन्धि लेकर बड़ी ही शीतल मन्द-मन्द वायु बह रही थी एवं उसकी महकसे मतवाले होकर भौंरे मँडरा रहे थे। शरदपूर्णिमाके चन्द्रमाकी चाँदनी अपनी निराली ही छटा दिखला रही थी। उसके कारण रात्रिके अन्धकारका कहीं पता ही नहीं था, सर्वत्र आनन्द-मङ्गलका ही साम्राज्य छाया था। वह पुलिन क्या था, मानो यमुनाने स्वयं अपनी लहरोंके हाथों उन अहीर युवतियोंके लिए सुकोमल बालुकाका प्रेममञ्च बना डाला हो। वे अहीरबालाएँ उस बालकके प्रेमको पाकर पूर्णकाम हो उठी थीं।

अब उन्होंने अपनी ओढ़नीको, जिसपर उनके उरोजोंमें लेप की गयी रोली-केसरके दाग लगे थे, अपने प्यारे सुहृद उस कृष्ण किशोरको बैठानेके लिए बिछा दी। वह किशोर उस ओढ़नीपर बैठ गया। वह किशोर अपने अलौकिक सौन्दर्यके द्वारा उन अहीरबालाओंकी प्रेमाकांक्षाको उभार रहा था। वे अहीरकिशोरियाँ भी मन्द मुस्कान, तिरछी भौंहों एवं विलासपूर्ण चितवनसे उसका सम्मान कर रही थीं। वे उस बालककी सुन्दरता और उसके अङ्ग-संस्पर्शका आनन्द लेती कह उठती थीं– 'ओह! तुम कितने सुकुमार, कितने मधुर हो!'

प्रियतम! उन अहीरबालाओंके मनमें उस कृष्ण किशोरके अन्तर्धान हो जानेसे थोड़ा प्रणयरोष अबतक शेष था। वे मन-ही-मन तनिक रूठनेका अभिनयकर उसके मुखसे उसका दोष स्वीकार करानेके लिए उससे कहने लगीं–

'हे कृष्ण! कुछ लोग तो ऐसे होते हैं, जो प्रेम करनेवालोंसे ही प्रेम करते हैं। परन्तु कुछ ऐसे होते हैं जो दोनोंसे ही प्रेम नहीं करते। प्यारे! सच बताओ, तुम इनमेंसे कैसे हो?'

गोपियोंके ह्रदयके भावको जानते हुए वह कृष्ण किशोर बोला – 'हे सुन्दरियों! जो लोग प्रेम नहीं करनेवालोंसे भी प्रेम करते हैं – वैसे पुरुष स्वभावसे ही करुणाशील, सज्जन, माता-पिताके तुल्य होते हैं। उनका ह्रदय सौहार्दसे, हितैषितासे भरा रहता है, उनके व्यवहारमें निश्छल सत्य एवं पूर्ण धर्म रहता है।'

'कुछ लोग जो प्रेम करनेवालोंसे प्रेम करते हैं, वे व्यापारी प्रकृतिके हैं। उनका सभी उद्योग स्वार्थको लेकर होता है। लेन-देन मात्र ही उनका सौहार्द है। स्वार्थके सिवा उनका कोई प्रयोजन ही नहीं होता।'

'कुछ लोग प्रेम करनेवालोंसे भी प्रेम नहीं करते, उनमें चार श्रेणियाँ होती हैं – पहली श्रेणीमें वे आते हैं, जिन्हें कोई दूसरा भासता नहीं है। वे सदा ही अपने स्वरूपानन्दमें मस्त रहते हैं। दूसरे, वे जिन्हें द्वैत तो भासता है किन्तु जो पूर्ण कृतकृत्य हो चुके होते हैं। उनका किसीसे प्रयोजन ही नहीं रहता। तीसरे, मूढ़ पागल होते हैं उन्हें ज्ञान ही नहीं होता कि कौन हमसे प्रेम करता है। चौथे, कृतघ्न एवं स्वाभाविक ही सबसे द्रोह करनेकी प्रकृति लिये होते हैं। उन्हें परोपकारी गुरुतुल्य लोगोंको भी सतानेमें ही सुख मिलता है।'

'हे अहीरबालाओं! मैं तो प्रेम करनेवालोंसे भी वैसा प्रेम नहीं करता, जैसा उन्हें चाहिए। मैं ऐसा केवल एक ही प्रयोजनसे करता हूँ, जिससे उनकी चित्तवृत्ति मुझमें एकाङ्गी भावसे निरन्तर लगी रहे। जैसे निर्धन पुरुषको कभी बहुतसा धन मिल जाए और फिर खो जाए तो उसका ह्रदय खोयेहुए धनकी चिंतासे भर जाता है। वैसे ही मैं भी अपने प्रेमियोंसे मिल-मिलकर छिप जाता हूँ।'

'मेरी प्यारी गोपियों! यदि अमर जीवन लेकर भी इस शरीरसे अनन्त कालतक तुम्हारे प्रेम, सेवा, त्यागका बदला चुकाना चाहूँ तो भी नहीं चुका सकता। मैं जन्मों-जन्मोंके लिए तुम्हारा ॠणी हूँ।'

मेरे प्रियतम! इस प्रकार उस काले बालककी प्रेमभरी सुमधुर वाणी सुनकर जो कुछ लेशमात्र भी विरहजन्य ताप उन गोपियोंमें शेष था, वह मिट गया। वे अपने सौन्दर्य-माधुर्यनिधि प्राणप्यारेसे मिलकर रासनृत्यका प्रारंभ कर सफलमनोरथ हो गयीं।

अब उस कृष्ण किशोरके साथ उन गोपियोंकी रसमयी रासक्रीड़ा प्रारंभ हो गयी। उस काले बालकने अपने योग-वैभवसे अपनेको प्रत्येक दो गोपियोंके मध्य प्रकट कर लिया और उनकी ग्रीवाओंमें अपना हाथ डाल दिया। इस प्रकार एक गोपी और एक कृष्ण किशोर – इस क्रमसे रासनृत्य प्रारंभ हो गया। प्रत्येक अहीरबाला ऐसा अनुभव कर रही थी कि हमारा प्रियतम वह काला बालक हमारे पास ही है। सभी अहीरबालाएँ अपने प्रियतम नीलसुन्दरके साथ नृत्य कर रही थीं। उन रमणियोंके हाथके कंगन, पैरोंके पायजेब और करधनीके छोटे-छोटे घुँघरू एक साथ बज उठे। असंख्य अहीरबालाओंके होनेसे यह मधुर ध्वनि भी सारे वातावरणको निनादित कर रही थी।

उन अहीर रमणियोंके मध्य उस काले बालककी ऐसी शोभा थी मानो दमकती स्वर्णमणियोंके मध्य ज्योतिर्मयी इन्द्रनीलमणि दमक रही हो।

नृत्यके समय गोपियाँ तरह-तरहसे ठुमक-ठुमककर अपने पाँव कभी आगे बढ़ाती, कभी पीछे हटा लेतीं। कभी गतिके अनुसार धीरे-धीरे पाँव रखती, कभी वेगसे चाककी तरह पूरी घूम जाती। कभी-कभी वे अपने हाथ उठा-उठाकर भाव बताती, कभी कलापूर्ण ढंगसे मुस्कातीं। कभी नयन मटकाती तो कभी भौंहोंसे अतिशय रसमय नृत्यजन्य माधुर्य बिखेरतीं। उनकी पतली कमर ऐसी मुड़ती थी, मानो उनके शरीरमें अस्थियाँ न होकर मात्र मांसपिण्ड ही भरा हो। झुकने, बैठने, उठने और चालकी फुर्तीसे उनके बड़े-बड़े उरोज हिल रहे थे। कानोंके कुण्डलोंकी दमकसे उनके कपोल चमक उठते थे। नाचनेके परिश्रमसे उनके मुखपर स्वेदबिन्दु छलक आये थे। केशोंकी चोटियाँ ढीली हो गयी थीं एवं नीवी भी खिसक रही थी। इस प्रकार नाचनेका हे प्रियतम! बहुत ही बृहद् आयोजन हुआ।

इस रासनृत्यमें उस नृपबालाने भी बहुत ही मनोरम नृत्य किया था। हे प्राणवल्लभ! इस नृत्य-कहानीका अब मेरी स्मृतिमें एक अंश भर ही शेष है, बाकी तो मैं सब विस्मृत कर गयी हूँ। प्रियतम! आज भी मेरे ह्रदयमें मात्र उस महारास-नृत्य क़ी ऐसी ही झाँकी आती है, मानो बहुत से साँवले मेघ-मंडल हों और उनके मध्य चमकती असंख्य बिजलियाँ हों। उनकी शोभा असीम सुन्दर थी। हे प्रियतम! उन अहीरबालाओंका जीवन उस काले बालककी रति – प्रेम मात्र था। वे उस काले बालकसे सटकर नाचते-नाचते ऊँचे स्वरसे मधुर गान कर रही थीं। प्रियतम! उनकी राग-रागनियोंसे पूर्ण गायनसे आज भी सारा विश्व गूँज रहा है।

प्रियतम! इस कहानीका इतना ही अंश मुझे स्मरण है; शेष सभी मैं विस्मृत कर चुकी हूँ।

बाला इतना-सा ही कहकर रुकती, साँवर कहते, प्रियतम!
'तो याद करा दूँ मैं आगे, प्रियतमे! अनुज्ञा है?' प्रियतम!
'क्या करना है, हो रहे श्रमित तुम हो, विश्राम करो।' प्रियतम!
उत्तर बालाका यह होता, झपने-से दृग लगते, प्रियतम॥८०४॥

राधाकिशोरी इतना-सा ही कहकर अर्द्धनिमीलितनयना होकर रुक गई। नीलसुन्दर तुरन्त ही बोल उठे-'प्रियतमे! क्या तुम मुझे आज्ञा दे रही हो - मैं तुम्हें फिरसे याद करा दूँ?' उत्तरमें अन्यमनस्का-सी हुई राधाकिशोरी तुरन्त कह बैठी - 'क्या करना है प्रियतम! अब तुम श्रमित हो रहे हो। विश्राम करो। ' राधाकिशोरीका यह उत्तर पूरा होते-न-होते उनकी आँखें झपने लग गयीं।।।८०४।।

मीलित-से होने लग जाते साँवरके लोचन भी, प्रियतम!
दोनोंकी भावमयी समाधि निरुपम लग जाती थी, प्रियतम।
सविकल्प और फिर निर्विकल्प नामों से कही हुई, प्रियतम!
सत्ताएँ उसे न छू सकतीं, होती अद्भुत ऐसी, प्रियतम॥८०५॥

उधर नीलसुन्दरके नयन-सरोज भी मीलित होने लग गये। दोनोंकी भावमयी निरुपम समाधि आरम्भ हुई। सविकल्प और निर्विकल्प कही जाने वाली सत्ताएँ उनकी उस समाधिको स्पर्श भी नहीं कर सकतीं-ऐसी वह अद्भुत समाधि थी। ....।।८०५।।

उसका प्रतिबिम्ब भले वाणी-मन-बुद्धि कहीं छू लें, प्रियतम!
वे तथा सदाके लिये बने तद्रूप निहाल अहो! प्रियतम!
सम्भव है इतना-सा ही, मैं आगे क्या और कहूँ, प्रियतम!
हे प्राणाधिक! निहार लेना सागर तुम गागर में, प्रियतम॥८०६॥

उसका प्रतिबिम्ब मन,बुद्धि, वाणी कहीं छू भले लें और उसे छूनेका यह फल हो जाये कि सदाके लिये वे तद्रूप होकर कृतार्थ हो जायँ– इतना-सा ही सम्भव है। इसके आगे और मैं क्या कहूँ, प्राणरमण! प्राणाधिक हे! तुम सागरको गागरमें निहार लेना भला!।।८०६।।

जो हो, आगे न सही, बायें मुड़ जाती हूँ अब मैं, प्रियतम!
धारामें सीधे कभी नहीं संतरण सुखद होता, प्रियतम!
दम्पति भी इसी ओर, देखो, आ रहे, भला, वे हैं, प्रियतम!
बाला के दृग खुल गये, पुनः रोना है किंतु उसे, प्रियतम॥८०७॥

जो हो, आगेकी ओर तो मैं बढ़ ही नहीं सकती। बायीं ओर मुड़ जाती हूँ। धारामें सर्वथा सीधे संतरण करना सुखद नहीं होता।.......और स्पष्ट देखो! वे गौर-नीलदम्पति अब तो इसी ओर आ रहे हैं भला!.......... अचानक राधाकिशोरीकी आँखें खुल गईं। किन्तु हाय रे! उन्हें तो पुनः क्रन्दन ही करना है। .... ।।८०७।।

आखिर रसभरा स्वप्न यह भी बाला का बदल गया, प्रियतम!
थोड़े होते हैं सुखके दिन, है नियम सदाका ही, प्रियतम!
है बीज दुःख उस सुखका ही, जो नित्य सनातन है, प्रियतम!
पर एक बार तो शूलोंसे छिद गये प्राण उसके, प्रियतम॥८०८॥

जो हो, राधाकिशोरीका रसभरा यह स्वप्न भी आखिर बदल ही गया। सदाका ही यह नियम है - सुखके दिन थोड़े-से ही होते हैं, यद्यपि दुःख बीज ही है उस सुखका - जो नित्य है, सनातन है। पर एक बार तो राधाकिशोरीका हृदय मानों शूलोंसे छिद ही गया; प्राण सर्वथा विद्ध हो गये उनके।..... .... ।।८०८।।

।। विजयेतां श्रीप्रियाप्रियतमौ ।।

नवम शतक

ज्वाला!.....अन्धकार!!.....स्वाहा!!!......

आया था कोई दूत एक, जो उस राजा का था, प्रियतम !
थे करद-राज्य अगणित जिसके नीचे, डरते रहते, प्रियतम !
वह नृप नृशंस था घोर, कौन जाने क्या कब करदे, प्रियतम !
कौशल से ही संतुष्ट उसे करके सब बच पाते, प्रियतम ।।८०९।।

वहाँ गोपेशनगरी गोकुलग्राममें कोई एक दूत़ (अक्रूर) आया हुआ था जो उस राजा (कंस)का भेजा हुआ था जिसके अधीनस्थ अगणित करदाता राजागण निरन्तर भयभीत बने रहते थे, क्योंकि वह कंस अत्यन्त नृशंस प्रकृतिका था। कौन जाने वह क्या कर डाले! समस्त राजागण उसे कौशलपूर्वक सन्तुष्ट करके ही उससे बच पाते थे।।८०९।।

उस कपटी ने मख-उत्सव का आयोजन बृहत् किया प्रियतम !
उस साँवर बालक को भी था बुलवा भेजा उसने, प्रियतम !
वह दूत महीपालक का था सन्देश लिये पहुँचा, प्रियतम !
जब साँझ हो चुकी थी अशकुन बाला को तभी हुए, प्रियतम ।।८१०।।

उस राजा कंसने कपटपूर्ण अभिसन्धिसे एक बृहद् यज्ञोत्सवका आयोजन किया था जिसमें सम्मिलित होनेके लिये उसने उस साँवर किशोर नन्दनन्दनको भी बुलवा भेजा था। वह दूत (अक्रूर) उस राजा कंसके उस संदेशको लेकर ही वहाँ पहुँचा था। सुनो, संध्याकी अरुणिम किन्तु धूमिल रश्मियाँ क्षितिजको आत्मसात् कर चुकी थीं। अशकुन हो रहे थे किशोरीको।।८१०।।

मुरझा सहसा वे फूल गये, कुन्तल में जो लगते, प्रियतम !
अञ्जन जल-सा हो तरल लगा बहने अवनी पर, हे प्रियतम !
सुरभित सब भरे विलेपन से वे कनकपात्र ढरके, प्रियतम !
नीलम का हार टूटकर वह गिर गया उरस्थल से, प्रियतम ।।८११।।

कुन्तलमें गुम्फित सुमन सहसा म्लान हो गये। नयनोंका अञ्जन तरल होकर कपोलोंपर ढलक पड़ा। और जिस अवनीपर किशोरी बैठी थी, उसपर भी न जाने कितनी मात्रामें अञ्जनकी काली रेखाएँ अङ्कित हो गयीं अपने-आप। सौरभ बिखेरते विलेपनके कनक-पात्र ढलक गये और हाय रे, किशोरीके कण्ठका नीलम-हार छिन्न होकर उरःस्थलसे नीचे गिर गया।।।८११।।

धक-धक कर उठा कलेजा था बालक का देख इसे, प्रियतम !
रोती-सी है बयार वनकी इतने में भान हुआ, प्रियतम !
संध्या की वह नीरवता भी इंगित कर-सी बैठी, प्रियतम !
उस ओर बात अनचाही जो होनी थी अभी वहाँ, प्रियतम ।।८१२।।

धक्-धक् कलेजा कर रहा था किशोरीका। इन अशकुनोंका कोई अर्थ नहीं ग्रहण कर पा रही थी वह। इतनेमें उसे भान हुआ – आज समीरकी साँय-साँयमें क्रन्दनकी प्रच्छन्न ध्वनि अनुस्यूत है और उस बेलाकी नीरवता मानो किसी महा अशुभकी ओर इङ्गित कर रही थी।।।८१२।।

उपवन-परिसर में गृह की थी जो अटा, वहीं वह थी, प्रियतम!
संयोग आज ही था, कोई भी पास न सखी वहाँ, प्रियतम!
अत्यधिक अमङ्गलसूचक ये बातें कहने उनसे, प्रियतम!
नीचे दौड़ी, दो मिलीं, किंतु अतिशय उदास वे थीं, प्रियतम ॥८१३॥

उपवन-परिसरकी अट्टालिकाके उत्तुङ्ग ऊपरके कक्षमें किशोरी विराजित थी। और आज ही ऐसा संयोग था, पहले कदापि ऐसी घटना घटित नहीं हुई थी कि किशोरी एकाकिनी थी। अमङ्गलकी आशङ्कासे उसके प्राण काँप उठे और वह अपने हृद्गत भावोंको व्यक्त करनेके लिये, अपनी प्रतिक्रियाका अपनी सहचरियोंको भान करानेके लिये नीचेकी ओर दौड़ पड़ी। दो सहचरियाँ नीचेके कक्षमें थीं, किन्तु उनका मुख अत्यधिक उदास था।।।८१३।।

छा गया अँधेरा आँखों के आगे भय से उसकी, प्रियतम!
क्या हुआ अनिष्ट, हाय! कुछ है प्राणाधिक साँवर का, प्रियतम!
इसलिये मलिन मुद्रा इनकी हो गयी अचानक है, प्रियतम!
यह सोच, थामकर सिर अपना, गिरती-सी बैठ गयी, प्रियतम ॥८१४।

किशोरीकी आँखोंमें अँधेरा भर आया। भय उसमें विभ्रमका सृजन कर रहा था। और पहली स्फुरणा उसके अन्तर्देशमें जगी – 'ओह! कहीं मेरे प्राणनाथका, नीलसुन्दरका कोई अनिष्ट तो नहीं हुआ है? और इसीलिये मेरी इन दोनों प्राण-सहचरियोंकी मुद्रा इतनी खिन्नतासे पूरित दीख रही है।' सिर थामकर वह वहीं बैठ गयी, लुढ़क-सी चली थी; पर न जाने क्यों, कैसे, गिरते-गिरते बच गयी।।।८१४।।

लेकर भुजबन्धन में उसको, प्रौढ़ा जो थी उनमें, प्रियतम!
कहने कुछ चली, किंतु सम्भव हो सका न कह देना, प्रियतम!
दो टूक कलेजा बाला का होता-सा दीख पड़ा, प्रियतम!
सुन लेगी, जो वह बात सखी थी छिपा रही, उससे, प्रियतम ॥८१५॥

प्रौढ़ा सहचरीने उसे अपने भुजबन्धनमें बाँध लिया। सहचरी चाह रही थी, कुछ बोल दे; किन्तु भान था उसे – सुनते ही किशोरीका हृदय फट पड़ेगा, यदि कहीं किञ्चित् भी आभास पा सकी वह उस बातका, जो उससे छिपायी जा रही थी।।।८१५।।

दोनों सहचरियों की आँखें कहती अवश्य कुछ थीं, प्रियतम!
हैं व्यथा लिये गहरी, बाला पर समझ सकी इतना, प्रियतम!
कुम्हलाये नयन-सरोजों से थी देख रही, उनको, प्रियतम!
दुर-दुर था उर करने लगता पूछे क्या वह उनसे, प्रियतम ॥८१६॥

दोनों सहचरियाँ देख रही थीं किशोरीकी ओर और उनकी आँखें कुछ कह भी रही थीं। किन्तु किशोरी इतना ही भाँप सकी कि इनकी आँखोंमें व्यथाका स्रोत फूटने जा रहा है। किशोरीकी कुम्हलाई आँखें देखती भर रह गयीं उनकी ओर – क्या पूछती वह, हृत्तल दुर-दुर करने लगता था।।।८१६।।

आखिर वह हृदयविदारक जो थी बात सखी-मुखसे, प्रियतम !
दृगके उत्तप्त हुए जल से जल-जलकर निकल पड़ी, प्रियतम !
'साँवर हैं री ! जाने वाले इस वनसे दूर वहाँ, प्रियतम !
है क्रूर नराधम नरपति वह विख्यात जहाँ रहता,' प्रियतम ।।८१७।।

.... और अन्तमें सहचरियोंके दृगोंसे उत्तप्त धाराएँ बह चलीं। वह गुप्त समाचार उनके अन्तर्देशमें आवृत न रह सका। जल-जलकर निकल पड़ा – धाराका तापमान इतना प्रबल था। और टूटे-फूटे शब्द व्यक्त हो ही गये – 'बहिन मेरी ! हाय रे!! नीलसुन्दर इस वनसे दूर, अब दूर जा रहे हैं वहाँ, वहाँ–वहाँ, जहाँ वह क्रूर नराधम राजा ...... राजा रहता है।'।।८१७।।

यह भावी महाप्रलय की ही मानो सूचना मिली, प्रियतम !
बाला तो झुलस उठी उसकी लपटों से अब से ही, प्रियतम !
उसकी आँखों की पलकों में कोई भी गति न रही, प्रियतम !
वे टँगी दे रही-सी पथ थीं प्राणोंको उड़नेका, प्रियतम ।।८१८।।

भावी महाप्रलयका आभास आरम्भ हो गया। ज्वालाओंसे घिर गयी किशोरी। नयन स्पन्दन-हीन हो गये और पुतलियाँ टँगी रह गयीं, मानो वे प्राणोंको उड़ जानेके लिये पथ दे-देनेको प्रस्तुत थीं।।।८१८।।

वे प्राण न किंतु उड़े, कैसे उड़ते, अब शक्ति न थी, प्रियतम !
ऊपर से उनपर दुख का था इतना भारी बोझा, प्रियतम !
जो हिल तक भी न सके तिल भर, पिस-से वे गये वहीं, प्रियतम !
उत्क्राम नहीं, ज्यों-के-त्यों लय होनेका द्वार बचा, प्रियतम ।।८१९।।

किन्तु प्राण भी उड़ते कैसे – गतिहीन जो हो चुके थे, और उनके ऊपर दुःखका इतना भार – भारका अम्बार लग चुका था, जो वे तिलभर हिलतक न सकते थे। वे ज्यों-के-त्यों अपने स्थानपर ही पिस-से गये। उत्क्रमणका प्रश्न नहीं था अब, लयका द्वार ही अवशिष्ट रहा था।।।८१९।।

ऐसा ही होने-चला, किंतु विधि का विधान यह था, प्रियतम !
वे जलें अनेकों वर्षों तक, अतएव न हो पाया, प्रियतम !
आ गये तुरंत वहीं साँवर, फिर देश-काल बदले, प्रियतम !
बीती रजनी की आठ घड़ी, आयी वह कुञ्जथली, प्रियतम ।।८२०।।

विलयकी सीमापर वे अवस्थित थे, किन्तु अकरुण नियतिका विधान अनेकों वर्षोंतक जलते रहनेका जो था। इसलिये ही प्राणोंको यह सौभाग्य न मिला और नीलसुन्दर सामने आ गये। देश-काल भी परिवर्तित हो गये। रजनीका विराम हो गया था। आठों घटिकाएँ बीत चुकी थीं और वहाँ कुञ्जस्थल था।।।८२०।।

लेकर उरमें बाला को थे साँवर उदास बैठे, प्रियतम।
आने पर तनिक चेतना जब उसके दृग-नलिन खुले, प्रियतम !
यह लगा उसे, जगपालक की सीमा न दया की है, प्रियतम !
जाकर मेरे जीवनधन फिर जो लौट यहाँ आये, प्रियतम ।।८२१।।

एकाकिनी किशोरी नीलसुन्दरके अङ्कमें विराज रही थी; साँवर अत्यन्त म्लान थे। बाह्य चेतना आनेपर किशोरीने, किशोरीके दृगोंने यही देखा – यही अनुभव किया, और भाव-संधिके एक बिन्दुका आभास लेकर किशोरी अनुभव करने लगी – जगन्नियन्ताकी अहा! कितनी करुणा है मुझपर! उस नृशंसके देशमें जाकर मेरे प्रियतम लौट आये हैं!'॥८२१॥

आधे पल तक वह हर्ष-किरण आँखों में भरी रही, प्रियतम!
क्या सत्य किंतु था, साँवर की मुखमुद्रा कह बैठी, प्रियतम!
बाला उनसे क्या कहती अब, साँवर भी क्या कहते, प्रियतम!
चारों लोचन से ही जलकी बह चली तप्तधारा, प्रियतम॥८२२॥

उत्फुल्लताकी ये किरणें आधे पलतक किशोरीके नयनोंमें नाचती रहीं, किन्तु सत्य तथ्य क्या था, नीलसुन्दरकी मुखमुद्रा कह बैठी ही। अवकाश रहा नहीं – किशोरी कुछ भी नीलसुन्दरसे कह सके अथवा नीलसुन्दर कुछ कह सकें प्राणप्रियासे। चारों दृगोंसे अनर्गल उत्तप्त वारिधारा प्रसरित हो रही थी। मात्र इतना ही कुञ्जस्थलकी लता-वल्लरियाँ देख रही थीं।॥८२२॥

हो जाती लुप्त चेतना जब रह-रहकर बाला की, प्रियतम!
साँवर का भी विवेक पूरा कुण्ठित हो जाता था, प्रियतम!
वे तड़प रहे थे रागभरे दो हृदय वेदना से, प्रियतम!
उनको विवेक शीतल कर दे, यह हुआ न होगा ही, प्रियतम॥८२३॥

रह-रहकर किशोरीकी चेतना लुप्त होती और रह-रहकर नीलसुन्दरका विवेक भी पूरा-पूरा कुण्ठित हो जाता – नहीं-नहीं, विलयके अतल तलमें समा जाता। अनुरागके महासमुद्रको अपने हृत्तलमें सँजोये दो हृदय तड़प रहे थे – विवेक उन्हें शान्तिका दान कर दे; यह न तो हुआ है न कालके अनन्त प्रवाहमें होगा ही।

बाला के दुःख भरे उरका था तापमान इतना, प्रियतम!
जो अहो! अचेतनता भी थी सह पाती नहीं उसे, प्रियतम!
दो-तीन पलों में ही होकर अधजली भाग जाती, प्रियतम!
साँवर निरुपाय उधर आकुल रो रहे निरन्तर थे, प्रियतम॥८२४॥

किशोरीके हृदयकी वेदना, वेदनाका तापमान इतना गुरु-गुरुतर था, जिसे अचेतनता – मूर्छा भी सह न पायी। दो-तीन पल बीतते-न-बीतते उसके (मूर्छाके) अङ्ग जल जाते थे – पूरी-पूरी झुलस जाती थी और भाग छूटती वह किशोरीके तन-देश, मन-देशको छोड़कर। और नीलसुन्दरके नयन-सरोरुहसे निरन्तर अश्रुका निर्झर झर रहा था।॥८२४॥

क्रन्दन की तप्त ऊर्मियों में, मूर्छा की छाया में, प्रियतम!
पल-पल बढ़कर, आगे बढ़कर, रजनी थी बीत रही, प्रियतम!
कैसे लूँ विदा प्रियतमा से, साँवर न समझ पाते, प्रियतम!
जाना तो था ही, पर सब रस जानेका निकल गया, प्रियतम॥८२५॥

उस महाक्रन्दनकी तप्त ऊर्मियोंमें, अचेतनताकी छायामें पल-पल आगे बढ़ती रजनी अवसानकी ओर अग्रसर हो रही थी। गोष्ठका काल उस समय कुछ भी हो, यह तो निकुञ्जका देश था, निकुञ्जका काल था।

और सम्पूर्ण रजनी इस महाक्रन्दनकी धारामें अवगाहन कर रही थी – श्रान्त होकर तटका आश्रय लेने जा रही थी।

नीलसुन्दरके हृत्तलमें स्फुरणा जागी – 'कैसे विदा लूँ प्राणप्रियासे?' विवेक-बुद्धिका सम्पूर्ण कोष रिक्त हो चुका था। टीस चल रही थी अनवरत रूपसे – जाना तो है ही, पर नीरस यात्रा, नीरस अभिसन्धि, सब कुछ नीरस.................... हाहाकार!।।८२५।।

इतने में ही बाला में कुछ परिवर्तन दीख पड़ा, प्रियतम !
वह उठी भावकी लहर, जिसे देखी न किसी ने थी, प्रियतम !
'यह इसीलिये तो प्रश्न बना साँवर के जाने का,' प्रियतम !
'इनको सुख है इसमें फिर मैं होऊँ विघातिनी क्यों ?' प्रियतम ।।८२६।।

अचानक किशोरीकी आन्तरिक भावनाओंमें, उन महातप्त ऊर्मियोंमें कुछ परिवर्तनका आभास परिलक्षित हो उठा और भावसिन्धुकी वह लहरी नाच उठी, जिसे आजतक किसीकी भी आँखें देख न सकीं थीं – 'नीलसुन्दर प्राणनाथ प्रियतमके जानेका प्रश्न बना क्यों ? इसीलिये तो कि वहाँ, उस नरपतिके नगरमें जानेमें सुखका अनुभव है इन्हें ? तो मैं इस सुखकी विघातिनी क्यों होऊँ ?'।।८२६।।

संयत-सी होकर, साँवर की ग्रीवा में भुजमाला, प्रियतम !
पहनाकर, वह बोली, 'क्या सच जा रहे, नाथ ! तुम हो ?' प्रियतम !
'है हेतु अहो ! क्या, कहो मुझे, मैं सम्मति दे दूँगी,' प्रियतम !
'हूँ नित्य अनादि किंकरी तो इन पद-नलिनों की ही !' प्रियतम ।।८२७।।

............किशोरी संयत-सी हो गयी। नीलसुन्दरकी ग्रीवामें किशोरीकी भुजमाला झूल रही थी। मधुस्यन्दी गिरा किशोरीके अरुण अधरोंसे निःसृत हो रही थी – 'प्राणनाथ ! क्या सच जा रहे हो ? तो मुझे हेतु बतला दो, मैं तुम्हें जानेकी अवश्य सम्मति दे दूँगी............. मैं तो इन पद-नलिनोंकी ही अनादि नित्य क्रीत किङ्करी हूँ, भला ....!'।।८२७।।

रुक गया कण्ठ बालाका बस, कहते-कहते इतना, प्रियतम !
अत्यन्त हुए बेहाल उधर साँवर यह कह पाये, प्रियतम !
'हैं इस तनके कुछ कृत्य वहाँ, प्राणों की रानी हे !' प्रियतम !
'इन पीले पदनखमणि में ही मन तो है नित्य बसा,' प्रियतम ।।८२८।।

और कहते-कहते किशोरीका कण्ठ रुद्ध हो गया। विचित्र दशा थी नीलसुन्दरकी भी। वे इतना ही कह पाये – 'मेरी प्राणोंकी रानी ! वहाँ कुछ कृत्य अवशेष हैं इस तनके। और .... मन तो, मनका कण-कण तो इन पीत पद-नखमणियोंमें ही निरन्तर था, है, और रहेगा ही........।'।।८२८।।

'जाओ प्राणाधिक !' धीमा यह उत्तर में स्वर आया, प्रियतम !
केवल इतना-सा ही विनिमय वाणी का हो पाया, प्रियतम !
बाकी सब बातें आँखों की उन सजल पुतलियों ने, प्रियतम !
भीगी रोमावलि ने कर लीं नीरव उस भाषा में, प्रियतम ।।८२९।।

'जाओ, . प्राणाधिक !' धीमे स्वरमें इतना ही व्यक्त हो सका। बस, वाणीका विनिमय इतना ही हो पाया। शेष नयनकी पुतलियाँ, आर्द्र रोमावली अपनी नीरव भाषामें जो कहना था, कह गयीं ......!।।८२९।।

था अन्तिम बार उरःस्थल से उरका जुड़ना कैसा, प्रियतम !
क्या कहूँ चेतना खो दोगे तुम सुनते ही उसको, प्रियतम !
क्यों हो इतिहास अधूरा यह, होगा न उचित यह तो, प्रियतम !
अतएव सुनो आगे जैसे निकले निकुञ्ज से वे, प्रियतम ॥८३०॥

...............और अन्तिम बारके लिये उरःस्थलका परस्पर संलग्न होना कैसा था – क्या कहूँ, क्या सुनाऊँ? चेतना खो दोगे उसे सुनते ही। और इसलिये यह इतिवृत्त अधूरा क्यों रहे? ...... यह उचित न होगा। अतः सुनो, आगे वे दोनों निकुञ्जसे कैसे निःसृत हुए – ।।८३०।।

गलबाँही दिये हुए ही वे अब भी बाहर आये, प्रियतम !
दक्षिणकी ओर चले, फिर उस सरिता को पार किया, प्रियतम !
आया वह थल भी, प्रतिदिन वे लेते थे विदा जहाँ, प्रियतम !
आते ही किंतु वहाँ झिन-झिन लग गये चरण करने, प्रियतम ॥८३१॥

अभी भी दोनों गरबाँहीं दिये हुए ही थे। यन्त्रवत् चरण-सरोरुहोंकी गति दक्षिणकी ओर हो गयी; कलिन्दनन्दिनीकी धाराको दोनोंने पार कर लिया और वनस्थलका वह द्रुम आ गया, जहाँ वे प्रतिदिन कुछ घटिकाओंके लिये विदा लेते थे। किन्तु उस स्थलपर आते ही वात-व्याधिसे प्रभावितकी भाँति सम्पूर्ण चरणदेश – दोनोंका ही – झनझन कर उठा।।।८३१।।

क्षमता न रही अब बाला में, रह सके आँख खोले, प्रियतम !
वह हटे नील बायें करकी माला, क्यों दृग देखें, प्रियतम !
बारह-दस पल के अन्तर से उसकी उघरी पलकें, प्रियतम !
साँवर थे दो पद दूर खड़े लोचन में लोर लिये, प्रियतम ॥८३२॥

.... क्षमता न रही किशोरीमें कि अब वह अपने नयनोंको उन्मीलित रख सके। पुतलियाँ मानो कह उठीं – 'क्यों देखें नीली वामभुजाकी मालाको स्कन्धदेशसे अपसारित होते।' किन्तु फिर भी पलकें स्थिर न रह सकीं। दस-बारह पलके अन्तरसे ही पलकें बरबस खुल गयीं। नीलसुन्दर अपने दृगोंमें लोरकी लड़ी लिये दो पद दूर खड़े थे ....।।।८३२।।

दोनों कर से छाती थामे बाला थी मौन खड़ी, प्रियतम !
उसका सिर किंचित् जब हिलता सम्मति की मुद्रा में, प्रियतम !
साँवर तब ही रख पाते थे पद एक उस दिशा में, प्रियतम !
थी म्लान उषा यह देख रही, रो रहा वनस्थल था, प्रियतम ॥८३३॥

दोनों कर-पल्लवोंसे वक्षःस्थल थामे किशोरी मौन खड़ी देख रही थी......। किशोरीका मस्तक सम्मतिकी मुद्रामें किञ्चित् कम्पित हो जाता था और तभी नीलसुन्दर उस दिशामें (नन्दभवनकी ओर) एक पदविन्यास कर पाते थे। ऊषा म्लान दृगोंसे इसे निहार रही थी, वनस्थल फूँ-फूँ रो रहा था।।।८३३।।

साँवर गोपेशपुरी के उस वन में जब समा गये, प्रियतम!
बाला पगली हो दौड़ चली उनके पीछे-पीछे, प्रियतम!
रोका न उसे सहचरियों ने, वे भी पीछे दौड़ीं, प्रियतम!
वह गिर न पड़े इतना-सा, पर उनमें था ध्यान बना, प्रियतम॥८३४॥

जब साँवर गोपेशपुरीके उस कानन-जालमें विलीन हो गये, तब अचानक किशोरीके चरणोंमें गति आयी; उन्मादका प्रबल प्रवाह उसके कण-कणमें परिव्याप्त हो उठा। वह दौड़ी उसी पगडंडीपर उनके पीछे। .... आज सहचरियोंने उसे नहीं रोका; वे भी उन्मादिनी हो दौड़ी जा रही थीं उसके पीछे-पीछे। वे केवल इतना ही सावधान रह सकी थीं – किशोरी गिर न जाय। इतनी ही चेतना उनमें बच रही थी।।।८३४।।

वनकी कुछ लता उलझती थीं बाला के चरणों में, प्रियतम!
उसके तनकी गर्मी से पर जलने वे लग जातीं, प्रियतम!
इसलिये तुरंत छोड़ देतीं, उसको पथ मिल जाता, प्रियतम!
दस पल में वह जा पहुँची घर साँवर की मैया के, प्रियतम॥८३५॥

पगडंडीपर झूमती हुई वन-वल्लरियाँ धरापर प्रसरित लताएँ किशोरीके चरणोंसे उलझती अवश्य; किन्तु उसके तनकी ऊष्मासे वे धक्-धक् जलने लग जातीं और इसीलिये वे उसे तुरन्त छोड़ देतीं .... पथ मिल जाता किशोरीको! .... दस पलमें ही वह नन्दालयके तोरणद्वारके समीप जा पहुँची – कैसे, कौन जाने, कौन कहे?।।८३५।।

भीतर न किंतु जाकर, अड़कर तोरण से बैठ गयी, प्रियतम!
सबको प्रत्यक्ष दीखती थी उन्मत्त दशा उसकी, प्रियतम!
बिखरे थे केश, ओढ़नी भी गिर गयी खिसक कर थी, प्रियतम!
आवरण कञ्चुकी का उर पर केवल था बचा हुआ, प्रियतम॥८३६॥

नीलसुन्दरकी जननीके बहिर्द्वारपर, तोरणके समीप ही आज वह जाकर प्रथम बार बैठी; भीतर कक्षमें न गयी। सुस्पष्ट थी सबकी आँखोंमें उसकी उन्मत्त दशा। अलकें उन्मुक्त थीं, ओढ़नी सिरसे धरापर गिर गयी थी, कटिसे ऊपर मात्र कञ्चुकीका आवरण बच रहा था।।।८३६।।

वे किसी भाँति उसके तन को ढक पायीं सहचरियाँ, प्रियतम!
लज्जा क्या अब उसमें रहती, जब तन सुधि ही न रही, प्रियतम!
जल रही [illegible]न की भट्ठी थी कैसी उसके उरमें, प्रियतम!
कैसे थे प्राण बचे फिर भी, यह कह न सकूँगी मैं, प्रियतम॥८३७॥

किसी भाँति सहचरियाँ उसके तनपर आवरणका निर्माण कर सकीं। अब किशोरीमें लज्जाकी, अपने तनकी आत्यन्तिक विस्मृति जो हो चुकी थी........। हृत्तलमें अवश्य ही हुतभुक्की भट्ठी धक्-धक् जल रही थी। फिर भी प्राण कैसे बच रहे थे – यह मैं तुम्हें कह न सकूँगी; तुम सुनकर भी समझ न सकोगे।।।८३७।।

हो चुकी व्यवस्था प्रायः थी कालोचित सब पूरी, प्रियतम!
जाने वाले भी प्रस्तुत थे साँवर के साथ वहाँ, प्रियतम!
गोपेश खड़े थे, सहचर भी शिशु थे तैयार खड़े, प्रियतम!
साँवर एवं उनके अग्रज, इनकी ही देरी थी, प्रियतम॥८३८॥

नन्दसदनके भीतर कालोचित सभी व्यवस्थाएँ पूरी हो चुकी थीं। साँवरके साथ जानेवाले यात्री प्रस्तुत थे। गोपेश भी खड़े थे। शिशु-सखाओंकी मण्डली भी वहीं विराजित थी। नीलसुन्दर एवं अग्रजके बाहर आनेभरकी देर रह गयी थी।।।८३८।।

मैया थी सजा रही उनको, पर कर न काम करते, प्रियतम !
वह भूल रही थी रह-रहकर, कैसे क्या है करना, प्रियतम !
गिर जाय न एक बूंद भी जल दृगसे, सतर्क पर थी, प्रियतम !
जाने के समय नीलमणि के क्यों चिह्न अमङ्गल हो, प्रियतम !।-८३९।।

अब भी सदनके अन्तर्देशमें मैया दोनोंके शृङ्गारकी रचना कर रही थी; पर मैयाके हाथ काँपते थे और वह शृङ्गार धरा न पाती थी। वह क्षण-क्षणमें भूल जाती थी ..... क्या, कैसे करना है। .... अवश्य ही वह अत्यन्त सजग थी – एक बूँद भी अश्रु न गिर जाय; मेरे लालका अमङ्गल न हो जाय। नीलमणिके ऐसे गमनके समय मेरेद्वारा किसी अशकुनका निर्माण न हो जाय।।।८३९।।

जैसे-तैसे सब करके वह साँवर को ले आयी, प्रियतम!
साँवर अग्रज को साथ लिये रथ पर भी जा बैठे, प्रियतम !
बाला यह सब थी देख रही, रहकर कुछ दूर खड़ी, प्रियतम!
निस्पन्द पुतरियाँ उसकी थीं प्रस्तर-पुतरी की-सी, प्रियतम।।-८४०।।

जैसे-तैसे आखिर साँवरको, अग्रजको अपने ही प्राणोंके स्नेहसे सिक्तकर मैया बाहर ले आयी। और. .... और........ नीलसुन्दर भी रथपर जा बैठे। विस्फारित नयनोंसे किशोरी दूर खड़ी यह दृश्य देख रही थी। उसकी निस्पन्द पुतलियाँ प्रस्तर-पुतलीकी भाँति बन चुकी थीं।।।८४०।।

सहसा वह बोल उठी ऊँचे स्वर से पुकार सबको, प्रियतम !
'भूकम्प हो रहा है, देखो, ये टूट रहे द्रुम हैं'; प्रियतम !
'दौड़ो, सब दौड़ो, इस रथ के पहिये में घुस जाओ,' प्रियतम !
'लो थाम इसे, लो बचा इसे, धरती है घूम रही;' प्रियतम ।।-८४१।।

अचानक फटे हुए, किन्तु अत्यन्त ऊँचे स्वरमें वह पुकार उठी – 'देखो! देखो!! भूकम्प हो रहा है। वे टूट-टूटकर द्रुमजाल गिर रहे हैं ! अरे! दौड़ो, सब दौड़ो, इस रथके पहियेमें प्रविष्ट हो जाओ। थाम लो इसे बचा लो इसे। इसपर एक शाखा-खण्ड भी न गिरने पाये। और यह धरा नाच रही है रे ! अरी! क्यों सब, तुम सब-की-सब........!'।।८४१।।

उस बड़ी सखी ने अङ्गुलियाँ उसके मुख पर रख दीं, प्रियतम !
पर तब तक तो बाला पर ही आ टिकी आँख सबकी, प्रियतम !
उसकी उस वाणी में ऐसी थी ऊर्मि वेदना की, प्रियतम !
जो एक साथ ही क्षणभर तो सबका धीरज टूटा, प्रियतम ।।-८४२।।

एक किञ्चित् वयस्का सहचरीने उसके होठोंपर अपनी अँगुलियाँ रख दीं। पर अब तो सबकी दृष्टि केन्द्रित हो चुकी थी किशोरीपर ही। उसकी गिरामें वेदनाकी ऐसी ऊर्मि परिव्याप्त थी, जिससे एक साथ ही, क्षण बीतते-न-बीतते सबका धैर्य छिन्न-भिन्न हो गया।।।८४२।।

उस विषम परिस्थिति को कातर साँवर की आँखों ने, प्रियतम !
बाला की ओर निहार अहो ! सर्वत्र सँभाला था, प्रियतम !
उसका सिर अनुमति देता-सा हिल गया तनिक फिर से, प्रियतम !
चल पड़ा और रथ धड़-धड़ कर धीरे-धीरे आगे, प्रियतम ।।८४३।।

.... उस महा विषम परिस्थितिको साँवरकी कातर आँखोंने सँभाला! बार-बार साँवरके आकुल दृग किशोरीकी पुतलियोंसे सन्नद्ध होते और किशोरीका मस्तक अनुमति देता-सा किञ्चित् हिल जाता। अश्रुकी दो बूँदें नीलसुन्दरके कपोलोंपर ढलकीं। इस बार किशारीकी पुतलियाँ झुकी-सी होकर हिल गयीं। साथ ही रथका पहिया धीरे-धीरे धड़-धड़का रव करके चल पड़ा...............।।।८४३।।

था प्राण छेदने वाला रव धड़-धड़का रूप धरे, प्रियतम !
जो उनके साथ न जा पायीं, उन एक-एक का ही, प्रियतम !
कट-कटकर वे कदली-जैसी क्रमशः गिरती जातीं, प्रियतम !
चल पड़ा चक्र अबला-वन में था क्रूर काल-करि का, प्रियतम ।।८४४।।

यह धड़-धड़का रव एक-एकपर, जो साथ न जा सकी थीं, न जा रही थीं, उनपर अपना प्राणहारी प्रभाव व्यक्त करने लगा। कदली-थम्भ-जैसी वे क्रमशः कट-कटकर गिरती जा रही थीं – क्रूर कालका उद्दाम चक्र इस अबला-वनपर चल पड़ा था।।।८४४।।

जो काँप-काँपकर किसी तरह उससे कुछ बच पायीं, प्रियतम !
उनको समूल उत्पाटित कर मानो ले साथ चला, प्रियतम !
वह महाभयानक दुख का था जो झञ्झावात उठा, प्रियतम !
बढ़ रहा वेग जिसका था मिल-मिलकर रथ की गति से, प्रियतम ।।८४५।।

जो कम्पित हो-होकर उस दुर्धर्ष संहार-चक्रसे बच पाती थीं, बच पायीं; उन कमनीय कदलि-श्रेणियोंको, हाय रे! उसने समूल उत्पाटित कर दिया। और सुनो! देखो, वह उन्हें साथ ही लिये जा रहा है........। महाप्रलयका यह महाभीषण झंझावात है रे! देखो – ओह! अभी-अभी तो यह उठा था। कितना दुर्धर्ष वेग कुछ क्षणोंमें ही इसका हो गया है। हाय रे! रथकी गतिसे ही इसका वेग बढ़ रहा है, प्रत्यक्ष देख लो.......।।।८४५।।

बाला उनमें ही थी, उसका तन तो उड़ता ही था, प्रियतम !
उसके माथे में भी वह था झञ्झा प्रकोप भारी, प्रियतम !
वह रथके पीछे-पीछे अब भागती जा रही थी, प्रियतम !
'हा-हा' कर हँसती, झर-झर थे साँवर के दृग झरते, प्रियतम ।।८४६।।

इस झंझावातसे आवृत किशोरीकी ओर देखो! देख रहे हो? उसका तन उड़ता जा रहा है, भला! और आँखोंको झुकाकर देखो! झंझाका प्रकोप अन्तस्तलमें कितना प्रबल है! हाय रे! .... मस्तिष्ककी भीषण आँधी क्या परिणाम सृजन करेगी ....? हा-हा-हा-हा हँस रही है किशोरी और दर-दर आँखें बह रही हैं उसकी! क्या होगा ....?।।८४६।।

आया वह पेड़ उदुम्बर का, पथ का था मोड़ जहाँ, प्रियतम!
बङ्किम उस मुद्रा में साँवर रथ पर उठ खड़े हुए, प्रियतम!
वह नीली ज्योति सत्य मानो दो-सी हो गयी अहो! प्रियतम!
बाला में एक मिली, लेकर दूजी को रथ भागा, प्रियतम॥८४७॥

तो यह उदुम्बरतरु आ गया। बस, यहींसे मधुपुरीका पथ मुड़ेगा..........यह क्या? साँवर रथपर उठ खड़े हुए। अँय! अँय!!अँय!!! यह नीली ज्योति सत्य-सत्य दो-सी हो गयी...... एक तो किशोरीके हृद्देशमें समा गयी और दूसरीको लेकर रथ भाग गया, छिप गया ....। बस, अन्धकार – और कुछ नहीं.......। ।।८४७।।

आधे पल में ओझल दृग से रथ हुआ सघन वन में, प्रियतम!
तत्क्षण फिर अट्टहास गूँजा बाला के श्रीमुख का, प्रियतम!
ऊपर उठ गयीं भुजाएँ, पद गतिशील हुए उसके, प्रियतम!
ऐसे मानो हो गया समय उस रासनृत्य का हो, प्रियतम॥८४८॥

इस गिरिशृंगकी ओटमें, वनस्थलके सघन जालमें रे, रथ तो दृष्टिपथसे ओझल हो गया। आधा पल भी तो नहीं गया। देखो, किशोरीके मुखसे अट्टहास! वनका कण-कण प्रतिनादित हो उठा है। देखो, किशोरीकी भुजाएँ ऊपर उठ गयीं; चरणोंमें कितनी विचित्र गति है! हैं! हैं!! मानो अब चरण-विन्यास रास-नृत्यकी भङ्गिमामें बँधे हों..... तो क्या रासका समय हो गया है?।।८४८।।

'नाचो-नाचो, बहिनों री! तुम, मैं नाच सिखाऊँगी, प्रियतम!
'जय हुई प्रीति की, जय बोलो, मेरी न, अरी! उनकी, प्रियतम!
इस भाँति अचानक बोल उठी गलने लग गयी धरा, प्रियतम!
वह पास पड़ा पत्थर उसकी ज्वाला से पिघल गया, प्रियतम॥८४९॥

'बहिनो! नाचो,नाचो, मैं तुम्हें नाचना सिखाऊँगी। सुनो, प्रीतिकी जय हुई है। बहिनो! मेरी जय बोलो – नहीं नहीं, उनकी, उनकी, उनकी – जय! जय!! जय!!! बोलो जय! जय!! जय!!! .... उनकी, उनकी, उनकी.......।' – वन-प्रान्तर मुखरित हो उठा किशोरीकी इस ध्वनिसे। यह क्या? धरा गलने लग गयी! वह देखो, अत्यन्त समीपका वह प्रस्तर किशोरीके तनसे निःसृत ज्वालाका स्पर्श पाकर पिघल गया; अरे! पानी बनकर बह रहा है.....।।।८४९।।

आकुल सहचरी सोचती थी, क्या युक्ति करें जिससे, प्रियतम!
इसके जीवन की अब आगे हो किसी भाँति रक्षा, प्रियतम!
ये प्राण नहीं तो साँवर के सहचर तुरंत होंगे, प्रियतम!
आच्छन्न और निरवधि होगा यह विश्व अँधेरे से, प्रियतम॥८५०॥

'किशोरी जीवित नहीं रहेगी' – सहचरियोंके प्राण हाहाकार कर उठे। किसी भाँति कुछ क्षण प्राणोंका योग बना रहे, इस चिन्तासे सबका मन भावित था। कौन-सी युक्ति हो? कुछ तो करना ही है; अन्यथा किशोरीके प्राण साँवरके सहचर तुरन्त बनेंगे ही। और यह विश्व घन-तिमिरसे निरवधि आच्छन्न होकर ही रहेगा........।।।८५०।।

छाती उसकी फटती थी, पर बोली वह बाला से प्रियतम !
'री बहिन ! चलें वनमें अब तो, होगयी बड़ी देरी;' प्रियतम !
'हो सका न सुमन--चयन तक भी, कैसे पूजा होगी?' प्रियतम !
'साँवर एकाकी खड़े- खड़े होते उदास होंगे।' प्रियतम ॥ ८५१॥

'अरी बहिन! चलें, हम सभी वनमें चलें! बहुत अधिक विलम्ब हो चुका है, री! अबतक सुमन-चयन भी न हो सका। हम सबोंकी प्रतीक्षामें नीलसुन्दर एकाकी खड़े-खड़े म्लान हो रहे होंगे, बहिन!' – एक सहचरी साहस बटोरकर इतना-सा बोल ही पड़ी। किन्तु उसकी छाती फटती चली जा रही थी।।।८५१।।

दृगमें प्रफुल्लता कृत्रिम की मुद्रा लेकर वह थी, प्रियतम !
कृत्रिम उल्लास गिरा में भी उसकी था भरा हुआ, प्रियतम !
यों बार-बार बाला का कर झकझोर रही वह थी, प्रियतम !
जैसे-तैसे उसके मनको दे रही भुलावा थी, प्रियतम ॥ ८५२॥

दृगोंमें कृत्रिम उल्लासकी मुद्रा लिये, गिरामें कृत्रिम उत्साहकी छाया लिये वह थी अवश्य, पर उसका हृदय टूक-टूक होता जा रहा था। वह बार-बार झकझोर रही थी किशोरीको, जैसे-तैसे उसे भुलावा देनेका प्रयास कर रही थी।।।८५२।।

दैवी इच्छा से कुछ पलमें बाला की वृत्ति फिरी, प्रियतम !
कुछ देर एकटक से उसने उसके मुखको देखा, प्रियतम !
एवं पहचान उसे बोली 'री ! स्वप्न एक मैंने, प्रियतम !
देखा अत्यन्त भयंकर है, ये प्राण काँपते हैं, प्रियतम ॥ ८५३॥

.... किसी अचिन्त्य प्रेरणासे किशोरीकी वृत्ति केन्द्रित हुई उस सहचरीकी ओर, सहचरीके नयनोंपर। निर्निमेष चक्षुओंसे किशोरी कुछ पलोंतक देखती रही उसे और कदाचित् उसे पहचान भी गयी.. ....। 'अरी बहिन! मैंने एक स्वप्न देखा है। अत्यन्त भयङ्कर स्वप्न था री! देख, मेरे प्राण काँप रहे हैं।'।।८५३।।

'क्या होने वाला है सचमुच वैसा ही अभी यहाँ, प्रियतम !
'दुःस्वप्नों का परिहार अरी ! कोई अमोघ कह दे, प्रियतम !
'मैं करूँ तुरंत उसे पहले वनमें फिर जाऊंगी,' प्रियतम !
साँवर हों नित्य सुखी, मेरा जो होना हो सो हो, प्रियतम ॥ ८५४॥

'सुन तो, क्या सचमुच अभी ऐसा ही यहाँ होनेवाला है री? तू दुःस्वप्नोंका परिहार जानती है? कोई-सा अमोघ परिहार बता दे, बहिन! मैं अभी-अभी पहले उसका आश्रय लूँगी और तब वनमें जाऊँगी पुष्प-चयन करने, बहिन! ओह! साँवर, मेरे प्राणनाथ नित्य सुखी रहें, मेरा भले ही जो होना हो, वह हो जाय!' – उन्मादभरे स्वरमें, एक साँसमें किशोरी बड़-बड़ कर गयी।।।८५४।।

इतने में रथ के पहियों का दीखा वह चिह्न उसे, प्रियतम !
कृत्रिम फुल्लता सखी की वह ठग सकी न अब उसको, प्रियतम !
गम्भीर हुई बाला, उरकी ज्वाला फिर धधक उठी, प्रियतम !
आयी इसबार किंतु बाहर धरकर अभिनव बाना, प्रियतम ॥ ८५५॥

किन्तु रथके पहियोंका चिह्न तो सामने प्रत्यक्ष था। पुनः किशोरीकी आँखें उसपर ही केन्द्रित हो गयीं। सहचरीकी कृत्रिम फुल्लता अब उसे ठग न सकी। धक्-धक् भट्ठीकी ज्वाला और भी प्रदीप्त हो उठी। अवश्य ही इस बार ज्वाला एक अभिनव बाना धारण किये व्यक्त हो रही थी।।।८५५।।

बोली वह 'अरी! देख, कौआ कह रहा मुझे कुछ है; प्रियतम !
'साँवर सुख से तो पहुँच गये, इतना मैं समझ सकी,' प्रियतम !
'आगे तू पूछ उसे, क्या वह मर गया दनुज राजा,?' प्रियतम !
'चल पड़े यहाँके लिये तथा साँवर रथ पर कि नहीं?' प्रियतम ॥८५६।

'देख, बहिन! वह कौआ मुझे कुछ संदेश दे रहा है री! मेरे प्राणनाथ नीलसुन्दर सुखपूर्वक वहाँ पहुँच गये हैं – इतना सङ्केत तो मैं इस काककी वाणीसे निश्चित पा चुकी हूँ, अब आगे तू उससे बात कर ले। पूछ ले, 'उस दनुजराजने अपनी इहलीला संवरण कर ली क्या? और, और, और मेरे प्राणनाथ यहाँके लिये रथपर आसीन हो चुके हैं क्या? रथ चल पड़ा है क्या? वृन्दा-काननसे कितनी दूरपर पुनः लौट आया है ..? अथवा कुछ विलम्ब है क्या?'।।८५६।।

दृग लगे पुनः पथराने-से उसके इतने में ही, प्रियतम !
उसकी यह दशा देख, सखियाँ 'रे हाय!' पुकार उठीं, प्रियतम !
इसका परिणाम अवश्य हुआ सुन्दर, जो द्वार मिला, प्रियतम !
आँखों से उसके दुख को भी बाहर बह-चलने का, प्रियतम ॥८५७॥

'हाय रे, ज्वाला........आग, अन्धकार............स्वाहा.....' – अस्फुट उक्ति किशोरीके मुखसे निःसृत हुई अवश्य, किन्तु आँखे पथराने लग गयीं। सहचरियोंके हाहाकारसे वनस्थल गुञ्जित हो उठा। इस महाकरुण रवने अन्तर्देशमें बढ़ी हुई वेदनाको पुनः बाहर आनेका द्वार दे दिया।।।८५७।।

सहसा वह फूट-फूटकर के विह्वल ऐसी रोयी, प्रियतम !
जो एक साथ पशु-पक्षी तक रोने लग गये वहाँ, प्रियतम !
मानो वह कालकूट विष हो भर गया पवन में ही, प्रियतम !
'चैं-चैं' कर अहो! लगा खगकुल भद-भद गिरने तरु से, प्रियतम ॥८५८॥

अत्यन्त विह्वल किशोरी फूट-फूटकर रोने लग गयी। ऐसी रोयी कि .... वन्य जन्तु सचमुच, सचमुच उसके साथ हू-हू कर रो रहे थे; विहङ्गम चीत्कार कर रहे थे और क्रमशः शत-सहस्रकी संख्यामें भद्-भद् कर तरुशाखाओंसे गिरते जा रहे थे – प्राणशून्य होकर। मानो सम्पूर्ण समीरमें कालकूट विष परिपूरित हो गया हो – किशोरीके क्रन्दनका ऐसा भीषण परिणाम चारों ओर व्यक्त हो रहा था।।।८५८।।

नादित उस ओर हुआ क्षणभर वन महाघोर रव से, प्रियतम !
एवं गिर गये अचेतन हो सब वन्य-चतुष्पद भी, प्रियतम !
केवल बाला के, सखियों के क्रन्दन का रव ही था, प्रियतम !
पूरित उन सभी दिशाओं में, निस्पन्द बने तरु थे, प्रियतम ॥८५९॥

और दूसरे ही क्षण एक साथ ही एक महाघोर रवसे वनस्थल नादित हो उठा – एक साथ ही सम्पूर्ण चतुष्पद भी सदाके लिये प्राणशून्य होकर ज्यों-के-त्यों, जहाँ-के-तहाँ ढेर हो गये। तरुराजि सर्वथा निस्पन्द थी; मात्र अवशिष्ट थी किशोरीके, सहचरियोंके, क्रन्दनकी ध्वनि.......।।।८५९।।

वैसे ही रोती हुई चली आगे अब वह वनमें, प्रियतम !
रथके पहियेकी रेखाको पकड़े, रुक-रुक करके, प्रियतम!
जितनी-सी व्यथा वारि बनकर बाहर आ जाती थी, प्रियतम !
मानो उसका अनुपात लिये पदमें थी गति आती, प्रियतम॥८६०॥

अश्रुके निर्झरमें अवगाहन करती हुई किशोरी अग्रसर हुई। अनुसरण कर रही थी वह पहियेकी चिह्नरेखाका। क्षण-क्षणमें रुक जाती। व्यथाका भार अश्रु बनकर जितने परिमाणमें बाहर निःसृत हो जाता, उसके अनुपातसे ही किशोरीके चरणोंमें गतिका सञ्चार होता था।।।८६०।।

यद्यपि सहेलियाँ उसको थीं वे सतत सँभाल रही, प्रियतम !
फिर भी कितनी ही बार गिरी खाकर पछाड़ वह तो, प्रियतम !
गाहक जब चला गया तनका क्यों फिर वह उसे रखे, प्रियतम !
निष्प्राण-सदृश उसको अब तो सखियों को ढोना था, प्रियतम॥८६१॥

निरन्तर सहचरियोंका जाल उसे सँभाल रहा था। फिर भी किशोरी कितनी बार पछाड़ खाकर गिरी – हाय रे! कौन बतावे? जब उस पीत तनका गाहक ही चला गया, तब उसे वह क्यों रखती? क्यों उसकी सँभाल करती? उसे तो, उस तनको तो अब निष्प्राण-सी बनी सहचरियोंको ही ढोना था अपनी निस्पन्द पुतलियोंपर, अपने गतिहीन करतलोंपर............।।।८६१।।

पथ वही न जाने कितना था हो गया आज लंबा, प्रियतम !
आता न अन्त उसका था, वह सरिता न दीखती थी, प्रियतम!
उस रत्नशैल को छू-छूकर बहती वह जिस थल से, प्रियतम !
बाला जब वहाँ पहुँच पायी, लग रही दुपहरी थी, प्रियतम॥८६२॥

आज पथ न जाने कितना लंबा हो गया था। उसका अन्त किशोरी पा नहीं रही थी, और नीली सरिता उसके नयनोंके पथमें आ नहीं रही थी। जहाँ, जिस स्थलपर उस रत्नशैलको – गिरिराजको छू-छूकर नीली प्रवाहिणी बङ्किम पथसे दिशा-परिवर्तन करती थी, वहाँ पहुँचते-पहुँचते मध्याह्न होने जा रहा था.............।।।८६२।।

इन घड़ियों में बाला ने था जो करुण विलाप किया, प्रियतम !
कितना वह हृदयविदारक था, क्या सखियों पर बीती, प्रियतम !
बाला एवं उनमें फिर थे जो-जो संवाद हुए, प्रियतम !
इसको सुनकर फिर तुम आगे क्या और सुन सकोगे? प्रियतम॥८६३॥

इन इनी-गिनी घड़ियोंमें किशोरीका करुण विलाप कितना, कैसा हृदय-विदारक था और सहचरियोंपर क्या बीती थी, और परस्पर किशोरीमें, सहचरियोंमें क्या, कैसे वाणीके विनिमय हुए थे – इसे सुनकर, सुनना आरम्भ करते ही आगेके इतिवृत्तको नहीं सुन सकोगे! अतएव रहने दो इसे यहीं! और आगे नीली कल-कल-निनादिनीकी लहरोंमें किशोरीने जैसे अवगाहन किया था, उसे ही सुन लो...............। अस्तु,।।८६३।।

अतएव न वह कहकर, नीली कल-कल-निनादिनी की, प्रियतम!
लहरों में जैसे अवगाहन बाला ने किया, कहूँ, प्रियतम!
आकर उस तट पर खड़ी हुई जिस पर गिरिवर अपना, प्रियतम!
धो रहा चरण था, बाला ने अपनी अञ्जलि भर ली, प्रियतम॥८६४॥

कल्लोलिनीके उस तटपर, जहाँ गिरिवर अपने चरणोंको प्रक्षालित कर रहा था, किशोरी वहीं पहुँची, और अपनी अञ्जलिमें नीले नीरको भर लिया उसने।।।८६४।।

मस्तक पर वारि बिखेर, अहो! बोली वह सरिता से, प्रियतम!
'री बहिन! आज मैं आयी हूँ तेरे समीप रोने; प्रियतम!
'देगी तू मुझे उरस्थल की किंचित् शीतलता क्या?' प्रियतम!
'जल रहे प्राण-तन हैं मेरे, क्षणभर शीतल ये हों।' प्रियतम॥८६५॥

.... अपने मस्तकको उस वारिसे अभिषिक्तकर बोल उठी – 'बहिन नीली शैवालिनी! आज मैं तेरे समीप रोने आयी हूँ। अरी! क्या तू मुझे अपने उरःस्थलकी किञ्चित् शीतलताका दान करेगी? मेरे प्राण, तन – सभी जल रहे हैं, बहिन! तेरे शैत्यका स्पर्शकर ये भी शीतल हो जायँ क्षणभरके लिये ही.....'।।८६५।।

'मैंने तेरा अपराध किया, मैं गर्व भरी तब थी;' प्रियतम!
'साँवर को नित्य साथ पाकर फिरती इठलाती थी।' प्रियतम!
'अधिकार नील तन पर करके मेरी मति बौरायी;' प्रियतम!
'कितनी ही बार तुझे पद से मैंने ठुकराया है।' प्रियतम॥८६६॥

'....मैंने तेरा अपराध किया है। मैं गर्वमें भरी थी, बहिन! उस समय मेरे प्राणनाथ नीलसुन्दर नित्य साथ थे मेरे। उन्हें निरन्तर अपने समीप अनुभवकर इठलाती फिरती थी मैं। उनके नील कलेवरपर एकछत्र अधिकार पाकर मेरी मति बौरी हो गयी थी। कितनी ही बार मैंने तुझे अपने पदोंसे ठुकराया है, बहिन!'।।८६६।।

'नीला श्रीमुख दृग में रखकर तेरी परवाह न की;' प्रियतम!
'नीला कर अहो! कण्ठ में था गिनती न तुझे मैं थी।' प्रियतम!
'नीले तन-सौरभ से माती आयी न पास तेरे;' प्रियतम!
'नीले तरु पर समुदित फल का रस पी, न मिली तुझसे।' प्रियतम॥८६७॥

'देख, मेरे दृगोंमें नीला श्रीमुख भरा था, निरन्तर पूरित था और मैंने तेरी परवाह न की। नीला करसरोज मेरे कण्ठको आवृत किये रहता था और मैं तुझे गिनती तक न थी – तुच्छातितुच्छ अनुभव करती थी। नीले तनका सौरभ मुझे सतत मत्त बनाये रहता था और मैं कभी तेरे समीप न आयी। एक नीले तरुका आश्रय मुझे मिल गया था; उसपर राशि-राशि अमृत-फल समुदित होते रहते। मैं उन्हीं फलोंका रस पीती रहती और तुझसे कभी मिलने न आयी।'।।८६७।।

'नीले मुख का मधुरव सुनती, कल-कल न सुना तेरा, प्रियतम!
'नीला था अङ्क मिला, तेरी गोदी न सुहाती थी;' प्रियतम!
'नीले कर सेते थे पद को, सेवा न रुची तेरी।' प्रियतम!
'नीली वह अलकावलि हरती श्रमकण, भूली तुझको।' प्रियतम॥८६८॥

'देख, नीले मुखका मधुस्यन्दी रव सुना करती और इसीलिये तेरे कल-कलकी उपेक्षा कर देती थी। मुझे नीले अङ्ककी शय्या मिल गयी थी; तेरी गोदीका स्पर्श मुझे सुहाता न था। नीले कराम्बुज मेरे पदोंको सेते रहते, इसीलिये तेरी सेवा मुझे न रुचती थी। वह नीली अलकावली मेरे श्रमकणका मार्जन करती और मैं तुझे भूल बैठी........'।।।८६८।।

'मेरी निधि वह छिन गयी किंतु, हूँ अब भिखारिणी मैं'; प्रियतम!
'जो सत्य महारानी कल थी इन सब निकुञ्ज वनकी'; प्रियतम!
'मेरा सब गर्व चूर होकर हूँ बनी आज दीना,' प्रियतम!
'सोने अब आयी हूँ तेरी शीतल गोदी में ही।' प्रियतम।।८६९।।

'किन्तु सुन, बहिन! अब वह मेरी निधि, अप्रतिम नीली निधि मुझसे छिन गयी है, अब मैं भिखारिणी हूँ। कल जो मैं इन सब निकुञ्जवनोंकी सत्य-सत्य महारानी थी, वही आज मैं दीना भिक्षुकी हूँ। मेरा सब गर्व चूर्ण-विचूर्ण हो चुका है। अत्यन्त नगण्या बन चुकी हूँ मैं। और इसीलिये अब आज मैं तेरे शीतल अङ्कमें ही सदाके लिये सोने आयी हूँ, बहिन!.........'।।८६९।।

'तू मुझे निराश नहीं करना, तू मुझे न ठुकराना'; प्रियतम!
'मुझसे जो हुआ अनादर है उसको बिसार देना।' प्रियतम!
'अपनी अप्रतिम शीलता से निस्सीम अनुग्रह से,' प्रियतम!
'तू ठौर मुझे देना अपने नीले शीतल उर में।' प्रियतम।।८७०।।

'तू मुझे निराश न करना, भला! मुझे ठुकरा मत देना। मुझसे जो तेरा अनादर हुआ है, उसे विस्मृत कर देना। अपने अप्रतिम शीलसे, अपने निस्सीम अनुग्रहसे ही तू मुझे अपने नीले शीतल उरःस्थलपर ठौर दे देना.......।' – टूटे कम्पित स्वरमें किशोरी बोलती ही चली गयी।।।८७०।।

'सोनेसे पहले कुछ बातें मैं और तुझे कह दूँ'; प्रियतम!
'तू दयामयी है, कर देना मेरी यह सेवा भी।' प्रियतम!
'मुझसे हों अलग भले साँवर, वे तुझे न छोड़ेंगे'; प्रियतम!
'तू तो है, बहिन! वहाँ भी, वे अब जिस नगरी में हैं।' प्रियतम।।८७१।।

'किन्तु कलिन्दनन्दिनी बहिन! उस चिरविश्रामसे पूर्व, उस शयनसे पूर्व मैं तुझे कुछ और बातें भी कह दूँगी। तू परम दयामयी है, बहिन! जब तू मुझे आश्रयदान कर देगी, तब उसके उपरान्त मेरी यह सेवा भी अवश्य कर देना। ऐसा मैं क्यों कह रही हूँ, बतलाऊँ? मुझसे तो मेरे नीलसुन्दर प्राणनाथ भले ही अलग हो जायँ, किन्तु वे तुझे कदापि न छोड़ेंगे, तेरा परित्याग न करेंगे, बहिन! और तू तो वहाँ भी है ही, जहाँ मेरे प्राणाधार – प्राणसारसर्वस्व हैं, जिस नगरीमें विराजित हैं...........!'।।८७१।।

'आयेंगे वे अवश्य तेरे रस से शीतल होने'; प्रियतम!
'उनके पदपद्मों की रज से भूषित मैं हो न सकी।' प्रियतम!
'मेरी यह अभिलाषा पूरी अब तू ही कर देना'; प्रियतम!
'मेरे प्राणों में प्राण मिला, उनके पद धो देना।' प्रियतम।।८७२।।

'तो सुन, बहिन! वे अवश्य आयेंगे अपने आपको तेरे रससे शीतल करने। मैं, मैं तो अभागिन उनके पदपद्मोंकी रजसे, रजकणिकासे भूषित न हो सकी – ऐसा ही मेरा दुर्दैव था......... किन्तु मेरी यह अभिलाषा अब तू ही पूरी कर देना। सुन, बहिन! मेरे प्राणोंमें अपने प्राणोंको सर्वथा सङ्गमितकर उनके चरण-सरोरुहको प्रक्षालित कर देना, भला...............।'।।८७२।।

'कुछ गुप्त हेतुओं से वह सुख उनको मैं दे न सकी;' प्रियतम।
'वे अहो! तरसते चले गये, होकर निराश मुझसे।' प्रियतम!
'पूरी उमंग देकर उनको ले सकी न मैं उर में;' प्रियतम!
'मेरे प्राणों में प्राण मिला, तू वह सुख दे देना।' प्रियतम।।८७३।।

'और सुन, कुछ गुप्त हेतुओंसे वह सुख............ उनको मैं दान न कर सकी। हाय रे! वे तरसते ही चले गये – मुझसे निराश होकर। वह क्या सुख था, बताऊँ? अब तू सुन ले बहिन! मैं अपनी ओरसे पूरी उमङ्गका विनियोगकर अपने उरःस्थलपर उन्हें धारण न कर सकी। अपनी ओरसे दौड़कर उन्हें भुजपाशमें वेष्टित न कर सकी। तू मेरे प्राणोंमें अपने प्राणोंको सर्वथा सङ्गमितकर यह सुख उन्हें अवश्य दे देना।'।।८७३।।

'रह गयी सोचती ही मैं तो, उनका अभिषेक करूँ;' प्रियतम!
'आखिर वे चले गये, अवसर यह किंतु नहीं आया।' प्रियतम!
'झूलेगी मुखपर कृष्ण-कुटिल अलकावलि वैसी ही;' प्रियतम!
'मेरे प्राणों में प्राण मिला, तू उसे सिक्त करना।' प्रियतम।।८७४।।

'और सुन, मैं सोचती ही रह गयी – उनका, मेरे प्राणारामका, नीलसुन्दरका अभिषेक करूँ। किन्तु हाय रे! आखिर वे चले ही गये और यह अवसर नहीं आया।........... और अब वे तेरे समीप आयेंगे। कृष्ण-कुटिल अलकावली वैसे ही उनके मुख-सरोजपर झूलती रहेगी। तो उस क्षण मेरे प्राणोंमें अपने प्राणोंको सर्वथा सङ्गमितकर रससिक्त कर देना, अभिषिक्त कर देना उन्हें।'।।८७४।।

'लोलुप वे सदा बने रहते मेरे मुख-सौरभ के;' प्रियतम!
'उस ओर सदा घेरे रहती अतिशय लज्जा मुझको;' प्रियतम!
'उनका न मनोरथ वह पूरा कर सकी आज तक मैं;' प्रियतम!
'मेरे प्राणों में प्राण मिला, तू ही अब यह करना।' प्रियतम।।८७५।।

'और सुन, वे सदा लोलुप बने रहते मेरे मुख-सौरभका आस्वादन करनेके लिये। इस ओर सतत अतिशय लज्जा मुझे घेरे रहती। हाय रे! आजतक उनका यह मनोरथ मैं पूर्ण न कर सकी। नील-कल्लोलिनी बहिन! मेरे प्राणोंमें अपने प्राणोंको सर्वथा सङ्गमितकर तू ही यह भी कर देना।'।।८७५।।

'सोने लगती निकुञ्ज में जब, उनकी इच्छा होती;' प्रियतम!
'ऐसा कोई मैं चित्र लिखूँ जो नित्य नवीन बने।' प्रियतम!
'उनका मुख ही ऐसा था, मैं उर पर लिख भी देती;' प्रियतम!
'मेरे प्राणों में प्राण मिला, तू उसे दिखा देना;' प्रियतम।।८७६।।

'और सुन, निकुञ्जमें जब मैं सोने लगती – उस समय, उस क्षण उनमें लालसा जगती.........मेरे प्राणोंकी रानी! तुम किसी ऐसे चित्रका निर्माण करो, जो नित्य नवीन बनता रहे। अङ्कित कर दो उस चित्रको .... तो बहिन री! उनका मुख-सरोज ही एकमात्र ऐसा चित्र था – मैं उरःस्थलमें अङ्कित भी कर देती, सत्य, सत्य, बहिन! अपने उरःस्थलपर लिख ही देती। किन्तु उसका दर्शन मैं उन्हें नहीं कराती......! आह! आग लगी है मेरे प्राणोंमें....... बहिन री मेरी! मेरे प्राणोंमें अपने प्राणोंको सर्वथा सङ्गमितकर उस चित्रका दर्शन करा देना अब उन्हें!'।।८७६।।

'सुस्पर्श अप्रतिम है क्या वे मुझसे पूछा करते;' प्रियतम!
'उनके अङ्गोंका ही अनुभव मुझको तो होता था, प्रियतम!
'वाणी तो नहीं, चपलता यह तनकी कह देती थी;' प्रियतम!
'मेरे प्राणों में प्राण मिला, तू भी बतला देना।' प्रियतम॥८७७॥

'और सुन, मुझसे वे पूछते – ''अप्रतिम सुख-स्पर्श क्या है?'' प्रत्येक निशामें पूछा करते। किन्तु मुझे तो निरन्तर यही अनुभव होता – उनके ही नीले अङ्गोंका स्पर्श ही परम सुस्पर्श है। यही अनुभूति निरन्तर बनी रहती थी। किन्तु वाणीसे मैं उनके इस प्रश्नका उत्तर न दे पाती। अवश्य ही मेरे तनकी चञ्चलता सङ्केत कर देती। अब तू ही मेरे प्राणोंमें अपने प्राणोंको सर्वथा सङ्गमितकर यह सुस्पष्ट बतला देना।'।।८७७।।

'रजनी के समय सदा वे थे करते विनोद मुझसे;' प्रियतम!
'वल्लभे! कहो तुम, गाती क्या यह गीत वंशिका है?' प्रियतम!
'मैं कहती, शिव हरि मार बिन्दु मम नाम सम्पुटित हैं;' प्रियतम!
'मेरे प्राणों में प्राण मिला, तू कल-कल में कहना,' प्रियतम॥८७८॥

'और सुन, रजनी आती। उस समय सदा ही वे मुझसे विनोद करते – ''वल्लभे! बतलाओ, मेरी यह वंशिका क्या गीत गाती है?'' मैं उत्तर देती – 'अच्छा, सुनो! वंशिकाकी स्वर-लहरी क्या अर्थ रखती है, क्या गाती है?' शिव, हरि, मार, विन्दु – यही मेरे नामसे सम्पुटित है......। पर मैं इसका रहस्य न खोलती। अब नीली सरिता बहिन! मेरे प्राणोंमें अपने प्राण सर्वथा सङ्गमितकर अपने कल-कल रवमें......... इस रहस्यका उद्घाटन कर देना।'।।८७८।।

''प्रति रजनी में था प्रश्न और उत्तर अवश्य होता, प्रियतम!
''केवल भाषा बदली रहती, है चित्-पीयूष कहाँ ?' प्रियतम!
'दो अरुण नवल पल्लव में ही, तू भी यों ही कहना, प्रियतम!
'मेरे प्राणों में प्राण मिला, तू यह सेवा करना।' प्रियतम॥८७९॥

'और सुन, प्रत्येक रजनीमें परस्पर यह प्रश्नोत्तरी अवश्य होती; हाँ, केवल भाषा बदली रहती – 'प्रियतमे! चित्-पीयूष कहाँ है?' मैं कहती – 'प्रियतम! दो अरुणिम नवल पल्लवोंमें है.....।' मृदु-कलरवे बहिन! तू भी ऐसे ही कहना, भला। और मेरे प्राणोंमें अपने प्राण सर्वथा सङ्गमितकर यह अवश्य करना।'।।८७९।।

'मेरे उर पर कर-किसलय से कर्पूर विलेपन वे;' प्रियतम!
'देने लगते, उनकी आँखें झर-झर झरने लगतीं;' प्रियतम!

'मैं व्यस्त पोंछती जाती थी, तू भी ऐसे करना, प्रियतम!
'मेरे प्राणों में प्राण मिला, अपने समीर-कर से', प्रियतम।।८८०।।

'और सुन, मेरे उरःस्थलपर वे अपने कर-किसलयसे कर्पूर-विलेपन लगाते, और उस क्षण उनकी आँखें भी झर-झर झरने लगतीं। मैं उस अश्रु-निर्झरके मार्जनमें निरन्तर व्यस्त रहती; उसे पोंछती रहती। तू भी ऐसे ही करना – मेरे प्राणोंमें अपने प्राण सर्वथा सङ्क्रमितकर समीर-करतलके माध्यमसे!'।।८८०।।

'प्रातः की बेला में मेरी आँखों में वे आते, प्रियतम!
'गो दुहते-से होकर, पलकें उनको ढक लेती थीं, प्रियतम!
'गोकुल परितृप्त बने, तब तक तू भी उनको ढकना, प्रियतम!
'मेरे प्राणों में प्राण मिला, तट के द्रुमजालों से, प्रियतम।।८८१।।

'और सुन, प्रातःकी बेलामें वे मेरी आँखोंमें गोदोहनकी मुद्रा धारण किये समा जाते। मेरी पलकें उन्हें ढूँढ़ लेतीं। गोकुल परितृप्त बने, तबतक तू भी उनको ऐसे ही ढँके रहना – मेरे प्राणोंमें अपने प्राणोंको सर्वथा सङ्क्रमितकर अपने तटके द्रुमजालोंके माध्यमसे, भला ..!'।।८८१।।

'दिन के दूसरे पहर में वे रहते अरण्य में थे', प्रियतम!
'मेरा प्यारा भाई मेरी करता सहायता था', प्रियतम!
'प्रेषित मैं एक पत्र करती, तू भी अवश्य करना', प्रियतम!
'मेरे प्राणों में प्राण मिला, नलिनों पर लिख करके', प्रियतम।।८८२।।

'और सुन, दिवसके द्वितीय प्रहरमें वे अरण्यमें निवास करते थे। उस समय मेरा प्यारा भाई, अग्रज श्रीदाम मेरी सहायता करता था – मैं एक पत्र प्रेषित करती। तू भी ऐसे ही करना – मेरे प्राणोंमें अपने प्राण सर्वथा सङ्क्रमितकर नलिनोंपर अङ्कित करके ....।'।।८८२।।

'होती अर्चना दिवाकर की अपराह्णकाल में थी, प्रियतम!
'मेरी आशा-वल्लरी हरी क्रमशः होने लगती', प्रियतम!
'मैं अर्घ्य तरणि को देती थी, तू भी अवश्य देना', प्रियतम!
'मेरे प्राणों में प्राण मिला, लहरें उछाल करके', प्रियतम।।८८३।।

'और सुन, अपराह्णमें दिवाकरकी अर्चना होती...... मेरी आशा-वल्लरी क्रमशः हरी होने लगती .... मैं तरणिको अर्घ्य देती थी! तू भी अर्घ्यदान अवश्य करना – मेरे प्राणोंमें अपने प्राणोंको सर्वथा सङ्क्रमितकर, लहरोंको उच्छलित करके।'।।८८३।।

'संध्या के समय दीखते वे कानन से घर आते', प्रियतम!
'मेरे समीप आते ही वे कन्दुक उछाल देते', प्रियतम!
'अञ्जलि में उसे पकड़ लेती मैं, तू भी यों करके', प्रियतम!
'मेरे प्राणों में प्राण मिला, उनको प्रसन्न करना', प्रियतम।।८८४।।

'और सुन, संध्याकी रश्मियोंमें वे मुझे दीखते काननसे आवासकी ओर आते हुए। और जैसे ही वे मेरे समीप आते – एक कन्दुक उछाल देते; मैं उसे अञ्जलिमें पकड़ लेती ....। मेरे प्राणोंमें अपने प्राणोंको सर्वथा सङ्क्रमितकर ऐसे ही आचरण करके उनको प्रसन्न करना, भला!'।।८८४।।

'होता प्रदोष में अनुभव, वे मुझको हैं ढूंढ़ रहे, प्रियतम!
'नीली या उजली साड़ी मैं तत्काल पहर लेती, प्रियतम!
'संकेत जोहती उनका फिर, तू भी ऐसा करना, प्रियतम!
'मेरे प्राणों में प्राण मिला, उनको न खिन्न करना।' प्रियतम॥८८५॥

'और सुन, प्रदोष आ जाता। मैं अनुभव करती – वे मुझे ढूँढ़ रहे है। और मैं नीले किंवा उज्ज्वल परिधानसे अपने आपको सज्जित कर लेती और फिर उनके सङ्केतकी प्रतीक्षा करती। मेरे प्राणोंमें अपने प्राणोंको सर्वथा सङ्गमितकर तू भी ऐसे ही करना। कदापि, स्वप्नमें भी उनको खिन्न न कर देना।'।।८८५।।

"मिलना होता निशीथ में, वे उस समय भूल जाते;' प्रियतम!
"अपना स्वरूप, कहने लगते; 'मैं रमणी हूँ, रमणी!' प्रियतम!
'मैं चेत कराती थी उनको, तू भी सतर्क रहना;' प्रियतम!
'मेरे प्राणों में प्राण मिला, उनको सँभाल लेना।' प्रियतम॥८८६॥

'और सुन, निशीथमें उनका मेरा मिलन होता और उस समय वे अपने स्वरूपको विस्मृत कर जाते। कहने लग जाते – 'मैं रमणी हूँ, रमणी'। मैं उन्हें चेत कराती। मेरे प्राणोंमें अपने प्राणोंको सर्वथा सङ्गमितकर तू भी सतर्क रहना और मेरे जीवन-सर्वस्व नीलसुन्दरको सँभाल लेना, बहिन!'।।८८६।।

'उस अपररात्र में भावों की आँधी आ जाती थी, प्रियतम!
'जिसके प्रवाह में मन उड़ता अत्यन्त दूर उनका;' प्रियतम!
'मैं साथ-साथ उड़-चलती थी, तू भी यों उड़-चलना;' प्रियतम!
'मेरे प्राणों में प्राण मिला, उनको रस में भरना।' प्रियतम॥८८७॥

'और सुन, उस अपर रात्रिमें भावोंकी आँधी आ जाती। उसके प्रवाहमें उनका मन उड़ता चला जाता दूर, दूर, अत्यन्त दूर! और मैं भी साथ-साथ डड़ती चली जाती। मेरे प्राणोंमें अपने प्राणोंको सर्वथा सङ्गमितकर, तू भी ऐसे ही उड़ चलना। उनको रसमें निमग्न कर देना – आनन्द-दान करना!'।।८८७।।

'लगते ही उषा, परस्पर की पूजा चलने लगती;' प्रियतम!
'होता स्वरूप-विनिमय पूरा प्राणों का, तन का भी;' प्रियतम!
'क्षण में फिर पहले-सा बनता तू भी बन-बनकर यों;' प्रियतम!
'मेरे प्राणों में प्राण मिला, यह सेवा भी करना।' प्रियतम॥८८८॥

'और सुन, ऊषा आती और हम दोनोंकी परस्परिक अर्चना आरम्भ होती। बताऊँ, उस समय क्या होता था? सुन, बहिन! – प्राणोंका, तनका भी पूरा-पूरा स्वरूप-विनिमय हो जाता। और फिर क्षणमें ही पहले-सी स्थिति बन जाती। मेरे प्राणोंमें अपने प्राणोंको सर्वथा संगमितकर ऐसे ही बन-बनकर यह सेवा भी अवश्य कर देना। प्रत्येक ऊषामें ही करती रहना।'।।८८८।।

'सुन्दरी एक-से-एक बढ़ी उनमें अनुरागवती; प्रियतम!
'इस वन में बसती थीं अपना सर्वस्व दिये उनको;' प्रियतम!
'मैं सबको अहो! मिलाती थी, तू भी व्रत ले लेना;' प्रियतम!
'मेरे प्राणों में प्राण मिला, साँवर-सुख-वर्धन का।' प्रियतम॥८८९॥

'और सुन, एक-से-एक बड़ी सुन्दरियाँ अपने उरःस्थलमें अनुरागका समुद्र सँजोये इस काननमें बसती थीं, निवास करती थीं – अपना सर्वस्व उनके चरण-नख-चन्द्रोंमें निरन्तर न्योछावर किये रहकर। अहो! अरी बहिन मेरी! मैं उन सबोंको मेरे प्राणनाथसे मिला देती थी – रस-मिलन संघटित कर देती थी। तू भी मेरे प्राणोंमें अपने प्राणोंको सर्वथा संगमितकर मेरे साँवरके सुख-वर्धनका यह व्रत ले ही लेना।'।।८८९।।

'इतना सब कहने का केवल उद्देश्य, बहिन! यह है;' प्रियतम!
'जो सेवा मैं कर सकी नहीं, जो प्रतिदिन थी करती,' प्रियतम!
'उन सबका भार एक तुझपर हूँ डाल रही अब मैं;' प्रियतम!
'तू, भला, अनन्तकालतक यह कर्तव्य निभा देना।' प्रियतम॥८९०॥

'और सुन, मेरे इतना, यह सब कहनेका केवल इतना-सा उद्देश्य है, बहिन! कि ज़ो सेवाएँ मैं न क़र सकी, और जो सेवाएँ प्रतिदिन किया करती थी – उन सबका भार अब मैं एक तुझपर ही डाल रही हूँ। तू अनन्तकालतक यह कर्तव्य निभा देना, बहिन!......'।।८९०।।

'तुझसे मैं नित्य एक रहकर यह सब देखूँगी ही;' प्रियतम!
'तू किंतु न यह उनको कहना, हूँ मिली हुई तुझमें;' प्रियतम!
'होंगे संकुचित नाथ मेरी प्रच्छन्न उपस्थिति से;' प्रियतम!
'तू सावधान रहना हरदम, लगने न गन्ध देना।' प्रियतम॥८९१॥

'सुन, बहिन! मैं तुझसे नित्य एक बनी रहकर, तुझसे आत्यन्तिक एकतामें परिनिष्ठित रहकर यह सब देखूँगी ही, किन्तु तू उन्हें कदापि मत बतलाना कि मैं तुझमें मिली हुई हूँ। अन्यथा मेरे प्राण-रमण नीलसुन्दर, मेरे प्राणवल्लभ साँवर मेरी उस प्रच्छन्न उपस्थितिसे सङ्कुचित हो जायँगे। अतएव तू सावधान रहना। हरदम पूरी सतर्क रहना – उन्हें मेरी उपस्थितिकी गन्धकी गन्ध भी न लगने देना।'।।८९१।।

कोई उपाय कर सके, बहिन! तो तू अवश्य करना;' प्रियतम!
वे मुझे सदा के लिये अहो! मन से निकाल पायें;' प्रियतम!
मैं थी न कभी, मैं हूँ न कभी, होऊँगी मैं न कभी;' प्रियतम!
उनकी हो चित्तवृत्ति ऐसी, चिन्ता न रहे मेरी।' प्रियतम।।८९२।।

'और बहिन! यदि तू कोई उपाय कर सके तो अवश्य करना – वे मुझे सदाके लिये सर्वथा सर्वांशमें भूल जायँ, मुझे अपने मनसे निकाल फेंकें। ....मैं न तो कभी थी......... न कभी हूँ और आगे कालके प्रवाहमें न कभी होऊँगी – उनकी चित्तवृत्ति ठीक-ठीक ऐसी बन जाय। उनके मनसे मेरा चिन्तन सर्वथा विलुप्त हो जाय.......।'।।८९२।।

'मेरे प्राणाधिक सुखी रहें निरवधि, मैं यह देखूँ;' प्रियतम!
'इसके अतिरिक्त नहीं मेरी कोई थी चाह कभी;' प्रियतम!
'है नहीं, न होगी ही, मैं यह हूँ सत्य-सत्य कहती;' प्रियतम!
'तेरे नीले उर पर एवं लिख भी यह देती हूँ।' प्रियतम॥८९३॥

'देख, मेरे प्राणाधिक नीलसुन्दर, मेरे जीवन-सार-सर्वस्व साँवर निरवधि सुखी रहें – मैं केवल यही देखूँ। इसके अतिरिक्त मेरी कदापि कोई अन्य चाह न थी, न है, न होगी ही। मैं सत्य-सत्य-सत्य कह रही हूँ और तेरे नील उरःस्थलपर यही अङ्कित भी कर दे रही हूँ, बहिन!'।।८९३।।

'कोई न सुने, देखे न इसे क्षणभर भी, क्या इससे; प्रियतम!
'तू तो सुनती ही है एवं तू देख रही भी है; प्रियतम!
'तुझसे भी मैं कहती न भला, निरुपाय किन्तु मैं थी; प्रियतम!
'उनकी सँभाल की चिन्ता थी, अतएव सुना बैठी।' प्रियतम॥८९४॥

'नीलिमामयी मेरी चिरसङ्गिनी बहिन! कोई भले न सुने, कोई इसे न देखे, क्षणभरके लिये भी किसीके कर्णपुटोंमें, किसीके नयन-पथमें यह न आये – इससे क्या हुआ? तू तो सुनती ही है, तू तो देख ही रही है। बहिन! मैं तुझसे भी यह बात न बतलाती, किन्तु निरुपाय थी। उनकी सँभालकी चिन्ता जो थी मुझे। अतएव यह सुना बैठी।'॥८९४॥

'भावों की लहरों का कोई इतिवृत्त न होता है; प्रियतम!
'भावों की ये तरंग आती सीमा में है न कभी; प्रियतम!
'जो प्राण एक-से हैं अपने उर में नीलिमा लिये; प्रियतम!
'उन-उन में ये सङ्क्रमित अहो! उन-उनसे होती हैं।' प्रियतम॥८९५॥

'कल-कलनिनादिनी बहिन! भाव-लहरियोंका कोई इतिवृत्त नहीं होता। भावोंकी ये ऊर्मियाँ कभी ससीम नहीं होतीं। जो अपने-अपने उरःस्थलमें नीलिमा लिये होते हैं, जिनके प्राण एक साँचेमें ढले होते हैं, उन-उनमें उन-उनसे ये संक्रमित होती हैं भला ....'॥८९५॥

'री! बहिन! नीलिमा है पूरित तेरे तो कण-कण में; प्रियतम!
'अतएव आज आकुल तुझसे अपना उर खोल गयी; प्रियतम!
'तू भूल न जीवन में जाना मेरी इन बातों को; प्रियतम!
'जो लहर विलीन हुई, वह तो आयेगी नहीं कभी।' प्रियतम॥८९६॥

'और तेरे तो, बहिन! कण-कणमें नीलिमा ही परिपूरित है। इसीलिये आज आकुल हुई मैं अपना उरस्थल तेरे समीप खोल गयी हूँ – अनावृत कर गयी हूँ। तू मेरी इन बातोंको अपने जीवनमें भूल न जाना। देख, जो लहरी विलीन हो गयी, वह तो कदापि, कभी लौटकर नहीं आयेगी, पुनः नहीं स्पन्दित होगी...... ....।'॥८९६॥

बाला यों कहकर, कर जोड़े, जल में पद रख, बैठी, प्रियतम!
केवल दो सहचरियों में ही प्राणों की क्रिया बची, प्रियतम!
उसके थी साथ एक पीछे-पीछे बढ़ती जाती, प्रियतम!
थी एक खड़ी तटपर पूरी जड़ होकर देख रही, प्रियतम॥८९७॥

किशोरी इतना-सा ही कह सकी और हाथ जोड़कर अपने चरणोंको कलिन्द-नन्दिनीके प्रवाहमें रख बैठी। केवल दो सहचरियोंमें उस क्षण उनके प्राणोंकी वृत्ति अवश्य शेष थी। एक तो किशोरीके साथ-साथ पीछे-पीछे बढ़ती जाती और एक पूरी जड़िमासे परिव्याप्त होकर तटपर खड़ी देख रही थी मात्र......... ।॥८९७॥

बाला ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती, जल था बढ़ता जाता, प्रियतम!
डूबी कटि, डूब गया क्रमशः उसका वक्षःस्थल भी, प्रियतम!
उल्लास भरी ऊँचे स्वरमें रह-रहकर वह हँसती, प्रियतम!
उसके श्रीमुख से स्व यह वाणी झरती जाती, प्रियतम॥८९८॥

किशोरी नीली प्रवाहिणीके प्रवाहमें अग्रसर हो चली। ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती, नीले नीरकी गम्भीरता बढ़ती चली जाती........कटि-देश डूब गया। क्रमशः किशोरीके वक्षःस्थलको स्पर्शकर धारा प्रसरित हो रही थी. ....। उल्लास-भरे स्वरमें रह-रहकर वह हँसती और उसके श्रीमुखसे इस मधुस्यन्दी गिराका निर्झर प्रसरित हो रहा था – ।।८९८।।

'साँवर-साँवर ही आगे हैं, साँवर ही पीछे हैं; प्रियतम!
'साँवर-साँवर ही दहिने हैं, साँवर ही बायें हैं; प्रियतम!
'साँवर-साँवर ही नीचे हैं, साँवर ही ऊपर हैं; प्रियतम!
'साँवर-साँवर ही अब केवल सर्वत्र अवस्थित हैं; प्रियतम॥८९९॥

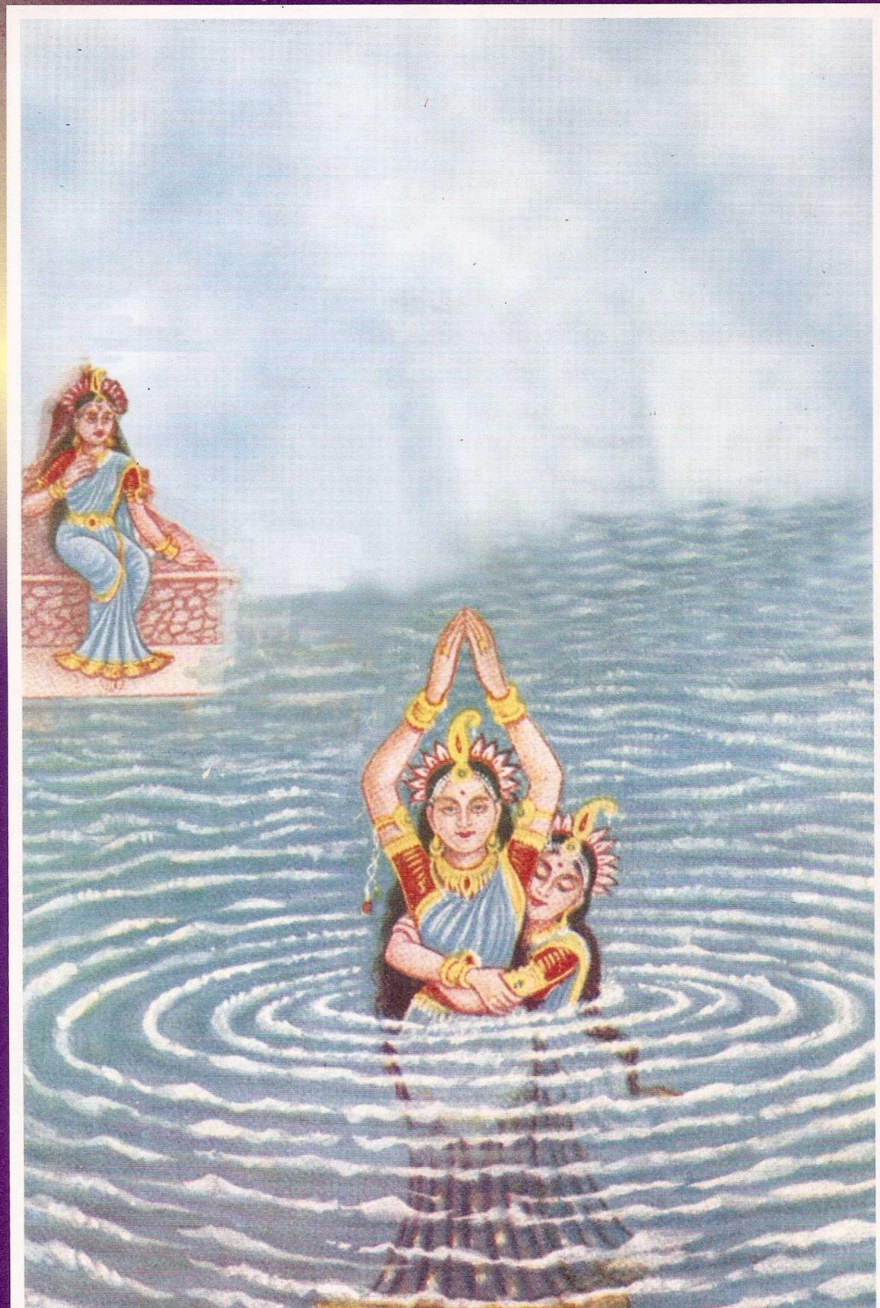
'साँवर, साँवर ही तो आगे हैं; साँवर, साँवर ही तो पीछे हैं; साँवर, साँवर ही तो दाहिने हैं; साँवर, साँवर ही तो वामपार्श्वमें विराजित हैं; साँवर, साँवर ही तो नीचे हैं; साँवर, साँवर ही तो ऊर्ध्वदेशमें प्रतिष्ठित हैं; साँवर, साँवर ही तो अन्तस्तलमें विराजमान हैं; साँवर, साँवर ही तो बहिर्देशमें परिशोभित हो रहे हैं; बस, केवल साँवर ही साँवर, साँवर, साँवर ही सर्वत्र अवस्थित हैं.........।'।।८९९।।

नीला जल लगा चिबुक छूने-चञ्चल हो-हो करके, प्रियतम!
उसके कर-नलिनों की अञ्जलि ऊपर की ओर उठी, प्रियतम!
उसके पीछे-पीछे सटकर जो सखि जा रही थी, प्रियतम!
बालाको उसी सहेली ने भर लिया भुजाओं में, प्रियतम॥९००॥

नीला नीर अब किशोरीके चिबुकको स्पर्श करने लगा। अत्यन्त चञ्चल होकर वह रो रहा था......... .... किशोरीके कर-नलिनोंकी अञ्जलि ऊपरकी ओर उठ गयी .... जो सहचरी उसका अनुसरण कर रही थी प्रवाहिणीकी चञ्चल धारामें, उसने किशोरीको पीछेसे अपनी भुजाओंमें भर लिया – अन्तिम प्रयास था उस दीनाका किशोरीके प्राण-रक्षणका ...।।।९००।।

नीली लहरें अब बालाके सिर पर से प्रसरित थीं; प्रियतम!
वैसी ही वह फिर भी आगे-आगे बढ़ती जाती, प्रियतम!
मणिबन्ध-अंश पीली अञ्जलि केवल थी दीख रही, प्रियतम!
धीरे-धीरे वह भी नीली लहरों में लीन हुई, प्रियतम॥९०१॥

नीली लहरें अब किशोरीके मस्तकके ऊपरसे प्रसरित थीं, किन्तु वह अब भी वैसे ही आगे बढ़ती जा रही थी। अब मात्र दीख रहे थे किशोरीके मणिबन्ध-अंश....... और अन्तमें किशोरीकी पीली अञ्जलि। और धीरे-धीरे वह अञ्जलि भी नीली लहरोंमें विलीन हो गयी।।।९०१।।



बालाको उसी सहेली ने भर लिया भुजाओं में, प्रियतम ! (९००-४ प्रि.का.) (पृष्ठ ३२२)

इतने में प्रगट हुईं अम्बा, गैरिकवसना जो थीं, प्रियतम !
फैली चिन्मयी नयी माया, तत्काल दृश्य बदला, प्रियतम !
कल-कल-निनादिनी का जल वह घट गया विपल में ही, प्रियतम !
बाला को लिये अङ्क में वे आ रही किनारे थीं, प्रियतम ।।९०२।।

अचानक वहीं, कालके उस विन्दुपर ही अघट-घटना-पटीयसी अचिन्त्य-लीला-महाशक्ति योगमायाका आविर्भाव हुआ। गैरिकवसनाकी चिन्मयी लीलाका नवीन विस्तार हो उठा और दृश्य बदला। कल-कलनिनादिनीका वह जल एक विपलमें ही घट गया......... और वे महिमामयी किशोरीको अपने अङ्कमें लिये कलिन्द-नन्दिनीके कूलकी ओर आ रही थीं।।।९०२।।

वह डूबी हुई सखी भी थी उनके पीछे-पीछे, प्रियतम!
वे महिमामयी उठीं तट पर, उनके दृग पड़े वहाँ, प्रियतम !
सबके प्राणों में गति आयी, सबको वे लिये चलीं, प्रियतम !
आया सुन्दरी-सरोवर का वह कूल अर्धपल में, प्रियतम ।।९०३।।

वह जलनिमग्न सहचरी भी उनके पीछे-पीछे आ रही थी – प्राण-समन्वित होकर। वे असमोर्ध्व-महिमामयी तटके ऊपर उठ आयीं और उनके दृगोंकी बङ्किम दृष्टि गतिशील हो उठी कल्लोलिनीके कूलपर अवस्थित सबपर ही एक साथ। सबके प्राण स्पन्दित हो उठे और सबको लिँये वे चल पड़ीं सुन्दरी-सरोवरकी दिशामें। आधे पलमें सरोवरका वह कगार भी आ ही गया। उनके चरण-तलका स्पर्श कर रहा था वह।।।९०३।।

सबको वे वहाँ विराजित कर करुणा से भरी हुई, प्रियतम !
बोलीं 'धीरज, धीरज,' मेरी पुत्रियों ! रखो, देखो !' प्रियतम !
'इस महादुःख की रजनी का होकर अवसान, उषा,' प्रियतम !
'आयेगी, साँवर से मिलकर सुखिनी तुम सब होगी।' प्रियतम ।।९०४।।

सबको उन्होंने वहीं विराजित कर दिया और वे करुणामयी बोल उठीं – 'मेरी पुत्रियों! धैर्य धारण करो। देखो, इस महादुःखकी रजनीका अवसान होकर ऊषा तुम सबका अभिनन्दन करने आयेगी ही; तुम सब-की-सब साँवरसे मिलकर सुखिनी होवोगी ही। अनन्त, अपरिसीम आनन्द-सिन्धुमें अनन्तकालतकके लिये निमग्न होओगी ही, [illegible]ओगी ही।'।।९०४।।

वे अम्बा इतना ही कहकर अन्तर्हित हुईं तथा, प्रियतम !
रत्नावासों से भरा हुआ वह गाँव अदृश्य हुआ, प्रियतम !
उसके वन-परिसर पर भी कुछ अभिनव माया फैली, प्रियतम !
उसकी सत्ता होती न वहाँ उपलब्ध सभी को थी, प्रियतम ।।९०५।।

जगज्जननी महादेवी अम्बा यह सन्देश दानकर अन्तर्हित हो गयीं... । रत्नमय आवासोंसे भरा हुआ सुन्दरी-सरोवरका वह गाँव भी अदृश्य हो गया। उसके वनपरिसरपर भी एक अभिनव माया फैल गयी। इस क्षणके अनन्तर उस वनपरिसरकी किञ्चित् भी सत्ता किसीको भी उपलब्ध न होती थी।।।९०५।।

बाला को, उसकी सखियों को मानो सब भूल गये, प्रियतम !
थीं कौन कहाँ बसती वे, थे माँ-बाप कौन उनके, प्रियतम !
दैनंदिन जीवन था उनका क्या, कहाँ गयीं अब वे, प्रियतम !
आवरण सभी इन बातों पर आया सबके मन में, प्रियतम ।।९०६।।

.... किशोरीको, उसकी सहचरियोंको मानो सभी भूल गये। वे कौन थीं, कहाँ निवास करती थीं, उनके जनक-जननी कौन थे, उनका दैनन्दिन जीवन क्या था, और वे सब-की-सब कहाँ चली गयीं – इन सभी बातोंको सभी विस्मृत कर गये। सबके मानस-तलपर एक घना आवरण आ गया........... ......।।।९०६।।

अज्ञात सभी को थी घटना बिरजा की धारा की, प्रियतम !
उस महाभाव की क्रीड़ा का इतिहास अप्रकट था, प्रियतम !
आकुल फिर वनवासीजन थे साँवर के जाने से, प्रियतम !
यह तो विधान ही था विधि का, अतएव हुआ ऐसा, प्रियतम ।।९०७।।

विरजा-धाराकी घटना सबको अज्ञात थी। उस मान-लीलाका इतिहास सबके मानस-तलमें अप्रकट था। और फिर सम्पूर्ण काननवासी साँवरके वियोगसे व्याकुल थे। यह तो विधिका विधान ही था और इसीलिये ऐसा हुआ।।।९०७।।

था चारों ओर अँधेरा ही, यद्यपि सित रजनी थी, प्रियतम !
यों चार पहर के अन्तर से उग आये दिनकर भी, प्रियतम !
वे किंतु निरन्तर मुँदी हुई बाला की आँखें थीं, प्रियतम !
काली थी उसके लिये निशा अब सौ वर्षों वाली, प्रियतम ।।९०८।।

यद्यपि सित रजनी थी वह, फिर भी सर्वत्र घन तिमिरका साम्राज्य था। पुनः यों तो चार प्रहरोंके अन्तरालसे दिनकरकी किरणें भी उद्भासित हो उठीं, किन्तु किशोरीकी आँखें निरन्तर मुँदी रहतीं। उसके लिये तो अब सौ वर्षकी कृष्णनिशाका ही अस्तित्व बच रहा था, और उसे निरन्तर रोना था.......।।।९०८।।

कैसे, प्राणाधिक कहूँ अहो ! उन करुण-चरित्रों को, प्रियतम !
आगे के, प्राणों में पल-पल चल रही टीस अब है, प्रियतम !
थोड़ा-सा फिर भी कहना है, तुम चाह रहे जो हो, प्रियतम !
ले प्यार नित्य तुमसे ही तो देती हूँ मैं तुमको, प्रियतम ।।९०९।।

अहो प्राणाधिक! मैं आगेके उन करुण चरित्रोंका वर्णन कैसे करूँ, अब तो मेरे प्राणोंमें प्रतिपल वेदनाकी लहरें जो उठ रही हैं। किन्तु तुम्हारी अभिलाषा सुननेकी है अतः फिर भी थोड़ा-सा कहती हूँ। मेरे प्राणोंके प्राण! मैं तुम्हींसे तो निरन्तर प्रेमकी प्राप्ति करती हूँ तथा तुम्हींको उसीका प्रतिदान करती हूँ।।९०९।।



वह उजड़ गया वन था जिसमें बहती रसकी धारा, प्रियतम ! (९१०-११ प्रि.का.) (पृष्ठ ३२५)

।। विजयेतां श्रीप्रियाप्रियतमौ ।।

दशम शतक

महाध्वंसका अवशेष

वह उजड़ गया वन था जिसमें बहती रसकी धारा, प्रियतम!
था हा-हाकार भरा उसमें असहाय अनाथों का, प्रियतम!
ज्वालामय पवन बना रहता जलते प्राणों को छू, प्रियतम!
वे अटके थे, बस, आशा पर आने की साँवर के, प्रियतम।।-९१०।।

वृन्दा-कानन ध्वस्त हो चुका था। एक दिन जहाँ रसकी कल्लोलिनी हिलोरें लेती थी वहाँ मरुस्थलका झंझावात परिव्याप्त था; सर्वत्र असहाय अनाथोंका चीत्कार, हाहाकार प्रतिध्वनित था। समीर गोपसुन्दरियोंके धक-धक् करते प्राणोंसे जाकर जुड़ता और निरन्तर ज्वालाकी वर्षा करता रहता! गोपसुन्दरियोंके प्राणोंके हाहाकारको सह न पाता था स्वयं पवन ही और भाग छूटता था असह्य ऊष्माका वितरण करते हुए। अपनेमें लिये हुए उस तापको नभमें, जलमें, थलमें भरता रहता। और हाय रे! क्या दशा थी गोपसुन्दरियोंके प्राणोंकी! वे मात्र उनकी देहमें रुद्ध थे – इस आशापर कि हमारे प्राणनाथ आयेंगे तो अवश्य।।।९१०।।

रञ्जित तमोल से ओठ न थे, चितवन अब वक्र न थी, प्रियतम!
घुँघराले कच की लहर न थी बल खाती वेणी की, प्रियतम!
झनकार न थी आभूषण की वीणा-जैसे स्वर की, प्रियतम!
नीले-पीले परिधानों की थी ज्योति न अब वन में, प्रियतम।।-९११।।

अब गोपसुन्दरियोंके होठोंपर ताम्बूलकी अरुणिमा न थी। विशुद्ध मधुर प्यारसे भरी चितवनकी वक्रता भी अब उनके नयनोंमें व्यक्त न हो पाती थी – आधे क्षणके लिये भी। मस्तकसे झूलते कुञ्चित केशोंके स्पन्दनका दर्शन कोई भी न कर पाता था। उनकी सुन्दर वेणीको नाचते देखकर अब कोई भी विथकित न होता था। अलकोंका सौन्दर्य, वेणीका सौन्दर्य सर्वथा तिरोहित हो चुका था। उनके अङ्गोंपर अब किसी भी आभूषणकी झंकृति न थी और उनके मुखसे वीणा-जैसे स्वरकी मधुरिमासे अब किसीके भी कर्णपुट पूरित न होते थे। और हाय! उनकी देह भी, देहका आवरण भी कभी त्रुटिभरके लिये नीले-पीले परिधानोंकी ज्योति न बिखेरता था।।।९११।।

अब सिरिस-कुसुम-सुकुमार अङ्ग थे नहीं प्रभावाले, प्रियतम!
था अस्थिमात्र मानो लिपटा धूमीले वसनों में, प्रियतम!
पतला-सा सोता आँखों से हरदम चलता रहता, प्रियतम!
मुरछा से वेग कभी उसका थमता, फिर बढ़ जाता, प्रियतम।।-९१२।।

अब शिरीष-सुमनोंकी मृदुलता उनके अङ्गोंपर परिलक्षित न होती। अब तो क्षीण अस्थियोंका एक पञ्जरमात्र धूमिल परिधानोंमें आवृत दीखता था। अविराम अश्रुकी एक पतली धारा उनके कपोलोंपर चलती ही रहती! हाँ, जिस समय व्यथाके भारको न सह सकनेके कारण वे मूर्छित हो जातीं, उस समय क्षणिक अश्रुका तार टूटता-सा दीखता और फिर द्विगुणित वेगसे आगे चिबुक-परिसरसे होते हुए वक्षस्थलको आर्द्र करने लगता।।।९१२।।

पिक बने विहङ्गम मूक, गीत गाती न कोकिला थी, प्रियतम!
शुक था नीरव रहता, सारी पढ़ती न पाठ अब थी, प्रियतम!
'मिल लो गोपी तुम'; रुक नहीं रटता पिरोइयाँ था, प्रियतम!
मधुलिह भी भूल गया अब था उड़ना गुन-गुन करना, प्रियतम!।-९१३।।

अब वृन्दाटवीमें विहङ्गमोंका कलरव नहीं था। कोकिल अपने कुहू-कुहूके रवसे गाकर रसका विस्तार वनमें न करती थी। शुक निरन्तर नीरव ही बना रहता एवं सारिका अपने रसमय पाठसे किसी भी प्राणीके प्राणोंको रसपूरित न करती थी। और तो क्या, निरन्तर वाचाल पिरोइयाँ भी 'अरी गोपी मिल लो' इस सरस सङ्केतसे लवमात्रके लिये भी अरण्यको गुञ्जित न करतीं। भ्रमर भी विस्मृत कर चुका था, सच-सच, गुन-गुन करना – और एक पुष्पसे दूसरे पुष्पपर जानेकी प्रवृत्ति भी उसकी समाप्त हो चुकी थी। मृतप्राय वह उस पुष्पपर ही ज्यों-का-त्यों आसीन था – जिस समय नीलसुन्दर विदा हुए थे, तबसे।।।९१३।।

सब सूख गयी थी वल्लरियाँ, पादप की शाखाएँ, प्रियतम!
मुंडित योगी-सा वट विरहित पत्रों से था रोता, प्रियतम!
'साँवर आते प्रतिदिन पहले मेरी ही छाया में', प्रियतम!
'फिर आ उनसे बाला मिलती', यह बात याद करके, प्रियतम।।९१४।।

काननकी लता-वल्लरियोंमें हरितिमाका कोई चिह्न न था; द्रुमजालकी शाखाएँ प्राणशून्य-सी बनी, प्राणसञ्चारकी गतिका कोई परिचय न देतीं और वह चिर-परिचित बट-तरु, हाय रे, देखो! पत्र-विरहित हो चुका है! अरे! क्या सचमुच इसने संन्यास ले लिया और मुण्डित योगीकी भाँति वह स्पन्दनशून्य, समाधिस्थ-सा खड़ा है? नहीं-नहीं, देखो! रह-रहकर उससे टप-टप बूँदें चू रही हैं, अङ्गोंमें गतिके बिना ही रो पड़ता है वह। रह-रहकर सोच रहा है – 'नीलसुन्दरने मुझे ही सङ्केत-स्थलका अप्रतिम सौभाग्य दिया था। वे इस प्रवाहिणीके तटपर पहले मेरी ही छायामें आकर सब ओर देखते थे और फिर इतनेमें वृषभानुनन्दिनी राधाका वह ज्योतिर्मय कलेवर मुझे दूरसे ही दीख जाता! क्षण बीतते-न-बीतते दोनों परस्पर भुजपाशमें आबद्ध हो जाते।' इसकी स्मृति ही बूँदें बनकर टप-टप झर पड़ती थीं, रह-रहकर उसकी सूखी शाखाओंके अन्तरालसे।।।९१४।।

सूनी उदास बैठी रहती गिरिवर की दरी वहाँ, प्रियतम!
कमलों की सूखी शय्या पर आँखें अपनी डाले, प्रियतम!
'आकर साँवर ने एक रात बाला को साथ लिये', प्रियतम!
'विश्राम किया था इस पर ही, इस चिन्ता में डूबी', प्रियतम।।९१५।।

गिरिवरकी कन्दरामें सूनेपनका साम्राज्य था। सरोरुहोंसे निर्मित शय्या मुरझायी, सूनी थी। हाय रे! ऐसा सन्नाटा, मानो कन्दरा उदास खोई-सी बैठी अपनी आँखें उस सूखी शय्यापर केन्द्रितकर व्यथाके प्रवाहमें डूबी हुई सोच रही हो – 'एक दिन था, मैं सोच रही थी आयेंगे वे दोनों अवश्य और इतनेमें उस चिन्तामें ही दिनकर अस्त हो गये! निशाका अञ्चल मैं प्रत्यक्ष देख रही थी और वे दोनों मेरे प्राणनाथ नीलसुन्दर और वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा गरबाहीं दिये आये। श्रान्त थे वे दोनों और उन्होंने इस सरोज-शय्यापर ही विश्राम किया था।'।।९१५।।

थे ऊर्मिहीन सर सब वनके, हिम-सा था हृदय जमा, प्रियतम!
गहरा था दुःख भरा उनमें उस सुख के खोने का, प्रियतम!
'साँवर आये थे मेरा रस अपनी अञ्जलि में ले; प्रियतम!
'आधा बाला के मुख में भर, पी गये शेष फिर वे।' प्रियतम॥९१६॥

काननके सभी सरोवर ऊर्मिहीन हो चुके थे – व्यथाके भारसे उनका हृदय हिम-जैसा होकर जड़िमाके आवरणमें शान्त-स्थिर दीखता। उनका वह सुख लुट चुका था। वेदनासे प्रस्तर बना हृदय सोचता रहता – 'नीलसुन्दर आये थे, आते थे; अपनी अञ्जलिमें वे मेरे उरःस्थलका रस भर लेते! आधा रस, जल वृषभानुनन्दिनी प्राणप्रिया राधाके मुख-सरोजमें भर देते और फिर शेषका स्वयं आस्वादन करते।'।।९१६।।

चलता रवि तप्त हुआ धीरे, साँवर के बिना उसे, प्रियतम!
बाला के द्वारा अर्घ्यदान करवा कर कौन कहे, प्रियतम!
'इनके निमित्त मैं पा तुमको हूँ ऋणी सदा इनका,' प्रियतम!
'संकल्प अतः है, पूजित हों चिरकाल सभी से ये;' प्रियतम॥९१७॥

अब तुलसी-काननमें अंशुमालीकी गतिमें भी उल्लासका कोई चिह्न न बचा था; और वे किरणमाली अब और भी मन्द-मन्दतर गतिका ही अपने रथमें सञ्चार करते। बड़ी ही धीमी गति थी उनकी – किन्तु उनका तापमान अपने लिये ही और भी दुःसह्य हो गया था। वेदनासे रविके उरःस्थलका कण-कण परिपूर्ण था। अब नीलसुन्दरकी स्मृति ही उनकी आँखोंमें बची थी। वे भूल गये थे कि इस वनस्थलके उस पार भी उनकी आँखें क्रियाशील हो सकती हैं। रथ आगे बढ़ता अवश्य, किन्तु अब वे सम्मानदानी यशोदाके नीलमणि उन्हें उस वनस्थलमें न दीखते और वे इस विचारमें तन्मय हो जाते ''अब मुझे कौन करेगा नीलमसुन्दरकी इस रसमयी वाणीसे सिक्त। सुषमाका मैं इस वनस्थलमें कहीं दर्शन जो नहीं कर पा रहा हूँ। हाय रे! देव-दिवाकर सोचते थे नन्दनन्दनने ही तो कहा था 'नहीं-नहीं', प्रतिदिन ही कहते 'प्राणप्रिये प्रियतमे राधे! देखो, अर्घ्यदान करो इन्हें, भानुदेवको। देखो, इनके ही निमित्तसे तुम्हें पा सका हूँ। इन्होंने ही तुम्हें दान किया है मुझे। इस अनमोल निधिका स्वामी मैं बन सका मात्र इनके ही निमित्तसे। मैं क्या परिशोध कर सकूँगा इनके इस ऋणका? प्राणाधिके राधे! जब भी मैं अर्घ्यदानके अवसरपर इन्हें देखता हूँ, उस समय मेरा उरःस्थल कृतज्ञताके भारसे झुककर यही सङ्कल्प करता है 'ये सभीके द्वारा चिरकाल अर्चित हों सभीके द्वारा ये चिरवन्दनीय, समर्हणके अधिकारी रहें।' दिवाकरका रथ इसीलिये असह्य वेदनाके भारको ढोनेमें असमर्थ होकर जैसे-तैसे निर्धारित क्रमका अनुसरण करता, और धीरे-धीरे चलकर केवल अग्नि बिखेरते अस्तगिरिमें विलीन हो जाता।।।९१७।।

'था योग, अहो! मयंक ने ही आदर पाकर उससे,' प्रियतम!
'साँवर को ब्रह्मनिशा तक सित किरणों से सिक्त किया;' प्रियतम।
'अब वनमें उसकी ओर किंतु बाला न देखती थी;' प्रियतम।
'उठती थी आह अतः उरमें; ठंडापन था न रहा;' प्रियतम॥९१८॥

और जब क्षितिजको सुधांशु छूने आते, तब अत्यन्त करुण अवस्था उनकी भी होती; और शैत्य खोकर वे भी हुतभुक्की किरणें बिखरने लग जाते। संयोगकी बात थी इन मयङ्कने ही तो नीलसुन्दरके द्वारा, व्रजसुन्दरियोंके द्वारा, अत्यधिक आदर पाकर ब्रह्मनिशापर्यन्त सबको अभिषिक्त किया था और विथकित नेत्रोंसे

वे उस महारासका दर्शन करते सर्वथा अपने-आपको भूल गये थे। किन्तु अब वृन्दा-काननमें राधाकिशोरी उनको दृष्टि उठाकर न देखती थीं और पावक-पुञ्ज जग उठता निशाकरके उरःस्थलमें 'हाय रे, दुर्भाग्य! कृष्ण-प्राणप्रियाने मेरी ओर दृष्टि नहीं डाली। अभागा मैं यों ही आया हूँ।' इसीलिये कहीं भी शीतलताकी गन्धतक नहीं बची थी मयङ्ककी कायामें।।।९१८।।

'बड़भागी जगत्-प्राण यह है, बाला के अङ्गों के, प्रियतम।
भीतर बाहर का छू सौरभ, कहकर साँवर हँसते, प्रियतम!
वह रसिक न था, अब फूल न थे बाला तन पर वनमें, प्रियतम!
बहता सुवास से रहित अतः, होकर वह वैरागी, प्रियतम।।९१९।।

जगत्प्राण सौरभहीन हो चुका था – प्रवाहित होनेकी शक्ति भी उसके अन्दर न रही थी; निसर्गके नियमोंका अनुसरणकर उसमें गति तो आनी अनिवार्य थी ही, पर स्वतः उसकी प्रवृत्तिमें वैराग्य ओत-प्रोत हो चुका था। पहले तो व्रजसुन्दरियोंके श्वास-प्रश्वास उसमें अग्निका सृजन करते ही, फिर उसमें पवनके मानस-तलमें एक स्मृति जाग उठती "आह! नीलसुन्दरने ही तो हँसकर कहा था – न जाने कितनी बार उनका वह विनोद व्यक्त हुआ था। अपनी प्राणप्रियाको छूकर वे कह बैठते 'मेरे प्राणोंकी रानी! परम बड़भागी तो यह नभस्वान् है। हृदयेश्वरी राधे! यह तुम्हारे अन्तर्देशको और बाहर भी स्पर्श करता है। यह मेरे सौभाग्यकी गरिमा नहीं है कि मैं तुम्हारे अन्तर्देशको छू सकूँ।'' किंतु अब इस प्रकार उन्मुक्त हँसी हँसकर ऐसी रसमयी उक्तिका सृजन करनेवाला रसिक वह नीला शिशु नहीं था; और उसके अभावमें वृषभानुनन्दिनीके तनपर पुष्पोंका कोई आभूषण भी न था। वनस्थल भी सुमनोंसे शून्य हो चुका था – कहाँसे आती सौरभकी गन्धकी गन्ध भी समीरमें। एक पुष्प नहीं, वनस्थलके किसी कोनेमें भी और एक भी सुमन नहीं किशोरीके किसी भी श्रीअङ्गपर।।।९१९।।

साँवर कहते कुछ बाला से, भरते रव मुरली में, प्रियतम!
मेरे गुण का था अर्थ तभी सत्ता का इस वन में, प्रियतम!
पर कहाँ गयी ध्वनि अब वह, कुछ था समझ नहीं पाता, प्रियतम!
इसलिये व्योम चिन्तित असङ्ग केवल 'हा-हा' करता, प्रियतम।।९२०।।

हाय रे, दिन बदला तो कैसा बदला! एक दिन था, वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाके कर्णपुटोंमें साँवर कुछ धीरेसे कह देते और फिर अधरोंपर मुरलिकाको स्थान देकर उसमें न जाने किन-किन गीतोंका सृजन करते। इसकी स्मृति व्योमके कण-कणमें भरी थी और वह सोचता "क्या प्रयोजन है मेरी सत्ताका? क्या अर्थ है अपने अंदर शब्द-गुणको धारण करनेका मेरे अस्तित्वका?'' पर समझ नहीं पा रहा हूँ कि वह उन्मादिनी ध्वनि, मुरलिकाका वह मनोहर नाद, उसकी वह रसधारा कहाँ चली गयी? इसीलिये गम्भीर चिन्तामें निमग्न सर्वथा असङ्ग रहकर व्योम केवल 'हा-हा-हा-हा' का ही रव सृष्ट कर पाता। पीड़ाके आवेशमें व्योम - आकाश भूल चुका था कि वृन्दा-काननके अतिरिक्त भी कहीं उसकी सत्ता है। अपनी सार्थकताका एकमात्र उपयोग नीलसुन्दरके वृन्दा-कानन-विलासको धारण करनेमें, अवकाश देनेमें, उनकी रसधाराको शब्दके रूपमें प्रसारित करनेमें ही वह अनुभव करता और उसके अभावमें अनिच्छासे ही उसके द्वारा केवल हाहाकारके रवका ही वितरण होता।।।९२०।।

जो उस अरण्य के अधिवासी उद्भिज्ज, जरायुज या, प्रियतम !
प्राणी अण्डज थे; उन सबका मन था न रहा तन में, प्रियतम !
उड़कर साँवर के मुखपर था मँडराता चला गया, प्रियतम !
थी छाँह बची केवल उसकी रोने के लिये वहाँ, प्रियतम।।९२१।।

काननके अधिवासी जरायुज, उद्भिज्ज, अण्डज प्राणी जो भी थे वे सब-के-सब मनस्तत्वसे शून्य हो चुके थे। उनके समीप मन-नामकी वस्तु ही नहीं रही थी: उनका मन तो मधुपुरीकी ओर जाते हुए नीलसुन्दरके मुखपर उड़कर, जाकर, वहीं अपनेको विलीनकर, भागता चला गया था मधुपुरीकी ओर। अबतक लौटा नहीं था वह। हाँ! उसकी छाया अवश्य अब भी व्रजसुन्दरियोंकी कायामें बच रही थी। मनकी प्रतिच्छाया अवशिष्ट थी उन सबमें। पर रही थी केवल-केवल रोनेके लिये, हाहाकारके रवको प्राणदान करनेके लिये ही।।।९२१।।

क्या है कैसा सन्मुख अनुभव बाहर का दूर रहे, प्रियतम !
होता न किसी को भान वहाँ अपनेपन का भी था, प्रियतम !
संसार मिटा, व्यवहार गया, जीवन का चिह्न बचा, प्रियतम !
उनमें जो आह, अश्रुधारा निस्सृत होती रहती, प्रियतम।।९२२।।

अरे! मनकी बात दूर, बाहरकी बात अत्यन्त दूर काननके अधिवासियोंको यही भान न था कि मैं कौन हूँ? सामने क्या वस्तु है? कैसी है? उनका संसार मिट चुका था। व्यवहार शून्यमें समा गया था। वे जीवित हैं, इसका एकमात्र चिह्न उनमें यही अवशिष्ट था कि अश्रु-धारा निस्सृत हो रही थी उनके नयन-कगारोंसे और आहोंका रव फूटता रहता उनके अधर-पुटोंके अन्तरालसे!।।९२२।।

कैसे लिख दूँ उन चित्रों को वाणी की तूली से, प्रियतम !
लिखने बैठी वह, किंतु नहीं चलती इससे आगे, प्रियतम !
कानन के कण-कण में जो है वह दुःखभरी जड़िमा, प्रियतम !
प्राणों में लगी पुनः भरने कहने से हग-तन में, प्रियतम।।९२३।।

किन्तु छोड़ो अब इस करुण इतिवृत्तको, वाणी इससे आगे बढ़ नहीं सकेगी। अरे! तुम्हारा-मेरा अस्तित्व विलीन होकर रहेगा उस व्यथाके महासमुद्रमें, अगर एक पद भी इस दिशाकी ओर रखोगे तो .. ..सुनते हो?.........।।९२३।।.

जो कहीं ठहर जाऊँ किंचित्, लेकर मन में इसको, प्रियतम !
होगी फिर तो इति अभी यहीं बाला की गाथा की, प्रियतम !
रह जायँ अहो! फिर सुन्दरतम बातें आगे की वे, प्रियतम !
रोये यह देश, नगर, जिसमें घर था कच्चा उसका, प्रियतम।।९२४।।

इतना ही नहीं, सुनने जाओगे तो फिर इस महाध्वंसकी गाथा ऐसी अधूरी रह जायगी, जिसे कालके प्रवाहमें कोई सङ्केततक दान न कर सकेगा। अमरोंकी अमरता विलीन हो जायगी और कदाचित् दो-चार वे इस महाध्वंससे बच भी जायँ तो उनके लिये अमरता अभिशाप बन जायगी और केवल-केवल रोनेके लिये उनका अस्तित्व बच रहकर, जीवन दूभर हो जायगा।।।९२४।।

*

अतएव तनिक वन से हटकर परदेसी* की-चर्चा, प्रियतम !
करती हूँ जो था साँवर का वह दूत नवीन बना, प्रियतम !
सुन्दर था श्याम रंग उसका, भूषित था साँवर-सा, प्रियतम !
कुछ बात वहाँ करने-कहने वाला से था आया, प्रियतम ।।९२५।।

अतएव चलो, यहाँसे, हट चलो, और अब तुम्हें उस परदेसीकी, उद्धव नामके उस भक्तकी कुछ गाथा सुना दूँ। ये परदेसी उद्धवजी नीलसुन्दरके नवीन दूत बनकर आये थे। बड़े सुन्दर थे उद्धवजी। नीलसुन्दरके समान ही उनका श्यामवर्ण था और साँवरके सदृश ही वे वेष-भूषासे सज्जित थे। वे तुलसी-कानननमें कुछ बात कहने-करने आये थे राधाकिशोरीसे।।।९२५।।

* जिसकी इच्छा हो इसे 'परदेशी' पढ़ ले।

प्रेरित हो प्रेरक से उरके कोई बोली दीना, प्रियतम !
'आया क्या नहीं पुनः, जो था साँवर को ले भागा?' प्रियतम !
स्वर करुण कण्ठ से ज्यों निकला, वन में वह गूँज उठा, प्रियतम !
फिर एक साथ सबकी आँखें खुल गयी अचानक थीं, प्रियतम ।।९२६।।

अन्तर्यामीकी प्रेरणासे एक खिन्ना-दीना गोपसुन्दरी सहसा बोल उठी 'अरी! देखो सही, क्या वही, वही पुनः आया है, जो मेरे प्राणधन साँवरको रथपर चढ़ाकर, भगाकर ले गया था?' गोप-सुन्दरीके करुण कण्ठसे निस्सृत हुआ यह स्वर सम्पूर्ण कानननमें क्षण बीतते-न-बीतते प्रतिनादित हो उठा। और एक साथ सबकी आँखें खुलीं – बाहरकी ओर वे खोयी-सी देख रही थीं।।।९२६।।

वे लगीं देखने उस पथ को, साँवर थे जिधर गये, प्रियतम !
था समय वही प्रातः का ही, वे बिदा हुए जब थे, प्रियतम !
उनके समक्ष था एक खड़ा कोई प्रणाम करके, प्रियतम !
चुपचाप हाथ जोड़े, मानो गूँगा हो सत्य अहो ! प्रियतम ।।९२७।।

सबकी आँखें केन्द्रित हो गयीं उस पथपर, जिस पथसे नीलसुन्दर गये थे। यही प्रातः बेला थी, जब वे इन्हें छोड़कर गये थे मधुपुरीके लिये बिदा हुए थे। उनके सामने उद्धव उन सबको प्रणामकर चुपचाप हाथ जोड़े खड़े थे – ऐसे, जैसे कोई गूँगा, वाणीकी शक्तिसे सर्वथा विरहित प्राणी खड़ा हो।।।९२७।।

वे देख रहीं उसको थीं, वह उनको था देख रहा, प्रियतम !
कुछ बोल नहीं पाता वह था, दुख की दाझी वे थीं, प्रियतम !
जब-चार घड़ी थी बीत चुकी, इस भाँति कहा उसने, प्रियतम !
'साँवर का हूँ मैं मित्र, मुझे भेजा उनने ही है।' प्रियतम ।।९२८।।

व्रजसुन्दरियाँ उद्धवकी ओर देख रही थीं और वे देख रहे थे उनकी ओर। वे कुछ भी बोल नहीं पाते थे और दुःखकी महा-अग्निमें धक्-धक् जल रही थीं व्रजसुन्दरियाँ। क्षण-क्षण करते चार घड़ियाँ बीत गयीं, तब अचानक उद्धव यह बोल पाये "मैं साँवरका मित्र हूँ। नीलसुन्दरने मुझे भेजा है।"।।९२८।।

जैसे स्वर में सम बँधे हुए तन्त्री के तारों को, प्रियतम !
अर्भक ले छेड़-चपल, सहसा झंकृत होते वे हैं, प्रियतम !

वैसे ही 'साँवर' नाम बना उनके स्रवणों में जा, प्रियतम!
उद्‌बुद्ध रागिणी भावों की करने में हेतु बना, प्रियतम।।९२९।।

जैसे समान स्वरमें बँधे हुए तन्त्रके तारोंको कोई शिशु सहसा छेड़ बैठे और वे तार झंकृत हो उठें, वैसे ही साँवरका नाम सभी गोपसुन्दरियोंके कर्णपुटोंमें जाकर भावोंकी रागिनी उद्‌बुद्ध करनेमें हेतु बन गया। उरःस्थलमें विराजित महाभाव-समुद्र नवीन फेनसे फेनिल हो उठा।।।९२९।।

कितना सम्मान मिला उनसे साँवर के सहचर को, प्रियतम!
अन्तस्तल से उनके निकला था स्नेह-उत्स कैसा, प्रियतम!
अभिषेक हुआ जिससे उसका, है उचित नहीं कहना, प्रियतम!
प्राणों में झाँक देख लेना वह खेल पुनः अपना, प्रियतम।।९३०।।

सुनो! उद्धवको उन गोपसुन्दरियोंके द्वारा कितना सम्मान मिला वे साँवरके सहचर जो थे। उन्हें, उद्धवको अभिषिक्त करनेके लिये उन व्रजबालाओंमें स्नेहका कितना, कैसा मनोरम उत्स फूट पड़ा था और उद्धव कैसे उसमें सर्वथा निमग्न हो गये थे इस गाथाको सुननेके लिये तुम नीलसुन्दरके चरण-सरोरुहमें डूब जाओ; फिर वे तुम्हें अपनी आँखोंकी किञ्चित् ज्योतिका दान अवश्य कर देंगे। फिर देख लेना; अन्य उपाय नहीं है, भला....।।९३०।।

सुनना कुछ चाह रहे हो पर फिर से जब मुझ से ही, प्रियतम!
इतिवृत्त महा है गोपनीय, किंचित् तथापि कह दूँ, प्रियतम!
दीपक की लौ-सी है रस की गति, जो मिट जाती है, प्रियतम!
हिलने लगती है या बाहर आकर समीर को छू, प्रियतम।।९३१।।

पर जब तुम इतनी उत्कण्ठा लेकर सुनना ही चाहते हो तो किञ्चित् सुन लो – वह इतिवृत्त अत्यन्त गोपनीय है, भला! और भी एक रहस्यकी बात है – समझ सको तो समझ लो – रसकी गति दीपककी लौके समान है, भला! निर्वात-स्थलमें तो वह अपने रूपमें परम शोभनीय रहती है – स्थिर गतिसे विराजित रहती है, किंतु ज्योंही बहिर्देशमें वह लौ लायी गयी कि बस, समीरको छूकर या तो वह स्पन्दित होगी या निर्वापित ही हो जायगी! अस्तु,।।९३१।।

जो हो, विलाप के शुचि जल से पद धुले दूत के थे, प्रियतम!
दौड़ी फिर अर्घ्य लिये वह थी मूर्छा दासी उनकी, प्रियतम!
आने पर होश सिसकियों ने आचमन कराया था, प्रियतम!
विधि रचित वारि-आसन से फिर हो सका समर्हण था, प्रियतम।।९३२।।

सुनो, गोपसुन्दरियोंने विलाप – करुण विलापके पूत जलसे उद्धवके चरणोंमें पाद्यके उपचारका आयोजन किया, उनके पद धोये। किंतु इतनेमें अर्चनाकी उत्कण्ठामें मूर्छा दौड़ पड़ी – उन गोपसुन्दरियोंकी नित्य दासी थी वह, और उसने ही अर्घ्य समर्पण किया। एक साथ ही व्रजबालाएँ चेतनाशून्य होकर उद्धवके चरणोंमें लुढक पड़ीं। और फिर कहना कठिन है, कितनी देरके अनन्तर उनमें – व्रजवामाओंमें सिसकियोंका सञ्चार हुआ मूर्छा टूटनेपर। यही उद्धवके प्रति उनका आचमन-निवेदन था। हाय रे! कितना करुण दृश्य था वह! जो हो, इतना होनेके अनन्तर मर्यादाकी परम्पराके अन्तर्गत होनेवाली अर्चनाका क्रम आरम्भ हो सका। आसन, जल आदिसे उद्धवका समर्हण हुआ।।।९३२।।

विस्फारित आँखों स बैठा वह दूत विमूढ़ हुआ, प्रियतम!
था देख रहा, वे सब उसकी करती प्रदक्षिणा थीं; प्रियतम!
दो घड़ी पुन: जब बीत गयी अद्भुत इस अर्चा में, प्रियतम!
थी प्रश्न कुशलका करने वह आ सकी गिरा खिन्ना, प्रियतम॥९३३॥

अर्चना हो चुकी, किंतु अब? कैसे कहूँ? अच्छा, ध्यानसे सुनो – विस्फारित नेत्रोंसे सर्वथा विमूढ़ हुए उद्धव उन व्रजवामाओंकी ओर देख रहे थे। और ब्रजरामाएँ उद्धवकी प्रदक्षिणा कर रही थीं। इस प्रदक्षिणाके उपचारमें जब पुनः दो घड़ियाँ बीत गयीं; तब कहीं कुशल-क्षेमका प्रश्न करनेके लिये गोपबालाओंमें वाग्वादिनीका सञ्चार हुआ। पर, हाय रे! अत्यन्त खिन्न परिधानमें गिरा उनके अधरपुटोंके अन्तरालसे झाँक-झाँककर पीछेकी ओर ही लौट जाती। कितनी बार लौटी और फिर बाहर आनेका साहस बटोर सकी, यह भी कहना कठिन है।।।९३३।।

क्रमश: उमड़ा फिर भाव, लगीं सब वे कहने चर से, प्रियतम!
साँवर कानन में थे कैसे रहते, क्या-क्या करते, प्रियतम!
साधारण-से-साधारण भी अतिशय नगण्य-सी थी, प्रियतम!
साँवरकी दिनचर्या की जो घटना कहकर रोती, प्रियतम॥९३४॥

हाँ! धीरे-धीरे भावके समुद्रमें बुद्‌बुदका उन्मेष हुआ – और क्रमशः फेनिल हो उठा वह भाव-पयोनिधि। वे उद्धवके पूछनेपर ही सुनाने लग गयीं उद्धवसे – 'देखो! साँवरके सखा!! ऐसे मेरे साँवर प्राणनाथ इस वनमें निवास करते थे। वे कैसे रहते थे, क्या-क्या करते थे, इस काननमें कैसी रसकी धारा बहती थी, सब तुम पहले हमसे सुन लो।' भाव कैसा होता है और वे गोपसुन्दरियाँ उसमें कैसी विभोर हो गयी थीं – वाणीकी तूली उसे अङ्कित नहीं कर सकती। इतना ही चित्रित हो सकेगा कि नीलसुन्दरके कानन-जीवनकी अत्यन्त साधारण-सी घटना, अतिशय नगण्य-सी बात भी वे पगलीकी भाँति उद्धवसे बतलाती जा रही थीं और रोती जाती थीं। साँवरकी दिनचर्याकी प्रत्येक घटना समाप्त होते-न-होते गोपरामाओंका हृदय मानो फटकर बाहरकी ओर बह चलता – इतने वेगसे अश्रु-प्रवाह निस्सृत होता।।।९३४।।

सुनकर सब बात दु:ख उनका हरने वह दूत चला, प्रियतम!
खुल गयी ज्ञानकी पेटी वह साँवर ने जो दी थी, प्रियतम!
सुन्दर सुबोध नवशैली से साँवर की व्यापकता, प्रियतम!
प्रतिपादन कर उनसे उनकी वह उक्ति कही उसने, प्रियतम॥९३५॥

अविराम प्रसरित होकर वेदनाकी वह कल्लोलिनी एक मोड़ लेने चली, और फटी आँखोंसे वे सब-की-सब यन्त्रवत् मौन हो गयीं – एक भी कुछ भी न बोल सकी। उस ओर उद्धवके मनमें इनकी अपार दुःखराशिको दूर करनेकी प्रवृत्ति जगी; पर उस प्रवृत्तिमें ज्ञानकी अहंताका पुट था। अरे! एक बड़ी सुन्दर और बड़ी मोटी ज्ञानकी पेटी अनावृत हो गयी – हँसकर नीलसुन्दरने ही अपने सखाको दी थी वह पेटी। उद्धवका प्रवचन आरम्भ हुआ; बड़ी सुबोध और अभिनव शैली थी ज्ञानोपदेष्टा महाराजकी और धाराप्रवाह रूपसे सप्रमाण नीलसुन्दरकी सर्वत्र व्यापकताका प्रतिपादन हो रहा था। उद्धव महाराजको, सखाजीको जब यह भान होने लगा कि ज्ञानकी इस गरिमाका प्रभाव तो निश्चय अब इनपर होकर रहेगा – तब अनमोल निधिके रूपमें नीलसुन्दरकी इस उक्तिकी, उनके इस संदेशकी व्याख्या आरंभ हुई –।।९३५।।

'मन रमा रहे तुम सबका ही केवल जिससे मुझ में,' प्रियतम!
'होकर नयनोंका तारा मैं हूँ दूर बसा तुमसे,' प्रियतम!
सुनते ही लोचन बंद हुए कमलों-से उन सबके, प्रियतम!
आवेश एक उनमें आया अप्रतिम दिव्य सहसा, प्रियतम॥९३६॥

"सुनती हो, गोपसुन्दरियों! ध्यानसे सुनना, भला! मैं तुम सबके नयनोंका तारा अवश्य हूँ, किंतु फिर भी तुमसे दूर क्यों चला आया और दूर आकर यहाँ बस गया हूँ, इसका कारण जानती हो? देखो, मेरा बड़ा ही पुनीत उद्देश्य है – तुम सबका मन, बस, एकमात्र मुझमें ही, केवल-केवल मुझमें ही निरन्तर रमा रहे – इस अभिसंधिसे ही मैं दूर हट आया हूँ, भला!" प्रवचनका पूर्ण विराम भी न आ सका कि श्रोता-मण्डलीके नयन-सरोरुह निमीलित हो गये। एक साथ ही सबने अपनी आँखें बंद कर लीं। और क्षण बीतते-न-बीतते उनमें सहसा एक दिव्यातिदिव्य अप्रतिम आवेशका सञ्चार हो उठा।।।९३६।।

बाला उनसे घिर कर बैठी भावों में थी डूबी, प्रियतम!
आया है एक दूत केवल इतना थी जान सकी, प्रियतम!
आँखें न खुलीं, न हिली वह थी, अब तक इन बातों को, प्रियतम!
कितना सुन पायी, सुन न सकी अथवा, यह कौन कहे, प्रियतम॥९३७॥

उस ओर वृषभानुनन्दिनी राधा यद्यपि बैठी तो थीं इन सहचरियोंसे आवृत होकर, किंतु बहिर्जगत्का भान उन्हें कथनमात्रको ही था। कोई एक दूत आया है – इतना-सा भान तो अन्तर्यामीकी प्रेरणासे ही उन्हें अवश्य हो चुका था; किंतु उद्धव और गोपसुन्दरियोंके बीच क्या चर्चा हुई, क्या ज्ञानोपदेश हुआ – इसे वृषभानुनन्दिनी कितना सुन पायीं, अथवा सर्वथा सुन ही न सकीं, यह कौन कहे?।।९३७।।

सत्कृत अतुलित था दूत हुआ उसकी सखियों से ही, प्रियतम!
बाला की संनिधि में ही पर सब बात हुई यह थी, प्रियतम!
वह था तड़ाग का तीर अमल, जिस पर थी जुड़ी सभा, प्रियतम!
उत्तर की ओर किये मुख थीं बाला एवं सब वे, प्रियतम॥९३८॥

इतना अतुलित सम्मान उद्धवको तो उनकी सहचरियोंके द्वारा ही मिला था – हाँ, सब कुछ हुआ था वृषभानुदुलारीकी संनिधिमें ही। सुन्दरी-सरोवरके दक्षिण तटपर किशोरी उस समय आसीन थीं। उत्तरकी ओर मुख था उनका एवं उनकी समस्त सहचरियोंका। नीलसुन्दरके जानेके अनन्तर ये सब-की-सब निरन्तर यहीं, इस तीरपर ही विराजित थीं। और इसीलिये उद्धवको भी उनके दर्शन यहीं हुए।।।९३८।।

मुँह फेर दूत से, मान-राग-पूरित हो सहचरियाँ, प्रियतम!
मानो विस्मृत करके यह भी, है पुरुष यहाँ श्रोता, प्रियतम!
कुछ बात लगीं अपनी-अपनी बाला से बतलाने, प्रियतम!
साँवर के साथ हुई उनकी जो कुञ्जनिभृत में थीं, प्रियतम॥९३९॥

जो हो, दो-एक पल बीतते-न-बीतते महाभाव-समुद्र पहले तो मानकी अप्रतिम ऊर्मियोंसे सज्जित हो गया और फिर दो-चार पल और बीते ही थे कि रागकी उत्ताल तरंगें उन मानकी लहरोंमें मिश्रित हो गयीं – वाणी क्या, लेखनी क्या चित्रण कर सकेगी उसका! हाँ! किशोरीके अतिरिक्त सबने अपने मुँह फेर लिये

उद्धवकी ओरसे और मानो सब-की-सब विस्मृत कर गयीं इस बातको भी कि ये उद्धव, मेरी चर्चाके श्रोता, एक पुरुष हैं तथा अनर्गल रूपसे अपने-अपने जीवनकी कुछ अनुभूतियाँ राधाकिशोरीसे बतलाने लग गयीं। नीलसुन्दरके साथ निभृत निकुञ्जमें उनकी कुछ बातें जो हुई थीं, उनका कियद् अंश सुस्पष्ट कहने लग गयीं अपनी प्राणरूपिणी बहिन राधासे।।।९३९।।

जब एक बोलकर पगली-सी हँसती या रो देती, प्रियतम !
हँसना-रोना उसका थमता, कहती थी अन्य तभी, प्रियतम !
जैसे कोई भीतर से सच कहवाता हो उनसे, प्रियतम !
यों एक-एक कर सब-की-सब बोली जो थी, सुन लो, प्रियतम ।।९४०।।

यन्त्रित-सी हुई जब एक कुछ कहकर उन्मत्तकी भाँति या तो हँसने लगती या करुण-क्रन्दनके प्रवाहमें बह जाती और उसका हास्य अथवा क्रन्दन थम जाता, तभी दूसरीके मुखसे वह रसमयी चर्चा वेदनाकी आगमें सनी-सी, झुलसी-सी होकर निस्सृत होती। राधाकिशोरीको सम्बोधनकर वह कहने लग जाती। सच-सच ऐसा लग रहा था, जैसे कोई भीतरसे उनके द्वारा कह रहा हो, कहलवा रहा हो –।।९४०।।

ललितायाः उक्तिः—

साँवर अब भूल गये हैं री ! वह बात पान वाली, प्रियतम !
तू अर्ध दाँत से कर मेरे अधरों पर रख बैठी, प्रियतम !
पीछे से आये, झटक लिया, खा गये और बोले, प्रियतम !
'हो गया क्रीत मैं नित्यदास इस हिस्से के बदले', प्रियतम ।।९४१।।

अहो ! पश्य अस्माकं दुर्दैवं सम्प्रति क्रीतदासोऽपि निजस्वामिनीं प्रति ईदृशः ज्ञान-सन्देश प्रेषको भवति इत्युक्त्वा उन्मत्तेव हसति ।।

"अरी सुनती है ? अब नीलसुन्दर भूल गये हैं – ताम्बूलकी वह घटना नीलसुन्दरको विस्मृत हो गयी है, बहिन राधे! मैंने तेरे अधरोंपर पानकी वह बीड़ी रखी थी। तू उसका आधा अपने मुखमें दाँतोंके नीचे दबाकर शेषको मेरे अधरोंपर रख बैठी। मैं निर्निमेष नयनोंसे तेरी शोभा निहार रही थी। ताम्बूलका अंश ज्यों-का-त्यों प्रस्तर-प्रतिमाके मुखकी भाँति मेरे अधरोंपर रखा भर था। मैं उसे अपने मुखमें ले भी न जा सकी थी और अचानक न जाने कहाँसे, कुञ्जके पीछेके द्वारसे चुपचाप नीलसुन्दर आये और झटककर, छीनकर मेरे पानके उस अंशको अपने मुखमें रख लिया। उस समय वे जो बोले थे, तुझे स्मरण है ? बहिन! अरी! अक्षरशः बतला रही हूँ – हँसते हुए कह बैठे थे – 'ललिते, इस हिस्सेके बदले मैं तेरा निरवधि नित्य क्रीतदास हो गया, भला!' पर बहिन! दुर्दैव देखो। हम सबका दिन कितना फिर गया, बहिन ! आज खरीदा हुआ दास अपनी स्वामिनीके प्रति इस प्रकार ज्ञान-संदेश भेजनेका साहस कर बैठा है – तत्त्वबोधका संदेश-प्रेषक बन बैठा है !" – उन्मत्तकी भाँति ललिता हँस रही थी, न जाने कितनी देर हँसती रही।।।९४१।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

श्रीललिता खण्डिता भावकी मूल स्रोत हैं। यह भाव इनमें अपने निमित्तसे व्यक्त नहीं होता। भानुकिशोरी और श्रीकृष्णचन्द्रमें निर्दिष्ट सम्मिलनमें विलम्ब होनेपर ही इस दिव्यभावका उन्मेष होता है। कान्तके सङ्केत-

समयका अतिक्रमण करनेपर रोषाकुला एवं दीर्घ निश्वासत्यागिनी हुई कान्ताको खण्डिता कहा जाता है। Jhy fy rk fiz k प्रियतमको ताम्बूल अर्पण करनेकी सेवा करती हैं।

विशाखाया: उक्ति:—

क्यों याद करें, साँवर परिवा भादों कृष्णा की थी, प्रियतम!
थी केश सँवार रही तेरे, छिपकर वे कह भागे, प्रियतम!
'जिनके कच हैं, करती जो है रचना, वे नित्य बसें,' प्रियतम!
'मेरे उरमें, निर्बाधि करूँ उनके पदकी सेवा;' प्रियतम॥९४२॥

अहो! क्व तु ईदृशी प्राणोत्पलालसा क्वचेदानीं ईदृशी स्वरूपस्थित्यहंकृति: इत्युदीर्य उच्चस्वरेण क्रन्दनम्॥

''अरी बहिन, अब नीलसुन्दर क्यों याद करेंगे उस तिथिकी घटनाको। किंतु मैं कैसे भूल जाऊँगी बहिन! सुन, भाद्रपद कृष्ण प्रतिपदा थी – संध्याकालीन अरुणिमा प्रतीची-क्षितिजसे गवाक्ष-रन्ध्रोंको स्पर्श कर रही थी और मैं व्यस्त थी तेरी कुन्तलरचनामें। न जाने कहाँ वे, वहीं किस स्थानमें छिपकर विराजित थे। पत्रोंके जालमें ऐसे निलीन थे कि कहीं कोई आभासतक हम दोनों न पा सकी थीं। सहसा वे बोल उठे थे – 'जिनकी ये अलकें हैं और जो रचना कर रही है, वे मेरे उरःस्थलमें अनन्तकालतक निवास करें, और मैं अनन्तकालतक निर्बाधरूपसे उनके चरण-सरोरुहोंकी सेवा करूँ।' कहकर वे तुरंत भाग गये। सुस्पष्ट देख तो हम दोनोंने लिया था। हाय रे! कहाँ तो इस प्रकार प्राणोत्कण्ठाके प्रवाहमें प्राणनाथ नीलसुन्दर बह रहे थे – एक दिन वह था, – और कहाँ इस प्रकार स्वरूपस्थितिकी अहंताका यह प्रदर्शन है।...'' – फूट-फूटकर विशाखा उच्च स्वरसे रो रही थी।।।९४२।।

तात्विक विवेचन विस्तार

श्रीविशाखा स्वाधीनभर्तृका भावकी मूल स्रोत हैं। प्रियतम कुञ्जमें जिस कान्ताके आधीन होकर वास करते हैं उस कान्ताको स्वाधीनभर्तृका कहते हैं। श्रीविशाखा प्रिया-प्रियतमकी कर्पूरादि सुगन्धद्रव्योंसे विलेपन-सेवा तथा केश-शृंगारकी सेवा करती हैं।

चित्राया: उक्ति:—

अब समझ गयी, साँवर कहते कुछ हैं, करते कुछ हैं, प्रियतम!
तुझसे प्रेषित दिन में थी री! मैं मिली, कहा उनने, प्रियतम!
'परिशोध नहीं तुम दोनों के ऋण का कर पाऊँगा;' प्रियतम!
'जैसे कहदोगी, जीवन भर करके, संतोष करूँ,' प्रियतम॥९४३॥

जयतु वञ्चकशिरोमणि: नन्दनन्दन: इति निगद्य उन्मत्तेव अट्टहास:॥

''ओह! आज समझ पायी बहिन! साँवर कहते कुछ हैं, करते कुछ हैं। दिनका शुभ्र प्रकाश सर्वत्र फैला था – मध्याह्न भी नहीं हुआ था। तूने मुझे लजवन्तीकुञ्जमें भेजा था उनके समीप... उस, उस, उस, उस, उस अभिसन्धिसे और जब मैं लौटने लगी थी, वे बोले थे – ज्यों-की-त्यों उनकी उक्ति यही थी – 'प्राणेश्वरी राधाका, तेरा, तुम दोनोंका ही मैं कालके प्रवाहमें अनन्तकालतक ही ऋण-परिशोध कर सकूँ – यह तो असम्भव-असम्भव है। हाँ! जबतक मेरा अस्तित्व है, तबतक तुम दोनों जैसे कहोगी, ठीक-ठीक वैसे ही आचरणकर अपने मनको मैं संतोष देता रहूँगा। आधे क्षणके लिये एक सुखका अनुभव करूँगा कि आज आधे क्षणके लिये तुम दोनोंकी सेवा मैं कर सका; तुम दोनोंके अनुग्रहसे ही वह सेवा हो सकी।'' जय हो

वञ्चकशिरोमणि नन्दनन्दनकी!' – उन्मत्त अट्टहास करती हुई चित्रा प्रतीचीकी ओर दौड़ी चली जा रही थी और दस पदपर ही मूर्छित होकर गिर गयी।।।९४३।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

श्रीचित्रा दिवाभिसारिका भावकी मूल स्रोत हैं। कान्तसुखार्थ जो कान्ता दिवसमें कान्तके लिये अभिसार करे उस कान्ताको दिवाभिसारिका कहा गया है। प्रिया-प्रियतमको वस्त्रालङ्कारोंसे विभूषित करना श्रीचित्राकी सेवा है।

इन्दुलेखायाः उक्तिः—

थी रात अँधेरी, साँवर थे अञ्चल से उलझे-से, प्रियतम!
लज्जा में डूबी, बन्धनबद्ध तुमसे, पर मैं चुप थी, प्रियतम!
पड़कर चरणों में स्वीकृति वे मेरी थे चाह रहे, प्रियतम!
थी सन्धि हुई जिन शर्तों पर, हैं जला रही अब वे, प्रियतम।।९४४।

''तिमिरसे आच्छन्न रजनी थी। नीलसुन्दरके पीत दुकूलसे अचानक मेरे अञ्चलका छोर जा सटा – मैं तेरी उस...उस सेवाके लिये आयी थी, उस कुञ्जस्थलमें तेरी प्रतीक्षा कर रही थी। वे मेरे चरणोंमें महा-महा दीन होकर पड़े थे। मेरी मनुहार कर रहे थे, अञ्जलिसे बारंबार मेरे चरणोंको छू-छूकर। और फिर आगेकी उक्तियाँ, हम दोनोंकी संधिकी नियमावली? क्यों कहूँ! क्यों कहूँ!! क्यों कहूँ!!!'' – रोती हुई, विकृत स्वरमें उच्चारण करती हुई इन्दुलेखा अपने सिरको बारंबार हाथसे पीट रही थी।।।९४४।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

श्रीइन्दुलेखा प्रोषितभर्तृका भावकी मूल स्रोत हैं। जिसका कान्त दूर स्थित हो उस वियुक्त नायिकाको प्रोषितभर्तृका कहा गया है। श्रीइन्दुलेखाकी सेवा प्रिया-प्रियतमको नृत्य-सङ्गीतसे प्रसन्न करनेकी है।

चम्पकलतायाः उक्तिः—

भौंरा है, नहीं-नहीं, भौंरी, वह वाग्युद्ध-सा था, प्रियतम!
वे हार गये, मैं जीत गयी, तू ही थी पंच बनी, प्रियतम!
बन्धन वह अहो! कुन्तलों से हाथों का कैसा था, प्रियतम!
क्या आशा थी सपने में भी, इतने झूठे वे हैं? प्रियतम।।९४५।।

''बहिन राधे! वाग्युद्ध था उस दिन मेरा और नीलसुन्दरका; वे कहते – भ्रमर है, मैं कहती, नहीं, भ्रमरी है। और तू ही तो निर्णयकर्त्री बनी थी बहिन! वे हार गये थे निर्णयमें, मैं जीत गयी थी। और बहिन राधे! उनके हस्तकमलोंको कुन्तलकी लटोंसे बाँधनेका दृश्य कितना मनोरम था, बहिन! क्या उस समय हम दोनोंने आशा की थी – आशङ्का की थी अपने इस दुर्दिनकी? क्या सोच सकी थी, बहिन, तू, अरी मैं – यह बात स्वप्नमें भी री! कि साँवर इतने झूठे हैं?''.... चम्पकलतिकाकी आँखें पुनः बंद हो गयी थीं और अनर्गल अश्रुप्रवाहसे वह भिगो रही थी अपने कपोलोंको।।।९४५।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

श्रीचम्पकलता वासकसज्जा भावकी मूल स्रोत हैं। कान्तकी प्रतीक्षा करती हुई जो स्वयंको तथा निज निकुञ्जको सुसज्जित करती रहती हैं उस कान्ताको वासकसज्जा कहा गया है। इनकी सेवा प्रिया-प्रियतमको चँवर डुलानेकी रहती है।

रङ्गदेव्याः उक्तिः—

हेमन्तनिशा थी बीत चुकी, षष्ठी कृष्णा पहली, प्रियतम !
री! मैं सपने में देवीकी कर रही अर्चना थी, प्रियतम !
उस समय चपल हो बोले वे, "हूँ नित्य बँधा मैं तो"; प्रियतम !
तत्क्षण मैं जगी, उक्ति सच थी, पर अब सब सपनेकी, प्रियतम।।९४६।।

''हेमन्तकी निशा थी, बहिन! निशा बीत चुकी थी, हाँ, हाँ, हाँ, हेमन्तकी प्रथम निशा थी; षष्ठीकी निशा थी री, बहिन! कृष्णा षष्ठी थी! कृष्णा षष्ठी थी!! कृष्णा षष्ठी थी!!! मुझे नींद आ गयी थी बहिन! और नींदमें सपना देख रही थी, देवीकी अर्चना कर रही थी – और वे ठीक उसी क्षण, मैं तो बहिन! देवीको उपचार समर्पित कर रही थी कि वे चपल होकर उच्च स्वरमें बोल उठे थे – ''मैं तो तुम सबके – एक-एकके प्रति इस बन्धनमें बँधा हूँ ही, निरवधि केवल-केवल तुम सबकी ही सेवा करूँ। निरन्तर इस बन्धनके आनन्दमें डूबता-उतराता रहता हूँ। मेरा यह बन्धन कभी न टूटे!'' मैं तत्क्षण जाग उठी थी, बहिन! और जगकर देखती हूँ, बहिन! कि उनकी उक्ति सचमुच सर्वथा सर्वांशमें सत्य है। कैसे बताऊँ – बहिन! सम्भव है मैं जगी न होऊँ, उस समय स्वप्नमें ही सुन रही थी। स्मृति साथ नहीं दे रही है बहिन, स्वप्न था या जाग्रत्, सम्भवतः ये रसस्यन्दी स्वर स्वप्नमें ही मैं सुन पायी थी; पर जगनेपर भान हुआ था उनके व्यवहारोंसे कि उनकी यह उक्ति क्रियात्मक रूपसे सत्य ही है, सत्य ही है, सत्य ही है। पर अनुभव कर रही हूँ बहिन, कि सपना सपना ही होता है। सपनेकी घटना नित्य सत्य नहीं होती। इसीसे तो बहिन, वे हम सबके प्रति किये हुए व्रत-बन्धको तोड़कर चले गये। तो स्वप्न ही था! तो स्वप्न ही था!! स्वप्न ही था!!! सच कह रही हूँ न?''..रङ्ग सबसे रो-रोकर पूछती जा रही थी – हँसती जा रही थी। और फिर मूर्च्छित होकर गिर पड़ी।।।९४६।।

तात्त्विक विवेचन विस्तार

श्रीरङ्गदेवी उत्कण्ठिता भावकी मूल स्रोत हैं। कान्तके अचानक न आ पानेपर जो कान्ता प्रियतम-मिलनके लिये अत्यधिक उत्कण्ठित बनी रहती है उस कान्ताको उत्कण्ठिता कहा गया है। श्रीरङ्गदेवी प्रिया-प्रियतमको अलक्तक समर्पण करनेकी सेवा करती हैं।

तुङ्गविद्यायाः उक्तिः—

ऋतुराज-शिशिर की सन्धि हुई दो दिन पहले ही थी, प्रियतम!
मैं खड़ी अटारी पर थी, रवि थे क्षितिज छू रहे-से, प्रियतम !
री! तू जाने, भ्रम हुआ मुझे या सत्य पधारे वे, प्रियतम !
उनका दुकूल बंधक रखना पर अर्थहीन अब है, प्रियतम।।९४७।।

''किशोरी बहिन! ऋतुराज और शिशिरकी संधि हुई थी, बस, दो दिन पूर्व। मैं अटारीपर खड़ी थी, बहिन! – भानुपुरकी अटारी थी, याद है न तुझे, और दिनकर प्रतीची-क्षितिजको छू रहे थे, अब तो तू ही बता सकेगी कि मुझे भ्रम हुआ था अथवा सत्य-सत्य नीलसुन्दर भानुपुरीके उस उद्यानमें पधारे थे और उनका पीत दुकूल बन्धक रख दिया गया था – अब उस बन्धकका क्या अर्थ है – निरर्थक है। अच्छा, जाकर देखूँ, कदाचित् पीत दुकूल अब भी वहाँ पड़ा हो।'' हा-हा-हा-हा-हा-हा-हा – अट्टहास करती हुई तुङ्गविद्या टकरा-सी गयी किशोरीसे। और न जाने कितनी देरके अनन्तर उसके अट्टहासका विराम हुआ।।।९४७।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

श्रीतुङ्गविद्या विप्रलब्धा भावकी मूल स्रोत हैं। सङ्केत दान करने पर भी कान्तके दैववशात् नहीं आनेपर जो कान्ता आन्तरिक व्यथासे अत्यन्त संतप्त हुई रहती है, उस कान्ताको विप्रलब्धा कहा गया है। श्रीतुङ्गविद्या प्रिया-प्रियतमकी गीत-वाद्योंसे सेवा करती हैं।

सुदेव्याः उक्तिः—

दुपहरी ग्रीष्मकी तपती थी, मेरा उर था तपता, प्रियतम!
तेरे प्रति री! लखकर उनकी सुस्पष्ट वञ्चनाएँ, प्रियतम!
चन्दन-विलेप देकर वे थे हर रहे ताप तेरा, प्रियतम!
उस तालवृन्त परके अक्षर उनके मिथ्या सब हैं, प्रियतम॥९४८॥

"तो....तो....तो.... ग्रीष्मका मध्याह्न तप रहा था और मेरा उरःस्थल भी जल रहा था। उनकी तेरे प्रति, बहिन राधे! जो सुस्पष्ट वञ्चनाएँ हुई थीं, उन्हें प्रत्यक्ष अनुभवकर लपटें निकल रही थीं मेरे उरःस्थलसे! व्यथामें भरी-सी तू भी मूर्च्छित-सी हो गयी थी – और वे आँखोंमें आँसू भरकर चन्दन-विलेपके माध्यमसे तेरे तापका अपहरण कर रहे थे। मेरे हाथमें तालवृन्त था! उसपर उन्होंने कुछ अक्षर अङ्कित किये थे। अक्षरोंके अन्तरालमें कितनी अडिग प्रतिज्ञा अङ्कित थी और मुझे प्रसन्न करनेके लिए कितने विशाल औदार्यका परिचय दिया था उन्होंने! सब-की-सब वे उक्तियाँ, वे अक्षर मिथ्या, मिथ्या, मिथ्या थे; हाँ-हाँ मिथ्या थे। अच्छा, समझ लूँगी, आने दो! कितनी देर है संध्यामें। आते ही होंगे – नहीं, नहीं, नहीं आयेंगे। खूब रोऊँ, खूब रोऊँ, खूब रोऊँ, तिरस्कार जो मैंने किया है उनका।..." आकाश फट-सा रहा था सुदेवीके करुण-क्रन्दनसे और उन्मत्तकी भाँति वह अपनी अलकोंको नचा रही थी।।।९४८।।

तात्त्विक विवेचन-विस्तार

श्रीसुदेवी कलहान्तरिता भावकी मूल स्रोत हैं। कान्तके अनुनय-विनय करनेपर भी जो कान्ता रोषवशात् उसका सम्मान नहीं करती एवं तदनंतर कान्तवियुक्ता होनेपर अत्यन्त अनुतप्त-संतप्त रहती है उसे कलहान्तरिता नायिका कहा गया है। श्रीसुदेवी प्रिया-प्रियतमकी जलकी सेवा सम्पन्न करती हैं।

मञ्जुश्यामायाः उक्तिः—

(श्रीमञ्जुश्यामा ललिता-यूथकी सखी हैं। प्रिया-प्रियतमके नकबेसरमें इनकी नित्य स्थिति है।)

री बहिन! अङ्क से तेरे थी लग कर सोयी-जैसे, प्रियतम!
कैसे क्या था सब हुआ, उसे तू याद तनिक कर ले, प्रियतम!
तब से हूँ देख रही, मेरे उरमें हरदम तू है, प्रियतम!
है नित्य बसे फिर वे तुझमें, रोती तथापि मैं हूँ, प्रियतम॥९४९॥

भगिनी! ममेयं भ्रान्तिः अथवा सत्यानुभूतिः इति न ज्ञायते त्वं तु यदा रोदिषि तर्हि अस्मांकं प्रियतमः प्राणाधिकः प्राणेश्वरः प्राणवल्लभः नित्यनवनिकुञ्जेश्वरः नित्यवृन्दावनेश्वरः नन्दनन्दनः सम्प्रति मधुपुर्यामेव वसति इति निश्चीयते इति भगिनीं संबोध्य भगिन्याः अङ्के शिरः निधाय फूत्कारपूर्वकं क्रन्दनम्।

''उस दिन, बहिन! मैं तेरे अङ्गसे लगकर गंभीर निद्रामें निमग्न थी। क्या, कैसे हुआ था, इसे तनिक स्मरण तो कर ले! तबसे ही तो मैं देख रही हूँ कि मेरे हृत्सरोजपर तू निरन्तर विराजित है और फिर तेरे हृत्सरोरुहके दलोंपर वे नित्य-निरन्तर विराजित हैं। मुझमें तू बसी है, तुझमें वे बसे हैं। फिर भी मैं निरन्तर क्यों रोती हूँ, बहिन! अच्छा, तू बता – यह मेरी भ्रान्ति है, बहिन! कि सत्यानुभूति है? मैं तो समझ ही नहीं पा रही हूँ। देख, जब मेरी आँखें तेरे अनर्गल अश्रुप्रवाहकी ओर जाती हैं, तब अनुभव करती हूँ कि हम सबके प्राणवल्लभ नन्दनन्दन अब मधुपुरमें निवास कर रहे हैं।'' कहती हुई मञ्जुश्यामा फू-फूकर रोने लगती है और ढलक पड़ती है राधाकिशोरीके दक्षिण स्कन्धपर।।।९४९।।

मधुमत्याः उक्तिः —

(श्रीमधुमती विशाखा-यूथकी सखीं हैं। श्रीराधाके स्वर-माधुर्यमें इनकी नित्य स्थिति है।)

नीरस मेरा स्वर था, अब भी नीरस यह तो है ही, प्रियतम!
री! पड़ती थी मधुमय तेरे स्वरकी इसपर छाया, प्रियतम!
थे बिके सदाके लिये अतः वे मेरे हाथ भला, प्रियतम!
क्यों चले गये बहका मुझको, इसको वे ही जानें, प्रियतम॥९५०॥

''बहिन लाडिली! मेरा स्वर अत्यन्त नीरस था और अब भी यह नीरस ही है; किंतु तेरे मधुमय स्वरकी इसपर प्रतिच्छाया पड़ती थी और यही कारण था कि नीलसुन्दर सदाके लिए मेरे हाथ बिके हुए थे; किंतु वे क्यों चले गये, बहिन! इसे वे ही जानें....'' – मधुमती अत्यन्त करुण हाहाकारके समुद्रमें डूब गयी।।।९५०।।

विमलायाः उक्तिः—

(श्रीविमला चित्रा-यूथकी सखी हैं। श्रीराधाके कलेवरके गौरवर्णमें इनकी नित्य स्थिति है।)

मेरा गोरापन था प्यारा इतना कि एक दिन तो, प्रियतम!
वे खो बैठे स्वस्मृति तक भी मुझको निहारते ही, प्रियतम!
छूटा न रंग मेरे तनका, मनका, पर वे बदले, प्रियतम!
अपना ही साथ न देता है प्रतिबिम्ब अँधेरेमें, प्रियतम॥९५१॥

''एक दिन था, जबकि मेरे तनका गोरापन उन्हें इतना आकर्षित करता था कि मुझे देखते ही 'मैं कौन हूँ' इसकी उन्हें विस्मृति हो जाती। बहिन री! मेरे तनका रङ्ग तो अब भी वैसा ही है और मेरे मनका रङ्ग भी वही है; किन्तु [illegible] हैं वे मेरे नीलसुन्दर ही। कोई अचरजकी बात नहीं, बहिन! अपना ही प्रतिबिम्ब भी तो अँधेरेमें साथीपनका परित्याग कर देता है।'' – निर्निमेष नयनोंसे देखती हुई विमला अपने नयनोंकी धारासे वृषभानुनन्दिनीके जानुदेशको भिगो रही थी।।।९५१।।

श्यामलायाः उक्तिः-

(श्रीश्यामला इन्दुलेखा-यूथकी सखी हैं। श्रीराधाके कृष्णवर्णीय स्तनाग्रोंमें इनकी नित्य स्थिति है।)

था छिपा कलङ्की शशि काले बादलकी ओट लिये, प्रियतम!
शङ्कित हो गृह-फुलवारीमें मैं बाट जोहती थी, प्रियतम!
तेरी ही री! सहचरी बनी अभिसारकारयित्री, प्रियतम!
अर्पण युग कुड्मल करनेका था मिलना लाभ यही, प्रियतम॥९५२॥

''काले मेघोंकी ओट लेकर कलङ्की मयङ्क आया था यहीं, इसी व्रजमें एक रातको। मैं शङ्कित हो गयी थी उन प्रश्नोंके समाधानको लेकर और नीलसुन्दर भानुपुरीकी उस वाटिकामें कहीं निलीन थे। मैं तेरी प्रतीक्षा कर रही थी। यदि मैं नीलसुन्दरका साथ न देती उस रजनीकी क्रीड़ामें तो क्या कर लेते वे मेरा? पर बहिन री! तेरे प्रति मेरे अन्तःप्राणोंका मोह मिट जाना असम्भव था; इसलिये, इसलिये, इसलिये, इसलिये, इसलिये ही मैंने उनकी अभिसंधिकी पूर्णता सम्पन्न की थी – जिसे वे, नहीं री, तू – अप्रतिम लाभके रूपमें, अपनी अनन्तकालीन प्रसन्नताके रूपमें चित्रित कर बैठी थी, जिससे अधिक जीवनका कोई लाभ ही नहीं है। यह रूप दिया था तुमने इस अभिसंधिको! देख रही है न उस लाभका अब नग्न रूप? कृष्णवर्णके पुरुष ऐसे ही होते हैं...'' – श्यामला करोंसे वक्षःस्थलपर ऐसे आघात कर रही थी, मानों विदीर्ण कर देना चाहती हो उसे वह।।।९५२।।

पालिकायाः उक्तिः–

(श्रीपालिका चम्पकलता-यूथकी सखी हैं। श्रीराधाके पयोधरोंकी पीनतामें इनकी नित्य स्थिति है।)

'थी थी नीलवारिधर ने ही यह यौवनवल्ली सींची, प्रियतम !
जब जब फूल लगे, सौरभ आया इसमें, तब चला गया, प्रियतम !
बोल बोली थी यह, 'ठगना मत,' तब उसने था कहा, भला, प्रियतम !
संब 'सम्बन्ध टूटता है क्या, जो प्राणोंका होता है?' प्रियतम।।९५३।। ३।।

''बहिन राधे ! बड़े ध्यानसे सुनना, भला! नील वारिधरने ही वल्लरीको सींचा था। किंतु जब उसमें पुष्प लगे – सौरभसे भर उठी वह, तब नील पयोधर चला गया। मैं उस समय यह कह बैठी थी – 'देखो, नील मेघ! ठगना मत' – और प्रत्युत्तरमें श्याम पयोदने कहा था – ''अरी! क्या प्राणोंका सम्बन्ध भी टूटता है?'' कैसी विडम्बना है सत्यकी, बहिन!..'' आकाशकी ओर झरती आँखोंसे देख रही थी पालिका और दो पलोंके अनन्तर लुढक गयी सरोवर–तटकी उस तृण-राशिपर।।।९५३।।

भद्रायाः उक्तिः–

(श्रीभद्रा श्रीरङ्गदेवी-यूथकी सखी हैं। श्रीराधाके नेत्रोंके शीलमें इनकी नित्य स्थिति है।)

आँखें झप जाती थीं मेरी, मिलना वह था पहला, प्रियतम !
नीली किरणों का स्वागत कर पायी जैसे-तैसे, प्रियतम !
उनका था शील कि मेरा री! विश्वास कर सकी जो, प्रियतम !
भादों सित तेरसकी षष्ठी-पूजनकी पद्धतिमें, प्रियतम।।९५४।।

''तो वह प्रथम मिलन था, बहिन राधे! हाँ, री, प्रथम ही तो था। जैसे-तैसे नीली किरणोंका स्वागत मैं कर पायी। किंतु बहिन! मेरी आँखें झप-झप जाती थीं। वह शील उनका था कि मेरा, बहिन! जो मैं विश्वास कर बैठी, उस भाद्रशुक्ला त्रयोदशीकी षष्ठी-पूजनकी पद्धतिमें!'' कहती हुई भद्राकी आँखें बंद हो गयीं और बंद आँखोंसे उठकर वह उदीचीकी ओर चली जा रही थी, न जाने कहाँ?।।९५४।।

धन्यायाः उक्तिः–

(श्रीधन्या तुङ्गविद्या-यूथकी सखी हैं। श्रीराधाके कर-चरणोंके तथा अङ्गोंके कम्पनमें इनकी नित्यस्थिति है।)

कितने युग तब से बीत गये, कम्पन है वैसा ही, प्रियतम !
मेरे कर-पदमें सृष्ट हुआ जो उनके छूने से, प्रियतम !

उल्लास एक था किंचित् सुख दे सकी कभी तुझको, प्रियतम!
वह मिटा, बात खो रही थी पूनो चैती निशिकी, प्रियतम॥९५५॥

''चैत्र-पूर्णिमाकी निशा थी बहिन! उस क्षणसे मेरे चरणोंमें एक कम्पन निरन्तर वर्तमान है। वे स्थिर नहीं रह सकते। तबसे युग-युगान्त बीत गये, एक उल्लासकी किरण मेरे मनमें थी कि मैं तुझे, क्षणभर ही सही, सुखदान कर सकी। पर आज नीलसुन्दरकी यह चेष्टा? समझ गयी, बहिन! मेरा भ्रममात्र था...।''

..उन्मत्त होकर धन्या नाच रही थी। किंतु नूपुर तो अब थे नहीं, जो उसे उद्दीपन दान करते। आँख खोलकर फटी दृष्टिसे देख रही थी अपने गुल्फोंकी ओर वह।।।९५५।।

तारिकायाः उक्तिः—

(श्रीतारिका सुदेवी-यूथकी सखी हैं। श्रीराधाके पयोधरोंपर हुई चित्ररचनामें इनकी नित्यस्थिति है।)

उस दिन ऐसी तन्मयता थी मेरे प्रतिबद्ध हुई, प्रियतम!
जो मेरी साँस चित्र उनके उरमें लिख देती थी, प्रियतम!
जब हुआ ज्ञान-रवि से ब्रज का भावित शशि नीला भी, प्रियतम!
तारक की आभा में तब है क्या भरी वही शोभा, प्रियतम॥९५६॥

''एक दिन था, बहिन लाडिली। मेरी प्रत्येक साँस नीलसुन्दरके उरःस्थलमें चित्रका निर्माण कर देती थी। तू समझ गयी न? पर विधिकी विडम्बना देख – व्रजका नीलचन्द्र भी ज्ञानके दिनकरसे प्रतिभासित हो रहा है; तो तारक-राशियोंमें आभा कहाँ आयेगी, बहिन! छोड़, इस प्रपञ्चको...।'' सुबुक-सुबुककर रो रही थी तारक-मञ्जरी।।।९५६।।

रूपमञ्जर्याः उक्तिः—

(श्रीरूपमञ्जरी ललिता-यूथकी सखी हैं। श्रीराधाके लावण्यमें इनकी नित्यस्थिति है।)

'लावण्य अरी! त्रिभुवन में है अप्रतिम नित्य तेरा', प्रियतम!
हो रहा अनादिकाल से हूँ न्योछावर इसपर मैं', प्रियतम!
है उक्ति निरर्थक उनकी यह भादों सित परिवा की प्रियतम।
विश्वास करूँ किसका, कपटी जब हुए कुञ्जराजा, प्रियतम॥९५७॥

''भाद्र सित प्रतिपदाकी यह उक्ति क्या अर्थ रखती है, बहिन! 'अप्रतिम लावण्य तुझमें ही है री!' विश्वमें किसीका विश्वास नहीं बहिन! जब नीलसुन्दर ही कपटी हैं तो औरकी क्या बात?'' ... रूपकी आँखें झर रही थीं।।।९५७।।

लवङ्गमञ्जर्याः उक्तिः—

(श्रीलवङ्गमञ्जरी ललिता-यूथकी सखी हैं। श्रीराधाके मुखसौरभमें इनकी नित्यस्थिति है।)

लगते वसन्त की रजनी थी अँधियारी नवमी की, प्रियतम!
तेरे समीप उनको लेकर केवल मैं पहुँच सकी, प्रियतम!
किसका मुख-सौरभ वासित है करता निकुञ्जथल को, प्रियतम!
उनके उस रसमय कौतुक का है पर्यवसान यहाँ, प्रियतम॥९५८॥

''अभी-अभी आये बसन्तकी रजनी थी। कृष्ण नवमीकी निशा थी – और केवल मैं पहुँच पायी थी उन्हें लेकर – नीलसुन्दरको लेकर तेरे पास। और हास्य-भरे स्वरमें उनका वह विनोद था – 'निर्णय बतलाओ – इस निकुञ्जस्थलमें किसका मुख सौरभ परिपूरित है?' तो....तो उस विनोदका पर्यवसान यहाँ हुआ राधा बहिन...।''– कहती-कहती, उक्ति पूरे होते-न-होते लवङ्ग मूर्च्छित होकर गिर पड़ी।।।९५८।।

चन्दनमञ्जर्याः उक्तिः

(श्रीचन्दनमञ्जरी विशाखा-यूथकी सखी हैं। श्रीराधाके केशसौरभमें इनकी नित्यस्थिति है।)

है पारिजात सुरभित या ये तेरी कुञ्चित अलकें, प्रियतम!
निर्णय जैसे जो हुआ, उसे तू एक जानती है, प्रियतम!
पड़ गयी भुलावे में तेरी ममता से दबी हुई, प्रियतम!
क्या पता मुझे था, उनकी यह झूठी अधीनता थी, प्रियतम।।९५९।।

''बहिन राधे! उस दिन विवाद छिड़ा था – ''पारिजात-सुमन सुरभित हैं या मेरी प्राणेश्वरी राधाकी कुञ्चित अलकें'' – निर्णय जानना चाहते थे, नीलसुन्दर। देख, बहिन! मैं तेरी ममतासे दबी थी और उनके भुलावेमें आ गयी। हाय रे! उस दिन क्या मुझे पता था कि नीलसुन्दरकी वह अधीनता भ्रमजाल मात्र थी।'' – चन्दनकी आँखोंमें, उरःस्थलमें आग-सी लग रही थी और वह ताली पीट-पीटकर हूँ-हूँ-हूँ का उच्चारण कर रही थी।।।९५९।।

कर्पूरमञ्जर्याः उक्तिः –

(श्रीकर्पूरमञ्जरी विशाखा-यूथकी सखी हैं। श्रीराधाके अङ्ग-विलेपनसौरभमें इनकी नित्यस्थिति है।)

देकर उरका कण-कण उनकी मैंने रुचि थी रख दी, प्रियतम!
आषाढ़ी दूज असितका दिन कैसे मैं भूलूँगी, प्रियतम!
'इस भाँति नित्य तेरे प्रति भी मैं नेह निभाऊँगा,' प्रियतम!
आशा यह जिसने दी थी, दी उसने ही तोड़ उसे, प्रियतम।।९६०।।

''अपना सर्वस्वदानकर मैंने उनकी रुचि रख दी थी, राधा बहिन! आषाढ़ कृष्ण द्वितीयाका वह दिन मैं कैसे भूलूँगी, बहिन! आँखोंमें आँसू भरकर नीलसुन्दरने कहा था – 'ऐसे ही निरवधि नेहका निर्वाह मैं भी करूँगा री तेरे प्रति!'' – कर्पूरकी आँखें अनर्गल अश्रुप्रवाहका सृजनकर निमीलित तो हुईं, पर ऐसा लग रहा था कि प्रलयके बिन्दुको छू रही हैं।।।९६०।।

रतिमञ्जर्याः उक्तिः –

(श्रीरतिमञ्जरी चित्रा-यूथकी सखी हैं। श्रीराधाके नूपुरों एवं नूपुरध्वनिमें इनकी नित्यस्थिति है।)

आमों में बौर लगा था, वे मुझसे थे पूछ रहे, प्रियतम!
अर्चनकी विधि, मैं क्या उत्तर इसका देती उनको, प्रियतम!
मेरी वह किंतु मूक मुद्रा बन गयी धरोहर थी, प्रियतम!
उनकी ही वाणी में, पर अब समझी, वह चकमा था, प्रियतम।।९६१।।

''आम्र-तरुओंमें मञ्जरियाँ लग चुकी थीं। वे अर्चनकी विधिका निर्णय मुझसे लेना चाहते थे। मैं मौन थी, बहिन राधे! किंतु मेरी मूक मुद्रा ही मेरी अप्रतिम, अनमोल निधि बन गयी थी – धरोहर थी मेरी –

उनकी ही वाणीमें री! किंतु आज समझ रही हूँ कि यह सब उनका चकमा मात्र था।'' – एक बार पुनः रतिमञ्जरीके अट्टहाससे आकाश मानो फटने-सा लग गया; किंतु पुनः वह भी ऐसी मौन हुई, मानो दशमी दशाको ही स्पर्श कर रही हो।।।९६१।।

गुणमञ्जर्याः उक्तिः—

(श्रीगुणमञ्जरी चित्रा-यूथकी सखी हैं। श्रीराधाकी कटिमेखला एवं मेखलाध्वनिमें इनकी नित्यस्थिति है।)

विजयादशमी थी, उनकी भी जय हुई अनोखी थी, प्रियतम!
हारे-ही-हारे नित्य अरी! तुझसे अबतक वे थे, प्रियतम!
उस दिन पर खिसक गयी कटि से किङ्किणी अचानक ही, प्रियतम!
वे जीत गये, यह आज मिला है पुरस्कार मुझको, प्रियतम।।९६२।।

''विजयादशमी थी और उनकी भी आज अद्भुत जय हुई थी – उनकी, राधा बहिन! जो सदा हारे-ही-हारे थे। और उसके अनन्तर अचानक मेरी किङ्किणीकी झंकृति और उसके पश्चात् वह हम सबकी रसमय पराजय थी उनकी – तू ही बतला सकेगी, बहिन राधिके! यदि पराजय थी उनकी तो विजयका पुरस्कार हमारे भाग्यमें यही था...?'' – गुण फटी आँखोंसे देख रही थी प्रतीचीकी ओर, और उस ओर ही उठकर चल पड़ी; किंतु मूर्छाने उसे अङ्कमें ले लिया।।।९६२।।

केलिमञ्जर्याः उक्तिः—

(श्रीकेलिमञ्जरी इन्दुलेखा-यूथकी सखी हैं। श्रीराधाके वामकरकी अनामिकामें पहनी अँगूठीमें इनकी नित्यस्थिति है।)

अञ्जन अनामिका से लेकर वे चले आँजने थे, प्रियतम!
तेरे लोचन, इतने में कर दोनों काँपे उनके, प्रियतम!
बायें को तू सँभालती थी, सुखमय अवलम्बन दे, प्रियतम!
दाहिने को मैंने थामा था, उसका बदला यह है, प्रियतम।।९६३।।

''अनामिकामें अञ्जन भरकर वे तेरे नयन-सरोजोंको अलंकृत करने चले थे, किंतु नील कर-पल्लवोंमें कम्पनका वेग इतना अधिक था कि वे – नीलसुन्दर री! अपनेको सँभाल नहीं पाते थे। बाँये करको तू सँभाल रही थी और में उनके दक्षिण हस्तको थामे हुए थी – उसका बदला – प्रतिदान, यह मिला है हम सबको। बलिहारी है दुर्दिनकी!'' – केलि कहती-कहती लुढ़क पड़ी किशोरीके चरण-प्रान्तमें।।।९६३।।

विलासमञ्जर्याः उक्तिः—

(श्रीविलासमञ्जरी इन्दुलेखा-यूथकी सखी हैं। श्रीराधा-चरणोंकी मध्यमा अँगुलियोंमें पहनी बिछियामें इनकी नित्यस्थिति है।)

शत-सहस निहोरों से दबकर साहस बटोर पायी, प्रियतम!
नाची थी दस पल, नीरज-मुख उनका यह देख खिला, प्रियतम!
राका-शशि को साखी रखकर मेरे कर उर में ले, प्रियतम!
जो दान दिया था मुझे, मोल है रखता इतना ही, प्रियतम।।९६४।।

''शत-सहस्र निहोरोंसे दबकर मैं साहस बटोर पायी थी, बहिन! दस पल नाचनेके लिये और उनका नीरज-मुख खिल उठा था मेरा वह नृत्य देखकर। राकाचन्द्रको साक्षी देकर उन्होंने जो मुझे दान दिया था, वह दान इतना ही मोल रखता है – आज मुझे यह भान हुआ। रोना जीवनभर ही है, बहिन!'' – विलासकी वेदना अन्तर्हृदयमें सीमित न रह सकी; उन्मत्तकी भाँति वह कासारके तृणोंपर अपना सिर पटक रही थी।।।९६४।।

लासिकाया: उक्ति:—

(श्रीलासिकामञ्जरी चम्पकलता–यूथकी सखी हैं। श्रीराधाके दाहिने हाथकी अँगूठियोंमें इनकी नित्यस्थिति है।)

'कैसी होती है कविता यह, तुझमें मैं देख सका,' प्रियतम!
'अब निरवधि रस भरती रहना इन कर्णपुटोंमें तू,' प्रियतम!
उनके मुख से निकला था यह, सुनकर वर्णन मेरा, प्रियतम!
तेरे दृग का, फूली मैं, पर थे भाल-लेख ऐसे, प्रियतम ॥९६५॥

''बहिन राधे! तू भूल गयी क्या री! नीलसुन्दरकी उस दिनकी उक्तिको – मेरी प्रशंसा करते हुए वे अघाते न थे। यहाँतक बोल बैठे – 'अरी! कविताका सौंदर्य क्या होता है, आज मैं हृदयङ्गम कर सका हूँ। तू मेरे कर्णपुटोंमें निरवधि ऐसे ही रसके कलश उड़ेलना, भला!' मैंने तेरी आँखोंके सौन्दर्यका चित्रण किया था। इसका ही पुरस्कार उन्होंने दिया था। मैं फूली नहीं समाती थी। पर मेरे भालके अग्रिम अक्षर इतने मलिन हैं, यह भी प्रत्यक्ष हो गया बहिन!'' – वाक्य पूरा होते-न-होते लासिकाके मुखसे फुत्-फुत् करके फेन निस्सृत होने लगा और फिर जड़िमामें निमग्न हो गयी वह।।।९६५।।

प्रेममञ्जर्या: उक्ति:—

(श्रीप्रेममञ्जरी चम्पकलता-यूथकी सखी हैं। श्रीराधाके कपोलोंके स्वेदविन्दुमें इनकी नित्यस्थिति है।)

तेरस आषाढ़ी शुक्ला का अपराह्न काल वह था, प्रियतम!
आठों कुञ्जों में घूम-घूम अत्यन्त थकी मैं थी, प्रियतम!
प्रस्वेद भरा था गालों पर मेरे, समीर चुप था, प्रियतम!
उस समय मिले थे वे, पर यह सर्वथा भूल बैठे, प्रियतम॥९६६॥

''आषाढ शुक्ला त्रयोदशी थी। अपराह्न था, बहिन! आठों कुञ्जोंमें घूम-घूमकर मैं अत्यन्त थक गयी थी। प्रस्वेदसे लथपथ हो गयी थी। समीरमें कोई गति न थी। उस समय हठात् नीलसुन्दर पधारे थे और मुझसे उनकी कुछ बातें हुई थीं। हाय रे, नीलसुन्दर! सर्वथा भूल गये उन बातोंको... !'' – प्रेम-मञ्जरीका सम्पूर्ण कलेवर घर्माक्त हो गया। सम्पूर्ण अवयव थर-थर काँपने लग गये। वेदनाके भारसे एक अद्भुत वैवर्ण्यका सञ्चार हो गया उसके सम्पूर्ण अङ्गोंमें। आँखें बंद हो गयीं उसकी।।।९६६।।

कुन्दमञ्जर्या: उक्ति:—

(श्रीकुन्दमञ्जरी रङ्गदेवी-यूथकी सखी हैं। श्रीराधाकी दंतपंक्ति तथा दंतकान्तिमें इनकी नित्यस्थिति है।)

मेरा हँसना उनको इतना प्रिय था कि हाथ रखते, प्रियतम!
मेरे चरणों पर, फिर भी जब मैं रोक हँसी लेती, प्रियतम!
कैसी-कैसी मुद्रा रचते, आखिर मैं हँस पड़ती, प्रियतम!
वह समझ न पायी, क्रन्दनकी बन रही भूमिका थी, प्रियतम॥९६७॥

''देख, मेरा हँसना उन्हें अत्यन्त प्रिय था, बहिन! और तो क्या, बारंबार मेरे चरणोंपर हाथ रखकर वे मेरी मनुहार किया करते थे जरा-सा हँस देनेको। न जाने कितनी भङ्गिमाएँ नीलसुन्दर रचते थे, और मैं आखिर हँस ही पड़ती। किंतु मुझे पता न था कि इस हास्यके अन्तरालमें मेरे क्रन्दनकी भूमिका निर्मित हो रही थी।'' – उन्मत्तकी भाँति कुन्द खिलखिलाकर हँस रही थी और मुखरित हो रहा था सरोवर-तीरका कण-कण।।।९६७।।

मञ्जुलीलायाः उक्तिः—

(श्रीमञ्जुलीलामञ्जरी रङ्गदेवी-यूथकी सखी हैं। श्रीराधाके वाम कपोलके मसिविन्दुमें इनकी नित्यस्थिति है।)

भूली-सी बैठी सोच रही थी, सत्य कौन मैं हूँ, प्रियतम!
फागुन शुक्ला षष्ठी का था मध्याह्न हुआ न अभी, प्रियतम!
पीयूष-सरित था, सागर था उमड़ा क्षणभर सहसा, प्रियतम!
है बड़वानल पर उसमें भी, जाकर अब समझ सकी, प्रियतम।।९६८।।

''शिविरका अन्त होने जा रहा था। फाल्गुन शुक्ला षष्ठीकी तिथि थी। अभी मध्याह्न न हुआ था। पीयूष-सरिताका – नहीं-नहीं री! पीयूष-सागरका उद्वेलन क्षणभरके लिये प्रत्यक्ष हो गया था मेरे सामने। किंतु उस दिन यह भान न हुआ कि उस रस-समुद्रमें भी बड़वानलका निवास रहता है...।'' – मञ्जुलीला हाथ नचा-नचाकर सरोवरके जलमें सम्भवतः कूदनेके उद्देश्यसे चली जा रही थी; किन्तु जलका स्पर्श होते-न-होते स्थलपर ही मूर्च्छित होकर गिर पड़ी।।।९६८।।

मदनसुन्दर्याः उक्तिः—

(श्रीमदनसुन्दरीमञ्जरी तुङ्गविद्या-यूथकी सखी हैं। श्रीराधाकी नाभिसे वक्षस्थलतककी रोमावलिमें इनकी नित्यस्थिति है।)

वह तेरे सरस सरोवर का मध्यस्थ कुञ्जथल था, प्रियतम!
श्यामा थी मेरे साथ, और मिलने आये वे थे, प्रियतम!
उनकी उस अतुल रसिकता का, फिर आज विरसता का, प्रियतम!
दोनों ही चित्र सामने हैं री! हँसूँ कि रोऊँ मैं, प्रियतम।।९६९।।

''कुछ स्मरण है, राधा बहिन! तेरे नामसे अभिहित उस सरोवरके वक्षःस्थलपर हंस-से तैरते हुए उस कुञ्जस्थलका? मेरे साथ श्यामा भी थी और नीलसुन्दर मुझसे मिलने आये थे। कहाँ एक दिन उनकी वह अतुल रसिकता और आज यह मेरे कण-कणको जलाती हुई विरसता – दोनों ही चित्र मेरे सामने हैं, बहिन राधे! तू बता, मैं हँसूँ कि रोऊँ? – हँसूँ कि रोऊँ? – हँसूँ कि रोऊँ?'' – प्रत्येक गोपसुन्दरीके सामने ताली पीट-पीटकर मदनसुन्दरी पूछती जा रही थी और मानो कदली-स्तम्भ हो, इस भाँति धरापर गिरकर चेतनाशून्य हो गयी।।।९६९।।

पद्ममञ्जर्याः उक्तिः—

(श्रीपद्ममञ्जरी तुङ्गविद्या-यूथकी सखी हैं। श्रीराधाके पलकोंके केशोंमें इनकी नित्यस्थिति है।)

स्वर्णिम मृदुला इस बेली के उपयुक्त नीलतरु है, प्रियतम!
द्रुम यह निसर्गका भी स्वभाव जब नहीं छोड़ता है, प्रियतम!
वे तो फिर अविचल हैं ही, मैं बोली, वे भी बोले, प्रियतम!
था 'एवमस्तु' पर वह झूठा सावन सित बारसका, प्रियतम।।९७०।।

''यह स्वर्णिम मृदुला वल्लरी नील तरुसे लिपटी है। निसर्गके इस स्वभावका जब द्रुम भी परित्याग नहीं करता, तब नीलसुन्दर तो नित्य अविचल हैं नेह निभानेमें। 'क्यों जी?' – मैं पूछ बैठी थी। और नीलसुन्दरने कहा था – 'एवमस्तु!' किंतु यह 'एवमस्तु' – श्रावण शुक्ला द्वादशीकी यह प्रतिश्रुति आत्यन्तिक मिथ्या थी। क्यों बहिन राधे! मैं सत्य कह रही हूँ तो ....?'' 'उफ' की एक वेदनाभरी लहरी-सी पद्ममञ्जरीके मुखसे निस्सृत हुई और पद्ममञ्जरी मानों सचमुच ही समा गयी उस अन्तिम बिन्दुके कक्षमें।।।९७०।।

अशोकमञ्जर्याः उक्तिः–

(श्रीअशोकमञ्जरी सुदेवी-यूथकी सखी हैं। श्रीराधाकी नासिकाके नथमें इनकी नित्यस्थिति है।)

सुन्दर अशोककी छाया में निर्मित निकुञ्ज वह था, प्रियतम!
री! तेरे और साँवरी के वे बीच अवस्थित थे, प्रियतम!
'हो नित्यसुहागिन तुम सब तो,' है उक्ति सत्य उनकी, प्रियतम!
सिन्दूर माँग पर हुतभुक्-सा जल रहा किंतु यह है, प्रियतम।।९७१।

''अशोककी शीतल छायामें निर्मित उस निकुञ्जकी घटना मैं भूल नहीं पाती, बहिन राधे! तू अवस्थित थी और तेरे पार्श्वमें साँवरी बहिन विराजित थी और तुम दोनोंके बीचमें वे सुशोभित थे। फिर, फिर... फिर. .. उस संदर्भमें नीलसुन्दरकी यह उक्ति हुई थी –'तुम सब तो नित्य सुहागिन हो।' किंतु हाय रे! माँगका यह सिन्दूर आज हुतभुक-सा जल रहा है। मस्तक फूट गया मेरा– मेरा– सिंदूरकी लपटोंमें दो टूक हो गया।'' कहती हुई हँस रही थी अशोक।।।९७१।।

सुधामञ्जर्याः उक्तिः —

(श्रीसुधामञ्जरी सुदेवी-यूथकी सखी हैं। श्रीराधाके अधरामृतमें इनकी नित्यस्थिति है।)

'अनुरूप नाम के ही तेरे है सुधा भरी तुझमें,' प्रियतम!
वे कहते थे, मैं भोली थी, यह सत्य मान बैठी, प्रियतम!
अतएव फुल्ल हो कह देती मैं मधुर खरी-खोटी, प्रियतम!
गजदन्त दिखाने-खानेके हैं दो, अब समझी हूँ, प्रियतम।।९७२।।

''किशोरी बहिन! सरोवरकी वह वायव्य कोणवाली कुञ्ज उस दिन कितनी सुषमाका विस्तार कर रही थी। तू बैठी थी और मैं, आये थे वे नीलदेवता। मेरी मनुहार कर बैठे थे –'तेरे नामके अनुरूप ही सुधाकी निर्झर है तू।' मैं भोली थी, बहिन! उनकी इस उक्तिको सत्य मान बैठी, बैठती थी; और इसीलिये गर्वमें भरकर कितनी बार मधुमयी खरी-खोटी सुना देती। किंतु...किंतु...किंतु... हाथीके दाँत खानेके और दिखानेके दो होते ही हैं, बहिन!'' स्वरभङ्गका ऐसा अद्भुत आवेश सहसा सुधामें हुआ, जिससे उसका आन्तरिक रोष व्यक्त न हो पाता था। वह दो....दो...दि...दि...दि...खा...खा..खा..ने...ने..ने...ने...के...के...के...हा...हा..थी. ..थी...थी... कहती हुई प्राचीकी ओर भागी जा रही थी।।।९७२।।

मोदिन्याः उक्तिः —

(श्रीमोदिनीमञ्जरी ललिता-यूथकी सखी हैं। श्रीराधाके प्रेमाश्रुओंमें इनकी नित्यस्थिति है।)

'करती है जो गठबन्धन, वह लेती है नेग, भला,' प्रियतम!
बोली मैं अभिनय में थी, फिर उनका उत्तर यह था, प्रियतम!
'प्रियतमा नित्य तेरी हैं ही, मैं भी अब हूँ तेरा,' प्रियतम!
ऐसा ही अबतक लगा, किंतु है खेल खेल ही तो, प्रियतम॥९७३।।

''बहिन लाडिली ! मनोहर अभिनय तू भी नहीं भूल सकेगी – उस दिनवाले अभिनयकी बात, बहिन, जब गँठबन्धनका स्वाँग पूरा करने मैं चली थी, और कह बैठी थी – कि 'बिना नेग लिये गँठबन्धन मैं करूँगी नहीं।' आँखोंमें झर-झर अश्रुका प्रवाह चल पड़ा, और उस प्रवाहमें बहते हुए नीलसुन्दर बोले थे – 'अरी! प्रियतमा तो नित्य तेरी हैं ही, अब आजसे मैं भी तेरा ही नित्य हूँ।' आजतक ऐसा ही लगता था मुझे कि सत्य-सत्य ही उन्होंने उस दिन कहा था। पर हाय रे ! खेल खेल ही होता है। खेलकी बात सदा सत्य नहीं रहती...।'' मोदिनीकी आँखें पावसकी धारा बिखेर रही थीं।।।९७३।।

माधव्याः उक्तिः—

(श्रीमाधवीमञ्जरी ललिता-यूथकी सखी हैं। श्रीराधाके पयोधरोंपर अङ्कित कंचुकीबन्दके चिह्नोंमें इनकी नित्यस्थिति है।)

उस दिनकी आँखमिचौनीमें तू निर्णय दे बैठी, प्रियतम !
अस्पृश्य हुए माधव हैं, ली छू लता माधवी ने, प्रियतम !
दो पलका वह वियोग उनको अखरा, बोले मुझसे, प्रियतम !
'तू मुझे बचा ले और खरीद ले', क्या वह सपना था, प्रियतम।।९७४।।

''तो आँखमिचौनीकी क्रीड़ा थी। और बहिन राधे ! तू निर्णय दे बैठी कि इस क्रीड़ाके नियमोंमें पक्षपात कैसे कर सकूँगी? प्राणनाथ नीलसुन्दर तो अस्पृश्य हो गये। सुस्पष्ट मैं देख चुकी हूँ, माधवीने वल्लरीका स्पर्श कर लिया पहले, पीछे छू सके हैं नीलसुन्दर। और फिर, बहिन राधे ! दण्डविधानके अन्तर्गत दो पलका वियोग उन्हें इतना अखरा था कि वे विह्वल होकर बोल उठे थे मुझसे – ''अरी ! तू मेरी रक्षा कर ले और मुझे अनन्तकालतकके लिये खरीद ले।' क्या वह स्वप्नका दृश्य था ..?'' कहती हुई माधवी अपने धूमिल अञ्चलको फाड़ रही थी।।।९७४।।

शशिरेखायाः उक्तिः-

(श्रीशशिरेखामञ्जरी विशाखा-यूथकी सखी हैं। श्रीराधाके अधरस्मितिमें इनकी नित्यस्थिति है।)

कानन मयंक-किरणों से था भूषित, मैं बैठी थी, प्रियतम !
वे राग भरे लोचन से थे मुझको ही देख रहे, प्रियतम !
'तेरा अधरस्मित उज्ज्वल है सुन्दर शशिकर से भी'; प्रियतम !
उनका कहना दृगका झरना, कोरा मेरा भ्रम था, प्रियतम।।९७५।।

''सम्पूर्ण कुञ्जस्थल मयङ्क-किरणोंसे उद्भासित था। तू बैठी थी, राधा बहिन ! और वे रागपूरित दृष्टिसे निर्निमेष होकर मुझे ही देख रहे थे। सहसा बोल उठे – 'अरी ! शशि-किरणोंसे भी तेरा स्मित अधिक उज्ज्वल है।' उस क्षण उनकी आँखें झर रही थीं। आज सोचती हूँ, बहिन ! उनका वह वाग्विलास और उनके नीलदृगोंका वह निर्झर – इनका दर्शन मेरा भ्रममात्र था। सङ्गति नहीं लग सकती, बहिन ! ऐसे सत्यके विलोपकी।'' ...कह-कहकर खिलखिलाकर हँस रही थी शशिरेखा।।।९७५।।

हारहीरायाः उक्तिः-

(श्रीहारहीरामञ्जरी विशाखा-यूथकी सखी हैं। श्रीराधाके पञ्चहारमें इनकी नित्यस्थिति है।)

अवगाहन कर तू सरसे थी निकली, जल-बूँदें थीं; प्रियतम !
तेरे कुन्तल से झरती, यह मैं देख कह उठी थी, प्रियतम !

'है भरी कृष्णता जिसमें भी, चूता है रस उससे,' प्रियतम !
'रीता पर फिर हो जाता है;' बोले वे, सच वह है, प्रियतम ।।९७६।।

''बहिन किशोरी ! अवगाहनकी क्रीड़ा होनेके अनन्तर तू सरोवरसे बाहर आकर तटपर खड़ी थी और तेरे कुन्तलसे जलकी बूँदें टप-टप झर रही थीं। मैं हँसकर कह बैठी – 'सच है – जिसमें कृष्णता होती है, कालापन होता है, उससे रस चूता ही है।' और तत्क्षण इसके उत्तरमें वे बोल उठे थे – 'और फिर वह रीता भी हो जाता है।' उनकी वह उक्ति सच थी, आज मैं समझ पायी।..'' आज हारहीराके कण्ठदेशमें कोई भी माला न थी, कोई हार न था, फिर भी उन्मादिनी-सी होकर अपनी ग्रीवाके हारको मानों वह तोड़ रही हो, इस मुद्रामें दौड़ चली सरोवरकी ओर। किंतु लड़खड़ाकर चार-पाँच पद-विन्यासके अनन्तर ही गिर पड़ी वह।।।९७६।।

सुकेश्याः उक्तिः–

(श्रीसुकेशीमञ्जरी चित्रा-यूथकी सखी हैं। श्रीराधाके केशोंकी कुंचिततामें इनकी नित्यस्थिति है।)

इस शारदीय पूनो निशि में उस इन्द्रनीलमणि को, प्रियतम !
मैं जड़ूँ जम्बुसरितावाली इस पुरट-अँगूठी में, प्रियतम !
कीमत मैंने यह चाही थी कुन्तल सँवारने की, प्रियतम !
'ऐसा ही हो' वे बोले, क्या था यही अर्थ उसका, प्रियतम ।।९७७।।

''उस घटनाके अनन्तर शारदीय राका-रजनीके तृतीय प्रहरकी बेला थी ! मैं नीलसुन्दरसे कह रही थी – 'सुनते हो? – हाँ...हाँ...हाँ उस इन्द्रनीलमणिको मैं इस जम्बू सरितावाले पुरटकी अँगूठीमें ही जड़ूँगी, भला ! मैं यही मूल्य लूँ कुन्तल सँवारनेकी सेवाका।' और गद्‌गद कण्ठसे वे बोले थे – 'ऐसा ही हो ! ऐसा ही हो ! ऐसा ही हो !' तो उस वाक्यका यही अर्थ था क्या? हाय, नीलसुन्दर ! मिथ्यात्वकी भी एक सीमा होती है।...'' टँग गयीं आँखें सुकेशीकी यह उद्‌गार पूर्ण होते-न-होते।।।९७७।।

कुन्दलतायाः उक्तिः–

(श्रीकुंदलतामञ्जरी चित्रा-यूथकी सखी हैं। श्रीराधाके हाथोंमें पहने चार वलयोंमें इनकी नित्यस्थिति है।)

मैं साध अनादि लिये यह थी मेरे उस परिणय का, प्रियतम !
उनके प्रच्छन्न पाणिधारणवाले उस अभिनय का, प्रियतम !
हो पर्यवसान नित्य तेरे, उनके सुखवर्धन में, प्रियतम !
था वचन दिया उनने भी, पर है सारहीन आशा, प्रियतम ।।९७८।।

''बहिन राधे ! उस परिणयका, प्रच्छन्न रूपसे पाणिग्रहणका उल्लासमय आयोजन सम्पन्न हुआ था, और मेरी अनादि साध उस समय प्रबुद्ध हो उठी थी कि बस, इस आयोजनका पर्यवसान हो मेरेद्वारा तेरे और उनके नित्य सुखवर्धनमें ही ! उन्होंने व्रजके सूर्य-चन्द्रकी साक्षितामें ऐसा ही होनेका वचनदान भी किया था, किंतु आशा सदा सारगर्भित ही हो, यह आवश्यक नहीं !... वञ्चनाकी भी एक सीमा होती है !'' कुन्दवल्लीकी आँखोंमें नीलसुन्दरके प्रति आत्यन्तिक वेदना-भरे रोषकी एक रेखा कौंधी और दूसरे ही क्षण वह चेतनाशून्य हो गयी।।।९७८।।

सौदामिन्याः उक्ति :—

(श्रीसौदामिनीमञ्जरी इन्दुलेखा-यूथकी सखी हैं। श्रीराधाके भालमें मणिजटित चन्द्रिकामें इनकी नित्यस्थिति है।)

उनके उत्तर को अब समझी, मैंने था प्रश्न किया, प्रियतम !
'क्यों अहो! प्रीतिकी गति सीधी होती है नहीं कभी,' प्रियतम !
'साँचे के ही अनुरूप वस्तु रसकी ढल जाती है,' प्रियतम !
'टेढ़ा मैं हूँ, छू मुझे नित्य टेढ़ी चलती यह है,' प्रियतम ॥९७९॥

''मेरा एक प्रश्न था नीलसुन्दरसे – 'क्यों नीलम! प्रीतिकी गति कभी सीधी नहीं होती, क्या बात है?' और उत्तरके रूपमें उन्होंने कहा था – 'रसकी वस्तु, तरल वस्तुएँ साँचेके अनुरूप ही ढलती हैं – मैं टेढा हूँ, बंकिम हूँ, और इसलिए मुझे स्पर्शकर प्रीति सदा वक्र ही चलती है।' हा... हा... हा... हा... कितना महान् ध्रुव सत्य आज मेरे सामने प्रत्यक्ष हो गया''.. सौदामनीके अट्टहाससे गूँज उठा सरोवर परिसर!।।९७९।।

हंसिन्याः उक्ति :—

(श्रीहंसिनीमञ्जरी इन्दुलेखा-यूथकी सखी हैं। श्रीराधाके चरणोंकी अँगूठियोंमें इनकी नित्यस्थिति है।)

'मिलने से पहले अमिलन का रहता है दुःख बड़ा,' प्रियतम !
'मिलते ही किन्तु न रहता है दो-पन का भेद वहाँ,' प्रियतम !
जीवन की धारा ऐसी ही समझे बैठी मैं थी, प्रियतम !
अब पता लगा, शिक्षा उनकी वञ्चना भरी यह थी, प्रियतम ॥९८०॥

''....'मिलनसे पहले अमिलनकी वेदना बड़ी भीषण होती है। किंतु मिलनके अनन्तर दीपनका भेद ही नहीं रह जाता।' – नीलसुन्दरने ही यह पाठ मुझे पढ़ाया था। और मैं भी समझ यही बैठी थी कि जीवनकी धारा ऐसी ही होती है। अब पता लगा कि मेरे नीलदेवताकी यह शिक्षा खरी वञ्चनासे ओत-प्रोत थी। ... तो अविराम मुझे रोना ही है।'' कहते-कहते अश्रुकी दो धाराएँ तीरकी तरह निस्सृत हुईं; आगेकी ओर एक वितस्तितक उड़ी और हंसिनी मानो जीवनके उस पार चली गयी।।।९८०।।

सुलोचनायाः उक्ति :—

(श्रीसुलोचनामञ्जरी चम्पकलता-यूथकी सखी हैं। श्रीराधाके कटाक्षमें इनकी नित्यस्थिति है।)

आँखों में तन्द्रा-सी आयी उनकी, मैंने देखा, प्रियतम !
विश्राम करें, जग-जगकर अब हो गये श्रमित ये हैं, प्रियतम !
अतएव बहाना कर अपने लोचन मैंने मूँदे, प्रियतम !
री! तत्कालीन उक्ति उनकी क्या वह बनावटी थी, प्रियतम ॥९८१॥

''मेरी आँखोंमें तन्द्रा-सी थी। किंतु इससे पूर्व ही नीलसुन्दरकी आँखोंमें तन्द्राका दर्शन मैंने किया था! मैं यही चाहती थी – वे विश्राम कर लें; अत्यन्त श्रमित हो गये हैं। अरी बहिन! इससे पूर्व मैंने केवल तन्द्राका बहाना किया था री! तुझसे क्यों छिपाऊँ; क्योंकि तू तो वहाँ थी ही। अब तू स्मरण कर ले, राधा बहिन! उनकी उस उक्तिका। तू ही बता, क्या वह उक्ति कृत्रिम थी?''... सुलोचनाकी आँखें अन्तर्वेदनाके भारको सह न सकीं, मुँदीं, पर ऐसा लगा, मानो अब वे न खुलेंगी कभी भी।।।९८१।।

मञ्जुलायाः उक्तिः–

(श्रीमञ्जुलामञ्जरी चम्पकलता-यूथकी सखी हैं। श्रीराधाके पयोधरमध्यकी चित्ररचनामें इनकी नित्यस्थिति है।)

लोचन भर-भर आते उनके, पुलकित थे अङ्ग सभी, प्रियतम !
वे लिखते, पुनः मिटाते थे मृगमद के चित्रों को, प्रियतम !
केवल वक्षःस्थल चित्रण में पूरी हो गयी निशा, प्रियतम !
उल्लास दृगोंका उस दिनका उनके क्या कृत्रिम था, प्रियतम॥९८२॥

''उनकी आँखें भर-भर आती थीं। सम्पूर्ण अङ्गोंमें पुलकका उन्मेष हो गया था, वे मृगमदसे चित्र लिखते और उन्हें मिटा देते! क्यों मिटाते, इसे वे ही जानें; किंतु हुआ यह कि एक अङ्गके चित्रणमें ही निशाका विराम हो गया। प्राची क्षितिजमें उषा झाँकने लग गयी। किंतु नीलसुन्दरके दृगोंका उल्लास क्षीण न हुआ था! बहिन किशोरी! क्या यह दम्भका उल्लास था? प्राण फटते जा रहे हैं, बहिन!'' मञ्जुलाका कण्ठ रुद्ध हो गया और मानों महाप्रलयकी छाया उसके मुखपर अङ्कित हो गयी थी।।।९८२।।

चारुशीलायाः उक्तिः–

(श्रीचारुशीलामञ्जरी रङ्गदेवी-यूथकी सखी हैं। श्रीराधाके कण्ठमें मोतियोंके पदकमें इनकी नित्यस्थिति है।)

तेरी ग्रीवा में सुमनों का वे पदक धराते थे, प्रियतम !
मैं भूल गयी अपने को ही, होकर तन्मय उसमें, प्रियतम !
लौटी जब फिर इस तन में थी, हो चुकी दुपहरी थी, प्रियतम !
उनका मुझको उर में भर वह सब कहना ठगना था, प्रियतम॥९८३॥

''नील मयङ्क तेरी ग्रीवामें सुमनोंसे निर्मित पदकका आभूषण पहना रहे थे। मैं सर्वथा अपने-आपको भूल गयी, बहिन! और उस पदकमें ही तन्मय हो गयी। और जब अपनी इस कायामें लौटी थी तो मध्याह्न हो गया था। तू तो प्रत्यक्ष देख ही रखी थी, बहिन! उस समय मेरे प्रति उनके प्यारदानको भी तू स्पष्ट देख ही रही थी। इसे विशुद्ध ठगीके अतिरिक्त और क्या कहूँ, बहिन!'' ....पूरा–पूरा भावोद्गार बाहर भी न आ सका था कि चारुशीलाके नासापुटोंके समीरमें स्पन्दन न रहा। आगे स्पन्दन होगा या नहीं, कौन जाने।।।९८३।।

विद्युन्मालायाः उक्तिः–

(श्रीविद्युन्मालामञ्जरी रङ्गदेवी-यूथकी सखी हैं। श्रीराधाके मोतियोंके भाल-आभरणमें इनकी नित्यस्थिति है।)

'है तड़ितपना तुझमें, मेरा है रंग नीलघन का; प्रियतम !
'तेरा घर मेरा उर ही है, तू आ छिप जा इसमें।' प्रियतम !
उनने था कहा निशा में यह भादों सित षष्ठी की, प्रियतम !
मैं तो वैसी-की-वैसी हूँ, बदला पयोद नीला, प्रियतम॥९८४॥

''भाद्र शुक्ला षष्ठीकी निशा थी, बहिन! नीले वनदेवने मुझसे यह कहा था– 'अरी, तड़ित्का स्वभाव तो तुझमें है ही, चपला तू है ही; और इस ओर नील वारिधरके वर्णका साम्य मेरे तनमें है– अम्भोदके उरःस्थलमें ही तो तडित् निवास करती है। तेरा निकेतन तो मेरे कण-कणके अन्तर्देशमें ही है। तू मुझमें ही निलीन रहना। जब मैं तुझे व्यक्त करूँ, तभी प्रकाश-पुञ्जका वितरण करना। अपने नित्य निवासगृहको भूल

गयी क्या री!' कितना मधुमय विनोद था उनका वह, बहिन! हाय रे! मैं तो वैसी-की-वैसी हूँ, पर नील पयोदका ही स्वभाव बदला।'' .... इतना ही कह सकी विद्युन्माला। उसका स्वर मन्द-मन्दतर होता जा रहा था। वह कालके उस काले बिन्दुकी ओर अग्रसर हो रही थी।।।९८४।।

सरोजिन्याः उक्तिः —

(श्रीसरोजिनीमञ्जरी तुङ्गविद्या-यूथकी सखी हैं। श्रीराधाके पदतलके सरोवर-चिह्नमें इनकी नित्यस्थिति है।)

थी साँझ, महावर लगा रहे वे थे तेरे पद में, प्रियतम !
उनका, मेरा मन डूब गया उस चिह्न सरोरुह में, प्रियतम !
जागे जब हम शशि चला गया, रवि लगा झाँकने था, प्रियतम !
था एक समय वह भी, अब है यह दिवस आज का भी, प्रियतम ॥९८५॥

'बहिन राधे! साँझ हो रही थी। वे तेरे पदमें महावर लगा रहे थे, तेरे पदतलके सरोरुह-चिन्हमें उनका और मेरा, दोनोंका मन सहसा निमग्न, हो चुका था और दिनकर झाँकने लग गया था। मेरे प्रति उनके प्यारका वह निदर्शन, वह...वह...वह... वह निदर्शन तू भी न भूलेगी, बहिन! और मैं भी नहीं भूलूँगी। एक दिन वह भी था और यह आजका दिन भी है।'' ... सरोजिनीकी वाणी रुद्ध हो गयी – सुस्पष्ट था, प्राणोंके विनिमयकी बेला उसे आत्मसात् करती जा रही थी।।।९८५।।

मदनालसायाः उक्तिः —

(श्रीमदनालसामञ्जरी तुङ्गविद्या-यूथकी सखी हैं। श्रीराधाकी जँभाईमें इनकी नित्यस्थिति है।)

कोई क्या भाँप सकी अब तक, ऐसा होता क्यों था, प्रियतम !
आती जब मुझे जँभाई, दृग मीलित होते उनके, प्रियतम !
अपनी भावना सरस उनने थी कही एक मुझसे, प्रियतम !
पर थी विडम्बना मेरी वह सच होती, क्यों जाते, प्रियतम ॥९८६॥

''अबतक कोई क्या समझ पायी थी, बहिन लाडिली! कि ऐसा क्यों होता था। हाँ, हाँ, हाँ, हाँ, हाँ, वही बात। जब भी तुझे जँभाई आती तो नीलसुन्दरके दृग मीलित हो जाते; किंतु मैं उनके पीछे पड़ गयी थी और मेरा लाड़ रखते हुए उन्होंने अपने मनमें उस समय उत्थित होने वाले सरस भावोंका एक चित्र अङ्कित किया था। किंतु वह कोरी विडम्बना मात्र थी बहिन! भावनाकी! सत्य होती तो वे क्यों छोड़कर जाते हम सबको।'' ... कहते-कहते मदनालसाकी आँखें निमीलित हुईं और अब वह मानो चिरनिद्राके अङ्कमें विश्राम कर रही थी।।।९८६।।

इन्दिरायाः उक्तिः

(श्रीइंदिरामञ्जरी सुदेवी-यूथकी सखी हैं। श्रीराधाके वामपदतलके ऊर्ध्वरेखाचिह्नमें इनकी नित्यस्थिति है।)

दो घड़ी शेष रजनी थी, तू, मैं, वे-थे तीन जने, प्रियतम !
तू लेट गयी दृग बंद किये, बैठी मैं थी, वे थे, प्रियतम !
रेखा है ऊर्ध्व वाम पद में तेरे जो, फल उसका, प्रियतम !
कह रहे कान में थे मेरे, झूठा क्या है वह भी, प्रियतम ॥९८७॥

''रजनीके अवसान होनेमें अब मात्र दो घड़ीकी प्रतीक्षा थी। तू, वे, मैं तीनों बैठे थे आलस्यके भारसे सहसा तू दब-सी गयी और पङ्कजदलोंके पर्यङ्कपर लेट गयी। हम दोनोंकी दृष्टि– मेरी और उनकी दृष्टि बहिन! तेरे वाम पदतलकी ऊर्ध्वरेखापर केन्द्रित हो गयी और वे मुझे मधुस्यन्दी स्वरमें उस चिह्नका परम शुभ फल बतलाने लगे – उसकी महिमाका निदेश करते-करते वे थक नहीं रहे थे। तेरे विश्राममें व्याघात न हो, इसलिये वे मेरे कानोंसे सटकर ही बतला रहे थे। तो बहिन, क्या वे उक्तियाँ भी सर्वथा मिथ्या हैं?''.. इतने ही स्वर निस्सृत हो सके इन्दिराके अधरपुटोंके अन्तरालसे; और फिर कपोलोंपरकी अश्रुधारा धीमी पड़ गयी। विलयके वितानकी छाया उसके अङ्गोंपर सुस्पष्ट दीख रही थी।।।९८७।।

मनोहराया: उक्ति:—

(श्रीमनोहरामञ्जरी सुदेवी-यूथकी सखी हैं। श्रीराधाके झब्बासहित भुजबंदोंमें इनकी नित्यस्थिति है।)

हेमन्त-अष्टमी उजियारी थी प्रथम मासवाली, प्रियतम !
हिमकर निकुञ्जलतिका की ले था ओट नमन करता, प्रियतम !
संदेश तुझे कुछ देता था, अनुमति लेता-लेता, प्रियतम !
उस समय कह उठे थे वे जो मुझसे, कैसे भूलूँ, प्रियतम।।९८८।

''किशोरी बहिन ! हेमन्तकी शुक्ला अष्टमी थी प्रथम मासवाली! हिमकर निकुञ्जवल्लरीकी ओटमें तेरा नमन कर रहा था और अनुमति ले रहा था। साथ ही तुझे एक रसमय संदेशका दान कर रहा था। उस समय नीलसुन्दर जो सहसा मुझे कह बैठे थे, उसे मैं कैसे भूलूँ, बहिन !...'' बुझते हुए दीपककी भाँति मनोहराके नयनोंमें ज्योतिकी एक रेखा-सी आयी और तत्क्षण वह विलीन हो गयी, मानो घनतिमिरमें सदाके लिये।।।९८८।।

अवशिष्टानां सहचरीणां उक्ति:—

वैशाखी सित नवमी थी, यह देवी का स्वप्न हुआ, प्रियतम !
बहुकाल पुनीत उसी व्रत के परिणाम सभी हम हैं, प्रियतम !
साँवर ने हमें जगाया था, लेकर भुज बन्धन में, प्रियतम !
बोले; इस नित्य मिलन की ही यह नित्य भूमिका है।' प्रियतम।।९८९।।

''अरी बहिन लाड़िली ! शुक्ला नवमी थी री, वैशाखकी ! गंभीर निद्रामें हम सभी निमग्न थीं, और साथ ही एक स्वप्न भी हम सबने– एक ही स्वप्न, भला – देखा था। नीलसुन्दरने ही हमें उस क्षण जगाया था और वे क्या बोले थे, तुझे बतला चुकी हूँ, बहिन !' ...।।९८९।।

सहसा सब सहचरियाँ क्रन्दन कर उठीं करुण इतना, प्रियतम !
जो बात दूत की दूर, विकल हो नीर सरोवर का, प्रियतम !
बढ़कर कूलों को प्लावित कर, छूकर कटि तक, उनको, प्रियतम !
बह-चला वनस्थल के द्रुम कीमूलों से उलझ गया, प्रियतम।।९९०।।

कैसे क्या हुआ, कहना कठिन है; पर साँवरके दूत उद्धवको यह प्रतीत हुआ कि एक साथ शत-सहस्र कण्ठोंसे उपर्युक्त रव निस्सृत हो रहा है और फिर सहसा इतने कण्ठोंके एक समान अट्टहाससे

सरोवर-परिसर मुखरित हो उठा – क्षणभरके लिये। किंतु दूसरे ही क्षण सारा वनस्थल परिव्याप्त हो गया महाप्रलयकी भीषण नीरवतासे – कितने क्षण कौन बताये?

* * *

इतनेमें अचानक आगका एक झंझावात-सा आया, मानो उस महाविलयकी पुनरावृत्ति हो। पर उस महाध्वंसके परिणाममें अन्तर था। नीरवता फिरसे व्यक्त हो उठी! अचानक, एक साथ ही वृषभानुनन्दिनी राधाकिशोरीकी सम्पूर्ण सहचरियाँ ऐसे करुण स्वरसे रो उठीं कि उद्धवकी बात दूर, सरोवरका सम्पूर्ण नीर विकल हो उठा; सचमुच-सचमुच उसमें बाढ़ आ गयी और क्षण बीतते-न-बीतते वह चारों कूलोंको प्लावितकर, सरोवरकी सीमाका उल्लंघनकर, उन गोपसुन्दरियोंको कटितक निमग्नकर, वनस्थलके तरुजालोंसे टकराने लग गया। वनस्थलीकी सम्पूर्ण द्रुमावली, वल्लरियाँ व्याकुल होकर झूमने लगीं। इतना वेग था सरोवरके उस नीरमें। सह न सका था वह गोपसुन्दरियोंके करुण-क्रन्दनको। इतना विकल-विह्वल था इस समय वह।।।९९०।।

'साँवर का किंकर हूँ, ज्ञाता मैं परमतत्व का भी,' प्रियतम !
जो दूत लिये मन में यह था अभिमान, जला उसमें, प्रियतम !
साँवर से जुड़ा हुआ जीवन कैसा हो जाता है, प्रियतम !
वह आज तनिक-सा देख सका बाला की सखियों में, प्रियतम।।९९१।।

और इसी प्रवाहमें उद्धवका सारा मल धुल गया। "मैं परमतत्त्वका ज्ञाता हूँ, साँवरका किङ्कर हूँ" – यह अभिमान लेकर जो वे आये थे, यह अभिमान भी उसी प्लावनमें बहकर न जाने कहाँ-से-कहाँ जाकर इतिके बिन्दुमें विलीन हो गया। नीलसुन्दरसे जुड़ा हुआ जीवन कैसा होता है, होता रहता है, कैसे-से-कैसे हो जाता है– आज वे प्रत्यक्ष उसका तनिक-सा निदर्शन देख सके किशोरीकी सहचरियोंके जीवनमें।।।९९१।।

खुल गया द्वार अब अन्तर का, आलोक मिला सच्चा, प्रियतम !
लोचन के आगे छाया था जो तिमिर अनादि, मिटा, प्रियतम !
साँवर हैं क्या ? बाला है क्या ? रस है क्या ? तत्व सहीं, प्रियतम !
यह मिला किसी को जिधर, वही पथ आज मिला उसको, प्रियतम।।९९२।।

उद्धवके अन्तरका द्वार खुल गया और आज उन्हें सच्चा प्रकाश मिला। उनकी आँखोंपर अनादि तिमिरकी एक छाया थी; वह आज, आज जाकर अपसारित हुई। नीलसुन्दर क्या वस्तु हैं, राधाकिशोरी क्या वस्तु हैं, रस-तत्त्व क्या है – जिस पथसे चलकर कोई भी इसका यत्किञ्चित् आभास पा सका है, वही पथ आज उद्धवको भी प्राप्त हो गया।।।९९२।।

बाला पुतली-सी बैठी थी, आँखों से रेखा-सी, प्रियतम !
अविराम भावना हृत्तल की विगलित हो थी आती, प्रियतम !
हो निर्निमेष वह दूत लगा भरने अपने दृग में, प्रियतम !
थोड़ी-सी भरते ही उसको अनुभूति विचित्र हुई, प्रियतम।।९९३।।

अबतक भानुकिशोरी पुतली-सी निस्पन्द बनी बैठी थीं। उनके हृत्तलकी भावनाएँ विगलित होकर अविराम अश्रुके रूपमें परिणत होकर आँखोंके पथसे बाहर आती रही थीं और एक अश्रुकी अखण्ड रेखा निर्मित थी उनके कपोलोंपर। उद्धवकी आँखोंमें भानुनन्दिनीका वह रूप समा गया। निर्निमेष नेत्रोंसे वे देख रहे थे राधाकिशोरीकी उस अप्रतिम भावमयी धाराको– नयनोंके प्रवाहको। उनके उरःस्थलमें दो-एक बूँद जाते-न-जाते वे एक विचित्र अनुभूतिमें निमग्न हो गये।।।९९३।।

मानो बिजली-सी चमक गयी, पीला पट फहर उठा, प्रियतम!
साँवर का जो पहने वह थी लँहगा नीला, उसमें, प्रियतम!
फिर पीले अम्बर के अन्दर नीली साड़ी उसकी, प्रियतम!
थी स्यूत हुई, था भरा पुनः पीताभ चीर उसमें, प्रियतम।।९९४।।

उन्हें अनुभव हुआ, मानो सहसा विद्युत्-सी – बिजली-सी कौंध गयी। राधाकिशोरी जो नीला लहँगा धारण किये हुए थीं, उसके अन्तरालमें ही वह विद्युत्का प्रकाशपुञ्ज उन्हें दीख रहा था। और वे अनुभव करने लगे कि सच-सच यह तो नीलसुन्दरका पीत दुकूल नीले लहँगेमें झलमल-झलमल कर रहा है। अरे! यह क्या! इस पीले अम्बरमें, पीत दुकूलमें, फिर देखो, राधाकिशोरीकी नीली साड़ी लहरा रही है। उफ्! क्या हो रहा है – मैं क्या देख रहा हूँ – फिर इसी, इसी नीली साड़ीमें नीलसुन्दरका पीत परिधान सर्वथा सर्वांशमें ही स्यूत हो रहा है।।।९९४।।

नीले-पीले वसनों का क्रम निर्धारित हो जैसे, प्रियतम!
तह-पर-तह बने अतुल सज्जित अगणित अनन्त वे थे, प्रियतम!
फिर उसी तरह पदपृष्ठों की कोमल अङ्गुलियों की, प्रियतम!
स्वर्णिम छवि में घन था, घन में फिर थीं पिङ्गल लहरें, प्रियतम।।९९५।।

मानो नीले-पीले वस्त्रोंका एक क्रम निर्धारित कर दिया गया हो। नीलेमें पीला, पीलेमें नीला, फिर नीलेमें पीला ऐसे तह-पर-तह सजे हुए अगणित वस्त्रोंका अम्बार लगा हुआ हो। कहीं लहँगेकी आकृतिमें कोई असम्भावित दृश्य नहीं है – उतनी-की-उतनी आकृति है; पीत दुकूलकी आकृति भी ज्यों-की-त्यों है। किंतु एक-दूसरेके अन्तरालमें ज्यों-के-त्यों अनुस्यूत अनन्त, नील-पीत परिधान-खण्डोंमें वह अम्बार सुशोभित हो रहा है।

"हैं, हैं, यह क्या? वह देखो राधाकिशोरीके पद-पृष्ठोंकी, मृदुल अंगुलियोंकी स्वर्णिम छविमें नीला प्रकाशपुञ्ज भरा है। अरे! नीलमेघ – नीलसुन्दर भरे हैं और फिर देखो, उस नीलमेघमें पुनः पीली लहरें उठ रही हैं ...."।।९९५।।

कटि से ऊपर आँखें जब थीं उठतीं, तब था लगता, प्रियतम!
बाला में हैं साँवर पूरित, साँवर में है बाला, प्रियतम!
भीतर, फिर भीतर, वैसे ही ज्यों-ज्यों दृग थे बढ़ते, प्रियतम!
क्रमशः असंख्य थे साँवर, थी क्रम से बाला उनमें, प्रियतम।।९९६।।

उद्धवकी आँखें जब राधाकिशोरीके कटिदेशसे ऊपर जातीं तो उन्हें प्रत्यक्ष अनुभव होता – राधाकिशोरीमें नीलसुन्दर परिपूरिंत हैं – खड़े हैं और फिर ओह! नीलसुन्दरमें राधाकिशोरी परिपूरित हैं – खड़ी हैं – बैठी हैं। जैसे-जैसे उद्धवकी आँखें भीतरकी ओर प्रविष्ट होतीं, उन्हें अनुभव हो रहा था – क्रमशः

असंख्य नीलसुन्दर हैं और उन असंख्य नीलसुन्दरके अन्तरालमें असंख्य वृषभानुकिशोरी विराजित थीं।।।९९६।।

जब लगा दीखने था ऐसे उस दूत मनीषीको, प्रियतम!
हो गया भ्रमित, साँवर हैं या बाला सन्मुख मेरे, प्रियतम!
'अधिदेवि! पाहि हे पाहि सदा साँवरके प्राणोंकी'; प्रियतम!
'देवीके देव! पाहि' कह कर ली मूँद आँख उसने, प्रियतम।।९९७।।

इस प्रकार देखते-देखते उद्धव भ्रमित हो गये कि 'मेरे सामने नीलसुन्दर विराजित हैं या राधाकिशोरी विराजित हैं कि दोनों विराजित हैं अथवा क्या हैं?' विवेक समाप्त हो गया, बुद्धि कुण्ठित हो गयी उद्धवकी। अजब-सी दशा थी और व्याकुल होकर वे पुकार उठे – 'नीलसुन्दरके प्राणोंकी अधिदेवी हे राधाकिशोरी! हे देवीके देव नीलसुन्दर!! पाहि, पाहि, पाहि...' उद्धव इससे अधिक देख न सके; उन्होंने अपनी आँखें बन्द कर लीं।।।९९७।।

सुन पड़ी मधुरतम वंशीकी इतनेमें तान उसे, प्रियतम!
जो निकट, निकटतर उसके थी क्रमशः होती जाती, प्रियतम!
मादकता भरी हुई उसमें ऐसी थी, जो न कहीं, प्रियतम!
थी मिली कभी उसको, मोहित होकर वह झूम उठा, प्रियतम।।९९८।।

नयन निमीलित होते ही कर्णपुटोंमें मधुरतम वंशीकी ध्वनि, वंशीकी मधुस्यंदी तान उद्धवको सुन पड़ने लग गयी। उन्हें ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे वह रव क्रमशः निकट-निकटतर होता जा रहा है। वंशीकी स्वर-लहरीमें ऐसी मादकता पूरित थी, जिसका अनुभव उन्हें कभी कहीं अनादिकालसे न हो सका था। उद्धव मोहित होकर झूमने लग गये।।।९९८।।

लोचन बरबस खुल गये तथा दीखा सुन्दर वन है, प्रियतम!
गो-चारण कर धीरे-धीरे साँवर हैं लौट रहे, प्रियतम!
आ गये समीप, रही दूरी जब दो हाथोंकी ही, प्रियतम!
हँस पड़े और बोले, 'भैया! मेरा घर तो यह है।' प्रियतम।।९९९।।

.. बरबस उद्धवकी बंद आँखें खुल गयीं और दीख पड़ा अप्रतिम सुन्दर एक वनस्थल। संध्या हो रही है, नीलसुन्दर नन्दनन्दन गो-चारणकर धीरे-धीरे वनसे लौट रहे हैं – अत्यन्त समीप आ गये हैं, मेरे पास आ गये हैं। अब तो जहाँ वे अवस्थित हैं, वहाँ उनमें और मुझमें केवल दो हाथकी दूरी रह गयी है। मैं पथके एक किनारे खड़ा हूँ। अरे! नन्दनन्दन हँस रहे हैं। आ हा! वे मधुमय स्वरमें कह रहे हैं – ''अरे भैया! मेरा घर तो यही, यह वृन्दावन ही है।'।।९९९।।

'देखो, प्रस्तुत कर नीराजन, वह बाट देखती है', प्रियतम!
'मेरी मैया 'आकुल मेरा साँवर आता होगा', प्रियतम!
'केवल हैं तीन पहर बीते, लेकर अपनी गायें', प्रियतम!
'मैं था अरण्यमें घूम रहा, चिन्तामें है जननी।' प्रियतम।।१०००।।

'अरे देखो, उद्धव भैया! देखो, मेरी मैया वहाँ, वहाँ उस नन्दद्वारपर, नन्दभवनमें हाथमें नीराजन

लिये आकुल प्राणोंसे मेरी प्रतीक्षा कर रही है, सोच रही है – मेरा लाल नीलमणि आ ही रहा होगा। देखो, देखो, दृष्टि उठाकर उस ओर देखो! सुनो उद्धव! बस, केवल तीन पहर तो बीते हैं – अपनी गायें लिये मैं अरण्यमें घूम रहा था। और मेरी मैया व्यर्थमें चिन्ता कर रही है मेरे लिये। देर हो गयी है कुछ, रे भैया! आनेमें आज मुझे।'।।१०००।।

दीखी प्रवाहिणी कृष्णा फिर लहराती थी बहती, प्रियतम!
शोभित निकुञ्ज सद्मों की थी अवली तट पर उसके, प्रियतम!
बाला के दक्षिण कंधे पर कर रखकर साँवर थे, प्रियतम!
उससे कहते कुछ, थी बाला आँखों में प्यार लिये, प्रियतम।।१००१।।

क्षण बीतते-न-बीतते उद्धवको फिर यह अनुभूति हुई – कृष्णा-प्रवाहिणी कलिन्दनन्दिनी अहा! कैसी हिलारें ले रही हैं– और दोनों तटोंपर निकुञ्जसद्मोंकी पंक्तियाँ लगी हैं। ये देखो, राधाकिशोरीको गरबाँहीं दिये नीलसुन्दर निकुञ्जकी ओटसे अब बाहर आ रहे हैं। किशोरीके दक्षिण स्कन्धपर उनके हस्त-कमल विराजित हैं। राधाकिशोरीसे वे कुछ कह रहे हैं। आँखोंसे प्यार झर रहा है। नीलसुन्दर विह्वल-से हो रहे हैं...।।।१००१।।

दोनों हँसते फिर चले गये, आगे उसने क्या-क्या, प्रियतम!
देखा, कैसे कह दूँ सब कुछ, है बात बड़ी लम्बी, प्रियतम!
इतनी-सी कह देती हूँ, वह अनुभव कर धन्य हुआ, प्रियतम!
बाला को लेकर नित्य यहीं साँवर हैं खेल रहे, प्रियतम।।१००२।।

'यह देखो, दोनों हँसते हुए चले जा रहे हैं उस ओर, उस निकुञ्जश्रेणीकी ओर।' आँखोंके आगे नवीन-से-नवीन अप्रतिम सुन्दर मनोहर दृश्योंका ताँता लग रहा था। उद्धव आनन्दमें उन्मत्त होते जा रहे थे। कौन बतावे, कैसे बतावे कि उद्धवने क्या-क्या देखा था। इतना ही कहना संभव है – नीलसुन्दर वृन्दाकाननसे कहीं बाहर नहीं गये हैं और राधाकिशोरीके साथ उनकी नित्य क्रीड़ा अविराम रूपसे चल रही है। यह प्रत्यक्ष अनुभूति उद्धवके प्राणोंको निरन्तर उन्मत्त बना रही थी और इसी प्रवाहमें मानो वे अपने आपतकको सर्वथा खो बैठे।।।१००२।।

हो गये दिवस कितने उसको आये इस कानन में, प्रियतम!
हो गयी उसे विस्मृति इसकी, डूबा रहता रस में, प्रियतम!
बाला की सहचरियाँ जो कुछ कहतीं, सुनता रहता, प्रियतम!
बाला के सम्मुख जाकर तो केवल रोने लगता, प्रियतम।।१००३।।

कितने दिन, कितने मास, कितने संवत्सर, कितने युग-युगान्तके लिये यह अनुभूति उद्धवके मानस-तलमें लहराती रही – कालमानसे इसका निर्णय असम्भव है। उद्धवको सर्वथा विस्मृति हो गयी थी, वे कितने दिन पहले वृन्दा-काननमें आये थे। आनन्दकी लहरें उन्हें घेरे रहतीं और वे उसमें डूबे रहते – बोलते वे न थे। राधाकिशोरीकी सहचरियाँ जो कुछ उन्हें सुनातीं, वे सुनते रहते; किन्तु किशोरीके सम्मुख जाते ही वे रोने लग जाते थे – अविराम रोते ही रहते, जबतक किशोरी दीखती रहतीं।।।१००३।।

किसलिये, अचानक भान हुआ आया था यहाँ सही, प्रियतम!
निकली मन से फिर बात वही साँवर के रहने की, प्रियतम!

ले रहा हिलोरें सागर था दुख का, जिसमें सब थीं; प्रियतम !
वे डूब रही, था पास खड़ा वह, याद रही इतनी, प्रियतम ।।१००४।।

अस्तु, नीलसुन्दरका सङ्कल्प जाग्रत् हुआ और अचानक उद्धवको यह भान हुआ कि वे यहाँ किस उद्देश्यसे आये थे और कब आये थे। और इस प्रतीतिके साथ ही नीलसुन्दर निरन्तर यहीं रहते हैं, यह अनुभूति भी एक अभिनव आवरणमें विलीन हो गयी। उन्हें जब यह दीख रहा था – वेदनाका समुद्र हिलोरें ले रहा है, जिसमें गोप-सुन्दरियाँ डूब रही हैं। और वे तटपर खड़े हैं उस सागरके, एकटक देख रहे हैं – मात्र इतनी ही स्मृति रह गयी उद्धवमें।।।१००४।।

'हूँ निपट अनधिकारी इनका दर्शन कर लेने का; प्रियतम !
'सपने में भी,' अनुभव ऐसा अब द्रुत लगा करने, प्रियतम !
'मौखिक शरणागति से ही वे साँवर ढर जाते हैं;' प्रियतम !
'अतस्व दया कर दी उनने, मुझको ही भेज दिया,' प्रियतम ।।१००५।।

उद्धवके प्राण रोने लगे – उद्धवके प्राण भी रोने लग गये। साथ ही दैन्यके स्रोत फूट पड़े उनमें – ऐसे मानो उनके अस्तित्वको ही वे विलुप्त कर देंगे। धैर्य छूट रहा था उनका और वे सोचते जा रहे थे – "हाय रे! हाय रे!! मैं सर्वथा-सर्वथा अनधिकारी हूँ इन गोपसुन्दरियोंके दर्शन करनेका भी। स्वप्नमें भी इनके दर्शन मुझे हों – असम्भव! किंतु मेरे साँवर मौखिक शरणागतिसे भी रीझ जाते हैं, ढर जाते हैं। मैंने उनकी केवल वाणीभरकी शरण ली है; इसीलिए वे मुझपर प्रसन्न हो गये थे और उन्होंने दयाकर मुझे ही यहाँ भेजा।" ।।१००५।।

'जाना है किंतु यहाँ से अब, मेरे-जैसा कोई,' प्रियतम!
'कैसे रह सकता है पद की छाया में बाला के;' प्रियतम !
'आँसू से जो सींचूँ उर को, चिरकाल रहे वर्षा;' प्रियतम !
'आशा मेरी वह एक कहीं अङ्कुरित भले तब हो;' प्रियतम ।।१००६।

"पर अब तो मुझे यहाँसे जाना है। मेरे-जैसा व्यक्ति राधाकिशोरीके चरण-सरोरुहोंकी छायामें कैसे रह सकता है। हाँ, यदि मैं अपने उरःस्थलको अविराम अनंत कालतकके लिये आँसूसे सींचता रहूँ, कभी मेरे अश्रुका विराम हो ही नहीं, तब कहीं जाकर, वृन्दा-काननमें रहने की वह मेरी अभिलाषा, अभिलाषा-वल्लरीका बीज अंकुरित हो।" ।।१००६।।

'सुन सका न बाला की वाणी मेरा यह भाग कहाँ ?' प्रियतम !
'विनती करने का भी मुझको अधिकार नहीं सच है।' प्रियतम !
'जो स्वतः कहीं कह दे कुछ यह, जीवन अनन्त तक का;' प्रियतम !
'सम्बल मिल जाय मुझे, फिर तो कोई न मिले मुझ-सा;' प्रियतम ।।१००७।।

'व्यथाका भार मैं ढो नहीं सकूँगा – केवल इस व्यथाका कि मुझे राधाकिशोरीके दर्शन तो हो गये, किंतु मेरे भाग्य ऐसे नहीं हुए कि मैं किशोरीका स्वर सुन सकूँ। कैसा मधुस्यन्दी स्वर होगा किशोरीका! मेरे-जैसे महा-अभिमानीको इनसे विनय करनेका भी अधिकार नहीं है – सत्य-सत्य ही मैं अनुभव कर रहा

हूँ। मैं इस पावन धराका स्पर्श कर सका, किशोरीके दर्शनसे मेरी आँखें सफल हुईं – इतना ही बहुत-बहुत सौभाग्य मेरा है ...।'

'किंतु जीवित तो रह नहीं सकूँगा मैं, यदि किशोरीकी वाणी मैंने नहीं सुनी तो। कदाचित् एक-दो शब्द भी सुन लेता तो अनन्तकालतक मैं जीवित रह जाता और मुझे जीवनका पाथेय मिल जाता। साथ ही मेरे समान सौभाग्यशाली विश्वमें और कोई भी न होता।'।।१००७।।

टप-टप झर कर दृग थे उसके अवनी गीली करते, प्रियतम!
मन-ही-मन विनय सुनाता था अत्यन्त अधीर हुआ, प्रियतम!
'हे साँवर नाथ! दया मुझपर इतनी-सी और करो,' प्रियतम!
'ये श्रवण सदा के लिये तृषित रह जायँ नहीं मेरे!' प्रियतम ।।१००८।।

उद्धवकी आँखोंसे बूँदें बरस रही थीं और अवनी गीली हो रही थी। अत्यन्त अधीर हो उठे थे वे। 'राधाकिशोरीसे कुछ भी कहनेका अधिकारी नहीं, नहीं, नहीं हूँ मैं! किंतु साँवरसे तो कह ही सकता हूँ। जिन्होंने इतनी कृपा की – मुझे अपनी प्राणप्रियाका दर्शन कराया, वे कदाचित् मेरी अग्रिम विनयको भी सुन लें।' उद्धव मन-ही-मन चीत्कार कर उठे – दया, दया, कृपा, कृपा! हे श्यामसुन्दर! इतनी सी दया मुझपर और कर दो – मेरे ये कर्णपुट सदाके लिये प्यासे न रह जायँ, इतनी भीख और दे दो, दयामय! वृन्दा-कानननमें फिर, फिर, फिर आनेका सौभाग्य मुझ-जैसोंके भाग्यमें नहीं है नाथ! कृपाकी भीख-भीख-भीख–।' उद्धवके प्राण भीख-भीखका स्वर भर रहे थे भीतर-ही-भीतर।।।१००८।।

बाला की एक बहिन उससे छोटी जो थी श्यामा, प्रियतम!
करुणा की धारा से स्वर में कह उठी नहायी-सी, प्रियतम!
'री! बहिन, दूत अब जाता है साँवर की सेवा में,' प्रियतम!
'उनका संदेश लिये यह था आया, तू भी दे-दे!' प्रियतम।।१००९।।

नीलसुन्दर ही वियोगके दुःख-भारको सह्य बनानेके उद्देश्यसे, प्राणेश्वरी प्राणवल्लभा राधाके अमित माधुर्यको प्रस्फुटित करनेके उद्देश्यसे, महाभाव-रस-समुद्रको उद्वेलित करनेके उद्देश्यसे स्वयं ही राधाकिशोरीकी सहोदरा छोटी साँवरी बहिनके रूपमें विराजित रहते थे। उस समय भी किशोरीके दक्षिण पार्श्वमें अवस्थित थे। वह साँवरी ही करुणाकी प्रवाहिणीमें अवगाहनकर करुणाकी धारासे ओत-प्रोत स्वरमें सहसा कह उठी – 'अरी बहिन! देख, एक दूत आया है – उनका सन्देश लेकर वह आया था, और अब पुनः साँवरकी ही सेवामें लौटने जा रहा है। तू भी इसे कुछ सन्देश दे-दे, बहिन!'।।१००९।।

सागर के नील अतल तल से ऊपर वह उठ आयी, प्रियतम!
अपनी उस बहिन कनिष्ठा की ठोड़ी को छू करके, प्रियतम!
रोती कुछ देर रही अतिशय विह्वल भरकर सुबकी, प्रियतम!
धीरज समयोचित धर उसकी फिर लाड़ चली रखने, प्रियतम।।१०१०।।

मानो नीलसागरके अतल तलसे राधाकिशोरी ऊपर उठ आयी हैं, इस भाँति उनके नयन-सरोज उन्मीलित हुए। अपनी कनिष्ठा बहिनके चिबुकको छूकर किशोरी फूट-फूटकर रोने लग गयीं। सुबकी भर-भरकर वे रोती जा रही थीं; किंतु फिर न जाने कैसे उनमें समयोचित धैर्यका सञ्चार हुआ और अपनी बहिनका लाड़ रखने चलीं वे .....।।।१०१०।।

।। विजयेतां श्रीप्रियाप्रियतमौ।।

एकादश शतक

किशोरी मुखर हुई

अञ्चल से पोँछ अश्रु, बोली बाला, लेकर माला, प्रियतम !
साँवर ने जो पहनायी थी जाते-जाते उसको, प्रियतम !
'क्या दूँ संदेश; भला, उनको, अच्छा, कहना उनसे, प्रियतम !
सुख से रहना, सपने में भी छूये न शोक तुमको।' प्रियतम।।१०११।।

भानुकिशोरीने अञ्चलसे अपना अश्रुमार्जन किया। ग्रीवामें झूलती हुई वनमालाको उतारकर अपने वाम कर-सरोजपर स्थापित कर लिया– वही माला यह है, जो नीलसुन्दरने तपन-तनयाके तटपर, तमालतरुकी छायामें, मधुपुर जानेसे पूर्व, प्राणप्रियतमाको पहनायी थी। नहीं-नहीं, नीले कण्ठदेशसे नील भुजपाशका बन्धन शिथिल होते-न-होते यह सुमनहार अपने-आप सरककर किशोरीके कण्ठदेशको आवेष्टित करने लग गया था। अस्तु,

भानुराजनन्दिनीने अपनी दृष्टि उस हारपर केन्द्रितकर बोलना प्रारम्भ किया– "दूत! मैं तुम्हें अपने प्राणनाथके लिये क्या संदेश दूँ? पर तुम संदेश लेने आये हो– ऐसी बात मेरी बहिन कह रही थी। तो क्या कहूँ? अच्छा, तुम उनसे कहना– राधाने कहा है– 'मेरे प्राणरमण! तुम सुखसे रहना। स्वप्नमें भी तुम्हें शोककी छाया भी न छू सके...।'"।।१०११।।

'है कुञ्जहृदय यह बना हुआ, जिसमें रहते तुम हो, प्रियतम !
भ्रम होता है या सदा मुझे, मैं जान नहीं पायी, प्रियतम !
दो बनकर हो तुम खेल रहे या हूँ दीवानी मैं, प्रियतम !
निर्णय इसका अब कौन करे, कर लेना तुम मनमें, प्रियतम।।१०१२।।

सुन्दरीसरोवरकी धरा काँप उठी,जल फेनिल हो उठा; पर भानुकिशोरी उसी स्वरमें बोलती चली जा रही है– "और फिर कहना– 'मेरे असंख्य प्राणोंके आराध्यदेव! विचित्र-सी स्थिति है मेरी। मैं अनुभव कर रही हूँ– यह मेरा उरःस्थल निकुञ्जदेशके रूपमें परिणत हो गया है। कबसे ? जानती नहीं। किन्तु यही निकुञ्जस्थल; और इसमें ही– इसमें ही एकमात्र तुम्हीं नित्य-निरन्तर निवास करते रहते हो। कह नहीं सकती, प्राणवल्लभ! कि यह मुझे निरन्तर भ्रम ही हो रहा है या सत्य है, यह– मैं समझ ही नहीं सकती। कितनी बार सोच चुकी हूँ, पर समझ न पायी। अथवा तुम दो बन गये हो, दो बनकर तुम निरन्तर मुझसे खेल रहे हो या मैं सचमुच ही उन्मादिनी हो गयी हूँ– इसका निर्णय कौन करे ? हाय रे! तुम्हीं अपने मनमें इसका निर्णय कर लेना कि वस्तुस्थिति क्या है।'"।।१०१२।।

'सचमुच ही हो यदि चले गये दासी को छोड़ यहाँ, प्रियतम !
'है उचित किया तुमने, तब तो पाओगे सुख इससे, प्रियतम !
सुन्दर तुम हो, दृग में, उर में, निर्मल अनुराग लिये, प्रियतम !
मुझमें सुन्दरता का भ्रम था हो गया अतः तुमको, प्रियतम'।।१०१३।।

''अच्छा! सचमुच ही यदि तुम चले ही गये हो– अपनी इस दासीको यहीं छोड़कर वास्तवमें ही तुम अब कहीं अन्यत्र निवास कर रहे हो तो फिर नितान्त सत्य है– तुमने सर्वथा उचित ही किया है। और अब तुम्हारा जीवन सुखी होगा, मेरे नाथ! सुखके समुद्रमें तुम डूबे रहोगे। अबतक– तुम एक दुष्पार भ्रान्तिमें पड़े थे; इसका हेतु यह था– तुम अप्रतिम सुन्दर हो। तुम्हारे हृत्तलमें निर्मल अनुरागकी ऊर्मियाँ निरन्तर हिलोरें लेती रहती हैं। और इसीलिए तुम्हें मुझमें सुन्दरताका भ्रम हो गया था। यह नियम है– जो जैसा होता है, उसे सर्वत्र वैसी ही प्रतीति होती है। इसीलिए निर्मल अनुरागकी लहरियोंमें बहते हुए, सौन्दर्यपूरकी किरणें बिखेरते हुए तुम्हें मेरे अंदर सौन्दर्यकी भ्रान्ति हुई थी।''।।१०१३।।

'सद्‌गुण है मुझमें एक नहीं, दोषों की हूँ प्रतिमा, प्रियतम!
रीझे तुम थे फिर भी केवल मुझपर, सबको भूले, प्रियतम!
लज्जा में गड़ जाती जब तुम देकर सर्वस्व मुझे, प्रियतम!
'प्राणेश्वरि!' कह उरमें भरते गुण-रूप-विरहिताको, प्रियतम'।।१०१४।।

''वस्तुस्थिति तो यह है, प्राणनाथ! कि सद्गुणका कणिकांश भी मुझमें नहीं है, और सम्पूर्ण दोषोंकी जीवन्त प्रतिमा हूँ मैं। पर बलिहारी है तुम्हारे अनुरागभरे नयनोंकी– तुम्हारे सौन्दर्यपूर उरःस्थलकी कि तुम केवल, केवल मुझपर ही न्योछावर हो गये थे और तुम्हें मेरे अतिरिक्त अन्य सबकी विस्मृति हो गयी थी। एक बार नहीं, शत-सहस्र बार लज्जाके घन आवरणमें मेरे प्राण समा जाते थे, जब मैं अनुभव करती– तुम मुझे अपना सर्वस्व-समर्पण करके सजल आँखोंसे गद-गद् कण्ठसे 'प्राणेश्वरी' कहकर सम्बोधित करते और उरःस्थलमें स्थान देते– भुजपाशसे मुझे वेष्टित कर लेते– मुझ सर्वथा गुणसे, सौन्दर्यसे विरहिताको। हाय रे! विधिकी विडम्बना........!''।।१०१४।।

'जब रूप नहीं, गुण-लेश नहीं, भ्रम दूर करूँ कैसे, प्रियतम!
कैसे समझाऊँ मैं तुमको, थी समझ नहीं पाती, प्रियतम!
फिर भी प्रतिदिन तुमसे इसका संकेत किया करती, प्रियतम!
थक जाती, जब लेती सँवार अपने इन अङ्गों को, प्रियतम'।।१०१५।।

''कालके प्रवाहमें न जाने असंख्य बार मैं सोचती थी– जब मुझमें रूप नहीं, गुणका लेशमात्र भी नहीं, तब मेरे जीवन-सर्वस्व जो तुम हो, उनका– तुम्हारा भ्रम मैं कैसे दूर करूँ ? मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ ? कोई उपाय मुझे सूझता न था, प्राणनाथ! इतनेपर भी प्रतिदिन ही मैं किसी-न-किसी रूपमें तुम्हें प्रत्यक्ष सङ्केत कर ही देती थी कि 'तुम चेत जाओ, इस भ्रमजालसे ऊपर उठ जाओ, किंतु जब मैं थक जाती थी समझाते-समझाते तब मेरे अन्तस्तलमें स्फुरणा जगती कि 'चलूँ शृङ्गार-कुञ्जमें और अपने अङ्गोंको सजाऊँ और देखूँ, क्या परिणाम होता है इसका...........।''।।१०१५।।

'हो जाऊँ तनिक कदाचित् मैं सुन्दर सँवारने से, प्रियतम!
ये कहीं वसन-भूषण-चन्दन मेरा कुरूप ढक दें, प्रियतम!
आदर्श गुणों से भूषित जो सहचरियाँ हैं मेरी, प्रियतम!
उनको करती थी याद कहीं छू लूँ छाया उनकी, प्रियतम'।।१०१६।।

''मैं सदा- प्रतिदिन ही शृङ्गार धराने, शृङ्गार धारण करने कुञ्जमें तभी गयी थी, गोष्ठके उस कक्षमें तभी प्रविष्ट हुई थी, जब मेरी चित्तवृत्ति एक प्रेरणा देती– कदाचित् सँवारनेसे, शृङ्गार धारण करनेसे मैं सुन्दरी हो जाऊँ, मैं सुन्दर दीखने लग जाऊँ। तनिक-सा ही भान करा दे दर्पण अपने प्रतिबिम्बमें मुझे – 'अरी राधा! आज किञ्चित्-सी सौन्दर्यकी रेखा तेरे मुखपर आयी है।' और मैं नवीन परिधान धारण भी तभी करती थी, विभिन्न आभरणोंका चाकचक्य तभी स्वीकार करती थी, चन्दनका विलेपन मुझे छू सके– यह अनुमति मैं तभी देती थी, जब मुझे क्षणिक भ्रान्ति होने लगती थी– हो सकता है, ये वसन-भूषण-चंदन मेरे कुरूपको आवृत कर दें। मेरे प्राणनाथ नीलसुन्दरको आधे क्षणके लिये मेरा यह कुरूप सुखदान कर सके। और अपने अंदर सद्गुणोंके आविर्भावके लिये मैं अपनी इन सहचरियोंका ध्यान किया करती थी– इस आशासे कि इनकी छाया भी मैं छू लूँ, इनके आदर्श गुणोंका एक स्वल्प, झीना प्रतिबिम्ब भी मेरे अंदर संक्रमित हो जाय..।'' ।।१०१६।।

'होता था किंतु सदा ही यह अनुभव न, बनी मैं हूं, प्रियतम!
गुणवती, सुरूपा, जिसको तुम दे दो सब कुछ अपना, प्रियतम!
इतने पर भी था प्यार मिला मुझको तुमसे ऐसा, प्रियतम!
जो ले न सकी अबतक कोई, आगे तुम ही जानो, प्रियतम'।।१०१७।।

''किंतु सदा, सर्वथा, सर्वांशमें मुझे यही अनुभव होता आया था, आया है कि मैं गुणवती, सुरूपा बन ही नहीं सकी, जिसे तुम अपना सर्वस्व-दान कर सको। इतनेपर भी तुम्हारे द्वारा मुझे यह प्यार मिला था, जिसे अबतक कोई भी ले नहीं सकी। अनादि प्रवाहमें किसी भी गोप-सुन्दरीके प्रति तुम्हारे द्वारा वह प्यार-दान हुआ ही नहीं। आगे होगा या नहीं, इसे तो तुम्हीं बता सकोगे, मेरे प्राणनाथ........!'' ।।१०१७।।

अतएव सत्य ही हो यदि तुम मुझसे अब विलग हुए, प्रियतम!
उस राजा की नगरी में जा बस गये कहीं पर हो, प्रियतम!
मिल गयी सङ्गिनी हो तुमको कोई मनभायी-सी, प्रियतम!
है भाग खुला तब तो मेरा, सुखिया हूं आज हुई, प्रियतम'।।१०१८।।

''अतएव यदि यह सत्य है कि तुम अब मुझसे पृथक् हो गये हो और उस राजाकी नगरीमें जाकर सचमुच ही कहीं निवास करने लगे हो और सचमुच तुम्हारी रुचिके अनुरूप कोई जीवन-सङ्गिनी तुम्हें प्रप्त हो गयी है, अहा! तब तो आज– आज मेरा भाग्योदय हुआ, खुल गया मेरा भाग्य! और सचमुच आज प्रथम बार मैं सुखिनी हुई हूँ.......।'' ।।१०१८।।

''विधि ने मेरी विनती सुन ली, आखिर तुम चेत सके, प्रियतम!
मेरे प्रति जो था मोह महा, छूटा फंदा उसका, प्रियतम!
प्राणाधिक! भूल सके हो यदि सचमुच इस दासी को, प्रियतम!
दे प्यार किसी को, नाथ! अहा! कितने सुख में होगे, प्रियतम'' ।।१०१९।।

''विधिने मेरी विनती सुन ली– तुम जाग उठे, चेत गये तुम। मेरे प्रति जो महामोहका पाश तुम्हें बद्ध किये था, वह छिन्न-भिन्न हो गया– टूट गया वह.. अहा! प्राणाधिक! मेरे नीलसुन्दर! यदि सचमुच ही तुम अपने अन्तर्हृदयका प्यार किसीको देकर मुझे भूल गये हो– अपने स्मृतिपथसे दूर फेंक चुके हो मुझे,

तो अहा! तुम कितने सुखमें होओगे, मेरे जीवनसर्वस्व! कितने असीम सुख-सिन्धुमें तुम अवगाहन कर रहे होगे, प्राण-रमण..........!''।।१०१९।।

"दे रही कल्पना ही जब यह सुख है अपार मुझको, प्रियतम!
हो जाय कहीं यह सत्य, भला, फिर तो क्या है कहना, प्रियतम!
लगता है किंतु असंभव यह, तुम भूल सको मुझको, प्रियतम!
है पता अनादिकाल से कुछ तुम हो कैसे, मेरे प्रियतम"॥१०२०॥

''देखो,सही! यह मैं कल्पना ही तो कर रही हूँ! पर जब यह कल्पना ही मुझे इतना अपार सुखदान कर रही है, तब कहीं यह सत्य हो जाय, फिर तो क्या कहना है ..यही तो मेरे जीवनकी साध थी, है –'प्रियतम प्राणनाथ नीलसुन्दर मुझे भूल जायँ......।''

''किन्तु असम्भव है यह होना, प्राणाधिक! तुम मुझे भूल सको– यह न हुआ है, न होगा। मैं कालके अनादि प्रवाहमें परिचित हूँ तुम्हारे स्वभावसे– तुम्हारी चित्तवृत्तिकी ऊर्मियोंसे। मैं जानती हूँ, तुम कैसे हो प्रियतम ....!''।।१०२०।।

"जो दूत बना है, उससे, या अनुताप लिये उरमें, प्रियतम!
कहती है जो मुझसे री! 'वे हैं चले गये' उससे, प्रियतम!
कहती हूँ, 'अच्छा, सुनो तनिक, पर मत कहना, सबसे' प्रियतम!
'जीवन है क्या, जाकर देखो उनका, जुड़कर मुझसे'' प्रियतम॥१०२१॥

भानुकिशोरीके मुखपर अरुणिमाका सञ्चार हो आया, उन्मादकी लहर आँखोंमें नाच उठी और वे दृष्टि घुमा-घुमाकर देखने लगती हैं वनस्थलकी लता-वल्लरियोंकी ओर...और फिर आकाशकी ओर, मानो किसीको ढूँढ रही हों उनकी आँखें। एक अट्टहास फूट पड़ता है उनके अधरोंके अन्तरालसे और फिर नीरवताके क्षणिक आवरणमें उनकी आँखें निमीलित हो जाती हैं। तथा निमीलित नेत्रोंसे ही बिना किसी लक्ष्यके वे कहने लगती हैं–

''तो कोई दूत बनकर आया है! अच्छा, अरे दूत! तुमसे कह रही हूँ, भला, और उनसे, उनसे जो अगाध परिताप लेकर मुझसे कहा करती हैं– उन सहचरियोंसे बस, तुम दोनोंसे ही कह रही हूँ, और किसीसे नहीं, भला! पर तुम इसे प्रकट मत करना किसीके समक्ष। अच्छा, तो सुनो! तुम सब-की-सब और, दूत! तुम भी चले जाओ, नीलसुन्दर– मेरे प्राणनाथके समीप और जाकर स्वयं देख लो– क्या दशा है उनकी, मुझसे जुड़े रहनेके कारण। मेरे प्राणवल्लभके जीवनका रूप क्या हो गया है, मुझसे सम्बद्ध होकर, यह स्वयं जाकर देख लो तुम दोनों।''।।१०२१।।

'वक्षःस्थल की धड़कन में है, बस, नाम भरा मेरा;' प्रियतम!
'आँखों की काली पुतली में हूँ भरी हुई मैं ही;' प्रियतम!
'उनके प्रत्येक रोम में हूँ परिपूरित केवल मैं;' प्रियतम!
'उनकी प्रत्येक वृत्ति में है इस दासी का मुख ही;' प्रियतम॥१०२२॥

''देखो! सीधे उनके सामने खड़ी हो जाना, खड़े हो जाना, अपनी अंगुलियोंको उनके वक्षःस्थलके बीच स्थापित कर देना। तुम्हारी अंगुलियाँ सुनने लगेंगी, कर्ण-रन्ध्रोंकी तो बात ही क्या है, तुम्हें स्पष्ट सुन पड़ेगा, वक्षःस्थलकी प्रत्येक धड़कनमें 'राधा-राधा-राधा' – यही स्वर स्पन्दित हो रहा है। और फिर क्या करना ? – आँखोंकी, उनके नयन-सरोजोंकी काली पुतलियोंकी ओर अपनी दृष्टि केन्द्रित कर देना। देखो,

तुमको वहीं, तुरंत प्रत्यक्ष दीख जायेगा– उन नयन-सरोजोंकी काली पुतलियोंमें तुम्हें अपना प्रतिबिम्ब नहीं दिखेगा, अपितु वहीँ, मैं बस, इसी रूपमें, ज्यों-की-त्यों, खड़ी दीखूँगी। नयन-सरोरुहोंके असित-सित अंशोंके कण-कणमें 'मैं-ही-मैं, मैं राधा, मैं ही-मैं, मैं राधा, मैं-ही-मैं, मैं राधा, मैं-ही-मैं, मैं राधा, भरी हुई मिलूँगी। और फिर अपनी दृष्टि उनके श्रीअङ्गकी रोमावलीपर केन्द्रित करना– प्रत्येक रोममें ही मैं परिपूरित मिलूँगी। प्रत्येक रोममें मेरा ही रूप तुम्हें अभिव्यक्त मिलेगा। फिर देखना– जहाँ वे विराजित हों, जिस वृक्षके नीचे वे अवस्थित हों, जिस कक्षके जिस पार्श्वमें वे सुशोभित हों, उसके कण-कणमें, उस वृक्षके क्षुद्र-से-क्षुद्र अंशमें, उस कक्षके प्रत्येक परमाणुमें मैं-ही-मैं, मैं राधा, री, अरे दूत! मैं राधा, इसी-इसी राधाका मुख झलमल करता दीखेगा तुम्हें! क्योंकि उनकी प्रत्येक वृत्तिमें मेरे अतिरिक्त किसीका अस्तित्व है ही नहीं। सुनते हो, ऐसा है उनका और मेरा सम्बन्ध....।''।।१०२२।।

'कोई है छिपी शक्ति उनमें, जिससे कोई उनको'; प्रियतम!
'पहचान नहीं पाता, तुम भी भोले हो या भोली'; प्रियतम!
'उनका मेरा वियोग होना सम्भव है नहीं कभी'; प्रियतम!
'रोते-रोते धुलकर आँखें यह सत्य सुलभ होगा।' प्रियतम?।।१०२३।।

''किंतु एक बात अवश्य है– उनके अन्दर कोई शक्ति है, भैया दूत रे, और बहिनों! कोई छिपी हुई शक्ति है उनमें। इसीलिये उन्हें कोई पहचान ही नहीं पाता। दूत! तुम भी बड़े भोले हो और बहिनों! तुम और भी भोली हो। दूत! सुनो– बहिनों! सुनो– उनका और मेरा वियोग होना असम्भव है। पर इसे जान लेना भी आसान नहीं है, इसे अनुभव कर लेना बड़ा ही कठिन है। निरन्तर निर्बाध क्रन्दनके द्वारा जब तुम्हारी आँखोंका मल सर्वथा धुल जायेगा, तभी-तभी यह सत्य सामने आयेगा। और एक बार उस सत्यको अनुभव कर लेनेपर वह सत्य तुम्हारा चिरसङ्गी बन जायेगा। तुम्हारे लिये वह सुलभ-से-सुलभ वस्तुका रूप धारण कर लेगा।''।।१०२३।।

'रोती क्यों हूँ फिर मैं, इसका कुछ मर्म बताती हूँ'; प्रियतम!
'संकोच नहीं है तनिक मुझे इसके कह देनेमें'; प्रियतम!
'क्रन्दन अनादि यह है मेरा, होगा न अन्त इसका'; प्रियतम!
'तुम समझ सको तो लो समझो जीवन यह है मेरा।' प्रियतम।।१०२४।।

''अच्छा! तुम्हारे अंदर जिज्ञासा उत्पन्न हो गयी– तुम सब मेरी इतनी-सी बातपर विश्वास न कर सके और जानना चाहते हो कि 'तब फिर मैं रोती क्यों हूँ।' ठीक ही तो है– जब प्रियतम निरन्तर मेरे साथ हैं, उनका-मेरा वियोग होगा नहीं तो ''मैं रोती क्यों हूँ''– यह भ्रम होना स्वाभाविक है। दोनों बातें साथ कैसे होंगी ?''

''बड़ा ही अद्भुत मर्म है उसका। आज मैं निर्लज्ज हो गयी हूँ, इसीलिये बताती हूँ। नहीं तो नहीं बताती। अब क्या, क्यों, किससे सङ्कोच करूँ ? इसीसे कह दे रही हूँ। देखो, मेरा यह क्रन्दन अनादि है और इस क्रन्दनका कभी विराम भी नहीं होगा। अनन्त कालतक निरन्तर यह क्रन्दन चलता ही रहेगा। ऐसा क्यों? तुम समझ सकोगे ? बतला दूँ ? अच्छा, समझ सको तो समझ लो, जान लो, देख लो। यह क्रन्दन ही मेरा जीवन है, यही मेरा रूप है। मेरा जीवन अनादि अनन्त क्रन्दन है!...''।।१०२४।।

'है प्रेम-पाठशाला उरमें, पढ़ती थी, हूँ पढ़ती; प्रियतम !
'है प्रथम पाठ, उच्चारण कर लिखना उन वर्णों को; प्रियतम !
'खड़ियामिट्टी से नहीं, अश्रु भीतर से आता है; प्रियतम !
'गोली-सी काँचमयी बनकर, अक्षर लिख जाता है; प्रियतम ॥१०२५॥

भानुकिशोरी पुनः अट्टहासकर देखने लगीं सरोवरके फेनिल जलकी गतिको। और फिर यन्त्रवत् अपना सिर दोलितकर बोलने लग गयीं– ''अरे दूत! तुम स्मरण रख सकोगे मेरी इन बातोंको....? तो क्या करूँ ? अच्छा, कुछ सुन लो। जितना-सा अंश तुम्हें सिखा दे रही हूँ। सुनो! सीखोगे उस कलाको ? देखो, मेरे उरःस्थलमें एक पाठशाला है– कब निर्माण हुआ इस पाठशालाका, जानती नहीं! पर मैं उसीमें न जाने कबसे पढ़ रही थी और आज भी उसमें ही पढ़ती हूँ। मैंने अपने-आपसे पूछा था– 'इस पाठशालाका नाम क्या है ? कोई उत्तर न दे सका। तब हारकर वहीं अपने प्राणनाथ नीलसुन्दर, जो मेरे हृत्तलमें ही निरन्तर विराजित रहते हैं, उनसे पूछ बैठी मैं। उत्तरमें वे बोले नहीं, पर उनके नयन-सरोजोंसे अश्रुकी बूँदें ऐसी ढलक पड़ीं कि मुझे उस पाठशालाके नामका भान हो गया। उस पाठशालाका नाम है– 'प्रेम-पाठशाला'। तुम्हारे लिये यही नाम सुबोध हो सकेगा।''

''तो मैं उसीमें पढ़ रही हूँ। उसका प्रथम पाठ है– वर्णमालाका उच्चारण करके उन वर्णोंको लिखना। देखो! पर तुम्हें तो मैं वर्णमालाका एक ही नाम बताऊँगी। सुनो– 'कृष्ण' – इस वर्णका उच्चारण करते-करते शेष सम्पूर्ण वर्णमालाका तुम्हें भान हो जायेगा। फिर तुम उस वर्णमालाकी आकृतियोंको, उनके रङ्गोंको अपने हृत्तलपर अङ्कित करते जाना। मैं यही करती हूँ, यही करती थी।''

''देखो! उस कृष्णवर्णके अन्तरालमें अरुणाभवर्ण बीस नखमणियाँ दीखेंगी। उनपर वृत्ति केन्द्रित होते ही फिर एक अभिनव नारङ्गवर्णकी छटा व्यक्त होगी– कहाँ, कैसे, तुम स्वयं समझ लोगे। इन दोनों वर्णोंको अपने हृत्पटलपर मैं निरन्तर लिखती रहती थी; तुम भी लिखते रहना, भला।''

''इसके पश्चात् एक पीतवर्णके दर्शन होंगे– सर्वथा अभिनव है वह पिङ्गलवर्ण! तुम निरन्तर उसे भी अपने हृत्पटपर बसाये रहना। फिर इसके अनन्तर एक हरिद्वर्ण समुद्भासित होगा– क्यों, कैसे, तुम स्वयं जान लोगे। बतलानेमें संकुचित हो रही हूँ, दूत! पर इसे तुम प्रमुख स्थान देना, भला! वृत्ति हटे ही नहीं इससे! लिखते-लिखते श्रान्त कभी मत होना। फिर व्योमवर्ण, नीलवर्ण और वृन्ताकवर्ण– ये सब-के-सब उदित होंगे। अविरामभावसे 'कृष्ण-कृष्ण' उच्चारण करते रहना और इन वर्णोंकी आकृतिका निर्माण करते रहना। किंतु सावधान! खड़िया मिट्टीसे नहीं, इसके लिये तुम्हारे अन्तस्तलसे अश्रुकी बूँदें निःसृत होंगी। काँचकी भाँति गोल-गोल बूँदें व्यक्त होती रहेंगी और तुम लिखते रहोगे उन वर्णोंको। अक्षरका ज्ञान इतनेमें ही तुम्हें हो जायगा। सम्पूर्ण प्रीति-पाठशालाके मातृका-वर्ण इन्हीं वर्णोंमें पर्यवसित हो जायेंगे। फिर समझ पाओगे, दिनकरकी रश्मियोंमें इन्हीं वर्णोंकी छायाकी छायाकी छाया प्रतिभात हो रही है।...''॥१०२५॥

'अक्षरका बोध हुआ जिसको, लिखती है शब्दों को; प्रियतम !
'सीधे-सीधे रजताभ तनिक उन वारि-बिन्दुओं से; प्रियतम !
'संयुक्त हुए फिर आते हैं बनकर सरसीले वे; प्रियतम !
'आँखों की स्वर्णकणावलि से लिखकर पढ़ती वह है; प्रियतम ॥१०२६॥

''जब तुम्हें अक्षरका बोध हो जायगा, तब जानते हो, द्रश्य-प्रपञ्चकी सत्ता सर्वथा तुम्हारी आँखोंसे विलुप्त हो जायेगी। एक सत्य, एक ज्ञान, एक आनन्द – एकरस सम्पूर्ण सत्य, एकरस सम्पूर्ण ज्ञान, एकरस सम्पूर्ण आनन्दकी बात तुमने कभी सुनी होगी न ? उसे तो तुम घलुएमें प्राप्त कर लोगे। जो हो, बड़ी सावधानीसे इस प्रक्रियाका आश्रय लेकर वर्णोंको अङ्कित कर लेना सदाके लिये अपने उरःस्थलके अन्तरतम देशमें।..''

''अब आगे सुनो– जिसे अक्षरका बोध हो जाता है, जो वर्णमाला सीख जाती है, वह फिर शब्दोंको लिखती है। जानते हो, एक तो षड्जका शब्द आयेगा, एक ऋषभका, एक गान्धारका, एक मध्यमका, एक पञ्चमका, एक धैवतका और एक निषादका। पर यह शब्द-नामावली उस शब्दकी छाया-की-छाया है, भला! उन शब्दोंके लिये भी कोई नाम ही नहीं, रे दूत! क्या बताऊँ ? पर जैसे, जिस भाँति मैं समझी थी, पाठ पढ़ पायी थी, वैसे ही, उसी भाँति तुम समझ सको, इसलिये ही इतना-सा कह दे रही हूँ। कालके प्रवाहमें कब, कैसे, कितना इस प्रक्रियाका आश्रय मैंने स्वयं लिया, जानती नहीं, दूत! बस, तुम मेरे संदेशको स्मरण कर सको, इसीकी कला सिखानेके उद्देश्यसे मैं इतना कह दे रही हूँ। अस्तु,''

''इसे सीखनेकी प्रक्रियामें भी रजताभ वारि-बिन्दु तुम्हारे नयनोंसे निरन्तर सृष्ट होते रहेंगे और शब्दोंको लिखना सीख जाओगे तुम। एक बाँसके खण्डसे ही ये सब शब्द निकले हैं, भैया! कैसा होता है उस खण्डसे निःसृत शब्द– इसे तुम अनुभव करना। वाणी क्या बतलायेगी उसे...''

''अब इसके अनन्तर संयुक्त वर्णोंका भान होगा तुम्हें। कैसे वे संयुक्त वर्ण होते हैं, उन्हें सुनकर तो तुम सीख नहीं सकोगे। पर लिखनेका अभ्यास अवश्य करना उन्हीं रजताभ बिन्दुओंके माध्यमसे। ये संयुक्त वर्ण बहुत ही सरस होते हैं, दूत! फिर आगे चलकर उन्हें लिखनेके लिये अपने-आप स्वर्णिम कणावली झरती रहेंगी तुम्हारी आँखोंसे। तुम लिख-लिखकर पढ़ते रहना उन संयुक्त वर्णोंको।''।।१०२६।।

'अब है विधेय-उद्देश्यमयी वह भावपंक्ति आती;' प्रियतम!
'रहता है गूढ़ अर्थ निरुपम अज्ञात किंतु उसका;' प्रियतम!
'जो है विशुद्ध वह सत्वमयी अविराम नयनधारा;' प्रियतम!
'लिखते-लिखते उससे सबकी ताली मिल जाती है?' प्रियतम।।१०२७।।

''अब विधेय-उद्देश्यमयी उस भावपंक्तिका पाठ आरम्भ होगा। किंतु उस पाठका अर्थ इतना गूढ़ रहता है, जिसे तुम जान ही नहीं सकोगे। अज्ञात रहेगा उस पाठका गूढार्थ।''

''इसके अनन्तर कुछ दिन प्रतीक्षा करते रहना। अपने-आप विशुद्ध सत्त्वमयी नयनोंकी अविराम धारा व्यक्त होगी और उसीसे लिखते-लिखते सम्पूर्ण पाठोंकी कुञ्जी तुम्हें प्राप्त हो जायेगी।''।।१०२७।।

'है हेतुरहित जो सूक्ष्म, अमल, वह महाभाव विद्या;' प्रियतम!
'प्रतिपल है जो बढ़ती, अखण्ड, सीमाविहीन जो है;' प्रियतम!
'वस्तुतः अनिर्वचनीय सदा अनुभवमय है गहरी;' प्रियतम!
'अभिनव सुन्दर 'अथ' है उसका कहने के लिये यहीं;' प्रियतम।।१०२८।।

''इसके पश्चात् क्या होगा, तुम्हें बताऊँ ? एक होती है महाभावविद्या, जो अबतक तुमने पढ़ी नहीं है दूत! वह विद्या कैसी होती है, तुम्हें बता दूँ ? अच्छा, सुनो! उस विद्याके आविर्भावमें किसीको अबतक हेतुका अनुसंधान प्राप्त नहीं हुआ है। बड़ा ही सूक्ष्म है वह। मलकी गन्ध-की-गन्ध नहीं है वहाँ– इतनी अमल

है वह महाभावकी विद्या; और वह है प्रतिक्षण वर्धनशील। उसमें खण्डित होनेका कहीं भान नहीं होता। वह सर्वथा अखण्ड है। सीमाविहीन है वह। आजतक कोई भी उसका पार न पा सकी, न पा सका। और देखो! वाणी छू भी नहीं सकती उसे। सर्वथा, सर्वांशमें वह स्वसंवेद्य है। बड़ी ही गम्भीर है वह, भला! उस महाविद्याका 'अथ', सो भी कहनेके लिये, इस विशुद्ध सत्त्वमयी धाराके बिन्दुपर ही अवलम्बित है। उसी 'अथ'– को स्पर्श कर अब तुम अग्रसर होओगे।....''।।१०२८।।

'आगे क्या है, कोई भी क्या कह सकती है इसको ; प्रियतम!
आगे जाकर जो डूब गयी, फिरती है क्या पीछे, प्रियतम!
कहती है जो जितना कुछ भी, है बात इधर की ही ; प्रियतम!
कहनेवाली मुझ-सी सचमुच है डूबी हुई नहीं;' प्रियतम।।१०२९।।

''इसके पश्चात् क्या है, इसे तो कोई भी नहीं कह सकती। और सत्य तो यह है कि जो आगे जाकर उसमें निमग्न हो गयी, वह कभी लौटती ही नहीं। जो भी, जो कुछ भी, कोई कहने चलती है, वह इधरकी ही बात है, दूत! मेरी भी यही दशा है– मुझ-सी कहनेवाली उस महाभावविद्याके समुद्रमें कभी डूबी ही नहीं।'' ।।१०२९।।

इतना कहती-कहती बाला आकुल हो दौड़ चली, प्रियतम!
श्यामल तमालकी शाखाको कर में लेकर बोली, प्रियतम!
'जीवनधन! चलो, वहाँ, अब तुम, है जहाँ स्रोत नीला, प्रियतम!
दी थी तुमने जो यह तुमको पहनाऊँगी माला, प्रियतम'।।१०३०।।

इतना कहते-कहते भानुकिशोरीमें एक अभिनव आकुलताका उन्मेष हुआ। वे दौड़कर चल पड़ती हैं। सम्मुख ही श्यामल तमालकी शाखा भानुकिशोरीके सिरपर झूल-झूलकर मानो कुछ कहना चाहती है। उसे किशोरीने अपने दक्षिण कर-सरोजमें ले लिया। किशोरीको भान हो रहा है– सामने नीलसुन्दर खड़े हैं; मैं उनके कर-कमलोंको अपने करमें धारण किये हुए हूँ। साथ ही गद्गद कण्ठसे भानुनन्दिनी बोलती भी चली जा रही है– ''मेरे जीवनकी एकमात्र निधि! चलो, अब तुम चलो! कहाँ ? वहाँ, वहाँ, वहाँ, उस नीले स्रोतके कूलपर। यही, यही माला जो तुमने मुझे दी थी, पहनाई थी, उसीको मैं वहाँ, उसी स्थलपर तुम्हें पहना दूँगी।'' ।।१०३०।।

'हूँ आर्द्र किये रहती इसको नयनों की बूँदों से, प्रियतम!
मुरझा न उठे यह किंचित् भी, इस भय से भीत हुई, प्रियतम!
हूँ सीख सकी अब तक मैं यह केवल इतना-सा ही, प्रियतम!
"जो वस्तु मिले तुम से उसको वैसी ही है रखनी;" प्रियतम'।।१०३१।।

''देखो, मैं इसे अपने नयनोंकी बूँदोंसे आर्द्र किये रहती हूँ– कहीं यह मुरझा न उठे, म्लान न हो जाय। तनिक भी इसमें परिवर्तन न हो, इसी भयसे मैं इसे अपने आँखोंकी बूँदोंसे सिक्त करती रहती हूँ। अबतक इस पाठशालामें मैं केवल इतना-सा ही सीख सकी हूँ– 'जो वस्तु तुमसे प्राप्त हो, उसे वैसे ही, उसी रूपमें रखना है।''।।१०३१।।

'पर नाथ! मुझे लेकर तुमको जाना है इस वनसे, प्रियतम!
ठहरी क्यों हूँ फिर मैं, अच्छा, कह देती हूँ यह भी, प्रियतम!
यह माला ही बन्धन है, मैं देकर किसको जाऊँ, प्रियतम!
कोई न मिली मुझको ऐसी, कर पर जिसके रख दूँ, प्रियतम'॥१०३२॥

''तो अब चलो – तुम्हें तो चलना ही है; इस वनसे दूर-दूर चले जाना है तुम्हें, और मुझे साथ ही लेकर जाना है, भला! चिरसंगिनी हूँ मैं तुम्हारी। अच्छा, तुम रूठ गये हो ? मैं विलम्ब कर बैठी, इसलिये तुम मुझसे खिन्न हो बैठे हो ? सुन लो– मैं क्यों ठहरी, इसका हेतु बतला दे रही हूँ। अरे! प्रत्यक्ष देख लो – यह माला ही तो मेरा बन्धन है! मैं इसे किसके हाथोंपर रखकर जाऊँ, किसे पहनाकर जाऊँ ? ऐसी अबतक कोई भी मुझे न मिली, जिसके करतलपर इसे प्रतिष्ठितकर भाग चलूँ – तुम्हारे साथ उस नीले स्रोतकी ओर – इस वनस्थलके उस पार, उस पार, अत्यन्त दूर।''॥१०३२॥

'है नहीं' फेंक देना सम्भव इसको, न साथ लेना, प्रियतम!
इसमें, तुममें है भेद नहीं, थी जुड़ी उरस्थल से, प्रियतम!
मैंने देखा, हूँ देख रही, कण-कण में तुम इसके, प्रियतम!
हो भरे हुए तुम ही हो या यह बनकर खेल रहे, प्रियतम'॥१०३३॥

''इसे मैं फेंक दूँ, यह भी सम्भव नहीं है मेरे लिये और इसे साथ ले जाऊँ, यह भी सर्वथा असम्भव है। इसे फेंक भी नहीं सकती, साथ भी नहीं ले जा सकती – कैसी उलझन है मेरे लिये ? देखो, मैंने इसमें और तुममें कभी भेदका अनुभव किया ही नहीं क्योंकि यह माला तुम्हारे उरःस्थलसे जुड़ी रही है। मैंने देखा है, प्रत्यक्ष देख रही हूँ – इसके कण-कणमें तुम विराजित हो रहे हो। अथवा और भी सुस्पष्ट कहूँ तो कह सकती हूँ – तुम्हीं, तुम्हीं यह माला बनकर मुझसे खेल रहे हो।''॥१०३३॥

'हूँ सोच रही इनकी ही यदि वह उक्ति सत्य निकले, प्रियतम!
फिर भी तुम तो आओगे ही, आकर पर जो देखो, प्रियतम!
माना था प्राणेश्वरी जिसे, है फेंक दिया उसने, प्रियतम!
वह हार बना था जो मैं ही, आकुल कितने होगे, प्रियतम'॥१०३४॥

''मेरी परिस्थितिको सोचकर देखो, तब न! मैं क्या सोच रही हूँ, इसपर तो बिचार करो। मेरी बुद्धिका अध्यवसाय विलुप्त हो चुका है और इसीलिए रह-रहकर सोचने लग जाती हूँ – 'कहीं इन सहचरियोंकी ही उक्ति सत्य हो, तुम सचमुच ही चले गये हो, तो, तो, तो क्या होगा ?' यही होगा कि तुम अवश्य, अवश्य, अवश्य लौटोगे और यहाँ आकर यदि यह देखोगे – इस मालाको, हाय रे! जिसे मैंने प्राणेश्वरी माना था, अनुभव किया था, उसीने अपने हाथोंसे फेंक दिया है – उस हारको फेंक दिया, जिसके रूपमें मैं स्वयं ही मूर्त हूँ! सोचो तो सही, तुम कितने व्याकुल होओगे, प्रियतम! इस प्रकारकी अनुभूति करके।''॥१०३४॥

'पगली थी, भोली थी, दुखिया,' कहकर कुछ ऐसे ही, प्रियतम!
तुम लौट चले जाने वाले होते यदि पुनः कभी, प्रियतम!
होती न मुझे इसकी चिन्ता, जाती मैं चली कभी, प्रियतम!
रोओगे पर तुम तो ऐसा, फट जाय हृदय नभ का, प्रियतम॥१०३५॥

''..हाय रे! यदि इतनी ही बात होती कि तुम अन्यमनस्क होकर उस स्थितिमें ऐसा सोच लेते – 'अरे! वह पगली थी! भोली थी!! दीन थी!!!' और ऐसी ही कोई उक्ति तुम्हारे मुखसे निस्सृत हो जाती और तुम उलटे पाँव लौट जाते अपने देशमें– ऐसी सम्भावना होती, मुझे निश्चय होता कि वे मेरे प्राणनाथ ऐसे ही कर लेंगे, तब तो हे मेरे जीवनसर्वस्व! मुझे इसकी चिन्ता न होती और मैं कबकी चली गयी होती। किंतु मैं, मैं निरन्तर अनुभव कर रही हूँ – उस स्थितिमें तुम्हारा क्रन्दन इतना भीषण होगा, इतना प्रलयङ्कर होगा कि तुम्हारे क्रन्दनसे इस व्योमका हृदय भी विदीर्ण हो जायेगा।''।।१०३५।।

'मुरझा जब धूल सनी माला अवनी पर पड़ी हुई, प्रियतम !
कह देगी मेरी बात बिदा हो जाने की तुमसे, प्रियतम !
मानिनी हुई इन कुञ्जों में हूँ छिपी नहीं अब मैं, प्रियतम !
अब दूर, दूर, अत्यन्त दूर जा चुकी अकेली हूँ, प्रियतम'।।१०३६।।

''...प्राणरमण! कल्पना करो – धूलमें सनी हुई माला मुरझायी हुई आकृतिसे धरापर चेतनाशून्य-सी पड़ी तुमसे कहीं सङ्केत कर बैठी – 'व्रजके देवता! चली गयी वह, वह चली गयी' और इस प्रकार मेरे बिदा हो जानेकी वृत्तिने तुम्हें स्पर्श कर लिया और तुम सोच बैठे – 'हाय रे! अब मेरे प्राणोंकी रानी मानिनी होकर कहीं इन कुञ्जोंमें छिपकर नहीं बैठी है – अब तो दूर-दूर, अत्यन्त दूर, एकाकिनी चली गयी है।'' ।।१०३६।।

'उस ओर जिधर जाकर कोई है लौट नहीं पायी, प्रियतम !
है कहीं नहीं इतिहासों में ऐसा वर्णन मिलता, प्रियतम !
जीवित रह जाओगे क्या तुम रहने के लिये यहाँ, प्रियतम !
उस महाप्रलय को भ्रमसे भी मैं सोच नहीं सकती, प्रियतम'।।१०३७।।

''ओह! उस ओर, जिस ओर, जिस ओर जाकर कभी कोई लौटी ही नहीं, लौटा ही नहीं, इतिहासके पन्नोंमें, इतिवृत्तके चित्रोंमें कहीं इस प्रकारकी कोई गन्ध किसीको अबतक मिली ही नहीं कि कोई भी उस ओरसे लौटी हो, लौटा हो – उस समय तुम, तुम क्या यहाँ आवास-निर्माण करनेके लिये, बसनेके लिये, जीवित रहोगे, प्राणरमण!''

'' – अरे, चुप, चुप, चुप। इस महाप्रलयकी कल्पनाको भी भ्रमसे भी मैं अपने चित्तमें नहीं आने दूँगी, आने नहीं दूँगी, नहीं आने दूँगी।''।।१०३७।।

''कोई कह दे, 'फिर भोली री! क्यों साथ न ले जाती'? प्रियतम !
वह समझ नहीं पाता कुछ भी रस-रीति अतः कह ले, प्रियतम !
है नहीं कभी उसने देखा मेरा मिलना तुमसे, प्रियतम !
होता है निरावरण कैसा राका की रजनी में, प्रियतम''।।१०३८।।

फटी आँखोंसे भानुकिशोरी निरावरण आकाशकी ओर देखने लग जाती हैं। और फिर कुछ ही क्षणों के अनन्तर हास्यकी एक उन्मादभरी रेखा स्फुट रूपमें उनके होठोंपर व्यक्त हो उठती है! बायें-दाहिने, ऊपर-नीचे देखती हैं। पलकें स्पन्दित होती हैं और फिर कुछ बड़-बड़-सी करने लगती हैं। स्वर स्पष्ट सुन नहीं पड़ता। फिर ताली पीटकर अचानक बोल उठती हैं – ''अच्छा! तुम उपदेश देने आये हो ? नहीं नहीं, जिज्ञासाकी मुद्रा है तुम्हारे मुखपर तो! तो, कोई तो नहीं है यहाँ! तब किसने यह प्रश्न पूछा मुझसे ? किसीने

पूछा होगा, क्यों, यही तो पूछ रहे हो तुम ? – 'क्यों री, भोली ? इस मालाको साथ क्यों नहीं ले जाती? इतना ऊहापोह तुम्हारे चित्तमें क्यों ?' – यही तो जानना चाहते हो ? तो सुनो, सुनो – जो भी हो, ऐसे जो पूछती है या पूछता है, उससे कह रही हूँ, भला! क्षमा करना, क्षमा कर दे वह मुझे। वास्तवमें ऐसा कहनेवाली, ऐसा कहनेवाला जानती ही नहीं, जानता ही नहीं कि रसकी रीति क्या होती है! अरे! उसने कभी देखा ही नहीं प्राणनाथ! कभी उसकी आँखोंमें यह अभिव्यक्ति हुई ही नहीं कि राकाकी रजनीमें मेरा और तुम्हारा निरावरण मिलन कैसा होता है, कैसा होता है, कैसा होता है ......''

''इसलिये जो, जैसी सलाह देना चाहे, दे दे, सुन लूँगी।''।।१०३८।।

'अपनी ग्रीवा में जब तक तुम माला को थे पहने, प्रियतम !
थे सभी कुसुम अविकृत इसके आवरणहीन हँसते, प्रियतम !
अपनी इस दासी को तुमने पहना दी, इससे ही, प्रियतम !
मैं थी जैसी, ये फूल बने, पड़कर छाया मेरी, प्रियतम'।।१०३९।।

विरक्त-सी हुई किशोरी किञ्चित् रूखी-सी होकर बोल उठती हैं अब – ''छोड़ो, क्या करना है! तो, प्राणनाथ! मैं तो तुमसे बात कर रही थी। क्या-से-क्या बोल जाती हूँ! कोई तो नहीं है, तुम्हीं तो हो। तो मैं क्या कह रही थी ? अच्छा तो, जबतंक इस मालाको तुमने अपनी ग्रीवामें झुला रखा था, अहा! तबतक इसके सभी कुसुम सर्वथा अविकृत थे, अविकृत थे। और कैसी आवरणहीन हँसी इनके होंठोंपर थी प्राणरमण! देखो, बड़ी भूल की तुमने! तुमने इस मालाको, अपनी इस दासी मुझे, मुझ राधाको पहना दिया – बड़ी भूल की। परिणाम क्या हुआ, स्पष्ट देख लो! मैं जैसी थी, उसके अनुरूप ही मेरी छाया सृष्ट हुई, उनपर पड़ी और ये सुमन उसी साँचेमें ढल गये...।''।।१०३९।।

'जो देख रहे तुमको थे वे प्रतिबिम्ब-गृहीत हुए, प्रियतम !
परछाँही अधिक लगी प्यारी, भूला स्वरूप उनको, प्रियतम !
अभिमान भरी मैं तुमसे थी आराधन करवाती, प्रियतम !
अपने शरीर का दोष अतः इनमैं ही वह आया, प्रियतम'।।१०४०।।

''जो निरन्तर तुम्हें देख रहे थे, वे दुर्दैववश प्रतिबिम्बगृहीत हो गये। हाय रे! उन्हें प्रतिबिम्ब अधिक प्रिय लगने लगा, अधिक आकर्षित करने लगा। और इस प्रकार उन्हें, उन सुमनोंको अपने स्वरूपकी विस्मृति हो गयी। अभिमानमें निमग्न, सुनते हो, सुनते हो, प्राणनाथ ? अभिमानमें भरी मैं तुमसे अपने इस महामलिन नश्वर शरीरका आराधन करवाती थी, और इसीलिये मेरा यह दोष इनमें भी संक्रमित हो गया; बस, बस, वज्र गिर जाय मेरे आस्तित्वपर....।''।।१०४०।।

'अब उसी उरःस्थल पर इनको है मुझे झुला देना, प्रियतम !
मिलकर तुमसे ये पुनः मुझे, तुमको पहचानेंगे, प्रियतम !
एवं उस धागे को, जिसमैं सब नित्य पिरोये हैं, प्रियतम !
रोकर, हँसकर फिर हम दोनों खेलेंगे खेल नया, प्रियतम'।।१०४१।।

किशोरी उन्मादिनीकी भाँति फूट-फूटकर रोने लगती हैं और कुछ क्षणोंके अनन्तर फिर कहती हैं – ''अच्छा, अच्छा! अब, अब उसी नीले उरःस्थलपर इस मालाको मैं झुला दूँगी – बस, यही, यही करना है मुझे। ये सुमन तुमसे मिलकर – तब, तब, तब।''

भानुकिशोरीके अधरोंपर उन्मादकी उल्लासकी, और आगे, आगे भावात्मक महाप्रलयकी रेखा व्यक्त होती है उन्मुक्त हँसीके रूपमें। वे बारम्बार :तब', 'तब', 'तब', 'तब', 'तब', 'तब', की आवृत्ति कर रही हैं – पाँच-दस पलों तक निरन्तर ...।

पुनः एक अचिन्त्य शक्तिकी प्रेरणासे वही पूर्वकी वाक्यावली फूट पड़ती है – ''हाँ-हाँ, तो ये सुमन तुमसे मिलकर तभी, तभी तुमको और मुझे पहचान पायेंगे– और उस धागेको, नीले धागेको, जिसमें ये नित्य पिरोये हुए हैं। उस समय तुम्हारा आनन्दोदधि कितना, कैसा उद्वेलित होगा, प्राणनाथ! सोचो तो सही, उसीमें हम दोनोंकी आँखोंसे आनन्दकी धारा कैसी बह चलेगी और फिर कैसे हम दोनों हँसेंगे! सोचो, सोचो उस अग्रिम दृश्यको; देखो, देखो उस महान आनन्द-क्रन्दनको। और महान् आनन्दके हास्यको। फिर हम दोनोंके अग्रिम नवीन रङ्गमञ्चका निर्माण होगा, नवीन क्रीड़ा-विलासकी लहरियोंमें हम दोनों संतरण करेंगे, अभिनव अप्रतिम सुन्दर खेल होगा वह –।'' किशोरी पुनः उन्मत्त हँसी हँसने लगती है।...॥१०४१॥

'इस वन में नहीं, उधर आगे, आगे-से-आगे जा, प्रियतम!
है नित्य रसोदधि नील जहाँ क्रमशः गहरा-गहरा, प्रियतम!
है सदा एक-से-एक ऊर्मि ऊँची उठती रहती, प्रियतम!
जो है अनादि एवं अनन्त, उसमें क्रीड़ा होगी, प्रियतम'॥१०४२॥

नीलसुन्दर सर्वथा मानो उनके समक्ष खड़े हैं – इस अनुभूतिमें तन्मय हुई किशोरी अपनी आँखें बन्द कर लेती हैं – सचमुच उन्हें अनुभव हो रहा है कि 'एक नीलसुन्दर तो मेरे हृत्सरोजपर विराजित हैं और एक मेरे समक्ष अधरोंपर मन्द स्मित लिये।' आठ-दस पलतक नीरवताके राज्यमें डूबी रहकर किशोरी पुनः अत्यन्त गंभीर मुद्रामें कह उठती हैं – ''किंतु, किंतु इस वनमें नहीं, भला! उधर आगे, आगे, आगे-से आगे चलना है, प्रियतम! वहाँ, वहाँ जहाँ वह नित्य नीलरसोदधि गंभीर, गंभीरतर होता चला जा रहा है। अहा, एक-से-एक ऊँची ऊर्मि उठती है और उस नीले सागरमें विलीन हो जाती है। अनादि हैं, अनन्त हैं वे ऊर्मियाँ। उसमें, उसमें, उस नीले समुद्रमें, उस नीले समुद्रमें हम दोनोंकी क्रीड़ा होगी, प्राणवल्लभ!...'' ॥१०४२॥

इतना कहकर फिर छोड़ चली द्रुम की डाली बाला, प्रियतम!
आगे कुछ और बढ़ी, मुड़कर हँसती-हँसती बोली, प्रियतम!
'हो प्राणनाथ! तुम? नहीं, नहीं, यह है मयूर बैठा, प्रियतम!
बिगड़ी है बुद्धि, अहो! मेरी, है कृष्ण मधुप यह तो, प्रियतम'॥१०४३॥

सुन्दरीसरोवर पुनः एक अट्टहाससे गूँज उठता है और किशोरी तमाल द्रुमकी उस शाखाको छोड़कर आगेकी ओर चल पड़ती हैं। किंतु कुछ ही दूर जाकर फिर मुड़ जाती हैं पीछेकी ओर और हँसती-हँसती कहने लगती हैं – ''तुम सचमुच प्राणनाथ हो ? नहीं, नहीं, यह तो मयूर बैठा है..! किशोरी अपने दोनों हाथोंसे माथा पीटकर अपनी उक्तिकी परिसमाप्ति करती हैं इन शब्दोंमें – ''प्राणनाथ नहीं हैं, मयूर नहीं है, मेरी बुद्धि बिगड़ी हुई है। यह तो भौंरा बैठा हुआ है।''॥१०४३॥

'कुछ सोच रहा है, जैसे वे गम्भीर कभी होते, प्रियतम!
प्रायः है रंग-ढंग इसका मिलता-जुलता उनसे, प्रियतम!
है म्लान दीरवता किंतु हाय! इस समय न जाने क्यों, प्रियतम!
सम्भव है यह मेरा प्रलाप सुनकर है खिन्न हुआ, प्रियतम'॥१०४४॥

''अहा! गंभीर मुद्रामें जैसे वे सोचते थे, मेरे प्राणनाथ किसी बातका विचार करते थे, वैसे ही यह भौंरा भी सोच रहा है इसका रङ्ग-ढङ्ग भी प्रायः उन्हींसे, सबकुंछ उन्हींसे मिलता-जुलता है। पर इतना म्लान यह भ्रमर क्यों हैं? हाय! इस समय मेरे सामने इसके मुखपर ऐसी म्लानता क्यों? ओहो! अब समझी बहुत सम्भव है, मुझ उन्मादिनीके अनर्गल प्रलापको सुनकर यह खिन्न हो गया है।''।।१०४४।।

मैं देख न हाय! सकी, दृग हैं बह रहे सतत इसके, प्रियतम'!
'भौंरा प्यारे! रोओ मत तुम, कह दो सब कुछ मुझसे,' प्रियतम!
'जो कुछ भी लिये हृदयमें हो, संकोच न तनिक करो,' प्रियतम!
'मैं हूँ उनकी प्यारी दासी, जो चाहोगे, दूँगी,' प्रियतम।।१०४५।।

आँखें गड़ाकर किशोरी दूतकी ओर देख रही हैं – दो-तीन पलोंतक निर्निमेष नयनोंसे देखती रहती हैं और फिर आकुल मुद्रामें कह उठती हैं – ''हाय रे! हाय रे!! मैं देख न सकी – भौंरा तो रो रहा है, इसकी आँखें अनर्गल अश्रु-प्रवाहका उद्गम बनी हुई हैं ..। अहा! प्यारे भौंरे तुम रोओ मत, मत, मत रोओ। क्या व्यथा है तुम्हें? सबकुछ, अपने मनकी सब बातें मुझे बता दो! देखो! मैं उनकी नीलसुन्दरकी दासी हूँ; अत्यन्त, अत्यन्त प्यारी दासी हूँ, तुम जो चाहोगे, वही वस्तु मैं तुमको दे दूँगी..।''।।१०४५।।

'है कोष पूर्ण, सर्वदा अतुल, अक्षय, असीम उनका,' प्रियतम!
'स्वामिनी किंतु यह है दासी सर्वथा सदा उसकी,' प्रियतम!
'उज्ज्वल तारोंकी यह कुंजी प्राणाधिक ने मेरे,' प्रियतम!
'देखो बाँधी अपने कर से हँसकर है अञ्चल में,' प्रियतम।।१०४६।।

किशोरीका स्वर क्रमशः धीमा होता चला जाता है, पर वे अविराम बोलती चली जा रही हैं – ''देखो, मेरे प्राणनाथका कोष, मेरे नीलदेवताका कोष, मेरे आराध्यदेवका कोष अप्रतिम है – नित्य, सर्वथा, सर्वांशमें अतुल है और अक्षय है; निस्सीम है वह कोष। किंतु उस कोषकी स्वामिनी मैं ही हूँ, भला! सर्वथा, सर्वांशमें उस कोषपर मेरा ही आधिपत्य है – सच मानना रे भौंरे! तुम प्रत्यक्ष देख लो, देखते हो उज्ज्वल तारोंकी इस कुञ्जीको; यह उसी कोषकी कुञ्जी है और मेरे प्राणाधिकने स्वयं अपने हाथोंसे मेरे अञ्चलमें इसको सदाके लिये बाँध रखा है। जिस समय – न जाने कबकी बात है – युग-युगान्तरसे असंख्य युग-युगान्तका कालमान तबसे व्यतीत हो गया, भला – जिस समय, जिस क्षण वे इसे बाँध रहे थे – अपने करसरोजसे बाँध रहे थे, कैसी रसमयी अनाविल हँसी उनके अधरोंपर व्यक्त थी, तुम्हें कैसे बताऊँ, भौंरा!''।।१०४६।।

'अतएव असम्भव भी सम्भव करके दूँगी तुमको,' प्रियतम!
'विश्वास करो, उनकी दासी है सत्य सदा कहती,' प्रियतम!
'है भौंरा! कठिन कीमत देनी आँखों की बूँदों की,' प्रियतम!
'अनमोल, भला, ये हैं, इनका प्रतिदान नहीं होता,' प्रियतम।।१०४७।।

''इसलिये तुम्हें मैं असम्भव वस्तु भी दे दूँगी, तुम्हारे लिये सर्वथा असम्भवको भी सम्भव बना दूँगी। तुम विश्वास करो, उनकी यह दासी सत्य ही कहती है। मिथ्या आश्वासन मैं देना जानती ही नहीं, रे भौंरा! रे भौंरा!! जो हो, ऐसा क्यों हुआ? तुमपर इतना क्यों रीझ गयी, बताऊँ? अच्छा, देखो, आँखोंकी बूँदोंका मूल्य देना बड़ा ही कठिन होता है – ये अनमोल होते हैं, इनका प्रतिदान होता ही नहीं। और तुम्हारी आँखोंसे वे ही बूँदें झर रही हैं।''।।१०४७।।

'कोई विरला होता है, जो लेता है समझ इसे,' प्रियतम !
'खोता न कभी इनको वह है बाहर लाकर दृग से,' प्रियतम !
'मिटकर शरीर की सुधि, बरबस गिर पड़ती हैं जब ये,' प्रियतम !
'लेती हूँ बीन दौड़कर मैं, पाऊँ जो देख कहीं,' प्रियतम,'।।१०४८।।

''हाँ, कोई बिरला ही नयनोंकी इन बूँदोंका सुगुप्त रहस्य जान पाता है, इस अनमोल निधिकी महिमासे परिचित होता है और वह अपने दृगोंसे इन्हें बाहर लाकर इन्हें खो बैठनेकी भूल कभी नहीं करता। अपने-आप शरीरकी विस्मृति होकर जब ये पलकोंकी ओटसे झर पड़ती हैं, तब मैं स्वयं दौड़ पड़ती हूँ इनकी ओर। एक-एक बूँदका चयन कर लेती हूँ, कहीं भी देख लूँ मैं इन बूँदोंको – ऐसा ही मेरा स्वभाव है।'' ।।१०४८।।

'फिर हार बना जीवनधन के उर पर रख देती हूँ,' प्रियतम !
'हँसकर उरमें भर फिर मुझको पहना देते वे हैं,' प्रियतम !
'उनके करतल पर सिर रखकर रो उठती हूँ अब मैं,' प्रियतम !
'है सुख अचिन्त्य हम दोनों के हँसने, उस रोने का,' प्रियतम।।१०४९।।

''इतना ही नहीं, मैं तत्क्षण इन बूंदोंसे एक अभिनव सुन्दर हारका निर्माण कर लेती हूँ – और मेरे प्राणवल्लभ नीलसुन्दरके उरःस्थलपर बूँदोंसे बने उस हारको स्थापित कर देती हूँ। इतने उल्लसित हो उठते हैं मेरे प्राणनाथ कि मुझे परिरम्भणके बन्धनमें बाँध लेते हैं और फिर क्षण बीतते-न-बीतते इस हारको मेरी ग्रीवामें झुला देते हैं। उस समय उनके करतलपर मेरा मस्तक अपने-आप झुक जाता है, प्रतिष्ठित हो जाता है। मैं विह्वल होकर रोने लगती हूँ उस समय हम दोनोंके उस हँसने और रोनेका सुख केवल अनिर्वचनीय ही नहीं, वस्तुतः अचिन्त्य होता है। कौन समझ सकता है उस सुखकी गरिमाको ? कहना भी किससे क्या है ?'' ।।१०४९।।

'इसलिये मिलिन्द ! कहो, देकर यह भेंट अनूप मुझे,' प्रियतम !
'लेने की क्या अभिलाषा है, सब कुछ हूँ लिये खड़ी,' प्रियतम !
'देने में ही सुख है मुझको लेने से अधिक कहीं,' प्रियतम !
'उनका, मेरा स्वभाव कुछ है चिरकाल एक-सा ही,' प्रियतम।।१०५०।।

''इसलिये हे मिलिन्द! आ! हा! हा! हा! कहो, बोलो – तुमने मुझे यह अनुपम भेंट जो दी है, यह भेंट देकर तुम मुझसे क्या लेना चाहते हो, क्या अभिलाषा है तुम्हारे चित्तमें ? देखो सही, मैं सबकुछ लिये यहीं तुम्हारे सामने खड़ी हूँ। तुझे सच कहती हूँ – लेनेकी अपेक्षा निरन्तर देते रहनेमें ही अत्यधिक सुखका अनुभव होता है। केवल मेरा ही नहीं, भौंरा रे! मेरे प्रियतम नीलसुन्दरका स्वभाव भी ऐसा ही है। उनका, मेरा-दोनोंका ही स्वभाव चिरकालसे एक-सा ही है, भँवर'!'' ।।१०५०।।

वाणी बाला की रुद्ध हुई, लज्जा में समा गयी, प्रियतम !
कहती-कहती कह दी उसने, जो बात न थी कहनी, प्रियतम !
होकर कुछ सावधान-सी फिर बोली, 'मधुकर तुम हे!' प्रियतम !
'बचना छाया से भी मेरी, भ्रम से भी मत छूना,' प्रियतम।।१०५१।।

सहसा भानुकिशोरीकी वाणी रुद्ध हो गयी। लज्जाका घन आवरण उनके श्रीअङ्गोंपर चारों ओर अभिव्यक्त हो गया; झुकी जा रही है भानुकिशोरी उसके भार से। उन्हें प्रतीति हो रही थी – जो बात न कहने की थी, वह उनके मुखसे बरबस निःसृत हो गयी। पर अब क्या हो ..

क्षणभरके लिये उनकी आँखें निमीलित हुईं और जब खुलीं, तब वे किञ्चित् सावधानीकी मुद्रासे भावित रहकर ही कहने लग जाती हैं – "भ्रमर! तू सावधान रहना भला! मेरे अङ्गोंकी महामलिन छायासे भी बचते रहना – भ्रमसे भी तू इसे मत छूना, रे!"।।१०५१।।

'है मुझे प्रशंसा प्रिय अपनी, कर गयी स्वयं मैं हूँ;' प्रियतम!
'निर्मल मति हो, इससे इसपर विश्वास किया तुमने;' प्रियतम!
'हो गये प्रभावित ठगिनी की ठग-भरी सरलता से;' प्रियतम!
'फिर चले पकड़ने चरण महामलिना इस अधमा के;' प्रियतम।।१०५२।।

"हाय! मैं कैसी हूँ– तुम्हें पता नहीं है। सच यह है, मुझे अपनी प्रशंसा बड़ी प्यारी लगती है और इसीलिये मैं स्वयं तुमसे केवल, केवल अपनी ही सुख्याति करती रही हूँ। तुम अत्यन्त निर्मल मति हो, मिलिन्द! और इस कारण तुमने मेरी बातोंपर ज्यों-का-त्यों विश्वास किया है। मुझ ठगिनीकी ठगभरी सरलतासे तुम प्रभावित हो उठे और मेरे चरणोंके स्पर्शके लिये तुम अभी-अभी मेरी ओर दौड़े आ रहे थे – मुझ महामलिना अधमाके चरणोंको छूने दौड़ पड़े थे।"।।१०५२।।

'है सुधासिन्धु में, छिल्लर की कणिका में अन्तर जो;' प्रियतम!
'रवि-शशि के किरण दानमें, फिर जुगनू के उड़ने में;' प्रियतम!
'चिन्तामणि में, उस छिन्न काँच मलपूरित में जो है;' प्रियतम!
'इतना पृथकत्व शील का है उनके एवं मेरे;' प्रियतम।।१०५३।।

"तुम्हें सत्य, सत्य बतला दे रही हूँ, नीलसुन्दर प्राणनाथ प्रियतममें और मुझमें कितना अन्तर है। एक ओर उछलता हुआ सुधा-सिन्धु, और दूसरी ओर एक छिल्लरकी मलिन, अत्यन्त दुर्गन्धसे परिपूरित (गढैयाके) जलकी कणिका। एक ओर दिनकर और चन्द्रका किरण-दान, दूसरी ओर खद्योतके उड़ते समय उसके भुक्-भुक्से निःसृत प्रकाशका कण। एक ओर चिन्तामणि, दूसरी ओर मलसे सने टूटे काँचका एक मलिन खण्ड। इनमें परस्पर कितना अन्तर है, भ्रमर! वैसे-के-वैसे मेरे प्राणवल्लभ नील-सुन्दरके शीलमें और मेरे शीलमें पृथकत्व निरन्तर प्रत्यक्ष प्रतिभासित मिलेगा तुमको।"।।१०५३।।

'लेती-लेती न थकी मैं, वे हारे न कभी दे-दे;' प्रियतम!
'क्या मिला? सदा बोली मैं, वे, 'दे कुछ न सका' बोले;' प्रियतम!
'थी गर्व लिये 'स्वाहा सब कुछ करके जीती मैं हूँ;' प्रियतम!
'न्योछावर मैं न हुआ, धिक् है जीवन!' कहते वे थे;' प्रियतम।।१०५४।।

"मेरे जीवनका कण-कण अभिलाषाओंके हाहाकारसे परिपूरित है, मैं निरन्तर उनसे माँगती ही रही - कुछ-न-कुछ माँगती ही रही हूँ। लेती-लेती– निरन्तर लेते रहने पर भी मैं कभी श्रमित नहीं हुई, और निरन्तर देते रहने पर भी वे श्रमित न हुए। इतनेपर भी सदा मैं उपालम्भ देती रही हूँ – 'मुझे तुमसे क्या मिला?' और उस ओर मेरे इस व्यङ्ग्यके उत्तरमें वे सदा यही बोलते आये हैं – "प्राणोंकी रानी! मैं तुम्हें कुछ भी दे न सका।" मैं निरन्तर यही गर्व लिये रहती थी कि मैं प्रियतम नीलसुन्दरके लिये सबकुछ स्वाहा

करके ही जीवनंधारण कर रही हूँ। और सदा ही गद्गद कण्ठसे वे यही कहते थे – 'अहा! मैं प्राणेश्वरी राधाके चरणसरोरुहमें हाय रे! न्योछावर नहीं हुआ; धिक्कार है मुझे, शत-सहस्र धिक्कार है मेरे जीवनको।'' ।।१०५४।।

'इतने पर भी लज्जाहीना समता करने बैठी,' प्रियतम!
'उनसे अपनी, अलि हे रसविद! भारी अपराध हुआ,' प्रियतम!
'करती थी दम्भ सदा मैं हूँ, करती रहती अब भी,' प्रियतम!
'दे प्यार नहीं पायी क्षणभर सपने में भी उनको।' प्रियतम।।१०५५।।

देखो सही, इस परिस्थितिमें मैं अधमा, लज्जाहीना, अपने प्राणवल्लभसे, नीलसुन्दरसे समता करने चली थी अपने शीलगुणकी, अन्य गुणोंकी। रसविद् मधुकर रे! मेरे द्वारा महान् अपराधका ही सृजन हुआ मेरी इस चेष्टासे। क्यों नहीं होता? ऐसा होता ही! क्योंकि मैं सदासे दम्भ ही करती आयी हूँ। अब भी दम्भसे भरा ही मेरा जीवन है। क्षणभरके लिये स्वप्नमें भी मैं प्राणनाथ नीलसुन्दरको अपने अनाविल प्यारका एक कण भी न दे पायी।।।१०५५।।

रो उठी विकल बाला, कहकर अब 'साँवर! साँवर! हे प्रियतम!
देना वरदान, न हो मुझसे अपमान किसी का भी, प्रियतम!
दूँ भौंरे को छूने कैसे ये किंतु चरण अपने, प्रियतम!
जिनको रसमत्त हुए तुमने पोंछा था अलकों से, प्रियतम।।१०५६।।

भानुकिशोरी फूट-फूटकर रो रही है – और ''साँवर-साँवर' का स्वर निःसृत हो रहा है अधरपुटोंके अन्तरालसे। कभी अस्फुट स्वरमें यह भी कह उठती हैं – ''साँवर, साँवर प्रियतम हे! तुम मुझे एक वरदान दे दो – मेरे द्वारा किसीका कभी अपमान न हो। पर कैसे करूँ, प्राणवल्लभ साँवर! तुम्हीं बताओ, इस भौंरेको मैं अपने चरण कैसे छूने दूँ? तुम्हें स्मरण है – रसमत्त हुए तुमने अपनी कुञ्चित अलकोंसे मेरे इन चरणोंको पोंछा था उस दिन, उस दिन, उस दिन। हाय रे! उन्हीं अपने चरणोंको मैं भौंरेको कैसे छूने दूँ? पर भ्रमरका अपमान भी न हो, यह कैसे सम्भव है? कैसी असमञ्जसकी स्थिति है मेरी।'' ।।१०५६।।

'थे अभी क्षितिज के पार हुए दिनकर समेट किरणें,' प्रियतम!
लहरें श्यामा सरिता की थीं कहतीं मुझसे, 'ठहरो,' प्रियतम!
पर तुम कहते, 'प्रियतमे! चलो, यह रात अँधेरी है,' प्रियतम!
'वन घोर गहन है सम्मुख का, पथ भी टेढ़ा कुछ है,' प्रियतम।।१०५७।।

अनर्गल अश्रु-प्रवाहसे अपने कपोलोंको सिक्त करती हुई किशोरी अविराम भावसे कहती जा रही हैं – ''भौंरे! प्यारे मिलिन्द! सुनो – मेरे साथ घटित घटनाको मैं ज्यों-की-त्यों सुना दे रही हूँ तुमको। उस दिन प्रतिपदाकी तिथि थी। अभी-अभी अपनी किरणोंको समेटकर दिनकर क्षितिजके उस पार गये ही थे – कलिन्द-नन्दिनीका प्रवाह हम दोनोंके सम्मुख हिलोरें ले रहा था। मैं प्रत्यक्ष सचमुच सुन रही थी रे! भौंरा! सरिताकी लहरें मुझसे प्रार्थना कर रही थीं, माँग रही थीं – ''निकुञ्जेश्वरी राधे! किञ्चित् और यहाँ तुम दोनों ठहर जाओ और मुझे दर्शनका सुखदान करो।...''

सहसा किशोरी भूल गयीं कि मैं भौंरेसे बात कर रही हूँ और प्रत्यक्ष अनुभूतिके जालमें पड़कर ठीक-ठीक देखने लग गयीं – 'सामने मेरे प्राणनाथ नीलसुन्दर खड़े हैं और मैं तो उनसे ही बात कर रही हूँ' – इस भावनामें डूबी हुईं वे अविराम बोलती चली जा रही हैं।

''सुनते हो, प्राणवल्लभ! ठीक-ठीक स्मरण कर लो प्रतिपदाकी उस संध्या-वेलाको। श्यामा कल्लोलिनीकी लहरें मुझसे कह रहीं थीं– 'ठहरो!' पर तुम कहते थे मुझसे – 'प्रियतमे! चलो, चलो। तिमिरसे परिपूरित यह रजनी है। सम्मुखका कान्तार भी अत्यन्त गहन है। बड़ी ही घोर है यह अटवी और यहाँसे उस ओरका पथ भी बड़ा बङ्किम है।''।।१०५७।।

भारी असमंजस में अब थी, कैसे क्या करूँ, अहो! प्रियतम!
थी त्वरा भरी तुममें, दृगमें मनुहार लहर के थी, प्रियतम!
'अनसुनी करूँ उसकी विनती या और तनिक ठहरूँ,' प्रियतम!
'हँसते थे तुम, मैं चिन्तित थी कुछ रुककर फिर बोली,' प्रियतम।।१०५८।।

और मैं असमञ्जसमें पड़ी हुई थी, प्राणाधिक! 'कैसे करूँ, क्या करूँ?' तुममें तो अत्यधिक त्वरा भरी थी; बड़ी शीघ्रता थी मुझे यहाँसे वहाँ ले जानेकी,– और मनुहारभरी आँखोंसे लहरें बूँदें उछाल-उछालकर बाध्य कर रही थीं मुझे वहीं ठहरे रहनेके लिए। मैं उनकी विनती अनसुनी कर दूँ या किञ्चित् और ठहर जाऊँ – यह प्रश्न था मेरे सामने। तुम हँस रहे थे, पर मैं चिन्तामें पड़ी थी। कुछ देर रुककर मैं तुमसे बोल उठी थी – 'प्रियतम!'।।१०५८।।

जल्दी क्या है? तुम ठगते हो, शुक्ला रजनी यह है, प्रियतम!
देखो, शशधर है प्राची में, बस, आनेवाला ही, प्रियतम!
वह आये, मत आये, श्यामल मुख ही प्रकाश देगा, प्रियतम!
जब हो तुम मेरे साथ सदा, क्या भय है इस वनका,' प्रियतम।।१०५९।।

''तुम बड़ी शीघ्रता करते हो! इतनी जल्दीकी आवश्यकता क्या है और सच तो यह है कि तुम मुझे ठग रहे हो, मुझसे मिथ्या कह रहे हो। देखो! यह तो शुक्ला रजनी है।'' मैं उस क्षण भूल गयी थी, प्रियतम! कि वस्तुतः तिथि तो भाद्रपद कृष्णा प्रतिपदाकी है। और मैं तुमसे कह रही थी कि यह शुक्ल पक्षकी निशा है।...

अब किशोरी अपना दक्षिण कर-सरोज आगे बढ़ाकर इस प्रकारकी मुद्राका प्रदर्शन कर बैठीं मानो वे अपने प्राणनाथ नीलसुन्दरके कर-सरोजको स्पन्दित कर रही हों, उन्हें सावधान कर रही हों। साथ ही अधरोंपर यह मधुस्यन्दी स्वर एक अभिनव उल्लासकी गरिमा लेकर व्यक्त हो रहा था – ''तो मैंने तुम्हें कहा था – जल्दी क्या करना है? शुक्ल पक्षकी निशा है यह। देखो, प्राचीमें शशधर, बस, आनेवाला ही है। और क्या है? वह आये, मत आये, मुझे तो तुम्हारा यह श्यामल मुख ही निरन्तर प्रकाश देता ही रहेगा। जब तुम निरन्तर मेरे साथ हो, तब मुझे इस वनका क्या भय है, प्राणनाथ!...''।।१०५९।।

'रससे पूरित मीठी बातें कहकर हँसते चलना, प्रियतम!
ग्रीवा में देकर मेरी यह कर वाम मृदुल अपना, प्रियतम!
वनदेवी कर देगी रचना सुन्दर नवीन पथ की, प्रियतम!
पहुँचेंगे सीधे हम दोनों अपने निकुञ्जगृह में,' प्रियतम।।१०६०।।

''रससे परिपूरित मीठी-मीठी बातें तुम मुझे सुनाते रहना और हँस-हँसकर मुझे गलबाहीं दिये, हाँ, हाँ, हाँ, मेरी ग्रीवामें यह अपना वाम मृदुल कर-सरोज डाले हँस-हँसकर आगे चलते रहना। यहाँ एक वनदेवी रहती है, वह हम दोनोंके लिए नवीन सुन्दर-से-सुन्दर पथका निर्माण कर देगी और यहाँसे सीधे, सीधे, सीधे चलकर हम दोनों अपने निकुञ्ज-गृहमें पहुँच ही जायेंगे।''।।१०६०।।

'मानो डर हो मनमें, ऐसे बोले अब तुम मुझसे, प्रियतम!
'मेरे प्राणों की रानी हे! अहि एक भयंकर है; प्रियतम!
'हम दोनों खड़े जहाँ अब हैं, बस, उसी गगनतल में; प्रियतम!
'रहता है छिपकर वह अथवा धरणी में धँसा हुआ; प्रियतम॥१०६१॥

पुनः अविराम हँसने लग जाती हैं किशोरी, सर्वथा उन्मादिनीकी भाँति। फिर मानों एकबार प्रियतम नीलसुन्दरके दक्षिण कर-सरोजको झकझोर दे रही हों, इस मुद्रामें अपने बाँये हाथको चञ्चल करके कहने लगती हैं – ''तो क्या प्रतिक्रिया हुई थी मेरी उक्तियोंकी तुमपर ? अरे रे, तुम कितने चतुर हो, प्रियतम! तुम्हें तो मुझे ले चलनेकी त्वरा थी ही और कैसी मुद्रा बनायी थी तुमने उस समय। सर्वथा भय-विजड़ित मुद्रामें तुम मुझे निहारते हुए कह रहे थे – 'मेरे प्राणोंकी रानी! हे! अरे राम! एक बड़ा ही भयङ्कर सर्प यहाँ रहता है – यहीं तो, जहाँ हम दोनों अभी खड़े हैं इस समय, बस इसी धराके ऊपरके व्योममें रहता है, भला, – पर छिपकर रहता है, अथवा इस धरामें ही धँसकर रहता है, धरामें समाया रहता है। कोई निर्णीत स्थान नहीं है उसका।'॥१०६१॥

ऐसा मायावी है, जिसको विरला ही जीत सके; प्रियतम!
'वह इसी समय पीने पानी आता है इधर यहीं; प्रियतम!
'छाया भी पड़ते ही उसकी आती है बेहोशी; प्रियतम!
ऐसी न मिटे, जो कोटि मरें पचहार हकीम भले, प्रियतम॥१०६२॥

'इतना मायावी है वह उरग कि जिसकी मायाको कोई विरला ही जीते तो जीत सकता है, और देखो प्राणेश्वरी! संयोगकी बात; उस मायावी सर्पके पानी पीनेका यही समय है और यहीं इसी घाटपर पानी पीता है वह। कितना भयङ्कर है वह – तुमसे बतला देता हूँ। उसकी छाया पड़ते ही बेहोशी आ जाती है और ऐसी बेहोशी कि शत-सहस्र हकीम-वैद्य हार जायँ, पर वह बेहोशी दूर होनेकी नहीं।'॥१०६२॥

'उसके आने से पहले ही तटिनी को छोड़ चलें;' प्रियतम!
'देखेंगे खेल कभी फिर यह सुन्दर इन लहरों का;' प्रियतम!
'क्यों व्यर्थ विकट झगड़ा भारी लें मोल अभी इससे; प्रियतम!
'डर जाओगी तुम देख उसे डसने जो दौड़ पड़े; प्रियतम॥१०६३॥

'इसीलिये प्राणाधिके! उसके यहाँ आनेके पहले ही हमलोग इस प्रवाहसे दूर चले जायँ, कलिन्दनन्दिनीके प्रवाहसे दूर चले जायँ। लहरियोंका खेल तो कभी किसी अन्य दिन देख लेंगे। क्यों व्यर्थका इतना भयङ्कर, इतना विकट संघर्ष इस सर्पसे हम लेने चलें। और बिल्कुल सत्य है, कहीं वह आ गया और तुम्हें डसनेके लिए दौड़ा तो तुम तो डर जाओगी – भागेंगे कैसे ? ...' आ हा हा। प्राणनाथ! कैसी चतुराई थी तुम्हारी ?॥१०६३॥

मैं सदा हठीली जो ठहरी, बोली, 'अच्छा, देखूँ,' प्रियतम!
'कैसा है बतला दो केवल, पूरब से, पश्चिम से;' प्रियतम!
'उत्तर से या दक्षिण, नीचे अथवा वह ऊपर से; प्रियतम!
'आयेगा तृषा बुझाने या सुख यह हरने मेरा;' प्रियतम॥१०६४॥

पर मैं तो सदाकी हठीली ही ठहरी। हँसने लग गयी थी मैं तुम्हारी बात सुनकर और बोली थी – 'अच्छा, मैं भी देखना चाहती हूँ प्रियतम! कि आखिरमें वह सर्प है तो कैसा है। मुझे तो केवल इतना ही बतला दो – वह प्राचीकी ओरसे आयेगा या प्रतीचीकी ओरसे, उत्तरकी ओरसे या दक्षिणकी ओरसे? धरा-भेदन करके आयेगा अथवा व्योमपथसे? आयेगा यदि वह तो अपनी तृषा शान्त करने आयेगा या हमारा सुख-अपहरण करने आयेगा?'।।१०६४।।

कहकर, हँसकर मैं बैठगयी, हँसते तुम खड़े रहे, प्रियतम!
बङ्किम चितवन से उत्तर की फिर धरा दिखा करके, प्रियतम!
यह कहा, 'जीवनेश्वरि! देखो, फटती-सी यह कुछ है,' प्रियतम!
'सम्भव है इस पथसे आये,' इतने में दीख पड़ा, प्रियतम।।१०६५।।

और इतना कहकर मैं हँस रही थी और वहीं बैठ भी गयी थी। तुम खड़े-खड़े हँस रहे थे।

दो पलोंके अनन्तर तुम्हारी बङ्किम चितवन उत्तरकी धराकी ओर केन्द्रित हुई और मुझे एक स्थल विशेषकी ओर सङ्केतकर तुम बोले थे – 'जीवनेश्वरी! देखो यह धरा कुछ फटती-सी दीख रही है। सम्भव है, इसी पथसे आ जाय।'।।१०६५।।

सचमुच अतिशय काला विषधर फन काढ़े निकल पड़ा, प्रियतम!
डरकर मैं तुमसे चिपट गयी, बोले तुम, 'भय न करो।' प्रियतम!
'छू छाँह नहीं सकता मेरे प्राणों की देवी की,' प्रियतम!
'चञ्चलता प्राणाधिके! नहीं करना पर यहाँ भला,' प्रियतम।।१०६६।।

तुम्हारी उक्ति पूरी भी न हो पायी थी कि सचमुच एक अतिशय महाकाय कृष्णवर्ण विषधर फण काढ़े धराके उस छिद्रसे बाहर निकल आया। अरे! मैं तो डरकर तुमसे चिपट गयी थी। कितना भयङ्कर वह सर्प था, पर तुम तत्क्षण कह उठे थे – 'प्राणेश्वरी! बिलकुल भय मत करो। मेरे प्राणोंकी रानीकी छायाको भी यह नहीं छू सकता, तुम्हें तो क्या छू सकेगा। किन्तु प्रियतमे! यहाँ तुम चञ्चलतासे विरत हो जाना। कोई सी चपलता मत कर बैठना।'।।१०६६।।

'यह देख रंग काला मेरा' 'है परपक्षी कोई,' प्रियतम!
'ऐसा है सोच रहा कपटी, डरता है इससे ही,' प्रियतम!
'काले-टेढ़े को होता है भय काले-टेढ़े से,' प्रियतम!
'गोरी-सरला तुम हो, मुझसे अतएव जुड़ी रहना,' प्रियतम।।१०६७।।

'देखो, मेरा रङ्ग भी काला और यह सर्प भी पूरा काला-कलूटा है। इस सर्पके मनमें यह बात आ गयी है, मेरे लिए कि मैं उसका प्रतिपक्षी हूँ – ऐसा ही सोच रहा है यह कपटी – और इसलिए मुझसे डर रहा है। देखो, प्राणेश्वरी! जो स्वयं काला और टेढ़ा होता है, उसे काले और टेढ़ेसे ही भय होता है। और देखो! तुम तो गौरवर्णा हो और अत्यन्त सरला भी हो; इसको तुमसे भय बिलकुल नहीं लगेगा, अतः तुम तो बस, मुझसे सम्बद्ध रहना। तनिक भी हटना मत, भला!'।।१०६७।।

मैं भूल नहीं पाती जलसे पूरित उन नयनों को, प्रियतम!
'गोरी-सरला' कहकर मुझको तुम देख रहे जब थे, प्रियतम!
प्राणों के संवेदन ऐसे केवल निधि है मेरी, प्रियतम!
कैसे कितने सुन्दर वे हैं किस भाँति कहूँ तुमसे, प्रियतम।।१०६८।।

प्राणरमण! जलसे पूरित तुम्हारे उन नयन-सरोजोंको मैं भूल नहीं पाती, जिस समय तुम मुझे 'गोरी', 'सरला' सम्बोधित करके एकटक निहार रहे थे। प्राणवल्लभ! प्राणोंके ऐसे संवेदन ही मेरी एकमात्र निधि हैं – कैसे, कैसे हैं वे, कितने सुन्दर वे हैं, कैसे तुम्हें बताऊँ?।।१०६८।।

जो हो, अपलक होकर अब मैं थी देख रही अहिको, प्रियतम!
सहसा उसके मुख में प्रतीति ऐसी हो गयी मुझे, प्रियतम!
'यह चिरपरिचित मुसकान सदा जो लिये अधर पर हो' प्रियतम!
मानो है छिपी वहाँ भी, बस, विकसित होगी क्षण में' प्रियतम॥१०६९॥

जो हो, सुनो, प्रियतम! मैं अपलक होकर उस अहिको निहार रही थी, किंतु ओह! सहसा मुझे अनुभूति हुई, ऐसी प्रतीति मुझे होने लगी कि उसके उस विकराल मुखमें तुम ही, मेरे प्राणनाथ नीलसुन्दर ही विराजित हो रहे हो। इतना ही नहीं, प्राणाधिक! तुम्हारे अधर-पल्लवोंपर जो यह चिर-परिचित स्मित निरन्तर विराजित रहता है, वह भी मुझे उस सर्पके मुखमें अवस्थित श्रीविग्रहके अधरोंपर ज्यों-का-त्यों निलीन-सा आभास हो रहा था, मानो वह अभी-अभी – तुरंत विकसित हो उठेगा।।।१०६९।।

इतने में उसकी आँखों में काली परछाँही-सी, प्रियतम!
दीखी त्रिभङ्ग इन अङ्गों की मुद्रा अनुपम लोनी, प्रियतम!
फिर तो उस विषधर के तनके सारे अवयव में ही, प्रियतम!
भासित तुम एक लगे होने चञ्चल झलमल करते, प्रियतम॥१०७०॥

मेरी आँख वहाँ केन्द्रित हुई थीं कि दूसरे ही क्षण उस भुजङ्गकी आँखोंमें, काली परछाहीं-सी, तुम्हारे इन त्रिभङ्ग अङ्गोंकी मुद्राके दर्शन होने लगे।

कैसी अप्रतिम सुन्दर सलोनी मुद्रा थी प्राणवल्लभ! तुम्हारी उस भुजङ्गमकी आँखोंमें। और अब दो-पल बीतते-न-बीतते विषधरके अङ्गोंके कण-कणमें ही, उसके सम्पूर्ण अवयवोंमें ही एकमात्र तुम्हीं, नीलसुन्दर ही, मेरे प्राणनाथ ही अभिव्यक्त हो उठे। मेरी आँखोंमें चञ्चल तुम्हीं, तुम्हीं वहाँ झलमल करते दीख रहे थे।।।१०७०।।

अत्यन्त अचम्भित थी, कैसे संघटित हुआ यह था, प्रियतम!
क्षण एक उसे, फिर बार-बार तुमको थी देख रही, प्रियतम!
उस महाउरग-उरमें तुम तो प्रत्यक्ष खड़े ही थे, प्रियतम!
मैं सोच रही थी, है सच यह, अद्भुत है या सपना, प्रियतम॥१०७१॥

आश्चर्यमें डूबी हुई थी कि यह कैसे, क्यों संघटित हुआ। एक क्षणमें तुम्हें निहारती और दूसरे क्षण मेरी आँखें उस भुजङ्गपर केन्द्रित होतीं। और उस महाउरगके हृद्देशमें तो तुम प्रत्यक्ष यों-के-यों खड़े दीख रहे थे। मैं सोचने लग गयी थी कि 'यह अनुभूति सत्य है अथवा कोई अद्भुत स्वप्न तो मैं नहीं देख रही हूँ।'........।।१०७१।।

'मेरे प्राणों के प्राण! सुनो, अब कहा पुनः तुमने, प्रियतम!
क्रीड़ा देखो हँस-हँसकर, पर आगे मत बढ़ जाना' प्रियतम!
'दुर्दमन कहीं झपटे, डस ले विषमय दो दाँतों से' प्रियतम!
मेरे जीवन का क्या होगा, अनुमान तनिक कर लो।' प्रियतम॥१०७२॥

इतनेमें तुम्हारा मधुमय स्वर मेरे कानोंमें पड़ा। तुम मुझे कह रहे थे, 'मेरे असंख्य प्राणोंके प्राण! देखो, क्रीड़ा तो हँस-हँसकर देख लो, भला! पर आगे मत बढ़ जाना, सर्पकी ओर एक पद भी अग्रसर न हो जाना। क्या पता यह दुर्दमन महासर्प झपट पड़े और अपने विषमय दो दाँतोंसे तुम्हें डस ले। हाय रे! फिर मेरे जीवनका क्या होगा? तनिक अनुमान लगा लो सही उस विषम परिस्थितिका।'।।१०७२।।

हो गयी विमूढ़ा, कौतुक था यह भूल भुलैया-सा, प्रियतम!
आखिर तुमसे कह गयी, मुझे जैसे था दीख रहा, प्रियतम!
तुम हँसे, कहा, 'प्रियतमे! दया तुमने मुझपर की है,' प्रियतम!
'दृगपुतरीमें हो नित्य मुझे रखती, फल है उसका।' प्रियतम॥१०७३॥

मैं तो सर्वथा विमूढ हो गयी थी, प्रियतम! मेरे लिये यह भूल-भुलैयाका-सा खेल बन गया था। आखिर मैंने तुमसे सारी बात बतला दी – जो भी, जैसे मुझे अनुभव हो रहा था उस महा भुजङ्गमके तनमें। तुम हँस पड़े थे और तुमने कहा था – 'प्रियतमे! तुमने मेरे ऊपर अपार करुणा की है, तुम मुझे अपनी दृगपुतरियोंमें ही निरन्तर निवास दिये रहती हो। इसीका परिणाम है कि तुम्हें महासर्पके स्थानपर मैं अनुभूत हो रहा हूँ।'।।१०७३।।

'पर भाग चलें अब तो, विषधर हो गया बली मुझ-सा,' प्रियतम!
'आँखें डाली तुमने इस पर, भर दिया मुझे इसमें,' प्रियतम!
'बल मेरा चला गया इसमें, दुर्धर्ष हुआ यह है,' प्रियतम!
'इसलिये चलो अविलम्ब, अहो! कहना मेरा मानो।' प्रियतम॥१०७४॥

'किंतु प्राणवल्लभे! अब तो शीघ्र-से-शीघ्र हमलोग भाग चलें। अरे! यह विषधर तो मेरे समान बली बन गया है। तुमने इसपर अपनी आँखें डाल दीं, इसके कण-कणमें मुझको परिपूरित कर दिया। मेरा सम्पूर्ण बल उसमें चला गया और अब यह विषधर अत्यन्त दुर्धर्ष हो गया है। अतएव प्राणाधिके! बस, चलो, अविलम्ब यहाँसे चलें। मेरी बात मान लो, प्राणवल्लभे!'।।१०७४।।

'अब तो छद्मी पीछे से ही हमपर जो टूट पड़े,' प्रियतम!
'कर पाऊँगा क्या मैं इसका, की भूल बड़ी तुमने,' प्रियतम!
'अतएव अङ्कमें लेकर मैं तुमको भागूँ ऐसा,' प्रियतम!
'जो छू न सके हम दोनोंको, यह है उपाय इतना।' प्रियतम॥१०७५॥

'इतना बलवान बन गया है यह सर्प कि यदि यह हम दोनोंपर पीछेसे टूट पड़े तो मैं इसका कर ही क्या लूँगा? बड़ी भारी भूल तुमने कर दी। बस, अब तो एक ही उपाय बचा है! – मैं तुम्हें अङ्कमें उठा लूँ और फिर इतनी तीव्र गतिसे भागूँ कि यह हम दोनोंको छू ही न सके।'।।१०७५।।

चिन्तित अब हुई, कदाचित् यह फिर भी न पिण्ड छोड़े, प्रियतम!
दुर्दैव-योगवश तेज अधिक गति बने सर्प की ही, प्रियतम!
क्षत नील पीठपर ही कर दे धीरे से, रच माया, प्रियतम!
मैं जान न पाऊँगी, तुम तो कहने से रहे इसे, प्रियतम॥१०७६॥

बस! प्राणवल्लभ! मैं सुन तो रही थी तुम्हारी बातोंको बड़े ध्यानसे, किंतु अब एक नवीन चिंताने मुझे आ घेरा। मैं सोचने लगी – 'कदाचित् यह महाविषधर भी हम दोनोंका पिंड न छोड़े और दुर्दैववश कहीं इसके दौड़नेकी गति तुम्हारी अपेक्षा अधिक तेज हो जाय और उस परिस्थितिमें यह तुम्हारी नीली पीठपर क्षत लगा दे, तुम्हें काट खाये – धीरेसे ही काट ले, मायावी जो ठहरा, यह कोई-सी माया रच दे, तब मैं तो इन बातोंको जान नहीं पाऊँगी और तुम मुझे बतानेसे रहे कि तुम्हें सर्पने काट खाया है ...।'।।१०७६।।

थी बात बहुत-सी सोच रही, इतने में कानों में, प्रियतम!
आयी फुफकार भयंकर-सी ध्वनि, सिहर उठी मैं थी, प्रियतम!
बोले तुम, 'मेरे प्रति ही अब है रोष हुआ इसको,' प्रियतम!
'तुमने कर दी कुछ देर अतः भिड़ना ही है, इससे।' प्रियतम।।१०७७।।

मैं इस प्रकार बहुतसे उपायोंके चिन्तनमें डूब-सी गयी, बहुत-सी बातें सोच रही थी। इतनेमें ही मेरे कानोंमें भयङ्कर फुफकारकी ध्वनि आयी और मैं सिहर उठी। साथ ही तुम तुरंत बोल उठे – 'ओहो! ओहो!! प्राणवल्लभे!! अब तो इसका रोष मेरे ही प्रति हो गया, भला! तुमने कुछ देर कर दी, अब तो इसके साथ भिड़ना ही पड़ेगा। इससे युद्ध लेना ही होगा मुझे।...'।।१०७७।।

कहकर दुकूल कटि में तुम थे कसते जाते, हँसते, प्रियतम!
सहसा मनमें आया, देखूँ कितना बल है अहि में, प्रियतम!
अबला हूँ, किंतु नित्य मेरे भीतर-बाहर तुम हो, प्रियतम!
क्या सर्प सकेगा कर, इसपर मैं ही जो लपक पड़ूँ, प्रियतम।।१०७८।।

तुम यह कहते जा रहे थे और अपने दुकूलको कटिमें कसते जा रहे थे, साथ ही तुम्हारे अधरोंपर एक अभिनव हास्य भी था। उस समय अचानक मेरे मनमें आया – देखूँ सही, इस सर्पमें आखिर कितना बल है, मैं अबला अवश्य हूँ, किंतु मेरे भीतर-बाहर तुम तो निरन्तर विराजित हो ही। मेरा यह सर्प कर ही क्या सकेगा? यदि मैं ही इसपर लपक पड़ूँ तो! कुछ भी अनिष्ट मेरा नहीं कर सकता यह सर्प – तुम, तुम, तुम, तुम, तुम मेरे साथ हो।।।१०७८।।

मेरे ही द्वारा मिला इसे बल है, कहते थे हैं, प्रियतम!
फिर भले मुझे भ्रम हो, पर हैं ये-ही-ये दीख रहे, प्रियतम!
कह देनेपर तो रोक मुझे लेंगे अवश्य ही ये, प्रियतम।
चुपचाप अचानक जा समीप देखूँ क्या है कैसा, प्रियतम।।१०७९।।

तुम्हीं, तुम्हीं तो मुझे कह रहे हो कि मेरे द्वारा ही इसे बल मिला है, मेरे निमित्तसे यह बलवान बना है। इसके बलका उद्गम-स्थल मेरी आँखें हैं। और फिर, भले मेरा भ्रम ही हो, पर मुझे दीख तो रहे हैं ये मेरे प्राणवल्लभ ही निरन्तर इसके अन्तरालमें। किंतु यदि मैं अपने मनका निश्चय इन्हें बतला देती हूँ, तब तो ये मुझे रोक लेंगे। आगे बढ़ने नहीं देंगे। चुपचाप अचानक मैं इसके सामने चली जाती हूँ और देखती हूँ – क्या, कैसी वस्तु यहाँ है? क्या करता है मेरा यह।।।१०७९।।

अन्तर था सात हाथ का ही, क्षणभर नीरज-मुख को, प्रियतम!
मैं देख वेग-चपला का ले उछली उसके आगे, प्रियतम!
बोली स्वं, 'कर ले तू जो चाहे, सन्मुख मैं हूँ;' प्रियतम!
'है सर्प सही तो काट मुझे, भ्रमजाल नहीं तो है।' प्रियतम।।१०८०।।

प्राणनाथ उसके और मेरे बीचमें केवल सात हाथका ही अन्तर था – मुझसे वह सर्प केवल सात हाथकी दूरीपर ही अवस्थित था। मैं क्षणभर तुम्हारे मुखसरोजको निहारती रही और फिर विद्युत्वेगसे उसके आगे उछल पड़ी, सर्वथा निकट-से-निकट जा पहुँची और बोल उठी – 'अरे! तुझे जो करना है, कर ले। मैं सम्मुख खड़ी हूँ, अगर तू सचमुच सर्प है तो मुझे काट खा और नहीं तो यह मात्र भ्रमजाल है।...' ।।१०८०।।

क्षण एक मुँदी आँखें मेरी, तुम तो पीछे थे ही, प्रियतम!
भर लिया भुजाओं में, मुझको अनुभूति हुई ऐसी, प्रियतम!
दृग खोल तुरंत चकित होकर बोली, 'वह कहाँ गया?' प्रियतम!
बैठे मेरे कच सींच रहे तुम थे लोचन-जल से, प्रियतम॥१०८१॥

एक क्षणके लिये मेरी आँखें मुँद गयीं। और तुम तो मेरे पीछे विराजित थे ही, तुमने अपनी भुजाओंमें मुझे भर लिया – मुझे ऐसी अनुभूति हो रही थी प्राणनाथ! फिर भी मैंने तुरंत आँखें खोल लीं और तुमसे बोली – 'प्राणनाथ! सर्प कहाँ गया?' मैं चकित होकर देख रही थी, किंतु कहीं सर्प दीख जो नहीं रहा था और तुम, तुम अपने दृगसरोजकी धारासे मेरी अलकोंको सिक्त कर रहे थे। न जाने कब, कैसे मैं तुम्हारे अङ्कमें आसीन हो गयी थी और तुम्हारा अनर्गल अश्रुप्रवाह मेरे कुन्तलोंको आर्द्र कर रहा था...।।।१०८१।।

उस समय अहो! हम दोनों का कैसा था हाल हुआ, प्रियतम!
तुम याद उसे कर लेना, मैं रख लेती हूँ मनमें, प्रियतम।
क्या है कहना किससे, भौंरा समझेगा क्या इसको, प्रियतम!
दे प्राण मिला तुममें, मुझमें तो जान भले ही ले, प्रियतम॥१०८२॥

जीवनसर्वस्व! उस समय हम दोनोंका क्या हाल था, कैसी अभिनव अद्भुत विह्वलता थी – इसे तुम स्मरण कर लो, प्राणवल्लभ! और मैं तो इसे मनमें ही रख लूँगी, इसे प्रकट नहीं करूँगी। क्या किससे कहना है ...।

अचानक भानुकिशोरी मानो भाव-समाधिसे जग, दृष्टि घुमाकर देखने लग जाती है और उन्हें भान होने लग गया है कि वे बात तो कर रही हैं अपने प्राणवल्लभ नीलसुन्दरसे, पर भ्रमर भी वहीं संनिकट देशमें ही बैठा है और उससे भी कुछ बातें कर चुकी हैं वे।

उनकी मुद्रा क्षण-क्षणमें बदलती है, अङ्ग-भंगिमामें प्रतिपल परिवर्तन होता जा रहा है। कभी वे सामने खड़े हुए प्राण-देवताको निहारकर हँसने लगती हैं और कभी भ्रमरकी ओर दृष्टिपातकर मौन धारण कर लेती हैं। पाँच-सात पल इस स्थितिमें ही अवस्थित रहकर फिर कह उठती हैं – "प्राणवल्लभ! क्या, किससे कहनी है उस स्थितिकी बात। और यह भ्रमर तो उसे क्या समझ पायेगा। हाँ, तुममें मुझमें यदि अपने प्राणोंको मिला दे सके, तो भले ही जान ले यह, हम दोनोंकी उस स्थितिको।..."।।१०८२।।

रोता है पर यह इसीलिये कुछ तो कहना ही है, प्रियतम!
लज्जित हूँ बहुत अधिक यद्यपि उतना भी कहने में, प्रियतम!
जो काल परे कलना से है, कितना था बीत चुका, प्रियतम!
तुम ही जानो, समाधि जब थी टूटी, तुम यों बोले, प्रियतम॥१०८३॥

''मेरे प्राणरमण! तुम्हें स्मरण होगा – मैं विकल हो उठी थी इतना-सा कह कर! मुझे स्पष्ट प्रतीत हो रहा था कि भौंरा पुनः रोने लग गया है, इसलिये न चाहने पर भी उसे कुछ कह देने चली थी मैं। अपने मनकी जो बात मैं प्रकट नहीं करना चाहती थी, उस बातका किञ्चित् अंश उसे बतला देने चली थी। यद्यपि बड़ी लज्जा लग रही है मुझे प्रियतम।''

अचानक भानुकिशोरीको अनुभव हुआ कि वे कुछ असम्बद्ध प्रलाप कर रही हैं और उनका भ्रम है, जो वे अपने प्राणवल्लभको प्रत्यक्ष वहीं विराजित देख रही हैं। उनकी आँखें पुनः निमीलित होती हैं और वे सोचने लगती हैं – 'कोई दूत आया है, उसे मैं संदेश दे रही हूँ।' आधे क्षण इस भावनामें, इस प्रतीतिमें वे डूब जाती हैं और फिर नवीन क्षणका उन्मेष होते-न-होते अपने प्राणवल्लभसे ही रसमयी चर्चामें तन्मय हो जाती हैं और कुछ पलोंमें प्राबल्य हो जाता है प्राणवल्लभकी अवस्थितिका ही तथा कहने लग जाती हैं किशोरी – ''प्राणवल्लभ! बड़ी लज्जा लग रही है मुझे उस सर्पके इतिवृत्तको कहनेमें। अच्छा, और तो कोई है नहीं, तुमसे ही तो कह रही हूँ। तुम सुनना चाहते हो, इसलिये कह रही हूँ – तो सुनो – कलनासे परे उस कालका कितना परिमाण व्यतीत हो चुका था, जब हम लोगोंकी वह भाव-समाधि शिथिल हुई थी, इसे कौन बताये, तुम्हीं जानो।' सर्प कहाँ चला गया, इसका उत्तर तुम मुझे दे रहे थे। कैसी मधुस्यन्दिनी गिरा थी तुम्हारी! तुमने यही तो कहा था, प्राणवल्लभ! –।।१०८३।।

'जिन महाभावमय नयनोंमें हूँ बसा सदा ही मैं', प्रियतम!
'जाता है उपल पिघल जिनसे पावक होता हिम है', प्रियतम!
'जो हैं अतीत फिर वर्तमान भावीके दृश्योंमें', प्रियतम!
'सागर रसमय उच्छलित नित्य भरती स्वभावसे ही', प्रियतम।।१०८४।।

'प्राण प्रियतमे! देखो! जिन महाभावमयी आँखोंमें निरन्तर बसा हुआ हूँ, जिन आँखोंकी रसधारासे पाषाण विगलित हो जाता है, पावक शीतल हो जाता है, जो नयन सरोरुह अतीत, वर्तमान एवं भविष्यके दृश्योंमें निरन्तर स्वभावसे ही रसमय सागरका निर्माण करते रहते हैं – रससागरको उच्छलित बनाते रहते हैं।'।।१०८४।।

'उन आँखोंमें ही सना हुआ उनसे ही प्रेषित मैं', प्रियतम!
'था हुआ, अतः गल गया उरग, अचरज इसमें क्या है?' प्रियतम!
'बच रहा रंग काला उरमें भरनेके लिये वहाँ', प्रियतम!
'प्रियतमे! कहूँ क्या, मेरी है हो रही रुद्ध वाणी', प्रियतम।।१०८५।।

'उन्हीं आँखोंमें रमा हुआ, उनकी अप्रतिम गरिमामें सना हुआ, उनसे ही प्रेरित होकर तो मैं उस महाविषधरके कलेवरमें संनिविष्ट किया गया था। अतएव वह महाभुजङ्गम यदि गल गया, विगलित हो गया तो उसमें आश्चर्य ही क्या है, मेरे असंख्य प्राणोंकी प्राण राधे!... और वहाँ उस महा उरगके स्थानपर काला रङ्ग-मात्र बच गया तुम्हें उरमें भरनेके लिये तो अचरजकी कौनसी बात है? प्रियतमे! अधिक क्या कहूँ, मेरा कंठ अवरुद्ध हो रहा है।'।।१०८५।।

प्रक्षालित किये तरंगोंने फिर पद हम दोनोंके, प्रियतम!
व्याकुल होकर आ चिपट गयी रेणुका किंतु अमला, प्रियतम!
'क्यों छोड़ चले तुम मुझे यहीं, दम्पति हे!' थी कहती, प्रियतम!
उज्ज्वल वितान था तान रहा ऊपर हिमकर करसे, प्रियतम।।१०८६।।

प्रियतम! उसके पश्चात् जो घटना घटी थी, उसे भी स्मरण कर लो – न जाने कौन-सा उद्दीपन पाकर श्यामा कल्लोलिनी बड़े वेगसे उच्छलित हो उठी थी – लहरें हम दोनोंके चरणोंको प्रक्षालित करने लगी थीं और दूसरे ही क्षण मैंने देखा था – वह समुज्ज्वल वर्ण रेणुका मेरे पदतलमें आकर लिपट गयी थी। मैंने स्पष्ट सुना था, प्राणधन! उसे ठीक-ठीक ऐसा कहते –'दम्पति हे! क्या तुम मुझे यहीं छोड़कर चले जाओगे?' और उस समय तुम्हारी आँखें ऊपरकी ओर उठ रंही थीं – सम्भवतः तुम कालका अनुमान लगा रहे थे। उचित ही था। हिमकर अपनी किरणोंका वितान तान रहा था ठीक हम दोनोंके मस्तकपर। अस्तु, ।।१०८६।।

मनमें मैं व्यथित हुई-सी थी कह गयी, 'न छोड़ूँगी,' प्रियतम!
'कोई भी हो, कैसी भी हो, जो जुड़ी तनिक-सी है,' प्रियतम!
'आशा उसकी मैं क्यों तोड़ूँ, साँवर तो हैं मेरे,' प्रियतम!
'दूँगी कह जो, कर लेंगे, फिर यह तो है पद थामे।' प्रियतम।।१०८७।।

मैं अत्यन्त व्यथित हो उठी थी, प्राणवल्लभ! रेणुकाकी उस प्रार्थनाकी मुद्रामें की हुई उक्तिको स्मरण कर और बिना सोचे-समझे मैं मन-ही-मन कह गयी थी – 'कोई भी हो, कैसी भी हो, जो एकबार मुझसे जुड़ चुकी, उसे तो मैं कदापि छोड़ूँगी ही नहीं, उसकी आशा मैं क्यों तोड़ूँ?' तुम, तुम, साँवर मेरे प्राण-प्रियतम! तुम मेरे ही हो, मेरे ही थे, मेरे ही रहोगे। मैं तुम्हें जो भी कह दूँगी, वह तुम तत्क्षण कर ही लोगे, फिर मैं भला, क्यों किसीको कभी क्षणभरके लिये भी निराश करूँ? नहीं-नहीं, मुझसे ऐसा हो नहीं सकता। और यह रेणुका तो अभीतक मेरे पदतलमें ज्यों-की-त्यों लिपटी पड़ी है।।।१०८७।।

'कितनी मृदुला, कितनी हलकी, कितनी उजली यह है!' प्रियतम!
'जड़ बनी अपनपौ खोकर है मेरे ही लिये पड़ी,' प्रियतम!
'साँवर की यह दासी इसकी निष्ठा कैसे भूले,' प्रियतम!
'हे धूलि! परम मङ्गल हो, ये स्वीकार करें तुमको।' प्रियतम।।१०८८।।

अहा! कितनी मृदुला है यह, कितनी हल्की है यह, इसका हृदय कितना निर्मल है – उज्ज्वल है, और देखो सही – यह मेरे लिये ही तो, मेरे लिये ही तो अपने चेतन भावपर आवरण डालकर, अपना अपनत्व मिटाकर, सर्वथा जड़ बनकर यहाँ कलिन्दनन्दिनीके प्रवाहमें, प्रवाहके परिसरमें पड़ी रहती है। मैं आऊँगी और इस रेणुकाके वक्षःस्थलपर चरण रखकर चलूँगी। कहीं, कोई क्षत मेरे पदतलमें न लग जाय, मेरे सुखके लिये इतना त्याग इस रेणुकाने किया है – मात्र इसे इतना ही सुख है कि मेरे पदतलमें कोई पीड़ा न हो जाय और इसीलिये चेतनताको जलाञ्जलि देकर जड़ताको वरण किया है इसने। अरे! मैं तो साँवर, मेरे प्राणवल्लभ, तुम, तुम, तुम – नीलसुन्दरकी दासी हूँ न प्राणनाथ! और इसलिये कैसे सम्भव था मेरे लिये कि मैं रेणुकाकी इस निष्ठाको भूल जाऊँ। बस, इसी भावमें बहकर मैं कह बैठी थी मन-ही-मन –'हे धूलि! तेरा परम मङ्गल हो, मेरे प्राणवल्लभ नन्दनन्दन तुझे स्वीकार कर लें।...'।।१०८८।।

हे प्राणनाथ! हो गयी देर, अब चलो कुञ्ज में, हे प्रियतम!
हे श्यामचन्द्र! किरणोंका हूँ स्वागत करती कहती, प्रियतम!
'देते रहना शीतलता ही अविराम यहाँ सबको,' प्रियतम!
फिर रास दिखाऊँगी तुमको, कह चली, चले तुम भी प्रियतम।।१०८९।।

प्राणनाथ! मेरी आँखें भर आयी थीं उस समय। और मैं भी अपना अश्रु छिपानेके उद्देश्यसे आकाशकी ओर देखने लग गयी थी कि कहीं वे बाहर व्यक्त न हो जायँ। और तब मुझे भी भान हुआ था कि सचमुच बड़ी देर हो गयी है – श्यामा प्रवाहिणीके विलासको देखते-देखते– सरिताके तटपरकी क्रीड़ाको देखते-देखते। इसीलिये मैं तुमसे बोली थी – 'हे मेरे श्यामचन्द्र! मैं तुम्हारी सम्पूर्ण क्रीड़ाओंका स्वागत करती हूँ।' पर मेरी आँखें अब भी व्योममें विराजित चन्द्रकी ओर थीं। मैं अन्योक्तिके छद्ममें मानो चन्द्रसे बातें कर रही थी, ऐसे बोल रही थी, 'हे नीलचन्द्र! हे नीलमयङ्क! मैं तुम्हारी किरणोंका स्वागत करती हूँ। तुम यहाँ अविराम सबको शीतलताका ही दान करना। फिर मैं तुम्हें रास-नृत्य दिखलाऊँगी।' वास्तवमें मैं कह रही थी तुमसे ही और कह रही थी यह – ''प्राणवल्लभ! तुमने जो मुझे महाभुजङ्गमकी लीला दिखलायी, उसका तो मैं स्वागत करती हूँ, किंतु जैसे तुम लहरोंकी मनुहार न माननेके लिये प्रेरणा दे रहे थे, वैसा न करना भला! किसीके हृदयको न तोड़ना भला! तभी तो मैं तुम्हें अपना निरावरण लास्य दिखाकर– तुम्हारा मनोरञ्जन कर पाऊँगी, प्राणवल्लभ!..'।।१०८९।।

कुछ बात बताकर तुम हँसते, बन जाती फूल हँसी, प्रियतम!
मेरे आगे बन जाता था सुन्दर पथ सुमनों का, प्रियतम!
रखते पर पद तुम रज में थे कुसुमों को बचा-बचा, प्रियतम!
था हेतु बताया, 'प्यारी! है प्राणोपम रजकणिका।' प्रियतम।।१०९०।।

और यह कहकर मैं तुरन्त चल पड़ी थी, ठीक-ठीक स्मरण करो, ऐसे ही हुआ था न ? जो हो, गलबाहीं दिये तुम मुझे आगे-आगे ले चल रहे थे। कुछ अत्यन्त रसीली बात कहकर हँस देते और सचमुच-सचमुच प्राणनाथ! तुम्हारी हँसीसे एक किरण-सी बिखर जाती थी और किरणें पुष्पके रूपमें परिणत हो जाती थीं। मेरे आगे पुष्पोंका आस्तरण आस्तृत हो जाता था, सुमनमय पथ बन जाता था। मैं उसपर आनन्दमें विभोर अग्रसर हो रही थी तुम्हारे वाम पार्श्वमें, तुम्हारे अनाविल प्यारमें अभिषिक्त होकर। पर अचानक मुझे दीखा था – तुम अपने चरण उन कुसुमोंपर नहीं रख रहे हो, अपितु दोनों ही पद ठीक-ठीक कुसुमोंको बचा-बचाकर रेणुकापर ही रखते जा रहे थे। मैं अचरजमें डूबकर तुमसे पूछ बैठी थी – 'ऐसा क्यों कर रहे हो प्राणनाथ! प्रियतम!!' और तुम भी तत्क्षण उत्तर दे बैठे थे – मुझे अपनी उस चेष्टाका हेतु बतलाया था – 'प्राणवल्लभे! यह रजःकणिका मुझे प्राणके समान प्यारी है।'।।१०९०।।

'जब दयामयी तुमने इच्छा कर ली ये साथ चलें,' प्रियतम!
'त्यागूँ कैसे इनको फिर मैं, हूँ जहाँ, रहेंगी ये।' प्रियतम!
'मेरे प्राणों की रानी के पद में जो चिपक गयीं,' प्रियतम!
'उनको क्या दे सकता हूँ मैं, कणिया हूँ नित्य बना।' प्रियतम।।१०९१।।

'अहो! जब दयामयी तुमने यह इच्छा कर ली, यह चाह लिया कि रजःकणिका मेरे साथ चलें, तब फिर मैं इनका त्याग कैसे कर सकता था? अपितु मेरे मनमें तो उसी क्षणका सङ्कल्प जाग्रत हो उठा था कि मैं जहाँ रहूँगा, वहीं ये भी रहेंगी ही। तुम्हारी चित्तधारामें इन्हें साथ रखनेकी वृत्ति उत्पन्न होते ही मेरे अन्तस्तलमें यह सङ्कल्प उदित हो गया था, प्राणवल्लभे!' मैं सोचने लग गया था – 'अहा! कितनी महा-महा महिमामयी हैं ये रजःकणिकाएँ! और अहो! देखो, ये तो मेरे प्राणोंकी रानीके पदमें चिपक गयी हैं। मेरी प्राणेश्वरी राधाके चरण-सरोरुहोंको इन्होंने अपने वक्षःस्थलपर धारण कर लिया है। अहो! इन अपरिसीम

सौभाग्यशालिनी रजःकणिकाओंको मैं भला इसके बदले दे ही क्या सकता हूँ! मेरे पास है ही क्या? मैं नित्य इनका ऋणियां बना ही रहूँगा। इनके ऋणका परिशोध मेरे लिये तो असम्भव है।'।।१०९१।।

रो उठी बात सुनकर मैं थी, जैसे-तैसे पहुँची, प्रियतम!
तटिनी निकुञ्ज में शय्या थी पद्मों की बिछी हुई, प्रियतम!
मैं लेट गयी, तुम जा बैठे मेरे ही पदतल में, प्रियतम!
हो गद्गद बोले, 'दान महा प्रियतमे! मुझे यह दो।' प्रियतम ॥१०९२॥

प्राणाधिक! तुम्हारी प्रीतिकी गरिमासे पूरित इस उक्तिको सुनकर मैं फू-फू कर रो उठी थी। मेरे लिये अब आगे पद-विन्यास करना बड़ा ही कठिन हो गया था। जड़िमा मानो सब ओरसे मुझे आवृत किये जा रही थी। फिर भी जैसे-तैसे तटिनीनिकुञ्जमें तुम्हारे सहयोगसे पहुँच ही गयी और पद्मोंसे निर्मित शय्यापर जाकर लेट गयी। किंतु तुम मेरे चरणोंके समीप आकर बैठ गये।...

गद्गद् कण्ठसे तुम कह रहे थे – "प्रियतमे! मुझे भी यह एक दान दे दो।"।।१०९२।।

'हूँ लिये लालसा मैं भी यह, अपने केशों से ही,' प्रियतम!
'ये पोंछ चरण असमोर्ध्व रहूँ बड़भागी, सुखी सदा;' प्रियतम!
'मेरा ही स्वत्व रहे इन पर, केवल छूऐं वे ही;' प्रियतम!
'जिनका मन बुद्धि अहं काला जलदाभ बने मुझ-सा।' प्रियतम ॥१०९३॥

'मैं भी अपने हृदयमें एक चिर लालसा सँजोये प्रतीक्षा कर रहा हूँ – मेरे भी आकुल प्राणोंकी अभिलाषा है कि मैं अपनी अलकोंसे तुम्हारे इन चरण-सरोरुहोंको पोंछ-पोंछकर निरवधि असमोर्ध्व सौभाग्यशाली और सुखी बना रहूँ। प्राणेश्वरी राधाके चरण सरोरुहोंपर एकमात्र मेरा ही स्वत्व रहे – इन्हें केवल वे ही स्पर्श कर सकें – स्पर्श करें, जिनका मन, जिनकी बुद्धि, जिनकी अहंता ठीक-ठीक मेरे समान ही, मेरे समान जलदसम कृष्णवर्णताको धारण कर लें और अविराम इन्हें रससिक्त रखें।'।।१०९३।।

'जैसे सुख हो तुमको, कर लो, उसमें ही हूँ सुखिनी,' प्रियतम!
'जीवनधन! अहो! कभी तुमको मैं म्लान नहीं देखूँ,' प्रियतम!
'अस्तित्व रहे, बस, कण-कणका मेरे मनके, तनके,' प्रियतम!
'देनेके लिये नित्य तुमको प्रतिपल नवीन सुख ही;' प्रियतम ॥१०९४॥

प्राणनाथ! अतिशय लज्जामें मैं डूब गयी थी। सोच न पा रही थी – क्या उत्तर दूँ मैं तुमको। उसी क्षण मेरे प्राणोंकी एकान्तिक लालसा– एकमात्र अभिलाषा प्राणोंके अन्तरालमें हिलोरे लेने लगी। मैं मन-ही-मन इन भावनाओंकी आवृत्ति करने लग गयी थी – 'प्राणाधिक! जीवनसर्वस्व! तुम्हें जिसमें सुख हो तुम वही कर लो। बस, मैं उसीमें, उसमें ही सुखका अनुभव करती हूँ, करती थी, करूँगी। जीवनधन! मैं तुम्हें कभी, किसी भी प्रसङ्गको लेकर म्लान नहीं देख पाऊँ – मेरी आँखें तुम्हारे मुखसरोजपर म्लानताकी क्षीण-से-क्षीण कोई सी रेखातक कभी न देख पायें। मेरे सम्पूर्ण तनका – तनके प्रत्येक रोमका, मेरे मनका, मेरे चित्तका, मेरी बुद्धिका कण-कण, अणु-अणु, परमाणु-परमाणु रहे एकमात्र तुम्हारे लिये प्रतिपल नवीन-से-नवीन सुखका सृजन करनेके लिये ही। इनका अस्तित्व रहे ही एकमात्र तुम्हें सुखदानके लिये।' ।।१०९४।।

भावित इस भाँति हुई मेरी पलकोंसे अनुमति ले, प्रियतम!
लालित सुरभित कुन्तल से तुम कर रहे चरण ये थे, प्रियतम!
था भान न हुआ हमें यह भी, कब बीत गयी रजनी, प्रियतम!
'हे मधुप! अतः छूना मत तुम मेरा पद, है विनती'; प्रियतम॥१०-९४॥

प्राणाधिक! मेरे प्राणोंका यह स्पन्दन मेरी पलकोंपर तुम्हें सुस्पष्ट अभिव्यक्त दीख रहा था। तुमने ही यह बात मुझे पीछे कही थी, और उन्हीं भाव-भावित पलकोंसे तुमने अनुमति ले ली थी तथा अपने सुरभित कुन्तलोंसे मेरे चरणोंका संलालन करने लगे तुम। हम दोनोंको यह भान भी न हो सका था कि रजनीका विराम कब हो गया है।

भानुकिशोरीके भाव-सिन्धुमें अचानक एक अतिशय वेगवान उच्छलनका आविर्भाव हुआ और उन्मादिनीकी भाँति वे सुन्दरी सरोवरकी उमड़ती हुई जलराशिकी ओर भाग चलीं। सहोदराने उन्हें अपने भुज-पाशमें आवृत कर लिया और बीस-तीस पलतक भानुनन्दिनी गंभीर मूर्च्छामें निमग्न पड़ी थीं। सर्वत्र नीरवताका साम्राज्य था...।

और जब इस भाव-समाधिका क्षणिक विराम हुआ, तब भानुकिशोरी किञ्चित् प्रकृतिस्थ-सी दीख पड़ रही थीं और निमीलित नेत्रोंसे ही मानो किसी भ्रमरको स्मरणकर कह रही हों – ऐसी मुद्रामें बोल उठीं – ''मधुकर! तुम्हीं बतलाओ, मेरी इस परिस्थितिपर गंभीर विचारकर तुम न्याय करना, भला! और फिर निर्णय देना .... हाय रे! क्या कहूँ, मधुप! इसीलिये, इसीलिये उन कुन्तलोंसे मार्जित मेरे इन चरणोंपर एकमात्र मेरे प्राणधन नीलसुन्दरका ही स्वत्व है। वे ही इन्हें स्पर्श करनेका अधिकार-दान कर सकेंगे। मधुप! इसीलिये, इसीलिये मेरी विनम्र विनती, अत्यन्त मनुहारभरी विनतीको मान लो, तुम मेरे चरणोंका स्पर्श मत करो.... ।'' ।।१०९५।।

'हो गयी निमीलित बालाकी उत्पल-दल-सी आँखें'; प्रियतम!
'कहती जाती यद्यपि अब भी वह बात रसीली थी'; प्रियतम!
सुन सकीं उसे पर वे जो थीं स्वाहा सर्वस्व किये, प्रियतम!
मोहित जो था जल-बुद्‌बुद से या हैं, सुन लें कैसे, प्रियतम॥१०-९६॥

भानुकिशोरीकी उत्पल-दल-सी आँखें इस अन्तिम उक्तिके समय, 'स्पर्श मत करो' कहते समय आधे क्षणके लिये उन्मीलित हुई थीं अवश्य, किंतु पुनः निमीलित हो गयीं – यद्यपि वाणीसे वे अविराम भावसे अगणित रस-पूरित बातें कहती ही जा रही थीं। पर उनकी, उनकी उन महाभावमयी परम पावन उक्तियोंको केवल, केवल वे ही सुन सकीं, जो अपना सर्वस्व स्वाहाकर उनके चरण-सरोरुहपर न्योछावर हो चुकी थीं; जो मरुमरीचिकाके जल-बुद्‌बुदसे मोहित थीं या हैं, वे सुन ही कैसे पातीं!।।१०९६।।

'पाटल-से होठोंका हिलना देखा दिनकरने है'; प्रियतम!
'निर्लिप्त, किंतु फिर भी विमुग्ध आकाश लिये ध्वनि है'; प्रियतम!
'छूकर है उसे अनिल चञ्चल, है नीर सरस उससे'; प्रियतम!
'उसकी सहिष्णुताकी सुगन्ध ली छिपा मेदिनीने'; प्रियतम॥१०-९७॥

पाटल-दलों-सदृश भानुनन्दिनीके होठोंका स्पन्दन इस दिनकरने अवश्य देखा है। यह निर्लिप्त व्योम विमुग्ध बना अपने हृदयमें उस ध्वनिको संजोये अवस्थित है। उसे स्पर्श करके अनिल आज भी चञ्चल है

और नीरमें सरसताका सञ्चार वह ध्वनि आज भी कर ही रही है। धराने ध्वनिकी सहिष्णुता – उसके सर्जककी सहिष्णुताके अन्तरालसे व्यक्त होते हुए सौरभको छिपा लिया है, अपने अन्तस्तलमें; किंतु इनका अनुभव करने आज कौन आ रही है, कौन आ रहा है ?।।१०९७।।

दो दण्ड वहाँ सब ओर रही छायी नीरवता-सी, प्रियतम !
केवल थी स्वगत बात करती वह भावमयी पुतली, प्रियतम !
मानो फिर लहर लगी उठने उसमें नवीन सहसा, प्रियतम !
बोली खिन्ना-सी, किंतु मधुर तारों से भी स्वरमें, प्रियतम ॥१०९८॥

दो दण्डकी पूर्ण नीरवता (स्वगत नीरवता) के अनन्तर महाभावकी पुत्तलिका मानों पुनः स्पन्दित हुई और वीणाके तारोंकी अपेक्षा भी अत्यन्त सुमधुर, मधुरातिमधुर स्वर निःसृत होने लगा –।।१०९८।।

'बक गयी अनर्गल मैं क्या-क्या, विक्षिप्त हुई मति है, प्रियतम !
'रोता है दीन हुआ षट्पद, मैं कथा लगी कहने, प्रियतम !
'बतला दो, बतला दो, अलि हे ! हर लूँगी सभी व्यथा,' प्रियतम !
'कहती ध्यानस्थ हुई क्षण कुछ, कह उठी पुनः पगली। प्रियतम ॥१०९९॥

"मैं अनर्गल क्या-क्या बक गयी; सचमुच विक्षिप्त हो गयी हूँ मैं; एक ओर यह षट्पद रो रहा है और मैं इसे कथा सुना रही थी। ओह! मिलिन्द रे!! मत रो। बतला दे – अपना हृदय खोलकर मेरे सामने रख दे। मैं तेरी सम्पूर्ण व्यथा हर लूँगी। क्या करूँ?" कुछ क्षणोंके लिए किशोरी ध्यानस्थ हो गयीं। पर पुनः इस बार उन्मादका मानों एक नवीन झोंका आया और उसी प्रवाहमें उड़ती हुई वे बोलने लग गयीं।।।१०९९।।

'हे भृङ्ग ! न जब तुम कहते हो, हूँ पूछ रही उनसे;' प्रियतम !
'देंगे कह वे ।' पलभर रुककर रच दी रसकी सरिता;' प्रियतम !
'मैं गुप्त मनोरथ जान गयी, जो लिये हुए तुम हो;' प्रियतम !
'वह तो दे ही देती हूँ, फिर किंचित् अपनी रुचि से।' प्रियतम ॥११००॥

"मिलिन्द तो कुछ भी बतलाता नहीं। अच्छा तो मैं अपने प्राणवल्लभ नीलसुन्दरसे पूछ लेती हूँ इसके मनकी बात। वे तो मुझे बता ही देंगे ..।"

एक पल :बीतते-न-बीतते भानुकिशोरी उच्च स्वरसे हँस पड़ीं और बोलीं – "भ्रमर रे! मैं तो जान गयी तुम्हारे गुप्त मनोरथको; वह तो तुम्हें दे ही देती हूँ तथा किञ्चित् और भी अपनी रुचिसे भी दे रही हूँ।" ।।११००।।

द्रुमलता तथा भुजलता बनो उनकी इस दासी की, प्रियतम !
सुख-सङ्ग मिले उनका तुमको, खण्डित न काल से हो, प्रियतम !
मेरी इस अरुण कञ्चुकी के बंदों में बँधी हुई, प्रियतम !
अनुरक्ति नित्य सहचरी रहे सौरभ देती तुमको, प्रियतम ॥११०१॥

"देखो मिलिन्द! तुम इस तुलसी-काननकी द्रुम-वल्लरियोंसे तादात्म्य लाभ कर लो। प्राणवल्लभ नीलसुन्दरकी दासी मुझ राधाकी भुज-वल्लरियोंमें तुम्हारा अस्तित्व एकान्तिक भावसे पर्यवसित हो जाय। मेरे प्राणधन नीलदेवताका अपरिसीम सुखमय सांनिध्य तुम्हें नित्य-निरन्तर उपलब्ध रहे! इतना ही नहीं, और

सुनो, मैं तुम्हें वरदान दे रही हूँ – 'इन मेरी सच्चिन्मय अरुणिम कञ्चुकीके बंदोंमें बँधी हुई राग-बहुला भाव लहरियोंकी सत्ता- उस सत्तासे अनुप्राणित सच्चिन्मयी श्यामल अनुरक्ति आत्मसात् किये रहे तुम्हें निरवधि, निरवधि...निरवधि'।।।११०१।।

गिर गयी धरापर, कहकर यह, तन-सुधि खोकर बाला, प्रियतम!
सहचरी बड़ी जो उससे थी दुखिया उसके दुख से, प्रियतम!
उसका सिर गोदीमें अपनी लेकर बोली रोती, प्रियतम!
हे दूत! विरह में उनके है क्या दशा हुई इसकी, प्रियतम॥११०२॥

भानुनन्दिनीको अपने शरीरकी विस्मृति हो गयी और उस अवस्थामें कटे कदली-स्तम्भकी भाँति धरापर गिरकर गंभीर मूर्च्छामें समा गयीं वे ....।

भानुकिशोरीका सिर अपने अङ्कमें धारण किये उनके मुख-सरोजको अनर्गल अश्रु-प्रवाहसे सिक्त करके ललिता बोल उठीं –।।११०२।।

'दीखे क्षणभर तुम थे इसको, बोला कुछ फिर भला,' प्रियतम!
'अनुभव तमाल को कर साँवर, कर गयी बात उससे,' प्रियतम!
'आँखें जब पुनः पड़ी तुमपर, थी भ्रमित हुई तुमसे,' प्रियतम!
'हैं वे, है मोर, नहीं भौंरा, उर खोल गयी अलि से,' प्रियतम॥११०३॥

'दूत! क्षणभरके लिये इसे तुम अवश्य दीखे थे; तुम्हें लक्ष्यकर यह कुछ शब्द बोल भी गयी थी; फिर भावमयी विस्मृतिका उन्मेष हुआ इसमें। इस तमालको ही प्राण-प्रियतम साँवरके रूपमें अनुभव करने लगी यह और फिर इसकी आँखें तुमपर केन्द्रित हुईं तो अभिनव उन्मादमें यह सोचती थी तुम्हारे ही माध्यमको लेकर– 'मेरे प्राणवल्लभ नीलसुन्दर हैं ? नहीं-नहीं, मयूर है ? नहीं-नहीं, भौंरा है।' और भ्रमरसे, तुमसे अपने उरःस्थलका भाव खोलकर बतला गयी।'।।११०३।।

'वरदान दिया है मधुकर को इसने, तथापि मानो;' प्रियतम!
'अपने ही लिये इसे तुम हे! साँवर के दूत सखा;' प्रियतम!
'अक्षरशः होगा सत्य सदा, कहती मैं हूँ ललिता;' प्रियतम!
'उनसे कहना, जो है देखा या सुना यहाँ तुमने।' प्रियतम॥११०४॥

'इसने अपनी जानमें मधुकरको वरदान दिया है पर तुम इसे अपने लिये ही मान लो, भला! साँवरके दूत!! साँवरके सखा!!! यह वरदान अक्षरशः सत्य होगा, मैं ललिता कह रही हूँ – मेरी उक्ति कभी मिथ्या नहीं होती।'।।११०४।।

कहकर मुरछित हो गयी सखी वह भी वैसी दीना, प्रियतम!
वह दूत बहाता जल दृग से दोनों की पदरज में, प्रियतम!
दो दण्ड लोटकर-चला गया उन्मत्त हुआ वन से, प्रियतम!
है ज्ञात सभी बातें तुमको, कह गयी तनिक फिर भी, प्रियतम॥११०५॥

मूर्च्छित हो गयी ललिता सुन्दरी भी। दूतकी आँखोंसे झर-झर अश्रुकी धारा प्रसरित हो रही है। एक अभिनव अद्भुत उन्मादका उन्मेष हो गया उसमें। दो दण्डतक अविराम लोटता ही रहा है वह धराकी उस

रजमें, जहाँ अभी-अभी भानुकिशोरीके चरण टिके हैं और सहसा भाग छूटता है वह मधुपुरीकी ओर सर्वथा उन्मत्तकी दशामें।

मेरे प्राणाधिक! यह समस्त इतिवृत्त तुम्हें ज्ञात है ही। तथापि मैंने इसे तुम्हें फिरसे थोड़ा-सा सुना दिया है।।११०५।।

जब जगी स्वप्न से थी बाला उस पादप के नीचे, प्रियतम ।
पीये मद-सी उठ पड़ी, चली, पग थे डगमग उसके, प्रियतम ।
फिर भान हुआ, साँवर आये, दे गलबाँही बोले, प्रियतम ।
'प्रियतमे! चलो, लीला देखें धारामय उस सर की, प्रियतम ।।११०६।।

उस पुरातन वटवृक्षके नीचे सोई बाला राधाकिशोरीका स्वप्न टूटनेपर वह जाग पड़ी और उठकर चल पड़ी। उसके चरण यों लड़खड़ा रहे थे मानो उसने कोई मद पी रखा हो। फिर उसे अनुभव हुआ मानो प्रियतम श्यामसुन्दर आकर उसके गलेमें बाहें डालकर उसे कह रहे हों –'प्रियतमे! उस सरोवरकी लहरोंका खेल देखने चलते हैं।'

अब पुनः वही बाला बैठी ललिता निकुञ्ज में है, प्रियतम !
तुम भी हो साथ, किंतु मानो है देख रही सपना, प्रियतम !
पीपर है, ऊपर है जिसकी जड़, है शाखा नीचे, प्रियतम !
उसके नीचे अर्चन कर है संथा देती तरु को, प्रियतम ।।११०७।।

अब फिरसे राधाकिशोरी ललिताकुंजमें आकर विराजित हो गयी हैं। हे प्रियतम! तुम भी उसे बाहुबन्धनमें लिये अवस्थित हो। इस अवस्थामें भी वह अपने स्वप्नलोकमें ही विचरण करती हुई देख रही हैं – एक ऐसा अश्वत्थवृक्ष है जिसकी जडें ऊपरकी ओर तथा शाखाएँ नीचे फैली हैं। वह बाला राधाकिशोरी उसके नीचे अर्चनकर उसे शिक्षा दे रही हैं।

"है तत्व बताया तुमने ही, तुम-ही-तुम हो मेरे," प्रियतम !
"है या केवल राधा-राधा, फिर नित्य युगल भी हो," प्रियतम !
"यह 'मैं' प्रतिबिम्बित है प्रतिमा राधा की माया में," प्रियतम !
"है किंतु बिम्बसे भिन्न कहाँ सत्ता छाया की, हे प्रियतम" ।।११०८।।

'हे प्रियतम श्यामसुन्दर! यह रहस्य मुझे तुमने ही बताया है कि सर्वत्र तुम-ही-तुम लीलायमान हो अथवा राधा-ही-राधा है; फिर तुम नित्य हम दोनोंके रूपोंमें भी लीला कर रहे हो। यह मेरी अहंता प्रतिमा-राधाकी मायामें प्रतिबिम्बित हो रही है। किन्तु बिम्बसे भिन्न छायाकी सत्ताका होना कैसे संभव है ?'

राधिकारमण निरवधि जय, जय, जय अम्बुजनयन, सदा प्रियतम !
जय सतत नन्दनन्दन जय, जय, जय नाथ निरंतर, हे प्रियतम !
गोपिकाप्राण सर्वदा तथा जय मन्मथमथन अहो। प्रियतम !
चिरकाल विश्वरञ्जन जय, जय, जय कृष्ण अहर्निश, हे प्रियतम ।।११०९।।

निरवधि राधारमणकी जय हो, अम्बुजनयनकी सदा जय हो, नन्दनन्दनकी सतत जय-जय-जय हो, निरन्तर मेरे प्राणनाथ प्रियतमकी जय हो, सर्वदा गोपिकाप्राणकी जय हो, मन्मथमथनकी जय हो, चिरकालतक विश्वरञ्जनकी जय हो, जय हो, अहर्निश मेरे प्रियतम श्रीकृष्णकी जय हो।

जय राधावनकुञ्जविहारिन्, कुञ्चित कुन्तल मुरलीधारिन् ।
प्राणेश्वरीनयनस्फूर्तिकारिन् जय विहारिणी भावविनोदिन् ॥

राधावनविहारी तथा राधाकुञ्जविहारीकी जय हो, घुँघराले केशोंसे सुशोभित मुरलीधरकी जय हो, प्रियतमा राधाके नयनोंमें विहार करनेवाले, विहारिणी राधाके भावोंमें आनन्द सरसानेवाले श्रीकृष्णकी जय हो।।।११०६।।

नाची रसना, रसराज इसे जैसे जब नचा गये, प्रियतम!
गँठजोड़ अनन्तकालतक यह इसका उनसे ही है, प्रियतम!
वे चाहेंगे, वैसी होगी यह महाभावलीला, प्रियतम!
जय अहो! यशोदानन्दन जय मोहन जय वनमाली, प्रियतम॥१११०॥

मेरी यह वाणी उसी भाँति नाचती रही जिस भाँति रसराज श्रीकृष्ण इसे नचाते रहे। मेरी इस रसनाकी गाँठ अनन्तकालतक उन्हीं नीलसुन्दरसे ही बँधी है। यह महाभावलीला उसी भाँति होगी जैसी वे कराना चाहेंगे। अहो यशोदानन्दनकी जय हो, मोहनकी जय हो, वनमालीकी जय हो।।१११०।।

प्राणाधिक जय कृष्ण, जय कुञ्जजनेश्वर!
कुञ्जेश्वरि राधे जय प्राणेश्वरि हि राधिके ॥

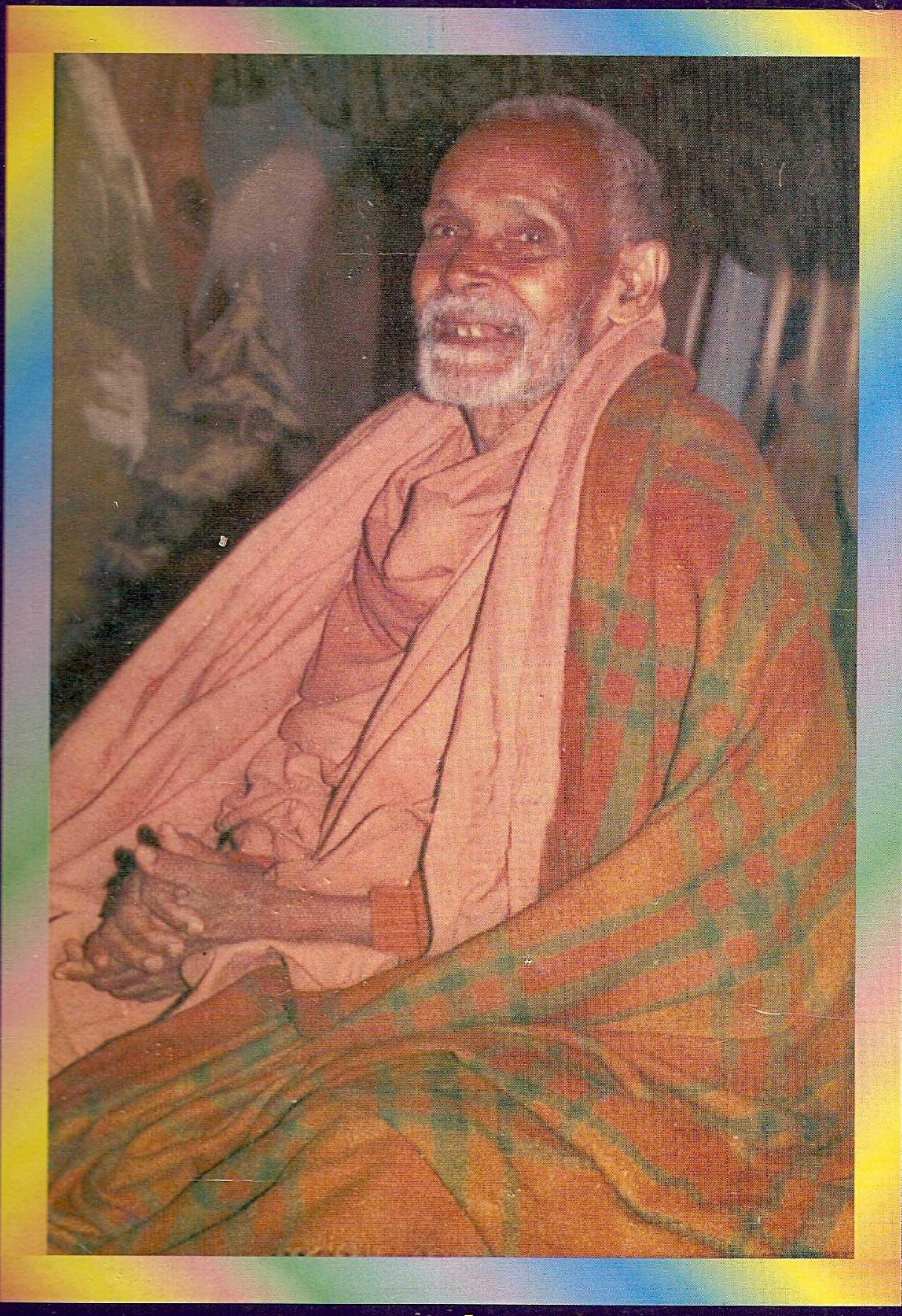
प्राणाधिक श्रीकृष्णकी जय हो, कुञ्जजनेश्वरकी जय हो,कुञ्जेश्वरी राधाकी जय हो, प्रांणेश्वरी राधिकाकी जय हो।।।११११क।।

दूसरा पाठ— हे प्राणाधिक श्रीकृष्ण, जय कुञ्जजनेश्वरः!
हे प्राणाधिक मत्कृष्ण, जय कुञ्जजनेश्वरः ॥११११॥

हे प्राणाधिक श्रीकृष्ण! कुञ्जजनेश्वरकी जय हो! हे मेरे प्राणाधिक श्रीकृष्ण! कुञ्जजनेश्वरकी जय हो।।।११११ख।।

एकादश शतक समाप्त

समाप्तोऽयं ग्रंथः।।



ध्यानमग्न पू. गुरूदेव श्री राधाबाबा